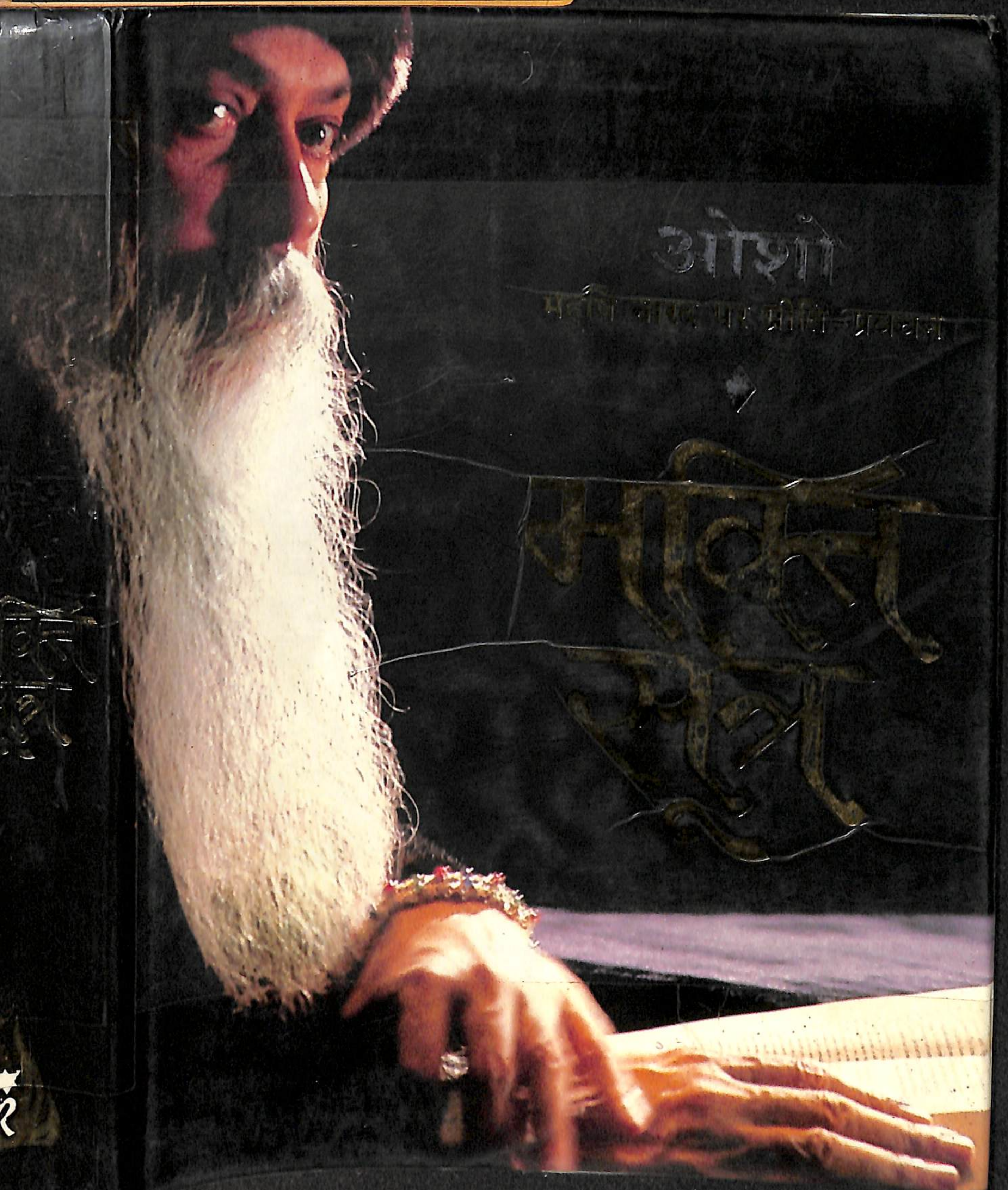
ओशो
महर्षि नारद पर प्रीति-प्रवचन
भक्ति सूत्र

ओशो

भक्ति सूत्र

ओशो

महर्षि नारद पर प्रीति-प्रवचन

भक्ति सूत्र

A REBEL BOOK

ओशो

महर्षि नारद पर प्रीति-प्रवचन

◆

भक्ति सूत्र

भूमिका

डा. रामचंद्र प्रसाद

एम.ए., डी.ई.एस., पीएच.डी. (एडिनबरा)

डी.लिट. (पटना)

संकलन : राजेंद्र, त्यौहार
संपादन : दयाल
संयोजन: अमित, सत्यार्थी

फोटोटाइपसेटिंग : न्यू वे टाइपसेटर्स एंड प्रोसेसर्स
350/1/सी, सोमवार पेठ, पुणे 411011
प्रकाशक : ताओ पब्लिशिंग प्रा.लि.,
50 कोरेगांव पार्क, पुणे
मुद्रक: टाटा इनफोमीडिया लिमिटेड, मुंबई

Bhakti Sutra
Copyright © 1976 / 1977 Osho International Foundation
All Rights Reserved

सर्वाधिकार सुरक्षित:
इस पुस्तक अथवा इस पुस्तक के किसी अंश को इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल, फोटोकापी, रिकार्डिग या अन्य सूचना संग्रह साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित अथवा प्रकाशित करने के पूर्व ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन की लिखित अनुमति अनिवार्य है।

Osho is a registered trademark of Osho International Foundation,
used under license.

तीसरा विशेष राजसंस्करण: दिसंबर 2003
पूर्व प्रकाशित 'भक्ति-सूत्र भाग 1' Copyright © 1976 Osho International Foundation
एवं 'भक्ति-सूत्र भाग 2' Copyright © 1977 Osho International Foundation
का संयुक्त संस्करण।

ISBN 81-7261-095-5

Rs 280

प्रस्तावना

नारद के भक्ति-सूत्रों की यह सर्वांगपूर्ण मीमांसा श्रुतियों की महनीय श्रृंखला की ही एक अपौरुषेय एवं ईश्वरादिष्ट कड़ी है। मेरी दृष्टि में यह भविष्योद्घोषी 'अपॉकलिप्स' है। ऐसा अंतर्दृष्टिसंपन्न, सांगोपांग एवं सर्जनात्मक भाष्य, जिसके प्रत्येक शब्द में मीमांसाकार का प्रकांड वैदुष्य प्रतिबिंबित हो रहा हो और जिसमें विवेचन की शैली इतिवृत्तात्मक न होकर काव्य की अपिच्छिल रसपेशल शैली हो, अद्यावधि प्रणीत नहीं हुआ। इससे भगवान का दिव्य व्यक्तित्व चंदन के समान अपने गंधरूप गुण से सर्वत्र व्याप्त है—वेदांत-सूत्र के शब्दों में 'अविरोधश्चंदनवत्' ही समझिए।

इस विशद रसभीनी व्याख्या से हमें उस भूल का स्मरण हो आता है जो हमें पूर्वजों से विरासत में मिली है। छांदोग्योपनिषद की एक सुपरिचित पंक्ति है—'इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात् प्रणाय्याय वान्तेवासिने'। श्रुति के इस मसृण वाक्य के अनुसार इस ब्रह्मविज्ञान के लिए केवल दो तीर्थ—ज्येष्ठ पुत्र और योग्य शिष्य—उपयुक्त ठहराए गए हैं। ओशो की यह मधुविद्या आप ज्येष्ठों के लिए ही नहीं, वरन सबके लिए है। इसकी रसपेशलता और प्रसादनीयता के मूल में जन्म-जन्मांतर की साधना से उत्पन्न यही चिंतनजन्य विश्वास है। भक्ति किसी की पैतृक संपत्ति नहीं, सर्वजनीय, सर्वबंधविमोचन तथा सर्वपूत पथ है। जिसमें भी आत्मसमर्पण की अभीप्सा हो, जो भी अहं के विसर्जन और 'अपूर्व उन्मत्तता', 'परिपूर्ण आस्था' तथा 'भक्ति के उत्सव' के लिए तत्पर हो, वही अरुणपुत्र उद्दालक बन सकता है। यदि भगवान ब्रह्मा हैं तो आपमें प्रत्येक अध्येता-श्रोता विराट प्रजापति है। आप मनु और प्रजावर्ग के सुयोग्य प्रतिनिधि और प्रतीक हैं। शर्त केवल इतनी ही है कि आपकी प्रार्थना अहोभाव हो। आपकी प्रार्थना कृतज्ञता का उच्छ्वास हो। और स्मरण रहे कि 'अंधेरा बड़ा मखमली है। उसका स्पर्श बड़ा गुदगुदा है।...प्रकाश तो उत्तप्त है। अंधेरा बड़ा शीतल है!'

यह यास्क और सायण की भाषा नहीं, प्रत्युत अनुभूत सत्य और आत्मसात् की हुई संबोधि की भाषा है। इसमें उस मतवाद का शक्त खंडन है जो अनादि काल से मानव-चेतना को प्रभावित करता रहा है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद के विश्वामित्र-विरचित इंद्रसूक्तों को लें। इनमें सैंतीसवां सूक्त युद्ध में विजय दिलाने के लिए प्रार्थना है और आगे के तीन सूक्त विजय मिलने के बाद के। इस सूक्त के अनुशीलन से जाहिर है कि यह स्तुति न तो उस बल के लिए है जिसे पाकर वृत्र का संहार होगा और न युद्ध में धैर्य के लिए ही। इसका लक्ष्य है 'वृत्राय हन्तवे'—शत्रु को मार डालना। दुर्लभ विजय की

प्राप्ति के लिए विश्वामित्र गायत्री छंद में अपनी स्तुति की व्यंजना करते हैं। अंत में ऋषि की आकांक्षामूलक प्रार्थना अनुष्टुप छंद में आबद्ध हो उद्भासित हो उठती है— 'पास या दूर, जहां कहीं भी तुम रहते हो, वहां से यहां आ जाओ।' प्रार्थनानुसार इंद्र का आगमन होता है, विश्वामित्र-पक्ष की विजय होती है और जहां-तहां यज्ञोत्सव का आरंभ होता है। लेकिन ओशो की प्रबुद्ध चेतना प्रार्थना और वंचना को विपरीतार्थ मानती है, इन्हें दो भिन्न ध्रुवांतों पर रखती है। उनके अनुसार पराभक्ति आकांक्षाशून्य होती है और इससे उच्छ्वसित प्रार्थना में न तो सत्त्व की आकांक्षा होती है और न परमात्मा को पाने की। मनुष्य की आकांक्षा से गुजरकर मोक्ष भी पतित हो जाता है, स्वर्ग बन जाता है और स्वर्ग मोक्ष का पतन है। 'लोकहानि की चिंता भक्त को नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह अपने-आप को और लौकिक, वैदिक कर्मों को भगवान के अर्पण कर चुका है।' भक्ति स्वयं शांतिरूपा और परमानंदरूपा है— 'शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च।' 'इसलिए सारे ध्यान, सारी प्रार्थना, सारा पूजा-अर्चन, सब एक ही बात के पास हैं: तुम शांत हो जाओ। तुम उसे देखना चाहते हो? शांत हो जाओ। उत्तेजित न रहो। जैसे ही तुम ठहरे, शांत हुए— वह पास आया।'

नारद-सूत्रों का यह विशदीकरण केवल प्रसादगुणयुक्त होता तो हम इसे ब्रह्मसूत्र के ग्यारह वर्तमान भाष्यों की कोटि में ही रखते, परंतु ओशो न तो केवल व्याख्या करते हैं और न भाष्य रचते हैं। वस्तुतः भाष्य-रचना तो लौकिक प्रतिभाओं का काम है, मौलिक उद्भावनाएं तथा कालजयी सर्जनाएं नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से संभूत होती हैं। सच पूछिए तो भाष्य के लिए वाचस्पति मिश्र, अद्वैतानंद, चित्सुखाचार्य, मधुसूदन सरस्वती जैसे पंडित चाहिए, लेकिन मौलिक तत्त्व-चिंतन और सिसृक्षा के लिए कृष्ण, व्यास, वाल्मीकि जैसे कवि-प्रजापति। सुधी पाठक मेरे इस निष्कर्ष से सहमत होंगे कि नारदीय सूत्रों के इस मर्मोद्घाटन में एक ओर तो प्रजापति का रचनात्मक कौशल है और दूसरी ओर इसके मसृण पदविन्यास और बिंबविधान में कृष्ण-व्यास-वाल्मीकि की कारयित्री कल्पना की समवेत स्वच्छंद उड़ान। नारद की चेतना की गहराइयों में प्रवेशकर, मुनि के साथ एकरूप होकर, ओशो अभिनव सूत्रों की भावदीप्त एवं रागानुशासित रचना-व्याख्या करते हैं। 'भक्ति-सूत्र' के प्रत्येक पृष्ठ में, प्रत्येक अनुच्छेद में जो विचारान्विति मिलती है, उसके मूल में उनका प्रगाढ़ राग-भाव ही छिपा मिलता है। उनमें यदि तरल भावोच्छ्वास के दर्शन होते हैं तो साथ ही परिष्कृत भाव-चेतना के भी। लेकिन उनकी प्रतिक्रियाजनित उत्तेजना से रहित होकर 'ठहरे' दीखते हैं— उनके केंद्र में एकांत भक्ति की प्रशांति रहती है। उस प्रशांति में ही प्रभंजन का पूर्वाभास भी निहित होता है।

जब बड़ी ही अविचलित मुद्रा में वे कहते हैं:

'परमात्मा की चाह भी परमात्मा के मार्ग में बाधा है,'
'धर्म उत्सव है, उदासी नहीं,'
'एकाकीपन परम सुंदर है,'
'एकांत में ही मंदिर है,'

...तब असंख्य-असंख्य अधकचरी और सड़ी-गली मान्यताएं, पुराने मिथक और टोटेम, मानवता के अवचेतन में उपन्यस्त युग-युग की भ्रांत अवधारणाएं एक-एक कर स्वतः ढह जाती हैं,

विस्फोट-सा हो जाता है और हम अनायास पूछ बैठते हैं: 'मैं बिलकुल अकेली हूं, बुढ़ापा भी आ गया है, पैर से अपाहिज हूं, नाच भी नहीं सकती—क्या मेरे लिए आशा की कोई किरण संभव है?'

प्रस्तुत ग्रंथ के सभी प्रवचन इस प्रश्न को भिन्न-भिन्न बिंदुओं से आंकते और इसका सम्यक् समाधान उपस्थित करते हैं।

नारद के भक्ति-सूत्रों का (यह तथाकथित) ओशोभाष्य बीसवीं शतक के भाष्यों का ही नहीं, अपितु अद्यावधि प्रणीत सभी भाष्यों का चूड़ामणि है।

यह एक अभिनव अद्वैतरत्नरक्षण और वेदांतकल्पलतिका है
जिसके संमुख ब्रह्मविद्यामरण लगता छिछला है;
शांकर, भास्कर भाष्यों की सूक्ष्मता
इसके समक्ष लगती निपट तलोपरिकता है।
इसकी चूड़ांत ऊंचाइयों ने कर दिखाया
माध्व और श्रीकंठ भाष्यों को ठिंगना है।
यह न तो बलदेवभाष्य है न शक्तिभाष्य,
वरन् स्वयं नारद के श्रीमुख से निःसृत मधुविद्या है।
भगवान ही श्रीकर, वल्लभ, विज्ञानभिक्षु की अंतर्दृष्टि लेकर
अवतीर्ण हुए सत्तम हैं।
भाष्य भी कला है,
कविता और संगीत है,
सुचिंतित विचारों और मनोभावों का उच्छलन है—
यही ओशो-दर्शन का अंगीभूत सत्य है।

—डा. रामचंद्र प्रसाद

अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग
पटना विश्वविद्यालय,
पटना (भारत)

अनुक्रम

1. परम प्रेमरूपा है भक्ति	.....	.....	1
2. स्वयं को मिटाने की कला है भक्ति	.....	.....	27
3. बड़ी संवेदनशील है भक्ति	.....	.....	53
4. सहजस्फूर्त अनुशासन है भक्ति	.....	.....	75
5. कलाओं की कला है भक्ति	.....	.....	99
6. प्रसादस्वरूपा है भक्ति	.....	.....	123
7. योग और भोग का संगीत है भक्ति	.....	.....	147
8. अनंत के आंगन में नृत्य है भक्ति	.....	.....	167
9. हृदय का आंदोलन है भक्ति	.....	.....	189
10. परम मुक्ति है भक्ति	.....	.....	211
11. शून्य की झील में प्रेम का कमल है भक्ति	.....	.....	235
12. अभी और यहीं है भक्ति	.....	.....	259
13. शून्य का संगीत है प्रेमा-भक्ति	.....	.....	281
14. असहाय हृदय की आह है प्रार्थना-भक्ति	.....	.....	301
15. हृदय-सरोवर का कमल है भक्ति	.....	.....	323
16. उदासी नहीं—उत्सव है भक्ति	.....	.....	351
17. कान्ता जैसी प्रतिबद्धता है भक्ति	.....	.....	375
18. एकांत के मंदिर में है भक्ति	.....	.....	401
19. प्रज्ञा की थिरता है मुक्ति	.....	.....	429
20. अहोभाव, आनंद, उत्सव है भक्ति	.....	.....	455

परम प्रेमरूपा है भक्ति

पहला प्रवचन

सूत्र

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः ॥१॥
सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ॥२॥
अमृतस्वरूपा च ॥३॥
यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति
अमृतो भवति तृप्तो भवति ॥४॥
यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति
न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति ॥५॥
यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति
आत्मारामो भवति ॥६॥

जीवन है ऊर्जा — ऊर्जा का सागर। समय के किनारे पर अथक, अंतहीन ऊर्जा की लहरें टकराती रहती हैं : न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत; बस मध्य है, बीच है। मनुष्य भी उसमें एक छोटी तरंग है; एक छोटा बीज है — अनंत संभावनाओं का।

तरंग की आकांक्षा स्वाभाविक है कि सागर हो जाए और बीज की आकांक्षा स्वाभाविक है कि वृक्ष हो जाए। बीज जब तक फूलों में खिले न, तब तक तृप्ति संभव नहीं है।

मनुष्य कामना है परमात्मा होने की। उससे पहले पड़ाव बहुत हैं, मंजिल नहीं है। रात्रि-विश्राम हो सकता है। राह में बहुत जगहें मिल जाएंगी, लेकिन कहीं घर मत बना लेना। घर तो परमात्मा ही हो सकता है।

परमात्मा का अर्थ है : तुम जो हो सकते हो, उसकी पूर्णता।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है; कहीं आकाश में बैठा कोई रूप नहीं है; कोई नाम नहीं है। परमात्मा है तुम्हारी आत्यन्तिक संभावना — आखिरी संभावना, जिसके पार फिर और कोई होना नहीं है; जिसके आगे फिर कोई जाना नहीं है; जहां पहुंचकर तृप्ति हो जाती है, परितोष हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्य तब तक पीड़ित रहेगा। तब तक तुम चाहे कितना ही धन कमा लो, कितना ही वैभव जुटा लो, कहीं कोई पीड़ा का कीड़ा तुम्हें भीतर काटता ही रहेगा; कोई बेचैनी सालती ही रहेगी; कोई कांटा चुभता ही रहेगा। लाख करो भुलाने के उपाय — बहुत तरह की शराबें हैं विस्मरण के लिए लेकिन भुला न पाओगे। और अच्छा है कि भुला न पाओगे; क्योंकि काश, तुम भुलाने में सफल हो जाओ तो फिर बीज बीज ही रह जाएगा, फूल न बनेगा — और जब तक फूल न बने और जब तक मुक्त आकाश को गंध फूल की न मिल जाए, तब तक परितृप्ति कैसी ! जब तक तुम अपने परम शिखर को छूकर बिखर न जाओ, जब तक तुम्हारा विस्फोट न हो जाए अनंत में, जब तक तुम्हारी गंगा उसी सागर में वापस न लौट जाए जहां से आयी है, तब तक अगर तुम भूल गये तो आत्मघात होगा, तब तक अगर तुमने अपने को भुलाने में सफलता पा ली तो उससे बड़ी और कोई विफलता नहीं हो सकती।

अभागे हैं वे जिन्होंने समझ लिया कि सफल हो गये। धन्यभागी हैं वे, जो जानते हैं कि कुछ भी करो, असफलता हाथ लगती है। क्योंकि ये ही वे लोग हैं जो किसी-न-किसी दिन, कभी-न-कभी

परमात्मा तक पहुंच जाएंगे।

जहां सफलता मिली वहीं घर बन जाता है। जहां असफलता मिली वहीं से पैर आगे चलने को तत्पर हो जाते हैं।

परमात्मा तक पहुंचे बिना कोई तृप्ति संभव नहीं है।

कहा मैंने, जीवन ऊर्जा है।

ऊर्जा के तीन रूप हैं। एक तो बीजरूप है : कुछ भी प्रगट नहीं है। फिर वृक्षरूप है : सब कुछ प्रगट हो गया है, लेकिन प्राण अप्रगट हैं। फिर फूलरूप है : फिर प्राण भी प्रगट हुआ; फिर वह अनूठी अपूर्व गंध भी आ गयी, पंखुड़ियां खिल गयीं और खुले आकाश के साथ मिलन हो गया, अनंत के साथ एकता हो गयी!

साधारणतः बीज का अर्थ है : कामना। वृक्ष का अर्थ है : प्रेम। फूल का अर्थ है : भक्ति।

जब तक तुम बीज में हो, तब तक कामवासना में रहोगे। जब तुम वृक्ष बनोगे तब तुम्हारे जीवन में प्रेम का अवतरण होगा। और जब तुम फूल बनोगे, तब भक्ति।

भक्ति परम शिखर है। वह आखिरी बात है।

इसे हम थोड़ा समझ लें, तभी इन अनूठे सूत्रों में प्रवेश हो सकेगा।

तुम शरीर हो; तुम मन भी हो; तुम उसके पार भी कुछ हो, जिसका तुम्हें पता नहीं।

शरीर तो बहुत स्थूल है। उसका पता चल जाता है। उसके लिए किसी बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। शरीर तो वजन रखता है। उसका बोध हो जाता है। उसके लिए किसी ध्यान की जरूरत नहीं है।

मन की भी थोड़ी झलक तुम्हें मिल जाती है, क्योंकि मन स्थूल और सूक्ष्म के मध्य में है — शरीर से भी जुड़ा है, आत्मा से भी। शरीर की तरफ से थोड़ी-सी खबरें मन की मिल जाती हैं, क्योंकि एक धागा शरीर के तट से जुड़ा है। लेकिन आत्मा की तुम्हें कोई खबर नहीं मिलती। आत्मा कोरा शब्द मालूम होता है। आत्मा शब्द सुनते से ही तुम्हारे भीतर कोई घूंघर नहीं बजते। आत्मा शब्द सुनने से ही बेचैनी-सी होती है। शब्द बेबूझ है। भाषाकोश का अर्थ तो पता है; जीवन के कोश का कुछ अर्थ पता नहीं।

शरीर के साथ जुड़ी है कामवासना। कामवासना स्थूल है। शरीर शरीर को मांगता है : कामवासना का अर्थ। शरीर अपने से विपरीत शरीर को मांगता है; क्योंकि एक किनारा अधूरा है, दूसरे किनारे की चाह पैदा होती है। पुरुष स्त्री को मांगता है, स्त्री पुरुष को मांगती है, ताकि जीवन की सरिता बीच में बह सके, दो किनारे जुड़ जाएं। पुरुष अकेला है, स्त्री अकेली है।

शरीर के तल पर शरीर की मांग है, शरीर से मिलन की आकांक्षा है। क्षण-भर का मिलन हो भी जाता है। क्षण-भर को शरीर शरीर में डूब जाते हैं और खो भी जाते हैं — लेकिन बस क्षण-भर को! उससे पीड़ा मिटती नहीं, गहन हो जाती है। उस मिलन के बाद बड़ा गहरा विषाद हो जाता है, क्योंकि मिलन के बाद गहरा विछोह होता है। मिलता कुछ भी नहीं; ऐसा लगता है, उलटा खो गया।

शरीर का मिलन क्षण-भर को ही हो सकता है। स्थूल एक-दूसरे में विलीन नहीं हो सकते। स्थूल की सीमा है। स्थूल अपनी सीमा को छोड़ नहीं सकता, अन्यथा स्थूल न रह जाएगा।

बर्फ के दो टुकड़ों को तुम मिलाने की कोशिश करो, मुश्किल होगी। लेकिन वे ही पिघल जाएं जल हो कर, बिलकुल मिल जाते हैं। फिर कोई अड़चन नहीं होती। सीमा खो गयी, मिलन सुलभ हो गया।

शरीर बर्फ की तरह है – जमा हुआ, ठोस। ऊर्जा वही है; पिघल जाए तो मन बनता है। मन जल की तरह है। सीमा तो है, लेकिन तरल सीमा है, ठोस नहीं। तुम मन को कैसा भी ढालो, ढल जाता है। शरीर को कैसा भी ढालो तो न ढलेगा। मन को कैसा भी ढालो, ढल जाएगा।

हिन्दू के घर में बच्चा पैदा हो, मुसलमान के घर में रख दो, मुसलमान हो जाएगा। शरीर नहीं होगा, मन हो जाएगा। शरीर तो बाप की ही झलक देगा, मां की झलक देगा। शरीर की खबर तो वहीं जुड़ी रहेगी जहां से शरीर आया है, लेकिन मन मुसलमान का हो जाएगा। बच्चे को याद भी न रहेगी कि वह कभी हिन्दू था। हिन्दू होने के पहले ही, मन इसके पहले कि ढलता, मुसलमान हो गया। मुसलमान बाद में चाहे तो हिन्दू हो जाए, ईसाई हो जाए; आस्तिक नास्तिक हो जाए, नास्तिक आस्तिक हो जाए – मन में कुछ अड़चन नहीं है।

मन तरल है। मन प्रतिपल बदलता रहता है। उसकी तरलता अनूठी है।

कामवासना है शरीर जैसी और शरीर की।

प्रेम है मन जैसा और मन का।

प्रेम की मांग शरीर की मांग से ऊपर है। प्रेम कहता है : दूसरे का मन मिल जाए! प्रेम करने वाला वेश्या के द्वार पर न जाएगा। यह बात ही बेहूदी मालूम पड़ेगी। यह बात ही संभव नहीं है। यह सोच भी बेहूदा मालूम पड़ेगा। लेकिन कामवासना से भरा व्यक्ति वेश्या के घर चला जाएगा; शरीर की ही मांग है।

शरीर खरीदा जा सकता है; मन खरीदा नहीं जा सकता।

शरीर जड़ है। मन थोड़ा-थोड़ा चेतन है; इसलिए इतना नीचे नहीं उतरा जा सकता कि खरीद और बेच की जा सके।

मन प्रेम मांगता है : कोई, जो अपना सर्वस्व देने को तैयार हो, बिना किसी शर्त के। मन अपने को किसी को दे देना चाहता है, बेशर्त लुटा देना चाहता है। मन की मांग प्रेम की है।

जब दो मन मिलते हैं तो जो रस पैदा होता है, उसका नाम प्रेम है। जब दो शरीर मिलते हैं तो जो रस पैदा होता है, उसका नाम काम है।

फिर मन के भी पार तुम्हारा अस्तित्व है – आत्मा का। आत्मा ऐसे है जैसे पानी भाप बनकर आकाश में उड़ गया। पानी ही है, लेकिन अब तरल सीमा भी न रही। अब कोई सीमा न रही; आकाश में फैलना हो गया! अदृश्य हो जाती है भाप; थोड़ी दूर तक दिखायी पड़ती है, फिर खो जाती है!

आत्मा अदृश्य है – भाप जैसी!

आत्मा की तलाश किसकी है?

शरीर मांगता है शरीर को। मन मांगता है मन को। आत्मा मांगती है आत्मा को।

शरीर और शरीर के मिलन से जो रस पैदा होता है – क्षणभंगुर – उसका नाम : काम। मन

और मन के मिलन से जो रस पैदा होता है — थोड़ा ज्यादा स्थायी, जीवन-भर चल सकता है। आकांक्षा तो मन की होती है कि जीवन के पार भी चलेगा। प्रेमी कहते हैं, 'मौत हमारे प्रेम को न तोड़ पाएगी।' अगर प्रेम जाना है, तो प्रेमी कहता है, 'कुछ हमें छुड़ा न पाएगा। शरीर मिट जाएगा तो भी हमारा प्रेम नष्ट न होगा।

यह कामना ही है, लेकिन मन थोड़ा ज्यादा दूरगामी है। शरीर से उसकी सीमा थोड़ी बड़ी है।

फिर आत्मा है; शाश्वत की मांग है उसकी। उससे कम पर उसकी तृप्ति नहीं। क्षणभंगुर को भी क्या चाहना! अंधेरी रात में क्षण-भर को बिजली चमकती है, फिर अंधेरा और अंधेरा हो जाता है। दुख ही बेहतर है। दुख की दुनिया में क्षण-भर को सुख का फूल खिलता है, दुख और दूभर हो जाता है, फिर झेलना और मुश्किल हो जाता है।

आत्मा मन के प्रेम को भी नहीं मांगती, क्योंकि मन तरल है : आज किसी से प्रेम किया, कल किसी और के प्रेम में पड़ सकता है। मन का कोई बहुत भरोसा नहीं है। जब प्रेम में होता है तो ऐसा ही कहता है, 'अब तेरे सिवाय किसी को कभी प्रेम न कर सकूंगा। अब तेरे सिवाय मेरे लिए कोई और नहीं।' मगर ये मन की ही बातें हैं। मन का भरोसा कितना! आज कहता है; कल बदल जाए! अभी कहता है; अभी बदल जाए!

मन पानी की तरह तरल है।

आत्मा की मांग है शाश्वत की, चिरंतन की, सनातन की। आत्मा की मांग है आत्मा की।

आत्मा और आत्मा के मिलन पर जो रस पैदा होता है, उसका नाम भक्ति है।

शरीर की सीमा है ठोस। मन की सीमा है तरल। आत्मा की कोई सीमा नहीं।

काम क्षणभंगुर है। प्रेम थोड़ा दूर तक जाता है, थोड़ा स्थायी हो सकता है। भक्ति शाश्वत है।

काम में शरीर और शरीर का मिलन होता है — स्थूल का स्थूल से; मन में — सूक्ष्म का सूक्ष्म से; आत्मा में — निराकार का निराकार से। भक्ति निराकार का निराकार से मिलने का शास्त्र है।

ऐसा समझो कि तुम अपने घर में बैठे हो द्वार-खिड़कियां बंद करके, रोशनी नहीं आती सूरज की भीतर, हवा के झोंके नहीं आते, फूलों की गंध नहीं आती, पक्षियों के कलरव की आवाज नहीं आती — तुम अपने में बंद बैठे हो : ऐसा शरीर है, द्वार-दरवाजे सब बंद!

फिर तुमने द्वार-दरवाजे खोले, खिड़कियां खोलीं, हवा के नये झोंकों ने प्रवेश किया, सूरज की किरणें आयीं, पक्षियों के गीत गूंजने लगे, आकाश की झलक मिली : ऐसा मन है! थोड़ा खुलता है। लेकिन बैठे तुम घर में ही हो।

फिर भक्ति है कि तुम घर के बाहर निकल आये, खुले आकाश में खड़े हो गये : अब सूरज आता नहीं, बरसता है; अब हवा कहीं से आती नहीं, तुम्हारे चारों तरफ आंदोलित होती है; अब तुम पक्षियों के कलरव में एक हो गये!

भक्ति-सूत्र पूरा शास्त्र है भक्ति का। एक-एक सूत्र को अति ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करना, और अति प्रेमपूर्वक भी, क्योंकि यह प्रेम का ही शास्त्र है। इसे तुम तर्क से न समझ पाओगे। स्वाद ही समझा पाएगा।

'अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः।'

अब भक्ति की व्याख्या!

क्यों 'अब' 'अथातो'...!

हो चुकी बात काम की बहुत। हो चुकी चर्चा प्रेम की बहुत। अथातो भक्तिं... अब भक्ति की बात हो। जी लिए बहुत। देख लिए शरीर के भी खेल। देख लिए मन के भी जाल। गुजर चुके उन सब पड़ावों से। अब भक्ति की थोड़ी बात हो।

'अब'! अचानक शुरू होता है शास्त्र!

सिर्फ भारत में ऐसे शास्त्र हैं जो 'अथातो' से शुरू होते हैं; दुनिया की किसी भाषा में ऐसे शास्त्र नहीं हैं। क्योंकि यह तो बड़ा अधूरा मालूम पड़ता है।

कहीं 'अब' से कोई शास्त्र शुरू होता है! यह तो ऐसा लगता है जैसे इसके पहले कोई बात चल रही थी; कोई कथा आगे चल रही थी जो छूट गयी है; कोई बीच का अध्याय है, प्रारंभ का नहीं।

पश्चिम के व्याख्याकार जब पहली दफा ब्रह्मसूत्र से परिचित हुए – वह भी ऐसे ही शुरू होता है : 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा,' अब ब्रह्म की जिज्ञासा – तो उन्होंने कहा कि इसके पहले कोई किताब थी जो खो गयी है। निश्चित ही, क्योंकि यह तो मध्य से शुरुआत हो रही है।

नहीं, कोई किताब खो नहीं गयी है; यह शुरुआत ही है। यह जीवन की किताब का आखिरी अध्याय है। शास्त्र शुरू ही हो रहा है, मगर जीवन की किताब का आखिरी अध्याय है। यह उनके लिए नहीं है जो अभी शरीर की वासना में पड़े हों। वे इसे न समझ पाएंगे। अभी देर है। अभी फल पकेगा। अभी उनके गिरने का समय नहीं आया। यह उनके लिए नहीं है जो अभी प्रेम की कविता में डूबे हैं और उसको ही जिन्होंने आखिरी समझा है। उन दो को छोड़ने के लिए 'अथातो'।

तो, शुरू में ही शास्त्र कह देता है कि कौन है अधिकारी। यह अधिकारी की व्याख्या है 'अथातो'। यह कहता है कि अगर चुक गये हो कामवासना से, भर गया हो मन – तो, अन्यथा अभी थोड़ी देर और भटको, क्योंकि भटके बिना कोई अनुभव नहीं है। अगर अभी प्रेम में रस आता हो तो क्षमा करो; अभी इस मंदिर में प्रवेश न हो सकेगा। अभी तुम किसी और ही प्रतिमा के पुजारी हो; अभी परमात्मा की प्यास नहीं जगी। अभी तुम या तो बीज हो या वृक्ष हो, अभी फूल होने का समय नहीं आया। और जब तक समय न आ जाए तब तक कुछ भी तो नहीं होता। इसलिए व्यर्थ मेहनत नहीं करनी है।

यह, जीवन की पाठशाला में जिनका आखिरी अध्याय करीब आ गया, इसका यह मतलब नहीं है कि यह बूढ़ों के लिए है। जैसे पश्चिम के लोगों ने गलत समझा – उन्होंने समझा कि यह आधी किताब है, आधी शायद खो गयी – वैसे पूरब के लोगों ने भी गलत समझा। उन्होंने समझा कि यह तो बूढ़ों के लिए है।

नहीं, प्रौढ़ों के लिए है, बूढ़ों के लिए नहीं है। प्रौढ़ कोई कभी भी हो सकता है। एक छोटा बच्चा प्रौढ़ हो सकता है। प्रगाढ़ बुद्धिमत्ता चाहिए! और नहीं तो बूढ़े भी बचकाने रह जाते हैं। कोई बूढ़े होने से थोड़े ही पक जाता है। धूप में पक जाने से बाल कोई वृद्ध नहीं हो जाता। बूढ़े के मन में भी वही कामनाएं चलती रहती हैं, वही वासनाएं चलती रहती हैं। तो उसके लिए भी नहीं है यह शास्त्र।

फिर कभी-कभी कोई जवान भी भर-जवानी में जाग जाता है, अभी जबकि सोने के दिन थे तब जाग जाता है। कभी कोई छोटा बच्चा भी अचानक बीज से छलांग लेता है और फूल हो जाता है। कोई शंकराचार्य छोटी उम्र में, बड़ी छोटी उम्र में...! उम्र का कोई सवाल नहीं है, बोध का सवाल है।

'अथातो'...अब भक्ति की व्याख्या करते हैं। व्याख्या करते हैं, परिभाषा नहीं। परिभाषा हो नहीं सकती। कुछ चीजें हैं जिनका वर्णन हो सकता है, व्याख्या हो सकती है, परिभाषा नहीं हो सकती। जैसे कि तुमने कोई स्वाद पाया और तुम किसी दूसरे को समझाने लगे जिसके जीवन में अभी वैसा स्वाद आया नहीं, लेकिन स्वाद को समझने की उत्सुकता आयी है, रस जगा है, जिज्ञासा बनी है – तुम क्या करोगे ? तुम वर्णन करोगे; तुम्हें जो स्वाद मिला है उसका तुम वर्णन करोगे, कैसा मिला ! तुम कुछ प्रतीक चुनोगे, जिससे, जिससे तुम बात कर रहे हो, उसकी भाषा में कुछ संकेत दिये जा सकें ; उसके अनुभव से तुम अपना अनुभव जोड़ने की कोशिश करोगे।

व्याख्या का अर्थ होता है : तुम्हें जिन्हें अनुभव नहीं है, उनसे अपने अनुभव को जोड़ने की चेष्टा; जो तैयार तो हैं मंदिर में प्रवेश के, लेकिन अभी मंदिर में प्रवेश नहीं हुआ है, उन्हें मंदिर की खबर देनी है; मंदिर के भीतर क्या घट रहा है, मंदिर के भीतर कैसा अनुभव हुआ है, थोड़ा-सा स्वाद उनके लिए लाना है।

क्या करेंगे ? परिभाषा करेंगे ? व्याख्या करेंगे। परिभाषा नहीं हो सकती। परिभाषा तो उनके बीच हो सकती है जो दोनों ही जाननेवाले हों। परिभाषा संक्षिप्त होती है। परिभाषा तो एक-दो वचनों में, वाक्यों में पूरी हो जाती है। लेकिन व्याख्या थोड़ी लंबी होती है। और व्याख्या से सिर्फ हम दृश्य देते हैं, झलक देते हैं। वह बिलकुल ठीक नहीं होती व्याख्या, क्योंकि ठीक हो नहीं सकती; थोड़ी-थोड़ी ठीक होती है, थोड़ी-थोड़ी गलत होती है। क्योंकि ज्ञानी जब अज्ञानी से बात करता है तो अज्ञानी की भाषा में करता है। परिभाषा तो बिलकुल ठीक होती है, व्याख्या बिलकुल ठीक नहीं होती – हो नहीं सकती।

जब बुद्ध बोलेंगे उनसे जिनके जीवन में बुद्धत्व नहीं है, तो अगर बुद्ध अपनी ही भाषा का उपयोग करें तो परिभाषा होगी; अगर बुद्ध उनकी भाषा का उपयोग करें जिनसे बोल रहे हैं, तो व्याख्या होगी। इसलिए सूत्र पहले ही कह देता है : 'अथातो भक्तिं व्याख्या' अब हम भक्ति की व्याख्या करते हैं।

'वह ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है।'

भक्ति की पहली व्याख्या का सूत्र : वह ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है।

मैंने तुम्हें कहा, ऊर्जा का एक रूप है : काम; ऊर्जा का दूसरा रूप है : प्रेम; ऊर्जा का तीसरा रूप है : भक्ति। भक्ति और काम के बीच में प्रेम है। प्रेम का एक हाथ काम से जुड़ा है; प्रेम का दूसरा हाथ भक्ति से जुड़ा है। अगर कामवासना की व्याख्या करनी हो तो भी प्रेम से ही करनी होगी। अगर भक्ति की व्याख्या करनी हो तो भी प्रेम से ही करनी होगी। क्योंकि प्रेम सेतु है दोनों के बीच। प्रेम दोनों का मध्यबिंदु है। प्रेम दोनों का संतुलन है।

जिसने भक्ति को जाना वह उनसे बोले जिन्होंने भक्ति को नहीं जाना, तो वह किस भाषा में बोले ? प्रेम के अतिरिक्त और कोई भाषा नहीं बचती। काम में तो बोला ही नहीं जा सकता, क्योंकि काम एक छोर है, भक्ति दूसरा छोर है। भक्ति तो काम के करीब-करीब विपरीत है। तो, अगर काम

से कहना हो तो इतना ही कहा जा सकता है कि जो कामना नहीं है, वही भक्ति। लेकिन इससे कुछ हल न होगा, निषेध हो जाएगा।

हम पूछते हैं, 'भक्ति क्या है ?' अगर काम से कहना हो तो हम इतना ही बता सकते हैं कि भक्ति क्या नहीं है। लेकिन पूछनेवाला पूछ रहा है, 'हम यह नहीं पूछ रहे हैं कि भक्ति क्या नहीं है। पत्थर नहीं है, वृक्ष नहीं है, पक्षी नहीं है – माना; भक्ति है क्या ? तो कहां से शुरू करें ?'

... 'परम प्रेमरूपा है।'

प्रेम से शुरुआत करनी पड़ेगी। लेकिन प्रेम में एक शर्त लगायी है : परम प्रेमरूपा ! परम प्रेमरूपा का अर्थ है : ऋण काम। अगर सिर्फ प्रेमरूपा कहते तो फिर भक्ति में और प्रेम में कोई फर्क न रह जाता; फिर तो प्रेम ही भक्ति हो जाती। फिर तीसरे की कोई जरूरत न होती; काम और प्रेम, दो काफी थे विभाजन के लिए।

नहीं, प्रेम में थोड़ा-सा काम शेष रहता है। भक्ति में उतना भी काम शेष नहीं रह जाता।

अब हम इसे ऐसा समझें कि काम में थोड़ा-सा प्रेम है, इसलिए तो आदमी काम में उलझा रहता है। एक प्रतिशत होगा प्रेम, निन्यानबे प्रतिशत केवल कामना है, केवल वासना है; लेकिन वह एक प्रतिशत प्रेम काम को भी एक सुंदर प्रतिमा बना देता है; काम को भी एक भावभंगिमा दे देता है जो उसकी नहीं है, उधार है; काम की कुरूपता को ढांक लेता है, और एक सौंदर्य का आवरण दे देता है; काम की व्यर्थता को ढांक लेता है और सार्थकता की थोड़ी-सी झलक दे देता है।

कामवासना में भी प्रेम का थोड़ा-सा अंश है। और प्रेम में भी कामवासना का थोड़ा-सा अंश है। दोनों जुड़े हैं। इसलिए प्रेम भी पूरा प्रेम नहीं है; कुछ उसमें अभी भी विजातीय है। प्रेम में भी थोड़ी कामवासना है।

इसे हम ऐसा समझें कि कामी कामवासना में पड़ता है; कामवासना में पड़ने के कारण थोड़े-से प्रेम का आविर्भाव हो जाता है। प्रेमी प्रेम में डूबता है; प्रेम में डूबने के कारण कामवासना आ जाती है। दोनों में बड़ा फर्क है, लेकिन तालमेल भी है। कामी काम के कारण प्रेम करने लगता है। प्रेमी प्रेम के कारण काम में उतरता है। दोनों में मौलिक अंतर है। क्योंकि प्रेमी का काम बड़ा मधुर और प्रीतिकर हो जाएगा। कामी का प्रेम भी गंदा होगा। उसके प्रेम में भी बदबू होगी। लेकिन दोनों एक-दूसरे में घुले-मिले हैं।

परम प्रेमरूपा है भक्ति। परम प्रेमरूपा का अर्थ हुआ : प्रेम खालिस सोना बचा; चौदह कैरेट नहीं, अट्ठारह कैरेट नहीं, खालिस ! उसमें एक भी कैरेट कामवासना का न रहा। शुद्ध प्रेम हो गया, तो भक्ति !

क्योंकि तुम प्रेम को शायद थोड़ा-सा जानते हो, इसलिए प्रेम के आधार पर भक्ति को समझाया जा रहा है। तुम प्रेम की थोड़ी-सी भाषा जानते हो, वह भी पूरी नहीं जानते; कहीं सपने में झलक मिली है; कहीं टटोलते-टटोलते हाथ पड़ गया है; कहीं से कोई थोड़ी पहचान आ गयी है; सांयोगिक रही होगी, लेकिन तुम्हें थोड़ा-सा स्वाद है।

जैसे कि पीतल पीला है, और सोना तुमने नहीं देखा, तो हम पीतल से सोने को समझाते हैं।

कहते हैं : ऐसा ही पीला, पर और शुद्ध, ज्योतिर्मय, सूर्य की किरण जैसा चमकता हुआ ! कुछ प्रतीक खोजते हैं। प्रतीक खोजना वर्णन है, व्याख्या है।

'वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है।'

सूत्र के जो भी अनुवाद किये गये हैं हिंदी में, उन सब में यही अनुवाद किया गया है : वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है। पर संस्कृत में बात कुछ और है।

'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा !' ईश्वर शब्द का प्रयोग नहीं किया है। ईश्वर शब्द नहीं है – 'उसके प्रति'! त्वस्मिन् ! बड़ा फर्क है। जिन्होंने भी हिंदी में अनुवाद किये हैं, उन्होंने बात को संकीर्ण कर दिया।

'उसके प्रति' – 'उसका' नाम नहीं हो सकता, इशारा है। बड़ी दूर है वह। उसे ईश्वर कहने से बात हल न होगी। क्योंकि उसे ईश्वर कहने से ही हम उसकी परिभाषा कर देंगे।

ईश्वर शब्द का अर्थ होता है; ऐश्वर्यवान; सारा ऐश्वर्य जिसका है, वह ईश्वर। यह हमारी परिभाषा है, क्योंकि हम ऐश्वर्य की भाषा में सोचने के आदी हो गये हैं। हमारे लिए ईश्वर ऐसा है जैसे सम्राट; सारे जगत का है, पर है सम्राट ही। धन की भाषा में हम सोचने के आदी हो गये हैं, ऐश्वर्य की भाषा में सोचने के आदी हो गए हैं, तो ईश्वर कहते हैं।

लेकिन धन से, और ईश्वर का क्या लेना-देना ? ऐश्वर्य से और ईश्वर का क्या संबंध ? सम्राटों से उसकी कल्पना करनी ठीक नहीं। इसलिए संस्कृत शब्द ठीक है : त्वस्मिन् – 'उसके प्रति'। नाम मत दो उसे। नाम तुम दोगे, तुम्हारा नाम होगा, तुम्हारा मन प्रविष्ट हो जाएगा। सिर्फ इतना ही कहो : 'उसके'। इशारा करो। अंगुली बता दो। शब्द मत दो।

वह अनाम है; नाम में मत घसीटो।

वह अरूप है; रूप का आग्रह मत करो।

वह निराकार है; तुम कोई आकार मत दो।

'ईश्वर' देते ही आकार मिल जाता है। ईश्वर शब्द आते ही, तुम्हारे मन में आकार उठने शुरू हो जाते हैं।

सोचो थोड़ा : 'उसके प्रति' – कोई आकार उठता है ? उसके प्रति ! तुम पूछोगे, 'किसके प्रति ? यह कौन है 'उस' ? किसकी बात कर रहे हैं ?

'ईश्वर' कहते ही हल हो गया, तुम निश्चिंत हुए, तुमने कहा, समझ गये। जहां तुमने कहा, समझ गये, वहीं नासमझी है। तुम न समझो, बड़ी कृपा होगी। तुम बहुत जल्दी समझ जाते हो, वहीं भूल हो जाती है।

परमात्मा इतना आसान नहीं कि समझ में आ जाए। वस्तुतः उसे समझने के लिए सब समझ छोड़नी पड़ती है। उसे केवल वे ही समझ पाते हैं जो समझ का आग्रह भी छोड़ देते हैं।

इसलिए अच्छा होगा, हम भी कहें, 'उसके प्रति' ! 'उसके' कहते ही बड़ा विराट का द्वार खुलता है। फिर ये पशु-पक्षी, पौधे, आकाश सब सम्मिलित हो जाते हैं। परमात्मा कहते ही, ईश्वर कहते ही, बात कुछ बिगड़ जाती है; भेद खड़ा हो जाता है; स्रष्टा और सृष्टि का भेद हो जाता है। फिर तुम सृष्टि की निंदा में लग जाते हो और स्रष्टा की पूजा में। और कहीं स्रष्टा और सृष्टि अलग नहीं हैं।

स्रष्टा शब्द ठीक नहीं है; सृजन की ऊर्जा है। वही सृष्टि है, वही स्रष्टा है।

'उसके प्रति' कहना बिलकुल ठीक है।

'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा : उसके प्रति परमप्रेमरूप है। न नाम का पता है, न धाम का पता है। इसका क्या अर्थ हुआ ? इसका अर्थ यह हुआ कि प्रेम तो नाम-धाम के बिना नहीं हो सकता, भक्ति हो सकती है। प्रेम के लिए तो नाम-धाम चाहिए।

तुम अगर कहो कि मैं प्रेम में पड़ गया हूं, और कोई पूछे, 'किसके प्रति'; तुम कहो, 'इसका कुछ पता नहीं', तो तुम पागल हो।

प्रेम तो साकार के प्रति है, इसलिए नाम पता है। प्रेम का तो कोई एड्रेस है, पत्र लिखा जा सकता है। परमात्मा का कोई एड्रेस नहीं, पत्र लिखा नहीं जा सकता। परमात्मा के लिए तो बड़ा बावलापन चाहिए। निराकार के प्रति प्रेम ! इसका अर्थ यह हुआ कि आब्जैक्ट, विषय तो खो गया, सब्जैक्ट, केवल तुम्हीं बचे।

जिन्होंने परमात्मा के प्रति प्रेम जाना, उन्होंने वस्तुतः यही जाना कि वहां कोई भी नहीं है, बस प्रेम ही प्रेम है। असल में परमात्मा के प्रति प्रेम कहना ठीक नहीं है, वहां 'प्रति' है ही नहीं। वहां सिर्फ प्रेम का निवेदन है, किसी के प्रति नहीं है; सिर्फ प्रेम का आविर्भाव है; शुद्ध प्रेम की ऊर्जा का उठान है, उत्थान है, ऊर्ध्वगमन है; किसी के प्रति नहीं है। पर कहना होगा तुम्हारी भाषा में।

इसलिए सूत्र कहता है : 'वह उसके प्रति परम प्रेमरूपा है।' परम प्रेम तभी है जब प्रेमी की भी जरूरत न रह जाए। जब तक प्रेमी की जरूरत है, तब तक तुम्हारा प्रेम परम प्रेम नहीं है, निर्भर है। निर्भर है तो शुद्ध नहीं हो सकता। जिससे तुम प्रेम करोगे, वह तुम्हारे प्रेम को आच्छादित करेगा। जिससे तुम प्रेम करोगे, वह तुम्हारे प्रेम को रंग देगा; जिसको तुम प्रेम करोगे वह तुम्हारे प्रेम को ढंग देगा — परम नहीं हो सकता।

ऐसा समझो कि जब भी सोने का आभूषण बनाओगे, तो शुद्ध न रह जाएगा, कुछ-न-कुछ मिलाना पड़ेगा। क्योंकि शुद्ध सोना इतना नाजुक है, उसके आभूषण नहीं बनते। उसमें कुछ मिलाना ही पड़ेगा विजातीय — कुछ तांबा मिलाओ, कुछ और मिलाओ। वह अट्ठारह कैरेट रह जाएगा, बीस कैरेट होगा, बाईस कैरेट होगा; लेकिन शुद्ध नहीं हो सकता, चौबीस कैरेट नहीं हो सकता।

ऐसा समझो कि भक्ति के जब तुम आभूषण बनाते हो तो प्रेम हो जाता है और जब तुम प्रेम के आभूषणों को पिघला लेते हो और शुद्ध कर लेते हो, तब भक्ति हो जाती है। लेकिन जब तुम प्रेम के आभूषण पिघलाते हो तो प्रेमी भी पिघल जाता है। तुम जिसे प्रेम करते थे, वह बचता नहीं। तुम भी नहीं बचते; प्रेम ही बचता है। वे दोनों गए। वह द्वैत गया। और जब प्रेम ही बचता है, तब प्रेम शुद्ध है। न मैं न तू, दोनों खो गये !

जलालुद्दीन रूमी की बड़ी प्रसिद्ध कविता है, मुझे बड़ी प्यारी है। एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर दस्तक देता है। भीतर से आवाज आती है, 'कौन है ?' प्रेमी कहता है, 'मैं हूं तेरा प्रेमी। पहचाना नहीं ? मेरी पगध्वनि विस्मृत हो गयी ! मेरी आवाज पहचान से उतर गयी।' लेकिन भीतर से आवाज आयी, 'अभी तुम इस योग्य नहीं कि द्वार खुलें। अभी तुम अधिकारी नहीं।'

प्रेमी बड़ा हैरान हुआ। क्योंकि प्रेमी तो सदा सोचता है कि अधिकारी है ही। हर व्यक्ति की यही भूल है कि हर व्यक्ति जन्म से ही समझता है कि वह प्रेम का अधिकारी है। इसलिए प्रेम को कोई सीखता ही नहीं, बिना सीखे ही प्रेम करने लगते हैं। और इसलिए फिर प्रेम में इतनी भूलें होती हैं और प्रेम में इतना उपद्रव होता है, और सारा जीवन बर्बाद हो जाता है।

प्रेम संभावना है, सत्य नहीं। प्रेम को प्रगटाना है; वह प्रगट नहीं है। प्रेम कोई मिली हुई संपदा नहीं है; खोजनी है; सृजन करना है उसका।

प्रेमी लौट गया; वर्षों भटकता रहा; प्रेम की खोज करता रहा; प्रेम का अर्थ समझने की चेष्टा करता रहा; ध्यान किया, प्रार्थना की – धीरे-धीरे प्रेम का आविर्भाव हुआ, वह लौटा। फिर उसने दस्तक दी। भीतर से आवाज आयी, 'कौन ?' तो, जलालुद्दीन कहता है कि अब प्रेमी ने कहा : 'तू ही है।' और द्वार खुल गये।

जलालुद्दीन से अगर मेरी कभी मुलाकात हो जाए – कभी-न-कभी हो सकती है, क्योंकि जो रहा है वह कहीं होगा; जो है वह मिटता नहीं – तो उससे मैं कहूं कि कविता पूरी कर दो, यह अधूरी है। अभी भी द्वार खुलने नहीं चाहिए। क्योंकि जहां 'तू' है वहां 'मैं' मिट नहीं सकता।

प्रेमी ने पहले कहा, 'मैं' ! अब उसने बदल लिया पहलू; लेकिन पहलू बदलने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। अब वह कहता है, 'तू' ! लेकिन 'तू' का क्या अर्थ है अगर 'मैं' मिट गया हो ? किसको कहोगे 'तू' ? किस प्रसंग में कहोगे 'तू' ?

'तू' का सारा अर्थ 'मैं' में छिपा है। जब तक 'मैं' हूं, तभी तक 'तू' में अर्थ है। जब 'मैं' ही न रहा तो 'तू' कौन ?

जलालुद्दीन से मैं कहूं कि इसे थोड़ा और आगे बढ़ा, एक दफा और लौटा इस प्रेमी को। जल्दी मत कर। कविता खत्म करने की इतनी जल्दी भी क्या है; और चार लाइन जोड़ी जा सकती हैं। जाने दे वापस। प्रेयसी से कहलवा दे कि कुछ-कुछ तैयार हुआ, लेकिन पूरा नहीं। थोड़ी अधिकारी होने की क्षमता आयी; लेकिन अभी प्रारंभ है। थोड़ा और भटक। थोड़ा और खोज। इतना पहुंचा है तो आगे भी पहुंच ही जाएगा। रास्ता ठीक है, जिस पर चल पड़ा, है, मंजिल अभी नहीं आयी। आधी यात्रा हो गयी है – 'मैं', खो गया; आधी और होनी चाहिए – 'तू' भी खो जाए ! फिर ला, कुछ वर्षों बाद ! फिर लाने की वैसे जरूरत भी नहीं है। फिर तो प्रेयसी वहीं चली आएगी जहां प्रेमी है।

परम प्रेम तब है जब न प्रेमी रहा न प्रेयसी रही, जब द्वंद्व खो गया।

...'उसके प्रति परम प्रेमरूपा है... !'

और तब –

'अभी मैखानए दीदार हर जर्रे में खुलता है
अगर इंसान अपने आप से बेगाना हो जाए।'

और तब कण-कण में उसकी मधुशाला का दरवाजा खुल जाता है ! कण-कण में !

'अभी मैखानए दीदार हर जर्रे में खुलता है।'

कण-कण में उसका मधु बिखर जाता है और कण-कण में उसकी मधुशाला का द्वार खुल जाता

है – 'अगर इंसान अपने आप से बेगाना हो जाए। 'अगर आदमी अपने को भूल जाए, तो परमात्मा को पाने में अड़चन कहां ! अपने से बेगाना हो जाए ! मैं को भूल जाए, मैं को छोड़ दे, मैं को न पकड़े रखे तो उसकी मधुशाला कण-कण में बिखर जाती है ! फिर सभी जगह उसकी ही मस्ती है।

न तुम हो, न वह है; मस्ती ही मस्ती है – वही परम प्रेमरूप है !

'अमृतस्वरूपा च !'

बड़े अदभुत सूत्र हैं। छोटे, बीजरूप !

'और अमृतस्वरूपा है !'

'वह भक्ति परम प्रेमरूपा है और अमृतस्वरूपा है।' क्योंकि जिसने परम प्रेम जाना, फिर उसकी कोई मृत्यु नहीं। क्यों ? क्योंकि वह तो मर ही चुका, अब मरेगा कैसे ? मरना तो तभी तक शेष है जब तक तुम मिटे नहीं, मरे नहीं। मौत तो तभी तक डरायेगी जब तक तुम हो। जिसने अपने को खो दिया उसकी कैसी मौत ! उसने मौत पर विजय पा ली ! वह अमृस्वरूप को उपलब्ध हो गया !

ध्यान रखना : अहंकार की ही मृत्यु होती है, तुम्हारी कभी नहीं होती; कभी हुई नहीं, हो नहीं सकती। तुम शाश्वत हो, सनातन हो; सदा थे, सदा रहोगे। अन्यथा कोई उपाय नहीं है। तुम चाहो भी अपने को मिटा लेना तो नहीं मिटा सकते। मौत होती ही नहीं। लेकिन तुमने एक अपना काल्पनिक आकार, रूप समझ रखा है। उस कल्पना की मौत होती है। तुमने अपनी एक अहंकार की प्रतिमा बना रखी है। परमात्मा से जुदा तुमने अपने को 'मैं' कहने का भाव बना रखा है। वही मैं-भाव मरता है। चूंकि तुम उससे बड़े जुड़े हो, तुम्हें लगता है, 'मैं' मरा ! 'मैं'-भाव छूट जाये ... 'अमृत-स्वरूपा च' ... तब, तब जो मिलता है उसकी कोई मृत्यु नहीं है।

'यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।'

'उस भक्ति को प्राप्तकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है।'

... 'सिद्ध हो जाता है !'

सिद्ध का क्या अर्थ होता है ?

सिद्ध का अर्थ होता है : जो होने को थे वही हो गये। जो बीज की तरह लाये थे वह खिल गया फल की तरह : सिद्ध का अर्थ होता है।

सिद्ध का अर्थ होता है : अब और साधना करने को न रही; अब और कोई साध्य न रहा; अब सभी साधनों के पार आ गये।

सिद्ध का अर्थ होता है : तुमने पा लिया अपने स्वभाव को, अपने स्वरूप को; पहुंच गए उस परम मंदिर में जिसकी तलाश थी, जन्मों-जन्मों अनंत काल तक जिसे खोजा था, जिसके लिए भटके थे।

स्वयं को खोते ही व्यक्ति सिद्ध हो जाता है। इसका अर्थ हुआ कि सारा भटकाव अहंकार का है। तुम इसलिए नहीं भटकते कि कोई तुम्हें और भटका रहा है; तुम इसलिए भटकते हो कि तुम हो। जब तक तुम हो, भटकोगे। तुम मिटे कि पहुंचे। मिटने में ही पहुंच जाना है। होने में ही भटकना है।

...'अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है।'

'जिस भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न द्वेष करता है, न

आसक्त होता है और न उसे विषय-भोगों में उत्साह होता है।'

'इब्तिदा वो थी कि जीने के लिए मरता था मैं
इन्तिहा ये है कि मरने की भी हसरत न रही।

ऐसे भी दिन थे जब जीने के लिए ऐसी आतुरता थी कि मरने को भी तैयार हो जाता था। और आखिरी वक्त — इन्तिहा यह है — और आखिरी बात यह है, पहुंच जाने की बात यह है कि मरने की भी हसरत न रही। जीने की तो बात छोड़ो, मरने की भी आकांक्षा नहीं उठती।

तुमने कभी खयाल किया — तुम्हें मरने की आकांक्षा तभी उठती है जब तुम्हारी जीवन की आकांक्षा पूरी नहीं होती! जहां-जहां अड़चन आती है जीवन की आकांक्षा में, वहीं तुम कहते हो कि मर जाना बेहतर है। मरना तुम चाहते नहीं। जीना तुम चाहते हो अपनी शर्तों पर। शर्त कभी पूरी नहीं होती, तो मरने की तैयारी करने लगते हो।

रूसी कहानी है कि एक लकड़हारा लौट रहा है गट्ठर लेकर सिर पर। जिंदगी-भर लकड़ियां ढोता रहा है, थक गया है।... सभी थक जाते हैं, और सभी लकड़ियां ढो रहे हैं। काटो जंगल से, बेचो बाजार में; फिर दूसरे दिन काटो जंगल से, फिर बेचो बाजार में!... थक गया है। हड्डी-हड्डी जराजीर्ण हो गयी है। उस दिन तो वह बड़ा दुखी है कि इससे भी क्या सार है! 'यही करता रहा, यही करता रहूंगा, और एक दिन मर जाऊंगा और मिट्टी में गिर जाऊंगा।'

तो उसने कहा, 'ऐ मौत, सभी को आती है, एक मुझ ही को छोड़ देती है। मुझे क्यों नहीं आती? उठा ले मुझे!' ऐसे मौत साधारणतः इतना जल्दी सुनती नहीं। पर कहानी है कि मौत ने सुन लिया। मौत आ गयी। लकड़हारा गट्ठर को पटककर दुखी मन से बैठा था। मौत ने आकर कहा, 'मैं आ गयी हूं, बोलो क्या काम है?'

देखा मौत को, हाथ-पैर कंप गये, प्राण कंप गये, सांस रुक गयी। उसने कहा, 'नहीं, कुछ काम नहीं; कोई और दिखायी नहीं पड़ा, गट्ठर उठवाकर सिर पर रखवाना है। कृपा कर और गट्ठर उठाकर सिर पर रख दे।'

तुम जब भी मरने की बात करते हो तब गौर से देखना : वहां जीने की आकांक्षा बड़ी गहरी है। इसलिए जो लोग आत्महत्या करते हैं, तुम चौंकना मत, तुम यह मत सोचना कि इन लोगों ने आत्महत्या कर ली, बात क्या है! आदमी तो जीना चाहता है; ये मर कैसे गये! ये बहुत बुरी तरह जीना चाहते थे, बड़ी प्रगाढ़ता से जीना चाहते थे। इनकी शर्तें बड़ी थीं; जिंदगी पूरी न कर पायी। ये जिंदगी से नाराज हो गये। ये जिंदगी को तो न मिटा पाये; ये जिंदगी को मिटाने के लिए तत्पर हो गये थे — अपने को मिटा लिया। मगर इनकी आत्महत्या में जीवन की आकांक्षा है, जीवेषणा है।

जब तुम जीवन की आकांक्षा छोड़ देते हो, तब तुम चकित हो जाओगे कि उसके साथ-ही-साथ मृत्यु की आकांक्षा भी छूट जाती है। जिस व्यक्ति के जीवन को जीवेषणा से छुटकारा मिल गया; जो अभी राजी है कि मौत आ जाए तो तैयार पाये; जो यह भी नहीं कहता कि कल मुझे जीना है — उसे तुम कभी आत्महत्या करता न पाओगे; हालांकि तुम्हें लगेगा कि इसे तो आत्महत्या कर लेनी चाहिए। जब यह आदमी कहता है कि मुझे जीने का कोई सवाल नहीं है तो इसे आत्महत्या कर लेनी चाहिए।

लेकिन आत्महत्या तभी की जाती है जब जीने की बड़ी गहरी आकांक्षा होती है। यह आत्महत्या भी क्यों करे ? मरने की भी हसरत न रही। उतनी आकांक्षा भी नहीं है अब।

... 'न किसी वस्तु की इच्छा करता है।' क्योंकि जिसने भक्ति को जान लिया, वस्तुएं व्यर्थ हो गयीं।

तुम जब कभी प्रेम को जानते हो तब वस्तुएं व्यर्थ हो जाती हैं।

तुमने कभी खयाल किया – प्रेमी एक-दूसरे को वस्तुओं की भेंट देने लगते हैं! वह प्रेम का लक्षण है। क्यों ? अब वस्तुओं का मोह नहीं रह जाता। वस्तुएं देने योग्य हो जाती हैं; पकड़ रखने योग्य नहीं रह जातीं।

जिसे तुम प्रेम करते हो उसे तुम सब दे देना चाहते हो। इसलिए कंजूस प्रेम नहीं कर पाते। कृपण आदमी के जीवन में कोई प्रेम नहीं हो सकता। क्योंकि कृपणता और प्रेम एक साथ नहीं हो सकते; एक ही घर में उन दोनों का निवास नहीं हो सकता।

तो, ध्यान रखना : कृपण तो प्रेमी भी नहीं हो सकता, भक्त होना तो असंभव है। लेकिन अक्सर तुम कृपणों को भक्त पाओगे। वह भक्ति झूठी है।

निजाम हैदराबाद भक्त आदमी थे। लेकिन मैंने सुना है कि वे दुनिया के सबसे बड़े संपत्तिशाली आदमी थे। इतनी बड़ी संपत्ति और किसी के पास नहीं। लेकिन कृपण तुम ऐसा आदमी न पाओगे। जो टोपी उन्होंने सिंहासन पर बैठते वक्त पहनी थी, वे चालीस साल उसको पहने रहे। उससे बास आती थी। वह इतनी गंदी हो गयी थी। वे उसको धुलने नहीं देते थे, क्योंकि धुलने में कहीं बिगड़ न जाए, कहीं खराब न हो जाए। वे मरते दम तक उसी को पहने रहे। मेहमान सिगरेट अधजली छोड़ जाते तो ऐश-ट्रे से वे इकट्ठी कर लेते थे – खुद पीने के लिए! यह तुम भरोसा न करोगे। और यह आदमी भक्त था! पांच बार इबादत करता था भगवान की। यह असंभव है। यह बिलकुल असंभव है।

यह आदमी किसको धोखा दे रहा है ? अभी तो इस आदमी के जीवन में प्रेम भी नहीं है! जली सिगरेटें, झूठी सिगरेटें इकट्ठी कर रहा है! जैसे ही मेहमान जाएं, जो पहला काम निजाम करते थे, वह यह कि जल्दी से सिगरेटें संभालकर रख लेना, फिर फुर्सत से पिएंगे!

जहां भी तुम कृपण को पाओ, वहां तुम समझ लेना कि अगर वह भगवान की बातें कर रहा हो, प्रेम और भक्ति की बातें कर रहा हो, तो वे किसी गहरे घाव को छिपाने की तरकीबें हैं। कृपण कभी भक्त नहीं हो सकता। कृपण प्रेमी ही नहीं हो पाता। वह पहली ही सीढ़ी नहीं चढ़ता, दूसरी पर तो पहुंचेगा कैसे ?

जब तुम प्रेम करते हो, तत्क्षण तुम्हारी पकड़ वस्तुओं से उठ जाती है, तुम भेंट कर सकते हो, दान दे सकते हो! और देकर तुम प्रसन्न होते हो, उदास नहीं। और जो तुमसे ले लेता है, तुम उसके अनुगृहीत होते हो कि उसने हलका किया। तुम ऐसा नहीं सोचते कि वह तुम्हारा अनुगृहीत होए; क्योंकि अगर उतना भी रह गया तो सौदा हुआ फिर तुम कृपण हो।

हिंदुस्तान में रिवाज है कि ब्राह्मण घर आये तो पहले उसे भेंट दो, दान दो, फिर दक्षिणा भी दो। दक्षिणा का मतलब होता है धन्यवाद कि तुमने भेंट स्वीकार की! दक्षिणा बड़ा अदभुत शब्द है!

पहले दान दो, और चूंकि ब्राह्मण ने स्वीकार किया, वह इनकार भी कर सकता था, फिर दक्षिणा दो कि धन्यभाग कि 'तुमने स्वीकार किया! तुम इनकार कर देते तो मेरा प्रेम अधूरा वापस लौट आता! तुमने द्वार दिया!'

इसलिए प्रेमी अनुगृहीत होता है देकर। भक्त सब लुटाकर अनुगृहीत होता है।

'... किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता है, न द्वेष करता है।' क्योंकि जब इच्छा ही नहीं रही तो द्वेष कहां! द्वेष तो इच्छा की छाया है। जब तक तुम इच्छा करते हो तब तक तुम द्वेष भी करोगे। क्योंकि जो वस्तु तुम चाहते हो, वह अगर किसी और के कब्जे में है तो तुम क्या करोगे? तुम द्वेष करोगे। तुम ईर्ष्या करोगे। तुम जलोगे।

'...न आसक्त होता है।' क्योंकि जब इच्छा ही न रही...।

समझ लो इसको ठीक से। जिसके जीवन में वस्तुओं की इच्छा है, उसका अर्थ है कि उसने प्रेम को नहीं जाना – पहली बात। वह चूक गया। वस्तुएं तो पड़ी रह जाएंगी, प्रेम साथ जाता है। थोड़ा जाता है, भक्ति होती तो पूरा जाता। उतना जाता जितना प्रेम था। जितना खालिस सोना था, साथ चला जाता; शेष विजातीय पड़ा रह जाता।

अगर तुम प्रेम तक नहीं पहुंच पाए तो उसका अर्थ केवल इतना है कि तुम जो भी इकट्ठा कर रहे हो, वह सब मौत छीन लेगी। इसलिए कृपण मौत से डरता है। जीता नहीं और मौत से डरता है। जीने की तैयारी करता है, जीता कभी नहीं। क्योंकि जीने में तो खर्च है। जीने में तो प्रेम लाना पड़ेगा। जीने में तो व्यक्तित्व प्रवेश कर जाएंगे, वस्तुओं की दुनिया समाप्त हो जाएगी। न, वह सिर्फ जीने की तैयारी करता है: मकान बनाता है जिसमें कभी रहेगा; धन इकट्ठा करता है जिसको कभी भोगेगा; शादी करता है, पत्नी, जिससे कभी प्रेम करेगा, फुर्सत से; बच्चे पैदा करता है कि कभी जब समय होगा, सुविधा होगी, तब एक बार आशीर्वाद बरसा देंगे। मगर वह दिन कभी आता नहीं, वह तैयारी ही करता है। एक दिन मौत उसे उठा लेती है। और जो भी उसने इकट्ठा किया था, वह सब पड़ा रह जाता है। इसका भय सताता है।

इसलिए कृपण डरता रहता है और डर के कारण और भी कृपण होता जाता है। मौत के खिलाफ इन्तज़ाम करता है।

मौत के खिलाफ एक ही इंतजाम है – और वह है प्रेम। मौत के खिलाफ दूसरा कोई इंतजाम नहीं है, कोई सुरक्षा नहीं है। कोई बीमा-कंपनी मौत के खिलाफ सुरक्षा नहीं दे सकती। सिर्फ प्रेम ...!

क्योंकि प्रेम के क्षण में तुम वस्तुओं से ऊपर उठते हो और व्यक्तित्व दृष्टि में आता है; व्यक्तियों का संसार शुरू होता है, वस्तुओं का समाप्त होता है। तब वस्तुएं साधनरूप हो जाती हैं। तुम प्रेम के लिए उनका उपयोग करते हो, लेकिन वे तुम्हारा उपयोग नहीं कर पातीं। जब तुम वस्तुओं की इच्छा करते हो तो जो वस्तुएं तुम्हारे पास हैं, उनमें तुम्हारी आसक्ति होती है: कोई छीन न ले! और जो तुम्हारे पास नहीं हैं, दूसरों के पास हैं; उनसे तुम्हारा द्वेष होता है, क्योंकि उनके पास हैं और तुम्हारे पास नहीं हैं। इच्छा के दो पहलू बन जाते हैं फिर: अपने पास जो है उसे पकड़ो, और दूसरे के पास जो है उसे छीनो। तब सारा जीवन एक छीना-झपट, एक आपाधापी, एक दौड़-धूप हो जाती है; हाथ

कुछ भी नहीं लगता। मरते वक्त हाथ खाली होते हैं।

... 'न आसक्त होता है, न उसे विषय-भोगों में उत्साह होता है।'

यह बहुत समझ लेने जैसा है। विषय-भोगों में तुम्हें उत्साह तभी तक है, जब तक तुम्हें परम भोग का स्वाद नहीं मिला। क्षुद्र को भोगता आदमी तभी तक है जब तक विराट के भोग का द्वार नहीं खुला। कंकड़-पत्थर बीनते हो, क्योंकि हीरे-जवाहरातों का पता नहीं। कूड़ा-कर्कट इकट्ठा करते हो, क्योंकि संपत्ति की कोई पहचान नहीं है।

यह लक्षण है भक्त का कि उसे विषय-भोगों में कोई उत्साह नहीं होता। कामी को सिर्फ विषय-भोग में उत्साह होता है, और कोई उत्साह नहीं होता। प्रेमी को विषय-भोग में उत्साह नहीं होता; किन्हीं और चीजों में उत्साह होता है; अगर उनके सहारे काम भी चले तो ठीक।

जैसे समझो : अगर तुम किसी व्यक्ति के प्रेम में हो, तो तुम चाहोगे कि दोनों बैठकर कभी शांत आकाश में तारों को देखो। कामी नहीं चाहेगा यह। कामी कहेगा, 'क्यों फिजूल समय खराब करना? तारों में क्या रखा है? एक दफा देख लिये सदा के लिए देख लिये।' कामी को तो शरीर में रस है, तारों में नहीं, चांद में नहीं, पक्षियों के गीत में नहीं। दो प्रेमी बैठकर सितार सुन सकते हैं, या गीत गा सकते हैं, या दो प्रेमी बैठकर शांत, मौन ध्यान कर सकते हैं, प्रार्थना कर सकते हैं। उस प्रार्थना के माध्यम से ही अगर काम भी जीवन में आ जाए तो उन्हें कोई विरोध नहीं है। लेकिन शुरू उन्होंने प्रार्थना की थी। चांद को देखते-देखते वे करीब आ जाएंऔर एक-दूसरे का हाथ हाथ में ले लें तो उन्हें कुछ विरोध नहीं है; लेकिन देखना उन्होंने चांद को शुरू किया था।

प्रेमियों की आंख एक-दूसरे पर नहीं होती; एक साथ किसी और चीज पर होती है। कामियों की आंख एक-दूसरे पर होती है, और किसी चीज पर नहीं होती। प्रेमी किसी और तीसरी चीज को देखते हैं अपने से पार। प्रेम का कोई गंतव्य है, काम का कोई गंतव्य नहीं है। काम अपने-आप में समाप्त हो जाता है। प्रेम अपने से पार जाता है। जो पार ले जाए, जो अतिक्रमण कराये, जो तुम्हें तुमसे ऊपर देखने की सुविधा दे, वही प्रेम है।

तो, प्रेमी कभी बैठकर सितार सुनेंगे, या कभी गीत गाएंगे, या कभी नाचेंगे, या कभी खुले आकाश के नीचे लेटेंगे, या कभी सागर-तट पर घूमेंगे, कभी सागर के नाद को सुनेंगे। लेकिन प्रेमी, कामी नहीं!

प्रेमी का कुछ लक्ष्य है जो दोनों से पार है। लेकिन बार-बार उस लक्ष्य से वे अपने पर लौट आएंगे। भक्त कभी नहीं लौटता – गया सो गया! वह जब चांद की तरफ गया तो गया, गया, गया, फिर नहीं लौटता। भक्त पीछे लौटना नहीं जानता। कामी तो कहीं जाता ही नहीं; प्रेमी जाता है, लौट-लौट आता है; भक्त गया सो गया।

काम ऐसे है जैसे पिंजरे में बंद पक्षी ; कहीं जाता नहीं, वहीं पिंजरे में ही उछल-कूद करता रहता है, वहीं हलन-चलन करता रहता है। बस पिंजरा उसकी सीमा है।

प्रेम ऐसे है जैसे कबूतर उड़ते हैं आकाश में, फिर अपने घर में वापस लौट आते हैं। पिंजरों में बंद नहीं हैं। न लौटें तो कोई उन्हें बुलाता नहीं हैं ; कोई पकड़ने नहीं जा सकता, अपने से लौट आते हैं। घर के ऊपर एक छत्ता लगा दिया होता है। उड़ते हैं दूर आकाश में, बड़ी दूर की यात्रा

करते हैं, थकते हैं, लौट आते हैं वापस। प्रेमी ऐसे पक्षी हैं जो पिंजरों में बंद नहीं हैं ; जाते हैं दूर अपने से पार, लौट-लौट आते हैं। भक्त ऐसा पक्षी है जो गया सो गया ; उसका लौटने को कोई घर नहीं है। उसका घर सदा आगे है – और आगे ! वह जब तक परमात्मा तक ही न पहुंच जाए तब तक यात्रा जारी रहती है।

'भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न द्वेष करता है, न आसक्त होता है, और न उसे विषय-भोगों में उत्साह होता है।'

'यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति !'

'उस भक्ति को जानकर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है, और आत्माराम हो जाता है।'

...उन्मत्त हो जाता है ! पागल हो जाता है !

भक्ति अपूर्व उन्मत्तता है। आंखें सदा नशे से सरोबोर रहती हैं। मन सदा एक अपूर्व बेहोशी में डूबा होता है। जीवन साधारण गति नहीं रह जाती, नृत्य हो जाता है। जीवन से गद्य खो, पद्य का जन्म होता है। किसी और ही आयाम में प्रवेश हो जाता है।

'वह सिजदा क्या, रहे एहसास जिसमें सिर उठाने का
इबादत और बकदरे होश तौहीने इबादत है।'

भक्त का सिर झुकता है तो फिर उठता नहीं। साधारण लोगों को तो पागल मालूम पड़ेगा। साधारण लोग तो सिर झुकाते ही नहीं, सिर्फ दिखाते हैं कि सिर झुकाते हैं। दिखाते भर हैं ! अहंकार तो अकड़ा खड़ा रहता है, शरीर ही कवायद करता है।

'वह सिजदा क्या, रहे एहसास जिसमें सिर उठाने का !'

लेकिन भक्त ऐसे पागल हैं कि वे इसी को सिजदा कहते हैं, इसी को सिर झुकाना कहते हैं कि जब यह खयाल ही न रह जाए कि अब सिर उठाना भी है ! झुका दिया, उसको उठाना क्या ! मिटा दिया, उसे वापस सम्हालना क्या !

'इबादत और बकदरे होश तौहीने इबादत है !'

और होश क्या बचाना ! जब डूबे तो डूबे ! होशियारी से कहीं कोई डूबता है ? हिसाब रखकर कहीं कोई प्रेम में गया है ? गणित को तो छोड़ जाना पड़ता है पीछे। तर्क के तो पार जाना होता है। बुद्धि तो बेईमानी है, चालाकी है। बुद्धि तो कुशलता है, गणित है। प्रेम इस तरह के गणित को स्वीकार नहीं करता। फिर भक्ति की तो बात ही क्या !

प्रेम में भी गणित टूटने लगता है। प्रेम में भी दो और दो चार नहीं होते सदा, कभी पांच हो जाते हैं, कभी तीन ही रह जाते हैं। प्रेम में हिसाब-किताब की दुनिया डांवांडोल हो जाती है।

भक्ति तो आखिरी शराब है ; फिर उसके आगे कोई नशा नहीं।

'वह सिजदा क्या, रहे एहसास जिसमें सिर उठाने का !'

'इबादत और बकदरे होश'...प्रार्थना और वह भी होश के साथ ! तो भले आदमी, प्रार्थना करने ही क्यों गये ? दुकान ही चलाते। वहीं तुम्हारी पात्रता थी। जब प्रार्थना करने गये तो फिर क्या होश,

क्या हिसाब ?

'इबादत और बकदरे होश तौहीने इबादत है !'

फिर तो तुम प्रार्थना की बेइज्जती कर रहे हो, तौहीन कर रहे हो।

सुना है मैंने, एक फकीर दीवाना हो गया। घर के लोग समझे नहीं। मित्र, प्रियजन पहचाने नहीं। यह बीमारी न थी। यह, जो आदमियों की साधारण बीमारी है, उससे मुक्त हो जाना था। लेकिन, साधारण बीमारी को हम स्वास्थ्य समझते हैं। उन्होंने वैद्य को बुला लिया। वैद्य ने उसकी नब्ज की जांच की। तो कहते हैं, उस फकीर ने कहा :

'चारागर ! मस्त की दुनिया है जमाने से जुदा।
होश में आ कि जहां हम हैं वहां होश नहीं।'
'होश में आ कि जहां हम हैं वहां होश नहीं।'

कहा : 'वैद्य, मस्तों की दुनिया और ही दुनिया है। यह तू क्या कर रहा है ? होश में आ ! क्या नब्ज पकड़ रहा है ?'

मस्तों की एक और ही दुनिया है। दीवाने कुछ और आयाम में जीते हैं। उसे हम समझें कि वह आयाम क्या है।

तुम कहां जीते हो ? तुम वहां जीते हो जहां गणित है, हिसाब है, साफ-सुथरी रेखाएं हैं। तुम ऐसे जीते हो जैसे कोई बगीचा बना लेता है, साफ-सुथरा ! भक्त ऐसे जीता है जैसे कोई जंगल में जीता है : कुछ साफ-सुथरा नहीं है ; आदमी के हाथ की कोई छाप नहीं है, सिर्फ परमात्मा के हस्ताक्षर हैं। वह किसी नियम से नहीं जीता। क्योंकि जिसने प्रेम को पा लिया उसके लिए कोई नियम लागू नहीं होते ; जरूरत नहीं रह जाती।

संत अगस्तीन को कोई पूछता था कि मुझे एक ही नियम बता दो। बहुत नियमों की बात मुझसे मत करो, मैं नासमझ हूं। बहुत आज्ञाएं मुझे मत दो, क्योंकि मैं भूल ही जाऊंगा। तुम मुझे एक ही सार की बात बता दो। मैं शास्त्रों को नहीं जानता हूं।

आदमी बड़ा अनूठा था ! क्योंकि अपने अज्ञान को स्वीकार करने से बड़ी घटना इस जगत में और नहीं। मैं अज्ञानी हूं, उसने कहा, मुझे तुम साधारण-सा सूत्र दे दो, जो मैं पाल लूं, जो मुझे भूले न।

तो, अगस्तीन ने बहुत सोचा। अगस्तीन बोलने में कुशल आदमी था, लेकिन इस आदमी के सामने बोलना खो गया। उसने बहुत सोचा। उसने कहा, 'फिर तुम एक काम करो। प्रेम, बस इतना ही याद रखो, फिर शेष सब अपने से हो जाएगा।'

तुम प्रेम करो — सब नियम पूरे हो जाते हैं। और तुम सब नियम पूरे करो और प्रेम को छोड़ दो, तो तुम सिर्फ धोखे में हो। बिना प्रेम के कोई नियम पूरा नहीं होता। बिना प्रेम के सारी नीति अनीति है और सारा आचरण सिर्फ दुराचरण को छिपाने की व्यवस्था है।

प्रेम के अतिरिक्त कोई आचरण नहीं। और जिसने प्रेम को पा लिया, उसके लिए आचरण के कोई नियम नहीं, कोई अनुशासन नहीं ; उसने परम अनुशासन पा लिया !

'उस भक्ति को जानकर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है।'

यह वर्णन है, यह व्याख्या है, परिभाषा नहीं। उस भक्ति के संबंध में कुछ खबरें दे रहे हैं।

...'उन्मत्त हो जाता है!'

तुमने पागल को देखा है। पागल भी नियम छोड़ देता है, लोक-लाज छोड़ देता है, कुल-मर्यादा छोड़ देता है। पागल से हम आशा भी नहीं रखते। पागल और भक्त में थोड़ी-सी समानता है – थोड़ी-सी! अंतर बड़ा है, थोड़ी-सी समानता है! पागल सामान्य जीवन से नीचे गिर जाता है, भक्त ऊपर उठ जाता है। दोनों सामान्य जीवन के पार हो जाते हैं – एक नीचे गिरकर, दूसरा ऊपर उठकर। पार होने की समानता है।

इसलिए यह सूत्र है कि ध्यान रखना : भक्ति की पहचान उन्मत्तता है। हमने चैतन्य को नाचते देखा है। घर के लोग परेशान थे : पागल हो गया! मीरा को हमने नाचते देखा है सड़कों पर। घर के लोग, प्रियजन, परिवार के लोग – और मीरा शाही खानदान से थी – बड़े दुखी थे। मार डालने की भी चेष्टा की क्योंकि यह बदनामी का कारण थी। यह राजघराने की महिला और राजस्थान में, जहां घूंघट के बाहर आना ही संभव न था, रास्तोंपर नाचने लगी लोक-लाज खोकर! सब मर्यादा, कुल-मर्यादा भूली!... पर मीरा पागल हो गयी है...

कहते हैं, मीरा एक मंदिर में गयी। उस मंदिर में रिवाज था कि कोई स्त्री प्रवेश न कर सकेगी।

बहुत-से मंदिर स्त्रियों के लिए बंद रहे : डरपोकों ने बनवाये होंगे, कायरों ने बनवाये होंगे, व्यभिचारियों ने बनवाये होंगे।

उस मंदिर का जो पुजारी था, वह बाल-ब्रह्मचारी था। और दूर-दूर तक उसकी ख्याति थी। ख्याति उसकी यही थी कि स्त्रियों को वह देखता भी नहीं, मंदिर से बाहर निकलता नहीं। मीरा उस द्वारपर पहुंच गयी। कृष्ण का मंदिर था, वह नाचने लगी। वह भीतर प्रवेश करने लगी। उसे रोका गया। पुजारी घबड़ाया हुआ आया। उसने कहा कि सुनो, यहां स्त्रियों का प्रवेश नहीं है।

मीरा ने गौर से उस पुजारी को देखा और उसने कहा, 'मैंने तो सोचा था कि एक ही पुरुष है। तो दो हैं पुरुष? तुम भी एक पुरुष हो? मैंने तो कृष्ण को ही जाना कि एक पुरुष है, बाकी तो सब प्रकृति है। पुरुष तो एक ही है, बाकी तो सब गोपियां हैं। और कृष्ण के मंदिर में इतने दिन रहकर तुम क्या करते रहे? अभी भी तुम पुरुष हो? तुम्हें मेरी 'स्त्री' दिखायी पड़ती है, लेकिन मुझे तुम्हारा 'पुरुष' दिखायी नहीं पड़ता। रास्ता दो!'

उस दिन जैसे किसी ने नींद से जगाया उस पुजारी को! रास्ता दे दिया। आंखे आंसुओं से भर गयी, पश्चाताप से भर गयीं। यह अबतक का समय व्यर्थ गंवाया!... किसको रोक रहा था?

अब मीरा क्या लोक-लाज रखे, उसे कोई पुरुष दिखायी नहीं पड़ता। तो घूंघट सरक गया है, कपड़ों का हिसाब नहीं रहा है, रास्तों पर नाच रही है!

भक्त उन्मत्त हो जाता है – होगा ही।

ऐसा समझो कि छोटी प्याली में सागर समा जाए तो प्याली पागल न होगी तो और क्या होगी? बूंद में सागर उतर आये तो बूंद कहां हिसाब रख पाएगी, और बूंदों की दुनिया के नियम कैसे बचेंगे? फिर तो सागर की उन्मत्तता होगी। फिर तो सागर की उन्मत्त लहरें होंगी। फिर बूंद चीखे-चिल्लाये और

कहे कि मेरे तो नियम और व्यवस्था थी, वह सब टूटी जा रही है...वह टूटेगी ही।

जब भक्त के जीवन में परमात्मा उतरता है, जब भक्त जगह देता है, द्वार देता है, हटता है मार्ग से और परमात्मा को उतरने देता है, तब एक आंधी आती है, तब एक तूफान उठता है, फिर जो कभी जाता नहीं। फिर भक्त किसी और ही जगत में जीता है। फिर जीता नहीं अपनी तरफ से, परमात्मा ही उसमें जीता है।

'मुहब्बत में गिरां पा हो न इतना खौफे-रहजन से
जो इस रास्ते में लुट जाएं बड़ी तकदीर वाले हैं।'

लुटेरों से घबड़ाओ मत प्रेम के मार्ग पर — लुटेरे सहयोगी हैं।

'जो इस रास्ते में लुट जाएं बड़ी तकदीर वाले हैं!'
हम उसे देखा किये जब तक हमें गफलत रही
पड़ गया आंखों पे परदा होश आ जाने के बाद।'

'हम उसे देखा किये जब तक हमें गफलत रही' — जब तक हम बेहोश रहे, तब तक उसे देखा किये।

'पड़ गया आंखो पे परदा होश आ जाने के बाद' — और जैसे ही होश आया, गणित की दुनिया वापस लौटी, आंख पर परदा पड़ गया।

उन्मत्तता पहला लक्षण है।

'भक्त स्तब्ध हो जाता है!' अवाक! ठिठक जाता है! अब तक जो गति थी, सब रुक जाती है। अब तक जो जाना था, सब व्यर्थ हो जाता है। अब तक जिसको जीवन पहचाना था, तो वह अचानक मृत्यु जैसा हो जाता है। अब तक जो था, सब गिर जाता है, बिखर जाता है; जैसे ताश के पत्तों का घर बनाया था; या जैसे कागज की नाव में सागर के पार जाने की आकांक्षा संजोयी थी! सब ठिठक जाता है, सब गिर जाता है! अवाक! श्वास भी जैसे रुक जाए! चुप हो जाता है। बोल खो जाता है। बोली बंद हो जाती है। समय लगता है वापस बोली की दुनिया को लौटने में। वापस बोलने की योग्यता जुटाने में समय लगता है।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, सात दिन तक चुप बैठे रहे, सात दिन तक अवाक! सब ठहर गया, ठिठक गया! देव घबड़ा गये। देवताओं में परेशानी हो गयी कि कहीं बुद्ध चुप ही न रह जाएं। जब भी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तभी यह संभावना है कि कहीं वह चुप ही न रह जाए; क्योंकि घटना इतनी बड़ी है। कहीं बोल सदा के लिए न खो जाए, कहीं स्तब्धता उसकी जीवन की व्यवस्था न बन जाए! तो कहते हैं, ब्रह्मा और देवता बुद्ध के चरणों में आये, प्रार्थना की कि आप बोलें। आप कुछ भी बोलें। और रुकना खतरनाक है।

सदियों तक हम प्रतीक्षा करते हैं कि कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हो तो खबर लाये उस लोक की। देवता भी तरसते हैं, आदमी ही नहीं।

'अल्लाह! अल्लाह! मंजरे बर्के जमाल
देखती है आंख, लब खामोश है।'

आंख तो देखती है, ओंठ चुप हो जाते हैं। आंख तो पहचानती है, ओंठ बोल नहीं पाते हैं।

'है ऐसी ही बात जो चुप हूं
वर्ना क्या बात कहनी नहीं आती!'

स्तब्धता!

इसे थोड़ा समझें।

योगी मौन साधता है, भक्त को मौन आता है। योगी स्तब्ध होने की चेष्टा करता है, भक्त के ऊपर स्तब्धता बरसती है। योगी को जो चेष्टा से मिलता है, भक्त को निश्चेष्ट प्रसादरूप मिलता है। योगी जो उपाय कर-करके पाता है, भक्त सिर्फ प्रेम में अपने को खोकर पा लेता है।

'जिस भक्ति को जानकर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध, शांत हो जाता है, और आत्माराम हो जाता है।'

आत्माराम शब्द समझने जैसा है।

अब राम और आत्मा में फासला नहीं रह जाता, इसलिए एक शब्द बनाया : आत्माराम! अब यह कहना ठीक नहीं कि आत्मा है, अब यह भी कहना ठीक नहीं कि राम है; अब कुछ ऐसा है जिसमें दोनों हैं और दोनों अलग नहीं हैं, जुदा नहीं हैं — आत्माराम!

'उनसे मिलकर मैं उन्हीं में खो गया
और जो कुछ है, वह आगे राज़ है।

उसके आगे फिर कुछ कहा नहीं जा सकता। फिर वह रहस्य की बात है, राज़ है।

'वाक़्या यह दोनों आलम में रहेगा यादगार
ज़िंदगानी मैंने हासिल की है मर जाने के बाद।'

दोनों लोकों में यह बात याद रहेगी।

'वाक़्या यह दोनों आलम में रहेगा यादगार
ज़िंदगानी मैंने हासिल की है मर जाने के बाद।'

जिन्होंने भी पायी जिंदगी, मरकर ही पायी। जो मरने से डरते रहे, वे चूकते ही चले गये।

दो तरह की मौत है : एक जो अपने से आती है और एक जो तुम स्वीकार कर लेते हो, जो तुम बुला लेते हो। मौत तो अपने से बहुत बार आयी है और तुम मरे हो, फिर-फिर पैदा हुए हो; जिस दिन तुम मौत को अपने हाथ से स्वीकार कर लोगे, स्वेच्छया, उसी दिन मृत्यु समाधि बन जाती है।

जीसस ने कहा है : 'बचाओगे अपने को, मिट जाओगे। मिटा दो — बचाने का बस एक ही उपाय है।'

'जिंदगानी मैंने हासिल की है मर जाने के बाद!'
जैसे ही तुम मिटे कि परमात्मा हुआ!

मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं कि हम परमात्मा को कैसे खोजें। मैं कहता हूं : तुम कृपा करके मत खोजना, नहीं तो परमात्मा बचता ही चला जाएगा। तुम जहां-जहां जाओगे, उसे न पाओगे। क्योंकि तुम्हारी मौजूदगी ही तुम्हारी आंख पर परदा है। परमात्मा नहीं छिपा है। यह तो बात ही मत

पूछो कि परमात्मा को कहां खोजें। इतना ही पूछो कि मेरी आंख पर परदा क्या है कि जो है और दिखायी नहीं पड़ता है। तुम छुपे हो अपने ही परदे में, अपनी ही आड़ में। परमात्मा कहीं खो नहीं गया है। परमात्मा खो नहीं सकता।

एक छोटे स्कूल में एक शिक्षक ने बच्चों से पूछा, 'हाथी कहां पाये जाते हैं ?' एक छोटी लड़की ने खड़े होकर कहा, 'हाथी, पहली बात, खोते ही नहीं। इतने बड़े होते हैं, तो खोएंगे कहां ? पाने का सवाल नहीं है।'

परमात्मा कैसे खो जाएगा ? वही सब कुछ है। उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। तुमने कैसे खोया है — यह पूछो। यह मत पूछो कि परमात्मा कैसे खो गया है।

'तजाहुल से मेरे नामोनिशां के पूछने वाले
वहीं रहता हूं मैं अब तक जहां ढूंढा नहीं तूने।'

अपने भीतर भर हम नहीं ढूंढ़ते। क्योंकि अपने भीतर ढूंढ़ने का एक ही उपाय है : अहंकार मरे तो तुम अपने भीतर जाओ। अहंकार द्वार पर खड़ा है, अटकाता है। वह तुम्हें भीतर नहीं जाने देता। अहंकार की पर्त पिघले तो तुम अपने भीतर जाओ। 'मैं' मिटे तो तुम जानो कि तुम कौन हो।

'वहीं रहता हूं मैं अब तक जहां ढूंढा नहीं तूने!'

जैसे ही तुम छोड़ते हो 'मैं', छोड़ते हो 'तू', 'मैं-तू' का जाल और 'मैं-तू' का भेद मिटता है — एक अभेद की रोशनी, एक अभेद का प्रकाश, जहां न कोई सीमा है, न जहां कोई अलग-अलग है, जहां एक का ही विस्तार है...!

हम लहरें हैं उस सागर की। थोडा भीतर झांकें, सागर हमारे भीतर है। हर लहर के भीतर सागर है। लेकिन लहरें बड़े अहंकार पर चढ़ गयीं हैं। उन्हें यह बात ही नहीं समझ में आती कि अपने भीतर झांकने से उसका पता चल सकता है, जिससे हम पैदा हुए हैं और जिसमें हम खो जाएंगे।

भक्ति मृत्यु की कला है। भक्ति परमात्मा को खोजने की कला नहीं है, अपने को खोने की कला हैं।

मुझे फिर दोहराने दें। भक्ति परमात्मा को खोजने की कला नहीं, अपने को खोने की कला है। खोजने में तो अहंकार बना ही रखता है, खोजनेवाला बना रहता है। खोना है अपने को। और जिसने अपने को खोया उसने उसे पाया। अपने भीतर ही नहीं फिर, फिर सब तरफ वही मालूम पड़ता है। फिर हर पत्ती में उसी की हरियाली है। हर हवा के झोंके में उसी की ताजगी है। चांद-तारों में वही तुम्हारी तरफ झांकता है और तुम्हारे भीतर भी वही चांद-तारों की तरफ झांकता है।

एक बार परदा हटे —
'सुबह फूटी तो आसमां पे तेरे
रंगे रुख्सार की फुहार गिरी।'
रात छायी तो रू-ए आलम पर
तेरी जुल्फों की आवशार गिरी।'

उसीकी जुल्फें हैं रात, ढांक लेती है गहरे अंधेरे में तुम्हें। उसीका रंग-रूप है। उसीकी बहार है। उसीके गीत हैं! उसीकी हरियाली है! उसीका जन्म है, उसीकी मृत्यु है। तुमने व्यर्थ ही अपने को बीच में

खड़ा कर लिया है।

अपने को बीच में खड़ा करने के कारण परमात्मा खो गया है और परमात्मा को तुम जब तक न जान लो, तब तक तुम अपनी ही ऊंचाई और गहराई से वंचित रहोगे।

परमात्मा यानी तुम्हारी आखिरी ऊंचाई ! परमात्मा यानी तुम्हारी आखिरी गहराई ! जब तक तुम उसे न जान लो, तब तक तुम अपनी ही ऊंचाई और गहराई से वंचित रहोगे।

उस मनुष्य से ज्यादा दरिद्र और कोई भी नहीं जिस मनुष्य के जीवन से परमात्मा का भाव खो गया ; जिसके जीवन में परमात्मा की तरफ उठने की आकांक्षा खो गयी है। जो आदमी होने से तृप्त हो गया, उस आदमी से दरिद्र और कोई भी नहीं।

नीत्से ने कहा है : अभागे होंगे वे दिन जब आदमी की प्रत्यंचा पर परमात्मा की तरफ जाने का तीर न चढ़ेगा।

पर बहुत-से ऐसे लोग हैं जिनकी प्रत्यंचा पर परमात्मा की तरफ जानेवाला तीर कभी नहीं चढ़ता। तब वे छिछले रह जाते हैं। तब वे उथले रह जाते हैं। तब उन्हें पता नहीं चल पाता कि जो गहराई बिलकुल उनके ही पैरों के नीचे छिपी थी, और सदा उपलब्ध थी, बस जरा डूबने की बात थी ; और जो ऊंचाई सदा उनके ही सिर पर थी, आसमां की तरह फैली थी, जरा आंखें ऊपर उठाने की बात थी – वे भूल ही जाते हैं।

आदमी ही हो जाने से तृप्त मत हो जाना। उससे बड़ा कोई दुर्भाग्य नहीं है।

'ख्याल जिसमें है, पर तब जमाल का तेरे
उस एक खयाल की रफअत किसी को क्या मालूम !'

और जिसके हृदय में तेरे सौंदर्य का एक छोटा-सा खयाल भी है, परमात्मा के अनंत सौंदर्य का थोड़ा-सा खयाल भी है...।

'खयाल जिसमें है पर तब जमाल का तेरे
उस एक खयाल की रफअत किसी को क्या मालूम !'

उस एक छोटे-से विचार की गहराई किसी को क्या मालूम !

परमात्मा के खयाल की गहराई और ऊंचाई – वही तुम्हारा विस्तार है, विकास है।

इस सदी की सबसे बड़ी तकलीफ यही है कि उसके सौंदर्य का बोध खो गया है। और हम लाख उपाय करते हैं सिद्ध करने के कि वह नहीं हैं। और हमें पता नहीं कि जितना हम सिद्ध कर लेते हैं की वह नहीं है, उतना ही हम अपनी ही ऊंचाइयों और गहराइयों से वंचित हुए जा रहे है।

परमात्मा को भुलाने का अर्थ अपने को भुलाना है। परमात्मा को भूल जाने का अर्थ अपने को भटका लेना है। फिर दिशा खो जाती है। फिर तुम कहीं पहुंचते मालूम नहीं पड़ते। फिर तुम कोल्हू के बैल हो जाते हो, चक्कर लगाते रहते हो।

आंखें खोलो ! थोड़ा हृदय को अपने से ऊपर जाने की सुविधा दो। काम को प्रेम बनाओ। प्रेम को भक्ति बनने दो।

परमात्मा से पहले तृप्त होना ही मत।

पीड़ा होगी बहुत। विरह होगा बहुत। बहुत आंसू पड़ेंगे मार्ग में। पर घबड़ाना मत। क्योंकि जो मिलनेवाला है उसका कोई भी मूल्य नहीं है। हम कुछ भी करें, जिस दिन मिलेगा उस दिन हम जानेंगे, जो हमने किया था वह ना-कुछ था।

तुम्हारे एक-एक आंसू पर हजार-हजार फूल खिलेंगे। और तुम्हारी एक-एक पीड़ा हजार-हजार मंदिरों का द्वार बन जाएगी। घबड़ाना मत। जहां भक्तों के पैर पड़ें, वहां काबा बन जाते हैं।

आज इतना ही।

स्वयं को मिटाने की कला है भक्ति

दूसरा प्रवचन

प्रश्नसार

- 'अथातो' – 'अब' का मोड़-बिंदु हम सामान्य सांसारिक जनों के जीवन में कब आ पाता है?
- भक्ति की यात्रा और सदगुरु के बीच कैसा संबंध है?
- भक्ति साधना भी है और सिद्धि भी। कृपापूर्वक उसके अलग-अलग रूपों को हमें समझाएं।
- मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अधपका फल हूं...?
- क्या भक्ति-साधना के भी कुछ साधन हैं, या वह सर्वथा स्वतः स्फूर्त और सहज है?

पहला प्रश्न : *'अथातो' – 'अब' का मोड़-बिंदु हम सामान्य सांसारिक जनों के जीवन में कब आ पाता है? कृपा कर समझाएं।*

● पहली बात कि सामान्य कोई भी नहीं है। यदि तुम सामान्य होते तो फिर 'अथातो' का बिंदु कभी भी न आ पाता।

सामान्य कोई भी नहीं है, क्योंकि परमात्मा छिपा बैठा है। और परमात्मा से ज्यादा असामान्य क्या होगा ?

असाधारण हो तुम। तुमने समझा होगा, कंकड़-पत्थर हो। और कंकड़-पत्थर तुम नहीं हो। कंकड़-पत्थर हैं ही नहीं अस्तित्व में। अस्तित्व केवल हीरों से बना है।

इसलिए पहली तो इस भ्रांति को तुम अपने मन में जगह मत देना कि तुम सामान्य हो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अहंकार को आरोपित करना। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अपने को दूसरों से असामान्य समझना। मैं यह कह रहा हूं कि असामान्य होना जगत का स्वभाव है। तुम असामान्य हो, ऐसा नहीं; यहां सभी कुछ असामान्य है। यहां सामान्य होने की सुविधा ही नहीं है।

और इस विरोधाभास को ठीक से समझना : क्योंकि तुमने अपने को सामान्य समझ रखा है, इसलिए तुम असामान्य होने की बड़ी चेष्टा करते हो – धन से, पंद से, प्रतिष्ठा से।

अहंकार की खोज ही यही है कि मान तो लिया है तुमने कि तुम सामान्य हो – और सामान्य होने में पीड़ा होती है, चुभता है कांटा, मन राजी नहीं होता – तो तुम असामान्य होने का ढोंग करते हो; जबकि मजा यह है कि तुम असामान्य हो, इसके ढोंग की कोई भी जरूरत नहीं। इसलिए जिन्होंने यह जान लिया कि असामान्य हैं, वे तो अहंकार को छोड़ ही देते हैं तत्क्षण। अब जरूरत ही न रही।

ऐसा समझो कि हीरा है, और हीरे ने समझ रखा है कि कंकड़-पत्थर है। कंकड़-पत्थर समझ रखा है, इसलिए अपने को सजाता है कि हीरा दिखायी पड़े। कंकड़-पत्थर होने को कौन राजी है! तो हीरा अपने को कंकड़-पत्थर मानकर सजाता है, रंग-रोगन करता है कि कोई जान न ले कि मैं कंकड़-पत्थर हूं। लेकिन जिस दिन यह पहचान पाएगा कि मैं हीरा था ही, उसी दिन कंकड़ होने की भ्रांति भी मिट जाएगी और स्वयं को सजाने की आकांक्षा भी मिट जाएगी। वह कंकड़-पत्थर की भ्रांति

ही छाया थी। उस दिन विनम्रता का जन्म होता है।

जिस दिन तुम जानते हो कि तुम असामान्य हो, उसी दिन असामान्य होने की दौड़ मिट जाती है; जिस दिन तुम जान लेते हो कि तुम असाधारण हो... क्योंकि अन्यथा होने का उपाय नहीं।

परमात्मा के हस्ताक्षर हैं तुम पर।
रोएं-रोएं पर उसका गीत लिखा है।
रोएं-रोएं पर उसके हाथों के चिह्न हैं।
क्योंकि उसने ही तुम्हें बनाया है।
वही तुम्हारी धड़कनों में है।
वही तुम्हारी श्वास में है।

सामान्य तुम नहीं हो। अगर सामान्य होते तो धर्म का फिर कोई उपाय नहीं। फिर 'अथातो' का बिंदु कभी आएगा ही नहीं। अगर तुम सामान्य ही होते तो कैसे परमात्मा की ज्योति तुममें प्रज्वलित होगी? तब कैसे तुम जागोगे और कैसे तुम बुद्ध बनोगे? असंभव है फिर।

नहीं, तुम बन पाते हो बुद्ध, तुम जागते हो, तुम समाधिस्थ हो पाते हो – क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव है। जब तुम नहीं जानते थे तब भी तुम वही थे। जानने-भर का फर्क पड़ता है; अस्तित्व तो सदा एकरस है। कोई जान लेता है, कोई बिना जाने जीये जाता है। ज्ञान और अज्ञान का ही भेद है। अस्तित्व में जरा भी भेद नहीं है। तुममें और बुद्ध में रत्ती-भर भेद नहीं है। जहां तक अस्तित्व का संबंध है। लेकिन बुद्ध ने लौटकर अपने को देख लिया, तुमने लौटकर अपने को नहीं देखा। तुम भिखारी बने हो, बुद्ध सम्राट हो गये हैं।

जिसने अपने को लौटकर देख लिया, वह सम्राट हो गया। सम्राट तो सभी थे; कुछ को याद आ गयी, खबर आ गयी, सुराग मिल गया; कुछ को खबर ही न मिली; कुछ भिखारी ही बने हुए सम्राट बनने की चेष्टा में लगे रहे।

तुम जो बनने की चेष्टा कर रहे हो, वह तुम हो। यही तो संदेश है सारे धर्म का।

तुम जिसे खोज रहे हो उसे तुमने कभी खोया नहीं, केवल विस्मरण किया है।

इस पूरे अस्तित्व में मैंने अब तक कोई ऐसी चीज नहीं देखी जो सामान्य हो। घास का पत्ता भी उसी के रंगों से लबालब भरा है। कंकड़-पत्थरों में भी वही सोया है। जागनेवालों में वही जागता है, सोनेवालों में वही सोता है। बुद्धिमानों में वही बुद्धिमान है, अज्ञानियों में वही अज्ञानी है।

इसलिए सामान्य होने का तो कोई उपाय नहीं है। जरा गौर से किसी की भी आंखों में झांकना, या दर्पण के सामने खड़े होकर अपनी ही आंखों में झांकना – और तुम पाओगे कि कोई और झांक रहा है तुम्हारे भीतर से।

तुम तुमसे ज्यादा हो। तुम तुम पर ही समाप्त नहीं। तुम तो केवल सीमा हो तुम्हारे अस्तित्व की। अभी गहरे तुम गये ही नहीं, डुबकी लगायी ही नहीं।

इसलिए पहली बात – सामान्य मानने की भ्रांति में मत पड़ जाना। इसलिए तो उपनिषद कहते हैं: 'तत्त्वमसि श्वेतकेतु! तू वही है श्वेतकेतु।'

जिन्होंने जाना, वे घोषणा करते हैं : 'अहं ब्रह्मास्मि ! मैं वही हूं ! मैं ब्रह्म हूं !'

ये उदघोषणाएं अहंकार की नहीं हैं। ये उदघोषणाएं स्वभाव की हैं। ऐसा है। ऐसा तथ्य है। इसे झुठलाने का कोई उपाय नहीं है। इसे तुम कितना ही भुलाओ, एक-न-एक दिन तुम्हें लौटकर अपने घर आ ही जाना पड़ेगा।

तो, यह तो पहली बात – सामान्य मत मान लेना। क्योंकि जो तुम मान लिये कि सामान्य हो तो खोज बंद हो गयी। तुमने स्वीकार कर लिया कि तुम मात्र मनुष्य हो, कुछ और ज्यादा नहीं, तो और ज्यादा होने का द्वार बंद हो गया, संभावना अवरुद्ध हो गयी।

गंगोत्री पर गंगा कितनी दीन-हीन है। कितनी क्षीणकाय है ! बस जरा-सी धार है। गोमुख से गिर जाती है। अगर गंगा गंगोत्री पर ही अपने को मान ले कि बस, यही हूं, तो कभी की सूख जाएगी, कभी की खो जाएगी किन्हीं भी रेगिस्तानों में। लेकिन गंगोत्री पर जो छोटी-सी गंगा है, बढ़ती जाती है, बड़ी होती जाती है, सागर से मिलती है तो सागर हो जाती है।

तुम अभी गंगोत्री पर हो सकते हो, लेकिन हो गंगा ही। सागर अभी दूर है ... ऐसा तुम्हारी नासमझी में दिखायी पड़ता है। और जब मैं तुममें झांकता हूं तो तुम्हारे भविष्य को भी तुम्हारे पीछे ही खड़ा हुआ पाता हूं। जब मैं तुममें झांकता हूं तो तुम्हारे बीज में मैं उन फूलों को खिलते हुए देखता हूं जिनको तुम कभी खिलते हुए देखोगे।

मेरे लिए तुम परमात्मा हो, उससे कम कोई भी नहीं। उससे कम कोई हो ही नहीं सकता। इसलिए सामान्य की भ्रांति में मत पड़ जाना।

दूसरी बात :

'अथातो' का बिंदु, 'अब' का क्रांति-बिंदु तभी आता है जब तुम जीवन के दुख और पीड़ा को सजग होकर भोगने लगते हो।

अभी भी तुमने बहुत पीड़ा भोगी है, लेकिन सोये-सोये। पीड़ा तो भोगी है, लेकिन इस आशा में कि शायद सुख मिल जाएगा, शायद सुख आता ही होगा ! आज दुखी हो, कोई चिंता नहीं ! किसी तरह बिता लो आज को, बस जरा-सी समय की बात है, कल सब ठीक हो जाएगा ! थोड़ी ही देर की पीड़ा है, कल सब ठीक हो जाएगा – इसी आशा में तुम जीये हो। उसी आशा में छिपकर तुम्हारी पीड़ा का दर्शन तुम्हें नहीं हो पाया। तुमने उसे ओट में छिपा रखा है।

इन परदों को हटाओ।

न कोई कल है, न कोई कल कभी आएगा – बस, आज है, अभी और यहीं ! कल के लिए मत बैठे रहो।

यह 'कल' आज को भुलाने की तरकीब है।

फिर 'कल' के बहुत रूप हैं।

धन इकट्ठा करनेवाला अभी तो जीवन को गंवाता है, सोचता है : कल जब धन इकट्ठा हो जाएगा तब भोग लूंगा सारे सुख।

यश की आकांक्षा में दौड़नेवाला सोचता है : अभी कैसे ? अभी तो दांव पर लगाना है सब।

जब यश मिल जाएगा, भोग लूंगा।

वह यश कभी नहीं मिलता। कोई सिकंदर कभी जीत नहीं पाता। यश की दौड़ अधूरी रह जाती है। धन कभी इतना नहीं हो पाता कि तुम्हारी गरीबी को मिटा दे। इतना हो ही नहीं पाता। ऐसा कभी हो ही नहीं सकता कि धन इतना हो जाए कि तुम्हारी गरीबी मिट जाए। क्योंकि गरीबी एक दृष्टिकोण है; धन से उसके मिटने न मिटने का कोई सवाल नहीं, कोई संबंध नहीं। जितना धन होगा, उतने ही तुम आगे की आकांक्षा, आशा से भर जाओगे।

तुम्हारी आशा सदा छलांग लगाती है — तुमसे आगे। वह हमेशा कल पर खड़ी रहती है। तुम यहां, तुम्हारी आशा सदा कल है। लाख होता है तो दस लाख मांगती है। दस लाख होते हैं तो करोड़ मांगती है। करोड़ होते हैं तो दस करोड़ मांगती है। वह सदा तुमसे आगे छलांग लगा लेती है। तुम उसे कभी भी न पकड़ पाओगे। उसे पकड़ने का कोई उपाय नहीं। लेकिन तुम आज को गंवा दोगे। अभिलाषा को तो कभी तुम पूरा न कर पाओगे, लेकिन आज को गंवा दोगे, जो कि अस्तित्व का सार है।

पीड़ा है तो पीड़ा को देखो। पीड़ा को भोगो, कल से झुठलाओ मत। समझाओ मत। कल के नाम की शामक-दवाएं लेकर सो जाओ मत। आज जागो! पीड़ा है तो पीड़ा सही। भोगो उसे। कांटा है तो चुभने दो। क्योंकि वही चुभन तुम्हें जगाएगी। उसी पीड़ा से तुम उठोगे। उसी पीड़ा में तुम देखोगे कि तुम्हारा जीवन कुछ गलत ढांचे पर दौड़ता है। अब तक तुमने जो भी किया है, कहीं बुनयादी भूल हो गयी है। तुमने अब तक जो भी किया है, परमात्मा को छोड़कर किया है, बाद देकर किया है। अब तक तुमने जो भी किया है, उसमें परमात्मा की कोई जगह नहीं है।

कहते हैं, गैलिलिओ ने सृष्टि-शास्त्र पर एक किताब लिखी, और अपने एक मित्र को दिखाने ले गया। मित्र आस्तिक था। उसने पूरी किताब देख ली, उसमें ईश्वर का कहीं उल्लेख ही न था। सृष्टि-शास्त्र, और स्रष्टा का कोई उल्लेख न था! वैज्ञानिक करते ही नहीं उल्लेख। उसकी कोई जरूरत नहीं मालूम होती।

मित्र ने पूछा, 'और सब ठीक है, व्यवस्थित है, तर्कबद्ध है, समझ में आता है; लेकिन जरा खाली जगह मालूम पड़ती है। ईश्वर का कोई उल्लेख ही नहीं, एक बार भी नहीं! इनकार करने के लिए भी नहीं कि कह देते कि ईश्वर नहीं है। इतना भी नहीं। ईश्वर के बिना सृष्टि थोड़ी अधूरी मालूम पड़ती है।'

गैलिलिओ ने कहा, 'नहीं, उसकी कोई जरूरत ही नहीं। क्योंकि उसके बिना ही मैं सब समझा दिया हूं। उस हाइपोथीसिस की, ईश्वर की परिकल्पना का मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। कोई चीज पूछ लो मुझसे, अगर अनसमझायी रह गयी हो।'

गैलिलिओ ने जैसे सृष्टि-शास्त्र की रचना की, ऐसे ही तुमने अपने जीवन को बनाया है, उसमें ईश्वर के लिए कोई जगह नहीं। उसी खाली जगह में पीड़ा का जन्म होता है। परमात्मा का जो मंदिर है, अगर खाली रहा तो वहीं से पीड़ा का आविर्भाव होता है।

इसे थोड़ा समझने की कोशिश करना।

पीड़ा तब तक रहेगी जब तक तुम्हारे जीवन में परमात्मा की ज्योति जलती नहीं। पीड़ा परमात्मा

का अभाव है। जहां परमात्मा होना चाहिए और नहीं है, वहीं पीड़ा है।

तो, कब तुम्हारे जीवन में 'अथातो' की क्रांति आएगी ? कब तुम कहोगे, 'अब भक्ति की खोज'... ?

तुम कहोगे तभी जब तुम पाओगे कि तुमने अब तक जीवन की जो सार संपदा समझी थी, वह सिवाय पीड़ा के निचोड़ के और कुछ भी नहीं। जिसे तुमने प्रेम जाना, वह प्रेम न था। जिसे तुमने धन जाना वह धन न था। जिसे तुमने 'स्वयं' जाना वह 'स्वयं' न था। तुम्हारा सारा आधार ही गलत है।

अहंकार को तुमने जाना 'स्वयं'। वह तुम न थे। वह पहचान भ्रांत थी। बाहर के धन को तुमने जाना धन, वह धन न था। जो खो जाए वह धन है? मौत जिसे छीन ले वह धन है?

ज्ञानी तुम्हारी संपदा को विपदा कहते हैं, तुम्हारी संपत्ति को विपत्ति कहते हैं।

संपत्ति तो वही है जो मौत भी न छीन पाये। संपत्ति तो वही है जो कोई भी न छीन पाये, जिसकी चोरी न हो सके, जिसे लुटेरे न ले सकें। मौत जिसके सामने हार जाए वही संपत्ति है।

तुमने सुना होगा : मित्र तो वही है जो विपत्ति में काम आ जाए। वह संपत्ति की परिभाषा है। संपत्ति तो वही है जो विपत्ति में काम आ जाए। और मौत से बड़ी विपत्ति कहां है! वही कसौटी है। मौत के द्वार से भी जो चली जाए, नाचती हुई, वही संपत्ति है।

जिसे तुमने धन समझा वह धन नहीं है; वह भीतर की निर्धनता को भुलाने का उपाय है।

जिसे तुमने अहंकार समझा वह तुम नहीं हो; वह अपने आप को ढांक लेने की तरकीब है, अपने अज्ञान को झुठला लेने की तरकीब है।

जिसको तुमने पद समझा वह तुम नहीं हो। जिसको तुमने पद समझा वह तुम्हें तृप्ति न देगा; तुम और अतृप्त होते चले जाओगे।

पद तो वही है जहां विश्राम आ जाए। पद का अर्थ ही होता है: जिस पर विश्राम आ जाए; जिस जगह बैठकर विश्राम आ जाए, राहत मिले; जिस जगह बैठकर यात्रा समाप्त हो जाए; पैरों को चलने की अब और जरूरत न रह जाए।

जहां पद अनावश्यक हो जाए वही जगह पद है, वहीं पहुंच गये; अब कोई जरूरत नहीं कहीं जाने की।

लेकिन ऐसा कोई पद तुमने बाहर जाना है जहां पहुंचकर जाने की यात्रा समाप्त हो जाए ? बाहर ऐसा कोई भी पद नहीं है। सारे संसार को जीतनेवाले सम्राट भी आकांक्षा से वैसे ही विह्वल होते हैं जैसे सड़क के किनारे पड़ा हुआ भिखारी। जरा भी भेद नहीं है।

मैंने सुना है, जापान का एक सम्राट रात को घोड़े पर सवार होकर अपनी राजधानी में चक्कर लगाता था रोज। अनेक बार उसने एक फकीर को देखा, अनेक बार! रात के किसी भी पहर में वह गया, उसने उसे सदा जागते हुए देखा, वृक्ष के नीचे कभी खड़ा, कभी बैठा, लेकिन सदा जागा हुआ।

सम्राट की उत्सुकता बढ़ी कि वह सोता क्यों नहीं! पूछा एक दिन, न रुक सका। पूछा कि उत्सुकता है, उचित तो नहीं, क्योंकि तुम्हारा काम है, तुम जागो सोओ, मेरा क्या लेना-देना; लेकिन रोज यहां से निकलता हूं तो मन में जिज्ञासा घनी होती चली गयी है: क्यों जागते हो ?

तो उस फकीर ने कहा, 'कुछ सम्हाल रहा हूं। कुछ मिल गया है, उसकी रक्षा कर रहा हूं।'

सम्राट ने चारों तरफ देखा फकीर के, वहां तो कुछ भी नहीं है; एक भिक्षापात्र पड़ा है टूटा-फूटा, कुछ चीथड़े कपड़े पड़े हैं। फकीर हंसने लगा, उसने कहा, ' वहां मत देखो, मेरे भीतर देखो। जो मिला है वह भीतर है, वह खो न जाए! जागने में ही उसकी रक्षा है। सोने में उसका खो जाना है। मूर्च्छा में फिर भूल जाऊंगा। होश रखना है!'

सम्राट ने कहा, 'मुझे तो कुछ दिखायी नहीं पड़ता।'

सम्राट की अपनी भाषा है; जो बाहर है, वही उसकी भाषा है। फकीर की अपनी भाषा है; जो भीतर है, वही उसका जगत है। वे अलग यात्रा पर हैं।

सम्राट ने कहा, 'तुम किसी संपत्ति की रक्षा कर रहे हो? तो फिर मुझमें और तुममें फर्क क्या है?'

फकीर ने कहा, 'फर्क ज्यादा नहीं है, थोड़ा ही है — फिर भी है। फर्क इतना है कि तुम बाहर से अमीर हो, मैं बाहर से गरीब हूं; मैं भीतर से अमीर हूं, तुम भीतर से गरीब हो। फर्क इतना ही है। मैं भी गरीब हूं, मैं भी अमीर हूं; तुम भी गरीब हो, तुम भी अमीर हो — इसलिए ज्यादा फर्क नहीं कह सकता; लेकिन तुम बाहर से अमीर हो, मैं भीतर से अमीर हूं। मौत बताएगी। ... मौत ही कसौटी होगी।'

अगर तुम जीवन में झांको अपने और बचते न रहो अपने से ... जैसा मैं देखता हूं, तुम बचते हो; तुम तरकीबें निकालते हो किसी तरह अपने से बचने की; किसी तरह अपने से मुलाकात न हो जाए। हजार ढंग करते हो: कभी शराब पीते हो, कभी सिनेमा जाते हो, कभी भजन-कीर्तन भी करते हो — मगर अपने को भुलाने को। कहीं भी डूब जाओ, किसी तरह अपनी याद न आये! नहीं तो तुम्हारा भजन-कीर्तन भी झूठा है; वह भी शराब है। भजन-कीर्तन तो तभी सच है, जब वह अपने को याद लाने का आधार बने, जगाये तुम्हें, सुलाये न।

जिस दिन तुम जीवन की पीड़ा को देखोगे, आंख भरकर साक्षात करोगे अपना — और दुख ही दुख पाओगे...।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि 'नरक है?' मैं उनसे कहता हूं, 'हद हो गयी! वहीं रहते हो! मुझसे पूछने आते हो?'

वे सोचते हैं कि नरक कहीं पृथ्वी के नीचे पाताल में दबा है। किन्हीं पागलों ने सोचा होगा। किन्हीं नासमझों ने कही होगी यह बात तुमसे।

नरक तो जीवन को एक अंधेरे में जीने का ढंग है। वह तो एक दृष्टिकोण है। वह तो एक शैली है। स्थान से इसका कुछ लेना-देना नहीं है।

स्वर्ग भी जीवन की एक शैली है। वह तुम पर निर्भर है। जागकर जीयो तो जहां हो वहां स्वर्ग! सोये-सोये जीयो तो जहां हो, वहां नरक।

नींद से पैदा होता है नरक।

जरा विचारो, देखो — और तुम पाओगे, सब तरफ तुम नरक से घिरे हो। और नरक की जरूरत है क्या? इतना नरक काफी नहीं कि तुम और नरक की कल्पनाएं करते हो पाताल में?

जिस दिन तुम्हें जीवन का नरक दिखायी पड़ेगा, उसी दिन 'अथातो' का बिंदु आ गया; उसी

दिन तुम कहोगे, 'अब बस हुआ, अब रुकना है'; पैर ठिठक जाएंगे।

जैसे ही तुम ठिठकते हो इस संसार की दौड़ में, वैसे ही क्रांति घटित हो जाती है : एक नया आकाश, जिसका कहीं छोर नहीं, जिसका कहीं प्रारंभ और अंत नहीं, तुम्हें उपलब्ध हो जाता है!

अभी तुम जीते हो बड़ी संकीर्ण गली में : रोज संकरी होती जाती है, रोज संकरी होती जाती है; रोज-रोज तुम बंधते जाते हो, रोज-रोज जंजीरें जकड़ती जाती हैं।

तुम्हारा जीवन ऐसा है जैसे तुम अपना ही कारागृह निर्मित करने में लगे हो। चाहे तुम कारागृह को घर कहो, मंदिर कहो, तुम्हारे नामों से कोई धोखे में आनेवाला नहीं है। बीमारियों को तुम अच्छे सुंदर नाम दे दो, इससे बीमारियों का दंश जाता नहीं।

जागकर पहचानो, देखो!

जिस दिन तुम्हें पीड़ा दिख जाएगी, वहीं पैर ठिठक जाएंगे – लौट पड़ोगे तुम!

वह जो लौटना है, उसको महावीर ने प्रतिक्रमण कहा : अपनी तरफ आना! उसको पतंजलि ने प्रत्याहार कहा : अपनी तरफ आना! उसको जीसस ने 'कनवर्सन' कहा है : क्रांति, रूपांतरण!

अभी तुम्हारे जीवन का ढंग कामवासना है; जब तुम ठिठक जाओगे, तब तुम्हारे जीवन का ढंग प्रेम होगा; जब तुम लौट पड़ोगे, तब भक्ति। अभी जहां जा रहे हो वहां काम की खोज है, वासना की खोज है।

कामना ही संसार है।

संसार तुमसे कहीं बाहर नहीं है। मंदिर, मस्जिद में छिपकर तुम संसार से न बच सकोगे; हिमालय की गुफाओं में बैठकर भी तुम संसार से न बच सकोगे – क्योंकि संसार तुम्हारी कामना में है! वहां भी बैठकर तुम कामना ही करोगे।

लोग परमात्मा के सामने बैठकर भी मांगे चले जाते हैं। मांग रुकती ही नहीं। मंदिर में खड़े हैं, लेकिन राम के उन्मुख नहीं होते। मूर्ति होगी सामने, लेकिन वहां भी मांगे चले जाते हैं।

एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा कि 'अब मुझे भरोसा आ गया। लड़के को नौकरी न मिलती थी। परमात्मा से प्रार्थना की और तीन सप्ताह का समय दे दिया कि अगर तीन सप्ताह में मिल गयी तो सदा के लिए भरोसा हो जाएगा; अगर न मिली तो बात खत्म; फिर तुम नहीं हो!' और उस आदमी ने कहा, 'मिल गयी। अब तो रोज पूजा करता हूं, प्रार्थना भी करता हूं। इसलिए आपके पास आया हूं।'

मैंने कहा, 'संयोग से मिल गयी होगी। क्योंकि परमात्मा तुम्हारी धमकी से डर जाए कि तीन सप्ताह बस, तुम्हारा अल्टीमेटम! तो तुम पागल हुए हो! और यह बड़ा खतरनाक विश्वास है जो तुमने पैदा किया है; यह किसी भी दिन टूटेगा।'

मैंने कहा, 'एक बार और कोशिश करो।'

उसने कहा, 'क्या मतलब?'

मैंने कहा, 'एकाध और कोशिश करो। तुम्हारी पत्नी बीमार रहती है...। जब कुंजी ही मिल गयी तो पत्नी को भी ठीक कर लो।'

उसने कहा, 'ठीक कहा आपने।'

कल ही वह गया। दे आया अल्टीमेटम फिर। तीन सप्ताह बाद आया, बहुत उदास था। उसने कहा, 'खराब कर दिया आपने सब। कुछ फायदा नहीं हुआ; तबीयत और खराब हो गयी। भरोसा डगमगा गया मेरा।'

तुम्हारा भरोसा भी तुम्हारी मांग पर ही खड़ा है : परमात्मा कुछ दे तो परमात्मा है! परमात्मा तुम्हारा अनुसरण करे तो परमात्मा है! तुम जो मांगो, पूरा करे तो परमात्मा है! परमात्मा तुम्हारी सेवा में रत रहे तो परमात्मा है! परमात्मा मालिक नहीं है; मालिक तुम हो! और अगर उसे तुम्हारी पूजा-प्रार्थना चाहनी हो तो बदले में सेवा करता रहे तुम्हारी!

तुम्हारी प्रार्थना भी झूठी है; वह भी कामना है; वहां भी संसार ही है।

जब तक तुम बाहर कुछ मांग रहे हो, जब तक तुम सोचते हो बाहर कुछ मिल जाएगा, जिससे तृप्ति होगी, जिससे मन चैन से भर जाएगा, राहत की सांस आएगी, आनंद के क्षण उठेंगे – अगर बाहर तुम ऐसा मांगते चले जा रहे हो, तो अभी तुम नरक से बाहर नहीं जा सकते।

बाहर जाना नरक में जाना है। बाहर जाती हुई चेतना नरक के बाहर नहीं जा सकती।

ठिठकता है कोई देखकर जीवन की व्यर्थता, जीवन का असार, निष्फलता, हाथ में सिवाय पीड़ा के और कोई संग्रह नहीं, हृदय में सिवाय आंसुओं के और कुछ दिखायी नहीं पड़ता, जीवन बिलकुल अंधकारपूर्ण है, नाव डूबी, अब डूबी तब डूबी जैसी हालत है – ऐसे क्षण में जब कोई ठिठक जाता है, उस ठिठकने के क्षण में प्रेम का आविर्भाव होता है, कामना गयी! अब तुम मांगते नहीं, अब तुम देने को उत्सुक हो जाते हो।

प्रेम देता है, काम मांगता है। जब तक मांग है तब तक समझना, काम; जब देना शुरू हो जाए तब प्रेम।

क्योंकि तुम मांगते इसलिए हो कि मांगने से बढ़ेगी संपत्ति और सुख आयेगा। ठिठका हुआ व्यक्ति देना शुरू करता है : 'मांगकर देख लिया, सुख न आया, दुख आया; अब जरा उलटा करके देख लें।' देना शुरू करता है और पाता है कि सुख के हलके झोंके आने लगे; बजने लगी वीणा, कहीं दूर यद्यपि, बहुत दूर यद्यपि – पर बजने लगी, स्वर सुनायी पड़ने लगे, कोई नया लोक शुरू हुआ।

यह तो ठिठके हुए आदमी की बात है। वह देने लगता है, बांटने लगता है – और जैसे-जैसे बांटता है, वैसे-वैसे स्वर साफ होते हैं और तब चौंककर उसे पता चलता है : 'ये स्वर मेरे ही भीतर से आते हैं! अब तक सोचा था सुगंध बाहर है; यह मेरे भीतर से आती है! कस्तूरी कुडंल बसै! यह मेरे ही नाफे में बसी है।' तब लौटना शुरू होता है। 'अथातो!' आ गया बिंदु : अब! और तभी तुम नारद के इन भक्ति-सूत्रों को समझ पाओगे। इसके पहले, जो बाहर जा रहा है, उसके लिए ये नहीं हैं। जो ठिठका है उसके लिए भी ये नहीं हैं। जो लौट पड़ा है, उसके लिए ये हैं। यह पहली बात।

दूसरी बात : जब तक तुम सोचते हो कि तुम ही अपने सुख को ले आओगे, तब तक 'अथातो' का बिंदु नहीं आता। तुम न ला पाओगे अपने सुख को, तुम ही तो सारा दुख ले आये हो। यह तुम्हारे ही उपक्रम का फल है। यह तुम्हारे ही श्रम की निष्पत्ति है। पुरानी भाषा में कहें तो कहते हैं, यह तुम्हारे

ही कर्मों का फल है। यह पुरानी भाषा है; बात यही है। यह तुमने ही किया है। यह जो दुख तुम्हें घेरे है, यह तुमने ही आमंत्रण दिया था। ये मेहमान बिन बुलाये नहीं आ गये हैं; यह तुमने निमंत्रण भेजे थे। तुमने बड़ा आग्रह किया था कि आओ। यद्यपि तुमने कुछ और सोचकर बुलाया था। तुम्हारे समझने में भूल थी। बुलाये थे मित्र, आ गये हैं शत्रु। बुलाया था सुख, आ गया है दुख। आग्रह किया था फूलों के लिए, आ गये हैं कांटे – क्योंकि कांटे दूर से फूल जैसे दिखायी पड़ते हैं; क्योंकि शत्रु दूर से मित्र जैसे दिखायी पड़ते हैं।

एक छोटा बच्चा अपने साथियों के साथ यात्रा पर गया था। वहां से उसने पत्र लिखा अपनी मां को कि 'पहले दिन सब अपरिचित थे, मैं किसी को जानता न था। दूसरे दिन, सभी मित्र हो गये, क्योंकि पहचान हो गयी। तीसरे दिन सभी शत्रु हो गये!'

यह तीन दिन की कथा पूरी जिंदगी की कथा है। पहले दिन जब तुम देखते हो आंख खोल कर : कोई परिचित नहीं, अनजान जगत है, अपरिचित लोगों से घिरा हुआ है सब, अजनबी और अजनबी! फिर सभी मित्र मालूम होते हैं। फिर शत्रुता शुरू हो जाती है। दूर से जो मित्र मालूम पड़ता है, जैसे-जैसे पास आते हैं वैसे-वैसे शत्रुता शुरू हो जाती है। दूर के ढोल हैं बड़े सुहावने, पास आने पर बिलकुल व्यर्थ हो जाते हैं।

...तुमने ही निमंत्रण दिये थे; हो सकता है किन्हीं पिछले जन्मों में दिये हों, अब तुम बिलकुल भूल ही गये होओ, लेकिन तुमने ही बुलाया था। जो तुम्हारे पास आ गया है वह तुम्हारा कृत्य है। और तुम्हारे कृत्य से यह दुख बढ़ता जाएगा, पर्त-दर-पर्त तुम्हारे चारों तरफ इकट्ठा होता जाएगा। यह तुम्हारे गले को घोंट रहा है।

तुम्हारे किये दुख होता है। जब तुम ठिठकोगे, तब तुम अचानक पाओगे : 'करने की कोई जरूरत ही नहीं।' सब अनकिये, तुम्हारे बिन किये हो रहा है।

प्रेम के क्षण में जीवन स्व-स्फूर्त मालूम होता है : सब अपने-आप हो रहा है। पैदा होना, जवान होना, बूढ़े हो जाना, जन्म-मौत, सब अपने-आप हो रहा है।

लेकिन जब तुम लौटोगे, भक्ति का आयाम शुरू होगा, तब तुम पाओगे कि अपने-आप नहीं हो रहा है। तुम करनेवाले नहीं हो, अपने-आप भी नहीं हो रहा है। जीवन के रोएं-रोएं में छिपा है कोई प्रयोजन। जीवन के कण-कण में छिपी है कोई नियति; कहो, छिपा है कोई परमात्मा! उससे हो रहा है।

कामवासना में लगा आदमी अपने पर भरोसा करता है। प्रेम में खड़े आदमी का अपने पर भरोसा डगमगा जाता है। भक्ति में जाते व्यक्ति का भरोसा अपने से बिलकुल ही शून्य हो जाता है, परमात्मा पर हो जाता है।

सुना है मैंने, जोश की बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियां हैं :

'खुदा को सौंप दो ऐ 'जोश' पुश्तारा गुनाहों का
चलोगे अपने सर पे रख के यह बारे-गरां कब तक!'

यह भारी बोझ अपने सिर पर रखकर कब तक चलोगे? दे दो परमात्मा को। तुम नाहक ही

परेशान हो!

मैंने सुना है, एक आदमी को, उसकी पचहत्तरवीं वर्ष-गांठ थी, तो मित्रों ने कहा, 'कुछ नया अनुभव तुम्हारे लिए...? तो ऐसी कोई चीज तुमने जीवन में न की हो...?' उसने कहा, 'हवाई जहाज में कभी नहीं बैठा।' तो उन्होंने कहा, 'चलो।' उसे हवाई जहाज में बिठलाकर आधा घंटा शहर का चक्कर लगवाया। आधे घंटे बाद जब वह उतरा, तो जो पायलट उसे उड़ा रहा था, उसने पूछा, 'आप प्रसन्न तो हैं ? परेशान तो नहीं हुए ? क्योंकि पहली ही उड़ान थी।' उसने कहा, 'नहीं, परेशान तो नहीं हुआ; पर डर के कारण मैंने अपना पूरा वजन जहाज पर नहीं रखा। डर के मारे अपना पूरा वजन जहाज पर नहीं रखा कि कहीं वजन के कारण कोई उपद्रव न हो जाए।'

अब हवाई जहाज में तुम बैठो, वजन पूरा रखो या न रखो, वजन पूरा हवाई जहाज पर है।

सुना है मैंने, एक सम्राट अपने रथ से लौटता था, जंगल से महल की तरफ, एक गरीब आदमी को उसने राह पर बड़ा बोझ ढोते हुए देखा। दया आ गयी। कहा, 'आ, बैठ जा तू भी रथ में। कहां तुझे उतरना है, छोड़ देंगे।' वह बैठ तो गया रथ में, लेकिन पोटली उसने सिर की सिर पर ही रखी रही। सम्राट ने कहा, 'पोटली नीचे क्यों नहीं रख देता ?' उसने कहा, 'इतनी ही आपकी कृपा क्या कम है कि मुझे बिठा लिया! अब पोटली का वजन भी आप पर छोड़ूं, नहीं-नहीं, यह मुझसे न होगा।'

लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम रथ में बैठकर पोटली नीचे रखो रथ पर या सिर पर रखो, वजन तो रथ पर ही है।

जो जरा-से लौटते हैं अपनी तरफ, उनको पता चलता है कि हम नाहक ही परेशान थे; करनेवाला कर रहा था; जो होनेवाला था हो रहा था; हम व्यर्थ ही बीच में उछल-कूद कर रहे थे!

तब तुम समझना कि अब तुम्हारे भीतर भक्ति की शुरुआत हुई।

भक्ति की शुरुआत का अर्थ है कि न मैं करनेवाला हूं, न मैं कर सकता हूं — मैं हूं ही नहीं, वही है! और तब तुम्हारे मन में उसके प्रति अनन्य प्रेम का जन्म होता है।

तुम्हारा सारा बोझ वही ढो रहा है।

और तब तो भक्त ऐसी घड़ी में आ जाता है कि वह जानता है कि भक्ति भी करने का सवाल नहीं, प्रार्थना भी मेरे किये न होगी। वही प्रार्थना करेगा; मुझसे तो होगी। अब तो उसकी तरफ जाना भी मुझसे न होगा; वही चलेगा मेरे पैरों से तो ही पहुंच पाऊंगा।

'उठता नहीं है अब तो कदम मुझ गरीब का
मंजिल को कह दो, दौड़ के ले मुझको राह में।'

धीरे-धीरे उसे अपनी असहाय अवस्था का बोध होता है कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं। अब तो मुझ गरीब का पैर भी नहीं उठता! वही उठाये तो उठता है। और अब भय भी क्या, डर भी क्या! अगर उसे पहुंचना ही है तो मंजिल खुद ही आकर बीच राह में मुझे ले लेगी।

इसलिए भक्त किनारे को नहीं मांगता। वह तो कहता है, 'तू अगर मंझधार में भी डुबा दे तो वही किनारा है।' उसने अपना सारा बोझ उसी को दे दिया।

कृष्ण ने गीता में अर्जुन को बस इतनी ही बात समझायी है कि तू सारा बोझ परमात्मा पर छोड़

दे। तू आराम से बैठ हवाई जहाज में, नाहक अपने बोझ को मत उठाये रख। रथ में बैठ ही गया है, सिर की पोटली भी नीचे रख दे। निमित्त-मात्र हो जा!

दूसरा प्रश्न : कल का एक सूत्र था कि भक्ति उसके प्रति प्रेमरूपा है। कृपया समझाएं कि भक्ति की यात्रा और सदगुरु के बीच कैसा संबंध है।

● गुरु का अर्थ है : सोये हुओं में जागा हुआ व्यक्ति; अंधों में आंखवाला। बस इतना ही। तुम्हें जो स्मरण नहीं आ रहा है, उसे स्मरण आ गया है। तुम जिसे पीठ की तरफ छिपाये हो, वह उसके आमने-सामने खड़ा हो गया है। उसने अपनी आंखों में झांक लिया; उसने अपने हृदय में टटोल लिया — और उसने परमात्मा को छिपे वहां पाया है।

गुरु का अर्थ है: जो मिट गया और अब केवल परमात्मा है वहां।

परमात्मा तुम्हारे लिए बड़ी दूर का शब्द है। अनंत फासला मालूम होता है। तुम्हारी नींद में और परमात्मा में अनंत फासला मालूम होता है। होगा ही, क्योंकि परमात्मा जागे हुए चैतन्य का अनुभव है। इसलिए तो तुम मानते हो तो भी मान नहीं पाते। कहते हो, मानते हो, फिर भी भीतर संदेह खड़ा रहता है। लाख दबाते हो, छिपाते हो; मगर तुम जानते हो कि कहीं तो संदेह है : 'परमात्मा हो सकता है!'

मैंने सुना है कि एक आदमी की कार बिगड़ गयी थी। चाक एक बाहर आ गया था। और वह बड़ी गालियां बक रहा था, क्रोध में था। और गालियां तुम्हें सीखनी हों तो ड्राइवरों से सीखो, और कोई उतना कुशल नहीं। अकेला था। बीच जंगल में गाड़ी बिगड़ गयी है और वह गालियां दे रहा है, दिलभर के गालियां दे रहा है। एक दूसरी कार आकर रुकी। एक पादरी, एक ईसाई पुरोहित उसमें था, वह उतरा। उसने देखा कि इतनी गालियां बक रहा है — और गालियां साधारण नहीं, परमात्मा तक को दे रहा है! तो उसने कहा, 'रुक भाई, यह उचित नहीं है। परमात्मा पर भरोसा कर। सब हो जाता है।'

उस आदमी ने कहा, 'कैसे सब हो जाता है? क्या यह चाक लग जाएगा जाकर ?'

पादरी थोड़ा डरा, पर अब लौट भी नहीं सकता था अपनी बात से, तो उसने कहा, 'क्यों नहीं लग जाएगा? भरोसा हो तो सब हो जाता है।'

तो उसने कहा, 'तुम ही प्रार्थना करो।'

अब पादरी और भी मुश्किल में पड़ा, क्योंकि वह भी जानता है कि 'परमात्मा है कहां ? इतना न सोचा था कि बात आगे बढ़ जाएगी। अब यह आदमी सामने खड़ा है और अब पीछे लौटना भी कायरता मालूम होती है।' उसने सोचा कि एक कोशिश करने में क्या हर्ज है; यहां कोई और है भी नहीं इस जंगल में देखनेवाला; पराजय भी होगी तो बस इस एक आदमी के सामने। तो उसने प्रार्थना की — और हैरानी की बात : चाक उचका और गाड़ी में लग गया! तो उस पादरी ने आंख खोली, उस चाक को उचकते देखा तो वह चिल्लाया, 'हे भगवान, क्या तुम सच में हो?'

जिंदगीभर वह लोगों को परमात्मा के संबंध में समझा रहा था, और भरोसा नहीं है! धंधा है,

व्यवसाय है। तो कोई पूजा का व्यवसाय करता है, कोई परमात्मा का व्यवसाय करता है। भरोसा किसी को नहीं है।

आस्तिक से आस्तिक, जिसको तुम कहते हो, वह भी भीतर संदेह को लिये बैठा है। इसलिए आस्तिक डरता है कि नास्तिक की बात कहीं कान में न पड़ जाए। असली आस्तिक डरेगा? शास्त्रों में लिखा है : 'नास्तिकों की बात मत सुनना।' ये शास्त्र आस्तिकों ने न लिखे होंगे — ये उन्होंने लिखे होंगे जिनके हृदय में संदेह का कीड़ा अभी भी है। अन्यथा डर क्या है? अगर तुम्हारे भीतर आस्था परिपूर्ण है, अगर तुम्हारा संदेह सच में ही समाप्त हो गया है, जल गया है, तो नास्तिक की बात सुनने में भय क्या है? जरूर सुनना। शायद तुम्हारे शांत मौन श्रवण को अनुभव करके नास्तिक के जीवन में कोई फर्क हो जाए। तुम्हारे जीवन में तो कोई अंतर पड़नेवाला नहीं; शायद तुम्हारे ईश्वर की अनन्य आस्था नास्तिक को भी संक्रामक हो जाए! आ जाने देना पास।

लेकिन आस्तिक डरते हैं, भयभीत होते हैं। डर अपने ही संदेह का है, कोई और तुम्हें डरा नहीं सकता।

तुम भयभीत हो, डरे हुए हो। तुम्हें पता है कि अगर बाहर से कोई संदेह की बात करे तो तुम्हारे भीतर का संदेह, जो सो गया है, जग जाएगा, छिपा है, प्रगट हो जाएगा; बाहर का संदेह तुम्हारे भीतर के संदेह को पुकार दे देगा, प्रतिसंवेदना शुरू हो जाएगी, तुम भीतर कंपने लगोगे।

परमात्मा दूर है बहुत तुम्हारे लिए, नींद में बड़ा दूर है! वस्तुतः दूर नहीं है; तुम्हारी नींद का ही फासला है। परमात्मा के लिए तुम दूर नहीं हो, तुम्हारे लिए परमात्मा दूर है — इसे ध्यान रखना।

जैसे तुम सोये हो, सूरज निकल आया, सूरज की किरणें तुम्हारे ऊपर बरस रही हैं, लेकिन तुम सोये हो : सूरज के लिए तुम दूर नहीं हो, तुम्हारे ऊपर बरस रहा है, तुम्हारे रोएं-रोएं को जगाने की चेष्टा कर रहा है; लेकिन तुम गहरी नींद में हो, तुम्हारे लिए सूरज तो बहुत दूर है, पता ही नहीं कि है भी या नहीं। तुम तो गहन अंधकार में खोये हो।

ऐसी घड़ियों में जब परमात्मा बहुत दूर मालूम पड़ता है, सदगुरु उपयोगी हो सकता है : क्योंकि सदगुरु तुम जैसा है, तुम्हारे पास है, मनुष्य जैसा मनुष्य है, हड्डी-मांस-मज्जा का है — और फिर भी तुमसे कुछ ज्यादा है; और फिर भी तुमने जो नहीं जाना उसने जाना है; तुम जो कल होओगे उसकी वह खबर है। वह तुम्हारा भविष्य है। वह तुम्हारी संभावनाओं का द्वार है।

परमात्मा बहुत दूर है; गुरु बहुत पास है। इसलिए परमात्मा के पास गुरु के बिना शायद ही कभी कोई पहुंच पाता है। गुरु ऐसा झरोखा है जिससे दूर के आकाश को तुम देख पाओगे। झरोखा पास है।

कमरे में तुम बैठे हो, तुमसे मैं आकाश की बातें करूं और आकाश के अनंत सौंदर्य की चर्चा करूं — व्यर्थ है। तुमसे सूरज की किरणों की कहानी कहूं — व्यर्थ है। तुमसे फूलों की वार्ता करूं — व्यर्थ है। लेकिन एक झरोखा खोल दूं, एक खिड़की खोल दूं जो बंद थी — तुम अपनी ही जगह हो तुममें कोई फर्क नहीं हुआ, तुम उठे भी नहीं अपनी जगह से, तुम अपनी ही कोच पर आराम कर रहे हो, तुमने कुछ भी फर्क न किया — लेकिन एक झरोखा खुल गया : दूर का आकाश अब उतना दूर नहीं!

एक कोना आकाश का दिखायी पड़ने लगा — और कोने को जिसने पकड़ लिया वह पूरे को पकड़ ही लेगा। थोड़ी फूलों की गंध भी भीतर आने लगी। थोड़ी-सी किरणें भी आ गयीं और नाचने लगीं फर्श पर। तुम वहीं के वहीं बैठे हो, तुममें कोई फर्क नहीं हुआ; लेकिन एक झरोखा तुम्हारे पास खुल गया!

गुरु एक झरोखा है। तुम वही हो, लेकिन गुरु के पास होते ही उस झरोखे से तुम बड़े आकाश को, विराट आकाश को झांक पाओगे।

गुरु जैसे बूंद है, लेकिन बूंद का स्वाद तो वही है जो सागर का है : वैसा ही नमकीन।

बुद्ध कहा करते थे कि बूंद चख लो एक सागर की, तुमने सारा सागर चख लिया।

गुरु एक बूंद है, लेकिन ऐसी बूंद जिसने पहचान लिया अपने भीतर छिपे सागर को। तुम भी बूंद हो, लेकिन ऐसी बूंद जिसे अपने भीतर छिपे सागर की कोई खबर नहीं। बूंद और बूंद की थोड़ी बात हो सकती है। ऐसे तो गुरु और शिष्य के बीच भी वार्ता बहुत मुश्किल है, तो खोजी और परमात्मा के बीच तो वार्ता असंभव है।

गुरु पर रुकना नहीं है; गुरु से गुजर जाना है। गुरु तो द्वार है; उससे तो पार हो जाना है। इसलिए सदगुरु और गुरु में यही फर्क है।

सदगुरु का अर्थ है : जो तुम्हें परमात्मा की तरफ ले जाए; इतना ही नहीं जो तुम्हें तुमसे मुक्त करे और जो तुम्हें अपने से भी मुक्त करे।

वही गुरु सदगुरु है जो तुम्हें अपने से भी मुक्त होना सिखाये, नहीं तो आखिर में गुरु पकड़ जाएगा। कहीं ऐसा न हो कि कोच से तो तुम उठ आओ और खिड़की के चौखटे को पकड़ लो। तब तुम चूक गये। तो जो तुम्हें अपने को पकड़ाने की चेष्टा में लगा हो उससे सावधान रहना।

गुरु पहले तुमसे तुम्हारा संसार, तुम्हारे गलत दृष्टिकोण छीन लेगा। और जब वे छिन गये, तो आखिरी चीज जो वह छीनेगा, वह स्वयं को तुमसे छीन लेगा, ताकि तुम खुले आकाश में प्रवेश पा जाओ।

और असली सवाल झुकने की कला सीखने का है। गुरु के पास तुम झुकने की कला सीख लोगे। जिस दिन तुम्हें झुकना आ गया, बस सब आ गया। असली सवाल मिटने की कला सीखने का है। गुरु के पास तुम मिटना सीख लोगे। जिस दिन मिटना आ गया, सब आ गया।

> 'कुछ जज्ब-ए-सादिक हो, कुछ इखलासो-इरादत
> इससे हमें क्या बहस वह बुत है कि खुदा है।'

'कुछ जज्बए सादिक हो' — कुछ सत्य भावना हो, कुछ प्रेम का आविर्भाव हो; 'कुछ इखलासो-इरादत' — कुछ हमारे इरादों में, हमारी भावनाओं में, प्रेम के अंकुर का अंकुरण हो; 'इससे हमें क्या बहस, वह बुत है कि खुदा है' — वह पत्थर की मूर्ति हो कि परमात्मा हो, इससे क्या बहस! थोड़ा प्रेम करना आ जाए, थोड़ा स्वाद लग जाए अनंत का, थोड़ी भावना की पवित्रता आ जाए, थोड़ी झुकने की कला समझ में आ जाए।

बहस नासमझ करते हैं। समझदार समय का उपयोग कर लेते हैं और जीवन की कोई गहराई सीख लेते हैं।

यही फर्क है विद्यार्थी और शिष्य में।

विद्यार्थी बहस में उत्सुक है, शिष्य जीवन को बदलने में। विद्यार्थी कुछ ज्ञान की सूचनाएं इकट्ठी करने चला आया है, शिष्य अस्तित्व को बदलने आया है। विद्यार्थी दांव पर कुछ भी नहीं लगाता। विद्यार्थी तो सिर्फ स्मृति का निखार कर रहा है। शिष्य जीवन को दांव पर लगाता है; सब कुछ खोना हो तो भी तैयारी दिखलाता है। क्योंकि जब तक तुम सब खोने को तैयार न हो जाओ तब तक तुम सब को पाने के मालिक न हो सकोगे। जिसने सब खोया उसने सब पाया।

तो, गुरु के पास तो बारहखड़ी सीखनी है, 'अल्फाबेट'। परमात्मा का गीत तो अभी कठिन पड़ेगा। तुम्हें अभी बारहखड़ी ही नहीं आती। गुरु के पास अ ब स सीख लेना है — अ ब स परमात्मा का। जब तुम सीख गये, तुम चले अपनी यात्रा पर।

पक्षी के बच्चे पैदा होते हैं, अंडों से बाहर आते हैं। तुमने कभी देखा होगा झाड़ों में लटके घोसलों के किनारों पर बैठे, डरते हैं, आकाश को देखते हैं : आकाश बड़ा है! अभी तक अंडे में रहे थे, बड़ी छोटी दुनिया थी, बड़ी सुरक्षित थी, ऊष्ण थी। मां गरमी देती रहती थी। अब दुनिया बड़ी ठंडी मालूम पड़ती है। वह ऊष्णता मां की गयी। किनारे पर बैठते हैं वे, मां उड़ती है। वह उड़ान उनके भीतर भी किसी सोयी हुई, प्रसुप्त आकांक्षा को जन्म देती है। वे भी उड़ना चाहते हैं — कौन नहीं उड़ना चाहता! क्योंकि उड़ने में मुक्ति है, स्वातंत्र्य है। लेकिन डगमगाते हैं, डरते हैं। बैठे हैं घोंसले के किनारे। उन्हें अपने पंखों का पता नहीं। हो भी कैसे सकता है? पंखों का पता तो तभी चलता है जब तुम उड़ो। उड़ने के पहले पंखों का पता चल नहीं सकता। उड़ने के बिना कैसे तुम जानोगे कि तुम्हारे पास भी पंख हैं? पैर पता चलते हैं जब तुम चलते हो। आंख पता चलती है जब तुम देखते हो। कान पता चलते हैं जब तुम सुनते हो। पंख पता चलते हैं जब तुम उड़ते हो।

अभी पक्षी उड़ा नहीं, अभी अंडे से बाहर आया है। अभी उसे कैसे पता हो सकता है कि मेरे पास भी पंख हैं। अभी वह डरता है। क्या करता है? क्या चाहता है? चाहता है उड़ना। कोशिश भी करता है, लेकिन पकड़े है जोर से घोंसले को कि कहीं इस विराट शून्य में खो न जाए।

मां क्या करती है? एक धक्का देती है। घबड़ाता है पक्षी, घबड़ाहट में पंख खुल जाते हैं। घबड़ा कर लौट आता है वापस एक चक्कर मारकर, लेकिन अब उसे पता हो गया : पंख उसके पास हैं; थोड़ी देर होगी चाहे, कला सीखने में थोड़ा समय लगेगा — लेकिन पंख हैं! एक बड़ा भरोसा आया! एक हिम्मत जगी! एक आत्मविश्वास का जन्म हुआ : 'तो यह आकाश भी अपना है!' दो छोटे पंखों के सहारे पूरा आकाश अपना हो जाता है। बस, दो छोटे पंखों के सहारे सारे आकाश की मालकियत मिल गयी! फिर थोड़ी-थोड़ी दूर जाने के प्रयोग करता है — और दूर, और दूर, बड़े वर्तुल बनाता है — और एक दिन फिर दूर आकाश की यात्रा पर निकल जाता है। अब मां को धक्का देने की जरूरत नहीं पड़ती।

गुरु तुम्हें एक धक्का देगा घोंसले के बाहर। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। यह तुम भी कर सकते थे। जब तुम कर लोगे तब तुम पाओगे : 'अरे, यह तो मैं भी कर सकता था!' लेकिन यह तुम पाओगे तब जब तुम कर लोगे। इसके पहले, इसके पहले कैसे तुम जानो कि पंख है ? गुरु तुम्हें दिखा देगा तब तुम्हें लगेगा : 'अरे, यह तो बिना गुरु के भी हो सकता था!'

कृष्णमूर्ति के साथ यही हुआ : धक्का दिया एनीबीसेंट ने, लीडबीटर ने, उनके गुरुओं ने — पंख

खुले! कृष्णमूर्ति को समझ आयी कि 'यह तो मुझसे ही हो सकता था। पंख मेरे, पंख खुले तो मेरे: धक्के के बिना भी अगर मैं जरा-सी हिम्मत कर लेता तो हो जाता।' तब से चालीस-पचास वर्ष बीत गये, वे दूसरों को यही सिखा रहे हैं कि हिम्मत करो, कूद जाओ, पंख तुम्हारे हैं, गुरु की कोई जरूरत नहीं! लेकिन कोई कूदता हुआ मालूम नहीं पड़ता। बात बिलकुल ठीक कहते हैं। बात में जरा भी गलती नहीं है। भूल-चूक कोई खोज नहीं सकता इसमें।

लेकिन कोई चाहिए जो तुम्हें धक्का दे दे। और जब गुरु धक्का देगा तो बहुत बुरा लगेगा। तो पहले गुरु तुम्हें पास बुलाएगा, प्रेम देगा, ताकि तुम आ जाओ और निकट, और निकट, और निकट; फिर एक दिन धक्का देगा। तुम चौंकोगे बहुत : ऐसा प्रेमी आदमी ऐसा दुष्ट कैसे हो गया! लेकिन जरूरी है कि वह धक्का दे तभी तुम्हारे पंख खुलेंगे।

इसलिए जो परमात्मा को खोजने चले हों सीधे वे थोड़ा सम्हल जाएं : वह सीधी खोज कहीं अहंकार का ही नया करतब न हो, कहीं अहंकार की ही नयी ईजाद न हो! फिर ऐसे लोग हो सकता है वहीं बैठे रहें घोंसले में, आंख बंद कर लें और खुले आकाश के सपने देखने लगें। वह आसान है।

गुरु को खोजो; परमात्मा की खोज की कोई जरूरत नहीं। गुरु को खोजते ही वह खोज हो जाएगी।

> 'है फर्ज तुझ पै फकत बंदा-ए-खुदा की तलाश
> खुदा की फिक्र न कर, वोह मिला, मिला-न-मिला।'

उसकी बहुत चिंता नहीं है। लेकिन किसी खुदा के बंदे की तलाश कर ले। किसी गुरु को खोज ले। फिर परमात्मा मिला न मिला, तू छोड़ फिक्र। मिल ही जाएगा, उसकी बात ही मत उठा। क्योंकि गुरु को खोजने में ही पहला कदम उठ जाता है।

गुरु को खोजने का अर्थ है : अहंकार का समर्पण।

किसी के चरणों में झुकने का अर्थ है : झुकने की कला का पहला अभ्यास।

झुक गये तो खुदा तो मिल ही जाएगा। बस तुम झुके न थे, वहीं अड़चन थी।

इसलिए गुरु की बड़ी अनिवार्यता है। जरूरत बिलकुल नहीं है, अनिवार्यता है पूरी। जरूरत बिलकुल नहीं है; ऐसा लगता है कि हो सकता है अपने-आप। कहां अड़चन है? पंख तुम्हारे पास हैं, उड़ने की क्षमता तुम्हारे पास है, आकाश मौजूद है, सब मौजूद है — फिर गुरु की क्या जरूरत है? अगर कोई तर्क से विचार करे तो गुरु की जरूरत मालूम नहीं होगी। लेकिन तुम में साहस नहीं है, इसलिए गुरु की जरूरत है। वह साहस को कौन पूरा करे? तुम्हें हिम्मत कौन दे? कौन तुम्हें धक्का दे दे?

मेरे गांव में एक बूढ़े सज्जन हैं। उन्होंने करीब-करीब गांव के सभी बच्चों को तैरना सिखाया होगा। वे नदी के प्रेमी हैं। और गांवभर के बच्चे जैसे ही तैरने योग्य हो जाते हैं, नदी पहुंच जाते हैं। और वे सुबह पूरा समय पांच-छह घंटे का, गांवभर के बच्चों को तैरना सिखाने में देते हैं। मुझे भी उन्होंने ही तैरना सिखाया। जब मैं सीख गया, मैंने उनसे कहा, 'यह भी कोई बात हुई, तुमने सिखाया जरा भी नहीं, सिर्फ मुझे धकाया।' उन्होंने कहा, 'बस वही सिखाना है।' वे फेंक देते हैं बच्चे को। बच्चा घबड़ाता है। वे खड़े हैं सामने। दो-तीन फीट दूर फेंक देते हैं गहरे में। बच्चा घबड़ाता है,

तड़फड़ाता है, हाथ-पैर फेंकता है। वही तैरने की शुरुआत है। हाथ-पैर फेंकना ही तैरने की शुरुआत है। फिर धीरे-धीरे व्यवस्था आ जाती है। पहले अव्यवस्थित फेंकता है। पहले घबड़ाहट में फेंकता है। फिर वे दौड़कर उसे बचा लेते हैं। फिर फेंकते हैं। फिर ले आते हैं किनारे पर। फिर फेंकते हैं। कभी मुंह में पानी चला जाता है, कभी नाक में पानी चला जाता है, कभी बड़ी घबड़ाहट होती है। कभी ऐसा लगता है कि यह तो बचना मुश्किल है, मरे! और कुछ नहीं सिखाते वे। दस-पांच दफा फेंकते हैं। हाथ-पैर में गति व्यवस्थित होने लगती है। दो-चार दिन में बच्चा तैरना सीख जाता है। सिखाते कुछ भी नहीं, सिर्फ पानी में तुम अपने से न कूद सकोगे, घबड़ाहट लगेगी, उतनी घबड़ाहट भर छीन लेने की बात है।

परमात्मा उपलब्ध है गुरु के बिना, मगर उपलब्ध हो न सकेगा। जब वह उपलब्ध हो जाएगा तब तुम जानोगे कि हो सकता था। लेकिन वह सदा बाद में।

कोलम्बस ने अमरीका खोजा। जब तक नहीं खोजा था, तो कोई भरोसा नहीं था किसी को; लोग सोचते थे यह गया, यह लौटनेवाला नहीं है। क्योंकि यह सिर्फ कल्पना के आधार पर कि यदि पृथ्वी गोल है... जो कि गैलिलिओ और कोपरनीकस ने सिद्ध कर दिया था कि पृथ्वी गोल है, मगर कोई देखा तो नहीं था; देखा तो अभी तक नहीं था। जब पहली दफा अन्तरिक्ष-यात्रा शुरू हुई और मनुष्य पृथ्वी के घेरे के बाहर गया तब पहली दफा दिखायी पड़ा कि पृथ्वी गोल है, इसके पहले तो किसी ने देखा न था, यह तो धारणा थी, तर्कसिद्ध थी, हजार प्रमाण थे इसके, लेकिन सब प्रमाण परोक्ष थे। कोलम्बस ने कहा कि 'जब पृथ्वी गोल है तो अगर मैं जाऊं यात्रा पर और करता ही रहूं यात्रा सीधा, सीधा, तो एक दिन वापस इसी जगह लौट आऊंगा। अगर बीच में कुछ हुआ तो मिल गयी कोई जगह तो ठीक है, नहीं तो वापस अपने घर आ जाएंगे। गोल अगर पृथ्वी है तो लौट ही आएंगे अपनी जगह, भटकने का कोई सवाल नहीं है।'

कोई साथ जाने को राजी न था। बड़ी मुश्किल से सालों की खोज के बाद अस्सी आदमी तैयार हो सके। उनमें कई ऐसे थे जो मरने को तत्पर थे, जिनको जिंदगी में कोई सार न था। कुछ पागल थे, दीवाने थे, उन्होंने कहा, 'चलो, कोई हर्जा नहीं; मरेंगे, और क्या होगा!' ढंग का कोई एक आदमी तैयार नहीं था। कुछ को सम्राट की आज्ञा हुई थी, इसलिए कुछ सैनिकों को जाना पड़ रहा था, तो वे गये थे।

इन अस्सी आदमियों को लेकर कोलम्बस गया। जिसने धन की सहायता दी थी, जिस रानी ने, उसके दरबारियों ने कहा था, 'यह फिजूल पैसा खराब हो रहा है। ये अस्सी आदमी मरेंगे। ये लाखों रुपये खराब होंगे।' पर उस रानी ने कहा, 'करने दो, एक प्रयोग है, देखेंगे।

कोलम्बस अमरीका खोजकर लौट आया। दरबार में उसका स्वागत हुआ। तो उन्हीं दरबारियों ने कहा, 'यह कोई क्या खास बात है, यह कोई भी खोज लेता। अगर पृथ्वी गोल है, कोई भी जाता तो मिल जाता।'

कोलम्बस की थाली में एक अंडा रखा था। उसने अंडा उठाया और उसने कहा, 'इसे कोई सीधा खड़ा करके बता दे टेबल पर।' कई ने कोशिश की खड़ा करने की; पर अब अंडा कैसे सीधा खड़ा

हो? वह गिर-गिर जाए। उन्होंने कहा, 'यह हो ही नहीं सकता; यह असंभव है।'

कोलम्बस ने जोर से अंडे को ठोका टेबल पर, नीचे की पर्त सीधी हो गयी, अंदर दब गयी, अंडा खड़ा हो गया। उन्होंने कहा, 'अरे, यह तो कोई भी कर देता!' कोलम्बस ने कहा, 'लेकिन किसी ने किया नहीं।'

करने के बाद तो सभी कुछ आसान हो जाता है। करने के पहले असली सवाल है। उस करने के पहले गुरु की जरूरत है।

अनिवार्यता बिलकुल नहीं, और अनिवार्यता पूरी है। जानोगे, तब पाओगे : हो जाता है बिना गुरु के। लेकिन तब तुम यह भी पाओगे... अगर तुम पीछे लौटकर देखो कि हो नहीं सकता था, तुम हिम्मत ही न जुटा पाते।

तीसरा प्रश्न : भक्ति साधना भी है और सिद्धि भी। कृपापूर्वक उसके अलग-अलग रूपों को हमें समझाएं।

● न, भक्ति के कोई रूप नहीं हैं।

प्रेम के कहीं कोई रूप होते हैं? प्रेम तो बस एक है। उसका स्वाद एक है।

भेद तो बुद्धि से होते हैं; हृदय में भेद नहीं होते। हिंदू की बौद्धिक धारणा अलग, मुसलमान की बौद्धिक धारणा अलग, ईसाई का फलसफा अलग है। वे बुद्धि की बातें हैं। लेकिन जब हिंदू भक्ति से भरता है और जब मुसलमान भक्ति से भरता है और जब ईसाई भक्ति से भरता है, तो उन भक्तियों में भेद नहीं है, वे एक हैं।

भक्ति हृदय की बात है। उसका तुम्हारे अंतस्तल से संबंध है, तुम्हारी बुद्धि की बाहरी बातों से नहीं। क्या तुमने सीखा है, उससे संबंध नहीं है; क्या तुम्हारा स्वभाव है, उससे संबंध है।

लेकिन यह बात सच है कि भक्ति साधना भी है और सिद्धि भी। वहां पहला कदम ही आखिरी कदम भी है। वहां साधन ही साध्य भी है।

भक्ति का अर्थ है : परम प्रेम। परम प्रेम की साधना करनी है। और जब सिद्धि होगी तब क्या होगा? परम प्रेम उपलब्ध होगा। परम प्रेम को ही साधना है और परम प्रेम को ही पाना है। प्रेम ही वहां मार्ग है और प्रेम ही वहां मंजिल है।

होना भी यही चाहिए। क्योंकि जब तुम भी किसी यात्रा पर जाते हो तो तुम जो पहला कदम उठाते हो मार्ग पर, उस पहले कदम में मंजिल एक कदम करीब आ गयी। तो कदम तुमने मार्ग पर ही नहीं उठाया, मंजिल पर भी उठाया। हजार मील की यात्रा तुम पूरी कर लोगे एक-एक कदम उठा-उठा कर। एक-एक कदम मंजिल करीब आती जाती है। एक दिन तुम मंजिल पर पहुंच जाते हो। उसमें कौन-सा कदम सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण था? लगेगा : आखिरी कदम, क्योंकि आखिरी कदम ने ही मंजिल पर पहुंचाया। नहीं, जितना आखिरी कदम महत्त्वपूर्ण है, उतना ही पहला कदम भी था। क्योंकि पहला कदम अगर चूक जाता तो आखिरी तो हो ही न पाता।

तुम पानी को गरम कर रहे हो, निन्यानबे डिग्री तक गरम करते हो, सौ डिग्री पर भाप बन जाता है। क्या सौवीं डिग्री के कारण भाप बनता है ? अगर पहली डिग्री न होती तो सौ डिग्री हो नहीं सकता था, निन्यानबे डिग्री ही रह जाता, भाप नहीं बनता।

पहला कदम आखिरी कदम भी है। मार्ग मंजिल भी है।

मार्ग क्या है भक्त का?

भक्त का मार्ग है : अहोभाव।

अहोभाव को समझना जरूरी है। वही उसकी विधि है।

साधारणतः कामवासना देखती है वह जो तुम्हारे पास नहीं है। कामवासना की दृष्टि अभाव पर रहती है; जो तुम्हारे पास नहीं है उसी को देखती है। भक्ति उलटी स्थिति है; जो तुम्हारे पास है, उसे देखती है।

जब जो तुम्हारे पास नहीं है, तुम उसको देखते हो, तब तुम सदा पीड़ित रहते हो, क्योंकि इतना कम है, इतना कम है, इतना कम है! और यह तो कम रहेगा ही। लाख रुपये तुम्हारे पास हैं, वह तुम नहीं देखते; अरबों-खरबों जो तुम्हारे पास नहीं हैं, वह तुम देखते हो। जो पत्नी तुम्हारे पास है उसे तुम नहीं देखते; सारे संसार की स्त्रियां दिखायी पड़ती हैं।

अगर पति से कोई पूछे ठीक-ठीक कि 'तू अपनी पत्नी की शक्ल बता सकता है ?' ...तो दिक्कत खड़ी हो जाएगी। कौन देखता है अपनी पत्नी को! पड़ोस की पत्नी का सब नाक-नक्शा बता देगा वह। आज उसने कैसी साड़ी पहनी है, यह भी बता देगा। लेकिन अपनी पत्नी...!

'जो है' उसे हम देखते ही नहीं; जो नहीं है उसे देखते हैं, इसलिए पीड़ित रहते हैं। क्योंकि 'नहीं है' खलता है, कांटे की तरह चुभता है, अभाव मालूम पड़ता है। दीनता-दरिद्रता मालूम पड़ती है।

'जो है' अगर उसे देखें तो अहोभाव पैदा होता है। तो इतना दिया है परमात्मा ने कि तुम सिवाय धन्यवाद के और क्या कर सकोगे! तो अचानक तुम पाते हो कि तुम सम्राट हो गये, भिखारी न रहे!

'दिल दिया, दर्द दिया, दर्द में लज्जत दी है
मेरे अल्हाह ने क्या-क्या मुझे दौलत दी है!'

और तब दर्द भी सौभाग्य मालूम होने लगता है!

'दिल दिया, दर्द दिया, दर्द में लज्जत दी है।'

पीड़ा में भी एक मिठास है। सुख की तो छोड़ो, दुख में भी एक गहराई है — वह भक्त को दिखायी पड़ती है। स्वर्ग की तो छोड़ो, नरक में भी एक सौंदर्य है — वह भक्त को दिखायी पड़ता है। कामी को तो स्वर्ग में भी स्वर्ग दिखायी नहीं पड़ता; भक्त को नरक में भी स्वर्ग दिखायी पड़ता है।

और तुम्हें जो दिखायी पड़ता है तुम उसी में जीने लगते हो। क्योंकि आदमी जिसको अनुभव करता है, जिसको देखता है, उसी में जीता है।

भक्त भाव में जीता है।

कामी अभाव में जीता है।

'दिल दिया, दर्द दिया, दर्द में लज्जत दी है!'

और तब तो दर्द में भी लज्जत दिखाई पड़ने लगती है।
दर्द में भी एक काव्य है।
दर्द का भी एक रहस्य है।
पीड़ा में भी कुछ अनूठी मिठास है।
पीड़ा का भी काव्य है।
और पीड़ा में भी कुछ जन्मता है,
जो बिना पीड़ा के नहीं जन्म सकता।

'रंज हो, दर्द हो, वहशत हो, जुनूं हो, कुछ हो
आप जिस हाल से खुश हों, वही हाल अच्छा है।'

और भक्त कहता है, 'जो परमात्मा ने दिया है : रंज हो, दर्द हो, वहशत हो, जुनूं हो, कुछ हो... !'

भक्त को जैसे ही यह दिखायी पड़ना शुरू होता है कि कितना दिया है; मेरी कोई पात्रता न थी और इतना दिया है; अपात्र था और जीवन दिया; कमाया कुछ भी न था, इतने अनंत आनंद की क्षमता दी; सौभाग्य दिया कि होऊं, कि मेरे नासापुट श्वास लें, कि मेरी आंखें सूरज की किरणों को देखें, कि मेरा हृदय प्रेम की पुलक को अनुभव करे, कि मेरे कानों पर संगीत का साक्षात्कार हो! कुछ भी न था, शून्य से बनाया मुझे और सब कुछ दिया!

'आप जिस हाल से खुश हों वही हाल अच्छा है!'

और तब भक्त अपनी कोई मर्जी नहीं रखता; परमात्मा की मर्जी ही उसकी मर्जी है : 'वह जहां ले जाए वहीं जाएंगे। वह जो कराये वही करेंगे!'

भक्त छोड़ ही देता है सब। भक्त उपकरण-मात्र हो जाता है। परमात्मा ही उससे बहता है।

यही साधना है और यही सिद्धि भी है। जिस दिन यह स्थिति परिपूर्ण हो जाएगी...।

कब होती है स्थिति परिपूर्ण? यह सौभाग्य कब पूरा होता है? ...जब भक्त की मंजिल आ जाती है।

पहले तो साधारण आदमी, जो कामवासना में जीता है, शिकायत करता है; शिकायत ही उसका जीवन है।

तुम लोगों की बातें सुनो, सिवाय शिकायत के उनके जीवन में कुछ भी नहीं है : 'यह नहीं है, यह ठीक नहीं है; यह गलत हो रहा है, यह गलत हो रहा है; सब गलत हो रहा है!' गलत-गलत से वे घिर गये हैं। शिकायत ही शिकायत है।

भक्त की बात सुनो : अहोभाव ही अहोभाव है!

लेकिन जब मंजिल आती है, पहले शिकायत खो जाती है, भक्त अहोभाव से भर जाता है; फिर तो अहोभाव भी खो जाता है। क्योंकि धन्यवाद भी देने का मतलब है कि थोड़ी-बहुत शिकायत शेष रही होगी। नहीं तो धन्यवाद क्यों?

इसे थोड़ा समझें।

धन्यवाद भी हम तभी देते हैं कि अगर इससे अन्यथा होता तो शिकायत होती। धन्यवाद शिकायत का उलटा है।

रूमाल तुम्हारे हाथ से गिर गया, किसी ने उठाकर दे दिया, तुमने कहा, 'धन्यवाद' इसका मतलब है कि अगर वह उठाकर न देता तो शिकायत होती। तो इसका अर्थ यह हुआ कि धन्यवाद ऊपर आ गया है, शिकायत भीतर चली गयी है।

तो, भक्त जब तक मार्ग पर है, अहोभाव से भरा रहता है।

शिकायत से बेहतर है अहोभाव, क्योंकि शिकायत में सिर्फ पीड़ा होती है, दुख होता है, दर्द होता है, अंधेरा ही अंधेरा होता है। अहोभाव में सब रोशन हो जाता है, सब खिल जाता है! लेकिन अभी भी कमी है। मंजिल पर आते सब बात ही समाप्त हो जाती है, कुछ कहने को नहीं रह जाता।

जब अहोभाव भी नहीं बचता तब अहोभाव पूरा हो जाता है।

इस तरह मिटना है कि कुछ भी न बचे। शिकायत तो मरे ही, अहोभाव भी मर जाए।

'दिल है तो उसी का है, जिगर है तो उसी का है
अपने को राह-ए-इश्क में बरबाद जो कर दे।'

'दिल है तो उसी का, जिगर है तो उसी का' –

बस उसी के पास दिल पैदा होगा, उसी के पास जिगर आएगा।

'अपने को राह-ए-इश्क में बर्बाद जो कर दे।'

प्रेम की राह पर जो अपने को पूरा मिटा दे, वही पहली दफा हो पाता है।

भक्ति का अर्थ है : अपने को मिटाने की कला। वह मृत्यु की कला है; अपने को खोने की कला; अपने को डुबाने की कला!

चौथा प्रश्न : मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं एक अधपका फल हूं...?

● प्रतीत होने का सवाल नहीं, होओगे ही! नहीं तो कभी के गिर गये होते। पके फल वृक्षों पर थोड़े ही लटके रह जाते हैं! पके फल तो गिर जाते हैं। गिरना ही सबूत है कि फल पक गया, और कोई सबूत नहीं। पीले हो जाने से कोई पक गया, ऐसा मत समझ लेना – गिर जाने से ही...।

उपनिषद कहते हैं : 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।' उन्होंने ही भोगा जिन्होंने त्यागा। क्योंकि त्याग से ही पता चलता है कि ठीक से भोगा, समझ गये कि भोग बेकार है। जिस दिन भोग पक जाता है उस दिन त्याग अपने-आप हो जाता है। जिस दिन फल पक जाता है उस दिन गिर जाता है।

'ऐसा प्रतीत होता है...।'

प्रतीत होने की बात ही छोड़ दो; ऐसा जानो कि है, कि मैं एक अधपका फल हूं। निश्चित, इस प्रतीति को सत्य समझो, तो पकने की दौड़ शुरू होगी; तो 'अथातो' का क्षण शीघ्र ही पास आ जाएगा।

आदमी जब पक जाता है तभी पूरा आदमी होता है। जिस दिन तुम पूरे आदमी होते हो उसी दिन गिर जाते हो। आदमी गिरा कि परमात्मा शुरू हो जाता है। जहां आदमी का अंत है वहां परमात्मा की शुरुआत है।

'आदमी हैं शुमार से बाहर

कहत है फिर भी आदमियत का!'

बहुत आदमी हैं, लेकिन आदमियत कहां? आदमियत की बड़ी कमी है, क्योंकि पके हुए आदमी कहां?

'फर्श से ताअर्श मुमकिन है तरक्की ओ उरूज
फिर फरिश्ता भी बना लेंगे तुझे, इन्सां तो बन।'

पहले आदमी बन, फिर हम तुझे देवता भी बना लेंगे।

'फिर फरिश्ता भी बना लेंगे तुझे, इन्सां तो बन।'

पहले पक। फिर देवत्व तो अपने-आप आ जाता है। जो आदमी पूरा हुआ कि वहीं से देवत्व की शुरुआत है।

कैसे पकोगे?

बड़ा मुश्किल हो गया है पकना। इसलिए मुश्किल हो गया है कि तुम्हारे सारे संस्कार, सारी शिक्षा, सारा धर्म तुम्हें दमन सिखाते हैं, अनुभव नहीं सिखाते।

ऐसा समझो कि जिन-जिन चीजों की जानकारी से तुम्हें जीवन व्यर्थ मालूम पड़ता है, उनकी जानकारी ही पूरी नहीं होने देते।

बच्चे को हम सिखाते हैं : 'क्रोध मत कर।' सिखाना चाहिए कि क्रोध जितना बन सके कर ले। जब बच्चा क्रोधित हो तो कहना चाहिए : 'खूब कर ले। क्योंकि अभी तो घर है अपना, फिर बाहर की दुनिया में जाएगा, वहां तुझे लोग क्रोध न करने देंगे, अपने घर में पूरा कर ले। पिता पर, मां पर, कर ले पूरा। क्योंकि दूसरे लोग इतनी कृपा न करेंगे। तू क्रोध को पूरी तरह कर ले, ताकि क्रोध की जलन का तुझे अनुभव हो जाए और क्रोध की व्यर्थता तुझे दिखायी पड़ जाए।'

और क्रोध जहर है : और सिवाय हानि के कुछ लाभ नहीं देता।

और क्रोध मूढ़ता है : दूसरे के कसूर के लिए अपने को दंड देना है।

क्रोध अज्ञान है : क्योंकि क्रोध में तू दूसरे के हाथ में खिलौना हो गया है; कोई भी तेरी कुंजी दबा दे सकता है; कोई भी तुझे क्रोधित कर दे सकता है, तो तू दूसरे का गुलाम हो गया, तेरी मालकियत खो गयी।

मगर यह तो तब होगा जब क्रोध पूरी तरह अनुभव किया जाए।

मेरी प्रतीति ऐसी है कि अगर तुमने जीवन में एक बार भी क्रोध का पूरा अनुभव कर लिया तो पक गया क्रोध, उसके बाद तुम क्रोध न करोगे। क्रोध की बात ही खत्म हो गयी। हाथ जल गया!

दूध का जला छांछ भी फूंक-फूंककर पीने लगता है। लेकिन तुम्हें दूध से ही नहीं जलने दिया गया, छांछ को फूंककर पीने की तो बात बहुत दूर।

तुम्हें सिखाया गया है, कामवासना से बचो, इसलिए तुम कामवासना में पड़े हो और सड़ते हो।

मैं तुमसे कहता हूं, बचना मत। कामवासना में पूरे ही उतर जाना। ठीक तलहटी तक उतर जाना, ताकि और जानने को कुछ शेष न रह जाए। उसे इतनी पूर्णता से जान लेना कि रस ही खो जाए। जिस चीज को हम पूरा जान लेते हैं उसमें रस समाप्त हो जाता है। जहां-जहां रस हो तुम्हारा,

जानना कि वहां-वहां अधूरा जानना हुआ है, इसलिए अधपकापन है। और ऐसा जीवन पूरा अधपका रह जाता है।

पको!
अनुभव पकाता है।
अनुभव की धूप पकाती है।
अनुभव की पीड़ा पकाती है।
अनुभव की भूल-चूक पकाती है।
भटकाना पकाता है।
राह से उतर जाना पकाता है।
जब तुम पक जाते हो, गिर जाते हो।
उस गिरने में ही — उस गिरने में ही देवत्व का क्षण शुरू होता है।

इसलिए अपने को बचाओ मत; जल्दी करो। जहां-जहां रस हो उसे पूरा-पूरा भोग ही लो। भोगने में आधा-आधा मत करना।

मैं देखता हूं : ऐसा ही होता है। मंदिर में बैठते हो तब दुकान की सोचते हो, क्योंकि दुकान पर कभी पूरे बैठे नहीं। जब दुकान पर बैठते हो तो मंदिर की सोचते हो, क्योंकि मंदिर में कभी पूरे बैठे नहीं। जहां हो वहीं अधूरे हो।

दुकान पर बैठते हो तब तुम्हें बड़ी ज्ञान की बातें सूझने लगती हैं कि 'इसमें क्या रखा है! संसार असार है!' यह सब सुनी बकवास है। अगर यह तुमने जान लिया होता तो तुम्हारी जिंदगी में क्रांति हो गयी होती। यह सब तुमने सोच लिया है, ये सब तोता रटन है। यह तुमने कचरा इकट्ठा कर लिया है, यह सब उधार है। दुकान पर बैठकर ये सब उधार आने लगता है दिमाग में, फ़िर मंदिर जाते हो, मंदिर में बैठते हो तो लगता है घंटाभर खराब हो गया, इतनी देर में कुछ कमा ही लेते क्योंकि दुकान में पूरे रहे ही नहीं, वहां मंदिर सताता था।

जहां हो वहां पूरे, जो करो उसे पूरा, उसमें उतर ही जाओ क्योंकि एक बात सदा स्मरण रखो कि अनुभव के अतिरिक्त और कोई चीज मुक्त नहीं करती। और अपने को धोखा देने की कोशिश मत करना, कोई और सुगम मार्ग नहीं है। अनुभव एकमात्र मार्ग है। और जो अनुभव से बचना चाहते हैं और सस्ते में चाहते हैं ज्ञान को उपलब्ध हो जायें वे भटकते रहेंगे, अधपके रह जायेंगे, यही तो गति है तुम्हारी, दुर्गति कहनी चाहिए।

आखिरी प्रश्न : क्या भक्ति-साधना के भी कुछ साधन हैं, कुछ टेकनीक हैं? या वह सर्वथा स्वतःस्फूर्त और सहज है?

- नहीं, कोई साधन नहीं हैं।

प्रेम का कहीं कोई साधन होता है? कोई टेकनीक? कोई टेकनीक नहीं होता।

प्रेम परम साधन है, स्वयं ही :

'खाकसारी का है गाफिल! बहुत ऊंचा मर्तबा!'

मिट जाने का, ऐ सोने वाले! ...बहुत ऊंचाई है मिट जाने की।

'खाकसारी का है गाफिल! बहुत ऊंचा मर्तबा
यह जमीं वोह है कि जिस पर आसमां कोई नहीं।'

बस भक्ति तो मिट जाना है, ना-कुछ हो जाना है; अपने को शून्य कर लेना है, ताकि परमात्मा तुममें पूर्ण हो सके; जगह देनी है ताकि उसका प्रवेश हो सके; टूटना है!

तुमने बहुत चीजों को टूटते देखा है, अभी अपने को टूटते नहीं देखा। तुमने बहुत चीजें मिटते देखीं, अपने को मिटते नहीं देखा। तुमने बहुतों को मरते देखा, अपने को मरते नहीं देखा।

भक्ति, अपने को मरते देखना है। वह मृत्यु का साक्षात्कार है।

'हुबाब देख लिया, आबगीना देख लिया
शिकस्ते दिल की नज़ाकत किसी को क्या मालूम!'

बुलबुले को देखा पानी के, उसको टूटता देखा...! कई बार तुमने देखा होगा पानी के बुलबुले को टूटता।

छोटे बच्चे सोप के बुलबुले उठाते हैं और उनका टूटना देखते हैं, उनकी रंगीनी देखते हैं सूरज की किरणों में। गौर किया? बुलबुले के भीतर कुछ भी नहीं होता, बाहर भी कुछ नहीं; बाहर भी खाली आकाश है, भीतर भी खाली आकाश है, बीच में एक छोटी-सी पानी की पर्त है।

'हुबाब देख लिया' — ऐसे बुलबुले को टूटते देख लिया। 'आबगीना देख लिया' — कभी शीशे को पटककर देखा : टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, खंड-खंड हो जाता है। लेकिन यह कुछ भी नहीं है।

'शिकस्ते दिल की नजाकत किसी को क्या मालूम!'

जिसने दिल को टूटता देखा, उसकी सूक्ष्मता का किसी को कोई भी पता नहीं है। क्योंकि जहां दिल टूटता है, जहां दिल भी एक बबूले की तरह टूट जाता है, जहां तुम्हारा होना एक बबूले की तरह टूट जाता है — वहां तुम अचानक पाते हो कि भीतर की आत्मा विराट परमात्मा से मिल गयी; जरा-सी दीवाल थी, खो गयी!

तुम्हारा अहंकार कांच के दर्पण से ज्यादा नहीं है : गिरा नहीं कि टूटा। जरा झुको और गिरा दो इसे। मिटना सीखो — बस भक्ति का सूत्र इतना ही है।

योग में हजार विधियां हैं; भक्ति का सूत्र एक ही है। पर एक काफी है। वैसे ही जैसे कहावत है : सौ सुनार की एक लुहार की! ऐसे ही योगी खटखट-खटखट बहुत मचाता है। इसलिए तो उसके कर्म को 'खटकरम' कहते हैं। बहुत उपद्रव करता है। न मालूम कितनी विधियां बनाता है! इसलिए तो उसकी विधियों को गोरखधंधा कहते हैं। वह महायोगी गोरख के नाम से बना है शब्द : गोरखधंधा! गोरख ने इतनी विधियां खोजीं कि विधियों में ही कोई खो जाए, पहुंचने की तो बात ही अलग। इसलिए — गोरखधंधा।

भक्ति तो एक ही सूत्र जानती है : अपने को खो दो। झुको। मिटो।

परमात्मा द्वार पर खड़ा है : इधर तुम झुके नहीं, उधर वह मिला नहीं।

आज इतना ही।

बड़ी संवेदनशील है भक्ति

तीसरा प्रवचन

सूत्र

सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात् ॥७॥

निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यासः ॥८॥

तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च ॥९॥

अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता ॥१०॥

लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता ॥११॥

भवतु निश्चयदाढ्र्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणम् ॥१२॥

अन्यथा पातित्याशङ्कया ॥१३॥

लोकोऽपि तावदेव किन्तु भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीधारणावधि ॥१४॥

जीवन की व्यर्थता जब तक प्रगाढ़ अनुभव न बन जाए तब तक परमात्मा की खोज शुरू नहीं होती। जीवन की व्यर्थता का बोध ही उसकी तरफ पहला कदम है। जब तक ऐसी भ्रांति बनी है कि यहां कुछ खोज लेंगे, पा लेंगे, यहां कुछ मिल जायेगा सपनों की दुनिया में — तब तक परमात्मा भी एक सपना ही है; तब तक तुम उसे खोजने नहीं निकलते; तब तक तुम स्वयं को दांव पर भी नहीं लगाते।

परमात्मा मुफ्त मिलनेवाला नहीं है। जो भी तुम हो, तुम्हारी परिपूर्ण सत्ता जब तक दांव पर न लग जाए, तब तक परमात्मा से कोई मिलन नहीं। क्योंकि प्रेम इससे कम पर नहीं मिल सकता, और प्रार्थना इससे कम पर शुरू नहीं होती। यह काम जुआरियों का है, दुकानदारों का नहीं। यहां पूरी खोने की हिम्मत चाहिए। दीवानगी चाहिए! मस्ती चाहिए!

लेकिन यह तभी संभव हो पाता है जब जो तुम्हारे पास है, वह व्यर्थ दिखायी पड़ता है; वह कूड़ा-करकट हो जाता है, तब तुम उसे पकड़ते नहीं।

करोड़ों लोग परमात्मा के शब्द का उच्चार करते हैं, प्रार्थना करते हैं, पूजा करते हैं; लेकिन उसकी कोई झलक नहीं मिलती। क्या पूजा व्यर्थ है? नहीं, करनेवालों ने की ही नहीं। क्या प्रार्थना शून्य आकाश में खो जाती है, कोई प्रत्युत्तर नहीं आता? प्रार्थना थी ही नहीं; अन्यथा प्रत्युत्तर तत्क्षण आता है। इधर तुमने पुकारा भी नहीं कि उधर प्रत्युत्तर मिला नहीं! पर तुमने पुकारा ही नहीं। तुम सोचते हो कि तुमने पुकारा, तुम सोचते हो कि तुमने प्रार्थना की; लेकिन कभी तुमने हृदय को दांव पर लगाया नहीं।

आधे-आधे मन से न होगा। पूरे-पूरे की मांग है।

तो, जब तक तुम्हें लगता है कि संसार में अभी कुछ मिल सकता है, रस कायम है, जब तक तुम जागे नहीं, सपने में थोड़े उलझे हो, जब तक तुम्हें सपने में भरोसा है कि यह सच है — तब तक परमात्मा की तरफ आशाओं का प्रवाह, आकांक्षाओं का प्रवाह शुरू नहीं होता; तब तक प्रार्थना तुम्हारी अभीप्सा नहीं होती, तुम्हारे हृदय की भाव-दशा नहीं होती; तब तुम्हारी प्रार्थना भी तुम्हारी चालाकी, तुम्हारे गणित, तुम्हारी होशियारी का हिसाब होती है। तुम सोचते हो : 'चलो, हो-न-हो कहीं परमात्मा हो ही न, प्रार्थना भी कर लो, पूजा भी कर लो, बिगड़ता क्या है! हानि क्या है! अगर लाभ हुआ तो हो जाएगा, न हुआ तो हानि तो कुछ भी नहीं।'

मैंने सुना है, एक नाटकगृह में ऐसा हुआ कि मध्य नाटक में, जो नाटक का प्रधान पात्र था, उसे हृदय का दौरा पड़ गया, वह मर गया। संयोजक परदे के बाहर आया, उसने क्षमा मांगी कि क्षमा करें, दुख की बात है, हृदय के दौरे के कारण प्रमुख नायक की मृत्यु हो गयी है और नाटक आगे न हो सकेगा। हम क्षमा-प्रार्थी हैं, लेकिन हमारे कोई हाथ की बात भी नहीं।

लोग नाटक में बड़े उलझे थे। अभी तो जिज्ञासा जगी थी, और यह तो बीच में सब टूट गया – जैसे नींद टूट गयी !

एक स्त्री ने खड़े होकर कहा कि छाती के ऊपर मालिश करो, अभिनेता की।

मैनेजर ने कहा, 'देवी जी, वह मर चुका है। अब मालिश से क्या लाभ होगा?'

उस स्त्री ने कहा, 'लाभ न हो, हानि क्या होगी ?'

बस तुम्हारी प्रार्थना ऐसी ही है कि अगर लाभ न हुआ, कोई हर्जा नहीं, 'हानि क्या होगी !'

मरते वक्त नास्तिक भी आस्तिक हो जाते हैं, इस भय से कि कहीं परमात्मा हो ही न ! बूढ़े होते-होते सभी नास्तिक आस्तिक होने लगते हैं, क्योंकि जैसे-जैसे मौत करीब आती है और पैर लड़खड़ाते हैं और अंधेरा घना होने लगता है और आकाश के तारे छुपने लगते हैं, सब आशाओं के दिये बुझने लगते हैं और लगता है कि अब सिर्फ कब्र के अतिरिक्त और कोई जगह न रही, तो नास्तिक भी परमात्मा का स्मरण करने लगता है : कौन जाने, शायद हो !

लेकिन 'शायद' से प्रार्थना नहीं बनती। 'शायद' से समझदारी तो समझ में आती है, प्रेम समझ में नहीं आता।

समझदारी से कोई कभी समझदार नहीं हुआ। समझदारी के कारण ही तो तुम नासमझ बने हो। तुम्हारी समझदारी ही महंगी पड़ रही है।

तो, परमात्मा की तरफ अगर तुम होशियारी से जा रहे हो, बही-खाते का हिसाब वहां भी फैला रहे हो, सोचते हो कि ठीक है, संसार को भी संभाल लें, परमात्मा को भी संभाल लें, दोनों नावों पर सवार हो जाएं– तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। तुम मुश्किल में पड़े हो, क्योंकि मैं देखता हूं, तुम दोनों नावों में आधे-आधे खड़े हो।

नाव पर तो एक ही चढ़ा जाता है... एक ही नाव पर चढ़ा जाता है, अन्यथा दुविधा पैदा हो जाती है। दो दिशाओं में चलोगे तो टूट जाओगे, खंड-खंड हो जाओगे, बिखर जाओगे। और जब तुम ही खंड-खंड हो गये, बिखर गये, जब तुम्हारे भीतर ही एकतानता न रही, तो प्रार्थना कौन करेगा, पूजा कौन करेगा ? भीड़ थोड़े ही पूजा करती है; भीतर की एकता से पूजा उठती है; भीतर की अखंडता से सुगंध उठती है प्रार्थना की।

तो इस बात को पहले खयाल में ले लेना चाहिए तो ही भक्ति-सूत्र समझ में आ सकेंगे।

यह जिंदगी अगर तुम्हें अभी भी रसपूर्ण मालूम पड़ती है तो थोड़ा और जी लो। आज नहीं कल, रस टूट ही जाएगा।

जितना आदमी सजग हो उतने जल्दी रस टूट जाता है। जितना आदमी बेहोश हो, उतनी देर तक रस टिकता है। बेहोशी रस का सहारा है। जितनी तुम्हारे भीतर बुद्धिमानी हो – होशियारी नहीं

कह रहा हूं, चालाकी नहीं कह रहा हूं; बुद्धिमत्ता हो — उतनी जल्दी तुम जीवन के रस से चुक जाओगे। और जब जीवन का रस चुकता है तभी तुम्हारी रसधार जो जीवन में नियोजित थी, मुक्त होती है : अब संसार में जाने को कोई जगह न बची; अब वह रास्ता रास्ता न रहा; अब चीजों की तरफ दौड़ने की बात न रही; अब संग्रह को बड़ा करना है, मकान बड़ा बनाना है, धन इकट्ठा करना है, पद-प्रतिष्ठा पानी है — यह सब व्यर्थ हुआ; अब तुम अपने घर की तरफ लौटते हो।

'घर बयाबां में बनाया नहीं हमने लेकिन
जिसको घर समझे हुए थे वह बयाबां निकला।'

कोई रेगिस्तान में घर नहीं बनाया था, लेकिन जिसको घर समझे हुए थे वही रेगिस्तान निकला, वही वीरान निकला।

जिस दिन तुम्हें अपना घर बयाबां मालूम पड़े, वीरान मालूम पड़े... वीरान है; सिर्फ तुम अपने सपनों के कारण उसे सजाये हो। जरा चौंककर देखो : जिसे तुम घर कह रहे हो, वह घर नहीं है, ज्यादा-से-ज्यादा सराय है; आज टिके हो, कल विदा हो जाना पड़ेगा। जो छिन ही जाना है, उसको अपना कहना किस मुंह से संभव है? जहां से उखड़ ही जाना पड़ेगा, जहां क्षण-भर को ठहरने का अवसर मिला है, पड़ाव हो सकता है, मंजिल नहीं है, और मंजिल के पहले घर कहां! घर तो वहीं हो सकता है जहां पहुंचे तो पहुंचे, जिसके आगे जाने को कुछ और न रहे।

परमात्मा के अतिरिक्त कोई घर नहीं हो सकता।

मुझसे लोग पूछते हैं, 'संन्यास की परिभाषा क्या?' तो मैं कहता हूं, 'दो तरह के घर बनानेवाले हैं, दो तरह के गृहस्थ हैं : एक जो संसार में घर बनाते हैं, उनको हम गृहस्थ कहते हैं; एक जो परमात्मा में घर बनाते हैं, वे भी गृहस्थ हैं, उनको हम संन्यासी कहते हैं — सिर्फ भेद करने को। घर अलग-अलग जगह बनाते हैं। एक हैं जो पानी पर जीवन को लिखते हैं, लिख भी नहीं पाते और मिट जाता है; और एक हैं जो जीवन की शाश्वतता पर लिखते हैं। एक हैं जो रेत पर घर बनाते हैं, जिनकी बुनियाद ही डगमगा रही है; और एक हैं जो जीवन की शाश्वतता को आधार की तरह स्वीकार करते हैं।'

पहला सूत्र है : 'वह भक्ति कामनायुक्त नहीं है, क्योंकि वह निरोध-स्वरूपा है।'

संसार यानी कामना।

संसार का ठीक अर्थ समझ लो, क्योंकि तुम्हें संसार का भी अर्थ गलत ही बताया गया है।

कोई घर छोड़कर भाग जाता है तो वह कहता है, संसार छोड़ दिया। कोई पत्नी को छोड़कर भाग जाता है तो वह कहता है, संसार छोड़ दिया। काश, संसार इतना स्थूल होता! काश, तुम्हारी पत्नी के छोड़ जाने से संसार छूट जाता! काश, बात इतनी सस्ती होती! तो संन्यास बहुत बहुमूल्य नहीं होता।

संसार न तो पत्नी में है, न घर में है, न धन में है, न बाजार में है, न दुकान में है — संसार तुम्हारी कामना में है। जब तक तुम मांगते हो कि मुझे कुछ चाहिए, जब तक तुम सोचते हो कि मेरा संतोष, मेरा सुख, मुझे कुछ मिल जाए, उसमें है, तब तक तुम संसार में हो।

जब तक मांग है तब तक संसार है।

संसार का अर्थ है : तुम्हारा हृदय एक भिक्षापात्र है, जिसको लिये तुम मांगते फिरते हो — कभी

इस द्वार, कभी उस द्वार। कितने ठुकराये जाते हो! लेकिन फिर-फिर संभलकर मांगने लगते हो। क्योंकि एक ही तुम्हारे मन में धारणा है कि और ज्यादा, और ज्यादा मिल जाए, तो शायद सुख हो!

'और' की दौड़ संसार है।

तो तुम मंदिर में भी बैठ जाओ और वहां भी अगर तुम मांग रहे हो तो तुम संसार में ही हो। तुम हिमालय पर चले जाओ, वहां भी आंख बंद करके अगर तुम मांग ही रहे हो, परमात्मा से कह रहे हो, 'और दे, स्वर्ग दे, मोक्ष दे', इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम क्या मांगते हो। संसार का कोई संबंध इससे नहीं है कि तुम क्या मांगते हो; संसार का संबंध बस इससे है कि तुम मांगते हो।

इस बात को ठीक से समझ लेना, अन्यथा संसार छोड़ने का ढोंग भी हो जाता है और संसार छूटता भी नहीं।

संसार तुम्हारे भीतर है, बाहर नहीं। संसार तुम्हारी इस मांग में है कि 'मैं जैसा हूं वैसा काफी नहीं हूं, कुछ चाहिए जो मुझे पूरा करे; मैं अधूरा हूं, अतृप्त हूं, असंतुष्ट हूं, कुछ मिल जाए जो मुझे पूरा करे, तृप्त करे, संतुष्ट करे!'

स्वयं को अधूरा मानने में और आशा रखने में कि कुछ मिलेगा जो पूरा कर देगा, बस वहां संसार है।

मांग छूटी : संसार छूटा! तब कोई घर छोड़ने की जरूरत नहीं है, न पत्नी को छोड़ने की जरूरत, न पति को, न बच्चों को – उनका कोई कसूर नहीं है।... घर में रहते तुम संसार से मुक्त हो जाते हो। ...पत्नी के पास बैठे तुम संसार से मुक्त हो जाते हो। बच्चों को सजाते-संभालते तुम संसार से मुक्त हो जाते हो। क्योंकि संसार से मुक्त होने का केवल इतना ही अर्थ है कि अब तुम तृप्त हो, जैसे हो, जो हो; तुम्हारे होने में अब कोई मांग नहीं है; तुम्हारे होने में अब कोई आकांक्षा नहीं है; तुम्हारा होना कामनातुर नहीं है; तुम अब एक कामनाओं का फैलाव नहीं हो, विस्तार नहीं हो – तुम बस हो : तृप्त, यही क्षण; और जैसे तुम हो, पर्याप्त है, पर्याप्त से भी ज्यादा है!

तब तुम्हारी प्रार्थना धन्यवाद बन जाती है, मांग नहीं। तब तुम मंदिर कुछ मांगने नहीं जाते; तुम उसे धन्यवाद देने जाते हो कि 'तूने इतना दिया, अपेक्षा से ज्यादा दिया, जो कभी मांगा नहीं था वह दिया। तेरे देने का कोई अंत नहीं! हमारा पात्र ही छोटा पड़ता जाता है और तू भरे जा रहा है!'

...तब भी तुम रोते हो जाकर मंदिर में, लेकिन तब तुम्हारे आंसुओं का सौंदर्य और!

जब तुम मांग से रोते हो, तब तुम्हारे आंसू गंदे हैं, दीन हैं, दरिद्र हैं। जब तुम अहोभाव से रोते हो, तुम्हारे आंसुओं का मूल्य कोई मोती नहीं चुका सकते। तब तुम्हारा एक-एक आंसू बहुमूल्य है, हीरा है। आंसू वही है, लेकिन अहोभाव से भरे हुए हृदय से जब आता है, तो रूपांतरित हो जाता है।

तुम जरा फर्क करके देखना। तुम दुख में भी रोये हो, पीड़ा में रोये हो, असंतोष में रोये हो, शिकायत में रोये हो; कभी अहोभाव में भी रोकर देखना; कभी आनंद में भी रोकर देखना – और तुम पाओगे : तुम्हारे बदलते ही आंसुओं का ढंग भी बदल जाता है। तब आंसू फूलों की तरह आते हैं। तब आंसुओं में एक सुगंध होती है जो इस लोक की नहीं है।

मीरा भी रोती है, पर मीरा के आंसू भिखारी के आंसू नहीं हैं। चैतन्य भी रोते हैं, लेकिन चैतन्य

के आंसू दीन-दरिद्र नहीं हैं, कुछ मांग से नहीं निकल रहे हैं, किसी अभाव से पैदा नहीं हुए हैं – किसी बड़ी गहन भाव-दशा से जन्मे हैं! गंगा का जल भी उतना पवित्र नहीं है!

'वह भक्ति कामनायुक्त नहीं है, क्योंकि वह निरोधस्वरूपा है।'

निरोधस्वरूपा!

साधारणतः भक्ति-सूत्र पर व्याख्या करनेवालों ने निरोधस्वरूपा का अर्थ किया है कि जिन्होंने सब त्याग दिया, छोड़ दिया। नहीं, मेरा वैसा अर्थ नहीं है। जरा सा फर्क करता हूं, लेकिन फर्क बहुत बड़ा है। समझोगे तो उससे बड़ा फर्क नहीं हो सकता।

निरोधस्वरूपा का अर्थ यह नहीं है कि जिन्होंने छोड़ दिया – निरोधस्वरूपा का अर्थ है कि जिनसे छूट गया। निरोध और त्याग का वही फर्क है। त्याग का अर्थ होता है : छोड़ा; निरोध का अर्थ होता है : छूटा, व्यर्थ हुआ। जो चीज व्यर्थ हो जाती है उसे छोड़ना थोड़े ही पड़ता है, छूट जाती है।

सुबह तुम रोज घर का कूड़ा-करकट इकट्ठा करके बाहर फेंक आते हो तो तुम कोई जाकर अखबारों के दफ्तर में खबर नहीं देते कि आज फिर त्याग कर दिया कूड़े-करकट का, ढेर-का-ढेर त्याग कर दिया! तुम जाओगे तो लोग तुम्हें पागल समझेंगे। अगर कूड़ा-करकट है तो फिर छोड़ा, इसकी बात ही क्यों उठाते हो?

तो जो आदमी कहता है, 'मैंने त्याग किया', वह आदमी अभी भी निरोध को उपलब्ध नहीं हुआ। क्योंकि त्याग करने का अर्थ ही यह होता है कि अभी भी सार्थकता शेष थी।

अगर कोई कहता है कि मैंने बड़ा स्वर्ण छोड़ा, बड़े महल छोड़े, गौर से देखना : स्वर्ण अभी भी स्वर्ण था, महल अभी भी महल थे। 'छोड़ा'! छोड़ना बड़ी चेष्टा से हुआ। चेष्टा का अर्थ ही यह होता है कि रस अभी कायम था; फल पका न था, कच्चा था, तोड़ना पड़ा।

पका फल गिरता है; कच्चा फल तोड़ना पड़ता है।

तो त्यागी तो सभी कच्चे हैं। निरोध को उपलब्ध व्यक्ति पका हुआ व्यक्ति है। त्याग और निरोध का यही फर्क है।

नारद कह सकते थे, 'त्यागस्वरूपा है', पर उन्होंने नहीं कहा। 'निरोधस्वरूपा'! व्यर्थ हो गयी जो चीज, वह गिर जाती है, उसका निरोध हो जाता है।

सुबह तुम जागते हो तो सपनों का त्याग थोड़े ही करते हो, कि जागकर तुम कहते हो, 'बस रात-भर के सपने छोड़ता हूं।' जागे कि निरोध हुआ। जागते ही तुमने पाया कि सपने टूट गये; सपने व्यर्थ हो गये; सपने सिद्ध हो गये कि सपने थे, बात समाप्त हुई; अब उनकी चर्चा क्या करनी है!

जो त्याग का हिसाब रखते हैं, समझना, भोगी ही हैं – शीर्षासन करते हुए, उलटे खड़े हो गये हैं, भोगी ही हैं।

एक संन्यासी को मैं जानता हूं जो भूलते ही नहीं...। कोई चालीस साल पहले उन्होंने छोड़ा था संसार – छोड़ा था, निरोध नहीं हुआ था – चालीस साल बीत गये, अभी भी छूटा नहीं। छोड़ा हुआ कभी छूटता ही नहीं। वे अभी भी कहते रहते हैं कि मैंने लाखों रुपये पर लात मार दी। मैंने उनसे एक दिन कहा कि लात लग नहीं पायी; तुमने मारी होगी; चूक गयी! उन्होंने कहा, 'क्या मतलब?'

'चालीस साल हो गये... छूट गया, छूट गया ! इसकी चर्चा क्यों खींचते हो, इसे रोज-रोज याद क्यों करते हो ? रस कायम है। लाखों में अभी भी मूल्य है। अभी भी तुम दूसरों को भूलते नहीं बताना कि मैंने लाखों पर लात मारी। तुमने बैंक-बैलेंस कायम रखा है। गिनती जारी है। नहीं, यह त्याग तो है, निरोध नहीं।'

त्याग झूठा सिक्का है निरोध का। निरोध बड़ी अदभुत घटना है!

रामकृष्ण के पास एक आदमी आया, हजार सोने की अशर्फियां लाया था, दान करने, उनको देने। उन्होंने कहा, 'मुझे जरूरत नहीं। तू एक काम कर, गंगा में फेंक आ।' वह गया, लेकिन घंटा-भर हो गया, लौटा नहीं, तो रामकृष्ण ने आदमी भेजे कि देखो, क्या हुआ, कहीं दुख में डूब तो नहीं मरा ! गये तो वह एक-एक अशर्फी को बजा-बजाकर फेंक रहा था, भीड़ इकट्ठी हो गयी थी, लोग चमत्कृत हो रहे थे। तो उन्होंने आकर कहा कि वह एक-एक अशर्फी गिन-गिनकर फेंक रहा है।

तो रामकृष्ण गये और उससे कहा, 'नासमझ ! जब कोई इकट्ठा करता है तब तो गिनना समझ में आता है। लेकिन जब फेंकना ही है तो क्या गिनकर फेंकना ! नौ सौ निन्यानबे थीं कि हजार थीं, क्या फर्क पड़ता है ! कोई हिसाब रखना है पीछे कि कितनी फेंकीं, कि कितनी दान कीं ? अगर हिसाब रखना है तो फेंक ही मत, अपने घर ले जा। जब हिसाब ही नहीं छूटता है तो अशर्फियां छोड़ने से कुछ भी न होगा। असली चीज हिसाब का छूटना है; असली चीज अशर्फियों का छूटना नहीं है।'

जीसस ने कहा है : 'तुम्हारा एक हाथ जो दान करे, दूसरे हाथ को पता न पड़े।'

सूफी फकीर कहते हैं : 'नेकी कर, कुएं में डाल। हिसाब मत रख। किया भूल, कुएं में डाल दे। बात खत्म हो गयी, जैसे कभी हुई ही न थी।'

लेकिन तुम जाओ अपने त्यागियों के पास, महात्माओं के पास, तुम उनके पास पूरा हिसाब पाओगे। हिसाब ठीक भी नहीं पाओगे, बहुत बढ़ा-चढ़ाया हुआ है। हजार छोड़े होंगे तो लाख हो गये हैं। अब पूछता कौन है ? और त्याग की परीक्षा भी क्या है, कसौटी भी क्या है ? तुम्हारे पास लाख रुपये हैं तो तुम रुपये दिखा सकते हो; लेकिन जिसने लाख छोड़े हैं उसके पास प्रमाण क्या है कि उसने लाख छोड़े कि दस लाख छोड़े ? न केवल महात्मागण ऐसा करते हैं, महात्माओं के शिष्य उसको बढ़ाते चले जाते हैं।

महावीर ने महल छोड़ा, धन-संपत्ति छोड़ी, जैनियों ने जो शास्त्र लिखे हैं, उनमें इतना बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है, वह सरासर झूठ है। क्योंकि महावीर का साम्राज्य बड़ा छोटा-सा था, कोई बड़ा नहीं था। महावीर के समय भारत में दो हजार राज्य थे। कोई बहुत बड़ा नहीं था, एक छोटी डिस्ट्रिक्ट से ज्यादा नहीं, एक छोटे जिले से ज्यादा नहीं था। इतने हाथी-घोड़े जितने जैनियों ने लिखे हैं, अगर होते तो आदमियों के रहने की जगह न रह जाती। लेकिन बढ़-चढ़ जाता है।

कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध हुआ। हिंदू उसकी जो कहानी बताते हैं, उसको अगर सुनो तो ऐसा लगता है कि उस युद्ध के लिए पूरी पृथ्वी कम पड़ेगी। कुरुक्षेत्र का छोटा-सा मैदान, उसमें अट्ठारह अक्षौहिणी सेनाएं बन नहीं सकतीं; लड़ना तो दूर, अगर वे प्रेम भी करना चाहें, शांत खड़े होकर, तो भी संभव नहीं है। लड़ने के लिए थोड़ी जगह चाहिए, स्थान चाहिए ! लेकिन बढ़ता जाता है...।

बुद्ध के भक्तों ने जो लिखा है वह सच नहीं है, क्योंकि बुद्ध की भी जगह बड़ी छोटी थी, वह कोई बहुत बड़ा साम्राज्य नहीं था। लेकिन जिस तरह की कहानियां हैं... और कहानियां बढ़ती चली गयी हैं।

क्यों ? इन कहानियों को बढ़ाने का कारण क्या है ? कारण साफ है कि हम त्याग को भी धन की मात्रा से ही समझ पाते हैं, और कोई उपाय नहीं है।

समझो, अगर महावीर फकीर के घर पैदा होते और पास धन न होता, तो तुम कैसे जानते कि उन्होंने त्याग किया ? वे घर छोड़ देते, लेकिन त्यागी तो नहीं हो सकते थे। महात्यागी तुम कैसे कहते ? था ही नहीं कुछ तो छोड़ा क्या ?

तुम्हें भीतर के रहस्य तो दिखायी नहीं पड़ते, बस बाहर की चीजें दिखायी पड़ती हैं। तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि केवल धनी ही त्यागी हो सकते हैं। तब तो इसका अर्थ हुआ कि त्यागी होने के पहले बहुत धनी हो जाना जरूरी है। तब तो इसका अर्थ हुआ कि परमात्मा के जगत में भी अन्ततः धन का ही मूल्य है, उसी से हिसाब लगेगा।

एक फकीर ने सब छोड़ दिया, उसके पास दो पैसे थे। महावीर ने भी सब छोड़ दिया, उनके पास करोड़ रुपये थे। परमात्मा के सामने हिसाब में महावीर जीत जाएंगे, गरीब हार जाएगा। दो पैसे छोड़े ! इन्होंने करोड़ छोड़े !

नहीं, परमात्मा के राज्य में तुमने क्या छोड़ा, इसका सवाल नहीं है; छोड़ा या नहीं छोड़ा, बस इसका ही सवाल है; छोड़ा या छूटा, इसका ही सवाल है।

निरोध का अर्थ है : छूट जाता है।

जिन्होंने संसार के सत्य को देखा, उनके जीवन में निरोध आ जाता है। उस निरोध को नारद ने भक्ति का स्वभाव कहा।

'वह भक्ति कामनायुक्त नहीं है, और निरोधस्वरूपा है।' उसका स्वरूप है निरोध।

जैसे ही संसार से कामना हटती है, वही कामना परमात्मा की दिशा में प्रार्थना बन जाती है, वही ऊर्जा ! कोई अलग ऊर्जा नहीं है। वे ही हाथ जो भिक्षापात्र बने थे, प्रार्थना में जुड़ जाते हैं। वही हृदय जो धन-संपत्ति को मांगता फिरता था, परम अहोभाव में झुक जाता है। वही जीवन-ऊर्जा जो नीचे की तरफ भागती थी, खाई-खड्ड खोजती थी, आकाश की तरफ उठने लगती है।

'तेरी राह किसने बतायी न पूछ
दिले मुज्तरब राहबर हो गया।'

तेरी राह किसने बतायी, यह मत पूछ – प्यासा दिल संदगुरु हो गया; व्याकुल हृदय मार्गदर्शक बन गया !

'तेरी राह किसने बतायी न पूछ
दिले मुज्तरब राहबर हो गया।'

जिस दिन संसार से तुम्हारा रस टूटता है, व्याकुलता जगती है परमात्मा की। वही मार्गदर्शक हो जाता है। वही तुम्हें ले चलता है। उसी के सहारे लोग पहुंचते हैं।

संसार की मांग करता हुआ व्यक्ति उन हजार चीजों की मांग में चाहे तो परमात्मा की मांग को भी जोड़ ले सकता है, लेकिन वह फेहरिश्त में एक नाम होगा — लंबी फेहरिश्त में ! और मेरे खयाल से आखिरी होगा। अगर तुम्हारी फेहरिश्त में हजार नाम हैं तो वह एक हजार एक होगा।

मेरे पास लोग आ जाते हैं और वे कहते हैं, 'हम प्रार्थना करना चाहते हैं, समय कहां !' इन्हीं लोगों को मैं सिनेमा में बैठे देखता हूं। इन्हीं लोगों को मैं क्लब-घर में ताश खेलते देखता हूं। इन्हीं लोगों को अखबार को पढ़ते देखता हूं सुबह से उठकर। इन्हीं लोगों को व्यर्थ की गपशप में संलग्न देखता हूं। ये ही लोग हजार तरह के उपद्रव में जुड़ जाते हैं, लड़ाई-झगड़ों में जुड़ जाते हैं। हिंदू मुसलमानों को काटने लगते हैं, मुसलमान हिंदुओं को काटने लगते हैं। ये ही लोग ! लेकिन जब प्रार्थना का सवाल उठता है तो कहते हैं, 'समय कहां !'

वे क्या कह रहे हैं ? वे यह कह रहे हैं कि और बड़ी चीजें हैं परमात्मा से, समय पहले उनको दें, फिर बच जाए तो परमात्मा को दें। वे यह नहीं कह रहे हैं कि समय नहीं हैं; वे यह कह रहे हैं, समय तो है — समय तो सभी के पास बराबर है — लेकिन और चीजें ज्यादा जरूरी हैं। परमात्मा क्यू में बिलकुल अंतिम खड़ा है। पहले धन इकट्ठा कर लें, मकान बना लें, इज्जत-प्रतिष्ठा संभाल लें, फिर...। ऐसे परमात्मा प्रतीक्षा ही करता रहता है, 'फिर' कभी आता नहीं — आयेगा ही नहीं, क्योंकि इस संसार की दौड़ कभी पूरी नहीं होती।

यहां कुछ भी पूरा होनेवाला नहीं है। यहां तो जितना पीयो उतनी प्यास बढ़ती जाती है। यहां तो जितना भोजन करो उतनी भूख बढ़ती जाती है। यहां तो जितनी तिजोड़ी भरती जाए, उतना ही आदमी भीतर कृपण होता चला जाता है। दुनिया बड़ी अदभुत है ! यहां गरीब के पास तो अमीर का दिल मिल भी जाए, अमीर के पास बिलकुल गरीब का दिल होता है।

इन हजार उपद्रवों में अगर तुम सोचते हो कि परमात्मा को भी एक आकांक्षा बना लेंगे, तो संभव नहीं है। परमात्मा तो अभीप्सा बने, तो ही तुम अधिकारी होते हो। अभीप्सा का अर्थ होता है : सारी इच्छाएं उसी की इच्छा में परिणत हो जाएं; सारे नदी-नाले उसी के सागर में गिर जाएं; उसके अतिरिक्त कुछ भी न सूझे; उसके अतिरिक्त हृदय में कोई आवाज न रहे; उसके अतिरिक्त श्वासों में कोई स्वर न बजे; उसका ही एकतारा बजने लगे !

फकीरों के पास तुमने एकतारा देखा है। कभी सोचा न होगा, एकतारा प्रतीक है : परमात्मा के लिए एक ही तार काफी है। सितार में और बहुत तार होते हैं, वीणा में बहुत तार होते हैं और सारंगी में बहुत तार होते हैं — वे संसार के प्रतीक हैं; एकतारा, परमात्मा का।

बस एकतारा ! एक ही अभीप्सा का स्वर बजने लगे, दूसरी कोई ध्वनि भी न रह जाए, तो ही —

'रग रग में नेशे इश्क है, ऐ चारागर मेरे !
यह दर्द वह नहीं, कि कहीं हो, कहीं न हो।'
'रग रग में नेशे इश्क है, ऐ चारागर मेरे !
यह दर्द वह नहीं, कि कहीं हो, कहीं न हो।'

जब परमात्मा का दर्द तुम्हारे रग-रग में समा जाता है; जब तुम्हारा रोआं-रोआं उसी को पुकारता

है; सोते और जागते अहर्निश उसका ही स्मरण बना रहता है; करो कुछ भी, याद उसकी ही; जाओ कहीं, याद उसकी ही; बैठो कि उठो कि सोओ, याद उसकी ही – जब रग-रग में ऐसा समा जाता है, तभी तुमने पात्रता पायी, तभी तुम अधिकारी हुए।

और ध्यान रखना, आज नहीं कल, इस महाक्रांति में उतरना ही पड़ेगा। लाख तुम कोशिश करो इस संसार को घर बना लेने की, सफलता मिलनेवाली नहीं है। कोई कभी सफल नहीं हो पाया। सपने को सच कितना ही मानो, सपना एक दिन टूटता ही है। सपने का स्वभाव ही टूट जाना है। तुम उसे सच मानकर थोड़ी-बहुत देर नींद ले सकते हो, लेकिन सदा के लिए यह नींद नहीं हो सकती। सपने का स्वभाव ही शुरू होना, समाप्त होना है। इस संसार को, तुम लाख कोशिश करो... हम सब कोशिश कर रहे हैं... हम, हमारी सारी कोशिश यही है कि बुद्ध, नारद, मीरा, इन सबको हम गलत सिद्ध कर दें।

हम सबकी कोशिश क्या है ? हमारी कोशिश यही है कि हम सिद्ध कर देंगे कि, संसार में सुख है; हम सिद्ध कर देंगे कि परमात्मा आवश्यक नहीं है; हम सिद्ध कर देंगे कि जीवन परमात्मा के बिना पर्याप्त है; हम सिद्ध कर देंगे कि धन में है कुछ, कि यह सपना नहीं है, माया नहीं है, सत्य है।

छोड़ो इस मूढ़ता को, कभी कोई कर नहीं पाया ! लेकिन इस करने की कोशिश में लोग अपने जीवन को गंवा देते हैं।

'हजार तरह तखय्युल ने करवटें बदली
कफस कफस ही रहा, फिर भी आशियां न हुआ।'

नहीं, यह घर न बन पाएगा। यह जगह कारागृह है, यह घर न बन पाएगी। यहां तुम अजनबी हो। यहां तुम लाख उपाय करो, और कल्पनाएं कितनी ही करवटें बदलें, हजार तरह से कल्पनाएं, सपने को संजोएं, लेकिन यह जाल कल्पना का ही रहेगा।

कल्पना तुम्हारी है; सत्य परमात्मा का है। जब तक तुम सोचोगे-विचारोगे, तब तक तुम सपने में रहोगे। जब तुम सोच-विचार छोड़ोगे और जागोगे, तब तुम जानोगे, सत्य क्या है!

सत्य मुक्तिदायी है। और जो मुक्त करे वही घर है। जहां स्वतंत्रता हो वही घर है।

कारागृह में और घर में फर्क क्या है ? दीवालें तो उन्हीं ईंटों की बनी हैं, दरवाजे उन्हीं लकड़ियों के बने हैं।

कारागृह और घर में फर्क क्या है? घर में तुम मुक्त हो; कारागृह में तुम मुक्त नहीं हो – बस इतना ही फर्क है।

घर स्वतंत्रता है; कारागृह गुलामी है।

'हजार तरह तखय्युल ने करवटें बदलीं
कफस कफस ही रहा, फिर भी आशियां न हुआ।'

कारागृह में तुम बदलते रहो कल्पनाएं अपनी, सोचते रहो, जाले बुनते रहो सपनों के, सजाते रहो भीतर से कारागृह को – नहीं, घर न हो पाएगा।

जो जितनी जल्दी जाग जाए इस संबंध में उतना ही सौभाग्यशाली है; जितनी देर लगती है उतना ही समय व्यर्थ जाता है; जितनी देर लगती है उतनी ही गलत आदतें मजबूत होती चली जाती हैं; जितनी

देर लगती है उतने ही बंधन और भी सख्त होते चले जाते हैं और तुम्हारी शक्ति क्षीण होती चली जाती है उन्हें तोड़ने की। इसलिए बुढ़ापे की प्रतीक्षा मत करना। अगर समझ आए तो जब समझ आ जाए, क्षण-भर भी स्थगित मत करना उस समझ को।

'लौकिक और वैदिक समस्त कर्मों के त्याग को निरोध कहते हैं।'

संस्कृत का मूल बहुत अदभुत है! हिंदी में अनुवाद जो लोग करते हैं, उन्हें त्याग और निरोध का कोई भेद साफ नहीं है।

संस्कृत का मूल कहता है :

लोक, वेद, व्यापार, इस सबका निरोध हो जाए, न्यास हो जाए, वही भक्ति है।

इसे समझें हम।

'इस लोक और परलोक के व्यापार का निरोध हो जाए...।'

इस लोक का व्यापार है : धन की दौड़ है, पद की दौड़ है। परलोक का भी व्यापार है : सुख, आनंद, मोक्ष, वे भी यात्रा ही हैं, वे भी दौड़ हैं। किसी तरह इस संसार से तुम ऊबते हो, ऊब नहीं पाए कि तुम दूसरे संसार के सपने देखने शुरू कर देते हो। इसी तरह सपने देखनेवालों ने स्वर्ग बनाये, स्वर्ग में हजार कल्पनाओं को जगह दी, जो-जो यहां पूरा नहीं हो पाया है, वह-वह वहां रख लिया है। और कभी-कभी तो कल्पनाएं बड़ी मूढ़तापूर्ण मालूम होती हैं कि विचारो तो बड़ी हैरानी होती है।

मुसलमान कहते हैं, उनके स्वर्ग में बहिश्त में, शराब के चश्मे बह रहे हैं। यहां पीने नहीं देते। यहां कहते हैं पाप और वहां चश्मे बहाते हैं। तुम सोच सकते हो, बात बिलकुल सीधी है, यह चश्मों की कल्पना किसने की होगी। यह उन्होंने की है जिनको यहां पीने में रस था और त्याग कर दिया। यह सीधी-सी बात है, सीधा मनोविज्ञान है। यहां पीना चाहते थे, लेकिन डर की वजह से पी न पाये। यहां पीना चाहते थे, लेकिन धार्मिक शिक्षण की वजह से पी न पाये। यहां पीना चाहते थे लेकिन हिम्मत न जुटा पाये, तो अब स्वर्ग में चश्मे बहा रहे हैं। यहां चुल्लू-चुल्लू मिलती है, वहां डुबकी लगाएंगे।

'जाहिद के कस्रे-जुहूद की बुनियाद है यही
मस्जिद बहुत करीब थी, मैखाना दूर था।'

वह जिनको तुम त्यागी समझते हो, उनके त्याग में अधिकतर तो कारण यही है कि मस्जिद करीब थी और मधुशाला दूर थी... इतना ही। इसका अर्थ यह हुआ कि धर्म का शिक्षण देनेवाले लोग तो पास थे, शराब का विज्ञापन करनेवाले लोग दूर थे। मां-बाप, समाज, परिवार, मंदिर-मस्जिद, स्कूल-विद्यालय, वे सब शराब के खिलाफ हैं, वे सब मस्जिद और मंदिर के पक्ष में हैं। इसलिए बैठ तो गये मंदिर में, बैठ तो गये मस्जिद में, लेकिन मन का राग, मन की कामना, कोई शिक्षण से थोड़े ही मिटती है, अनुभव से मिटती है। सोचते तो शराब की ही हैं; यहां नहीं मिली, तो अब कल्पना में फैलाव करते हैं : स्वर्ग में मिलेगी!

हिंदुओं का स्वर्ग है...।

और बड़े मजे की बात है, अगर तुम किसी भी जाति का स्वर्ग ठीक से पहचान लो तो तुम यह भी समझ जाओगे : उस जाति ने किन-किन चीजों की वर्जना की है। उस जाति के शास्त्रों को

पढ़ने की जरूरत नहीं, उनका स्वर्ग समझ लो, फौरन पता चल जाएगा कि इस जाति ने किन-किन चीजों को जबरदस्ती त्यागा है।

... हिंदुओं के स्वर्ग में कल्पवृक्ष है, जहां सभी कामनाएं पूरी हो जाती हैं, बैठ जाओ उसके नीचे बस! ऐसा भी नहीं कि कुछ समय का फासला पड़ता हो; समय लगता ही नहीं है। तुमने यहां कामना की कि वहां पूरी हुई! तुमने कहा, 'भोजन आ जाए', थाल आ गये! बस तुम यहां कह भी नहीं पाये थे और थाल मौजूद हो गये।

हिंदुओं के स्वर्ग में कल्पवृक्ष है — क्यों? क्योंकि हिंदुओं ने सभी इच्छाओं के त्याग का आग्रह किया है। सभी इच्छाओं का त्याग! स्वभावतः जो किसी तरह अपने को समझा-बुझाकर त्यागी हो जाएगा, वह इसी आशा में जी रहा है कि कभी तो मरेंगे, यह देह तो कोई ज्यादा दिन चलनेवाली नहीं है, और कुछ साल बीत जाएं, फिर कल्पवृक्ष है! फिर उसके नीचे बैठ जाएंगे!

तुमने कभी देखा, दिन में कभी उपवास कर लो तो तुम रात-भर भोजन के सपने देखते हो! ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो तो सपने में स्त्रियां ही स्त्रियां दिखायी पड़ती हैं।

ये सपने हैं : कल्पवृक्ष! शराब के चश्मे! ये इस बात की खबर दे रहे हैं कि तुमने किस-किस चीज को जबरदस्ती छोड़ दिया है — अनुभव से नहीं, पक कर नहीं। संस्कार, शिक्षण, दबाव... !

'मस्जिद बहुत करीब थी, मैखाना दूर था!' उतने दूर जाने की तुम हिम्मत न जुटा पाये। जाते तो प्रतिष्ठा दांव पर लगती थी। तो तुमने एक तरकीब निकाली कि यहां मस्जिद में रहो, स्वर्ग में मयखाने में रह लेंगे। ऐसे तुमने अपने को समझाया। ऐसे तुमने समझौता किया।

तुम्हारे स्वर्ग तुम्हारी कल्पनाओं के जाल हैं, और तुम्हारे नरक...? स्वर्ग तुमने अपने लिए बनाये हैं और नरक दूसरों के लिए — वे भी बड़े विचारणीय हैं।

हिंदुओं का नरक है, तो वहां भयंकर आग जल रही है, सतत अग्नि जलती है, बुझती नहीं। उसमें जलाये जा रहे हैं लोग। भारत गरमी से पीड़ित देश है। यहां सूर्य तपता है। तो शीतलता स्वर्ग में... शीतल मंद बयार बहती है! सुबह ही बनी रहती है स्वर्ग में, दोपहर नहीं आती। बस सुबह की ही ताजगी बनी रहती है। फूल खिलते हैं, मुरझाते नहीं। और शीतल हवा बहती रहती है। नरक में भयंकर लपटें हैं। वह गरम देश की धारणा है।

तिब्बती, वे नहीं बनाते, वे नहीं कहते कि नरक में लपटें हैं। उनका स्वर्ग गरम और ऊष्ण है, क्योंकि ठंडे मुल्क के लोग मरे जा रहे हैं ठंड से; नरक में बर्फ-ही-बर्फ जमी है; उसमें लोग गल रहे हैं बर्फ में!

न तो कहीं कोई स्वर्ग है, न कहीं कोई नरक है। स्वर्ग तुम बनाते हो अपने लिए। जो-जो कामनाएं तुम पूरी करना चाहते थे और नहीं कर पाये, तो तुम स्वर्ग में कर लेते हो। स्वर्ग हिंदुओं का बिलकुल एयरकंडीशंड है, वातानुकूलित है। वहां कोई ताप नहीं लगती। पसीना नहीं आता स्वर्ग में — पसीना आता ही नहीं।

और जो तुम छोड़ दिये हो, अपने लिए कल्पना कर रहे हो, और दूसरों ने नहीं छोड़ा... समझो कि तुम शराब पीना चाहते थे और नहीं पी पाये, तो तुमने अपने लिए तो स्वर्ग में इंतजाम कर लिया

और जो पी रहे हैं, उनके लिए क्या करोगे? उनको भी दण्ड तो मिलना ही चाहिए, क्योंकि तुमने त्याग किया, उन्होंने त्याग नहीं किया, तो उनको नरक की लपटों में जलाया जाएगा। और वहां शराब तो दूर, पानी भी पीने को न मिलेगा। आग की लपटें होंगी, कंठ आग से भरा होगा, और पानी नहीं मिलेगा! पानी की बूंद नहीं मिलेगी!

इससे पता चलता है तुम्हारे मन का, तुम्हारी खुद की परेशानी का, तुम्हारी हिंसा का, तुम्हारी वासना का। न किसी स्वर्ग का इससे पता चलता है, न किसी नरक का इससे पता चलता है।

भक्ति तो उसे उपलब्ध होती है जिसको न इस संसार की कोई कामना रही न उस संसार की। जिसकी कामना का व्यापार निरुद्ध हो गया; जिसने कहा, 'अब हमें कुछ मांगना ही नहीं है, न यहां न वहां', मांग ही छोड़ दी – उसे सब मिल जाता है 'यहीं'।

'उस प्रियतम भगवान में अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषय में उदासीनता को भी निरोध कहते है।'

बिलकुल ठीक।

'उस प्रियतम भगवान में अनन्यता'...! जैसे हम उसके साथ एक हो गये, अनन्य! जरा भी भेद न रह जाए! रत्ती-भर भी फासला न रह जाए! मैं और तू का भी फासला न रह जाए!

'उस प्रियतम में अनन्यता अपने आप ही उसके प्रतिकूल विषय में उदासीनता बन जाती है।'

'उदासीनता' शब्द को समझ लेना जरूरी है। उदासीनता निरोध का मार्ग है।

जिसको तुम त्यागी कहते हो, वह उदासीन नहीं होता। जो आदमी शराब का त्याग करता है, वह शराब के प्रति उदासीन नहीं होता; शराब के प्रति बड़े विरोध में होता है – उदासीन कैसे होगा? विरोध में होता है।

उदासीन का तो अर्थ है: हमें कोई प्रयोजन नहीं। विरोध का अर्थ है: शराब जहर है।

जो आदमी कामवासना में उदासीन होता है, वह कामवासना के विरोध में नहीं होता। अगर कोई दूसरा कामवासना में जा रहा है तो इससे उसके मन में निंदा पैदा नहीं होती – 'यह उसकी मर्जी है! यह उसकी समझ है! उसका समय न आया होगा, कभी आयेगा।' उस पर करुणा आ सकती है, क्रोध नहीं आता।

जो आदमी धन में उदासीन है, उसके मन में धन की कोई निंदा नहीं होती। वह धन को पाप नहीं कहता। वह इतना ही कहता है कि धन की उपयोगिता है, लेकिन वह उपयोगिता बड़ी क्षणिक है। वह इतना ही कहता है कि धन सब कुछ नहीं है। वह यह नहीं कहता कि धन कुछ भी नहीं है। वह इतना ही कहता है, संसार में उपयोगी होगा; लेकिन संसार सब कुछ नहीं है। वह धन के विरोध में नहीं है।

ऐसे त्यागी हैं कि अगर उनके सामने तुम रुपये ले जाओ तो वे आंख बंद कर लेते हैं। अब यह उदासीनता न हुई। ऐसे त्यागी हैं जो धन को हाथ से नहीं छूते। यह उदासीनता न हुई।

एक आदमी मुझे मिलने आया – एक संन्यासी। कोई दो वर्ष हुए। तो मैंने उन्हें कहा कि ठीक है, कभी एक शिविर में आ जाओ तो ध्यान करो। उन्होंने कहा कि यह जरा मुश्किल है। उनके साथ

एक आदमी और था। तो मैंने पूछा, 'इसमें क्या मुश्किल है?'

उन्होंने कहा, 'मैं पैसा नहीं छूता। तो ट्रेन में सफर करो तो टिकट भी खरीदनी पड़ती है।'

तो मैंने कहा, 'तुम यहां तक कैसे आये?'

तो वे बोले, 'यह आदमी साथ है। पैसे यह रखता है; मैं छूता भी नहीं। तो यह साथ आने को तैयार हो तो ही मैं शिविर में आ सकता हूं।

अब यह तो पैसे से भी ज्यादा बड़ी गुलामी हो गयी। पैसा, और यह आदमी भी उलटा... ! इससे तो अकेले पैसे की गुलामी भी ठीक थी, अब यह कम-से-कम आदमी एक और उपद्रव है। और पैसे इन्हीं के हैं, रखता वह है! यह दोहरी गुलामी हुई!

उदासीनता का अर्थ है : हो तो हो ठीक, न हो तो न हो ठीक। उदासीनता में कोई पक्षपात नहीं है। उदासीनता बड़ी अदभुत बात है। वह वैराग्य का परम लक्षण है।

इसलिए अगर तुम किसी वैरागी में पाओ उदासीनता की जगह विरोध, तो समझना कि चूक हो गयी। अगर वह घबड़ाये तो समझना कि रस कायम है; जिस चीज से घबड़ाता है उसी का रस कायम है। अगर धन छूने से डरे तो समझना कि धन का लोभ भीतर मौजूद है। अगर स्त्री को देखने से डरे तो समझना कि कामवासना भीतर मौजूद है। क्योंकि हम उसी से डरते हैं जिसमें गिरने की हमें संभावना मालूम होती है, शंका मालूम होती है।

उदासीनता का अर्थ है : कोई फर्क नहीं पड़ता।

ऐसा हुआ कि बुद्ध एक वृक्ष के नीचे ध्यान करते थे, पूर्णिमा की रात थी, और पास के नगर से कुछ युवक, धनपतियों के लड़के, एक वेश्या को लेकर जंगल में आ गये थे – मौज-रंग करने! वे तो शराब पीकर मस्त हो गये, वेश्या ने मौका देखा कि वे तो शराब पीकर होश खो दिये हैं, वह भाग खड़ी हुई।

जब सुबह होने के करीब आयी और उनको ठंड लगी और होश आया और देखा कि वह वेश्या तो भाग गयी है, तो वे उसकी खोज में निकले। उसी रास्ते पर बुद्ध ध्यान करते थे, उनके पास आये और उन्होंने कहा कि 'यहां से कोई स्त्री तो नहीं निकली?'

बुद्ध ने कहा, 'कोई निकला जरूर, लेकिन स्त्री थी या पुरुष, यह जरा कहना मुश्किल है – क्योंकि मेरा रस ही न रहा। कोई निकला जरूर, लेकिन स्त्री थी या पुरुष, इसमें मेरा रस न रहा।'

यह उदासीनता है।

बुद्ध ने कहा कि जब तक मेरा रस था, तब तक गौर से देखता भी था : कौन कौन है! अब मेरा कोई रस नहीं है।

जब रस खो जाता है तो सिर्फ एक उदासीनता होती है, एक शांति तुम्हें घेर लेती है। उसमें कोई पक्षपात नहीं होता।

'उस प्रियतम में अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषय में उदासीनता को भी निरोध कहते हैं।'

> 'पीना-न-पीना एक है ज़ाहिद! खता मुआफ
> नीयत जब एतबार के काबिल नहीं रही।'

जब तक नीयत पर एतबार न हो, जब तक अपने भीतर की स्थिति पर भरोसा न हो तब तक तुम कसमें भी ले लो, तो कुछ फर्क नहीं पड़ता; व्रत धारण कर लो, कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि असली बात तो नीयत है। तुम पियो न पियो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; घर में रहो कि बाहर रहो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; पूजा करो कि न करो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता – असली सवाल तुम्हारे भीतर की नीयत का है। अगर नीयत साफ है तो तुम कहीं भी रहो, मंदिर ही पाओगे। अगर नीयत साफ नहीं है, तो तुम मंदिर में रहो, तुम वेश्यागृह में ही रहोगे। क्योंकि आदमी अपनी नीयत में रहता है, अपने भीतर की मनोदशा में रहता है।

'उस प्रियतम में अनन्यता...।'

'कैसी तलब, कहां की तलब, किसलिए तलब
हम हैं तो वह नहीं है, वह है तो हम नहीं।'

एक ही बच सकता है प्रेम में, दो नहीं। या तो परमात्मा बचेगा तो तुम न बचोगे, या तुम बचोगे तो परमात्मा न बचेगा।

'कैसी तलब, कहां की तलब, किसलिए तलब
हम हैं तो वह नहीं है, वह है तो हम नहीं।'

अनन्यता का अर्थ है : एक ही बचेगा।

'प्रेम गली अति सांकरी तामे दो न समाय' – उसमें दो नहीं समा सकते।

तो भक्त धीरे-धीरे भगवान हो जाता है, भगवान धीरे-धीरे भक्त हो जाता है।

रामकृष्ण पूजा करते हैं तो भोग लगाने के पहले खुद चख लेते हैं। मंदिर के ट्रस्टियों ने बुलाया कि 'यह तो पूजा न हुई। किस शास्त्र में लिखा है? भगवान को भोग पहले लगाओ, फिर जो बचे, वह तुम भोजन करो। लेकिन यह तो बात तो गलत हो रही है। यह उलटा हो रहा है। तुम भगवान को झूठा भोग लगा रहे हो! तुम पहले चखते हो।'

रामकृष्ण ने कहा, 'संभाल लो फिर अपनी नौकरी, मैं चला। क्योंकि मेरी मां जब भी भोजन बनाती थी तो पहले खुद चखती थी, फिर मुझे देती थी। जब मां का प्रेम इतनी फिक्र करता था तो यह प्रेम तो उससे भी बड़ा है। मैं बिना चखे भोग नहीं लगा सकता भगवान को, पता नहीं लगाने योग्य है भी या नहीं!'

ऐसी अनन्यता, ऐसी निकटता, इतनी समीपता, कि धीरे-धीरे सीमाएं खो जाएं!

तो कभी ऐसा होता कि रामकृष्ण दिन-भर नाचते रहते और कभी ऐसा होता कि पखवाड़ा बीत जाता और मंदिर में न जाते। फिर बुलाये गये कि यह क्या मामला है, मंदिर खाली पड़ा रहता है, पूजा नहीं होती। रामकृष्ण कहते, 'जब होती है तब होती है, जब नहीं होती तब नहीं होती। जब 'वह' बुलाता है और जब अनन्यता का भाव जगता है तभी...। जब दूरी रहती है, तब क्या सार? जब मैं रहता हूं तब पूजा किसकी? जब वही बचता है तभी होती है। अब यह मेरे हाथ में नहीं है कि वही बचे। जब होता है तब होता है। सहजस्फूर्त है!'

रामकृष्ण जैसा पुजारी फिर किसी मंदिर को न मिलेगा। दक्षिणेश्वर के भगवान धन्यभागी हैं कि

रामकृष्ण जैसा पुजारी मिला।

अनन्य-भाव का अर्थ है : 'मैं' और 'तू' दो नहीं, एक ही बचता है। वस्तुतः दोनों तरफ से प्रेमी-प्रेयसी या भक्त और भगवान, दोनों खोते हैं और दोनों के बीच में एक नये सत्य का आविर्भाव होता है, एक नये ज्योतिर्मय चैतन्य का आविर्भाव होता है, जिसमें भक्त भी खो गया होता है एक कोने से, दूसरे कोने से भगवान भी खो गया होता है।

भक्त और भगवान तो द्वैत की भाषा है; भक्ति तो अद्वैत है।

'उस प्रीतम में अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषय में उदासीनता को भी निरोध कहते हैं।'

और जिसने भी उसके साथ ऐसी एकतानता साध ली, वह संसार के प्रति उदासीन हो जाता है; छोड़ना नहीं पड़ता संसार, त्यागना नहीं पड़ता संसार, सब छूट जाता है, व्यर्थ हो जाता है; सार्थकता ही नहीं रह जाती, छोड़ने को क्या बचता है!

'अपने प्रीतम को छोड़कर दूसरे आश्रयों के त्याग का नाम अनन्यता है।'

परमात्मा तुम्हें ऐसा भर दे कि तुम्हारे भीतर कोई रत्ती-भर जगह न बचे जो उससे भरी हुई नहीं है, तुम लबालब उससे भर जाओ, तुम ऊपर से बहने लगो ऐसे भर जाओ, कोई दूसरा आश्रय न बचे, किसी दूसरे की तरफ कोई और लगाव न रह जाए , सभी लगाव उस एक के प्रति ही समर्पित हो जाएं...!

'अपने प्रीतम को छोड़कर दूसरे आश्रयों के त्याग का नाम अनन्यता है।'

'देखता था मैं निगाहों से हर एक जा तुझको
देखता था मैं निगाहों से हर एक जा तुझको
और उन्हीं में तू निहां था, मुझे मालूम न था।'

'आंखों से खोजता था तुझे सब जगह और यह मुझे पता नहीं था कि तू मेरी आंखों में ही बैठा हुआ है! तू खोजनेवाले में ही छिपा है। तू मेरे देखने में ही छिपा है। और मैं निगाहों से खोजता था हर एक जा तुझको, और यह पता न था...।'

तुम जब तक परमात्मा को बाहर खोज रहे हो, खोज न पाओगे। वह उन निगाहों में ही छिपा है, उस दृष्टि में ही, उस देखने की क्षमता में ही! वह तुम्हारे होश में छिपा है। वह तुम्हारे होने में छिपा है।

'देखता था मैं निगाहों से हर एक जा तुझको
और उन्हीं में तू निहां था, मुझे मालूम न था।'

तुम मंदिर हो।

परमात्मा को खोजने किसी और मंदिर में जाने की जरूरत नहीं है। अपने ही भीतर डूब कर पाया है, जिन्होंने भी पाया है।

अगर तुम सारे आसरे छोड़ दो, सारे सहारे छोड़ दो, तो तुम अपने में ही डूब जाओगे। जो भी तुम पकड़े हो आसरे की तरह, वही तुम्हें अपने से बाहर अटकाये हुए है। धन का आसरा है, पद का आसरा है, मित्र का आसरा है, संगी-साथियों का, परिवार का आसरा है, पति-पत्नी का आसरा है! जिन-जिन आसरों को तुम सोच रहे हो कि ये सहारे हैं, सुरक्षा हैं, वही तुम्हें बाहर अटकाये हैं।

छोड़ दो सब आसरे !
बे-आसरे हो जाओ !
बे-सहारा हो जाओ !
असहाय हो जाओ !

और अचानक तुम पाओगे : तुम्हें अपने ही भीतर वह भूमि मिल गयी जिसे जन्मों-जन्मों खोजते थे और न पाते थे; अपने ही भीतर वह हाथ मिल गया जो शाश्वत है। अब किसी और आसरे की कोई जरूरत न रही।

'लौकिक और वैदिक कर्मों में भगवान के अनुकूल कर्म करना ही उसके प्रतिकूल विषय में उदासीनता है।'

और फिर ऐसा व्यक्ति, जिसकी अनन्यता सध गयी परमात्मा से, जिसका तार मिल गया, तन्मयता बंध गयी, एक सामंजस्य आ गया, हाथ परमात्मा के हाथ में हो गया जिसका — ऐसा व्यक्ति फिर उसके ही अनुकूल कर्म करता है, 'वह' जो करवाता है वही करता है। फिर उसका अपना कर्त्ता-भाव चला जाता है। फिर वह कहता है, 'जो वह करवाये ! जो उसकी मर्जी ! जो नाच नचाये, वही मेरा जीवन है।' फिर अपनी तरफ से निर्णय लेना, अपनी तरफ से विचार करना, संभव नहीं है।

'विधि-निषेध से अतीत अलौकिक प्रेम प्राप्ति का मन में दृढ़ निश्चय हो जाने के बाद भी शास्त्र की रक्षा करनी चाहिए, अन्यथा गिर जाने की संभावना है।'

यह सूत्र महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि ऐसा घटता है। जब तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम परमात्मा के अनुसार चलने लगे, जब तुम्हें ऐसा लगता है कि अब तो तुम एक हो गये, तो सारी विधि-निषेध के पार हो गये, अब समाज का कोई नियम तुम पर लागू नहीं होता।

सच है, कोई नियम लागू नहीं होता; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि तुम नियम छोड़कर चलने लगो। तुम पर नियम नहीं लागू होता, समाज तो अब भी नियम में जीता है। तुम जिस समाज में हो, उस समाज के लिए तुम अड़चन मत बनो, सहारा बनो; उस समाज के लिए तुम उपद्रव का कारण न बनो, मार्ग बनो।

इसलिए नारद कहते हैं, 'विधि-निषेध से अतीत... ।' कोई नियम लागू नहीं होता प्रेम पर, भक्त पर। वह पहुंच गया वहां, सब नियमों के पार, परम नियम उसे मिल गया प्रेम का, अब उस पर कोई नियम लागू नहीं होता। लेकिन फिर भी, अगर वह रास्ते पर चले तो उसे बाएं ही चलना चाहिए, क्योंकि सारा ट्रेफिक बाएं ही चल रहा है। अगर वह दाएं चलने लगे, वह कहे कि हम तो भक्ति को उपलब्ध हो गये, तो खतरा है — खतरा है पतन का। असल में इस तरह का आग्रह वही आदमी करेगा जो अभी उपलब्ध ही नहीं हुआ है, वस्तुतः उपलब्ध नहीं हुआ है। क्योंकि उपलब्ध होकर तो कोई नहीं गिरता, असंभव है गिरना।

इसे थोड़ा गौर से समझ लेना।

जो उपलब्ध नहीं हुआ है परमात्मा को, वही इस तरह का आग्रह करेगा कि मुझ पर तो कोई नियम लागू नहीं होता। यह अहंकार की नयी उदघोषणा है। यह अहंकार का नया खेल शुरू हुआ।

एक नया संसार चला अब। वह कहेगा, 'मुझ पर कोई नियम लागू नहीं होता। मैं तो अब उसके ही सहारे जीता हूं। इसलिए जो 'वह' करवाता है वही करता हूं।

इसकी आड़ में कहीं तुम अपने अहंकार को मत छिपा लेना। कहीं ऐसा न हो कि यह भी धोखा हो तुम्हारा।

इसलिए सूत्र कहता है : सजग रहना। ऐसी स्थिति भी आ जाये कि तुम विधि-निषेध के पार हो जाओ, तो भी शास्त्र की रक्षा जारी रखना। उस रक्षा में तुम्हारी रक्षा है। उस रक्षा में दूसरों की रक्षा तो है ही, तुम्हारी भी रक्षा है। क्यों ? क्योंकि तुम अपने अहंकार को सजाने-संवारने का नया उपाय न पा सकोगे।

और स्मरण रखना, जो विधि-निषेध के पार हो गया, वह विधि-निषेध को तोड़ने की चिंता में नहीं पड़ता। जो पार ही हो गया, वह चिंता क्या करेगा तोड़ने की! वह कमल जैसा पार हो जाता है पानी के। जो पार हो गया है वह जीवन को चुपचाप स्वीकार कर लेता है जैसा है; लोग जैसे जी रहे हैं, ठीक है।

छोटे बच्चे खिलौनों से खेल रहे हैं, तुम वहां जाते हो, तुम जानते हो, वे खिलौने हैं; तुम जानते हो, खेल के नियम सब बनाये हुए हैं। लेकिन बाप भी छोटे बच्चों के साथ जब खेलता है तो खेल के नियम मानता है। वह यह नहीं कह सकता कि मैं कोई छोटा बच्चा नहीं हूं, मैं नियम के बाहर हूं। छोटे बच्चों के साथ छोटे बच्चों की तरह ही व्यवहार करेगा – यही प्रौढ़ का लक्षण है।

तो जो व्यक्ति वस्तुतः भक्ति के परम सूत्र को उपलब्ध होता है, वह तोड़ नहीं देता जीवन की व्यवस्था को। वह कोई अराजकता नहीं ले आता।

जीसस ने कहा है कि मैं शास्त्र को खंडित करने नहीं, पूर्ण करने आया हूं।

वह शास्त्र के मूल स्वभाव का पुनः पुनः उदघाटन करता है। वह शास्त्र के खो गये सूत्रों को पुनः पुनरुज्जीवित करता है। वह शास्त्र पर जम गयी धूल को हटाता है। वह शास्त्र के दर्पण को निखारता है ताकि फिर तुम शास्त्र के दर्पण में अपने चेहरे को देख सको, फिर तुम अपने को पहचान सको। सदियों में शास्त्र पर जो धूल जम जाती है, सदियों में शास्त्र पर जो व्याख्या की परतें जम जाती हैं, उनको फिर वह अलग कर देता है, लेकिन शास्त्र की रक्षा करता है। क्योंकि शास्त्र तो उनके वचन हैं जिन्होंने जाना। वे बुद्धपुरुषों के वचन हैं। व्याख्याएं कितनी ही गलत हो गयी हों, लोगों ने कितना ही गलत अर्थ लिया हो; लेकिन मूल तो बुद्धपुरुषों से आता है, मूल तो गलत नहीं हो सकता।

मुझसे लोग पूछते हैं कि मैं क्यों शास्त्रों की व्याख्या कर रहा हूं। इसीलिए कि जो धूल जमी हो वह अलग हो जाए, ताकि मैं तुम्हें उनका खालिस सोना जाहिर कर सकूं। अगर मैं तुम्हें कभी शास्त्र के विपरीत भी मालूम पड़ूं, तो समझना कि तुम्हारे समझने में कहीं भूल हो गयी है; तो समझना कि तुमने शास्त्र का जो अर्थ समझा था वह अर्थ शास्त्र का न था, इसलिए मैं विपरीत मालूम पड़ रहा हूं। अन्यथा मैं भी तुमसे कहता हूं कि शास्त्र का खंडन करने नहीं, शास्त्र का शुद्धतम स्वरूप आविष्कृत करने की सारी चेष्टा है।

'लौकिक कर्मों को भी तब तक (बाह्य ज्ञान रहने तक) विधिपूर्वक करना चाहिए, पर भोजनादि

कार्य, जब तक शरीर रहेगा, होते रहेंगे।

जो बाह्य कर्म हैं, उन्हें साधारणतः जैसी विधि हो, जैसी समाज की धारणा हो, वैसे ही करते जाना चाहिए – बाह्य ज्ञान रहने तक ! क्योंकि भक्ति में ऐसी घड़ियां भी आती हैं जब बाह्य ज्ञान बिलकुल खो जाता है, तब सूत्र लागू नहीं होता। क्योंकि ऐसी भी घड़ियां आती हैं जब मस्ती ऐसे शिखर छूती है कि बाह्य ज्ञान हीं नहीं रह जाता। रामकृष्ण छह-छह दिन के लिए बेहोश हो जाते थे। तब फिर अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। तब वे अपने में इतने लीन हो जाते थे, इतने दूर निकल जाते थे कि उनके शरीर को ही संभालकर रखना पड़ता था।

'लेकिन भोजनादि कार्य तब तक होते रहेंगे जब तक शरीर है।'

इस सूत्र से यह समझ लो कि जीवन में वासना तो हटनी चाहिए, जरूरतें हटाने का सवाल नहीं है। भोजन तो जरूरी है। वस्त्र जरूरी हैं। छप्पर जरूरी है। जो जरूरी है, उसका कोई निषेध नहीं है; निषेध है गैरजरूरी का, जो कि केवल मन की आकांक्षा से पैदा होता है, जिसके बिना तुम रह सकते थे, मजे से रह सकते थे, जिसके बिना कोई अड़चन न पड़ती थी, शायद और भी मजे से रह सकते।

एक बहुत बड़ा विचारक हुआ : अल्डुअस हक्सले। कैलीफोर्निया में उसका मकान था, और जीवन-भर उसने बड़ी बहुमूल्य चीजें इकट्ठी की थीं – पुराने शास्त्र, बहुमूल्य अनूठी कितााबें, चित्र, पेंटिंग, मूर्तियां, शिल्प। बड़ा संवेदनशील व्यक्ति था। उसके पास बहुमूल्य भंडार था अनूठी चीजों का। सारे संसार से उसने इकट्ठा किया था। उसकी कीमत कूतनी आसान नहीं। अचानक एक दिन आग लग गयी और सब जलकर राख हो गया।

अल्डुअस हक्सले ने कहा कि मैंने तो सोचा था कि मैं मर जाऊंगा इसके दुख से, लेकिन अचानक, जिसकी कभी अपेक्षा भी न की थी, ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे एक बोझ हलका हो गया। एक बोझ ! वह खुद भी चौंका यह अनुभव देखकर। सामने ही जल रहा है उसका विशाल संग्रहालय और वह सामने खड़ा है लपटों के, और उसने कहा कि मुझे लगा कि मैं एकदम हलका हो गया हूं और मुझे ऐसा लगा जैसे मैं स्वच्छ हो गया हूं। 'आइ फैल्ट क्लीन'। एक ताजगी !

तुम्हें पता नहीं है कि बहुत-सी गैरजरूरी चीजों ने तुम्हें जीवन तो नहीं दिया है, बोझ दिया है। उनके बिना तुम ज्यादा स्वस्थ हो सकते थे। उनके बिना तुम ज्यादा प्रसन्न हो सकते थे। उन्होंने सिर्फ तनाव दिया है, चिंता दी है।

जरूरत को छोड़ने का कोई सवाल नहीं है। भक्ति कोई जबरदस्ती त्याग नहीं सिखाती। यह भक्ति की खूबी है और उसकी स्वाभाविकता है। जीवन की सामान्य जरूरतें पूरी होनी ही चाहिए।

तो भक्ति कोई जबरदस्ती नहीं करती कि तुम नग्न खड़े हो जाओ, तुम उपवास करो, तुम शरीर को तपाओ व्यर्थ – ऐसी दुष्टता, ऐसी हिंसा भक्ति नहीं सिखाती।

भक्ति कहती है : यह जो परमात्मा का मंदिर है तुम्हारा घर, इसकी साज-संभाल जरूरी है। यह उसका घर है। इसे तुम्हें 'उसके' योग्य स्वच्छ और ताजा और सुंदर रखना चाहिए। लेकिन जरूरत और वासना में फर्क समझना आवश्यक है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था, शादी करना चाहता था। तो उस स्त्री

ने कहा, 'नसरुद्दीन, और तो सब ठीक है, एक बात मैं पूछना चाहती हूं, कि तुम उन पुरुषों में तो नहीं हो जो शादी के बाद पत्नी को दफ्तरों में काम करवाते हैं या नौकरी करवाते हैं?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'भूलकर भी इस तरह का मत सोच। कभी भी मेरी पत्नी काम पर जाने वाली नहीं है। हां, एक बात और, अगर कपड़ा, रोटी, मकान जैसी विलास की चीजों की तूने मांग की तो फिर मैं नहीं जानता...। विलास की चीजें – कपड़ा, रोटी, मकान! अन्यथा मेरी पत्नी कभी काम करने जानेवाली नहीं है। लेकिन रोटी, कपड़ा, मकान, ऐसी विलास की चीजें मत मांगना।'

विलास और जरूरत में फर्क करना जरूरी है।

भक्ति स्वस्थ सहज मार्ग है। स्वाभाविक, अस्वाभाविक नहीं। भक्ति तुम जैसे हो, तुम्हारी जरूरतों को स्वीकार करती है। कहीं कोई अकारण अपने को कष्ट देना, पीड़ा देना, व्यर्थ के तनाव खड़े करने, उनसे आदमी परमात्मा के प्रेम को उपलब्ध नहीं होता, उनसे तो और सघन अहंकार को उपलब्ध होता है।

भक्ति त्याग नहीं है, निरोध है। जो अपने से छूट जाए। जो व्यर्थ है छूट जाएगा। जो सार्थक है, जरूरी है, शेष रहेगा।

इसलिए आखिरी सूत्र है : लौकिक कर्मों को भी तब तक (बाह्य ज्ञान रहने तक) विधिपूर्वक करना चाहिए, पर भोजनादि कार्य जब तक शरीर रहेगा, होते रहेंगे।

भक्ति की यह स्वाभाविकता ही उसके प्रभाव का कारण है।

भक्ति बड़ी संवेदनशील है। वह जीवन को कुरूप करने के लिए उत्सुक नहीं है, जीवन का सौंदर्य स्वीकार है। क्योंकि जीवन अन्यथा परमात्मा का ही है, अन्ततः वही छिपा है! उसको ध्यान में रखकर ही चलना उचित है।

जो व्यर्थ है वह छूट जाए। जो सार्थक है वह संभल जाए। जो कूड़ा-करकट है वह अपने आप गिर जाए, जो बहुमूल्य है वह बचा रहे।

भक्ति को अगर तुम ठीक से समझो तो तुम पाओगे धर्म की उतनी सहज, स्वाभाविक और कोई व्यवस्था नहीं है।

आज इतना ही।

सहजस्फूर्त अनुशासन है भक्ति

चौथा प्रवचन

प्रश्नसार

- जीवन की व्यर्थता का बोध ही क्या जीवन में अर्थवत्ता का प्रारंभ-बिंदु बन जाता है ?
- इस विराट अस्तित्व में मैं नाकुछ हूं, यह अप्रिय तथ्य स्वीकारने में बहुत भय पकड़ता है। इस भय से कैसे ऊपर उठा जाए ?
- आपसे मिलकर भी यदि हमारा उद्धार न हुआ, तब तो शायद असंभव ही है। कम से कम मुझ निरीह पर तो रहम खाइए।
- कल के सूत्र में कहा गया कि लौकिक और वैदिक कर्मों के त्याग को निरोध कहते हैं और निरोध भक्ति का स्वभाव है। और फिर, यह भी कहा गया कि भक्त को शास्त्रोक्त कर्म विधिपूर्वक करते रहना चाहिए। कृपया इस विरोध को स्पष्ट करें।
- जिसे भक्ति में अनन्यता कहा है, क्या वही दर्शन का अद्वैत नहीं है ?

पहला प्रश्न : *जीवन की व्यर्थता का बोध ही क्या जीवन में अर्थवत्ता का प्रारंभ-बिंदु बन जाता है ?*

● बन सकता है, न भी बने। संभावना खुलती है, अनिवार्यता नहीं है। जीवन की व्यर्थता दिखायी पड़े तो परमात्मा की खोज शुरू हो सकती है — शुरू होगी ही, ऐसा जरूरी नहीं है।

जीवन की व्यर्थता पता चले तो आदमी निराश भी हो सकता है, आशा ही छोड़ दे, व्यर्थता में ही जीने लगे, व्यर्थता को स्वीकार कर ले, खोज के लिए कदम न उठाये — तो जीवन तो दूभर हो जाएगा, बोझ हो जाएगा, परमात्मा की यात्रा न होगी।

इतना तो सच है कि जिसने जीवन की व्यर्थता नहीं जानी, वह परमात्मा की खोज पर नहीं जाएगा; जाने की कोई जरूरत नहीं है। अभी जीवन में ही रस आता हो तो किसी और रस की तरफ आंख उठाने का कारण नहीं है।

फिर जीवन की व्यर्थता समझ में आये तो दो संभावनाएं हैं : या तो तुम उसी व्यर्थता में रुककर बैठ जाओ और या उस व्यर्थता के पार सार्थकता की खोज करो — तुम पर निर्भर है।

नास्तिक और आस्तिक का यही फर्क है, यहीं फर्क की रेखा है।

नास्तिक वह है जिसे जीवन की व्यर्थता तो दिखायी पड़ी, लेकिन आगे जाने की, ऊपर उठने की, खोज करने की सामर्थ्य नहीं है, रुक गया, 'नहीं' में रुक गया, 'हां' की तरफ न उठ सका, निषेध को ही धर्म मान लिया, विधेय की बात ही भूल गया।

आस्तिक नास्तिक से आगे जाता है।

आस्तिक नास्तिक का विरोध नहीं है, अतिक्रमण है। आस्तिक के जीवन में भी नास्तिकता का पड़ाव आता है, लेकिन उस पर वह रुक नहीं जाता। वह उसे पड़ाव ही मानता है और उससे मुक्त होने की चेष्टा में संलग्न हो जाता है। क्योंकि जहां 'नहीं' है, वहां 'हां' भी होगा। और जिस जीवन में हमने व्यर्थता पहचान ली है, उस जीवन के किसी तल की गहराई पर सार्थकता भी छिपी होगी; अन्यथा व्यर्थता का भी क्या अर्थ होता है ?

जिसने दुख जाना वह सुख को जानने में समर्थ है, अन्यथा दुख को भी न जान सकता। जिसने अंधकार को पहचाना उसके पास आंखें हैं जो प्रकाश को भी पहचानने में समर्थ हैं।

अंधों को अंधेरा नहीं दिखायी पड़ता। साधारणतः हम सोचते हैं कि अंधे अंधेरे में जीते होंगे – गलत है खयाल। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। अंधेरा भी आंख की ही प्रतीति है। तुम्हें अंधेरा दिखायी पड़ता है आंख बंद कर लेने पर, क्योंकि अंधेरे को तुमने देखा है। जन्म से अंधे, जन्मांध व्यक्ति को अंधेरा भी दिखायी नहीं पड़ता। देखा ही नहीं है कुछ, अंधेरा कैसे दिखायी पड़ेगा ?

तो जिसको अंधेरा दिखायी पड़ता है, उसके पास आंख है; अंधेरे में ही रुक जाने का कोई कारण नहीं है। और जब अंधेरा अंधेरे की तरह मालूम पड़ता है तो साफ है कि तुम्हारे भीतर छिपा हुआ प्रकाश का भी कोई स्रोत है, अन्यथा अंधेरे को अंधेरा कैसे कहते ? कोई कसौटी है तुम्हारे भीतर, कहीं गहरे में छिपा मापदण्ड है।

अंधेरे पर कोई रुक जाए तो नास्तिक; अंधेरे को पहचान कर प्रकाश की खोज में निकल जाए तो आस्तिक। अंधेरे को देखकर कहने लगे कि अंधेरा ही सब कुछ है तो नास्तिक; अंधेरे को जानकर अभियान पर निकल जाए, खोजने निकल जाए, कि प्रकाश भी कहीं होगा, जब अंधेरा है तो प्रकाश भी होगा। क्योंकि विपरीत सदा साथ मौजूद होते हैं।

जहां जन्म है वहां मृत्यु होगी। जहां अंधेरा है वहां प्रकाश होगा। जहां दुख है वहां सुख होगा। जहां नरक अनुभव किया है तो खोजने की ही बात है, स्वर्ग भी ज्यादा दूर नहीं हो सकता।

स्वर्ग और नरक पंड़ोस-पड़ोस में हैं, एक-दूसरे से जुड़े हैं।

अगर तुमने जीवन में क्रोध का अनुभव कर लिया तो समझ लेना कि करुणा भी कहीं छिपी है – खोजने की बात है। तुमने पहली परत छू ली करुणा की ! क्रोध पहली परत है करुणा की। अगर तुमने घृणा को पहचान लिया तो प्रेम को पहचानने में देर भला लगे, लेकिन असंभावना नहीं है।

प्रश्न महत्त्वपूर्ण है।

जीवन की व्यर्थता तो अनिवार्य है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। उतने को ही परमात्मा की शुरुआत मत समझ लेना। उतने से ही 'अथातो' का बिंदु न आ जाएगा। उतना जरूरी है। उतना तो चाहिए ही। पर उस पर तुम रुक भी सकते हो।

पश्चिम में बड़ा विचारक है : ज्यां पाल सार्त्र। वह कहता है, 'अंधेरा ही सब कुछ है। दुख ही सब कुछ है। दुख के पार कुछ भी नहीं है। दुख के पार तो सिर्फ मनुष्यों की कल्पनाओं का जाल है। विषाद सब कुछ है। संताप सब कुछ है। संत्रास सब कुछ है। बस नरक ही है, स्वर्ग नहीं है।'

बुद्ध ने भी एक दिन जाना था : दुख है। सार्त्र ने भी जाना कि दुख है। यहां तक दोनों साथ-साथ हैं, फिर राहें अलग हो जाती हैं। फिर बुद्ध ने खोजा कि दुख क्यों है। और दुख है तो दुख के विपरीत दुख का निरोध भी होगा। तो वे खोज पर गये। दुख का कारण खोजा। दुख मिटाने की विधियां खोजीं, और एक दिन उस स्थिति को उपलब्ध हो गये, जो दुख-निरोध की है, आनंद की है।

सार्त्र पहले कदम पर रुक गया। बुद्ध के साथ थोड़ी दूर तक चलता है, फिर ठहर जाता है। वह कहता है, 'आगे कोई मार्ग नहीं है, बस यहीं सब समाप्त हो जाता है।'

तो सार्त्र अंधकार को ही स्वीकार करके जीने लगा, ऐसे ही तुम भी जी सकते हो। तब तुम्हारा जीवन एक बड़ी उदासी हो जाएगी। तब तुम्हारे जीवन से सारा रस सूख जाएगा। तब तुम्हारे जीवन

में कोई फूल न खिलेंगे, कांटे-ही-कांटे रह जाएंगे। अगर कोई फूल खिलेगा भी तो तुम कहोगे कि कल्पना है, तुम उसे स्वीकार न करोगे। अगर किसी और के जीवन में फूल खिलेगा तो तुम इनकार करोगे कि झूठ होगा, आत्मवंचना होगी, धोखा होगा, बेईमानी होगी, फूल होते ही नहीं। तो तुमने अपने ही हाथ अपने को कारागृह में बंद कर लिया। फिर तुम तड़पोगे। कोई दूसरा तुम्हें इस कारागृह के बाहर नहीं ले जा सकता। अगर तुम्हारी ही तड़फ तुम्हें बाहर उठने की सामर्थ्य नहीं देती और तुम्हारी ही पीड़ा तुम्हें नयी खोज का संबल नहीं बनती, तो कौन तुम्हें उठायेगा ? लेकिन एक-न-एक दिन उठोगे, क्योंकि पीड़ा को कोई शाश्वत रूप से स्वीकार नहीं कर सकता। एक जन्म में कोई सार्त्र हो सकता है, सदा-सदा के लिए कोई सार्त्र नहीं हो सकता; आज सार्त्र हो सकता है, सदा-सदा के लिए सार्त्र नहीं हो सकता; क्योंकि दुख का स्वभाव ऐसा है कि उसे स्वीकार करना असंभव है।

दुख का अर्थ ही यह होता है कि जिसे हम स्वीकार न कर सकेंगे। घड़ी-भर को समझा लें, बुझा लें कि ठीक है, यही सब कुछ है, इससे आगे कुछ भी नहीं; लेकिन फिर-फिर मन आगे जाने लगेगा। क्योंकि मन जानता है गहरे में, सुख है। उसी आधार पर तो हम पहचानते हैं दुख को। हमने जाना है, शायद गहरी नींद में सुख का थोड़ा-सा स्वाद मिला है।

पतंजलि ने योग-सूत्रों में समाधि की व्याख्या सुषुप्ति से की है कि वह प्रगाढ़ निद्रा है। जैसा सुषुप्ति में सुख मिलता है सुबह उठकर, रात गहरी नींद सोये, कुछ याद नहीं पड़ता, लेकिन एक भीनी-सी सुगंध सुबह तक भी तुम्हें घेरे रहती है। कुछ याद नहीं पड़ता कहां गये, क्या हुआ; लेकिन गये कहीं और आंनद से सरोबोर होकर लौटे !

कहीं डुबकी लगायी !
अपने में ही कोई गहरा तल छुआ !
कहीं विश्राम मिला !
कोई छाया के तले ठहरे !
वहां धूप न थी !
वहां गहरी शांति थी !
वहां कोई विचारों की तरंगें भी न पहुंचती थीं !
कोई स्वप्न के जाल भी न थे !
अपने में ही कोई ऐसी गहरी शरण, कोई ऐसा गहरा शरण-स्थल पा लिया।
सुबह उसकी सिर्फ हलकी खबर रह जाती है। दूर सुने गीत की गुन-गुन रह जाती है !
रात गहरी नींद सोये तो सुबह तुम कहते हो, 'बड़ी गहरी नींद आयी, बड़े आनंदित उठे !'

शायद गहरी निद्रा में तुम वहीं जाते हो जहां योगी समाधि में जाता है। गहरी निद्रा में तुम वहीं जाते हो जहां भक्ति भाव की अवस्था में पहुंचाती है। गहरी निद्रा में तुम उसी तल्लीनता को छूते हो जिसको भक्त भगवान में डूबकर पाता है। थोड़ा फर्क है। तुम बेहोशी में पाते हो, वह होश में पाता है। वही फर्क बड़ा फर्क है।

इसलिए सुबह तुम इतना ही कह सकते हो, 'सुखद है ! अच्छी रही रात।' लेकिन भक्त नाचता

है, क्योंकि यह कोई बेहोशी में नहीं पाया अनुभव, होश में पाया।

तो कभी नींद के किन्हीं क्षणों में तुमने भी जाना है, तभी तो तुम दुख को पहचानते हो, नहीं तो पहचानोगे कैसे ? शायद बचपन के क्षणों में जब मन भोला-भाला था और संसाार ने मन विकृत न किया था, वासनाएं अभी जगी न थीं, कामनाओं ने अभी खेल शुरू न किया था, अभी तुम ताजे-ताजे परमात्मा के घर से आये थे — तब शायद सुबह की धूप में बैठे हुए, फूलों को बगीचे में चुनते हुए, या तितलियों के पीछे दौड़ते हुए, तुमने कुछ सुख जाना है जो विचार के अतीत है; तुमने कोई तल्लीनता जानी है जहां तुम खो गये थे, कोई विराट सागर रह गया था, बूंद ने अपनी सीमा छोड़ दी थी ! फिर अब भूली-सी बात हो गयी, भूली-बिसरी बात हो गयी। अब याद भी नहीं आता।

बस इतना ही लोग कहे चले जाते हैं कि बचपन बड़ा स्वर्ग जैसा था। कोई जोर डाले तुम पर तो तुम सिद्ध न कर पाओगे कि क्या स्वर्ग था ! अगर कोई तर्कयुक्त व्यक्ति मिल जाए, कहे कि सिद्ध करो, 'क्या था बचपन में स्वर्ग ?', तो तुम सिद्ध न कर पाओगे। वह भी गहरी नींद का अनुभव हो गया अब। अब याद रह गयी है। खुद भी तुम्हें पक्का भरोसा नहीं है कि ऐसा हुआ था, भूल ही गया है। क्योंकि जिसकी तुम्हारे जीवन से संगति नहीं बैठती, वह धीरे-धीरे विस्मरण हो जाता है। धीरे-धीरे तुम उसी को याद रख पाते हो, जिसका तुम्हारे मन के ढांचे से मेल बैठता है, बेमेल बातों को हम छोड़ देते हैं। बेमेल बातों को याद रखना मुश्किल हो जाता है।

तो कहीं-न-कहीं कोई अनुभव तुम्हारे भीतर है। कभी प्रेम के गहरे क्षण में, किसी से प्रेम हुआ हो, मन ठिठक गया हो, सौंदर्य के साक्षात्कार में, या कभी चांदनी रात में आकाश को देखते हुए, मन मौन हो गया हो, तो तुमने सुख की झलक जानी। एक किरण तुम्हारे जीवन मे कभी-न-कभी उतरी है। उसी से तो तुम पहचानते हो कि यह अंधेरा है। किरण न जानी हो तो अंधेरे को अंधेरा कैसे कहोगे ? अंधेरे की प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी, पहचान कैसे होगी ? पहचान तो विपरीत से होती है।

तो जो रुक जाए जीवन की व्यर्थता पर, वह नास्तिक। इसलिए नास्तिक को मैं आस्तिक जितना साहसी नहीं कहता। जल्दी रुक गया। पड़ाव को मुकाम समझ लिया ! आगे जाना है। और आगे जाना है !

एक बड़ी पुरानी सूफी कथा है कि एक फकीर जंगल में बैठा था। वह रोज एक लकड़हारे को लकड़ियां काटते हुए, ले जाते लाते देखता था। उसकी दीनता, उसके फटे कपड़े, उसकी हड्डियों से भरी देह ! उसे दया आ गयी। वह लकड़हारा जब भी निकलता था तो उसके चरण छू जाता था। एक दिन उसने कहा कि कल जब तू लकड़ी काटने जाए, तब आगे जा, और आगे जा ! लकड़हारा कुछ समझा नहीं; लेकिन फकीर ने कहा है तो कुछ मतलब होगा। ऐसे कभी यह फकीर बोलता न था, पहली दफा बोला है : 'आगे जा, और आगे जा !'

तो जहां वह लकड़ियां काटता था, जंगल में थोड़ा आगे गया, चकित हुआ : सुगंध से उसके नासापुट भर गये ! चंदन के वृक्ष थे। वहां तक वह कभी गया ही न था। उसने चंदन की लकड़ियां काटीं। चंदन को बेचा तो उस रात खुशी में रोया, दुख में भी खुशी में भी, कि अगर यही लकड़ियां अब तक काटकर बेची होतीं तो करोड़पति हो गया होता। पर अब गरीबी मिट गयी।

दूसरे दिन जब चंदन की लकड़ी फिर काट रहा था तो उसे खयाल आया कि फकीर ने यह नहीं कहा था कि चंदन की लकड़ी तक जा, उसने कहा था, 'और आगे, और आगे!' तो उसने चंदन की लकड़ियां न काटीं, और आगे गया, तो देखा कि चांदी की एक खदान है। फिर तो उसके हाथ में एक सूत्र लग गया। फिर और आगे गया तो सोने की खदान! फिर और आगे गया तो हीरों की खदान पर पहुंच गया।

और आगे, जब तक कि हीरों की खदान न आ जाए! उसको ही हम परमात्मा कहते हैं।

तुम लकड़हारों की तरह लकड़ियां ही बेच रहे हो, थोड़ी ही दूर आगे चंदन के वन हैं। तुम विचारों में ही उलझे हो जहां लकड़ियां ही लकड़ियां हैं। बड़ी सस्ती उनकी कीमत है।

थोड़े निर्विचार में चलो : चंदन के वन हैं।

बड़ी सुगंध है वहां!

और थोड़े गहरे चलो तो समाधि की खदानें हैं!

और गहरे चलो तो निर्बीज समाधि, निर्विकल्प समाधि की खदानें हैं!

और गहरे चलो तो स्वयं परमात्मा है!

योगी कदम-कदम जाता है, रुक-रुककर जाता है, कई पड़ाव बनाता है। भक्त सीधा जाता है, नाचता हुआ जाता है, रुकता नहीं, पड़ाव भी नहीं बनाता। वह सीधा तल्लीनता में डूब जाता है।

योगी से भी ज्यादा हिम्मत भक्त की है। नास्तिक से ज्यादा हिम्मत आस्तिक की है। योगी से भी ज्यादा हिम्मत भक्त की है। क्योंकि भक्त सीढ़ियां भी नहीं बनाता; एक गहरी छलांग लेता है जिसमें अपने को डुबा देता है, मिटा देता है।

इस अनुभव पर आना अत्यंत जरूरी है कि जीवन व्यर्थ है।

'अंधेरी रात तूफाने तलातुम नाखुदा गाफिल
यह आलम है तो फिर किश्ती, सरे मौजेरवां कब तक?'

'अंधेरी रात'! सब तरफ अंधेरा है। कुछ सूझता नहीं है। हाथ को हाथ नहीं सूझता। 'तूफाने तलातुम'! बड़ी आंधियां हैं, बड़े तूफान हैं; सब उखड़ा जाता है; कुछ ठहरा नहीं मालूम पड़ता; बड़ी अराजकता है! 'नाखुदा गाफिल'! और जिसके हाथ में कश्ती है, वह जो मांझी है, वह सोया हुआ है, बेहाश है। 'यह आलम है', ऐसी हालत है 'तो फिर किश्ती सरे मौजेरवां कब तक?' तो इस किश्ती का भविष्य क्या है? यह नाव अब डूबी तब डूबी! इस नाव में आशा बांधनी उचित नहीं। इस नाव के साथ बंधे रहना उचित नहीं।

लेकिन जाओगे कहां? भागोगे कहां? यही कश्ती तो जीवन है। तुम सोये हो मूर्छित, तूफान भयंकर है, अंधेरी रात है, डूबने के सिवाय कोई जगह दिखायी नहीं पड़ती।

लेकिन डूबना दो ढंग का हो सकता है। एक : कश्ती डुबाये तब तुम डूबो और एक, कि कश्ती में बैठे-बैठे तुम डूबने के लिए कोई सागर खोज लो। उस सागर को ही हम परमात्मा कहते हैं।

'अच्छा यकीं नहीं है तो कश्ती डुबो के देख
एक तू ही नाखुदा नहीं, जालिम! खुदा भी है।'

तो फिर हिम्मत आ जाती है, फिर आदमी कहता है कि ठीक है। तो अगर मांझी ! तू चाहता ही है कि कश्ती डुबानी है तो डुबाकर देख ! 'एक तू ही नाखुदा नहीं जालिम ! खुदा भी है !' तू ही अकेला नहीं है, मांझी ! तुझसे ऊपर खुदा भी है।

फिर अंधेरी रात, तूफान, कश्ती का अब डूबा तब डूबा होना, सब दूर की बातें हो जाती हैं। तुम भीतर कहीं एक ऐसी जगह लंगर डाल देते हो, जहां तूफान छूते ही नहीं, जहां रात का अंधेरा प्रवेश ही नहीं करता, और जहां किसी नाखुदा की, किसी मांझी की जरूरत नहीं है, क्योंकि वहां परमात्मा ही मांझी है।

जरूरी है कि जीवन की व्यर्थता दिखायी पड़ जाए। बहुत हैं जो जीवन की व्यर्थता बिना देखे आस्तिकता में अपने को डुबाने की चेष्टा करते हैं, वे कभी न डूब पाएंगे। वे चुल्लूभर पानी में डूबने की चेष्टा कर रहे हैं। वे अपने को धोखा दे रहे हैं।

जब तक तुम्हारे जीवन की जड़ें उखड़ न गयी हों, जब तक तुमने गहन झंझावात नास्तिकता के न झेले हों, जब तक तुम्हारा रोआं-रोआं कंप न गया हो जीवन के अंधकार से, जब तक तुम्हारी छाती भयभीत न हो गयी हो — तब तक तुम जिस आस्तिकता की बातें करते हो, वह सांत्वना होगी, सत्य नहीं; तब तक तुम जिन मंदिरों और मस्जिदों में पूजा-उपासना करते हो, वह पूजा-उपासना धोखा-धड़ी है। वह तुम्हारा औपचारिक व्यवहार है। वह संस्कारवशात है। उससे तुम्हारे जीवन का सीधा कोई संबंध नहीं। वह मंदिर तुमने अपनी प्रज्ञा से नहीं खोजा है, उधार है। उधार परमात्मा असली परमात्मा नहीं है। उसे तो तुम्हें अपने को चुकाकर ही, अपने को दान में देकर ही, अपना सर्वस्व लुटाकर ही पाना होगा। वह तो तुम जब तक सूली पर न लटक जाओ, तब तक उस सिंहासन तक न पहुंच पाओगे।

तो पहली तो स्मरण रखने की बात यह है कि कहीं जल्दी में आस्तिक मत हो जाना। यह कोई जल्दी का काम नहीं है। बड़ी गहन प्रतीक्षा चाहिए ! और यह कोई सांत्वना नहीं है कि तुम ओढ़ लो, संक्रांति है। सांत्वना नहीं है परमात्मा, संक्रांति है, महाक्रांति है। तुम जो हो, मिटोगे; और तुम जो होने चाहिए वह प्रगट होगा।

तो सस्ती आस्तिकता कहीं नहीं ले जाती। सस्ती आस्तिकता से तो असली नास्तिकता बेहतर है; कम-से-कम उस परिधि पर तो खड़ा कर देती है, जहां से आगे कदम चाहो तो उठा सकते हो।

झूठी आस्तिकता से तो कोई कभी नहीं गया है, जा ही नहीं सकता। झूठी प्रार्थना कभी नहीं सुनी गयी है। तुम कितने ही जोर से चिल्लाओ, तुम्हारी आवाज के जोर से प्रार्थना का कोई संबंध नहीं है; तुम्हारे हृदय की सच्चाई से, तुम्हारी विनम्रता से, तुम्हारे निरहंकार-भाव से, तुम्हारे असहाय-भाव से, जब तुम्हारी प्रार्थना उठेगी तो पहुंच जाती है, तो जर्रा-जर्रा, कण-कण अस्तित्व का तुम्हारा सहयोगी हो जाता है !

तो पहले तो झूठी आस्तिकता से बचना, फिर नास्तिकता में मत उलझ जाना। नास्तिक होना जरूरी है, बने रहना जरूरी नहीं है। एक ऐसी घड़ी आएगी जब अंधेरा ही अंधेरा दिखायी पड़ेगा, तूफान ही तूफान होंगे, कहीं कोई सहारा न मिलेगा, सब सहारे झूठ मालूम होंगे, राह भटक जाएगी,

तुम बिलकुल अजनबी की तरह खड़े रह जाओगे, जिसका कोई सहारा नहीं, जो एकाकी है – तब घबड़ा कर बैठ मत जाना; यहीं से शुरुआत होती है। यहीं से अगर तुमने आगे कदम उठाया, तो उपासना, भक्ति! यहीं से आगे कदम उठाया तो संसार के पार परमात्मा की शुरुआत होती है।

झूठी नास्तिकता से बचना है, झूठी आस्तिकता से बचना है। नास्तिकता सच्ची हो तो भी उसको घर नहीं बना लेना है। असली नास्तिकता के दुख को झेलना है ताकि उस पीड़ा के बाहर असली आस्तिकता का जन्म हो सके।

दूसरा प्रश्न : इस विराट अस्तित्व में मैं नाकुछ हूं, यह अप्रिय तथ्य स्वीकारने में बहुत भय पकड़ता है। इस भय से कैसे ऊपर उठा जाए?

● 'अप्रिय' कहोगे तो शुरू से ही व्याख्या गलत हो गयी, फिर भय पकड़ेगा। 'अप्रिय' कहना ही गलत है।

फिर से सोचो : नाकुछ होने में अप्रिय क्या है? वस्तुतः कुछ होने में अप्रिय है। क्योंकि जीवन के सारे दुख तुम्हारे 'कुछ होने' के कारण पैदा होते हैं।

अहंकार घाव की तरह है। और जब तुम्हारे भीतर घाव होता है – और अहंकार से बड़ा कोई घाव नहीं, नासूर है – तो हर चीज की चोट लगती है, हर चीज से चोट लगती है, हर चीज से पीड़ा आती है; जरा कोई टकरा जाता है और पीड़ा आती है; हवा का झोंका भी लग जाता है तो पीड़ा आती है; अपना ही हाथ छू जाता है तो पीड़ा आती है।

अहंकार का अर्थ है : मैं कुछ हूं।

अगर तुम जीवन की सारी पीड़ाओं की फेहरिश्त बनाओ तो तुम पाओगे कि वे सब अहंकार से ही पैदा होती हैं। लेकिन तुमने कभी गौर से इसे देखा नहीं। तुम तो सोचते हो कि पीड़ा तुम्हें दूसरे लोग देते हैं।

किसी ने तुम्हें गाली दी, तो तुम सोचते हो, यह आदमी गाली देकर मुझे पीड़ा दे रहा है। व्याख्या की भूल है। विश्लेषण की चूक है। दृष्टि का अभाव है। आंख खोलकर फिर से देखो। इस आदमी की गाली में अगर कोई भी पीड़ा है तो इसीलिए है कि तुम्हारे भीतर अहंकार उस गाली से छूकर दुखी होता है। अगर तुम्हारे भीतर अहंकार न हो तो इस आदमी की गाली तुम्हारा कुछ भी न बिगाड़ पाएगी। तुम उस आदमी की गाली को सुन लोगे और अपने मार्ग पर चल पड़ोगे। हो सकता है, इस आदमी की गाली तुम्हारे मन में करुणा को भी जगाये कि बेचारा नाहक ही व्यर्थ की बातों में पड़ा है। लेकिन गाली उसकी तुम्हें पीड़ा दे जाती है, क्योंकि तुम्हारे पास एक बड़ा मार्मिक स्थल है, जो तैयार ही है पीड़ा पकड़ने को। बड़ा संवेदनशील है! बड़ा नाजुक है! और हर घड़ी तैयार है कि कहीं से पीड़ा आये तो... वह पीड़ा पर ही जीता है।

तो जरूरी नहीं कि कोई गाली दे, राह पर कोई बिना नमस्कार किये निकल जाए तो भी पीड़ा आ जाती है। कोई तुम्हें देखे और अनदेखा कर दे तो भी पीड़ा आ जाती है। राह पर दो आदमी

हंस रहे हों तो भी पीड़ा आ जाती है कि शायद मुझ पर ही हंस रहे हैं। दो आदमी एक-दूसरे के कान में खुसरफुसर कर रहे हों तो पीड़ा आ जाती है कि शायद मेरे लिए ही...।

यह जो 'मैं' है, बड़ा रुग्ण है! इसको लेकर तुम कभी भी स्वस्थ और सुखी न हो पाओगे।

तो अगर 'अप्रिय' कहना हो तो अहंकार को कहना।

और यही अहंकार तुमसे कहता है, 'डरो, प्रेम से डरो, क्योंकि प्रेम में इसे छोड़ना पड़ेगा। भक्ति से डरो, क्योंकि भक्ति में तो यह बिलकुल ही डूब जाएगा; प्रेम में क्षणभर को डूबेगा, भक्ति में शाश्वत, सदा के लिए डूब जाएगा। बचो!'

यह अहंकार कहता है, 'ऐसी जगह जाओ ही मत जहां डूबने का डर हो। बचकर चलो! संभलकर चलो।'

और यही अहंकार तुम्हारी पीड़ा का कारण है!

ऐसा समझो कि नासूर लिये चलते हो और चिकित्सक से बचते हो।

'इस विराट अस्तित्व में मैं नाकुछ हूं, यह अप्रिय तथ्य स्वीकारने में बहुत भय पकड़ता है।'

यह भय तुम्हें नहीं पकड़ रहा है; यह भय उसी अहंकार को पकड़ रहा है जो कि डूबने से, तल्लीन होने से भयभीत है। क्योंकि तल्लीनता का अर्थ मौत है — अहंकार की मौत, तुम्हारी नहीं! तुम्हारे लिए तो जीवन का नया द्वार खुलेगा। उसी मृत्यु से तुम्हारे लिए परम जीवन की उपलब्धि होगी। उसी मृत्यु से तुम पहली बार अमृत का दर्शन करोगे। लेकिन तुम्हारे लिए, अहंकार के लिए नहीं!

यह जो तुम्हारे भीतर 'मैं' की गांठ है, यह गांठ दुख दे रही है। इस अप्रिय 'मैं' को पहचानो, तो तुम पाओगे कि निरहंकारिता से ज्यादा प्रीतिकर और कुछ भी नहीं।

और जिसे निरहंकारिता आ गयी, सब आ गया! फिर उसे किसी मंदिर में जाने की जरूरत नहीं।

निरहंकारिता का मंदिर जिसे मिल गया, वह पत्थरों के मंदिरों में जाए भी क्यों!

निरहंकारिता का मंदिर जिसे मिल गया, उसके तो अपने ही भीतर के मंदिर के द्वार खुल गये!

'अदब-आमोज है मैखाने का ज़रा-ज़र्रा
सैकड़ों तरह से आ जाता है सिजदा करना।
इश्क पाबंदेवफा है, न पाबंदे-रसूम
सर झुकाने को नहीं कहते हैं सिजदा करना।'
'अदब-आमोज है मैखाने का ज़र्रा-ज़र्रा!'

अगर तुम गौर से देखो तो अस्तित्व का कण-कण विनम्रता सिखा रहा है। पूछो वृक्षों से; पूछो पर्वतों से, पहाड़ों से; पूछो झरनों से, पक्षियों से, पशुओं से : कहीं अहंकार नहीं है!

'अदब-आमोज है मैखाने का ज़र्रा-ज़र्रा।'

एक-एक कण, पूरा अस्तित्व एक ही बात सिखा रहा है : नाकुछ हो जाओ!

'सैकड़ों तरह से आ जाता है सिजदा करना!'

और अगर तुम इन बातों को सुनो जो अस्तित्व में गूंज रही हैं सब तरफ से, सब दिशाओं से, तो सैकड़ों रास्ते हैं जिनसे उपासना का सूत्र तुम्हारे हाथ में आ जाएगा, सिजदा करना आ जाएगा,

झुकने की कला आ जाएगी।

जरूरी नहीं है कि तुम शास्त्र ही पढ़ो; अस्तित्व के शास्त्र से बड़ा कोई और शास्त्र नहीं है। जरूरी नहीं है कि तुम ज्ञानियों से ही सीखो; तुम अगर आंख खोलकर देखो तो सारा अस्तित्व तुम्हें सिखाने को तत्पर है।

यहां आदमी के सिवाय कोई अहंकार से पीड़ित नहीं है और इसलिए सिवाय आदमी के यहां कोई भी पीड़ित नहीं है। आदमी ही परेशान है, चिंतित है। वृक्ष परेशान नहीं; सिजदा में खड़े हैं। सतत चल रही है पूजा!

आदमी की पूजा घड़ी दो घड़ी की होती है; अस्तित्व की पूजा सतत है। तुम कभी आरती उतारते हो; तारे, चांद, सूरज उतारते ही रहते हैं आरती! चौबीस घंटे! सतत!

तुम कभी एक फूल चढ़ा आते हो; वृक्ष रोज ही चढ़ाते रहते हैं फूल। तुम कभी जाकर मंदिर में एक गीत गुनगुना आते हो; पक्षी सुबह से सांझ तक गुनगुना रहे हैं! अगर गौर से देखो तो तुम सारे अस्तित्व को सिजदा करता हुआ पाओगे। सारा अस्तित्व झुका है, घुटनों पर हाथ जुड़े हैं, आंखों से आंसुओं की धार बह रही है, हृदय से सुगंध उठ रही है!

फिर से देखो! देखा तो तुमने भी है इसे, ठीक आंख से नहीं देखा। फिर से देखो : तुम हर वृक्ष को झुका हुआ पाओगे प्रार्थना में; हर झरने को उसी का गीत गाता हुआ पाओगे।

'अदब-आमोज है मैखाने का ज़र्रा-ज़र्रा
सैकड़ों तरह से आ जाता है सिजदा करना।'
'इश्क पाबंदेवफा है ...।'

प्रेम आस्था की बात है, श्रद्धा की बात है, भरोसे की बात है।

'इश्क पाबंदेवफा है, न कि पाबंदे-रसूम!'

वह कोई नीति-नियम की बात नहीं है, कोई रसूम की बात नहीं है, कोई नियम के आचरण की, विधि-अनुशासन की बात नहीं है — सिर्फ आस्था की बात है। कोई मुसलमान होना जरूरी नहीं है, कोई हिंदू होना जरूरी नहीं है, कोई ईसाई होना जरूरी नहीं है — क्योंकि ये सब तो रीति-नियम की बातें हैं; धार्मिक होने के लिए इनकी कोई भी जरूरत नहीं है, सिर्फ आस्था काफी है। आस्था न हिंदू है न मुसलमान, आस्था न जैन है न बौद्ध — आस्था विशेषण-रहित है; उतनी ही विशेषण-रहित है जितना कि परमात्मा।

'इश्क पाबंदेवफा है, न कि पाबंदे-रसूम।'

तो तुम कोई रीति-नियम से प्रार्थना मत करने बैठ जाना। सीख मत लेना प्रार्थना करना, क्योंकि वही अड़चन हो जाएगी असली प्रार्थना के जन्म होने में।

प्रार्थना सहजस्फूर्त हो!

सूर्य के सामने सुबह बैठ जाना, जो तुम्हारे हृदय में आ जाए, कह देना; न कुछ आये, चुपचाप रह जाना। सूरज कुछ कहे, सुन लेना; न कहे तो उसके मौन में आनंदित हो लेना।

बंधी हुई प्रार्थनाएं मत दोहराना, क्योंकि बंधी हुई प्रार्थनाएं कण्ठों में हैं, उससे नीचे नहीं जातीं,

बस कण्ठों तक जाती हैं, कण्ठों से आती हैं।

इसलिए अकसर तुम पाओगे कि जिनको प्रार्थनाएं याद हो गयी हैं, वे प्रार्थनाओं से वंचित हो गये हैं। वे प्रार्थना करते रहते हैं, उनके ओंठ दोहराते रहते हैं मंत्रों को और उनके भीतर विचारों का जाल चलता रहता है। फिर धीरे-धीरे तो यह इतनी आदत हो जाती है दोहराने की कि उससे कोई बाधा ही नहीं पड़ती; भीतर दुकान चलती रहती है, ओठों पर मंदिर चलता रहता है।

'इश्क पाबंदेवफा है, न कि पाबंदे-रसूम !'

प्रेम जानता ही नहीं रीति-नियम, क्योंकि प्रेम आखिरी नियम है। किसी और व्यवस्था की जरूरत नहीं है, प्रेम पर्याप्त है। प्रेम की अराजकता में भी एक अनुशासन है। वह अनुशासन सहजस्फूर्त है।

'सर झुकाने को नहीं कहते हैं सिजदा करना !'

और सिर्फ सिर झुकाने का नाम प्रार्थना नहीं है; खुद के झुक जाने का नाम प्रार्थना है। सिर झुकाना तो बड़ा आसान है।

मेरे पास लोग बच्चों को लेकर आ जाते हैं। वे खुद सिर झुकाते हैं, बच्चे खड़े रह जाते हैं, तो मां उसका सिर पकड़कर चरणों में झुका देती है। मैं उनको कहता हूं, 'यह तुम क्या ज्यादती कर रहे हो ?' वह बच्चा अकड़ रहा है, वह खड़ा है, उसे सिर नहीं झुकाना है, कोई कारण नहीं है सिर झुकाने का, उससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है; मां उसका सिर झुका रही है; रसूम सिखाया जा रहा है; नियम सिखाया जा रहा है। वह धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाएगा। बड़ा होते-होते किसी को झुकाने की जरूरत न रह जाएगी, खुद ही झुकने लगेगा; लेकिन हर झुकने में वह मां का हाथ इसकी गर्दन पर रहेगा। यह बुढ़ापे तक जब भी झुकेगा, तब इसे कोई झुका रहा है वस्तुतः ; यह खुद नहीं झुक रहा है।

तुमने कभी खयाल किया, तुम मंदिर में जाकर झुकते हो, यह सिर्फ एक आदत है या आस्था है ? क्योंकि बचपन से मां-बाप इस मंदिर में ले गये थे, झुकाया था एक दिन तुम्हारी गर्दन को... तुम्हें सभी को याद होगा कि किसीन किसी दिन मां-बाप ने तुम्हारी गर्दन को झुकाया था किसी पत्थर की मूर्ति के सामने, किसी मंदिर में, किसी शास्त्र के सामने, किसी गुरु के सामने। याद करो उस दिन को। फिर धीरे-धीरे तुम अभ्यस्त हो गये। फिर तुम भी संसार के रीति-नियम समझने लगे। फिर तुमने भी औपचारिकता सीख ली। वह बच्चा ज्यादा शुद्ध है जो सीधा खड़ा है। उसे झुकना नहीं, बात खत्म हो गयी ! झुकने का उसे कोई कारण समझ में नहीं आता, बात खत्म हो गयी। मां उसे एक झूठ सिखा रही है।

समाज सभी को झूठ सिखा रहा है, औपचारिक आचरण सिखा रहा है। फिर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे परत पर परत जमते-जमते ऐसी घड़ी आ जाती है कि तुम बड़ी सरलता से झुकते हो, और बिना जाने कि यह भी तुम्हारा झुकना नहीं है। यह सरलता भी झूठी है। इस सरलता में भी समाज के हाथ तुम्हारी गर्दन को दबा रहे हैं। इस सरलता में भी तुम्हारी गुलामी है।

और प्रेम, गुलामी से कहीं पैदा हुआ ? परतंत्रता से कहीं पैदा हुआ ?

भक्ति तो परम स्वतंत्रता है। इसलिए छोड़ दो वह सब जो तुम्हें सिखाया गया हो, ताकि 'अन-सीखे' का जन्म हो सके। हटा दो वह सब जो दूसरों ने जबरदस्ती से तुम्हारे ऊपर लादा हो !

निर्बोझ हो जाओ !

फिर से सीखना पड़ेगा पाठ।

तुम्हारी सलेट पर बहुत कुछ दूसरों ने लिख दिया है। खाली करो उसे ! धो डालो ! ताकि फिर से तुम अपने स्वभाव के अनुकूल कुछ लिख सको।

'इश्क पाबंदेवफा है, न कि पाबंदे-रसूम
सर झुकाने को नहीं कहते हैं सिजदा करना।'

प्रार्थना बड़ी अभूतपूर्व घटना है।

झुकना ! उसके आगे तो फिर कुछ और नहीं वह तो आखिरी बात है। क्योंकि जो झुक गया, उसने पा लिया ! जो झुक गया वह भर गया ! वह भर दिया गया !

तुम तो रोज झुकते हो; कुछ भरता नहीं। तुम तो रोज झुकते हो; खाली हाथ आ जाते हो। धीरे-धीरे तुम्हें ऐसा लगने लगता है कि जिसके सामने झुक रहे हैं वह परमात्मा झूठा है; क्योंकि इतनी बार झुके, कुछ हाथ नहीं आता। मैं तुमसे कहता हूं, वह परमात्मा तो सच है, तुम्हारा झुकना झूठा है। तुम कभी झुके ही नहीं।

दुनिया में नास्तिकता बढ़ती जाती है, क्योंकि झूठी आस्तिकता कब तक साथ दे ! जबरदस्ती झुकायी गयी गर्दनें कभी न कभी अकड़कर खड़ी हो जाएंगी। और इतने बार झुकने के बाद जब कुछ भी न मिलेगा, तो स्वभाविक है कि आदमी कहे, 'क्या सार है ? क्यों झुकें ?' और स्वाभाविक है कि आदमी कहे, 'इतनी बार झुककर कुछ न मिला, कोई परमात्मा नहीं है !'

यह तुम्हारी झूठी आस्तिकता का परिणाम है।

सच्ची आस्तिकता आस्था से पैदा होती है।

आस्था का अर्थ है... जैसा तुम समझते हो वैसा नहीं। तुम समझते हो, आस्था का अर्थ है : विश्वास।

नहीं, आस्था का अर्थ विश्वास नहीं है। आस्था का अर्थ है : अनुभव। विश्वास तो दूसरे देते हैं; आस्था वह है जो तुम्हारे भीतर तुम्हारी स्वाभाविकता से पैदा होती है।

प्रेम सीखो !

नियम भूलो !

प्रेम पर दांव लगाओ, जोखिम है ! नियम में कभी कोई जोखिम नहीं; इसलिए तो लोग नियम में जीते हैं। लेकिन जिसने जोखिम न उठायी, उसने कुछ पाया भी नहीं। इसलिए तो लोग बिना पाये रह जाते हैं।

पूछा है : 'इस विराट अस्तित्व में मैं नाकुछ हूं, यह अप्रिय तथ्य स्वीकार करने में भय पकड़ता है।'

पकड़ने दो भय ! भय की मौजूदगी रहने दो। भय से कहो, 'तू रह; लेकिन हम झुकते हैं'।

तुम भय को एक किनारे रखो !

मैं जानता हूं कि भय को एकदम मिटा न सकोगे; लेकिन एक किनारे रख सकते हो। भय के रहते हुए भी तुम झुक सकते हो। भय की सुनना जरूरी नहीं है। तुम सुनते हो, स्वीकार करते हो,

मान लेते हो, इसलिए भय मालिक हो जाता है।

भय से कहो, 'ठीक, तेरी बात सुन ली; फिर भी झुककर देखना है। तू कहता है, जोखिम है! होगी। लेकिन जोखिम उठाकर देखनी है। तू कहता है, मिट जाओगे!... सही। रहकर देख लिया; अब मिटकर देखना है। रह-रहकर कुछ न पाया; अब यह आयाम भी खोज लें मिटने का!'

कोई भय को दबाने की जरूरत नहीं है, ध्यान रखना। दबाया हुआ भय तो फिर-फिर उभरेगा। न, भय को पूरा स्वीकार कर लो कि ठीक हो। माना, तुम्हारी बात में भी बल है। तुम्हारे तर्क से कोई इनकार नहीं। लेकिन तुम्हारे साथ रहकर इतने दिन देख लिया और जीवन का कोई अनुभव न हुआ; अब कुछ और भी कर लेने दो।

तर्क उठेंगे मन में। उनसे कहो, ठीक है। तुम्हारी बात जंचती थी, इसलिए तो इतने दिन तक तुम्हारा संग-साथ रहा। इतने दिन तक तुम्हें ओढ़ा, लेकिन कुछ पाया नहीं; हृदय कोरा है, आत्मा रिक्त है, अब बहुत हुआ; अब तुमसे विपरीत दिशा में भी थोड़ा जाकर देख लेने दो।

डर तो लगेगा ही, क्योंकि जिस दिशा में कभी न गये, उस दिशा में जाते मन घबड़ाता है, पैर कंपते हैं। मन चाहता है : 'जाने-माने रास्ते पर चलो। कहां जंगल में जा रहे हो बियाबान में? भटक जाओगे! भीड़ जहां चलती है वहीं चलो! कम से कम संगी-साथी तो हैं! भीड़ है, तो राहत है, अकेले नहीं हैं।'

पर एक न एक दिन भीड़ के रास्तों को छोड़कर पगडंडी की राह लेनी ही पड़ती है।

परमात्मा तक कोई राजपथ नहीं जाता, बस पगडंडियां जाती हैं। कोई राजपथ परमात्मा तक नहीं जाता, अन्यथा समाज परमात्मा तक पहुंच जाए। व्यक्ति ही पहुंचते हैं, समाज कभी नहीं।

पगडंडियां! पगडंडियां भी ऐसी कि तुम चलो तो बनती हैं; कोई तैयार नहीं हैं पहले से, कि किसी ने तुम्हारे लिए बनाकर रखी हों। तुम्हारे चलने से ही बनती हैं। जितना तुम चलते हो उतनी ही निर्मित होती हैं।

यह राह ऐसी है कि तैयार नहीं है, चलने से तैयार होती है। और बड़ा सुंदर है यह तथ्य। नहीं तो आदमी एक परतंत्रता हो जाए : राह तैयार है, उस पर तुम्हें चले जाना है! तब तो तुम रेलगाड़ियों के डब्बों जैसे हो जाओ। लोहे की पटरियों पर दौड़ते रहो। फिर तुम्हारे जीवन में गंगा की स्वतंत्रता न हो। फिर वह मौज न रह जाए, जो अपनी ही खोज से आती है।

गंगा सागर पहुंचती है — लोहे की पटरियों पर नहीं; चलती है, चल-चलकर अपनी राह बनाती है, मार्ग बनाती है : अनजान की खोज पर! सागर है भी आगे, इसका भी क्या पक्का पता है!

तो भय स्वाभाविक है। लेकिन भय के साथ रहकर हम बहुत दिन देख लिये। अब भय को कहो, 'सुनी तेरी बहुत, अब हमें कुछ और भी करने दो।'

रहने दो भय को एक किनारे — तुम चलो!
कंपते हुए पैरों से सही, पगडंडी पर उतरो!
डरते हुए, धड़कते हुए हृदय से सही, भीड़ को छोड़ो!
घबड़ाहट होगी, लौट-लौट जाने का मन होगा — कोई चिंता नहीं।

कभी लौट जाने का मन हो, कभी घबड़ाहट हो तो इतना ही याद रखना कि भय की और मन की मानकर बहुत दिन चले थे, कहीं पहुंचे न थे।

नये को एक अवसर दो !

जिस दिन तुम नये को अवसर देते हो उसी दिन तुम परमात्मा को अवसर देते हो। जब तक तुम पुराने को दोहराते हो, लीक को पीटते हो, लकीर के फकीर हो, तब तक तुम समाज के हिस्से होते हो, भीड़ के हिस्से होते हो।

व्यक्ति बनो !

अकेले का साहस जुटाओ !

और सबसे बड़ा साहस यही है : इस तथ्य को स्वीकार कर लेना कि मैं इस विराट का अंश हूं, अलग-थलग नहीं हूं; द्वीप नहीं हूं, इस पूरे विराट का एक अंश हूं। मैं नहीं हूं, अस्तित्व है !

यही तो भक्ति की सारी की सारी व्यवस्था है कि भक्त खो जाए भगवान में, कि भगवान खो जाए भक्त में, कि एक ही बचे, दो न रह जाएं।

तीसरा प्रश्न : आपसे मिल कर भी यदि हमारा उद्धार न हुआ, तब तो शायद असंभव ही है। कम से कम मुझ निरीह पर तो रहम खाइये। न तो मुझसे ध्यान सधता है न भक्ति। भक्ति की लहरियां आती हैं अवश्य, पर बहुत झीनी, और वह भी कभी-कभी, और संसार का भयंकर तूफान तो सदा हावी है।

● ध्यान साधना होता है, भक्ति साधनी नहीं होती।

भक्ति की जो छोटी-छोटी लहरियां आ रही हैं उनमें डूबो, उनमें रस लो। तुम्हारे डूबने से लहरें बड़ी होने लगेंगी। दूर किनारे पर मत बैठे रहो, अन्यथा लहरें आएंगी और खो जाएंगी और तुम अछूते रह जाओगे। उतरो ! लहरों को तुम्हारे तन-प्राण पर फैलने दो। अगर छोटी-छोटी लहरें आ रही हैं तो भरोसा रखो, लहरों में सागर ही आया है। छोटी से छोटी लहर में विराट से विराट सागर छिपा है !

ध्यान साधना पड़ता है। ध्यान साधना है। भक्ति ! भक्ति साधना नहीं है, उपासना है।

भेद समझ लो।

साधना का अर्थ है : तुम्हें कुछ करना है। उपासना का अर्थ है : तुम्हें सिर्फ परमात्मा को मौका देना है। साधना में तुम्हें चेष्टा करनी पड़ती है; उपासना में तुम बेसहारा होकर अपने को परमात्मा पर छोड़ देते हो — तुम कहते हो, 'अब जो तेरी मर्जी ! अब तू जैसे रखे ! अब तू जो करवाये ! डुबाये तो वही किनारा ! अब मैं नहीं हूं।'

भक्ति साधनी नहीं पड़ती। साधने में तो तुम बने रहते हो। उपासना में तुम खो जाते हो, तुम जैसे-जैसे पास आते हो।

उपासना शब्द का अर्थ है : परमात्मा के पास आना। उप-आसन — 'उसके' पास बैठना। बस

बैठना ही काफी है। तुम 'उसे' मौका दो। तुम बैठ जाओ — 'उसके' पास ! 'उस' पर छोड़कर ! और 'उसे' मौका दो।

बिलकुल ठीक हो रहा है : 'भक्ति की लहरियां आती हैं अवश्य, पर बहुत झीनी, और वह भी कभी-कभी।'

इसे भी सौभाग्य समझो कि आती हैं। बस उन लहरों को ही पकड़ो, उनमें डूबो ! एक धागा भी हाथ में आ जाए तो बस काफी है। इसलिए तो भक्ति के इस शास्त्र को भक्ति-सूत्र कहा है, योग के शास्त्र को योग-सूत्र कहा है — धागा ! सूत्र यानी धागा। यह पूरा शास्त्र नहीं है, बस सूत्र है। पर सूत्र हाथ में पकड़ आ गया, तो बात खत्म। उसी सूत्र के सहारे चलते-चलते तो...!

एक किरण पकड़ लो सूरज की तो सूरज तक पहुंचने के लिए सहारा मिल गया। उसी किरण के सहारे चलते जाना, तो उसके स्रोत तक पहुंच जाओगे, जहां से किरण आती है।

मगर हमारा मन बड़ा लोभी है। वह कहता है : 'कभी-कभी !' कभी-कभी आती हैं, यह भी कोई कम सौभाग्य है ? एक बार भी जीवन में लहर आ जाए और तुम अगर होशियार हो, तुम अगर जरा समझदार हो तो तुम उस एक ही लहर के सहारे उसके सागर को पा लोगे।

'कभी-कभी आती हैं !' — जरूरत से ज्यादा आ रही हैं।

तुम्हारी पात्रता क्या है ? योग्यता क्या है ? कमाई क्या है ? कुछ भी नहीं है। उसकी अनुकंपा से आती होंगी। प्रसादस्वरूप आती होंगी।

धन्यवाद दो, शिकायत मत करो ! शिकायत करोगे तो जो लहरें आती हैं वे भी धीरे-धीरे खो जाएंगी। क्योंकि शिकायती चित्त के पास उपासना असंभव है। जितनी ज्यादा तुम्हारी शिकायत होगी उतना ही परमात्मा से फासला हो जाएगा। बिना शिकायत उसके पास बैठे रहो। धन्यवाद दो !

मैंने सुना है, मुसलमान बादशाह हुआ : महमूद। उसका एक नौकर था। बड़ा प्यारा था। इतना उसे प्रेम था उस नौकर से और उस नौकर की भक्ति-भाव से, उसके अनन्य समर्पण से कि महमूद उसे अपने कमरे में ही सुलाता था। उस पर ही एक भरोसा था उसको।

दोनों एक दिन शिकार करके लौटते थे, राह भटक गये, भूख लगी। एक वृक्ष के नीचे दोनों खड़े थे। एक फल लगा था — अपरिचित, अनजान। महमूद ने तोड़ा। जैसी उसकी आदत थी, चाकू निकालकर उसने एक टुकड़ा काटकर अपने नौकर को दिया, जो वह हमेशा देता था, पहले उसे देता था फिर खुद खाता था। नौकर ने खाया। बड़े अहोभाव से कहा कि 'एक कली और... !' एक कली और दे दी, उसने फिर कहा, 'एक कली और...।' तो तीन हिस्से तो वह ले चुका, एक हिस्सा ही बचा। महमूद ने कहा, 'अब एक मेरे लिए छोड़।' पर उसने कहा कि नहीं मालिक, यह फल तो पूरा ही मैं खाऊंगा। महमूद को भी जिज्ञासा बढ़ी कि इतना मधुर फल है, ऐसा इसने कभी आग्रह नहीं किया ! तो छीना-झपटी होने लगी। लेकिन नौकर ने छीन ही लिया उसके हाथ से।

उसने कहा, 'रुक ! अब यह जरूरत से ज्यादा हो गयी बात। तीन हिस्से तू खा चुका। एक ही फल है वृक्ष पर। मैं भी भूखा हूं। और मेरे मन में भी जिज्ञासा उठती है कि इतनी तो तूने कभी किसी चीज के लिए मांग नहीं की। यह मुझे दे दे वापस।'

नौकर ने कहा, 'मालिक, मत लें, मुझे खा लेने दें।'

पर महमूद ने न माना तो उसे देना पड़ा। उसने चखा तो वह तो जहर था। ऐसी कड़वी चीज उसने अपने जीवन में कभी चखी ही न थी। उसने कहा, 'पागल! यह तो जहर है, तूने कहा क्यों नहीं।'

तो उसने कहा कि जिन हाथों से इतने स्वादिष्ट फल मिले, उन हाथों से एक कड़वे फल की क्या शिकायत!

शिकायत दूर ले जाएगी; धन्यवाद पास लाएगा।

थोड़ा सोचो : उस दिन वह नौकर महमूद के हृदय के जितने करीब आ गया...। महमूद रोने लगा। वह तो बिलकुल जहर था फल। वह तो मुंह में ले जाने योग्य न था। और उसने इतने अहोभाव से, इतनी प्रसन्नता से उसे स्वीकार किया, छीना-झपटी की! वह नहीं चाहता था कि महमूद चखे। क्योंकि चखेगा तो महमूद को पता चल जाएगा कि फल कड़वा था। यह तो कहने का ही एक ढंग हो जाएगा कि फल कड़वा है – न कहा लेकिन कह दिया। यह तो शिकायत हो जाएगी। इसलिए छीन-झपट की। जिन हाथों से इतने मधुर फल मिले, उस हाथ से एक कड़वे फल की क्या चर्चा करनी! वह बात ही उठाने की नहीं है।

परमात्मा ने इतना दिया है कि जो शिकायत करता है वह अंधा है।

थोड़ी लहरें आती हैं, उन लहरों में डूबो! और लहरें आएंगी।

धन्यवाद, अनुग्रह का भाव : बड़ी लहरें आएंगी! एक दिन सागर का सागर तुम में उतर आएगा। एक दिन तुम्हें बहाकर ले जाएगा। सब कूल-किनारे टूट जाएंगे।

लेकिन सूत्र यही है कि तुम उसके प्रसाद को पहचानो और अनुग्रह के भाव को बढ़ाते चले जाओ।

होता अकसर ऐसा है कि जो तुम्हें मिलता है तुम उसके प्रति अंधे हो जाते हो; तुम उसे स्वीकारे ही कर लेते हो कि ठीक है, यह तो मिलता ही है, और चाहिए!

अकसर ऐसा होता है, जितना ज्यादा तुम्हें मिल जाता है, उतने ही तुम दरिद्र हो जाते हो। क्योंकि उसको तो तुम स्वीकार ही कर लेते हो, उसकी तो तुम बात ही भूल जाते हो जो मिल गया।

एक मनोविज्ञानशाला में बंदरों पर कुछ प्रयोग किया जा रहा था। तो एक कटघरे में दस बंदर रखे गये थे जिनका रोज नहलाना-धुलाना होता था। ठीक भोजन मिलता था। बड़ी उस कटघरे में सफाई रखी गयी थी, एक मक्खी न थी।

दूसरे कटघरे में दस उन्हीं के साथी बंदर थे। उनको नहलाया-धुलाया न जाता था। उन पर गंदगी इकट्ठी हो गयी थी, जूं पड़ गये थे, मक्खियां भनभनाती रहती थीं। सफाई का कोई इंतजाम नहीं किया गया था। यह तो प्रयोग था एक।

तीन महीने में मनोवैज्ञानिकों ने जो निष्कर्ष निकाला वह यह था कि वे जो गंदे बंदर थे, जिन पर मक्खियां झूमती रहती थीं और जिनके शरीर में जूं पड़ गयी थीं, और जिनको नहलाया-धुलाया न गया था – वे ज्यादा शांत और ज्यादा प्रसन्न! और जिनको नहलाया-धुलाया जाता था, ठीक भोजन दिया जाता था, वक्त पर दिया जाता था, और सब तरह की साज-संभाल रखी गयी थी, एक मक्खी नहीं जाने दी गयी थी – वे बड़े परेशान!

फिर यही प्रयोग कुत्तों पर भी दोहराया गया और यही परिणाम पाया गया।

तो मनोवैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि जब तुम्हारी जिंदगी में बहुत परेशानी होती है, तब तुम ज्यादा शांत होते हो। तुम परेशानी में उलझे होते हो, अशांत होने की भी तुम्हें सुविधा नहीं होती। जैसे-जैसे तुम्हारे पास सुविधा होती जाती है, वैसे-वैसे तुम अशांत होते जाते हो, क्योंकि सुविधा होती है, व्यस्तता नहीं होती, उलझाव नहीं होता – करो भी तो करो क्या! तो तुम शिकायतों में पड़ जाते हो।

यह मेरा अनुभव है कि जिनके जीवन में भी ध्यान की थोड़ी-सी शांति आनी शुरू होती है, वे और लोभ से भर जाते हैं। जिनको भक्ति की थोड़ी-सी झलक मिलती है, वे और लोभ से भर जाते हैं। जिनको नहीं मिली है, वे उतने लोभ में भरे नहीं हैं, वे ज्यादा प्रसन्न मालूम पड़ते हैं। जिंदगी का उलझाव काफी है। उन्हें स्वाद ही नहीं मिला तो लोभ कहां से लगे?

तुम गौर करो, गरीब आदमी को तुम ज्यादा शांत पाओगे अमीर आदमी की बजाय। कारण साफ है : वही जो बंदरों के कटघरे में हुआ। अमीर को सब मिल रहा है, अब वह करे क्या! शिकायत ही करता है।

जो बाहर की अमीरी-गरीबी के संबंध में सच है, वही भीतर की अमीरी-गरीबी के संबंध में भी सच है।

अगर तुम्हें झलकें मिल रही हैं थोड़ी, झीनी सही...झीनी भी तुम कहते हो; वह भी तुम्हारा शिकायती चित्त है, जो उन्हें झीनी बता रहा है। 'कभी-कभी मिलती हैं,' चलो कभी-कभी सही। कभी-कभी भी तुम कहते हो, वह भी तुम्हारा शिकायती चित्त है। उसमें भी लोभ है। जो मिलता है वह तो स्वीकार कर लिया। वह तो जैसे तुम मालिक थे, मिलना ही चाहिए था; तुम अधिकारी थे उसके! बाकी जो नहीं मिल रहा है उसकी शिकायत है। तो तुमने भक्ति का राज नहीं समझा, तुम्हें उपासना की कला न आयी।

जो नहीं मिलता उसकी बात ही मत उठाओ। वह बात उठानी अशिष्ट है। उससे असंस्कार पता चलता है। जो मिलता है उसकी बात करो, उसका गुणगान करो, उसकी महिमा गाओ, उसके गीत गुनगुनाओ। और तुम जल्दी ही पाओगे : और द्वार खुलने लगे। तुम जल्दी ही पाओगे : और नयी हवाएं आने लगीं, और नयी झलकें मिलने लगीं।

जैसे-जैसे आदमी को मिलना शुरू होता है कुछ, वैसे-वैसे उसके पैर शिथिल होने लगते हैं। यह भी मन की प्रकृति समझ लेनी जरूरी है।

तुमने कभी खयाल किया, अगर तुम कहीं यात्रा पर गये हो, पदयात्रा पर, किसी तीर्थयात्रा पर, जैसे-जैसे मंदिर करीब आने लगता है, वैसे-वैसे पैर शिथिल होने लगते हैं। अकसर ऐसा है, अकसर तुमने देखा होगा या अनुभव भी किया होगा कि ठेठ मंदिर के सामने जाकर यात्री सीढ़ियों पर बैठ जाता है। अब ज्यादा दूर नहीं है मामला। अब पांच सीढ़ियां, दस सीढ़ियां चढ़नी हैं, और मंदिर... ! दस मील चल आया, पहाड़ चढ़ आया, कभी बैठा नहीं बीच में कहीं, ठीक मंदिर के सामने आकर बैठ जाता है। लगता है : आ ही गये!

लेकिन तुम मंदिर की सीढ़ियों पर बैठो या हजार मील दूर मंदिर से बैठो, फर्क क्या है ? सीढ़ियों पर जो है वह भी मंदिर के बाहर है। हजार मील दूर जो है, वह भी मंदिर के बाहर है।

और परमात्मा का मंदिर कुछ ऐसा है कि तुम बैठे कि चूके। यह कोई जड़-पत्थर का मंदिर नहीं है कि तुम सीढ़ियों पर बैठे रहे तो मंदिर भी वहां रुका रहेगा; यह तो चैतन्य मंदिर है : तुम बैठे कि चूके ! तुम बैठे कि मंदिर दूर गया ! तुम रुके कि खोया !

'सामने मंजिल है और आहिस्ता उठते हैं कदम
पास आकर दूर हो रहे हैं मंजिल से हम।'

सावधान रहना !

जब ध्यान की लहरें उठने लगें, भक्ति की उमंग आने लगे, थोड़ी रसधार बहे, थोड़ी मस्ती छाये, तो दो खतरे हैं। एक खतरा यह है, जो इस प्रश्न करनेवाले ने पूछा है, वह खतरा यह है कि तुम कहो कि यह तो कुछ भी नहीं है, और चाहिए ! तो भी तुम दूर हो जाओगे। दूसरा खतरा यह है कि तुम कहो, 'बस हो गया ! पहुंच गये।' और बैठ जाओ, तो भी तुम खो गये !

फिर करना क्या है ?

चलते जाना है और शिकायत नहीं करनी है !

चलते जाना है और अहोभाव से भरे रहना है !

चलते जाना है और धन्यवाद देते जाना है !

ओंठ पर गीत रहे धन्यवाद का; और पैर, पैर रुकें न ! धन्यवाद तुम्हारा रुकावट न बन जाए !

अकसर ऐसा होता है कि शिकायती चलते हैं और धन्यवादी बैठ जाते हैं। दोनों खतरे हैं।

पहुंचता वही है जिसने उस गहरे संयोग को साध लिया; धन्यवादी है, और चलता है। बड़ा गहरा संतुलन है, लेकिन अगर होश रखो तो सध जाता है।

चौथा प्रश्न : कल के सूत्र में कहा गया कि लौकिक और वैदिक कर्मों के त्याग को निरोध कहते हैं और निरोध भक्ति का स्वभाव है। और फिर यह भी कहा गया कि भक्त को शास्त्रोक्त कर्म विधिपूर्वक करते रहना चाहिए। कृपया इस विरोध को स्पष्ट करें।

● विरोध नहीं है, दिखायी पड़ता है। जो भी पढ़ेगा, तत्क्षण दिखायी पड़ेगा कि पहले तो कहा लौकिक और वैदिक कर्म, सबका त्याग हो जाता है, निरोध हो जाता है, छूट जाते हैं; और फिर कहा, करते रहना चाहिए।

विरोध दिखायी पड़ता है, विरोध है नहीं। जानकर ही दूसरा सूत्र रखा गया है कि जब तुम्हारे जीवन से लौकिक और वैदिक, इस लोक के और परलोक के, सारी आकांक्षाएं और सारे कर्म छूट जाते हैं, तो कहीं ऐसा न हो कि तुम कर्मों को छोड़ ही दो। कर्म तो छूट जाते हैं, लेकिन तुम करते रहना। इसका अर्थ हुआ कि अब तक तुमने कर्ता की तरह किया था, अब अभिनेता की तरह करना। फिर तत्क्षण विरोध खो जाता है। अब तक तुमने किया था कि मैं कर्ता हूं, अब तुम अभिनेता की तरह

करना। क्योंकि जिस विराट समूह के तुम हिस्से हो, वह मानता है कि ये कर्म उचित हैं। इनका अभिनय करना है। तुम्हारे लिए इनका कोई मूल्य नहीं है।

ऐसा ही समझो : जब शहर में आते हो तो बाएं चलने लगते हो; जंगल में जाकर फिर बाएं-दाएं का हिसाब रखने की कोई जरूरत नहीं। जंगल में तुम अकेले हो : बाएं चलो, दाएं चलो, बीच में चलो, जैसा चलना हो चलो, क्योकि वहां कोई पुलिसवाला नहीं खड़ा है, रास्ते पर कोई तख्तियां नहीं लगी हैं। वहां कोई और है ही नहीं तुम्हारे सिवाय।

अगर जंगल में भी जाकर तुम बाएं-ही-बाएं चलो तो तुम पागल हो, फिर तुम्हारा दिमाग खराब है। क्योंकि बाएं चलने का कोई संबंध चलने से नहीं है, बाएं चलने का संबंध भीड़ में चलने से है। जंब अकेले हो तब मुक्त हो।

तो, जो व्यक्ति भक्त की दशा को उपलब्ध हुआ, अपने भीतर अपने एकांत में, तो सभी नियमों के बाहर हो जाता है। वहां न तो कोई शास्त्र है, न कोई नियम है, न कोई रीति है, न कुछ पाना है, न कहीं जाना है। वह तो अपने भीतर परम अवस्था को उपलब्ध हो गया है। वह तो परमात्मा के साथ एकरस हो गया ! भीतर, जहां सब एकांत है, वहां तो अद्वैत हो गया, वहां तो अनन्यता सध गयी !

लेकिन बाहर, जब वह राह पर जाएगा, तब ? तब बाएं चलेगा। कहीं ऐसा न हो कि जो तुमने भीतर अनुभव किया है, तुम उसे बाहर भी थोपने की चेष्टा में न पड़ जाओ, इसीलिए स्पष्ट सूत्र पीछे दिया है : करने चाहिए ! 'उस व्यक्ति को शास्त्रोक्त कर्म विधिपूर्वक करने चाहिए।' जानकर, होश से, उन नियमों का पालन करना चाहिए। वे अभिनय होंगे अब। उनकी कोई अर्थवत्ता नहीं है।

लेकिन अगर तुम अंधों के बीच रहते हो तो अंधों के नियम मानो। अगर तुम अज्ञानियों के बीच रहते हो तो अज्ञानियों के नियम मानो।

इसे थोड़ा समझने जैसा है।

भारत में एक बड़ी प्राचीन धारणा है कि जब व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो जाए तो वह चेष्टापूर्वक नियमों को वैसा ही मानता रहे जैसा पहले मानता था जब ज्ञान को उपलब्ध न हुआ था। शायद यही कारण है कि भारत में महावीर, बुद्ध, पतंजलि, नारद, कबीर, किसी को भी जीसस जैसी सूली नहीं लगानी पड़ी, सूली पर नहीं लटकाना पड़ा, और न सुकरात जैसा जहर पिलाकर मारना पड़ा।

इसके पीछे बहुत-से कारणों में एक बुनियादी कारण यह भी है कि बुद्ध ने जो भीतर पाया, उसे जबरदस्ती उन लोगों पर नहीं थोपा जो अभी उसको समझ भी न सकते थे। भीड़ से अकारण संघर्ष न लिया। भीड़ को फुसलाया, समझाया, जगाने की चेष्टा की, ऊपर उठाने के उपाय किये; लेकिन अकारण संघर्ष न लिया।

जीसस सीधे संघर्ष में आ गये। शायद जीसस के मुल्क में, यहूदियों के समाज में, ऐसा कोई सूत्र नहीं था। ऐसे किसी सूत्र को मैं अब तक नहीं देख पाया हूं यहूदियों के किसी भी शास्त्र में, जिसमें यह कहा गया हो कि परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति समाज के नियमों को मानकर चले। टकराहट स्वाभाविक हो गयी।

और जब टकराहट होगी तो एक बात पक्की है कि ज्ञानी तो एक है, अज्ञानी करोड़ हैं। भीड़

उनकी है। वे ज्ञानी को मार डालेंगे। ज्ञानी अज्ञानियों को तो न उठा पाएगा, अज्ञानी ज्ञानी को मिटा देंगे।

तो, भीड़ को मानकर चलना सिर्फ अपनी सुरक्षा ही नहीं है – क्योंकि ज्ञानी को अपनी सुरक्षा की क्या चिंता! – भीड़ की मानकर चलना, भीड़ पर करुणा है। अन्यथा भीड़ तुम्हारे विपरीत हो जाएगी; तुम उसे फुसला भी न सकोगे, राजी भी न कर सकोगे, तुम उसे दिशा भी न दे सकोगे।

ऐसा समझो कि तुम मेरे साथ हो, तुम्हारी निन्यानबे बातें मैं मान लेता हूं तो तुम भी मेरी एक बात मानने को तैयार हो सकते हो; हालांकि मेरी एक तुम्हें बिलकुल बर्बाद कर देगी, तुम जहां हो वहां से उखाड़ देगी। और तुम्हारी निन्यानबे मेरा कुछ बिगाड़नेवाली नहीं हैं। तुम्हारी निन्यानबे मेरे लिए अभिनय होंगी। मेरी एक तुम्हारे लिए जीवन-क्रांति हो जाएगी।

आखिरी प्रश्न : जिसे भक्ति में अनन्यता कहा है, क्या वही दर्शन का अद्वैत नहीं है?

● अर्थ तो वही है, लेकिन स्वाद में बड़ा भेद है।

अनन्यता में रस है। अद्वैत बड़ा रूखा-सूखा शब्द है। अद्वैत तर्क का शब्द है; अनन्यता प्रेम का।

अनन्यता कहती है : एक हो गये!

अद्वैत कहता है : दो न रहे।

बात तो वे एक ही कहते हैं। लेकिन 'दो न रहे', इसमें बड़ा तर्क है। अद्वैत यह भी नहीं कहता कि 'एक' हो गये, क्योंकि 'एक' कहने से 'दो' का खयाल आ सकता है। 'एक' में 'दो' का खयाल छिपा ही है। इसलिए कान को सीधा न पकड़कर तर्कशास्त्र हाथ घुमाकर उलटा पकड़ता है : 'दो' न रहे, इसलिए अद्वैत। क्या हुआ, इसके संबंध में बात नहीं कही जा रही है।

'अनन्यता' सीधी खबर है कि क्या हुआ।

'अद्वैत' बाहर-बाहर से खबर है।

अद्वैत ऐसा है जैसा कोई तुमसे पूछे कि 'प्रेम क्या', और तुम कहो, 'घृणा नहीं'। निषेध से कहा जा रहा है। माना कि प्रेम घृणा नहीं है, यह सच है; लेकिन प्रेम घृणा के न होने से बहुत ज्यादा है।

'अनन्यता' बड़ा प्यारा शब्द है। दूसरा दूसरा न रहा : अनन्य का अर्थ है। अन्य अन्य न रहा, अनन्य हो गया! दूसरा दूसरा न रहा, एक हो गये! अद्वैत से ज्यादा है यह बात। इसमें थोड़ा रस है जो अद्वैत में नहीं है।

'अद्वैत' गणित और तर्क का शब्द है; 'अनन्यता' प्रेम और काव्य का। अद्वैत पर किताब लिखनी हो तो रूखी-सूखी होगी। अनन्यता पर किताब लिखनी हो तो काव्य होगा, तो गीत होगा।

अनन्यता प्रगट करनी हो तो नाचकर प्रगट हो सकती है; जैसे नर्तक नृत्य से एक हो जाता है, ऐसा अनन्य। अनन्यता प्रगट करनी हो तो मस्ती से प्रगट होगी। अद्वैत प्रगट करना हो तो मस्ती की कोई जरूरत नहीं; नृत्य की जरूरत ही नहीं है; नृत्य को बीच में लाने में बाधा पड़ेगी; सीधे तर्क के नियम काफी हैं।

इसलिए वेदांत के शास्त्र बड़े रूखे-सूखे हैं, मरुस्थल जैसे हैं ! वे भी परमात्मा के ही शास्त्र हैं,

क्योंकि मरुस्थल भी परमात्मा के ही हैं। लेकिन वहां हरियाली नहीं उगती। वहां फूल नहीं लगते और पक्षियों का कोई कलरव नहीं होता। झरनों का कलकलनाद वहां नहीं है। राह से गुजरोगे तो मरुस्थल में भी खजूर के पेड़ मिल जाते हैं, वे भी वेदांत में न मिलेंगे।

इसलिए वेदांत ने एक बड़ा रूखा-सूखा शास्त्र दिया है। इसलिए वेदांती तर्क करते रहे, खंडन-मंडन करते रहे, शास्त्रार्थ करते रहे। भक्त नाचा! उतना समय उसने इसमें न गंवाया।

चैतन्य नाचे। ले लिया तंबूरा, गांव-गांव नाचे! नहीं किया कोई विवाद।

मीरा नाची!

पग घुंघरू बांध नाची।

कोई विवाद नहीं किया!

विवाद में कहां वह स्वाद जो पग-घुंघरुओं में है!

विवाद में कहां वह स्वाद जो वीणा की झंकार में है!

और जब इतने मधुर उपाय उपलब्ध हों तो क्या तर्क जैसा रूखा-सूखा उपाय खोजना!

मीरा बरसी!

जिसने देखा वह डूबा!

जो पास आया, भूला!

विस्मृत किया अपने को!

एक डुबकी लगायी!

कुछ लेकर गया!

चैतन्य के जीवन में तो दोनों घटनाएं हैं, क्योंकि पहले वे बड़े तर्कशास्त्री थे, न्यायविद थे। और एक ही काम था उनके जीवन में : विवाद। उन जैसा विवादी नहीं था। बंगाल में उनकी बड़ी ख्याति थी। बड़े-बड़े पंडितों को उन्होंने हराया। लेकिन धीरे-धीरे एक बात समझ में आयी : पंडित हार जाते हैं, वे जीत जाते हैं — लेकिन भीतर कोई रसधार नहीं बह रही; इस जीत को भी इकट्ठा करके भी क्या करेंगे! ऐसे जीवन बीता जाता है। यह प्रमाण-पत्र इकट्ठे करके क्या होगा कि कितने लोगों को जीत लिया और कितने लोगों को तर्क में पराजित किया! यह तर्क के जाल से क्या होगा!

एक दिन होश आया कि यह तो समय को गंवाना है। फिर उन्होंने सब तर्क छोड़ दिया। शास्त्र नदी में डुबा दिये। ले लिया मंजीरा, नाचने लगे! तब उन्होंने किसी और ढंग से लोगों को जीता। तर्क से नहीं जीता, प्रेम से जीता! तब उनके चारों तरफ एक, एक अलग ही माहौल चलने लगा! उनकी हवा में एक और गंध आ गयी! जहां उनके पैर पड़े, वहीं विजय-यात्रा हुई। जिसने उन्हें देखा, वही हारा। लेकिन इस हार में कोई हराया न गया। इस हार में कोई अहंकार न था जीतनेवाले का। इस हार में हारनेवाले को पीड़ा न हुई। यह प्रेम की हार थी जो कि जीतने का एक ढंग है।

प्रेम की हार में कोई हारता ही नहीं, दोनों जीतते हैं।

प्रेम में जीते तो जीत, हारे तो जीत। वहां हार-जीत में भेद नहीं है।

अनन्यता बड़ा मधुर शब्द है; अद्वैत बिलकुल रूखा-सूखा!

अनन्यता ऐसा है जैसा हरा फल, रस-भरा !

अद्वैत ऐसा है जैसे सूखा फल, झुर्रियां पड़ा, सब रस खो गया !

गुठली ही गुठली है अद्वैत !

पर अद्वैत की भाषा अहंकार को जमती है, क्योंकि अहंकार को गंवाने की शर्त नहीं है वहां।

इसलिए तुम देखोगे : अद्वैतवादी संन्यासी हैं भारत में, उनको तुम बड़ा अहम्मन्य पाओगे, बड़े अहंकार से भरा हुआ पाओगे। क्योंकि सारी पकड़ तर्क की है। तुम भक्त की कमनीयता उनमें न पाओगे। भक्ति की लोच, भक्त का सौंदर्य, वहां उसका अभाव होगा !

भारत ने अद्वैत के नाम पर बहुत खोया। भारत अकड़ा अद्वैत के कारण, अहंकारी हुआ, दंभ बढ़ा, शास्त्र बढ़े, तर्कजाल फैला। लेकिन भारत का हृदय धीरे-धीरे रस से शून्य होता चला गया। तो ऐसा कुछ हो गया जैसे कि उत्तप्त गर्मी के दिन आते हैं, सूरज तपता है और पृथ्वी सूख जाती है और दरारें पड़ जाती हैं !

भक्ति की वर्षा चाहिए !

ताकि फिर दरारें खो जाएं !

धरती का कण्ठ फिर भीगे !

धरती के प्राण तृप्त हों !

तृषा मिटे !

और धरती धन्यवाद में आकाश को हजारों-हजारों वृक्षों के फूल भेंट करे !

भक्ति वर्षा है ! अद्वैत उत्तप्त सूर्य है !

पर अपनी-अपनी मौज ! अद्वैत से भी कोई पहुंचना चाहे तो पहुंच जाता है। लेकिन तब बड़ा ध्यान रखना जरूरी है कि कहीं यह तर्कजाल अहंकार को मजबूत न करे।

भक्ति सुगम है। और भक्ति में भटकना कम संभव है। क्योंकि भक्ति की पहली ही शर्त है अहंकार को छोड़ना।

भक्ति का सारा जोर 'उस' पर है।

अद्वैत कहता है : 'अहं ब्रह्मास्मि ! मैं ब्रह्म हूं !' ठीक है बिलकुल बात। अगर जोर ब्रह्म पर हो तो ठीक है, कहीं जोर 'मैं' पर हुआ तो बिलकुल गलत है। कौन तय करेगा, किस पर जोर है ? 'अहं ब्रह्मास्मि ! मैं ब्रह्म हूं !' — जब मैं यह कहूं कि मैं ब्रह्म हूं तो तुम कैसे तय करोगे कि मेरा जोर कहां है : 'मैं' पर या ब्रह्म पर ? अगर ब्रह्म पर हुआ तो सब ठीक, अगर मैं पर हुआ तो सब गलत। वाक्य वही है।

लेकिन भक्ति 'मैं' पर बात ही नहीं उठाती। भक्ति कहती है : 'उसके' अनन्य प्रेम में डूब जाना, 'उसके' परम प्रेम में डूब जाना भक्ति है। 'उसके' !

आज इतना ही।

कलाओं की कला है भक्ति

पांचवां प्रवचन

सूत्र

तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ॥१५॥
पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः ॥१६॥
कथादिष्विति वर्गः ॥१७॥
आत्मरत्यविरोधेनेति शांडिल्यः ॥१८॥
नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता
तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ॥१९॥
अस्त्येवमेवम् ॥२०॥
यथा व्रजगोपिकानाम् ॥२१॥
तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः ॥२२॥
तद्विहीनं जाराणामिव ॥२३॥
नास्त्येव तस्मिंस्तत्सुखसुखित्वम् ॥२४॥

विराट का अनुभव — मुश्किल! पर अनुभव से भी ज्यादा मुश्किल है अभिव्यक्ति। जान लेना बहुत मुश्किल — जना देना और भी ज्यादा मुश्किल! क्योंकि व्यक्ति मिट सकता है... बूंद खो सकती है सागर में, और अनुभव कर ले सकती है सागर का; लेकिन दूसरी बूंदों को कैसे कहे, जिन्होंने मिटना नहीं जाना, जो अभी अपनी पुरानी सीमाओं में आबद्ध हैं... उनको कैसे कहे!

एक पक्षी उड़ सकता है खुले आकाश में अपने पिंजरे से; लेकिन जो पिंजरे में बंद हैं, उन्हें खुले आकाश की खबर कैसे दे!

खुला आकाश एक अनुभव है — बड़ा सूक्ष्म! प्राणों में उसका स्पर्श होता है; गहरे में उसकी अनुभूति होती है — लेकिन शब्दों में कैसे उसे कोई बांधे!

शब्द में बंधते ही आकाश आकाश नहीं रह जाता। शब्द में बंधते ही विराट विराट नहीं रह जाता। इधर शब्द में बांधा कि उधर अनुभव झूठा हुआ।

इसलिए बहुत हैं जो जानकर चुप रह गये हैं। बहुत हैं जो जानकर गूंगे हो गये हैं। गूंगे थे नहीं; जानने ने गूंगा बना दिया। बहुत थोड़े-से लोगों ने हिम्मत की है — दूर की खबर तुम तक पहुंचाने की। वह हिम्मत दाद देने के योग्य है। क्योंकि असंभव है चेष्टा। माध्यम इतने अलग हैं...!

समझें, जैसे देखा सौंदर्य आंख से, और फिर किसी को बताना हो और वह अंधा हो, तो क्या करियेगा? फिर कोई और माध्यम चुनना पड़ेगा; आंख का माध्यम तो काम न देगा। तुमने तो आंख से देखा था सौंदर्य सुबह का, या रात का तारों से भरे आकाश का, अंधे को समझाना है, आंख का माध्यम तो काम नहीं देगा, तो सितार पर गीत बजाओ! धुन बजाओ! नाचो! पैरों में घूंघर बांधो! लेकिन माध्यम अलग हो गया : जो देखा था, वह सुनाना पड़ रहा है।

तो जो देखा था, वह कैसे सुनाया जा सकता है? जो आंख ने जाना, वह कान कैसे जानेगा?

इससे भी ज्यादा कठिन है बात सत्य के अनुभव की। क्योंकि अनुभव होता है निर्विचार में और अभिव्यक्ति देनी पड़ती है विचार में। विचार सब झूठा कर देते हैं।

फिर भी हिम्मतवर लोगों ने चेष्टा की है : करुणा के कारण, शायद किसी के मन में थोड़ी भनक पड़ जाए; न सही पूरी बात, न सही पूरा आकाश, थोड़ी-सी मुक्ति की सुगबुगाहट आ जाए, थोड़ी-सी पुलक पैदा हो जाए; न सही पूरा दृश्य स्पष्ट हो, प्यास ही जग जाए; सत्य न बताया जा सके न सही,

लेकिन सत्य की तरफ जाने के लिए इशारा, इंगित किया जा सके – उतना भी क्या कम है !

'हजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।'

हजारों साल तक नर्गिस रोती है, कोई उसकी रोशनी को देखने और दिखानेवाला नहीं। फिर कहीं कोई दीदावर पैदा होता है, कहीं कोई एक आंखवाला पैदा होता है।

नर्गिस को तो शायद एक आंखवाला भी, उसकी रोशनी के लिए बोध दिला देता होगा कि मत रो, तू सुंदर है; लेकिन सत्य के लिए तो और भी कठिनाई है। हजारों साल में कभी कोई दीदावर वहां भी पैदा होता है। फिर वह जो कहता है, वह कोई गीत जैसा नहीं है, हकलाने जैसा है; वह नाच जैसा नहीं है, लंगड़ाने जैसा है। और नाच में और लंगड़े की गति में जितना अंतर है, किसी के मधुर गीत में और किसी के हकलाने में जितना अंतर है, उतना ही अंतर सत्य को देखने में और सत्य को कहने में है।

बहुत तो चुप रह गये। उन्होंने यह झंझट न ली। लोगों ने पूछा भी ऐसे चुप रह जानेवालों से। वे तो ढोंग कर गये कि दीवाने हैं। वे तो पागल बन गये। उन्होंने तो अपने चारों तरफ एक पागलपन का अभिनय कर लिया। धीरे-धीरे लोग समझ गये कि पागल हो गये हैं, छोड़ो भी !

'चलो अच्छा हुआ काम आ गयी दीवानगी अपनी
वर्ना हम जमाने-भर को समझाने कहां जाते।'

बहुत हैं जिन्होंने सत्य को जानकर अपने को पागल घोषित कर दिया है। सूफी उनको मस्त कहते हैं। दुनिया उनको पागल समझ लेती है। झंझट मिटी ! अब कोई पूछने भी नहीं आता कि क्या जाना। पागल से कौन पूछता है !

लेकिन कुछ थोड़े-से लोग इतना आसान रास्ता नहीं लेते। वे लाख तरह की चेष्टा करते हैं कि तुम्हें किसी तरह जतला दें। तुम्हारा हाथ पकड़कर चलाने की कोशिश करते हैं। तुम्हारे भीतर तुम्हारे प्रेम की आग को जलाने की कोशिश करते हैं। ईंधन बन जाते हैं तुम्हारे हृदय में कि लपटें लगें। हजार तरह के झूठ भी बोलते हैं, सिर्फ इसीलिए कि सत्य की तरफ थोड़ा इशारा हो जाए। तो, यह पाप करने जैसा है।

लाओत्सु ने कहा है : 'सत्य बोला नहीं कि झूठ हुआ नहीं। जो भी बोला जाएगा वह झूठ हो जाएगा।'

इसका यह अर्थ हुआ कि बुद्धपुरुष झूठ बोलते रहे, बोले तो झूठ ही बोले; क्योंकि बोलने में सच तो आता नहीं, बोलने में ही झूठ हो जाता है।

जैसे तुमने कभी देखा, लकड़ी सीधी, पानी में डाली, तिरछी दिखायी पड़ने लगती है। झूठ हो गया। बाहर खींची, सीधी-की-सीधी है। पानी में डालो, फिर तिरछी दिखायी पड़ने लगती है। क्या हो जाता है ? पानी का माध्यम हवा के माध्यम से भिन्न है। तो हवा के माध्यम में लकड़ी का जो रूप है, रंग है, वह पानी में नहीं रह जाता। जानते हो तुम भलीभांति कि लकड़ी सीधी है; तुमने ही डाली है, लेकिन तुम्हीं को तिरछी दिखायी पड़ने लगती है।

उनकी तो बात ही छोड़ दो – सुननेवालों की – जब सत्य को जाननेवाला सत्य बोलने की कोशिश करता है, उसको खुद ही तिरछा दिखायी पड़ने लगता है। भाषा का माध्यम, अभिव्यक्ति का माध्यम... !

नारद ने इन सूत्रों में, भक्ति की कितने-कितने ढंगों से व्याख्या की गयी है, उनके थोड़े-से उदाहरण दिये हैं।

'अब नाना मतों के अनुसार उस भक्ति के लक्षण बताते हैं।'

भक्ति तो एक है, मत नाना हैं। क्योंकि जिसको जैसा सूझा, वैसी उसने अभिव्यक्ति दी है। जिसको जैसी समझ आयी, जिसका जैसा ढंग था, उसने वैसे रंग भरे। ये लक्षण भक्ति के नहीं हैं; अगर गौर से समझो तो ये लक्षण, जिस भक्त ने भक्ति का गीत गाया, उसके हैं। ये देखने के ढंग के संबंध में खबर देते हैं; जो देखा गया उस संबंध में कुछ भी खबर नहीं देते।

बहुत मत हैं। बहुत मत होंगे ही, क्योंकि भक्ति अनंत है। उसके बहुत किनारे हैं, और कहीं से भी घाट बनाकर तुम अपनी नौका को छोड़ दे सकते हो सागर में। फिर जब तुम सागर की गहराइयों में पहुंचोगे, मध्य में पहुंचोगे, उस पार पहुंचोगे, तो स्वभावतः तुम उसी घाट की बात करोगे जिससे तुमने नाव छोड़ी थी। और तुम कहोगे कि जिसको भी नाव छोड़नी हो, वही घाट है। तुम्हें और घाटों का पता भी नहीं है। एक घाट काफी है। तुम अपने ही घाट का वर्णन करोगे। दूसरा किसी और घाट से उतरा था सागर में। सागर के घाटों का कोई हिसाब है! कोई हिंदू की तरह उतरा था; कोई मुसलमान की तरह उतरा था, कोई ईसाई की तरह उतरा था। ये सब घाट हैं, तीर्थ। फिर जो जहां से उतरा था, उसी की बात करेगा। दूसरे किनारे पर पहुंचकर भी, तुमने जिस किनारे से नाव छोड़ी थी, तुम्हारे दूसरे किनारे की अभिव्यक्ति में उस किनारे का हाथ रहेगा।

तो ये लक्षण जो भक्ति के हैं, भक्तों ने बताये हैं, इन में ध्यान रखना : जो जहां से पहुंचा उसने उसी की बात की। यह चर्चा मंजिल की कम, यात्रा की ज्यादा है; यह आखिरी कदम की नहीं, पहले कदम की है। और ठीक भी है, क्योंकि तुम, जो चले नहीं हो, उन्हें पहले कदम की ही जरूरत है, आखिरी कदम की जरूरत भी नहीं है। दूसरे किनारे की चर्चा हो नहीं सकती; हो भी तो तुम्हारे किसी काम की नहीं है। अभी तो इस किनारे से भी तुम दूर खड़े हो। अभी तो इस किनारे पर आने के लिए भी तुम्हें हिम्मत जुटानी पड़ेगी।

और निश्चित ही, सभी घाटों से नाव छोड़ने की कोई जरूरत नहीं है, एक ही घाट पर्याप्त है। सभी से छोड़ना भी चाहोगे तो कैसे छोड़ोगे? जब भी छोड़ोगे, एक ही घाट से छोड़ोगे।

किसी घाट पर पत्थर जड़े हैं। किसी घाट पर हीरे जड़े होंगे। किसी घाट पर आकाश को छूते वृक्ष खड़े हैं। किसी घाट पर मरुस्थल होगा, रेत का विस्तार होगा। किसी घाट पर आदमी ने कुछ व्यवस्था कर ली होगी, सीढ़ियां लगा ली होंगी। किसी घाट पर कोई व्यवस्था न होगी, अराजक होगा। पर इससे क्या फर्क पड़ता है! नाव छूट जाती है सभी घाटों से।

'शोरे-नाकूसे-बरहमन हो कि बागे-हरम
छुपके हर आवाज में तुझको सदा देता हूं मैं।'

जो ज़ानते हैं, वे कहते हैं : यह मंदिर के पुजारी के घंटों की आवाज हो कि मस्जिद के मुल्ला की, सुबह की बांग हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

'छुपके हर आवाज में तुझको सदा देता हूं मैं।'

हर आवाज में, हर ढंग में, हर व्यवस्था में, खोजनेवाला तो वही चैतन्य है; वही प्राण हैं — प्यासे, प्रेम के लिए आतुर !

'अब नाना मतों के अनुसार उस भक्ति के लक्षण बताते हैं।'

'पाराशर के पुत्र व्यास के अनुसार भगवान की पूजा आदि में अनुराग होना भक्ति है।'

पूजा का अर्थ होता है : परमात्मा को प्रतिस्थापित करना; एक पत्थर की मूर्ति है या मिट्टी की मूर्ति है, परमात्मा को उसमें आमंत्रित करना; परमात्मा को कहना कि 'इसमें आओ और विराजो — क्योंकि तुम हो निराकार : कहां तुम्हारी आरती उतारूं ? हाथ मेरे छोटे हैं, तुम छोटे बनो ! तुम हो विराट : कहां धूप-दीप जलाऊं ? मैं छोटा हूं, सीमित हूं, तुम मेरी सीमा के भीतर आओ ! तुम्हारा ओर-छोर नहीं : कहां नाचूं ? किसके सामने गीत गाऊं ? तुम इस मूर्ति में बैठो !'

पूजा का अर्थ है : परमात्मा की प्रतिस्थापना सीमा में, आमंत्रण; — इसलिए पूजा का प्रारंभ उसके बुलाने से है।

अंगरेजी में शब्द है 'गाड' भगवान के लिए। वह शब्द बड़ा अनूठा है। उसका मूल अर्थ है — जिस मूल धातु से वह पैदा हुआ है, भाषाशास्त्री कहते हैं, उस मूल धातु का अर्थ है — 'जिसको बुलाया जाता है'। बस इतना ही अर्थ है। जिसको बुलाया जाता है, जिसको पुकारा जाता है — वही भगवान।

दूसरा, जिसने कभी पूजा का रहस्य नहीं जाना, देखेगा तुम्हें बैठे पत्थर की मूर्ति के सामने, समझेगा : 'नासमझ हो ! क्या कर रहे हो ?' उसे पता नहीं कि पत्थर की मूर्ति अब पत्थर की नहीं — मृण्मय चिन्मय हो गया है ! क्योंकि भक्त ने पुकारा है ! भक्त ने अपनी विवशता जाहिर कर दी है। उसने कह दिया है कि 'मैं मजबूर हूं। तुम जैसा विराट मैं न हो सकूंगा, तुम कृपा करो, तुम तो हो सकते हो मेरे जैसे छोटे ! मेरी अड़चनें हैं। मेरी शक्ति नहीं इतनी बड़ी कि तुम जैसा विराट हो सकूं। दया करो ! तुम ही मुझ जैसे छोटे हो जाओ ताकि थोड़ा संवाद हो सके, थोड़ी गुफ्तगू हो सके, दो बातें हो सकें। मैं फूल चढ़ा सकूं, आरती उतार सकूं, नाच लूं : तुम्हारा कुछ न बिगड़ेगा। सभी रूप तुम्हारे हैं, यह एक और रूप तुम्हारा सही ! मुझे बहुत कुछ मिल जाएगा, तुम्हारा कुछ खोएगा नहीं।'

भक्त की आंख से देखना मूर्ति को, नहीं तो तुम मूर्ति को न देख पाओगे; तुम्हें पत्थर दिखायी पड़ेगा, मिट्टी दिखायी पड़ेगी। भक्त ने वहां भगवान को आरोपित कर लिया है। और जब परिपूर्ण हृदय से पुकारा जाता है, तो मिट्टी भी उसी की है। मिट्टी उससे खाली तो नहीं। पत्थर उसके बाहर तो नहीं। वह वहां छिपा ही पड़ा है। जब कोई हृदय से पुकारता है तो उसका आविर्भाव हो जाता है।

इसलिए भक्त जो देखता है मूर्ति में, तुम जल्दी मत करना, तुम नहीं देख सकते। देखने के लिए भक्त की आंखें चाहिए।

'बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा
हजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है।'

पत्थर रोते हैं हजारों साल, तब कहीं कोई पत्थर में परमात्मा को देखनेवाला पैदा होता है।

आंख चाहिए !

पूजा का प्रारंभ है आमंत्रण में कि आओ, विराजो, प्रतिस्थापना में!

मूर्ति तो झरोखा है, वहां से हम विराट में झांकते हैं।

तुम अपने घर में खड़े हो, झरोखे से आकाश में झांकते हो। तुम चांद-तारों की बात करो, दूर फैले नील-गगन की बात करो, और कोई दूसरा हो जिसको सिर्फ चौखटा ही दिखायी पड़ता हो खिड़की का, वह कहे, 'कहां की बातें कर रहे हो ? पागल हो गये हो ? लकड़ी का चौखटा लगा है, और तो कुछ भी नहीं। कहां के चांद-तारे ?'...

तो, जब तुम्हें मूर्ति में कुछ भी न दिखायी पड़े तो जल्दी मत करना; तुम्हें चौखटा ही दिखायी पड़ रहा है।

भक्त जब हृदयपूर्वक बुलाता है तो मूर्ति खुल जाती है, उसके पट बंद नहीं रहते। भक्त को उस मूर्ति के माध्यम से कुछ दिखायी पड़ने लगता है। उसे देखने के लिए भक्त की ही आंखें चाहिए।

कहते हैं कि मजनूं जब बिलकुल पागल हो गया लैला के लिए, तो उस देश के सम्राट ने उसे बुलवाया। उसे भी दया आने लगी; द्वार-द्वार, गली-गली, कूचे-कूचे वह पागल 'लैला-लैला' चिल्लाता फिरता है! गांवभर के हृदय पसीज गये। लोग उसके आंसुओं के साथ रोने लगे। सम्राट ने उसे बुलाया और कहा, 'तू मत रो।' उसने अपने महल से बारह सुंदरियां बुलवाईं और उसने कहा, 'इस पूरे देश में भी तू खोजेगा, तो ऐसी सुंदर स्त्रियां तुझे न मिलेंगी। कोई भी तू चुन ले।'

मजनूं ने आंख खोली। आंसू थमे। एक-एक स्त्री को गौर से देखा, फिर आंसू बहने लगे और उसने कहा कि लैला तो नहीं है। सम्राट ने कहा, 'पागल! तेरी लैला मैंने देखी है, साधारण-सी स्त्री है। तू नाहक ही बावला हुआ जा रहा है।'

कहते हैं, मजनूं हंसने लगा। उसने कहा, 'आप ठीक कहते होंगे; लेकिन लैला को देखना हो तो मजनूं की आंख चाहिए। आपने देखी नहीं। आप देख ही नहीं सकते, क्योंकि देखने का एक ही ढंग है लैला को – वह मजनूं की आंख है। वह आपके पास नहीं है।'

भगवान को देखने का एक ही ढंग है, वह भक्त की आंख है।

तो कोई अगर मंदिर में पूजा करता हो तो नाहक हंसना मत।

मूर्ति-भंजक होना बहुत आसान है, क्योंकि उसके लिए कोई संवेदनशीलता तो नहीं चाहिए। मूर्तियों को तोड़ देना बहुत आसान है, क्योंकि उसके लिए कोई हृदय की गहराई तो नहीं चाहिए।

मूर्ति में अमूर्त को देखना बड़ा कठिन है! वह इस जगत की सबसे बड़ी कला है। आकार में, निराकार को झांक लेना, शब्द में शून्य को सुन लेना, दृश्य में अदृश्य को पकड़ लेना – उससे बड़ी और कोई कला नहीं है।

इसलिए प्रेम कलाओं की कला है, सरताज है! उसके पार फिर कुछ भी नहीं है।

पूजा का अर्थ है : आकार में आमंत्रण निराकार को।

और अगर तुमने कभी पूजा की है तो तुम जानोगे, तुम्हारे बुलाने के पहले मूर्ति साधारण पत्थर

का टुकड़ा है, तुम्हारे बुलाने के बाद नहीं।

रामकृष्ण पूजा करते थे। अनेक दिन बीत गये, वे रोज रोते, घंटों पूजा करते, फिर एक दिन गुस्से में आ गये। तलवार टंगी थी काली के मंदिर में मूर्ति के सामने, तलवार उतार ली, और कहा, 'बहुत हो गया! इतने दिन से बुलाता हूं! अगर तू प्रगट नहीं होती तो मैं अप्रगट हुआ जाता हूं। या तो तू दिखायी दे, तू हो, या मैं मिटता हूं।' तलवार खींच ली। एक क्षण और, और गर्दन पर मारे लेते थे, कि सब कुछ बदल गया। मूर्ति जीवंत हो उठी! वहां काली न थी। मातृत्व साकार हो उठा! ओंठ जो बंद थे, पत्थर के थे, मुस्कराये! आंखें जो पत्थर की थीं, और जिनसे कुछ दिखायी न पड़ता था, उन्होंने रामकृष्ण में झांका। तलवार झनकार के साथ फर्श पर गिर गयी।

रामकृष्ण छह दिन बेहोश रहे। भक्त घबड़ा गये। मित्र परेशान हुए। डर तो पहले ही था कि यह आदमी थोड़ा पागल-सा है, यह अब और क्या हो गया! छह दिन की बेहोशी के बाद जब होश में आये, तो जो पहली बात कही, वह यही कही कि इतने दिन होश में रखा, अब फिर क्यों बेहोशी में भेजती है? इतने दिन होश में रखा छह दिन – अब क्यों बेहोशी में भेजती है? फिर से बुला ले! जा मत! रुक!'

इतना विराट था, इतना प्रगाढ़ था अनुभव कि अपने को संभाल न सके। डगमगा गये!

बूंद में जब सागर उतरे तो ऐसा होगा ही। तुम्हारे आंगन में जब पूरा आकाश उतर आये तो तुम्हारे आंगन की दीवालें कहां तक संभली रहेंगी, गिर जाएंगी!

उन छह दिनों रामकृष्ण ने चिन्मय का जलवा देखा। वे छह दिन सतत परमात्मा के साक्षात्कार के दिन थे। वह उनकी पहली समाधि थी।

लेकिन पूजा का अर्थ यही है: पहले परमात्मा को आमंत्रित करो, फिर अपने को उसके चरणों में चढ़ा दो रामकृष्ण जैसे, कि कह दो कि तू ही है, अब मैं नहीं!

तुम जितनी दूर तक परमात्मा को बुलाते हो, जितनी गहराई तक बुलाते हो, उतनी दूर तक, उतनी गहराई तक वह आता है। तुम जब अपने को मिटाने को भी तत्पर हो जाते हो तो तुम्हारे अंतरतम को छू लेता है। तुम्हारी बिना आज्ञा के वह तुम में प्रवेश न करेगा। वह तुम्हारा सम्मान करता है। वह कभी भी किसी की सीमा में आक्रमण नहीं करता। बिन बुलाया मेहमान परमात्मा कभी नहीं होता। तुम बुलाते हो, मनाते हो, समझाते-बुझाते हो, तो मुश्किल से आता है।

भक्ति खो गयी है जगत से, क्योंकि भक्ति की कला बड़ी कठिन है – सब कुछ दांव पर लगाने की कला है, जुआ है। बड़ी हिम्मत चाहिए। आंख के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए।

'पाराशर के पुत्र व्यास के अनुसार भगवान की पूजा में अनुराग होना भक्ति है।'

पूजा तो बहुत लोग करते हैं, अनुराग होना चाहिए। संस्कारवशात है तो फिर भक्ति नहीं है। चूंकि पीढ़ी दर पीढ़ी तुम्हारे घर के लोग मंदिर में जाते रहे तो तुम मंदिर जाते हो; मस्जिद जाते रहे तो मस्जिद जाते हो; आकार को पूजा तो आकार को पूजते हो; निराकार को पूजा तो निराकार को पूजते हो – औपचारिक, परंपरागत, लकीर के फकीर, दूसरों के पदचिह्नों पर चलनेवाले! नहीं, ऐसे न होगा।

उधार कोई परमात्मा तक कभी नहीं पहुंचता। तुम्हारी प्यास चाहिए, परंपरा नहीं। तुम्हारी आंख चाहिए, लकीर की फकीरी और उसका अंधापन नहीं।

तो शर्त है : पूजा में अनुराग! प्रेम चाहिए! वैसा ही प्रेम चाहिए जैसे जब तुम किसी के प्रेम में पड़ जाते हो, तो सब औपचारिकता खो जाती है, सब शिष्टाचार खो जाता है। पहली दफा तुम किसी और ही गहराई से बोलना शुरू करते हो। इसके पहले भी बोलते रहे थे, लेकिन वह ओंठों की बात थी। अब हृदय बोलता है! पहली दफा तुम किसी और ही हवा में और किसी और ही माहौल में जीते हो। क्या हो जाता है?

साधारण प्रेम में क्या होता है? दूसरे में तुम्हें कुछ दिखायी पड़ने लगता है जो अब तक तुम्हें कभी किसी में दिखायी न पड़ा था; तुम्हारी आंख खुलती है!

तुमने कभी खयाल किया, प्रेमी दूसरों को पागल मालूम पड़ते हैं! अगर कोई दूसरा किसी के प्रेम में पड़ जाए और दीवाना हो जाए, तो तुम हंसोगे, तुम कहोगे, 'पागल है, नासमझ है। समझ में आ! होश में आ! क्या कर रहा है?'

सारी दुनिया हंसती है प्रेमी पर; क्योंकि सारी दुनिया अंधी है और प्रेमी के पास आंख आ गयी है, उसे कुछ दिखायी पड़ता है जो किसी को दिखायी नहीं पड़ता।

'हम खुदा के भी कभी काइल न थे
उनको देखा तो खुदा याद आया।'

प्रेमी पहली दफा किसी साधारण व्यक्ति में परमात्मा के दर्शन कर लेता है, कोई झलक पाता है। तुम जिसके प्रेम में पड़ जाते हो, वहीं तुम्हें परमात्मा की थोड़ी-सी झलक पहली दफा मिलती है; तुम्हारा आस्तिक होना शुरू हुआ।

प्रेम : आस्तिकता की पहली गंध, पहली लहर। प्रेम : आस्तिकता की तरफ पहला कदम! क्योंकि कम-से-कम चलो एक में ही सही, परमात्मा दिखा तो! और एक में दिखा तो सब में भी दिख सकता है; न भी दिखे तो भी इतना तो तुम समझ ही सकते हो कि एक में दिखा तो सब में भी होगा।

लेकिन जल्दी ही तुम्हारी प्रेम की आंख धुंधली हो जाती है : जिसमें तुम्हें परमात्मा दिखा था, वह भी एक ख्वाब, एक सपना हो जाता है; जल्दी ही तुम भूल जाते हो, धूल जम जाती है।

जब प्रेम की घटना घटे तो जल्दी करना उसे पूजा बनाने की, अन्यथा समय ढांक देगा।

इसलिए मैं कहता हूं, जवानी पूजा के दिन हैं। लेकिन लोग कहते हैं, पूजा बुढ़ापे में करेंगे। वे कहते हैं, जवानी में प्रेम करेंगे, बुढ़ापे में पूजा करेंगे। इतना फासला प्रेम में और पूजा में होगा तो प्रेम तो मर ही जाएगा, पूजा आ न पाएगी। लोग यही कह रहे हैं कि प्रेम तो जवानी में करेंगे; जब प्रेम मरने लगेगा, मर ही जाएगा, तब फिर पूजा कर लेंगे।

और असलियत यह है कि प्रेम ही पूजा बनता है। प्रेम के मरने से पूजा नहीं आती; प्रेम के पूरे निखरने से पूजा बन जाती है। एक में जो दिखायी पड़ा है, अब इस सूत्र को पकड़ लेना और इसको औरों में भी देखने की कोशिश करना। जब आंख ताजी ताजी हो, लहर नयी हो, उमंग अभी जोश-भरी हो, उत्साह युवा हो, तो जल्दी कर लेना। जो तुम्हें अपनी प्रेयसी में, प्रेमी में दिखा हो, बच्चे

में दिखा हो, अपने बेटे में दिखा हो, मित्र में दिखा हो, जल्दी करना क्योंकि उस वक्त तुम्हारे पास आंख है, उस वक्त सारे जगत को गौर से देख लेना : तुम अचानक पाओगे, वह सभी के भीतर छिपा है, क्योंकि उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।

'पूजा में अनुराग'... ।

पूजा करते तुम बहुत लोगों को देखोगे, लेकिन अनुराग नहीं है, प्रेम नहीं है, पूजा तो है, विधि-विधान है। सात दफा आरती उतारनी है तों तुम सात दफा आरती उतारते हो; गिनती से उतारते हो, कहीं आठ न हो जाए। वहां भी कंजूसी है।

रामकृष्ण पूजा करते तो कभी-कभी, दिन-दिन-भर करते, खाना-पीना भूल जाते। उनकी पत्नी शारदा द्वार पर खड़ी है, वह कहती है कि परमहंस देव, समय निकला जा रहा है, सूर्यास्त हुआ जा रहा है, दिन-भर से आप भूखे हैं। मगर वहां कोई परमहंस देव हैं कि सुनें। वे नाच रहे हैं ! भूख की खबर किसको लगे ! भूख की याद किसको आये ! जो भगवान का भोग लगा रहा हो, संसार के भोजन उसे क्या याद आएं ! गिर पड़ते; तभी उठाकर लाये जाते, अपने से न आते। बहुत दफे उन्हें कहा गया, 'ऐसा न करें ! पूजा ठीक है, घड़ी-दो-घड़ी की ठीक है।' पर रामकृष्ण कहते कि घड़ी-दो-घड़ी की याद रह जाए तो पूजा होती ही नहीं।

तुमने कभी अपने को पूजा करते देखा, बीच-बीच में तुम घड़ी देख लेते हो ! घड़ी को वहीं रख आया करें जहां जूते छोड़ आते हो। जूते भी आ जाएं , मंदिर खराब न होगा, घड़ी नहीं आनी चाहिए। जूतों में ऐसा कुछ भी नहीं है, घड़ी नहीं आनी चाहिए। क्यों ? क्योंकि परमात्मा है शाश्वतता। समय को अपने साथ लिये तुम उसे न छू सकोगे। वह है अनंत, तुम क्षणों को साथ लिये बैठे हो। और तुम्हारा मन बार-बार देख रहा है कि कब दुकान जाएं , कब दफ्तर जाएं, कब बाजार जाएं! तो अच्छा है, जाना ही मत। ऐसा समय जो तुमने मंदिर में बिताया, और बाजार के सोच में बिताया, बिलकुल व्यर्थ गया, इसका उपयोग बाजार में ही कर लेना, कुछ तो लाभ होगा। यह तो कुछ भी लाभ न हुआ।

मैंने देखा है लोगों को पूजा करते, नमाज पढ़ते।

मैं राजस्थान जाता था अकसर, तो चित्तोड़गढ़ पर गाड़ी बदलती है। सांझ की नमाज का समय होता, कोई घंटे-भर गाड़ी रुकती, तो जितने भी मुसलमान होते ट्रेन में, वे उतरकर नमाज करने लगते, बिछा लेते अपनी चादर, बैठ जाते नमाज करने, मगर हर मिनट दो मिनट में पीछे लौटकर देखते रहते कि कहीं गाड़ी छूट तो नहीं गयी। यह मैंने बहुत बार देखा।

एक मुसलमान मित्र मेरे साथ यात्रा कर रहे थे। वे भी पूजा के लिए गये। नल के पास प्लेटफार्म पर उन्होंने अपनी चादर बिछा ली, पूजा करने बैठ गये, मैं उनके पीछे खड़ा हो गया। जब उन्होंने गर्दन पीछे मोड़ी तो मैंने उनकी गर्दन वापस पकड़कर उस तरफ मोड़ दी। बहुत नाराज हुए। उस वक्त तो कुछ बोल न सके। जल्दी-जल्दी उन्होंने नमाज पूरी की। कहा, 'यह क्या मामला है ? आपने क्यों मेरी गर्दन इस तरफ मोड़ी ?'

'इस तरफ अगर गर्दन रखनी हो तो इसी तरफ रखो, उस तरफ रखनी हो तो उसी तरफ रखो। यह कैसी नमाज हुई ? यह कैसी पूजा हुई कि बीच-बीच में खयाल है कि गाड़ी छूट न जाए ? गाड़ी

छूट न जाए, इसमें परमात्मा छूटा जा रहा है', मैंने उनसे कहा, 'तुम या तो गाड़ी पकड़ लो या परमात्मा को पकड़ लो। कोई जरूरत नहीं है, मत करो नमाज – झूठी तो मत करो। कम-से-कम इतने सच्चे तो रहो कि नहीं है हृदय में तो न करेंगे।'

रामकृष्ण बहुत दिन तक मंदिर न जाते। वे कहते, 'जब भीतर ही नहीं है तो कैसे जाऊं, कैसे धोखा दूं – परमात्मा को कैसे धोखा दूं? किस मुंह से भीतर जाऊं?' द्वार के बाहर से ही, बाहर-बाहर, क्षमा मांगकर लौट आते, मंदिर में भीतर न जाते, सीढ़ियों पर से क्षमा मांग लेते: 'माफ कर, भाव नहीं है। करूंगा तो धोखा होगा, झूठ होगा।'

लेकिन तुम्हारा सब झूठ हो गया है। जिससे तुम्हें प्रेम नहीं है, उसे तुम कहते हो, प्रेम है। जिसे देखकर तुम्हारे भीतर कोई मुस्कराहट नहीं आती, तुम मुस्कराते हो। जिसे देखकर भीतर अभिशाप देने का भाव उठता है, उसको आशीर्वाद देते हुए अपने को दिखलाते हो। इन झूठों से घिरे तुम अगर परमात्मा के पास भी जाओगे तो तुम इन्हीं झूठों का प्रयोग वहां भी करोगे। फिर पूजा वैसी ही हो जाएगी जैसी सारी दुनिया में हो रही है।

कितने लोग हैं, अनगिनित, पूजा कर रहे हैं, और पूजा की गंध कहीं भी नहीं अनुभव में आती! कितने लोग प्रार्थनाएं कर रहे हैं! अगर सच में ही इतनी प्रार्थनाएं हों तो जैसे आकाश में भाप उठ-उठ कर बादल बन जाते हैं, ऐसे प्रार्थनाओं के बादल बन जाएं। सब प्रार्थना बरसने लगे। मेघ घने हो जाएं आकाश में। जल ही न बरसे, प्रार्थना भी बरसे! नदी-नाले प्रार्थना से भर जाएं!

जितने लोग प्रार्थना करते हैं, अगर ये सच में ही प्रार्थना करते हों...।

ठीक है व्यास की भी परिभाषा। ठीक है:

'भगवान की पूजा में अनुराग भक्ति है।'

फिर 'गर्गाचार्य के मत से भगवान की कथा में अनुराग भक्ति है।'

पूजा में कुछ करना होता है। निश्चित ही व्यास सक्रिय वृत्ति के रहे होंगे। कुछ करना पड़ता है: आरती उतारनी पड़ती है, फूल चढ़ाने पड़ते हैं, घंटी बजानी पड़ती है – कुछ करना पड़ता है।

इसे समझ लें।

व्यास निश्चित ही सक्रिय प्रकृति के रहे होंगे। गर्गाचार्य निष्क्रिय प्रकृति के रहे होंगे। क्योंकि व्यास जहां कहते हैं, 'पूजा आदि में अनुराग', वहां गर्गाचार्य कहते हैं, 'भगवान की कथा में..., कोई सुनाये हम सुनें, रस से सुनें, डूबकर सुनें, मिटकर सुनें – पर कोई सुनाए, हम सुनें!'

'भगवान की कथा में अनुराग...!'

तुमने कभी खयाल किया: कथाओं में तो तुम्हें भी अनुराग है, भगवान की कथा में नहीं है! पड़ोसी की पत्नी किसी के साथ भाग गयी, इस कथा को तुम कितने रस से सुनते हो! खोद-खोदकर बातें निकलवा लेते हो। हजार काम हों, रोक देते हो।

छोटे गांव में एकाध स्त्री भाग जाए तो पूरे गांव में काम-धंधा बंद हो जाता है उस दिन, पूरा गांव उसी चर्चा में लग जाता है।

किसी के घर चोरी हो जाए... कुछ भी हो जाए...!

अखबार तुम पढ़ते हो, वह कथा का रस है। लेकिन भगवान की कथा में अब कोई रस नहीं है। और अगर कभी तुम भगवान की कथा में भी रस लेते हो तो वह रस भगवान की कथा का नहीं होता। उसमें भी कारण वही होंगे, जिन कारणों से तुम और कथाओं में रस लेते थे। कोई की स्त्री किसी के साथ भाग गयी, राम की स्त्री को रावण भगा ले गया, तो तुम उसमें भी रस लेते हो। लेकिन तुम खयाल करना, रस तुम्हारा रावण सीता को भगा ले गया है, इसमें है, राम की कथा में नहीं है।

गर्गाचार्य कहते हैं, 'भगवान की कथा में अनुराग'...। ऐसे सुनना जैसे प्यासा जल पीता है। ऐसे सुनना जैसे तुम बिलकुल खाली हो – कान ही हो गये, तुम्हारा सारा अस्तित्व बस कान पर ठहर गया। हृदयपूर्वक सुनना! तो परमात्मा का स्मरण अनेक-अनेक रूपों में तुम्हें भर देगा। कुछ करने की जरूरत नहीं है; तुम अगर शांत बैठकर सुन भी सको...।

तुम यहां मुझे सुन रहे हो... यह भगवान की कथा है। यहां तुम ऐसे भी सुन सकते हो, जैसे और साधारण बातें सुनते हो। तुम ऐसे भी सुन सकते हो, जैसे तुम्हारा पूरा जीवन दांव पर लगा है, जीवन और मृत्यु का सवाल है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी को कहा था कि आज मैं आराम चाहता हूं, किसी को मिलाना मत; कोई आ भी जाए तो कह देना घर पर नहीं है। लेकिन वह बैठा ही था आराम करने कुर्सी पर, कि पत्नी आयी, उसने कहा, 'सुनो, एक आदमी दरवाजे पर खड़ा है।'

मुल्ला ने कहा, 'अभी मैंने कहा, अभी देर भी नहीं हुई कि मुझे आज दिनभर विश्राम करना है। अभी शुरुआत भी नहीं हुई, मैं कुर्सी पर ठीक से बैठ भी नहीं पाया।'

तो उसकी पत्नी ने कहा, 'लेकिन वह आदमी कहता है, जीवन-मरण का सवाल है।'

तब तो मुल्ला भी उठ आया, जब जीवन-मरण का सवाल हो तो कैसा विश्राम! बाहर गया, तो पाया कि वह इन्श्योरेंस कंपनी का एजेंट है। जीवन-मरण का सवाल...!

जीवन-मरण का सवाल हो, तभी तुम उठोगे, तभी तुम जगोगे।

भगवान तुम्हारे लिए जीवन-मरण का सवाल है या नहीं? अगर नहीं है, तो फिर बिलकुल मत सुनो, क्योंकि वह समय व्यर्थ ही गया। तुम जो सुनोगे वह किसी सार का नहीं होगा। क्योंकि सार तो तुम्हारे सुनने में छिपा है। सार कहने में नहीं छिपा है, सार तुम्हारे सुनने में छिपा है।

अगर तुम सुनने के लिए ही परिपूर्ण तैयार होकर नहीं आ गये हो, अगर यह सवाल तुम्हारे जीवन-मरण का नहीं है, अगर तुम अभी भी परमात्मा को किनारे पर टालकर अपने संसार में लगे रह सकते हो, अच्छा है तुम संसार में ही लगे रहो। कभी-न-कभी ऊबोगे। कभी-न-कभी लौटोगे। कभी तो वह घड़ी आयेगी, जब तुम्हारी अंधेरी रात तुम्हें दिखायी पड़ेगी और सुबह की पुकार तुम्हारे मन में उठेगी। कभी तो वह घड़ी आएगी, तुम अपने कूड़ा-करकट से घिरे-घिरे किसी दिन तो दुर्गंध को अनुभव करोगे; फूलों की गंध की तलाश शुरू होगी।

लेकिन जल्दी मत करो, अगर दुर्गंध से अभी लगाव बाकी है, तो भोग ही लो दुर्गंध को। चुक ही जाओ। रिक्त ही हो जाने दो उस अनुभव से अपने को। नहीं तो तुम सुन न पाओगे।

मैं एक पंजाबियों की सभा में बोलने गया। उस सभा के बाद फिर मेरा किसी सभा में जाने

का मन न रहा। कृष्णाष्टमी थी। और पंजाबी हिंदुओं का मोहल्ला था। मैं तो चकित हुआ, वहां व्याख्यान देनेवाले व्याख्यान दे रहे थे, और ऐसी भी स्त्रियां थीं उस सभा में – स्त्रियां ही ज्यादा थीं – जो बोलने वालों की तरफ पीठ किये आपस में गपशप कर रही थीं। वहां झुंड-के-झुंड बने थे। बड़ी भीड़ थी। मुझसे भी उन्होंने प्रार्थना की। मैंने कहा, 'तुम पागल हो! यहां कोई सुननेवाला ही नहीं है। यहां लोग अपनी बातचीत में लगे हैं और बोलनेवाले बोले जा रहे हैं।'

मैंने कहा, 'मुझे जाने दो। इनकी कोई तैयारी सुनने की नहीं है। सुनने कोई इनमें आया भी नहीं है। कृष्ण से इन्हें कुछ लेना-देना नहीं है।'

तुम मंदिरों में जाओ, स्त्रियां जो चर्चा मंदिरों में कर रही हैं, पुरुष जो बातचीत मंदिरों में कर रहे हैं, उसका मंदिर से कुछ लेना-देना नहीं है; वही राजनीति, वही उपद्रव बाहर के, वहां भी ले आते हैं; वे ही घर के, बाहर के झगड़े वहां भी ले आते हैं।

परमात्मा की कथा तो तुम तभी सुन सकते हो जब तुम पूरे रिक्त होकर सुनो।

ठीक कहते हैं गर्गाचार्य, 'भगवान की कथा में अनुराग...।' और जिस दिन इस कथा में अनुराग आता है उसी दिन संसार की कथा में अनुराग खो जाता है।

तुम व्यर्थ की बातें मत सुनो, क्योंकि यह सिर्फ सुनना ही नहीं है, जो तुम सुनते हो वह तुम्हारे भीतर इकट्ठा हो रहा है।

थोड़ा सोचो, अगर पड़ोसी तुम्हारे घर में कूड़ा फेंक दे तो तुम झगड़ा करने को तैयार हो जाते हो। और पड़ोसी तुम्हारे मन में हजार कूड़ा फेंकता रहे तो तुम झगड़ा तो करते नहीं, तुम रोज प्रतीक्षा करते हो कि कब आओ, कब थोड़ी चर्चा हो! तुम्हें घर के कूड़ा-करकट से भी इतनी समझ है, उतनी समझ तुम्हें भीतर के कूड़ा-करकट की नहीं है।

रोको अपने को व्यर्थ की बात सुनने से, नहीं तो सार्थक को सुनने की क्षमता खो जाएगी। अकारण, आवश्यक न हो, ऐसा सब सुनना त्याग दो, ताकि तुम्हारी संवेदनशीलता तुम्हें फिर से उपलब्ध हो जाए, और भगवान का नाम तुम्हारे कान में पड़े, तो वह बहुत से विचारों की भीड़ में न पड़े, अकेला पड़े। वह चोट अकेली हो तो तुम्हारे हृदय के झरने फिर से खुल सकते हैं।

'शांडिल्य के मत से आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग होना ही भक्ति है।'

व्यास सक्रिय घाट से उतरे होंगे। गर्गाचार्य निष्क्रिय घाट से उतरे होंगे। पर दोनों सरल व्यक्ति रहे होंगे, बड़े विचारक नहीं, सीधे-सादे, इनोसेंट, निर्दोष, भोले-भाले! शांडिल्य विचारक मालूम होते हैं। उनकी परिभाषा दार्शनिक की परिभाषा है। वे कहते हैं, 'आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग होना ही भक्ति है।' दार्शनिक व्याख्या है।

अपने में साधारणतः आदमी को रस होता है। साधारणतः! उसे तुम स्वार्थ कहते हो। स्वार्थ अपने में रस है, लेकिन बिना समझ का। चाहते तो तुम हो कि सुख मिले, मिलता नहीं! चाह तो ठीक है; जो तुम करते हो उस चाह के लिए, उसमें कहीं कोई गलती है।

स्वार्थ और आत्मरति में यही फर्क है। स्वार्थ भी अपने सुख की खोज करता है, लेकिन गलत ढंग से, परिणाम हाथ में दुख आता है। आत्मरति भी अपने सुख की खोज करती है, लेकिन ठीक ढंग

से, परिणाम सुख आता है।

तुम भी अपने ही सुख के लिए जी रहे हो, लेकिन अभी तुमने अपने को जो समझा है वह अहंकार है, आत्मा नहीं। अभी तुम्हारा 'स्व' अहंकार है, झूठा है। जिस दिन तुम्हारा 'स्व' वास्तविक होगा, आत्मा होगी, उस दिन तुम पाओगे : स्वार्थ ही परमार्थ है। उस दिन अपने आनंद की खोज कर लेने में ही तुमने सारी दुनिया के लिए आनंद के द्वार खोले। उस दिन तुम सुखी हुए तो दूसरों को भी सुखी होने की संभावना बतायी। उस दिन तुम्हारा दीया जला तो दूसरों के बुझे दीये भी जल सकते हैं, इसका भरोसा उनमें तुमने पैदा किया। और फिर तुम्हारे जले दीये से न मालूम कितने बुझे दीये भी जल सकते हैं।

आत्मरति का अर्थ है : वस्तुतः सच्चा स्वार्थ। उसमें परार्थ अपने-आप आ जाता है। जिसे तुम स्वार्थ समझते हो वह परार्थ के विपरीत है। और जिसको आत्मज्ञानियों ने आत्मरति कहा है, परम स्वार्थ कहा है, वह परार्थ के विपरीत नहीं है, परार्थ उसमें समाहित है, समाविष्ट है।

'आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग होना भक्ति है।'

अब इसे समझो।

तुम अपने को प्रेम करते हो – ठीक, स्वाभाविक है। इस प्रेम के कारण तुम ऐसी चीजों को प्रेम करते हो जो तुम्हारे स्वभाव के विपरीत हैं उनसे तुम दुख पाते हो। चाहते सुख हो, मिलता दुख है। आकांक्षा में भूल नहीं है। आकांक्षा को प्रयोग में लाने में तुम ठीक-ठीक समझदारी का प्रयोग नहीं कर रहे हो।

बुद्ध भी स्वार्थी हैं, कबीर भी, कृष्ण भी – लेकिन वे परम स्वार्थी हैं। वे भी अपना साध रहे हैं आनंद, लेकिन इस ढंग से साध रहे हैं कि मिलता है। तुम इस ढंग से साध रहे हो कि मिलता कभी नहीं; साधते सदा हो, मिलता कभी नहीं।

तुम कुछ ऐसी चीजों से अनुराग करने लगते हो जो कि तुम्हारे स्वभाव के विपरीत हैं; जैसे समझो, तुम धन को प्रेम करने लगो, तो तुम अपने स्वभाव के विपरीत जा रहे हो। क्योंकि धन है जड़, तुम हो चैतन्य। चैतन्य को प्रेम करो, जड़ को मत करो, अन्यथा जड़ता बढ़ेगी। और चैतन्य अगर जड़ता में फंसने लगे तो कैसे सुखी होगा? धन का उपयोग करो, प्रेम मत करो। प्रेम तो चैतन्य से करो।

तुम पद की पूजा करते हो। पद तो बाहर है। तुम पद के आकांक्षी हो। लेकिन पद तो बाहर है, तुम भीतर हो, तो तुम में और तुम्हारे पद में कभी तालमेल न हो पाएगा; तुम भीतर रहोगे। पद बाहर रहेगा। कोई उपाय नहीं है, भीतर तो तुम दीनहीन ही बने रहोगे। कितना ही धन इकट्ठा कर लो अपने चारों तरफ, कितने ही बड़े पद पर बैठ जाओ, कितना ही बड़ा सिंहासन बना लो – तुम्हारे भीतर सिंहासन न जा सकेगा; न धन जा सकेगा, न पद जा सकेगा। वहां तो तुम जैसे पहले थे वैसे ही अब भी रहोगे।

भिख़ारी को राजसिंहासन पर बिठा दो, क्या फर्क पड़ेगा! बाहर धन होगा, शायद भूल भी जाए बाहर के धन में कि भीतर अभी भी निर्धन हूं, तो यह तो और आत्मघाती हुआ। यह स्वार्थ न हुआ, यह तो मूढ़ता हुई।

असली धन खोजो – असली धन भीतर है।

असली पद खोजो – असली पद चैतन्य का है।

चैतन्य की सीढ़ियों पर ऊपर उठो।

उठने दो चैतन्य की उड़ान।

उठने दो ऊर्जा चैतन्य की – परमात्मा तक ले जाना है उसे।

मनुष्य जब तक परमात्मा न हो जाए तब तक तृप्ति नहीं है।

मनुष्य परमात्मा होने की अभीप्सा है। इससे पहले कोई पड़ाव नहीं है, कोई मुकाम नहीं। पहुंचना है उस आखिरी मंजिल तक। लेकिन तुम बीच में बहुत-से पड़ाव बना लेते हो; पड़ाव ही नहीं, उनको मुकाम बना लेते हो, मंजिल समझ लेते हो। कोई धन को ही इकट्ठा करना अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है।

शांडिल्य की परिभाषा दार्शनिक है, बहुमूल्य है :

'आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग'...।

तुमने अब तक आत्मरति के विरोधी विषय में अनुराग किया है। आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग करोगे, तो परमात्मा शब्द को बीच में लाने की जरूरत भी नहीं है, तुम धीरे-धीरे परमात्म-स्वरूप होने लगोगे।

जब भी तुम्हारे सामने चुनाव हो तो सदा ध्यान रखना : जड़ को मत चुनना, चैतन्य को चुनना। जब भी दो चीजों में से एक चुननी हो तो उसमें देख लेना, कौन ज्यादा चैतन्य है। जैसे प्रेम और धन में चुनना हो तो प्रेम चुनना। फिर प्रेम और भक्ति में चुनना हो तो भक्ति चुनना। संसार और परमात्मा में चुनना हो तो परमात्मा चुनना।

इसे अगर तुम समझ लो तो शांडिल्य की परिभाषा में ईश्वर का नाम ही नहीं है, जरूरत नहीं है उसको कहने की, वह छिपा है। इस सूत्र को मानकर अगर तुम चले तो उसे पा लोगे। अब तुम फर्क देख सकते हो। यह तीनों व्यक्तित्वों का फर्क है।

शांडिल्य बुद्ध जैसा व्यक्ति रहा होगा : 'परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है।'

बुद्ध ने कहा : ध्यान खोज लो। शांडिल्य कह रहा है : चैतन्य खोज लो, क्योंकि वही अविरोधी है। उससे तुम्हारा तालमेल बैठेगा।

'देवर्षि के मत से' ...फिर नारद अपना मत देते हैं।

'नारद के मत से अपने सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोड़ा-सा विस्मरण होने से परम व्याकुल होना भक्ति है।'

संस्कृत में, जहां-जहां हिंदी में अनुवाद किया है लोगों ने, चूक हुई है। सभी ने अनुवाद किया है, क्योंकि ऐसा लगता है ठीक नहीं कहना, नारद खुद ही शास्त्र लिख रहे हैं, तो हिंदी में अनुवादों में अनुवादकों ने लिखा है, 'देवर्षि के मत से'। लेकिन संस्कृत में 'नारदस्तु' – 'नारद के मत से' ...। नारद अपने ही नाम का उपयोग कर रहे हैं। इसमें बड़ी बात छिपी है। नारद अपने व्यक्तित्व को भी अपने से उतना ही दूर रख रहे हैं जितना शांडिल्य, जितना गर्गाचार्य, जितना व्यास। ऐसा नहीं कहते कि 'मेरे मत से'। उसमें तो मत के प्रति जरा मोह हो जाएगा : 'मेरा मत'। 'यह नारद का मत

है' — नारद भी ऐसा ही कहते हैं।

स्वामी राम अपने को हमेशा इसी तरह बोलते थे : 'राम' को भूख लगी है, 'राम' को प्यास लगी है। ऐसा न कहते थे : मुझे प्यास लगी है, मुझे भूख लगी है। अमरीका गये तो लोग वहां बड़े हैरान होते थे। पहले ही दिन जब वे एक बगीचे से शाम को घूमकर लौटे, तब तो गेरुआ वस्त्र बड़ी अनूठी चीज थी, बड़ी भीड़ लग गयी वहां। अब तो न लगेगी, कम-से-कम पंद्रह हजार मेरे संन्यासी हैं सारी दुनिया में... गेरुआ वस्त्र... ! जल्दी ही उनको लाखों तक पहुंचा देना है। लेकिन उस समय बड़ी नयी बात थी, तो भीड़ लग गयी। लोग कंकड़-पत्थर फेंकने लगे कि कोई दीवाना आ गया। राम हंसते रहे। भीड़ में से किसी को दया आयी कि यह आदमी हो सकता है, पागल हो, लेकिन दया-योग्य है। उसने भीड़ को हटाया, उनको बचाया, उनको ले चला। रास्ते में उसने पूछा कि तुम हंसते क्यों थे, तो उन्होंने कहा, 'राम की इतनी पिटाई हो रही थी और मैं न हसूं!' तो उसने कहा, 'क्या मतलब ?' क्योंकि उसे पता नहीं था उनकी आदत का। वे कहने लगे, 'राम की इतनी हंसाई हो रही थी! लोग पत्थर मार रहे थे, गालियां दे रहे थे और मैं न हंसूं! मैं खड़ा दूर देख रहा था।'

अपने ही नाम को इस तरह अगर तुम दूर कर लो तो बड़ी मुक्ति अनुभव होती है; तब तुम अपने व्यक्तित्व से अलग हो गये; तब तुम साक्षी-भाव में प्रविष्ट हो गये।

ठीक किया, नारद ने कहा : 'नारदस्तु'।

और नारद का मत है : 'सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना, और भगवान का थोड़ा-सा विस्मरण होने से परम व्याकुल होना भक्ति है।'

शांडिल्य दार्शनिक हैं, नारद भक्त हैं। शांडिल्य विचारक हैं, नारद प्रेमी हैं।

'सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना... !' प्रेमी की यही तो खूबी है कि वह कुछ भी बचाना नहीं चाहता, सब अर्पण करना चाहता है। जितना अर्पण करता है उतना ही उसे लगता है, कम ही तो किया, और करूं, और करूं! आखिर में वह अपने को भी अर्पण कर देता है।

सब अर्पण करना... और भगवान का थोड़ा-सा भी विस्मरण होने से परम व्याकुल होना...परम व्याकुलता पकड़ ले, व्याकुलता ही व्याकुलता रह जाए।

ऐसा समझो कि तुम रेगिस्तान में भटक गये, जल चुक गया, दूर-दूर तक कहीं कोई मरूद्यान नहीं है, हरियाली का कोई पता नहीं है, सागर है सूखी रेत का। प्यास तो तुम्हें पहले भी लगी थी, लेकिन आज तुम पहली दफे जानोगे कि परम प्यास क्या है। प्यास तो बहुत दफे लगी थी, लेकिन पानी सदा उपलब्ध था, जरा लगी थी और पी लिया था। आज तुम्हारा रोआं-रोआं रोयेगा। आज तुम्हारा रोआं-रोआं तड़फेगा। एक-एक रोएं में तुम प्यास अनुभव करोगे, कण्ठ में ही नहीं। तुम्हारा सारा व्यक्तित्व, तुम्हारा सारा होना प्यास में रूपांतरित हो जाएगा।... तब परम व्याकुलता! जब ऐसे ही नहीं कि तुम ऐसे ही बुलाते हो परमात्मा को कि आ जाओ तो ठीक, न आये तो भी कोई बात नहीं... नहीं, ऐसे बुलाते हो जैसे रेगिस्तान में कोई पानी को खोजता है, तड़फता है। मछली को डाल दो रेत पर पानी से निकालकर, जैसे तड़पती है, वैसी परम प्यास!

'सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोड़ा-सा भी विस्मरण होने से परम

व्याकुल होना... ।'

अभी तो हमने जिसे प्यास समझा वह प्यास नहीं है। अभी तो हमने जिसे धन समझा, धन नहीं है। अभी तो हमारी सारी समझ ही गलत है।

'हम भूल को अपनी इल्मोफन समझे हैं
गुरबत के मुकाम को वतन समझे हैं
मंजिल पे पहुंच के झाड़ देंगे इसको
ये गर्देसफर है जिसको तन समझे हैं।'

अभी तो हमारी सारी समझ उलटी है। अभी तो हम नासमझी को समझदारी समझते हैं। अभी तो हम अहंकार को आत्मा समझे हैं। अभी तो हमने शरीर को अपना होना समझा है।

'हम भूल को अपनी इल्मोफन समझे हैं
गुरबत के मुकाम को वतन समझे हैं।'

रात-भर का पड़ाव है, ठहर जाने के लिए सराय है कि धर्मशाला है, उसको हम घर समझे हैं।

'मंजिल पे पहुंच के झाड़ देंगे इसको'...

मंजिल पर पहुंचोगे तब पता चलेगा कि जैसे यात्री राह की धूल झाड़ देता है, ऐसे ही यह सब जिसे तुम धन समझे हो, जिसे तुम अपना समझे हो, यह सब झड़ जाएगा।

'ये गर्देसफर है जिसको तन समझे हैं।'

यह राह की धूल है, इससे ज्यादा नहीं। यह तुम नहीं हो। तुम तो साक्षी हो। शरीर के पीछे जो शरीर को देखनेवाला है, मन के पीछे जो मन को भी देखनेवाला है – तुम तो वही परम साक्षी हो।

सब छोड़ दो परमात्मा पर। इनमें से कुछ भी अपना मत समझो। शरीर भी उसका है – उसी पर छोड़ दो। मन भी उसका है – उसी पर छोड़ दो। कर्म भी उसी के हैं – उसी पर छोड़ दो। तुम कर्ता न रह जाओ, साक्षी हो जाओ।

तो नारद के हिसाब से, सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोड़ा-सा विस्मरण होने से परम व्याकुल होना... जरा हटे परमात्मा से तो वही हालत हो जाए जो मछली की हो जाती है सागर से हटकर; जरा भूले उसे तो तड़फ हो जाए!

'ठीक ऐसा ही है।'

नारद कहते हैं, 'ये सब जो परिभाषाएं हैं – ठीक ऐसा ही है।' ये सब परिभाषाएं ठीक हैं। इनमें कोई परिभाषा गलत नहीं है। सभी अधूरी हैं, पूरी कोई भी नहीं। सभी ठीक हैं, गलत कोई भी नहीं। भाषा का स्वरूप ऐसा है कि अधूरा ही रहेगा।

सत्य के इतने पहलू हैं कि तुम चुका न पाओगे, और एक आदमी एक ही पहलू की बात कर पाता है।

एक महाकवि की मृत्यु हुई, तो उसके मित्रों ने उसके मरने के पहले पूछा कि तुम्हारी कब्र पर क्या लिखेंगे, तो उसने कहा, 'लिख देना सिर्फ एक शब्द – 'अनफिनिश्ड', अधूरा।'

वे पूछने लगे, 'क्यों ? क्या तुम सोचते हो, तुम अधूरे मर रहे हो ? क्योंकि तुम्हारे गीत पूरे हैं। तुम्हारा यश पूरा, सम्मान पूरा। तुम एक सफल जिंदगी जीये। तुमने खूब आदर पाया। क्या तुम भी अधूरे मर रहे हो ?'

तो उस कवि ने कहा, 'इससे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता कि कितना हमने किया, कितना गाया; कुछ भी करो, जीवन का स्वभाव अधूरा है। हारे हुए तो यहां हारे हुए जाते ही हैं, जीते हुए भी हारे हुए जाते हैं। गरीब तो गरीब मरते हैं, अमीर भी गरीब मरते हैं। जिनके पास नहीं है, वे तो अधूरे रहते ही हैं, जिनके पास है वे भी अधूरे रहते हैं। क्योंकि यह जीवन का स्वभाव अधूरा है।

ऐसे ही मैं तुमसे कहूंगा, भाषा का स्वभाव अधूरा है। कुछ भी कहोगे, वह पूरा चुकता न हो पाएगा। बड़ी बातें छोड़ो, एक छोटे-से गुलाब के फूल के संबंध में भी पूरी बातें नहीं कही जा सकतीं। अगर एक छोटे-से गुलाब के फूल के संबंध में तुम पूरी-पूरी बात कहना चाहो तो तुम्हें पूरे ब्रह्माण्ड के संबंध में जो भी है, सब कुछ वह कहना पड़ेगा, तभी उस गुलाब के संबंध में पूरी बात होगी, क्योंकि उसकी जड़ें जमीन से जुड़ी हैं, उसकी पंखुड़ियां सूरज से जुड़ी हैं, उसकी श्वास हवाओं से जुड़ी है, उसके भीतर बहती रसधार बादलों से जुड़ी है, सागरों से जुड़ी है।

तुम अगर एक छोटे-से गुलाब के फूल के संबंध में सब कहना चाहो तो तुम बड़ी अड़चन में पड़ जाओगे – तुम पाओगे कि यह तो धीरे-धीरे पूरे ब्रह्माण्ड के संबंध में सब कहना हो जाएगा।

नहीं, पूरा कहना असंभव है। सत्य बहुत बड़ा है, कथनी बड़ी छोटी है।

जीवन में परमात्मा को छोड़कर सब मिल सकता है – और तुम अधूरे रहोगे, उदास रहोगे, दुखी रहोगे, पीड़ित रहोगे। और कुछ भी न मिले, परमात्मा मिल जाए तो पूरा मिल जाता है। क्योंकि परमात्मा खंड-खंड नहीं हो सकता; मिलता है तो पूरा, नहीं मिलता है तो नहीं।

मेरे पास बहुत लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'हमारे पास सब है, लेकिन बड़ी उदासी है। अब क्या करें ? जब नहीं थी इतनी व्यवस्था तब तो एक आसरा भी था कि कभी जब सब होगा तो सब ठीक हो जाएगा, वह आसरा भी छिन गया।'

'मयकदों के भी आसपास रही
गुलरुखों से भी रूसनास रही
जाने क्या बात थी इस पर भी
जिंदगी उम्र-भर उदास रही।'

मधुशालाएं पास थीं, दूर नहीं। सुंदर मुखड़ोंवाले लोग निकट थे, परिचय था उनसे...।

'मयकदों के भी आसपास रही...'

शराब भी पी, विस्मरण भी किया, मधुशाला पास ही थी।

'गुलरुखों से भी रूसनास रही...'

फूल के जैसे सुंदर चेहरेवाले व्यक्तित्वों से भी परिचय रहा, मुलाकात रही; मधुशाला में भी विस्मरण किया; प्रेम में भी डूबे –

'जाने क्या बात थी इस पर भी...'

फिर भी कुछ बात –

'जाने क्या बात थी इस पर भी
जिंदगी उम्र-भर उदास रही।'

रहेगी ही! उदासी तो उसी की मिटती है जो भक्ति को उपलब्ध हुआ; उसी की मिटती है जो भगवान को उपलब्ध हुआ; उसी की मिटती है जिसने जाना कि मैं अलग नहीं हूं, जो अनन्यता को उपलब्ध हुआ!

अन्यथा, तुम जो भी करोगे...। करते लोग बहुत हैं, अथक श्रम करते हैं, सब व्यर्थ जाता है। इतने श्रम से तो परमात्मा मिल सकता है जिससे तुम कंकड़-पत्थर इकट्ठे कर पाते हो। तुम्हें देखकर रोना भी आता है, हंसी भी आती है। हंसी आती है कि कैसा पागलपन है! इतने श्रम से तो मंदिर बन जाता, इसे तुमने धर्मशाला बनाने में गंवाया। इतने श्रम से परमात्मा उतर आता; भिक्षापात्र ले कर तुम कंकड़-पत्थर इकट्ठे करते रहे! इतने श्रम से तो अमृत्व उपलब्ध हो जाता, इससे तुम गंदे नदी-नालों का पानी ही इकट्ठा करते रहे।

मौत जब आती है तब तुम्हें पता चलेगा, लेकिन तब बहुत देर हो जाती है।

तुमसे मैं कहता हूं: जागो अभी!

मौत तो जगाती है, पर तब समय नहीं बचता – परमात्मा का स्मरण करने का भी समय नहीं बचता! मौत आती है तब पता चलता है: 'अरे! यह तो गंवाना हो गया!'

यह सब पड़ा रह जाएगा जो इकट्ठा किया, चले तुम अकेले। अकेले आये: अकेले चले! पानी पर खींची लकीरें हो गयी सारी जिंदगी।

'वाए नादानी कि वक्ते-मर्ग ये साबित हुआ
ख्वाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना अफसाना था।'

मरते वक्त...!

'वाए नादानी कि वक्ते-मर्ग ये साबित हुआ।'

यह मूढ़ता सिद्ध हुई मरते वक्त, यह नादानी पता चली मरते वक्त, यह नासमझी खयाल में आयी मरते वक्त –

'ख्वाब था जो कुछ कि देखा'...

जो देखा, वह सपना था...

...'जो सुना अफसाना था।'

और जो बात सुनते रहे, वह सिर्फ कहानी थी। हाथ खाली रह गये!

अकसर तो ऐसा है कि लेकर तो तुम कुछ न जाओगे, जो लेकर आये थे, शायद उसे भी गंवा कर जाओ।

बच्चे पैदा होते हैं, मुट्ठी बंधी होती है; मरते वक्त मुट्ठी खाली होती है, खुली होती है। बच्चा कुछ लेकर आता है – कोई ताजगी, कोई कमल के फूलों जैसा निर्दोष भाव, कुछ भोलापन – वह भी गंदा हो जाता है। बच्चा आता है दर्पण की तरह ताजा-नया, धूल जम जाती है जिंदगी की, वह भी

खो जाता है।

हम जिंदगी में कमाते नहीं, गंवाते हैं – बड़ा अजीब सौदा करते हैं!

जो मौत के पहले जाग जाए वही धार्मिक हो जाता है। जो मौत तुम्हें दिखायेगी, वह तुम अपनी समझदारी में देख लो, अपने होश में देख लो, मौत को दिखाने की जरूरत न पड़े, तो तुम्हारी जिंदगी में एक क्रांति घटित हो जाती है।

'ठीक ऐसा ही है, जैसे ब्रजगोपियों की भक्ति!'

'इस अवस्था में भी गोपियों में माहात्म्यज्ञान की विस्मृति का अपवाद नहीं।'

इसे समझना।

'उसके बिना, भगवान को भगवान जाने बिना किया जानेवाला ऐसा प्रेम जारों के प्रेम के समान है।'

'उसमें, जार के प्रेम में, प्रियतम के सुख से सुखी होना नहीं है।'

'... जैसे ब्रजगोपियों की भक्ति।'

कृष्ण के प्रेम में, कथा है, सोलह हजार गोपियों की। संख्या तो सिर्फ असंख्य का प्रतीक है। लेकिन गोपियों के प्रेम को समझना जरूरी है, क्योंकि भक्त वैसी ही दशा में फिर पहुंच जाता है। कृष्ण का होना शरीर में आवश्यक नहीं है। यह तो भक्त का भाव है जो कृष्ण को मौजूद कर लेता है। कृष्ण के होने का सवाल नहीं है; ये तो हजारों गोपियों की प्रार्थनाएं हैं, जो कृष्ण को शरीर में बांध लेती हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

राधा कृष्ण के साथ नाची; मीरा को जरा भी तकलीफ न हुई, कृष्ण के बिना भी वैसा ही नाच नाची, और कृष्ण के साथ ही नाची। और अगर गौर करो, तो मीरा की गहराई राधा से भी ज्यादा मालूम पड़ती है, क्योंकि राधा के लिए तो कृष्ण सहारे के लिए मौजूद थे, मीरा के लिए तो कोई भी मौजूद न था। मीरा के भगवान तो उसके भाव का ही साकार रूप थे। मीरा के भगवान तो मीरा ने अपने को ही ढालकर बनाये थे, अपने को ही निछावर करके निर्मित किये थे।

कृष्ण मौजूद हों और तुम राधा बन जाओ, तुम्हारी कोई खूबी नहीं, कृष्ण की खूबी होगी। कृष्ण मौजूद न हों और तुम मीरा बन जाओ, तो तुम्हारी खूबी है, कृष्ण को आना पड़ेगा।

भक्त खींचता है भगवान को रूप में। भक्त भगवान को गुणों के जगत में, पृथ्वी पर ले आता है।

कैसी थी ब्रजगोपियों की भक्ति?

एक क्षण को भी विस्मरण हो जाए तो रोती हैं। एक क्षण को भी कृष्ण न दिखायी पड़े तो तड़फती हैं। लेकिन ऐसा तो साधारण प्रेम में भी कभी हो जाता है : प्रेमी न हो, प्रेयसी तड़फती है; प्रेयसी न हो तो प्रेमी तड़पता है।

फर्क क्या है ब्रज की गोपियों की भक्ति में और साधारण प्रेमियों की भक्ति में? फर्क इतना है कि ब्रजगोपियां कृष्ण के प्रेम में हैं, लेकिन परिपूर्ण होशपूर्वक कि कृष्ण भगवान हैं। वह प्रेम किसी व्यक्ति का प्रेम नहीं, भगवत्ता का प्रेम है। अन्यथा फिर साधारण प्रेम हो जाएगा।

कृष्ण को भी तुम ऐसे प्रेम कर सकते हो जैसे वे शरीर हैं, तुम्हारे जैसे ही एक व्यक्ति हैं। तब

कृष्ण मौजूद भी हों तो भी तुम चूक गये।

रुक्मणी कृष्ण की पत्नी है, लेकिन रुक्मणी का नाम कृष्ण के साथ अकसर लिया नहीं जाता — लिया ही नहीं जाता। सीता का नाम राम के साथ लिया जाता है। पार्वती का नाम शिव के साथ लिया जाता है। कृष्ण का नाम रुक्मणी के साथ और रुक्मणी का नाम कृष्ण के साथ नहीं लिया जाता। और राधा उनकी पत्नी नहीं है, याद रखना। राधा का नाम लेना बिलकुल गैरकानूनी है, कृष्ण-राधा कहना, राधा-कृष्ण कहना बिलकुल गैरकानूनी है, नाजायज है, नियम के बाहर है। वह उनकी पत्नी नहीं है। पर क्या बात है, रुक्मणी कैसे विस्मृत हो गयी? रुक्मणी कैसे अलग-थलग पड़ गयी?

रुक्मणी पत्नी थी और कृष्ण में भगवान को न देख पायी, पुरुष को ही देखती रही — बस यही चूक हो गयी। वहीं राधा करीब आ गयी जहां रुक्मणी चूक गयी।

सौराष्ट्र में एक जगह है — तुलसीश्याम। वहां ध्यान का एक शिविर हुआ। तो जब मैं वहां गया तो जिस तलहटी में शिविर हुआ था वहां कृष्ण का मंदिर है। और ऊपर पहाड़ी की चोटी पर एक छोट-सा मंदिर है, तो मैंने पूछा कि वह मंदिर किसका है। कहा, 'वह रुक्मणी का है।'

'उतने दूर! कृष्ण का मंदिर इधर मील-दो-मील के फासले पर!'

पुजारी उत्तर न दे सके। उन्होंने कहा कि यह तो पता नहीं।

रुक्मणी दूर पड़ती गयी। वह कृष्ण को पुरुष ही मानती रही, पुरुषोत्तम न देख पायी, पुरुष ही दिखायी पड़ता रहा, पति ही दिखायी पड़ता रहा। गहन ईर्ष्या में जली रुक्मणी, जैसा पत्नियां अकसर जलती हैं। वह मंदिर भी इस ढंग से बनाया गया है कि वहां से वह नजर रख सकती है कृष्ण पर। बिलकुल ठीक ढंग से बनाया है, जिसने भी बनाया है बड़ी होशियारी से बनाया है। पत्नी वहां दूर बैठी है और देख रही है। राधा और गोपियां और कृष्ण के पास प्रेमियों का और प्रेयसियों का इतना बड़ा जाल : रुक्मणी जली! बड़े दुख में पड़ी। कृष्ण की भगवत्ता न देख पायी। तो प्रेम साधारण हो गया — प्रेम रह गया, भक्ति न बन पायी।

प्रेम कब भक्ति बनता है?

जैसे ही प्रेमी में भगवान दिखायी पड़ता है, वैसे ही प्रेम भक्ति बन जाता है। कृष्ण का होना जरूरी थोड़े ही है! क्योंकि कृष्ण के होने से अगर यह बात होती तो रुक्मणी को भी भक्ति उपलब्ध हो गयी होती।

तो, मैं तुमसे कहता हूं, इससे उलटा भी हो सकता है। तुम अपने प्रेमी में, अपने पति में, अपनी पत्नी में, अपने बेटे में, अपने मित्र में, कहीं वही भूल तो नहीं कर रहे हो जो रुक्मणी ने की? सोचना। कहीं वही भूल तो नहीं हो रही है?

मैं तुमसे कहता हूं, वही भूल हो रही है, क्योंकि उसके सिवाय कोई भी नहीं है। 'वही' सब में छिपा है। जरा खोदो, जरा गहरे उतरो। जरा दूसरे में डुबकी लो। जरा अनन्यता के भाव को जगने दो। और तुम अचानक पाओगे : वही भूल, रुक्मणी की भूल, सारे संसार से हो रही है। सभी के पास कृष्ण खड़ा है — सभी के पास भगवान खड़ा है। भीतर भी वही है, बाहर भी वही है। लेकिन बाहर तुम्हारी आंखें देखने की आदी हैं, कम-से-कम बाहर तो उसे देखो। एक दफा पुरुष खो जाए और

परमात्मा दिखायी पड़े; पुरुष खो जाए, पुरुषोत्तम दिखायी पड़े... !

तो नारद कहते हैं, 'जैसे ब्रजगोपियों की भक्ति इस अवस्था में भी गोपियों में माहात्म्यज्ञान की विस्मृति का अपवाद नहीं हैं।'

हालांकि वे दीवानी थीं, पागल थीं प्रेम में, लेकिन एक क्षण को भी भूलीं नहीं कि कृष्ण भगवान हैं; उतनी बेहोशी में भी होश रहा, अपवाद नहीं हैं; यह बात तो कभी न भूलीं कि कृष्ण भगवान हैं; यह बात तो याद ही रही; लड़ीं भी, झगड़ीं भी, रूठीं भी, लेकिन यह बात तो याद रही कि कृष्ण भगवान हैं।

उतनी ही बात प्रेम को भक्ति की ऊंचाई पर उठा देती है।

'उसके बिना, भगवान को भगवान जाने बिना, किया जानेवाला प्रेम जारों के प्रेम के समान है।

'उसमें जार के प्रेम में प्रियतम के सुख से सुखी होना नहीं है।'

थोड़ा आगे बढ़ो! थोड़े गहरे जाओ!

'हरम से कुछ आगे बढ़े तो देखा
जबीं के लिए आस्तां और भी हैं।'

जब मस्जिद से थोड़ा आगे बढ़े तो देखा कि सिर झुकाने के लिए जगहें और भी हैं, मस्तक नवाने के लिए और भी जगहें हैं।

'हरम से कुछ आगे बढ़े तो देखा
जबीं के लिए आस्तां और भी हैं
सितारों के आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं।'

प्रेम जब तक भक्ति न बन जाए तब तक जानना 'अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं,' अभी और भी परीक्षाएं पार करनी हैं प्रेम की। प्रेम पर मत रुक जाना।

प्रेम कली है, भक्ति फूल है। प्रेम पर मत रुक जाना।

'अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं
सितारों के आगे जहां और भी हैं।'

जब तक प्रेम तुम्हारा भक्ति न बन जाए, जब तक प्रेमी में तुम्हें भगवान न दिखायी पड़ जाए — तब तक रुकना मत; तब तक मस्जिद-मंदिरों में ठहर मत जाना।

'हरम के आगे बढ़े तो देखा
जबीं के लिए आस्तां और भी हैं।'

मंदिर-मस्जिद से पार जाना है! सीमा से पार जाना है! संप्रदाय से पार जाना है! मत-मतान्तर से पार जाना है!

प्रासंगिक दिखायी पड़ती है बात कि हम कहीं मंदिर-मस्जिदों में, आकारों में, सीमाओं में, गुणों में उलझे हैं — और इसलिए वह जो उनके भीतर छिपा है, हमारे हाथ से चूका जा रहा है, पकड़ में नहीं आता। खोल ही दिखायी पड़ती है। ऊपर का सांयोगिक असार ही दिखायी पड़ता है, भीतर का

सार, स्वभाव, स्वरूप दिखायी नहीं पड़ता।

'उसके बिना, भगवान को जाने बिना, किया जानेवाला ऐसा प्रेम जारों के प्रेम के समान है।'

'उसमें, जार के प्रेम में, प्रियतम के सुख से सुखी होना नहीं है।'

फर्क क्या है?

जब तुम प्रेम करते हो — साधारण प्रेम, जिसे हम प्रेम कहते हैं — तो तुम अपने सुख की फिक्र कर रहे हो; तुम प्रेमी का उपयोग कर रहे हो। भक्ति प्रेमी के सुख की चिंता करती है, अपने को समर्पित करती है। प्रेम में तुम प्रेमी का उपयोग करते हो साधन की तरह, अपने सुख के लिए। भक्ति में तुम साधन बन जाते हो प्रेमी के, उसके सुख के लिए।

भक्ति समर्पण है। भक्त फिर भगवान के लिए जीता है।

कबीर ने कहा है, जैसे बांस की पोली पोंगरी खुद गीत नहीं गाती, फिर परमात्मा के ही गीत उससे बहते हैं। बांस की पोंगरी तो सिर्फ पोली है, राह देती है, जगह देती है, स्थान देती है, रुकावट नहीं देती।

तो कबीर ने कहा है, 'अगर गीत में कहीं कोई अड़चन आती हो तो मेरी बांस की पोंगरी की भूल समझना, कहीं कोई गड़बड़ होगी। तुम तो गीत ठीक ही ठीक गाते हो; अड़चन आती होगी, बाधा पड़ती होगी, मेरे कारण पड़ जाती है। कसूर हो तो मेरा, भूल-चूक हो तो मेरी; जो भी ठीक हो, तेरा! दुखी होता हूं तो मैं अपने कारण, सुखी होता हूं तो तेरे कारण। बंधता हूं तो अपने कारण, मुक्त होता हूं तो तेरे कारण। नरक बनता हूं तो मैं, स्वर्ग तो सब तेरा प्रसाद है!'

प्रेम अपने सुख की तलाश है, और इसलिए प्रेम दुख में ले जाता है। जो अपने सुख की तलाश कर रहा है, वह 'मैं' को पकड़े हुए है। और 'मैं' सारे दुखों का निचोड़ है। वही तो कांटा है, चुभता है। जिसने प्रेमी के सुख को सब कुछ माना, जिसने सब प्रेमी के सुख पर निछावर किया, उसके जीवन में फिर कोई दुख नहीं।

तुम जब तक अपना सुख खोजोगे, दुख पाओगे। जिस दिन तुम परमात्मा का सुख खोजने लगे कि वह जिसमें सुखी हो, वही मेरा सुख...।

जीसस को सूली लगी, एक क्षण को कंप गये और उन्होंने कहा, 'हे भगवान यह मुझे क्या दिखला रहा है?' फिर सम्हल गये और कहा, 'तेरी मर्जी पूरी हो!' उसी क्षण क्रांति घटी। उसी क्षण जीसस का साधारण मनुष्य रूप खो गया, उधर परमात्मा रूप प्रगट हुआ। सूली भी स्वीकार हो गयी तो सिंहासन हो गयी।

जीसस की सूली से ऊंचा सिंहासन तुमने कहीं देखा? जीसस की सूली से बहुमूल्य सिंहासन तुमने कहीं देखा?

...मृत्यु महाजीवन का द्वार बन गयी। इधर अहंकार गया, उधर परमात्मा प्रविष्ट हुआ।

अपने सुख को खोजने का अर्थ है: अहंकार अभी भी खोज रहा है। उसके सुख को खोजना जब शुरू हो जाए, भक्त तब ऐसे जीने लगता है जैसे बांस की पोंगरी; बांसुरी बन जाता है: सब स्वर 'उसी' के हैं। फिर कोई दुख नहीं है। फिर कोई नरक नहीं है। फिर अंधेरा भी रोशन है। फिर मौत

भी और नये जीवन की शुरुआत है। फिर कांटों में भी फूल दिखायी पड़ने लगते हैं, कांटे भी फूल हो जाते हैं। फिर दुख अनुभव में आता ही नहीं। फिर हैरानी होती है यह देखकर कि लोग दुखी क्यों हो रहे हैं!

सब उपलब्ध है। महोत्सव की तैयारियां हैं और लोग दुखी हो रहे हैं। परमात्मा गीत गाने को तैयार है। उसके ओंठ फड़क रहे हैं। तुम्हारी बांसुरी तैयार नहीं है। तुम खाली नहीं हो, तुम भरे हो!

अहंकार से खाली होते ही 'उसका' प्रवेश हो जाता है।

आज इतना ही।

प्रसादस्वरूपा है भक्ति

छठवां प्रवचन

प्रश्नसार

- विराट का अनुभव किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त होता ही है। क्या ऐसा नहीं है?
- आये थे दर पे तेरे सिर झुकाने के लिए,उठता नहीं है सिर अब वापस जाने के लिए...!
- प्रवचन सुनते समय प्रेम-विभोर हो आंसू बहने लगते हैं और अचेतन में अहंकार को रस आता है कि अहोभाव के आंसू बहा रहा हूं। क्या इससे अद्वैत का रूखा-सूखा मार्ग अच्छा नहीं?
- क्या विधिविहित पूजा-प्रार्थना व्यर्थ है?
- एक हम हैं कि ... प्यासे ही जाते हैं!
- इश्क पर जोर नहीं ये वो आतिश 'गालिब' कि लगाए न लगे और बुझाए न बुझे। फिर देवर्षि नारद ने प्रेम पर यह शास्त्र क्यों लिखा?

पहला प्रश्न : *जब भी किसी को विराट का अनुभव होता है, वह किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्त होता ही है। क्या आप बुद्धपुरुषों के देखे ऐसा नहीं है?*

● अनुभव तो वह ऐसा है कि छिपाये छिपेगा नहीं, प्रगट होगा ही। जहां तक अनुभोक्ता का संबंध है, प्रगट होगा ही। लेकिन जहां तक तुम्हारा संबंध है, तुम पर निर्भर है: प्रगट हो या अप्रगट रह जाए।

बुद्ध ने तो कह दिया है जो जाना, तुमने सुना या नहीं...; बुद्ध की तरफ से प्रगट हो गया, तुम्हारी तरफ से प्रगट हो भी सकता है, प्रगट न भी हो।

वर्षा तो होती है, झील, सरोवर, खाई, खड्डे भर जाते हैं, पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं।

तुम्हारा घड़ा उलटा रखा हो, मेघ कितने ही गरजें, कितने ही बरसें, तुम खाली रह जाओगे; तुम्हारे लिए वर्षा हुई ही नहीं। नहीं कि वर्षा नहीं हुई; वर्षा तो हुई, तुम्हारे लिए नहीं हुई। और जब तक तुम्हारे लिए न हो तब तक हुई या न हुई, क्या फर्क पड़ता है!

बुद्धपुरुष चुप भी रह जाएं तो उनकी चुप्पी में भी वही प्रगट होता है।

बोलना जरूरी नहीं है — बोलना मजबूरी है। बोला जाता है करुणा के कारण, क्योंकि मौन को तो तुम समझ ही न पाओगे। शब्द ही छूट जाते हैं तो मौन तो कैसे पकड़ में आएगा? कह-कहकर भी, तुम्हारी पकड़ नहीं बैठ पाती; अनकहे को तो तुम कैसे पकड़ पाओगे?

बोलना जरूरी नहीं है, मजबूरी है। बुद्धों का बस चले तो चुप रह जायें। लेकिन तुम्हें देखकर, तुम्हारे लड़खड़ाते पैरों को देखकर, अंधेरे में तुम्हें टटोलते देखकर, चिल्लाते हैं, जितने जोर से बोल सकते हैं उतने जोर से बोलते हैं — फिर भी तुम्हारे बहरेपन में आवाज पहुंचती है, यह संदिग्ध है।

करोड़ों सुनते हैं, कोई एक सुन पाता है। सुन सभी लेते हैं, क्योंकि तुम बहरे नहीं हो, कान तुम्हारे काम करते हैं, फिर भी चूक जाते हो। क्योंकि सुनना एक बात है, और सुन लेना बिलकुल दूसरी।

शब्द बोले जाते हैं तो कानों पर तरंगें पैदा होती हैं, लेकिन हृदय अछूता रह जाता है। मस्तिष्क के पास तो दो कान हैं, आवाज एक से जाती है, दूसरे से निकल जाती है। हृदय के पास एक ही कान है, आवाज जाती है तो फिर निकल नहीं पाती, बीज बन जाती है, गर्भस्थ हो जाता है हृदय। और जब तक सुनी हुई वाणी तुम्हारे भीतर गर्भ न बन जाए, जैसे सीप के भीतर मोती निर्मित होता है,

ऐसे सुना हुआ शब्द जब तक तुम्हारे भीतर मोती न बनने लगे, तब तक तुमने सुना, फिर भी सुना नहीं; देखा, फिर भी देखा नहीं।

जीसस बार-बार अपने शिष्यों को कहते हैं, 'आंखें हों तो देख लो! कान हों तो सुनो। हृदय हो तो समझो।'

ऐसा नहीं कि जीसस बहरे और अंधे लोगों से बोल रहे थे, तुम्हारे ही जैसे आंखवाले और कानवाले लोग थे। फिर भी बार-बार जीसस दोहराते हैं। कारण साफ है।

सत्य जब अनुभव में आता है किसी के तो बात कुछ ऐसी है कि छुपाये भी नहीं छुप सकती, बताने की तो बात ही अलग। साधारण प्रेम नहीं छुपता। किसी के जीवन में साधारण प्रेम आ जाए तो चाल बदल जाती है; चाल में एक नृत्य समा जाता है; व्यक्तित्व की गंध बदल जाती है; हजार-हजार कमल खिल जाते हैं; बोलता है तो एक माधुर्य आ जाता है; साधारण वाणी में मधु बरसने लगता है!

प्रेमी की आंखें देखो —
बिना शराब पीये शराबी हो गया होता है!
एक मस्ती घेर लेती है!
जैसे प्रकृति पर जब वसंत उतरता है,
ऐसा जब किसी के जीवन में प्रेम उतरता है,
तो हृदय वसंत से भर जाता है!
सब तरफ फूल खिल जाते हैं!
सब तरफ पक्षियों की चहचहाहट शुरू हो जाती है!
भीतर कोई अवरुद्ध झरने मुक्त हो जाते हैं!
पंख लग जाते हैं — अनंत आकाश में उड़ने के!

साधारण प्रेम में ऐसा हो जाता है, तो जब परमात्मा का प्रेम बरसता है किसी पर, उस असाधारण प्रेम की घटना घटती है; जब बूंद में सागर उतरता है; आंगन में आकाश आ जाता है; कबीर ने कहा है, जब अंधेरे में हजार-हजार सूरज का प्रकाश आता है; हजारों सूर्य भी मात हो जाएं, ऐसे प्रकाश की वर्षा होती है; मृत्यु में अमृत का आनंद बरसता है — तो कैसे छिपाये छिपेगा?

मुर्दा जिंदा हो जाए, छिपाये छिपेगी यह बात? मृत्यु में अमृत उतर आए, छिपाये छिपेगी यह बात? कोई उपाय नहीं है छिपने का। छिपाये तो छिपती ही नहीं; मगर मजा यह है, दुर्भाग्य यह है, बताये भी प्रगट नहीं हो पाती। छिपाये छिपती नहीं और बताये प्रगट नहीं हो पाती। क्योंकि दो हैं। वसंत आ गया,' इतना ही थोड़े काफी है, तुम्हारे भीतर भी तो वसंत को समझने की कोई समझ होनी चाहिए।

एक बहुत बड़े चित्रकार टरनर के चित्रों की प्रदर्शनी हो रही थी। बड़ा शोरगुल था। सारा नगर इकट्ठा था चित्रों को देखने के लिए। टरनर द्वार पर ही खड़ा था, लोगों की प्रतिक्रियाएं सुन रहा था।

एक महिला ने कहा, 'बड़ा शोरगुल मचाया हुआ है, मुझे तो कुछ इसमें दिखायी नहीं पड़ता। कुछ सार नहीं मालूम होता इन चित्रों में। ये चित्र तो ऐसे लगते हैं जैसे बच्चों ने रंग भरे हों। मुझे

इनमें कोई बड़ी कुशलता नहीं दिखायी पड़ती। इतना शोरगुल क्यों मचाया हुआ है?'

उसके साथ जो महिला थी, वह टरनर को पहचानती थी। उसने उससे कहा, 'चुप! टरनर सामने खड़ा है।'

और दूसरी महिला ने टरनर से कहा, कि तुम्हारा सूर्योदय का चित्र मुझे बहुत पसंद आया है; लेकिन ऐसा सूर्योदय मैंने कभी देखा नहीं। मतलब यह था कि 'ऐसा सूर्योदय होता नहीं जैसा तुमने बनाया है। यह किसी कल्पना की बात है।'

टरनर ने कहा, 'माना; लेकिन क्या तुम न चाहोगी कि मेरी आंखें तुम्हें उपलब्ध हों और ऐसा सूर्योदय तुम्हें दिखायी दे सके?'

बड़े माधुर्य से बड़ी गहरी चोट टरनर ने की: 'क्या तुम न चाहोगी कि तुम्हें मेरे जैसी आंखें मिल जाएं और ऐसा सूर्योदय दिखायी दे सके?'

सूर्योदय देखना हो तो सूर्योदय देखनेवाली आंखें भी तो चाहिए।

कहते हैं, अगर कवियों ने प्रेम के गीत न गाये होते तो लोगों को प्रेम का पता ही न चलता। यह बात मुझे कुछ समझ में आती है।

तुम थोड़ा सोचो, अगर कभी तुमने प्रेम का कोई गीत न सुना होता और प्रेम की कोई कहानी न सुनी होती तो क्या तुम्हें तुम्हारी जिंदगी से पता चल सकता था कि प्रेम है? शादी पता चलती, विवाह पता चलता, बाल-बच्चे पैदा होते; लेकिन प्रेम...?

प्रेम का पता चलने के लिए पारखी की आंख चाहिए।

बड़ी मुश्किल से पैदा होता है चमन में कोई आंखवाला, कोई दीदावर, कोई द्रष्टा!

लेकिन कविताएं सुनकर भी, प्रेम के गीत और प्रेम की कहानियां सुनकर भी, तुम्हें प्रेम का शब्द ही याद हो जाता है, तुम उसे दोहराने लगते हो, तुम वक्त-बेवक्त उसका उपयोग करने लगते हो। लेकिन क्या शब्द सुनकर ही तुम्हें प्रेम का अनुभव हो सकता है? क्या यह अनुभव ऐसा है कि उधार हो जाए?

नहीं, उधार यह नहीं हो सकता।

तो तुम्हारे जीवन में जब तक कोई अनुभव का सूत्र न हो, तब तक बुद्ध खड़े रहें, तुम्हें दिखायी न पड़ेंगे। तुम्हें वही दिखायी पड़ेगा जो तुम्हें दिखायी पड़ सकता है। मीरा नाचती रहे, तुम्हें वही दिखायी पड़ेगा जो तुम्हें दिखायी पड़ सकता है। तुम्हारी आंखें ही तो तुम्हें खबर देंगी, और तुम्हारे कान ही तो व्याख्या करेंगे, और तुम्हारी समझ ही तो परिभाषा बनायेगी।

सत्य का अनुभव जब होता है तब तो वह प्रगट हो ही जाता है; लेकिन तुम नहीं समझ पाते।

बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियां हैं:

'या रब न वह समझे हैं न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनको, जो न दे मुझको जबां और।'

सभी बुद्धों के मन में ऐसा भाव रहा होगा कि हे, भगवान...

'या रब न वह समझे हैं न समझेंगे मेरी बात

दे और दिल उनको, जो न दे मुझको जबां और।'

या तो मेरी जबान बदल, ताकि मैं उन्हें समझा सकूं; और या उन्हें और दिल दे, ताकि वे समझ सकें।

हजार ढंग से बुद्धों ने समझाने की कोशिश की है, लेकिन तुम्हारे पास कोई समानांतर अनुभव चाहिए : न सही सूरज का, किरण का ही सही; न सही सूरज का, मिट्टी के छोटे-से दीये का ही सही — पर कोई समानांतर अनुभव चाहिए।

दीया भी देखा हो तो सूरज का अनुमान किया जा सकता है। दीया भी न देखा हो तो सूरज शब्द कोरा शब्द रह जाता है — चली हुई कारतूस जैसा, खाली। उसे तुम याद कर ले सकते हो, वक्त-बेवक्त उपयोग भी कर सकते हो; लेकिन उसकी कोई जड़ें तुम्हारे भीतर न होंगी — उखड़ा हुआ पौधा होगा, सूखा हुआ पौधा होगा; गुलदस्ते में सजाकर रख सकते हो, उसमें कभी फूल न आएंगे; तुम धोखे में रह सकते हो, लेकिन तुम्हारे जीवन में उस धोखे के कारण बाधा ही पड़ेगी, क्रांति घटित न होगी।

ठीक पूछा है : जब भी किसी को विराट अनुभव में आता है तो अभिव्यक्ति तो होती ही है।

बहुत बुद्धपुरुष चुप भी रह गये हैं, पर उनकी चुप्पी भी बड़ी बोलती हुई थी। वह खामोशी भी गीत गाती हुई थी। जिनको थोड़ी भी समझ थी उन्होंने उन चुप रहनेवाले लोगों को भी खोज लिया है और उनके पदचिह्नों पर यात्रा कर ली है।

कोई नाचा है। किसी ने बांसुरी बजाकर कहा है। कोई बोला है। किसी ने तर्कनिष्ठ भाषा का उपयोग किया है। जीसस और बुद्धों ने छोटी-छोटी कथाएं कही हैं। जो जिससे बन सका...।

सत्य को पाने के पहले जिसकी जैसी तैयारी थी, फिर जब सत्य उतरा तो उसके पहले जो-जो तैयारी थी उस सबका उपयोग किया है, हर तरह से उपयोग किया है। लेकिन जरूरी नहीं है कि तुम उन्हें पहचान पाये होओ।

बुद्ध जिन गांव से गुजरे उनमें हजारों-लाखों लोग थे, जिन्होंने उन्हें नहीं पहचाना; बुद्ध गांव से गुजरे, जो उनके दर्शन को भी न गये, जो उन्हें सुनने भी न गये, जो उन्हें सुनने भी गये तो खाली हाथ ही लौटे, सोचते लौटे कि सब बातें हैं, हवा की बातें हैं,। उनके कहने में भी सचाई है।

जो तुम्हारी पकड़ में न आये, वह हवा की बात है, पानी का बबूला है!

सत्य तो सत्य तभी होता है जब तुम्हारे भीतर उसे आधार मिल जाए।

लेकिन बुद्धपुरुष कहते हैं, उनकी करुणा से हजारों उपाय खोजते हैं। कहने में उन्हें कुछ रस नहीं; तुम समझ लो। इसमें जरूर रस है। यही तो फर्क है।

एक दार्शनिक भी कहता है, उसे कहने में रस है; तुम समझो-न-समझो, इसमें सवाल नहीं है — उसे अपनी ही आवाज सुनने में मजा आ रहा है। बोलकर वह अपने अहंकार को फैला रहा है।

विचारक भी लिखता है, बोलता है; लेकिन तुमसे उसे प्रयोजन नहीं है, प्रयोजन अपने अहंकार की सजावट ही है।

कवि भी गाता है, लेकिन गाने में मजा भी अपनी ही आवाज सुनने का है। यही तो कवि और ऋषि का फर्क है। ऋषि गाता है ताकि तुम सुन सको। ऋषि गाता है ताकि तुम्हारे हृदय में कुछ हिलोरें

पैदा हो सकें, ताकि तुम्हारा सोया प्राण जग जाए। कवि गाता है, ताकि तुम्हारी तालियों की आवाज उसके अहंकार में नयी सजावट बने, नया शृंगार हो; मगर तुम्हारी तालियों को सुनने के लिए ही गाता है।

संत भी बोलते हैं – इसलिए नहीं कि तुम्हारी तालियां सुनें। तुम्हारी प्रशंसा से कोई भी प्रयोजन नहीं है। वस्तुतः जब भी तुम उनकी प्रशंसा करते हो और ताली बजाते हो, तब वे थोड़ा चौंकते हैं। क्योंकि यह बात ताली सुनने के लिए या प्रशंसा सुनने के लिए नहीं कही गयी थी – यह कही गयी थी ताकि तुम बदलो, तुम्हारे जीवन में क्रांति का सूत्रपात हो।

'न सताइश की तमन्ना न सिले की पर्वा
गर नहीं है मेरे अशआर में मानी न सही।'

न तो कोई पुरस्कार चाहिए, न कोई प्रशंसा।

'न सताइश की तमन्ना न सिले की पर्वा।
गर नहीं है मेरे अशआर में मानी न सही।'

इसकी भी चिंता नहीं है संतों को कि वे जो कह रहे हैं, वह सार्थक भी हो, क्योंकि सार्थक बनाने के लिए तो उसे तुम्हारे तल पर उतारना पड़ेगा। और जितना ही सत्य तुम्हारे तल पर उतारा जाता है उतना ही मरता जाता है; जब वह ठीक तुम्हारे तल पर आ जाता है, व्यर्थ हो जाता है।

इसलिए अगर किसी को सार्थक वचन ही बोलने की आकांक्षा हो तो सत्य नहीं बोला जा सकता। सत्य तो विरोधाभासी है। सत्य को तो बोलने का एक ही ढंग है कि तुम सार्थक होने की चिंता मत करना।

तर्कातीत है सत्य, तो सार्थक कैसे होगा?

विरोधाभासी है सत्य, तो सार्थक कैसे होगा?

और जो तुम्हारे लिए सार्थक हो सके वह बिलकुल ही व्यर्थ हो गया। जो तुम्हारी बिलकुल ही समझ में आ जाए, वही सार्थक हो सकता है। और जो इतना सार्थक हो जाए कि तुम्हारी समझ में बिलकुल आ जाए, वह तुम्हें ऊपर न उठा सकेगा।

तो बुद्धपुरुषों की चेष्टा क्या है?

– कुछ समझ में आये, कुछ समझ के पार रह जाए।

जो समझ में आये, वह सहारा बने आस्था का, ताकि जो समझ में नहीं आया है, उसकी तरफ तुम कदम बढ़ाओ; जरा-सा समझ में आये और बहुत-सा समझ के पार रह जाए; वह जो थोड़ा-सा समझ में आता है, धुंधला-सा समझ में आता है, वह तुम्हारे लिए मार्ग बन जाए, उसके सहारे तुम और यात्रा करने के लिए उत्सुक हो जाओ।

संत तो प्रगट हो जाते हैं – अपनी तरफ से; तुम्हारी तरफ से अप्रगट रह जाते हैं – इतने अप्रगट रह जाते हैं कि इतिहास में उनका कोई उल्लेख भी नहीं होता।

जीसस का कोई उल्लेख नहीं है, सिवाय बाइबिल के कहीं और। बाइबिल तो उनके ही शिष्यों की किताब है, इसलिए भरोसे की नहीं है। हजारों लोग हैं जो शक करते हैं कि जीसस कभी हुए भी! कृष्ण कभी हुए – शक की बात है।

इतने विराट पुरुष हुए, इतिहास में इनकी कोई छाप नहीं छूट जाती, क्योंकि इतिहास तुम लिखते

हो; जब तुम पर ही छाप नहीं छूटती तो तुम्हारे लिखे पर कहां से छाप छूटेगी! तुम्हारे लिखे पर छाप छूटती है चंगेज खां की, तैमूरलंग की, राजनेताओं की, उपद्रवियों की, हत्यारों की, डाकुओं की, इनकी तुम्हारे लिखे पर छाप छूटती है। इन पर कोई शक नहीं करता कि चंगेज खां कभी हुआ या नहीं, तैमूरलंग कभी हुआ कि नहीं। कोई शक का सवाल ही नहीं है। करोड़ों प्रमाण हैं उनके होने के।

कृष्ण? क्राइस्ट? ...कोई प्रमाण नहीं मालूम पड़ता; मान लो, भरोसे की बात है; न मानो तो कोई मना नहीं सकता।

क्या कारण होगा? इतिहास इतना अछूता कैसे रह जाता है?

क्योंकि इतिहास तुम लिखते हो। तुम्हारा हृदय ही अछूता रह जाता है। तुम पर ही निशान नहीं बनते उनके, तो तुम्हारे लिखे पर कैसे बनेंगे? व्यर्थ की तो छाप बन जाती है, क्योंकि व्यर्थ तुम्हें सार्थक है। सार्थक की छाप ही नहीं बनती, क्योंकि सार्थक तुम्हें बिलकुल व्यर्थ है।

बुद्ध का क्या करियेगा? युद्ध में काम आ नहीं सकते। तलवार बना नहीं सकते उनसे।

बुद्ध की खोजों का क्या करियेगा? अणु-बम तो बन नहीं सकता उनसे। तुम्हारे किसी काम की नहीं हैं। खयाली बातें हैं, हवा की हैं।

स्वप्नद्रष्टा है इस तरह का व्यक्ति। तुम उसे माफ कर देते हो, इतना ही बहुत। तुम अपनी राह चले जाते हो। कभी फुर्सत हुई, उसकी दो बात भी सुन लेते हो; लेकिन उसकी बातों के कारण तुम अपने को बदलने की तैयारी नहीं करते। सुन लेते हो औपचारिकता से, शिष्टाचार से; लेकिन कहीं भी तुम पर कोई छाप नहीं पड़ती। किसी पर पड़ जाती है तो तुम उसको पागल समझते हो। किसी पर पड़ जाती है तो तुम समझते हो कि गया काम से, यह एक और आदमी खराब हुआ।

जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है, वह तुम्हें सार्थक दिखायी ही नहीं पड़ता। तुम कितने ही ऊंचे आकाश में उड़ो, तुम्हारी नजर चील की तरह कचरा-घरों पर पड़े मरे चूहों में लगी रहती है। तुम बुद्धों के पास भी बैठो तो भी तुम्हारी नजर बुद्धों पर नहीं होती।

एक सज्जन मेरे पास आये। मिल कर गये। महीने-भर बाद वे फिर आये। बड़े प्रसन्न थे। कहने लगे, 'आपकी बड़ी कृपा है! चमत्कार हो गया। मुकदमा कई सालों से उलझा था, आपके दर्शन किये, जीत गया।'

मेरे दर्शन से इनके मुकदमे का क्या संबंध? लेकिन जब आये होंगे तो वे इसीलिए आये होंगे कि मुकदमा जीतना था।

बुद्धपुरुषों के पास भी तुम जाओ तो तुम्हारी नजर तो मरे चूहों पर ही लगी रहती है। कहीं मुकदमा हार जाते तो फिर कभी दोबारा मेरे पास न आते: 'यह आदमी किसी काम का नहीं, उलटा उपद्रव है।'

तो मैंने उनसे कहा, 'भूल हो गयी। संयोग को चमत्कार मत समझ लेना। और अब दोबारा मुकदमा जीतना हो तो यहां मत आना।'

मुकदमे से मेरा क्या संबंध हो सकता है? तुम्हारी पूरी जिंदगी बेकार है, तुम सब मुकदमे हार जाओ तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी जिंदगी पूरी हारी हुई है। तुम जिसे जिंदगी कहते हो वही

व्यर्थ है।

सार्थक तुम्हारी समझ के मापदण्ड पर कसा जाता है।

ध्यान रखना –

'न सताइश की तमन्ना न सिले की पर्वा
गर नहीं है मेरे अशआर में मानी न सही।'

बुद्धपुरुष सार्थक की चिंता करें तो बोल ही नहीं सकते, क्योंकि तब मरे चूहों की चर्चा करनी पड़ेगी। सत्य की परवाह करते हैं, सार्थक की नहीं। और सत्य तुम्हें निरर्थक दिखायी पड़ेगा, यह पक्का है।

बड़ी हिम्मत चाहिए सत्य की खोज के लिए, क्योंकि वह अर्थ के पार जाने की चेष्टा है। जिन-जिन चीजों में तुम्हें उपयोगिता मालूम होती है – धन है, पद है, प्रतिष्ठा है – सत्य न तो पद बनेगा, न प्रतिष्ठा, न धन; सिंहासन तो बन ही नहीं सकता, सूली भला बन जाए; धन तो बनेगा ही नहीं, पद तो बनेगा ही नहीं, विपरीत भला हो जाए। तो सत्य तुम्हें कैसे सार्थक मालूम हो सकता है?

सत्य तो ऐसा है, जैसे वृक्षों पर फूल हैं, पक्षियों के गीत हैं, झरनों का कलरव है – कोई अर्थ तो नहीं है।

पश्चिम के एक बड़े महत्त्वपूर्ण कवि कंम्मिग्स से किसी ने पूछा कि तुम्हारी कविताओं का मायना ही क्या है, अर्थ ही क्या है? उसने कहा, 'कोई अर्थ नहीं। फूलों से पूछो, क्या अर्थ है। पक्षियों से पूछो, क्या अर्थ है। आकाश से पूछो, क्या अर्थ है उसका। और अगर आकाश व्यर्थ होकर शान से है और फूल व्यर्थ होकर गौरव से खिलते हैं, शरमाते नहीं, छिपते नहीं, तो मेरी कविताओं का ही अर्थ बताने की क्या जरूरत है?'

जितनी सत्य के करीब कोई बात पहुंचने लगेगी, उतनी ही तुम्हारी सार्थकता के घेरे के बाहर हो जाएगी। अर्थ है कोई, लेकिन उस अर्थ को जानने के लिए तुम्हारी आत्मा को पूरा रूपांतरित होना पड़ेगा; तुम्हारे अर्थ की परिभाषा ही बदलनी पड़ेगी।

बुद्धपुरुष प्रगट होते हैं – तुम्हारे लिए प्रगट नहीं हो पाते।

तुम इसकी चिंता भी मत करो कि वे प्रगट होते हैं या नहीं – तुम इसकी ही चिंता करो कि तुम्हारे लिए प्रगट हो पाते हैं या नहीं।

अपने हृदय को खोलो!
बंद द्वार-दरवाजे तोड़ो!
घबड़ाओ मत, खुले में आओ!
छिपो मत अंधकार में!
आदत अंधकार की छोड़ो!
थोड़ी रोशनी में आओ!

आंखें तिलमिलाएं भी प्रारंभ में तो घबड़ाओ मत। पुराने अंधकार की आदत हो गयी है, स्वाभाविक है कि थोड़ी तिलमिलाहट होगी, थोड़ी अड़चन होगी, थोड़ी कठिनाई होगी, थोड़ी तपश्चर्या

होगी। मगर यह तपश्चर्या करने जैसी है, क्योंकि जो मिलेगा वह अनंत है, जो मिलेगा वह विराट है। और जब तक वह न मिल जाए तब तक तुम्हारा जीवन एक कोरा शून्य है, एक रिक्तता है, एक खालीपन है।

दूसरा प्रश्न : आये थे दर पे तेरे सिर झुकाने के लिए,
उठता नहीं है सिर अब वापस जाने के लिए,
दर्द दिया है तो दवा भी तू ही दे,
ऐसा न हो कि कहानी बन जाये जमाने के लिए।

● ठीक है। घबड़ाने की कोई बात नहीं है।

दर्द ही दवा बन जाता है!

दर्द के अधूरे होने में पीड़ा है, पूरे हो जाने में दवा है।

इसे थोड़ा समझना। कठिन होगा समझना, क्योंकि हमारे तर्क की कोई भी कोटियां काम में नहीं आएंगी।

लेकिन आंतरिक जीवन के बहुमूल्य में एक सत्य है कि अगर तुम्हारा प्रश्न पूरा हो जाए तो प्रश्न में ही उत्तर निकल आता है।

और तुम्हारी प्यास अगर समग्र हो जाए तो प्यास में ही झरने फूट पड़ते हैं और तृप्ति आ जाती है।

दर्द पूरा हो जाए, दर्द इतना हो जाए कि तुम दर्द के जाननेवाले अलग न रह जाओ, भेद न बचे, दर्द ही बचे, तुम न बचो तो दवा हो जाती है। इसी को तपश्चर्या कहते हैं।

तपश्चर्या का अर्थ धूप में खड़ा हो जाना नहीं है, न भूखे होकर उपवास कर लेना है।

तपश्चर्या का अर्थ है : जीवन के खालीपन की पीड़ा को उसकी समग्रता में अनुभव करना; जीवन की अर्थहीनता को उसकी पूरी त्वरा में अनुभव करना। जीवन की ही यह जिसको भांग-दौड़ हम समझ रहे हैं अभी बड़ी उपयोगी मालूम होती है, एक ख्वाब से ज्यादा न रह जाए तो अचानक हम पाएंगे : हाथ खाली हैं। घबड़ाहट पकड़ेगी। रोआं-रोआं कंप जाएगा। लगेगा यह जो जीये अब तक नाहक ही जीये, यह जो समय गया व्यर्थ ही गया। पीड़ा उठेगी। गहन पीड़ा उठेगी। इस पीड़ा को झेलने का नाम ही तपश्चर्या है।

और जल्दी दवा मत मांगना, क्योंकि जल्दी दी गयी दवाएं शामक होंगी, वे तुम्हारी पीड़ा को सुला देंगी, तुम फिर वापस दुनिया में लौट जाओगे वैसे-के-वैसे।

दवा मांगना ही मत। दर्द को भोगने के लिए तैयार रहना। अगर तुम भोगने की पूरी तत्परता दिखा सको तो दर्द में ही दवा छिपी है।

'इश्क से तबियत ने जीस्त का मजा पाया
दर्द की दवा पायी, दर्द बेदवा पाया।'

प्रेम से, भक्ति से —

'तबियत ने जीस्त का मजा पाया ...'

पहली दफा जीवन का आनंद आना शुरू हुआ। लेकिन यह आनंद कोरा आनंद नहीं है; इस आनंद की बड़ी गहन पीड़ा भी है। अगर तुमने प्रेम में सिर्फ सुख ही खोजा तो तुम प्रेम से वंचित रह जाओगे, क्योंकि प्रेम का दुख भी है।

गुलाब की झाड़ी पर फूल ही नहीं हैं, कांटे भी हैं। फूल-ही-फूल मांगे तो फिर तुम जाकर फूल बेचनेवाले से फूल खरीद लेना, झाड़ी लगाने की झंझट में मत पड़ना। वहां तुम्हें फूल मिल जाएंगे बिना कांटे के, मगर वे मरे हुए फूल हैं। जिंदा फूल चाहिए तो कांटे भी होंगे।

और गुलाब का फूल कांटों में ही शोभा देता है।

रात के घने अंधेरे में जब चैतन्य का दीया जलता है तो उसी विपरीतता में उसकी प्रतीति की सघनता है।

'इश्क से तबियत ने जीस्त का मजा पाया
दर्द की दवा पायी, ...।'

अब तक जो दर्द थे जिंदगी के – हजार दर्द हैं जिंदगी के वे ही तुम्हें मेरे पास ले आये। हजार-हजार तकलीफें हैं, चिंताएं हैं, उलझने हैं। हजार दर्द हैं जिंदगी के।

अगर तुम भक्ति और प्रेम के रास्ते पर चले तो दर्द की दवा मिल जाएगी। इन सभी दर्दों की दवा मिल जाएगी। ये सब दर्द खो जाएंगे। 'दर्द की दवा पायी' – और तब एक नया दर्द शुरू होगा – 'दर्द बेदवा पाया।' और अब एक ऐसा दर्द शुरू होगा जिसकी कोई दवा नहीं है।

इन सभी दर्दों की तो दवा है। अगर चिंता है तो ध्यान से खो जाएगी। तनाव है, ध्यान से मिट जाएगा। क्रोध है, लोभ है, मोह है – इन सभी दर्दों की दवा है। सिर्फ एक परमात्मा का दर्द है, जिसकी कोई दवा नहीं।

तो तुमसे मैं सारे दर्द छीन लूंगा और एक दर्द दूंगा, जिसकी फिर कोई दवा नहीं है। सौदा महंगा है। महंगा सौदा है। जुआरी चाहिए। दुकानदार इस काम को नहीं कर सकते। वे कहेंगे, 'यह क्या हुआ, छोटे-छोटे दर्द ले लिये और यह बड़ा दर्द दे दिया! छोटे-छोटे दर्द ले लिये, जिनकी तो दवा थी; और यह दर्द दे दिया, जिसकी कोई दवा नहीं है!'

लेकिन घबड़ाना मत!

'इश्क से तबियत ने जीस्त का मजा पाया
दर्द की दवा पायी, दर्द बेदवा पाया।'
'इश्रते कतरा है दरिया में फना हो जाना।'

बूंद का गौरव यही है, ऐश्वर्य यही है कि वह सागर में खो जाए, मिट जाए।

'इश्रते कतरा है दरिया में फना हो जाना
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना।'

यह जो बेदवा-दर्द है, अगर यह हद से गुजर जाए – हद से गुजर जाने का अर्थ है, तुम इसमें मिट ही जाओ; तुम ही हद हो, तुम ही सीमा हो; ऐसा कोई भीतर रह ही न जाए जिसको दर्द हो

रहा है, दर्द ही बस रह जाए —

'दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना।'

परमात्मा की पीड़ा ऐसी है कि उसका कोई इलाज नहीं; पीड़ा में ही इलाज छिपा है। क्योंकि परमात्मा आखिरी पीड़ा है, उसके आगे इलाज हो भी नहीं सकता। वही पीड़ा है, वही इलाज है। वही रोग है, वही औषधि है। क्योंकि उसके पार फिर कुछ भी नहीं।

तो घबड़ाओ मत!

दर्द की तैयारी चाहिए।

जब परमात्मा के आनंद को मांगने चले हो तो यह सौदा करने जैसा है। जितना दर्द उठाने की तैयारी दिखाओगे, उतना ही परमात्मा का आनंद उपलब्ध होगा।

तुम्हारे दर्द को झेल लेने की तैयारी, तुम्हारी परीक्षा है, तुम्हारी कसौटी है, और तुम्हारी भूमिका भी है।

दर्द निखारता है। दर्द साफ करता है।

दर्द ऐसा है जैसे कि कोई सोने को आग में धरता है, तो जो व्यर्थ है जल जाएगा, स्वर्ण बच रहेगा खालिस! दर्द में वही जलेगा जो व्यर्थ है, जो जल ही जाना था, कूड़ा-करकट था। तुम्हारे भीतर जो भी सोना है वह बच जाएगा।

यह अग्नि गुजरने जैसी है।

भक्ति अग्नि है।

यह भीतर की आग है।

तीसरा प्रश्न : आपके प्रवचन सुनते हुए कभी-कभी प्रेम-विभोर होकर मेरी आंखें आंसू बहाने लगती हैं। लेकिन तभी अचेतन में अहंकार को रस भी आता लगता है कि मैं अहोभाव के आंसू बहा रहा हूं। क्या इससे अद्वैत का रूखा-सूखा मार्ग अच्छा नहीं है, जहां अश्रु बहानेवाला बचता ही नहीं?

● बारीक है सवाल, थोड़ा समझना पड़े। नाजुक है।

थोड़ा ध्यान करना : जब भक्ति तक में अहंकार बच जाता है तो अद्वैत में तो मिट ही न सकेगा। जब आंसू भी उसे नहीं बहा सकते तो रूखे-सूखे मार्ग पर तो बड़ा अकड़कर खड़ा हो जाएगा। जब आंसू भी उसे पिघला नहीं सकते, और आंसुओं से भी वह अपने को भर लेता है, तो जहां आंसू नहीं हैं वहां तो मिटने का उपाय ही न रह जाएगा।

समझें।

अहंकार का आंसुओं से विरोध है। इसलिए तो हम पुरुषसे कहते हैं, 'रो मत। क्या स्त्री जैसा व्यवहार कर रहे हो!' पुरुष को हम अहंकारी बनाते हैं। छोटा बच्चा भी रोने लगता है तो कहते हैं, 'चुप! लड़का है या लड़की?' पुरुषों की दुनिया है। अब तक पुरुष काबू रहे हैं दुनिया पर, तो उन्होंने अपने लिए अहंकार बचा लिया है। पुरुष होने का अर्थ है : 'रोना मत'। यह अकड़ है। 'स्त्रियां रोती

हैं। कमजोर रोते हैं, शक्तिशाली कहीं रोते हैं!'

अहंकार का आंसुओं से कुछ विरोध है।

तुम अगर सिकन्दर को रोते देखो तो तुम उसको बहादुर न कह सकोगे। नेपोलियन को अगर तुम रोते देख लो तो तुम कहोगे : 'अरे, नेपोलियन, और रो रहे हो! यह तो कायरों की बात है, कमजोरों की बात है। यह तो स्त्रैण चित्त का लक्षण है।'

अहंकार का आंसुओं से विरोध है। तो जब आंसू भी अहंकार को नहीं मिटा पाते तो ऐसा मार्ग जहां आंसुओं की कोई जगह नहीं है, वह तो मिटा ही न पाएगा, वहां तो अहंकार और अकड़ जाएगा।

भक्तों में तो कभी-कभी तुम्हें विनम्रता मिल जाएगी, अद्वैतवादियों में तुम्हें कभी विनम्रता नहीं मिलेगी। मुश्किल है, बहुत मुश्किल है। बड़ी अकड़ मिलेगी। आंसू ही नहीं हैं।

थोड़ा सोचो : हरा वृक्ष होता है तो झुक सकता है; सूखा वृक्ष होता है तो झुक नहीं सकता।

विनम्रता तो झुकने की कला है। अगर आंसुओं ने थोड़ी हरियाली रखी है तो झुक सकोगे। अगर आंसू बिलकुल सूख गये और सूखे दरख्त हो गये तुम, तो झुकना असंभव है; टूट भला जाओ, झुक न सकोगे।

अहंकारी वही तो कहते हैं कि टूट जाएंगे, मगर झुकेंगे नहीं; मिट जाएंगे, मगर अकड़े रहेंगे।

अद्वैत रूखा-सूखा रास्ता है — तर्क का, बुद्धि का, विचार का। अगर भाव, प्रेम और भक्ति के रास्ते पर भी तुम पाते हो कि अहंकार इतना कुशल है कि अपने को भर लेता है, तो फिर अद्वैत के रास्ते पर तो बहुत भर लेगा। क्योंकि भक्ति की तो पहली शर्त ही यही है : समर्पण। भक्ति तो पहली ही चोट में अहंकार को मिटाने की चेष्टा करती है, अद्वैत तो अंतिम चोट में मिटायेगा। तुम पूरा रास्ता तय कर सकते हो अद्वैत का अहंकार के साथ। आखिर में अहंकार गिरेगा। भक्ति तो पहले ही चरण पर कहती है : अहंकार छोड़ो तो ही प्रवेश है।

वैष्णव भक्तों की एक कथा है कि एक भक्त वृंदावन की यात्रा को आया — रोता, गीत गाता, अश्रु-विभोर, लेकिन मंदिर पर ही उसे रोक दिया गया, द्वार पर पहरेदार ने कहा, 'रुको! अकेले भीतर जा सकते हो। लेकिन यह गठरी जो साथ ले आये हो, इसे बाहर छोड़ दो।'

उसने चौंककर चारों तरफ देखा, कोई गठरी भी उसके पास नहीं है। वह कहने लगा, 'कैसी गठरी, कौन-सी गठरी? मैं तो बिलकुल खाली हाथ आया हूं।'

उस द्वारपाल ने कहा, 'भीतर देखो, बाहर मत। गठरी भीतर है, गांठ भीतर है। जब तक तुम्हें यह खयाल है कि मैं हूं, तब तक, तब तक भक्ति के मंदिर में प्रवेश नहीं हो सकता। भक्ति की तो पहली शर्त है : तू है, मैं नहीं हूं। भक्ति का प्रारंभ है : तू है, मैं नहीं। और भक्ति का अंत है कि न मैं हूं, न तू है।'

अद्वैत की तो बहुत गहरी खोज यही है कि मैं हूं, तू नहीं; और अंतिम अनुभव है : न मैं हूं, न तू। इसलिए तो अद्वैत कहता है : अहं ब्रह्मास्मि! अनलहक! मैं हूं। मैं ब्रह्म हूं। मैं सत्य हूं।

अद्वैत के रास्ते पर तो वे ही लोग सफल हो सकते हैं जो अहंकार के प्रति बहुत सजग हो सकें; क्योंकि वहां आंसू भी साथ देने को न होंगे, सिर्फ सजगता ही साथ देगी; वहां प्रेम भी झुकाने को न

होगा; वहां तो बोधपूर्वक ही झुकोगे तो ही झुकोगे।

तो, अद्वैत तो बहुत ही समझपूर्वक चलने का मार्ग है। सौ चलेंगे, एक मुश्किल से पहुंच पाएगा। भक्ति में नासमझ भी चल सकता है, क्योंकि भक्ति कहती है, सिर्फ गठरी छोड़ दो। कोई तर्क का जाल नहीं है, कोई विचार का सवाल नहीं है। प्रेम में डूब जाओ!

अज्ञानी भी चल सकता है भक्ति के मार्ग पर।

तो जिस मित्र ने पूछा है कि आंसू बहने लगते हैं तो एक अहंकार पकड़ता है भीतर कि अहो, धन्यभाग, कि मैं कैसे भक्ति के रस में डूब रहा हूं! ठीक पूछा है। ऐसा होगा, स्वाभाविक है। उससे घबड़ाओ मत। उस अहोभाव को भी परमात्मा के चरणों पर समर्पित कर दो। तत्क्षण कहो कि खूब, फिर उलझाया, इसे भी सम्हाल! अहोभाव मेरा क्या, तेरा प्रसाद है! अब मुझे और धोखा न दे! अब मुझे और खेल न खिला!

जैसे भी यह अहंकार बने, उसे तत्क्षण जैसे ही याद आ जाए, तत्क्षण परमात्मा के चरणों में रख दो। जल्दी ही तुम पाओगे : अगर तुम रखते ही गये, अहंकार के बनने का कारण ही खत्म हो गया।

अहंकार संगृहीत हो तो ही निर्मित होता है। पल-पल उसे चढ़ाते जाओ। परमात्मा के चरणों में और सब फूल चढ़ाये, बेकार; धूप-दीप बाली, बेकार; आरती उतारी व्यर्थ – बस अहंकार प्रतिपल बनता है, उसे तुम चढ़ाते जाओ। वही तुम्हारे भीतर उगनेवाला फूल है, उसे चढ़ाते जाओ। जल्दी ही तुम पाओगे : उसका उगना बंद हो गया। क्यों? उसका संगृहीत होना जरूरी है।

और आंसू बड़े सहयोगी हैं। होश रखना पड़ेगा। थोड़ा जागरूक रहना पड़ेगा। नहीं तो अहंकार बड़ा सूक्ष्म है और बड़ा कुशल है, बड़ा चालाक है। सावधान रहना पड़ेगा।

सावधानी तो सभी मार्गों पर जरूरी है; भक्ति के मार्ग पर सबसे कम जरूरी है, लेकिन जरूरी तो है ही। अद्वैत के मार्ग पर बहुत ज्यादा जरूरी है। न्यूनतम सावधानी से भी काम चल सकता है भक्ति के मार्ग पर, लेकिन बिलकुल बिना सावधानी के काम नहीं चल सकता है।

घबड़ाओ मत। जो हो रहा है, बिलकुल स्वाभाविक है, सभी को होता है। यात्रा के प्रारंभ में यह अड़चन सभी को आती है।

अहंकार की आदत है कि जो भी मिल जाए उसी का सहारा खोजकर अपने को भर लेता है। धन कमाओ तो कहता है, देखो, कितना धन कमा लिया! ज्ञान इकट्ठा कर लो तो कहता है, कितना ज्ञान पा लिया! त्याग करो तो कहता है, देखो कितना त्याग कर दिया! ध्यान करो तो कहता है, देखो, कितना ध्यान कर लिया! मेरे जैसा ध्यानी कोई भी नहीं है! आंसू बहाओ तो गिनती कर लेता है, मैंने कितने आंसू बहाए, दूसरों ने कितने बहाए, मेरा नंबर एक है, बाकी नंबर दो हैं!

इस अहंकार की तरकीब के प्रति होश रखना भर जरूरी है, कुछ और करने की जरूरत नहीं है। उसे भी चढ़ा दो परमात्मा को।

भक्त को एक सुविधा है : परमात्मा भी है उसके चरणों में तुम चढ़ा सकते हो। भक्त को एक सुविधा है कि अहंकार के विपरीत वह परमात्मा का सहारा ले सकता है। अद्वैतवादी को वह सुविधा भी नहीं है। वह बिलकुल अकेला है, कोई संगी-साथी नहीं है। भक्त अकेला नहीं है।

इसलिए अगर भक्ति के मार्ग पर भी तुम्हें अड़चन आ रही है तो यह मत सोचना कि अद्वैत का मार्ग तुम्हें आसान होगा; और भी कठिन होगा। इस भूल में मत पड़ना।

अहंकार की एक ही घबड़ाहट है, और वह घबड़ाहट यह है कि कहीं मर न जाऊं। अहंकार मरेगा ही। वह कोई शाश्वत सत्य नहीं है, वह क्षणभंगुर है। तुम कभी न मरोगे, तुम्हारा अहंकार तो मरेगा ही।

जितनी जल्दी तुम यह बात समझ लो, उतना ही भला है।

'उम्र फानी है तो फिर मौत से डरना कैसा ?'

एक बात तो पक्की है कि मौत निश्चित है और जिंदगी आज है कल नहीं होगी – हवा की लहर है, आयी और गयी, सदा टिकनेवाली नहीं है!

'उम्र फानी है तो फिर मौत से डरना कैसा
इक-न-इक रोज़ यह हंगामा हुआ रक्खा है।'

किसी भी दिन यह घटना घटनेवाली है: मौत होगी ही।

'इक-न-इक रोज़ यह हंगामा हुआ रक्खा है।'

तो जो होने ही वाला है, उसे स्वीकार कर लो।

लड़ो मत, बहो। यह लड़ाई छोड़ दो कि मैं बचूं। स्वीकार ही कर लो कि मैं नहीं हूं।

जो मौत करेगी, भक्त उसे आज ही कर लेता है। जो मौत में जबरदस्ती किया जाएगा, भक्त उसे स्वेच्छा से कर लेता है। वह कहता है, 'जो मिटना ही है वह मिट ही गया; आज मिटा, कल मिटा – क्या फर्क पड़ता है! मैं खुद ही उसे छोड़े देता हूं।'

अपनी मौत को स्वीकार कर लो तो तुम अमृत को उपलब्ध हो जाओगे। इधर तुमने मौत को स्वीकार किया कि उधर तुम पाओगे: तुम्हारे भीतर कोई छिपा है – तुमसे ज्यादा गहरा, तुमसे ज्यादा ऊंचा, तुमसे ज्यादा बड़ा। तुम मिटे कि उस ऊंचाई और गहराई और उस विराट का पता चलना शुरू हो जाता है।

तुमने तिनके का सहारा ले रखा है। तिनके के सहारे के कारण तुम भी छोटे हो गये हो। तुमने गलत संग पकड़ लिया है। गलत से तादात्म्य हो गया है।

मौत को स्वीकार कर लो!

मौत को स्वीकार करते ही अहंकार नहीं बचता। जैसे ही तुमने सोचा, समझा कि मौत निश्चित है – होगी ही; आज हो, कल हो, परसों हो, होगी ही; इससे बचने का कोई उपाय नहीं है; कोई कभी बच नहीं पाया। भाग-भागकर कहां जाओगे? भाग-भागकर सभी उसी में पहुंच जाते हैं, मौत के ही मुंह में पहुंच जाते हैं।

अंगीकार कर लो! उस अंगीकार में ही अहंकार मर जाता है।

'मुझे अहसास कम था वर्ना दौरे ज़िंदगानी में
मेरी हर सांस के हमराह मुझमें इंकिलाब आया।'

मुझे होश कम था, मुझे अहसास कम था, होश कम था, सावधानी नहीं थी, जागरूकता

नहीं थी।

'वर्ना दौरे ज़िंदगानी में...!'

वर्ना जिंदगी-भर,

मेरी हर सांस के हमराह मुझमें इंकिलाब आया।'

मेरी हर सांस के साथ क्रांति की संभावना आती थी और मैं चूकता गया। हर सांस के साथ क्रांति घट सकती थी, अहंकार छूट सकता था और परमात्मा के जगत में प्रवेश हो सकता था – लेकिन होश कम था।

इस होश को थोड़ा जगाओ।

वह इंकलाब, वह क्रांति तुम्हारी भी हर श्वास के साथ आती है, तुम चूकते चले जाते हो।

अहंकार को जब तक तुम पकड़े हो, चूकते ही चले जाओगे। जिस दिन छोड़ा अहंकार को उसी क्षण क्रांति घट जाती है।

उसी क्रांति की तलाश है! उस क्रांति के बिना कोई तृप्ति न होगी। उस क्रांति के बिना तुम थरथराते ही रहोगे भय में, घबड़ाते ही रहोगे चिंताओं में, डरते ही रहोगे।

मौत जब तक होनेवाली है तब तक कोई निश्िंचत हो भी कैसे सकता है! अगर तुमने स्वीकार कर लिया तो मौत हो ही गयी, फिर चिंता का कोई कारण नहीं।

इसे थोड़ा करके देखो। यह बात करने की है। यह बात सोचने-भर की नहीं है। इसे करोगे तो ही इसका स्वाद मिलेगा।

चौथा प्रश्न : पृथ्वी पर अभी भी असंख्य मंदिर, मस्जिद, गिरजे और गुरुद्वारे हैं, जहां विधिविहित पूजा-प्रार्थना चलती है। क्या आपके देखे, वे सबके सब व्यर्थ ही हैं?

● अगर व्यर्थ न होते तो पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आया होता। अगर व्यर्थ न होते – इतनी पूजा, इतनी प्रार्थना, इतने मंदिर, इतने गिरजे, इतने मस्जिद – अगर वे सब सच होते, अगर ये प्रार्थनाएं वास्तविक होतीं, हृदय से आविर्भूत होतीं, तो पृथ्वी स्वर्ग बन गयी होती। लेकिन पृथ्वी नरक है। जरूर कहीं-न-कहीं चूक हो रही है।

या तो परमात्मा नहीं है, इसलिए प्रार्थनाएं व्यर्थ जा रही हैं; या प्रार्थनाएं ठीक नहीं हो रही हैं, और परमात्मा से संबंध नहीं जुड़ पा रहा है। बस दो ही विकल्प हैं। अब इसमें तुम चुन लो, जो तुम्हें चुनना हो।

एक विकल्प है कि परमात्मा नहीं है, इसलिए प्रार्थनाएं कितनी ही करो, क्या होनेवाला है! है ही नहीं कोई वहां सुनने को, आकाश खाली और कोरा है, चिल्लाओ-चीखो – तुम पागलपन कर रहे हो। यह समय व्यर्थ ही जा रहा है, इसका कुछ उपयोग कर लेते, कुछ काम में आ जाता।

और या फिर, परमात्मा है, प्रार्थना करनेवाला प्रार्थना नहीं कर रहा है, धोखा दे रहा है।

मैं दूसरा ही विकल्प स्वीकार करता हूं। मेरे देखे परमात्मा है, प्रार्थना नहीं है – इसलिए संबंध टूट

गये हैं, बीच का सेतु गिर गया है।

कुछ लोगों ने तो प्रार्थना भी प्राक्सी से करनी शुरू कर दी है।

पुजारी कर देता है। हिंदुओं ने वह तरकीब खोज ली है। वे खुद नहीं जाते। गरीब-गुरबे चले भी जाएं, पर जिनके पास थोड़ी सुविधा है, वे पुजारी रख लेते हैं। मंदिर में एक व्यवसायी पुजारी है, वह पूजा कर देता है। यह प्रार्थना प्राक्सी से है।

यह भी खूब धोखा हुआ ! किसको धोखा दे रहे हो ? उस पुजारी को प्रार्थना से कुछ लेना-देना नहीं है। उसको सौ रुपये महीने मिलते हैं तनख्वाह, उसको तनख्वाह से मतलब है। वह प्रार्थना करता है, क्योंकि सौ रुपये लेने हैं। यह व्यवसाय है। अगर उसे कोई डेढ़ सौ रुपये देनेवाला मिल जाए तो इसी भगवान के खिलाफ भी प्रार्थना कर सकता है, कोई अड़चन नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक सम्राट के घर नौकर था, रसोइये का काम करता था। भिंडी बनाई थीं उसने। सम्राट ने बड़ी प्रशंसा की। उसने कहा कि मालिक, भिंडी तो सम्राट है। जैसे आप सम्राट हैं, शहंशाह हैं, ऐसे ही भिंडी भी सभी शाक-सब्जियों में सम्राट है।

दूसरे दिन भी भिंडी बनायी। तीसरे दिन भी भिंडी बनायी। चौथे दिन सम्राट ने थाली फेंक दी। उसने कहा कि नालायक, रोज भिंडी। तो मुल्ला ने कहा, 'मालिक ! यह तो जहर है ! यह तो गधों को भी खिलाओ, तो न खाएं।'

सम्राट ने कहा कि नसरुद्दीन, चार दिन पहले तूने कहा था, यह शाक-सब्जियों में सम्राट है। और अब जहर है !

उसने कहा, 'मालिक ! हम आपके नौकर हैं, भिंडी के नहीं। हम तो आपको देखकर कहते हैं। जो आप कहते हैं वही हम कहते हैं। हम आपके नौकर हैं। भिंडी से हमें कुछ लेना-देना नहीं है।'

तो उस पुजारी से तुम जो चाहो करवा लो। वह तुम्हारा नौकर है, परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है।

आदमी बड़ी चालाकियां करता है।

तिब्बती लामा एक चाक बना लिये हैं — प्रेयर-व्हील। उसके आरों पर, स्पोक्स पर मंत्र लिखे हैं। उसको बैठे-बैठे घुमा देते हैं हाथ से। जैसे चरखे का चाक होता है, हाथ से घुमा दिया, वह कोई पचास-सौ चक्कर लगाकर रुक जाता है। वे सोचते हैं कि इतने मंत्रों का लाभ हो गया, इतनी बार मंत्र कहने का लाभ हो गया।

एक लामा मुझसे मिलने आया था। मैंने कहा कि तू बिलकुल पागल है ! इसमें प्लग लगा दे और बिजली में जोड़ दे। यह चलता ही रहेगा, तू सो, बैठ, जो तुझे करना हो, कर। यह भी झंझट क्यों कि इसको बार-बार हाथ से घुमाना पड़ता है, तू काम दूसरा करता है। फिर घुमाया, फिर घुमाया। और जब धोखा ही देना है, तो तूने प्लग लगाया, इसलिए तुझी को लाभ मिलेगा, जैसे चक्कर लगाने से मिलता है। जो प्लग लगायेगा उसको मिलेगा।

हम किसको धोखा दे रहे हैं ?

लोग प्रार्थनाएं कर रहे हैं, लेकिन प्रार्थनाओं का कोई संबंध परमात्मा से है ?

कोई मांग रहा है कि बेटा नहीं है, मिल जाए। कोई मांग रहा है कि धन नहीं है, मिल जाए। कोई मांग रहा है, अदालत में मुकदमा है, जीत जाऊं।

तुम परमात्मा की सेवा लेने गये हो, परमात्मा की सेवा करने नहीं। तुम परमात्मा को भी अपना नौकर-चाकर बना लेना चाहते हो : तुम्हारा मुकदमा जिताये, तुम्हें बच्चा पैदा करे, तुम्हारे लड़के की शादी करवाए। लेकिन तुम परमात्मा को धन्यवाद देने नहीं गये हो कि तूने जो दिया है वह अपरंपार है। तुम मांगने गये हो।

जहां मांग है वहां प्रार्थना नहीं।

इसे तुम कसौटी समझो कि जब भी तुम मांगोगे, तब प्रार्थना झूठी हो गयी। क्योंकि जब तुम धन मांगते हो तो धन परमात्मा से बड़ा हो गया। तुम परमात्मा का उपयोग भी धन पाने के लिए करना चाहते हो।

विवेकानंद के पिता मरे। शाहीदिल आदमी थे। बड़ा कर्ज छोड़कर मरे। घर में तो कुछ भी न था, खाने को भी कुछ छोड़ नहीं गये थे। तो रामकृष्ण ने विवेकानंद को कहा कि तू परेशान मत हो। तू मां से क्यों नहीं कहता? मंदिर में जा और कह दे, वे सब पूरा कर देंगी!

वे द्वार पर बैठ गये, विवेकानंद को भीतर भेज दिया। घंटे-भर बाद विवेकानंद लौटे, आंख से आंसू बह रहे हैं, बड़े अहोभाव में! रामकृष्ण ने कहा, 'कहा ?' विवेकानंद ने कहा, 'अरे! वह तो मैं भूल ही गया।'

फिर दूसरे दिन भेजा। फिर वही। फिर तीसरे दिन भेजा। विवेकानंद ने कहा, 'यह मुझसे न हो सकेगा। मैं जाता हूं और जब खड़ा होता हूं प्रतिमा के समक्ष, तो मेरे दुख-सुख का कोई सवाल ही नहीं रह जाता। मैं ही नहीं रह जाता तो दुख-सुख का सवाल कहां! पेट होगा भूखा, लेकिन मेरा शरीर से ही संबंध टूट जाता है। और उस महिमा के सामने क्या छोटी-छोटी बातें करनी हैं! चार दिन की जिंदगी है, भूखे भी गुजार देंगे। यह शिकायत भी कोई परमात्मा से करने की है! आप मुझे, परमहंस देव, अब दोबारा न भेजें। क्षमा करें, मैं न जाऊंगा।'

रामकृष्ण हंसने लगे। उन्होंने कहा, 'यह तेरी परीक्षा थी। मैं देखता था कि तू मांगता है या नहीं। अगर मांगता तो मेरे लिए तू व्यर्थ हो गया था। क्योंकि प्रार्थना फिर हो ही नहीं सकती, जहां मांग है। तूने नहीं मांगा, बार-बार मैंने तुझे भेजा और तू हारकर लौट आया – यह खबर है इस बात की कि तेरे भीतर प्रार्थना का खुलेगा आकाश। तेरे भीतर प्रार्थना का बीज टूटेगा, प्रार्थना का वृक्ष बनेगा। तेरे नीचे हजारों लोग छाया में बैठेंगे।'

मांग रहे हैं लोग – मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में, शिवालयों में – प्रार्थना नहीं हो रही है।

मंदिर-मस्जिद में जाता ही गलत आदमी है। जिसे प्रार्थना करनी हो वह कहीं भी कर लेगा। जिसे प्रार्थना करने का ढंग आ गया, सलीका आ गया, वह जहां है वहीं कर लेगा।

यह सारा ही संसार उसका है, उसका ही मंदिर है, उसकी ही मस्जिद है।

हर चट्टान में उसी का द्वार है!

और हर वृक्ष में उसी की खबर है!

कहां जाना है और ?

'तेरे कूचे में रहकर मुझको मर मिटना गवारा है
मगर दैरो-हरम की खाक अब छानी नहीं जाती।'

भक्त तो कहता है, अब क्या मंदिर और मस्जिद की खाक छानूं, तेरी गली में रहकर मर जाएंगे, बस पर्याप्त है।

और सभी तो गलियां उसकी हैं।

मैं यह नहीं कह रहा हूं, मंदिर मत जाना। क्योंकि मंदिर भी उसका है, चले गये तो कुछ हर्ज नहीं। लेकिन विशेष रूप से जाने की कोई जरूरत भी नहीं है। क्योंकि जहां तुम बैठे हो, वह जगह भी उसी की है। उससे खाली तो कुछ भी नहीं।

यह स्मरण आ जाए तो जब आंख बंद कीं, तभी मंदिर खुल गया;

जब हाथ जोड़े तभी मंदिर खुल गया;

जहां सिर झुकाया वहीं उसकी प्रतिमा स्थापित हो गयी!

झेन फकीर इक्यू एक मंदिर में ठहरा था। रात सर्द थी, बड़ी सर्द थी! तो बुद्ध की तीन प्रतिमाएं थीं लकड़ी की, उसने एक उठाकर जला ली। रात में ताप रहा था आंच, मंदिर का पुजारी जग गया आवाज सुनकर, और आग और धुआं देखकर। वह भागा हुआ आया। उसने कहा, 'यह क्या किया?' देखा तो मूर्ति जला डाली है। तो वह तो विश्वास ही न कर सका। यह बौद्ध भिक्षु है और इसी भरोसे इसको ठहर जाने दिया मंदिर में और यह तो बड़ा नासमझ निकला, नास्तिक मालूम होता है। तो बहुत गुस्से में आ गया। उसने कहा, 'तूने बुद्ध की मूर्ति जला डाली है! भगवान की मूर्ति जला डाली है!'

तो इक्यू बैठा था, राख तो हो गयी थी, मूर्ति तो अब राख ही थी। उसने बड़ी एक लकड़ी उठाकर कुरेदना शुरू किया राख को। उस पुजारी ने पूछा, 'अब यह क्या कर रहे हो ?' तो उसने कहा कि मैं भगवान की अस्थियां खोजता हूं। वह पुजारी हंसने लगा। उसने कहा, 'तुम बिलकुल ही पागल हो – लकड़ी की मूर्ति में कहीं अस्थियां हैं!'

तो उसने कहा, 'फिर ऐसा करो, अभी दो मूर्तियां और हैं, ले लाओ। रात बहुत बाकी है और रात बड़ी सर्द है, और भीतर का भगवान बड़ी सर्दी अनुभव कर रहा है।'

पुजारी ने तो उसे निकाल बाहर किया क्योंकि कहीं यह और न जला दे। लेकिन उस सुबह पुजारी ने देखा कि बाहर वह सड़क के किनारे बैठा है और मील का जो पत्थर लगा है, उस पर उसने दो फूल चढ़ा दिये हैं और प्रार्थना में लीन है। तो वह गया और उसने कहा कि पागल हमने बहुत देखे हैं, लेकिन तुम भी गजब के पागल हो! रात मूर्ति जला दी भगवान की, अब मील के पत्थर की पूजा कर रहे हो!

उसने कहा, 'जहां सिर झुकाया वहीं मूर्ति स्थापित हो जाती है।'

मूर्ति, मूर्ति में तो नहीं है, तुम्हारे सिर झुकाने में है। और जिस दिन तुम्हें ठीक-ठीक प्रार्थना की कला आ जाएगी, उस दिन तुम मंदिर-मस्जिद न खोजोगे – उस दिन तुम जहां होओगे, वहीं मंदिर-मस्जिद होगा; तुम्हारा मंदिर, तुम्हारी मस्जिद तुम्हारे चारों तरफ चलेगी; वह तुम्हारा प्रभामंडल

हो जाएगी।

जहां-जहां भक्त पैर रखता है, वहीं-वहीं एक काबा और निर्मित हो जाता है। जहां भक्त बैठता है, वहां तीर्थ बन जाते हैं। तीर्थों में थोड़े ही भगवान मिलता है; जिसको भगवान मिल गया है, उसके चरण जहां पड़ जाते हैं वहीं तीर्थ बन जाते हैं। ऐसे ही पुराने तीर्थ भी बने हैं।

काबा के कारण काबा महत्त्वपूर्ण नहीं है, वह मोहम्मद के सिजदा के कारण महत्त्वपूर्ण है, अन्यथा पत्थर था। लेकिन किसी को सिर झुकाना आ गया, इस कारण महत्त्वपूर्ण है।

सारे तीर्थ इसीलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि कभी वहां कोई भक्त हुआ, कभी कोई वहां मिटा, कभी किसी ने अपने बूंद को वहां खोया और सागर को निमंत्रण दिया। वे याददाश्त हैं! वहां जाने से तुम्हें कुछ हो जाएगा, ऐसा नहीं – लेकिन, अगर तुम्हें कुछ हो जाए, तो तुम जहां हो वहीं तीर्थ बन जाएगा, ऐसा जरूर है।

पांचवां प्रश्न : लोग पीते हैं लड़खड़ाते हैं
तेरी शरण में बहुत कुछ पाते हैं
एक हम हैं कि तेरी महफिल में
प्यासे आते हैं, प्यासे ही जाते हैं!

● फिर प्यास, प्यास ही न होगी। फिर अभी प्यास खयाल है, वास्तविक नहीं। अन्यथा कौन रोकता है तुम्हें पीने से?

अगर सरोवर के पास से तुम प्यासे ही लौट आओ, तो प्यास-प्यास ही न होगी।

जब प्यास पकड़ती है किसी को तो गंदे डबरे से भी आदमी पी लेता है। प्यास होनी चाहिए! और जब प्यास नहीं होती है तो स्वच्छ मानसरोवर भी सामने हो तो भी क्या करोगे?

प्यास की तलाश करो। खोजो। प्यास झूठी होगी।

बहुत लोगों को झूठी प्यास लग आती है। प्यास की चर्चा सुन-सुनकर प्यास तो नहीं लगती; प्यास लगनी चाहिए, ऐसा लोभ भीतर समा जाता है।

तुमने परमात्मा की बहुत बातें सुनी तो लगता है, परमात्मा मिलना चाहिए। प्यास नहीं है भीतर, लोभ पैदा हुआ।

लोभ से काम न होगा।

तुम लोभ के कारण आते होओगे, तो खाली लौट जाओगे, क्योंकि यहां मैं किसी का भी लोभ पूरा करने को नहीं हूं। यहां तो लोभ छोड़ना है, मिटाना है, पूरा नहीं करना है।

तुम्हारी परमात्मा की धारणा झूठी और उधार होगी। तुम्हें जीवन की परिपक्वता से परमात्मा की धारणा पैदा न हुई होगी। तुम अभी कच्चे फल हो।

या तो आओ तो प्यास लेकर आओ, अन्यथा आओ ही मत। थोड़ी देर और रुको। कहीं ऐसा न हो कि मेरे शब्द तुम्हें और एक नया धोखा दे दें। प्यास का धोखा तो है ही, कहीं तृप्ति का धोखा

और न पैदा हो जाए। वह बड़ा खतरा है। और जिसको प्यास का धोखा है, वह एक-न-एक दिन तृप्ति का धोखा भी कर लेता है।

जब तुम झूठी प्यास को मान लेते हो – किसको कहता हूं मैं झूठी प्यास?

मेरे पास लोग आते हैं, इतने लोग आते हैं, उनमें से सौ में से निन्यानबे झूठी प्यास के होते हैं।

किसी की पत्नी मर गयी, परमात्मा की खोज पर निकल जाता है; जैसे पत्नी के मरने से परमात्मा की खोज का कोई संबंध हो! दूसरी पत्नी खोजता, समझ में आती थी बात। लेकिन संस्कार, समाज! दूसरी पत्नी नहीं खोजता। खोज रहा है दूसरी ही पत्नी। झुठला रहा है। बिना खोजे नहीं रह सकता, एक खोज पैदा हो रही है भीतर। कामवासना प्रगाढ़ हो रही है, जग रही – लेकिन संस्कार, समाज, प्रतिष्ठा, बच्चे, परिवार, नाम...! खोजना तो है पत्नी को, खोजता है परमात्मा को! अब वह कभी भी परमात्मा को तो पा ही न सकेगा। बुनियाद में खोज ही गलत हो गयी।

किसी का दिवाला निकल गया, परमात्मा की खोज पर चले! दिवाले से परमात्मा का क्या लेना-देना है? तुम परमात्मा को सांत्वना समझ रहे हो? दुख में हो, तो तुम परमात्मा को मलहम समझ रहे हो, तो गलत जा रहे हो।

परमात्मा की खोज तो सच्ची तभी होती है जब जीवन का अनुभव तुम्हें कह दे कि जीवन व्यर्थ है। जब पूरा जीवन व्यर्थ मालूम हो, जब इस जीवन की सारी सार्थकता खंडित हो जाए, तुम अचानक जागो जैसे कोई स्वप्न से जाग गया और पाओ कि अब तक जो किया था, वह सब व्यर्थ हुआ, नये से शुरुआत करनी है, नया जन्म हो – तो प्यास पैदा होती है।

ऐसा व्यक्ति जब भी आएगा तो तृप्त होकर जाएगा।

प्यास ही न लाये होओ तो कैसे तृप्त होकर जाओगे? तृप्ति की पहली शर्त तो पूरी करो। तुम प्यास पूरी बताओ, तुम प्यास पूरी जगाओ, दूसरा काम मैं कर दूंगा। वह करना ही नहीं पड़ता, इसलिए तो इतनी सुविधा से जिम्मेदारी ले रहा हूं। तुम बस पहला पूरा कर दो, वह दूसरा अपने से पूरा हो जाता है, उसे कुछ करने की जरूरत नहीं पड़ती। तुम्हारी प्यास में ही तुम्हारी तृप्ति का सागर छिपा है। इसलिए तो निश्चित भाव से कहता हूं कि दूसरा मैं कर दूंगा। इसकी गारंटी कर देता हूं, क्योंकि उसमें कुछ करना ही नहीं है। मैं रहूं न रहूं, कोई फर्क नहीं पड़ता; तुम जब भी प्यासे होओगे, तृप्ति हो जाएगी।

आखिरी प्रश्न : 'इश्क पर ज़ोर नहीं ये वो आतिश 'गालिब'
कि लगाये न लगे और बुझाये न बुझे!
फिर देवर्षि नारद ने प्रेम पर यह शास्त्र क्यों लिखा?

● निश्चित ही प्रेम ऐसी आग है जो न तो तुम लगा सकते हो, न तुम बुझा सकते हो। न लगे तो लगाने का कोई उपाय नहीं है। लग जाए तो बुझाने का कोई उपाय नहीं है।

स्वाभाविक प्रश्न उठता है। अगर प्रेम ऐसी आग है, अगर एक ऐसी घटना है जो अपने से

घटती है और तुम्हारे किये कुछ भी नहीं हो सकता — तो फिर शास्त्र का प्रयोजन क्या ? फिर भी प्रयोजन है।

ऐसा समझो कि तुम खिड़की-द्वार-दरवाजे बंद करके अपने अंधेरे घर में बैठे हो, द्वार पर खड़ा है सूरज, किरणें थाप दे रही हैं, लेकिन तुम अपने दरवाजे बंद किये बैठे हो, तो सूरज भीतर नहीं आ पाएगा। द्वार-दरवाजे खोल दो, सूरज अपने से ही भीतर आता है, उसे लाना नहीं पड़ता। तुम कोई पोटलियों में बांधकर सूरज को भीतर नहीं लाओगे। तुम कोई हांककर सूरज को भीतर नहीं लाओगे। बुलाने की भी जरूरत न पड़ेगी, आमंत्रण भी न देना पड़ेगा। इधर तुमने द्वार खोला कि सूरज भीतर आया। और अगर सूरज बाहर न हो तो सिर्फ तुम्हारे द्वार खुलने से भीतर न आ जाएगा; सूरज होगा तो भीतर आएगा। सूरज न होगा तो तुम कुछ भी न कर सकोगे कि सूरज भीतर आ जाए। तो एक बात तो पक्की है कि सूरज होगा तो ही भीतर आएगा; न होगा तो तुम द्वार-दरवाजे कितने ही खोलो, इससे कुछ न होगा। लेकिन एक बात है, सूरज बाहर खड़ा हो और तुम द्वार न खोलो तो भीतर न आ सकेगा।

शास्त्र का इतना ही उपयोग है कि तुम्हें द्वार-दरवाजे खोलना सिखा दे।

प्रेम तो जब घटता है घटता है, तुम्हारे घटाये न घटेगा। और तुम्हारे घटाये घट जाए तो वह प्रेम दो कौड़ी का होगा, वह तुमसे नीचा होगा, तुमसे छोटा होगा। तुम्हारा ही कृत्य तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। कोई कृत्य कर्ता से बड़ा नहीं हो सकता। उस प्रेम की कोई कीमत नहीं है। वह तो अभिनय होगा ज्यादा-से-ज्यादा।

प्रेम तो अपने से घटेगा। वह घटना है, हैपनिंग। लेकिन अगर तुम द्वार-दरवाजे बंद किये बैठे हो तो वह द्वार पर ही खड़ा रहेगा, भीतर किरणें न आ सकेंगी।

शास्त्र का उपयोग है कि वह तुम्हें इतना ही बताये कि तुम बाधा न डालो। बाधा हटायी जा सकती है, बस फिर प्रेम तो मौजूद ही है।

भक्ति तो तुम्हें चारों तरफ से घेरे खड़ी है। झरना तो बहने को तत्पर है, एक पत्थर पड़ा है चट्टान की तरह, रुकावट डाल रहा है। चट्टान उठाने से झरना पैदा नहीं होता — झरना होगा तो चट्टान उठाने से वह उठेगा, जलधार आ जाएगी। लेकिन झरना भी हो और चट्टान पड़ी हो, तो जलधार उपलब्ध न होगी।

निषेधात्मक है शास्त्र का उपयोग, निगेटिव है। सभी शास्त्र निषेधात्मक हैं। वे इतना ही बताते हैं कि किस-किस तरह से तुम इंतजाम करो, ताकि बाधा न पड़े। जो होना है, वह तो अपने से होगा।

इसलिए तो भक्त कहते हैं, जब परमात्मा मिलता है तो प्रसाद से मिलता है, हमारे किये नहीं मिलता; लेकिन जब नहीं मिलता तो हमने कुछ किया है जिसके कारण नहीं मिलता।

इसको समझ लेना।

परमात्मां को खोते तुम हो; जब वह मिलता है तो उसके कारण मिलता है। पाप तुम करते हो, पुण्य वह करता है। भूल तुमसे होती है, सुधार उससे होता है। गलत तुम जाते हो, और जब तुम ठीक जाने लगते हो तब वह जाता है, तब तुम नहीं जाते।

यही मतलब है —

'इश्क पर ज़ोर नहीं ये वो आतिश 'गालिब'
कि लगाये न लगे और बुझाये न बुझे!'

इश्क पर कोई जो नहीं है, लेकिन चट्टानें-पत्थर इकट्ठा करना बड़ा आसान है। तुम अपने चारों तरफ अवरोध खड़े कर सकते हो कि प्रेम आ ही न सके।

यही तुमने किया है। तुमने परमात्मा के लिए रंध्र-रंध्र भी बंद कर दिये हैं, कहीं से उसकी एक किरण भी तुम्हारे भीतर प्रविष्ट न हो जाए! तुम सब तरफ से परमात्मा-प्रूफ हो!

उतना ही शास्त्र का प्रयोजन है कि तुम अपने दीवाल-दरवाजे हटा दो।

परमात्मा तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है, स्वरूप-सिद्ध अधिकार है। गंवाया है तो तुमने अपनी होशियारी से — पाओगे, इस होशियारी को छोड़ देने से।

इसलिए सारा सूत्र नकारात्मक है।

किसी चिकित्सक से पूछो, 'चिकित्सा-शास्त्र क्या है?' तो वह कहेगा, 'बीमारी का इलाज।' उससे तुम पूछो तो हजारों बीमारियों की व्याख्या कर देगा, लेकिन अगर स्वास्थ्य की व्याख्या पूछो तो न कर पाएगा।

स्वास्थ्य की कोई व्याख्या ही नहीं है। स्वास्थ्य तो जब होता है तब होता है — अव्याख्य है।

फिर चिकित्सक क्या करता है? वह केवल बीमारी का अवरोध हटाता है।

तुम्हें टी.बी. पकड़ जाए तो चिकित्सक स्वास्थ्य थोड़े ही लाता है — उसकी किसी दवा की गोली में स्वास्थ्य नहीं छिपा है — सिर्फ टी.बी. को अलग करता है। टी.बी. अलग हो जाए तो स्वास्थ्य तो अपने से घटता है।

स्वास्थ्य तो तुम्हारा स्वभाव है। इसलिए तो उसे हम 'स्वास्थ्य' कहते हैं! वह 'स्व' का भाग है। वह तुम्हारी स्वयं की सत्ता है।

'स्व' में स्थित हो जाना स्वास्थ्य की परिभाषा है।

बीमारी तुम्हें अपने से बाहर खींच रही है कहीं। चिकित्सक तुम्हें बीमारी से छुड़ा देता है, बस। स्वास्थ्य कोई चिकित्सक नहीं दे सकता — स्वास्थ्य तो तुम लेकर ही आये हो।

ठीक शास्त्र का यही उपयोग है कि बीमारी से छुड़ा दे।

प्रेम तो अपने से घटता है।

भक्ति तो अपने से आती है।

परमात्मा अपने से उतरता है।

लेकिन कोई अवरोध न रह जाए...।

तुम एक बीज बोते हो बगीचे में... बीज बोओ और उसके ऊपर एक पत्थर रख दो; बीज में संभावना थी, वह संभावना तुम नहीं ला सकते, वह संभावना थी ही; बीज फूटता अपने से; तुम जल दे सकते थे, सहारा बन सकते थे, तुम पत्थर हटा सकते थे, अवरोध अलग कर सकते थे : बीज वृक्ष बनता, फूल आते, फल लगते, छाया होती, सौंदर्य का जन्म होता — वह सब अपने से होता।

तुम कोई बीज से वृक्ष को खींच नहीं सकते। तुम कोई जबरदस्ती फूलों को खिला नहीं सकते। तुम जबरदस्ती वृक्ष से फलों को निकाल नहीं सकते। लेकिन तुम चाहो तो रोक सकते हो।

मनुष्य की सामर्थ्य इतनी ही है कि वह जो हो सकता है, उसे रोक सकता है; जो होना चाहिए, उसे कर नहीं सकता।

मनुष्य भटक सकता है – यह उसकी सामर्थ्य है; बीमार हो सकता है – यह उसकी सामर्थ्य है; अंधकार में रह सकता है – यह उसकी सामर्थ्य है। गलत होने की सामर्थ्य मनुष्य में है। ठीक : बस वह गलत होने की सामर्थ्य को छोड़ दे कि ठीक अपने से हो जाता है।

ठीक होना प्रकृतिदत्त है, स्वाभाविक है; गलत होना चेष्टा से है।

प्रयत्न से हम पाप करते हैं; जो निष्प्रयत्न होता है, वह पुण्य है।

प्रयास से हम संसार बनाते हैं; जो बिना प्रयास के, प्रसाद से मिलता है, वही परमात्मा है।

आज इतना ही।

योग और भोग का संगीत है भक्ति

सातवां प्रवचन

सूत्र

सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा ॥२५॥
फलरूपत्वात् ॥२६॥
ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च ॥२७॥
तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके ॥२८॥
अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये ॥२९॥
स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः ॥३०॥
राजगृह भोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात् ॥३१॥
न तेन राजपरितोषः क्षुधाशान्तिर्वा ॥३२॥
तस्मात्सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः ॥३३॥

भक्ति का सार-सूत्र है : प्रसाद।

ज्ञान, कर्म, योग, उन सबका सार-सूत्र है प्रयास।

ज्ञान, कर्म, योग मनुष्य की चेष्टा पर निर्भर हैं; भक्ति परमात्मा के प्रसाद पर। स्वभावतः भक्ति अतुलनीय है। न कर्म छू सकता है उस ऊंचाई को, न ज्ञान, न योग।

मनुष्य का प्रयास ऊंचा भी जाए तो कितना? मनुष्य करेगा भी तो कितना? मनुष्य का किया हुआ मनुष्य से बड़ा नहीं हो सकता। मनुष्य जो भी करेगा, उस पर मनुष्य की छाप रहेगी। मनुष्य जो भी करेगा उस पर मनुष्य की सीमा का बंधन रहेगा।

भक्ति मनुष्य में भरोसा नहीं करती; भक्ति परमात्मा में भरोसा करती है। एक बहुत अनूठा भक्त हुआ : बायजीद बिस्तामी। कहा है उसने, तीस साल तक निरंतर परमात्मा को खोजने के बाद, एक दिन सोचा तो दिखायी पड़ा : 'मेरे खोजे वह कैसे मिलेगा, जब तक वही मुझे न खोजता हो?' तब खोज छोड़ दी, और खोज छोड़कर ही उसे पा लिया।

तीस साल या तीस जन्मों की खोज से भी उसे पाया नहीं जा सकता, क्योंकि खोजेंगे तो हम – अंधे, अंधकार में डूबे, पापग्रस्त, सीमा में बंधे! भूल-चूकों का ढेर हैं हम। हम ही तो खोजेंगे उसे! रोशनी कहां है हमारे पास उसे खोजने को? हमारे पास हाथ कहां जो उसे टटोलें? कहां से लाएं हम वह दिल जो उसे पहचाने?

खोजी एक दिन पाता है कि नहीं, मेरे खोजे तू न मिलेगा, जब तक कि तू ही मुझे न खोजता हो।

और बायजीद ने कहा है, जब उसे पा लिया तो जाना कि यह भी मेरी भ्रांति थी कि मैं उसे खोज रहा था। वही मुझे खोज रहा था।

जब तक परमात्मा ने ही तुम्हें खोजना शुरू न कर दिया हो, तुम्हारे मन में उसे खोजने की बात ही न उठेगी। यह बात बड़ी विरोधाभासी लगेगी, लेकिन बड़ा गहन सत्य है।

परमात्मा को केवल वे ही लोग खोजने निकलते हैं जिनको परमात्मा ने खोजना शुरू कर दिया। जो उसके द्वारा चुन ही लिये गये हैं, वे ही केवल उसे चुनते हैं। जो किसी भांति उनके हृदय में आ ही गया है, वे ही उसकी प्रार्थना में तत्पर होते हैं।

तुम्हारे भीतर से वही उसको खोजता है। सारा खेल उसका है। तुम जहां भी इस खेल में कर्ता बन जाते हो, वहीं बाधा खड़ी हो जाती है, वहीं दरवाजे बंद हो जाते हैं।

तुम खाली रहो, उसे ही खोजने दो तुम्हारे भीतर से, तो तत्क्षण इस क्षण भी उस महाक्रान्ति का आविर्भाव हो सकता है।

भक्ति को समझने में, इस बात को जितना गहराई से समझ लो, उतना उपयोगी होगा : भक्ति परमात्मा की खोज नहीं है; भक्ति परमात्मा के द्वारा मनुष्य की खोज है।

मनुष्य हारकर समर्पण कर देता है, थककर समर्पण कर देता है, पराजित होकर झुक जाता है – कहता है, 'अब तू ही उठा तो उठा! अब तू ही सम्हाल तो सम्हाल! अब अपने से सम्हाला नहीं जाता! जो मैं कर सकता था, किया; जो मैं हो सकता था, हुआ – लेकिन मेरे किये कुछ भी नहीं हो पाता! मेरा किया सब अनकिया हो जाता है। जितना सम्हालता हूं उतना ही गिरता हूं। जितनी कोशिश करता हूं कि ठीक राह पर आ जाऊं, उतना ही भटकता हूं। अब तू ही चला! जन्म तेरा है, जीवन तेरा है, मौत तेरी है – प्रार्थना मेरी कैसे होगी?

पहला सूत्र है आज : 'वह भक्ति, वह प्रेमरूपा भक्ति, कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठतर है।'

श्रेष्ठता यही है कि वह अनंत के द्वारा तुम्हारी खोज है।

गंगा सागर की तरफ जाती है, तो ज्ञान, तो योग, तो कर्म। जब सागर गंगा की तरफ आता है, तो भक्ति।

भक्ति ऐसे है जैसे छोटा बच्चा पुकारता है, रोता है, मां दौड़ी चली आती है।

भक्ति बस तुम्हारा रुदन है!

तुम्हारे हृदय से उठी आह है!

भक्ति तुम्हारे जीवन की सारी खोज की व्यर्थता का निवेदन है। भक्ति तुम्हारे आंसुओं की अभिव्यक्ति है। तुम कहीं जाते नहीं, तुम जहां हो वहीं ठिठककर रह जाते हो। एक सत्य तुम्हारी समझ में आ जाता है कि तुम ही बस गलत हो; तुम गलत करते हो, ऐसा नहीं।

कर्मयोग कहता है : तुम गलत करते हो, ठीक करो तो पहुंच जाओगे।

ज्ञानयोग कहता है : तुम गलत जानते हो, ठीक जान लो, पहुंच जाओगे।

योगशास्त्र कहता है : तुम्हें विधियां पता नहीं हैं, मार्ग पता नहीं है। विधियां सीख लो, मार्ग सीख लो, तकनीक की बात है, पहुंच जाओगे।

भक्ति कहती है : तुम ही गलत हो। न ज्ञान से पहुंचोगे, न कर्म से पहुंचोगे, न योग से पहुंचोगे। तुम तुमसे छूट जाओ, तो पहुंचना हो जाएगा। तुम न बचो तो पहुंचना हो जाएगा।

पहले तुम अज्ञान में थे, फिर तुम ज्ञान में भी रहोगे – फर्क बहुत न पड़ेगा। फर्क तो पड़ेगा, बहुत न पड़ेगा। फर्क ऐसा ही होगा कि जंजीरें लोहे की थीं, उन पर तुम सोना मढ़ लोगे! कारागृह कुरूप था, दुर्गंधयुक्त था, तुम सुगंधें छिड़क लोगे, रंग-रोगन कर लोगे, कारागृह को सजा लोगे!

अज्ञानी का अहंकार अज्ञान से भरा होगा, ज्ञानी का अहंकार ज्ञान से भर जाएगा – अहंकार थोड़े ही मिटेगा! और कई बार ऐसा हो जाता है कि अज्ञानी तो पहुंच जाते हैं, ज्ञानी भटक जाते हैं।

क्योंकि अज्ञानी कम-से-कम अपनी निरीहता को तो अनुभव कर सकता है। इस अनुभव में कि मैं अज्ञानी हूं, अहंकार के गिरने की संभावना है। लेकिन इस अनुभव में कि मैंने जान लिया, फिर तो अहंकार को पत्थरों की बुनियाद मिल गयी।

अज्ञानी का अहंकार रेत पर खड़ा हुआ भवन है, कभी भी गिर जाएगा; जिंदगी में बड़ी आंधियां हैं, कोई भी आंधी उखाड़ देगी। ज्ञानी का भवन चट्टानों पर खड़ा है, आंधियों से टक्कर लेगा; आंधियां आएंगी, हारकर चली जाएंगी, भवन अपनी जगह खड़ा रहेगा।

जिसने गलत किया है, जो पापी है, वह तो कभी रोता भी है अपने पाप के अंधकार में पड़ा हुआ, कभी कराहता भी है। कभी एक गहन पीड़ा उठती है मन में कि यह मैं क्या कर रहा हूं, कभी अपने किये पर पछताता भी है – लेकिन जिसने पुण्य किया है, जिसने भले कर्म किये हैं, मंदिर बनवाये हैं, मस्जिदें बनवायी हैं, धर्मशालाएं खड़ी की हैं, लोगों की सेवा की है, अस्पताल खोले हैं, वह तो कभी पछताता भी नहीं।

और तुम जब तक पछताओगे न, कैसे परमात्मा तुम में उतर पाएगा?

जिसने पुण्य किया है, वह तो अकड़कर चलता है; वह तो परमात्मा पर दावेदार है; वह तो यह कहता है, 'अभी तक मिले क्यों नहीं? अब और क्या चाहते हो? सब तो किया।'

पुण्यात्मा के मन में शिकायत होगी, पश्चात्ताप नहीं। वह कहेगा, 'अन्याय हो रहा है। अब और क्या चाहिए? अब और क्या मांगते हो? यह क्या जबरदस्ती है? सब तो किया, जो शास्त्रों ने कहा, जो नीतिविदों ने बताया। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, कोई बेईमानी नहीं की, सब व्रतों का पालन किया – अब और क्या चाहिए?'

ज्ञानी में तो अकड़ होगी। पुण्यात्मा में अकड़ होगी। अकड़ होगी कि सब किया, अब मिलना चाहिए। क्योंकि ज्ञानी सोचता है, ज्ञान का फल है परमात्मा। पुण्यात्मा सोचता है, पुण्य का फल है परमात्मा, शुभ कर्म का फल है परमात्मा। योगी कहता है, 'कितने आसन किये, जीवन लगा दिया, प्राणायाम, आसन, प्रत्याहार, सब तरह से शरीर को शुद्ध किया! पत्थर की मूर्ति की तरह बैठकर कितने लम्बे दिनों तक ध्यान किया! अब और क्या चाहिए?'

जिसने कुछ किया है, वह हमेशा शिकायत से भरा होगा; पश्चात्ताप कहां! पश्चात्ताप किस बात का?

जीसस जगह-जगह अपने भक्तों को कहते हैं, 'रिपेंट! पश्चात्ताप करो! परमात्मा का राज्य बिलकुल करीब है।'

पश्चात्ताप करो?

लेकिन जिसने बुरा नहीं किया वह पश्चात्ताप कैसे करे? जिसने योग साधा, वह पश्चात्ताप क्यों करे? जिसने पुण्य किया, पश्चात्ताप की जगह कहां बची? जब पुण्य ही कर लिया, तो पश्चात्ताप क्या अर्थ रखता है? पश्चात्ताप तो पापी के लिए है, अज्ञानी के लिए है, अयोगी के लिए है, भोगी के लिए है, योगी के लिए तो नहीं है!

लेकिन जब तक तुम पश्चात्ताप न करो, परमात्मा नहीं। तो फिर पश्चात्ताप का क्या अर्थ हुआ?

पश्चात्ताप का एक ही अर्थ है कि अब तक मैं कर्ता था, यही पश्चात्ताप है। इसका पश्चात्ताप करता हूं कि अब तक मैंने सोचा कि मैं कर्ता हूं। कर्ता तू है। यहीं बुनियादी भूल हो गयी। कभी सोचा, पाप किया; कभी सोचा, पुण्य किया — लेकिन कर्ता मैं ही रहा; अहंकार मेरा ही सजा; संवारा मैंने अपने ही अहंकार को; मंदिर तेरे बनाये, लेकिन प्रतिमा मैंने अपनी ही स्थापित की; झुका तेरी प्रतिमा के सामने, लेकिन वह प्रतिमा मेरे ही हाथ का निर्माण थी!

तुम फिर से गौर से मंदिरों में जाकर देखना, जिन प्रतिमाओं के सामने तुम झुके हो, वहां प्रतिमाएं हैं या दर्पण हैं? दर्पण में अपनी ही तस्वीर देखकर तुम झुकते हो।

इसलिए हिन्दू वहां झुकता है जहां हिन्दू की प्रतिमा है, क्योंकि जब तक हिन्दू की तस्वीर न दिखायी पड़े, वह झुकेगा नहीं। ईसाई वहां झुकता है जहां ईसाई की प्रतिमा है।

कथा है कि तुलसीदास कृष्ण के मंदिर में गये तो झुके नहीं, क्योंकि राम का भक्त और कृष्ण के मंदिर में झुक जाए! कहा कि मैं न झुकूंगा, जब तक धनुषबाण हाथ में लेकर खड़े न होओ।

तुम परमात्मा के सामने झुकते हो या अपनी धारणाओं के सामने? इसका तो यह अर्थ हुआ कि पहले परमात्मा झुके, धनुष-बाण हाथ ले, तुम्हारी माने, फिर तुम झुकोगे! तो तुम अपनी मान्यता के सामने झुकते हो?

तुम कभी किसी परमात्मा के सामने झुके हो?

जब तक 'तुम' हो, झुक ही न सकोगे। तुम्हारा होना ही तो झुकना न होने देगा।

पश्चात्ताप किस बात का?

पश्चात्ताप इस बात का कि अब तक मैंने कहा, 'मैं हूं'; आज कहता हूं, 'नहीं, मैं नहीं हूं, तू ही है! अब तक मैंने प्रयास किये तुझे पाने के और मेरे प्रयासों से मैं तुझे नहीं पा सका। मेरे प्रयासों से ज्ञान मिल गया होगा, पुण्य मिल गया होगा, चरित्र मिल गया होगा — लेकिन तू नहीं मिला।'

प्रयास से मिलता ही नहीं। प्रयास से मिल जाए, वह भी कोई परमात्मा है? क्योंकि तुम्हारे प्रयास से जो मिलेगा, वह तुम्हारे प्रयास से छोटा होगा। प्रसाद से मिलता है!

इसलिए नारद अनूठी बात कहते हैं, बड़ी गहरी बात कहते हैं: 'कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठतर है वह प्रेमरूपा भक्ति।'

कोई भक्ति का मुकाबला नहीं है। भक्ति कोई करने की बात नहीं है। शब्द से भ्रांति होती है, 'भक्ति' से भी लगता है कि कुछ करना पड़ेगा, भक्ति में क्रिया है, कुछ करना; जैसे योग में कुछ करना, कर्म में कुछ करना, ज्ञान में कुछ करना, भक्ति में भी कुछ करना पड़ेगा। वहीं भूल हो जाती है।

भक्ति तो इस बात का अनुभव है कि मेरे किये कुछ होता ही नहीं। भक्ति तो अपने कृत्य की व्यर्थता का बोध है, पश्चात्ताप है। उस पश्चात्ताप में ही तुम गिर जाते हो, झुक जाते हो। ध्यान रखना, मैं नहीं कहता हूं कि तुम झुकते हो — झुक जाते हो!

क्या करोगे? कैसे खड़े रहोगे? जब सब किया अनकिया सिद्ध होता है, जब अपने पैर जहां भी ले जाते हैं, वहीं संसार मिलता है, और जब अपनी आंख जो भी दिखाती है वही पदार्थ सिद्ध होता है, और जिसकी भी तुम प्रार्थना करते हो वही प्रार्थना आखिर में कामना सिद्ध होती है, वासना सिद्ध

होती है, तो फिर क्या करोगे ? ठहर जाते हो ! खड़े होने की भी जगह नहीं रह जाती। खड़े होने का बल भी नहीं रह जाता। गिर जाते हो !

अगर अपनी तरफ से गिरे, तो यह भी योग हुआ। अगर पाया कि गिर रहे हो, जैसे गिरना घट रहा है, झुकना घट रहा है, तो भक्ति हुई।

भाषा के साथ अड़चन है, भक्ति भी कर्म बन जाती है।

भक्ति कर्म नहीं है। इसलिए भक्ति की परम श्रेष्ठता है।

'क्योंकि भक्ति फलरूपा है।'

इसे समझें। यह बड़ा वैज्ञानिक सूत्र है।

पानी को भाप बनाना हो तो आंच पर रखो। कारण मौजूद कर दो, कार्य घटेगा। जब सौ डिग्री गरमी हो जाएगी, पानी भाप बनने लगेगा। पानी यह नहीं कह सकता कि आज भाप बनने की मंशा नहीं है, कि आज थोड़ी सर्दी ज्यादा है आज नहीं बनते, या आज मन उदास है या कुछ...। पानी कुछ कर नहीं सकता।

कारण उपस्थित हो गया तो कार्य होगा।

बीज बो दो, अंकुर निकलेंगे।

ज्ञान, कर्म और योग की मान्यता यह है कि परमात्मा भी ऐसे ही मिलता है; कारण मौजूद कर दो, कार्य होकर रहेगा।

योगी कहता है, इतने नियम पालन कर लो, यह अष्टांग योग है, ये आठ अंग हैं, ये पूरे कर लो – परमात्मा को मिलना ही पड़ेगा; जैसे सौ डिग्री पर पानी गरम होता है, ऐसे अष्टांग योग पूरा होने पर परमात्मा मिलता है।

कर्मयोगी कहता है, इतने-इतने पुण्य कर लो; पांच महाव्रत हैं, इनका पालन कर लो : अहिंसा है, अचौर्य है, अस्तेय है, अपरिग्रह है, सत्य है, इनका पालन कर लो ! अगर पालन पूरा हो गया तो परमात्मा वैसे ही आ जाएगा जैसे बीज बोया, पानी डाला, धूप-रोशनी दी, अंकुर निकल आया। तो परमात्मा फल है और तुम्हारा कृत्य – ज्ञान, कर्म, योग – बीज है। तुम जो करते हो वह कारण है और परमात्मा कार्य है।

भक्त ऐसा नहीं देखते। भक्त कहते हैं, तुम कुछ भी करो, परमात्मा परम स्वतंत्रता है, तुम्हारे कृत्य से बंधा हुआ नहीं है। तुम्हारे अष्टांग योग के पूरे हो जाने से नहीं आ जाएगा। और अगर तुमने अष्टांग योग पर ही भरोसा किया तो तुम अकड़े बैठे रह जाओगे, परमात्मा से कोई संबंध न हो पाएगा।

परमात्मा कार्य-कारण जगत का हिस्सा नहीं है।

परमात्मा का अर्थ है : 'समग्र'। और सब चीजों के कारण हैं, 'समग्र' का कोई कारण नहीं हो सकता। और सब चीजों के आधार हैं, समग्र का कोई आधार नहीं है, समग्र निराधार है।

बीज से वृक्ष होता है। वृक्ष में फिर बीज लग जाते हैं। फिर बीजों में वृक्ष आ जाते हैं। सारा जगत श्रृंखला है – कार्य-कारण, कारण-कार्य – बंधा हुआ चलता जाता है। इस सारी श्रृंखला का कोई कारण नहीं है। इस सारी श्रृंखला के समस्त रूप का नाम परमात्मा है।

तुम पृथ्वी पर टिके हो, पृथ्वी सूरज के आकर्षण पर टिकी है, सूरज किसी और महासूर्य के आकर्षण पर टिका होगा — लेकिन सारा अस्तित्व कहां टिका है ? सारा अस्तित्व कहीं भी नहीं टिक सकता, क्योंकि इसके बाहर कुछ भी नहीं है जिस पर टिक जाए। तो सारा अस्तित्व तो निराधार है।

तुम एक मां और पिता के बीजों के मिलने से पैदा हुए। वे भी किन्हीं के बीजों के मिलने से पैदा हुए। और उनके माता-पिता भी इसी तरह...। लेकिन परमात्मा का कोई पिता नहीं है। 'समग्र' के बाहर कुछ भी नहीं है; सब कुछ उसके भीतर है।

तो भक्त कहते हैं, परमात्मा को पाने की यह बात ठीक नहीं। यह तुम संसार को पाने के ढंग का ही उपाय तुम परमात्मा को पाने के लिए कर रहे हो।

तो भक्ति बीजरूपा नहीं है, फलरूपा है। भक्ति कोई कारण नहीं है, कार्य है। भक्ति प्रारम्भ नहीं है, अंत है — फलरूपा है। तुम्हें कुछ करना नहीं — फल तुम्हें मिलता है। तुम्हारे करने से फल पैदा नहीं होता — प्रसादरूप होता है। तुम जब तैयार होते हो, अभीप्सा से भरे होते हो, धैर्य से तुम्हारे प्राण आकाश की तरफ देखते होते हैं, और तुम्हारी असहाय अवस्था पूर्ण हो गयी होती है, तुम बिलकुल खाली होते हो — तुम्हारे खालीपन में भक्ति उतरती है, भगवान उतरता है।

ध्यान रखना : भक्त यह कहता है कि वह तुम्हारे किसी कारण से नहीं उतरता; वह अपनी अनुकंपा से उतरता है; वह अपने प्रसाद से उतरता है; वह उतरना चाहता था, इसलिए उतरता है। इसलिए भक्त शिकायत नहीं कर सकता। न उतरे तो भक्त यह नहीं कह सकता कि मैंने सारी व्यवस्था पूरी कर दी है, तुम आये क्यों नहीं — दावा नहीं कर सकता। कभी ऐसी घड़ी भक्त के जीवन में नहीं आती जब वह यह कह दे कि मेरी कोई शिकायत है। शिकायत का तो अर्थ यह हुआ कि मैंने सौ डिग्री पानी गरम कर दिया है, पानी भाप क्यों नहीं बन रहा है ? मैंने अपनी तरफ से सब पूरा कर दिया, अब अन्याय हो रहा है !

इसे थोड़ा खयाल में लेना।

जिन लोगों ने कर्म, ज्ञान और योग पर बहुत जोर दिया, धीरे-धीरे उन्होंने परमात्मा की बात ही छोड़ दी, क्योंकि कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। महावीर कर्म का भरोसा करते हैं, तो परमात्मा को इनकार कर दिया। कोई जरूरत नहीं है, क्या जरूरत है ? सौ डिग्री पर जब पानी गरम होता है तो पानी भाप बनता है, इसमें किसी परमात्मा को बीच में लेने की जरूरत क्या है ? प्रसाद का सवाल कहां है ? तुम कार्य पूरा कर दो, परिणाम आ जाएगा। तुम बीज बो दो, फल लग जाएंगे। परमात्मा को बीच में लेने की जगह कहां हैं ? किसी परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है।

पतंजलि ने परमात्मा को भी एक साधन बना लिया, साध्य नहीं।

ज्ञानियों ने, योगियों ने, पुण्यकर्ताओं ने परमात्मा को छोड़ ही दिया, जरूरत ही न मालूम पड़ी। वह परिकल्पना व्यर्थ है। उसके बिना ही हो जाता है। हम से ही हो जाता है, उसकी कोई जरूरत नहीं है।

भक्ति का शास्त्र कहता है : हम से कुछ भी नहीं होता; 'हम' ही बाधा हैं। जहां हम खो जाते हैं, वहीं होना शुरू होता है।

'वह भक्ति फलरूपा है।'

बीज नहीं है उसका कोई जो तुम बो दो। कोई कारण नहीं है जो तुम तैयार कर लो, प्रयास कर लो, प्रयत्न कर लो। नहीं, तुम्हारे हाथ में कोई उपाय नहीं है कि तुम उसे खींच लो। तुम्हारा निरुपाय हो जाना ही, तुम्हारा असहाय हो जाना ही, तुम्हारा पछताना, तुम्हारा छाती पीटकर रोना, तुम्हारा आंसुओं में जार-जार बह जाना, तुम्हें एक प्रतीति हो जाए कि मैं ही अब तक उपद्रव का कारण था, मेरे प्रयास ही अब तक उपद्रव के कारण थे – फिर फल, फल ही उपलब्ध होता है।

ज्ञान साधन है; भक्ति साध्य है।

ज्ञान मार्ग है; भक्ति मंजिल है।

ज्ञानी को चलना पड़ता है; योगी को चलना पड़ता है; भक्त सिर्फ पहुंचता है, चलता नहीं।

भक्त सबसे बड़ा चमत्कार है।

इसलिए अगर महावीर को समझना हो, कोई अड़चन नहीं है। महावीर को समझना हो तो वैज्ञानिक व्यवस्था है। पतंजलि को समझना हो तो कोई दुर्बोध बात नहीं है, दुर्गम बात नहीं है, सीधा-सीधा गणित है। लेकिन मीरा बेबूझ है। चैतन्य को पकड़ पाना सम्भव नहीं है। भक्त की कोई कथा साफ नहीं हो पाती।

तुम योगी से पूछ सकते हो, 'तुमने क्या किया ? कैसे परमात्मा पाया ?' तो वह अपनी कथा बता सकता है, 'यह-यह मैंने किया। इतने उपवास किये। इतना प्राणायाम किया। इस तरह अष्टांग योग साधे। इस तरह समाधि तक पहुंचा।' एक-एक कदम साफ है। सीढ़ी-दर-सीढ़ी उसकी यात्रा है। उसके रास्ते पर मील के पत्थर लगे हैं। रास्ता है। वह कुछ कह सकता है।

मीरा से पूछो, 'कैसे पाया?' मीरा ठिठकी खड़ी रह जाएगी। वह कहेगी, 'मैंने पाया, यह बात ही ठीक नहीं है – मिला।'

पानेवाले की कोई कथा नहीं है। पानेवाला शून्य है। सारी कथा परमात्मा की है। सब कथा भगवतकथा है। भक्त की कोई कथा नहीं है।

भक्त बेबूझ है।

अगर मीरा और महावीर सामने खड़े हों तो महावीर से तो तुम राजी हो जाओगे – तुम कहोगे, 'इन्होंने इतना किया, फिर पाया। समझ में आता है। मीरा ने क्या किया ? कौन-सी साधना की मीरा ने ? कौन-से साधन किये ? कौन-सा योग किया ? कुछ भी तो नहीं किया।'

... अचानक पुच्छल तारे की तरह प्रगट होती है ! अनायास ! अकारण ! फलरूपा है। एक दिन तक पता नहीं था, एक दिन अचानक उसका नृत्य शुरू हो जाता है, उसके घूंघर बज उठते हैं। एक क्षण पहले तक किसी को खबर न थी, घर के लोगों को भी खबर न थी, पति को भी खबर न थी।

इसलिए भक्त पागल लगता है, क्योंकि गणित में बैठता नहीं।

... अनायास है, अकारण है ! एक दिन अचानक मीरा नाच उठी ! किसी ने न जाना, कैसे यह नाच पैदा हुआ ! इस नाच के पीछे कोई कार्य-कारण की शृंखला नहीं है। यह पुच्छल तारे की तरह प्रगट होती है। इसकी कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती और अतीत में लौटकर इसका कोई निर्वचन नहीं हो सकता – समय की धारा में, समय के बाहर से कोई उतरता है ! फलरूपा है !

तुम वृक्ष के नीचे विश्राम करते थे और फल गिर गया तुम्हारे ऊपर; न तुमने बीज बोये थे, न तुमने वृक्ष संभाला था, न तुम्हें पता है कि वृक्ष है – तुम्हें बस फल मिल गया!

एक दिन मीरा नाच उठती है! इस नाच के आगे-पीछे कोई हिसाब नहीं है। इसलिए मीरा को समझना बिलकुल ही कठिन हो जाता है। समझ के लिए कार्य-कारण की श्रृंखला का पता होना चाहिए।

महावीर ने बारह वर्ष तपश्चर्या की। बुद्ध ने छह वर्ष तपश्चर्या की और जन्मों-जन्मों तक खोज की। मीरा ने क्या किया?

नारद का यह सूत्र बड़ा अदभुत है : 'भक्ति फलरूपा है।'

साधन नहीं है भक्ति, साध्य है। यहां मार्ग है ही नहीं, बस मंजिल है। आंख खुलने की बात है।

'लायी हयात आये, क़ज़ा ले चली चले
अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले।'

जिसको यह समझ में आ गया कि लाया परमात्मा, आये; ले चला, चले; श्वास चलायीं, चलीं श्वास रोकीं, रुक गयीं।

'न अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले!'

जिसने ऐसा अनुभव कर लिया ... और तुम जरा गौर से देखो तो अनुभव करने में देर न लगेगी। किसी ने पूछा था तुमसे जन्म के पहले कि जन्म लेना चाहते हो?

'लायी हयात आये ... !'

किसी ने पूछा था, कहां जन्म लेना चाहते हो? स्त्री होना चाहते हो, पुरुष? गोरे होना चाहते हो, काले? हिन्दू होना चाहते हो, ईसाई?, किसी ने तो न पूछा था। अकारण हो तुम। तुम्हारे होने के पीछे तुम्हारी मंशा तो नहीं है, तुम्हारी आकांक्षा तो नहीं है। श्वास चलती है जब तक चलती है; जिस दिन नहीं चलेगी, क्या करोगे तुम? गयी श्वास बाहर और न लौटी तो क्या करोगे तुम? गयी तो गयी!

'लायी हयात आये, क़ज़ा ले चली चले
अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले।'

ऐसा जिस दिन तुम्हें जीवन का सार दिखायी पड़ जाएगा, उस दिन भक्ति की शुरुआत हुई; उस दिन तुम करीब आने लगे प्रसाद के। और जिस दिन ऐसा अनुभव तुम्हें हो जाएगा कि तुम नहीं हो, कोई और हाथ तुम्हें लाया, कोई और हाथ ने तुम्हें चलाया, कोई और ही सारी कथा को सम्हाले हुए है – उस दिन क्या बोझ, कैसी चिंता!

'मुझे सहल हो गयीं मंजिलें वो हवा के रुख भी बदल गये
तेरा हाथ हाथ में आ गया कि चिराग राह में जल गये।'

तुम जब तक हो तब तक अंधेरा है; तुम मिटे कि चिराग जले! तुमने जिस दिन यह भ्रांति छोड़ी कि मैं चल रहा हूं, उसी दिन तुम पाओगे : उसका हाथ सदा से तुम्हें चला रहा है, उसका हाथ तुम्हारे हाथ में है।

परमात्मा को हमने कभी खोया थोड़े ही है; खो देते तो फिर मिलने का कोई उपाय नहीं था।

जो खो जाए वह परमात्मा नहीं है। जिसे हम खो सकें वह हमारा स्वभाव नहीं है। उसे हमने कभी खोया नहीं है, विस्मरण किया है, भूल गये हैं घड़ी-भर को, झपकी लग गयी है, याद उतर गयी है। हाथ तो अब भी उसका हमारे हाथ में है। कुछ करना नहीं है उस हाथ को पाने को, सिर्फ अपनी भ्रांति छोड़नी है।

भक्ति फलरूपा है।

ज्ञान कहता है : कुछ करना है, अज्ञान को मिटाना है, ज्ञान को लाना है। बड़ा उपक्रम है।

इसलिए ज्ञानी में अकड़ होती है; उसने किया है इतना, अकड़ स्वाभाविक है। वह कहता है, 'तुमने क्या किया ? हम वर्षों ज्ञान इकट्ठा किये।'

योगी वर्षों तक साधता है, इसलिए योगी की अकड़ स्वाभाविक है। पुण्यात्मा महात्मा हो जाता है। कितना करता है ! कितनी सेवा ! कितने पुण्यकर्म ! अकड़ स्वाभाविक है। भक्त में अकड़ नहीं हो सकती, क्योंकि भक्त की बुनियाद ही यही है कि हमने किया ही नहीं कुछ; तूने जो करवाया वही हुआ !

भक्त की बड़ी अनूठी दुनिया है ! अलग ही उसका लोक है – गणित का नहीं, विज्ञान का नहीं, तर्क का नहीं – प्रेम का, प्रार्थना का, परमात्मा का। वहां सभी कुछ उलटा है। वहां बीज के पहले फल है। वहां मार्ग के पहले मंजिल है। वहां तुम्हारे करने से कुछ भी नहीं होता – तुम्हारे न करने से सब हो जाता है।

इसलिए जिनको भी अकड़ना हो, भक्ति उनके लिए नहीं है; जिनको पिघलना हो, उनके लिए है। अकड़ना हो, योग खोजो, त्याग खोजो, व्रत-नियम खोजो। अकड़ना हो और दिखाना हो दुनिया को कि मैं कुछ हूं तो भक्ति की राह को भूल ही जाओ, वह तुम्हारे लिए नहीं है। अभी देर है तुम्हें उस पर आने को। लेकिन अगर यह समझ में आना शुरू हो गया कि अपने किये कुछ भी न हुआ; चले बहुत, पहुंचे कहीं न; दौड़े बहुत, जब आंख खोली तो पाया वहीं खड़े हैं – जब तुम्हें ऐसी अनुभूति होने लगे, तब तुम भक्ति के लिए परिपक्व हुए।

'क्योंकि ईश्वर को भी अभिमान से द्वेष है और दैन्य से प्रियभाव है।'

यह सूत्र बड़ा कठिन है। इसे तुम अपनी तरह सोचोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे : ईश्वर को भी अभिमान से द्वेषभाव है ! अगर तुम महावीर से पूछोगे तो वे कहेंगे कि 'ऐसा ईश्वर ही नहीं; यह ईश्वर कैसा जिसको द्वेषभाव है ? यह तो हो ही नहीं सकता : ईश्वर और द्वेषभाव !' महावीर की परिभाषा में तो जब द्वेष मिट जाता है, तभी कोई ईश्वरत्व को उपलब्ध होता है।

'और दैन्य से प्रियभाव है।'

तो इसका तो अर्थ हुआ कि उसके भी पक्षपात हैं।

नहीं, अगर ऐसा देखा तो सूत्र से तुम चूक गये। सूत्र का मतलब कुछ और है। सूत्र का संबंध ईश्वर से नहीं है – सूत्र का संबंध तुमसे है।

ऐसा समझो कि कोई कहे कि जब वर्षा होती है तो वर्षा को गड्ढों से लगाव है, पहाड़ों और शिखरों से द्वेषभाव है, तो मतलब क्या होगा ? मतलब इतना ही होगा कि जब वर्षा होती है तो गड्ढों में भरती है, पहाड़ खाली रह जाते हैं; क्योंकि पहाड़ पहले से ही भरे हैं, वहां जगह ही नहीं है। और

जगह चाहिए। गड्ढे भर जाते हैं, झीलें भर जाती हैं। गिरती है वर्षा पहाड़ों पर, उतर आता है पानी गड्ढों में, झीलों में।

इस सूत्र का इतना ही अर्थ है कि अगर तुम अभिमान से भरे हो, तो परमात्मा तुम में न उतर सकेगा, चाहे लाख चेष्टा करे उतरने की। लाख चेष्टा कर रहा है, लेकिन तुम पहले से ही भरे हो, जगह नहीं है। रिक्त स्थान चाहिए थोड़ा। तुम्हारे अहंकार के कारण तुम्हारे सिंहासन पर जगह नहीं है, तुम ही बैठे हो। तुम उतरो सिंहासन से, तो परमात्मा बैठ सके।

'और दैन्य से प्रियभाव है' — इसका कुल अर्थ इतना ही है कि तुम झील, गड्ढे की तरह हो जाओ, ताकि परमात्मा तुम्हें भर दे; तुम खाली हो जाओ ताकि तुम भर दिये जाओ।

'अब तू भी करम की इंतिहा कर देना
मैंने भी खता की इंतिहा कर दी थी।'

भक्त कहता है कि मैंने भी पाप करने में कोई कमी न की थी, मैंने भी भूल करने में कोई कमी न की थी; 'अब तू भी करम की इंतिहा कर देना' — अब तू भी करुणा करने में कुछ कंजूसी मत करना, जैसे मैंने पाप करने में कोई कंजूसी न की थी।

'अब तू भी करम की इंतिहा कर देना
मैंने भी खता की इंतिहा कर दी थी।'

वह यह कहता है कि मैंने पाप-ही-पाप किये हैं, और पूरी तरह किये हैं; कोई कंजूसी नहीं की; आखिरी तक किये हैं; इंतिहा कर दी थी; पूर्णता कर दी थी — अब ध्यान रखना, अब तू भी अपनी अनुकंपा की, अपने प्रसाद की पूर्णता कर देना! तेरी करुणा में अब तू कमी मत करना, जैसे हमने पाप में कमी न की थी, जैसे हमने अहंकार को भरने में सारी चेष्टाएं की थीं!

मगर जो यह कह रहा है, वह गड्ढा हो गया। क्योंकि पाप की घोषणा तुम्हें गड्ढा बना देगी। पुण्य की घोषणा तुम्हें अहंकार से भरती है।

भक्त कहता है, 'मैं पापी हूं! मैं पात्र नहीं हूं!'

ज्ञानी कहता है, 'मैं पात्र हूं, तैयार हूं; देर क्यों हो रही है?'

योगी कहता है, 'मैं शुद्ध हूं, बिलकुल तैयार हूं; अब तेरी तरफ से देर हो रही है।'

भक्त कहता है, 'मैं बिलकुल तैयार नहीं हूं। इसलिए मेरी तरफ से तो कोई मांग हो नहीं सकती। इतना ही कह सकता हूं कि पाप करने में मैंने कोई कमी न की थी! मुझसे बुरा आदमी खोजे न मिलेगा। जैसे मैंने पाप करने में कमी न की — क्योंकि पाप ही मैं कर सकता था, और मैं कर क्या सकता था — अब तू करुणा में कमी मत करना, क्योंकि तू करुणा ही कर सकता है, और तू कर क्या सकेगा!'

भक्त अपने को अपात्र घोषित करता है — यही उसकी पात्रता है; असफल घोषित करता है — यही उसकी सफलता है; हारा हुआ घोषित करता है — यही उसकी विजय है।

भक्त कहे, ऐसा भी जरूरी नहीं है।

बायजीद प्रार्थना नहीं करता था जाकर मस्जिद में। जीवन तो उसका अनूठा था, परमात्मा के

प्रेम में पगा था ! किसी ने पूछा कि प्रार्थना करने मस्जिद क्यों नहीं जाते, तो वह रोने लगा। और उसने कहा, 'एक बार मैं एक शहर से गुजरता था और एक सम्राट के द्वार पर मैंने एक भिखारी को खड़े देखा। सम्राट द्वार से बाहर आ रहा था, ठिठका, और उसने भिखारी से पूछा, 'क्या चाहते हो, बोलते क्यों नहीं ?' उस भिखारी ने कहा, 'अगर मुझे देखकर तुम्हें दया नहीं आती तो मेरी बात सुनकर भी क्या फर्क पड़ेगा !'

उसके फटे-पुराने कपड़े हैं, चीथड़े की तरह लटके हैं। शरीर ढंका नहीं है उन कपड़ों से। उससे तो नंगा भी होता तो भी ज्यादा ढंका होता। पेट सिकुड़कर पीठ से लग गया है, हड्डियां निकल आयी हैं। आंखें धंस गयी हैं।

तो बायजीद ने कहा, उसी दिन से मैंने प्रार्थना करनी बंद कर दी। क्या कहना है उससे ? उस फकीर ने कहा, उस भिखमंगे ने कहा, अगर मुझे देखकर तुझे दया नहीं आती तो बात खत्म हो गयी, अब कहना क्या है और ! मेरी तरफ देख !'

बायजीद ने कहा, 'तब से मैंने प्रार्थना बंद कर दी। वह देख ही रहा है, अब कहना क्या है उससे ? अब रोना क्या है ?'

'लबे-इज़हार की ज़रूरत क्या
आप हूं अपने दर्द की फरियाद।'

जरूरी नहीं है कि भक्त प्रार्थना करे। भक्त की तो एक भावदशा है : 'आप हूं अपनी फरियाद।' उसके तो होने में ही उसकी दीनता समायी है।

नारद अनूठी बात कहते हैं : 'ईश्वर को अभिमान से द्वेष और दैन्य से प्रियभाव है।'

नहीं, ईश्वर को क्या द्वेष होगा और क्या प्रियभाव होगा ! लेकिन भक्त की तरफ जब तक अहंकार है तब तक परमात्मा प्रवेश नहीं कर सकता। भक्त की तरफ जब दैन्यभाव आ जाता है – 'आप हूं अपनी फरियाद' – जब सब तरफ हारा हुआ भक्त खड़ा हो जाता है; जब उसके पूरे जीवन की एक ही भावदशा रह जाती है कि मैं पराजित हूं, पतित हूं, अपात्र हूं, पापी हूं; मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है जिसके कारण तेरे लिए दावेदार बनूं; मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है कि तेरे लिए शिकायत करूं – उसी क्षण, इस दैन्यभाव में परमात्मा उतर आता है।

जीसस का वचन है कि जो आत्मा से दरिद्र हैं, 'पुअर इन स्पिरिट', उन्हीं को परमात्मा का मिलन होता है।

सोचें, ध्यान करें इस पर : आत्मा से दरिद्र, 'पुअर इन स्पिरिट !' शरीर से दरिद्र होना बहुत आसान है। तुम घर छोड़ दो, मकान छोड़ दो, परिवार छोड़ दो, वस्त्र त्याग दो, नग्न खड़े हो जाओ; लेकिन जितना तुम बाहर छोड़ते जाओगे, उतनी ही भीतर अकड़ बड़ी होती जाएगी। तो बाहर से तो तुम दरिद्र हो जाओगे, भीतर बड़ी अकड़ हो जाएगी।

जैन मुनियों को देखो ! जैन मुनि किसी को हाथ जोड़कर नमस्कार नहीं कर सकता; यह बात उसके नियम के विपरीत है। वह सिर्फ आशीर्वाद दे सकता है, नमस्कार नहीं कर सकता। क्यों ? क्योंकि वह त्यागी है। त्यागी और नमस्कार करे, भोगियों को ! असम्भव है ! तो यह आत्मा की दरिद्रता न

हुई। ऊपर से भला इसने दरिद्र का भेष पहन लिया हो, दो जोड़ी कपड़े रखता हो, कुछ और इसके पास न हो, भिक्षा मांगकर जीता हो – लेकिन इसकी अकड़ तो देखो! यह भिखारी नहीं है। इसके भिखमंगेपन में बड़ा अहंकार है। मैंने इतना त्यागा है... !'

तो अगर तुम जैन मुनि को नमस्कार करो तो वह आशीर्वाद दे देता है, हाथ नहीं जोड़ सकता तुम्हें।

जीसस ने कहा: आत्मा की दरिद्रता!

... तो यह तो बाहर का धन छोड़कर भीतर का धन पकड़ लिया; यह तो बाहर का अहंकार छोड़कर भीतर का अहंकार पकड़ लिया; यह तो पाना न हुआ, खोना हो गया उलटा; यह तो पहुंचना न हुआ, मंजिल से और दूरी हो गयी।

ध्यान रखना, पहले तुम बाहर की दुनिया में धनी होने की कोशिश करते हो; जब वहां हार जाते हो तो तुम भीतर की दुनिया में धनी होने की कोशिश करने लगते हो। तुम्हारा योग, तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारा कर्म, फिर तुम्हें भीतर धनी बनाने लगते हैं। तो तुम चूकते ही चले जाते हो।

बाहर का धन इतना खतरनाक है तो भीतर का धन तो और भी खरतनाक होगा। बाहर की अकड़ इतनी बुरी है तो भीतर की अकड़ तो और भी बुरी होगी।

परमात्मा तुम्हारे परम दैन्यभाव में उतरता है।

इस सूत्र को गलत मत समझ लेना। परमात्मा को तुम्हारे दैन्यभाव से प्रेम नहीं है; लेकिन तुम्हारे दैन्यभाव में ही उतरना हो सकता है। जब तुम भरे ही हुए हो तो उतरने का कोई सवाल नहीं है। जब तुम ही अकड़े हुए हो और तुम सोचते हो, तुम ही सम्हाले हुए हो सब, तुम ही कर रहे हो सब और तुमने उसे इनकार ही कर दिया – तुमने उसके लिए द्वार ही बंद कर लिये।

जोश विसाते-शौक में मर्ग है अस्ल जिंदगी
बाजिए इश्क जीत ले बाजिए उम्र हारकर।'

एक ऐसा भी पड़ाव आता है, एक ऐसा दौर है, जहां मौत जिंदगी है और जहां हार जीतना है, जहां हमारे पुराने विचार के ढांचे बिलकुल ही उलटे हो जाते हैं!

'बाजिए इश्क जीत ले' – अगर प्रेम को जीतना हो, 'बाजिए उम्र हारकर' – उम्र की, जीवन की, जिंदगी की बाजी को हार कर प्रेम की बाजी जीती जाती है।

'दिल है तो उसी का है, जिगर है, तो उसी का
अपने को राह-ए-इश्क में बरबाद जो कर दे।'

वह जो प्रेम की राह है, वहां जो अपने को बर्बाद कर दे, बस उसी के पास दिल है, उसी के पास जिगर है। उसी के पास आत्मा है, जो अपने को बर्बाद कर दे।

तो तुम कहीं संन्यस्त मत हो जाना गणित के हिसाब से। तुम कहीं लोभ के ही हिसाब में त्याग मत कर देना। कहीं तुम्हारा संन्यास, तुम्हारा धर्म तुम्हारी होशियारी ही न हो; अगर होशियारी हुई तो तुम चूक जाओगे। क्योंकि तब तुम पात्र बनने लगोगे। और जिसके मन में यह खयाल उठा कि मैं पात्र हूं, वह दीन न रहा, उसने आत्मा की दरिद्रता खो दी।

दीन बनो !

मिटो !

हारे हुए जियो !

यह जीतने का वहम बहुत दिन पाल लिया – छोड़ो यह बीमारी !

इधर तुम मिटे उधर परमात्मा तुम्हारी तरफ चला ! जैसे-जैसे तुम मिटे, वैसे-वैसे वह तुम्हारी तरफ आता है। जिस दिन तुम पूरे मिट जाते हो, अचानक पाते हो, वह सदा से वहां था; तुम्हारी मौजूदगी के कारण दिखायी नहीं पड़ता था।

तुम्हीं हो परदा तुम्हारी आंख पर।

आंख तो देखने में समर्थ है; तुम्हारे कारण देख नहीं पाती।

दृष्टि धुंधली है – तुम्हारे कारण; अंधी है – तुम्हारे कारण !

तुम जरा आंख से हट जाओ !

निर्मल होने दो आंख को !

खाली होने दो आंख को !

शून्य होने दो आंख को !

तब परमात्मा के सिवाय और कोई भी दिखायी नहीं पड़ता है।

'भक्ति का साधन ज्ञान है, ऐसा किन्हीं आचार्यों का मत है।'

गलत है मत। आचार्यों का होगा; जिन्होंने सोचा-विचारा है उनका होगा – जिन्होंने जाना है उनका नहीं है।

'भक्ति का साधन ज्ञान है... ।' नहीं, ज्ञान से कभी कोई भक्त हुआ ? जितना जानोगे उतने अभक्त होते जाओगे। ज्ञानी तो धीरे-धीरे परमात्मा को इनकार करने लगता है, हजार ढंगों से इनकार करता है।

ज्ञान साधन नहीं है भक्ति का, बाधा है।

'और किन्हीं दूसरे आचार्यों का मत है कि भक्ति और ज्ञान परस्पर एक-दूसरे के आश्रित हैं।'

वह भी गलत है।

भक्ति बात ही और है ! उसका जानने से कोई संबंध नहीं है, अनुभव से संबंध है।

'सनतकुमार और नारद के मत से भक्ति स्वयं फलरूपा है।'

लेकिन नारद कहते हैं, ये दोनों बातें ठीक नहीं हैं। न तो ज्ञान भक्ति का साधन है, और न भक्ति और ज्ञान एक-दूसरे पर आश्रित हैं। भक्ति स्वयं फलरूपा है, ज्ञान की कोई भी जरूरत नहीं है।

'राजगृह और भोजनादि में भी ऐसा ही देखा जाता है।'

'न उससे (जान लेने मात्र से) राजा की प्रसन्नता होगी, न क्षुधा मिटेगी।'

उदाहरण के लिए कहते हैं कि अगर कोई भोजन की चर्चा करे और भोजन के संबंध में बहुत जान ले, तो भी भूख तो न मिटेगी। पाकशास्त्र को जान लेने से कोई भूख तो नहीं मिटती। तुम पाकशास्त्र के ढेर लगा ले सकते हो। तुम पाकशास्त्रों का अध्ययन करते-करते उनमें लीन हो जा सकते हो। जितने प्रकार के भोजन दुनिया में बन सकते हैं, कभी बने हैं, या बनेंगे, उन सबकी जानकारी तुम्हें हो सकती

है। लेकिन उससे तुम्हारे पेट की भूख न मिटेगी। पेट की भूख तो भोजन से मिटती है।

भक्ति भोजन है, ज्ञान नहीं।

भक्ति स्वाद है — जीवंत!

भक्ति परमात्मा के संबंध में कुछ जानना नहीं है — परमात्मा का भोजन है। बड़ा ठीक उदाहरण लिया है।

जीसस जब विदा होने लगे अपने शिष्यों से, मरने की घड़ी करीब आयी, सूली लगने को हुई, तो उन्होंने रोटी के टुकड़े तोड़े और अपने शिष्यों को दिये, और कहा कि यह रोटी मैं हूं; तुम रोटी नहीं खा रहे हो, मेरा भोजन कर रहे हो!

भक्ति परमात्मा का भोजन है, परमात्मा का भोग है।

भूख तो भोग से मिटेगी। प्यास तो जल को पियोगे तो मिटेगी; जल के संबंध में कितना ही जान लो, उससे न मिटेगी।

परमात्मा के संबंध में जानना परमात्मा को जानना नहीं है। परमात्मा को तो वे ही जानते हैं जो उसका भोग कर लेते हैं, जो उसे पचा लेते हैं; जिनके खून और जिनकी हड्डी में परमात्मा घूमने लगता है; जिनके रोएं-रोएं और श्वास में समा जाता है; जिनके होने में परमात्मा की गंध हो जाती है; जिनका होना और परमात्मा का होना भिन्न नहीं रह जाता।

'उसके जान लेने मात्र से न तो प्रसन्नता होगी, न क्षुधा मिटेगी।'

इसलिए ज्ञान से तो भक्ति का कोई भी संबंध नहीं है। ज्ञान तो है परमात्मा के संबंध में जानना; और भक्ति है परमात्मा का सीधा साक्षात।

'अतएव संसार के बंधनों से मुक्त होने की इच्छा रखनेवालों को भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिए।'

जो वस्तुतः 'मुमुक्षु' है...। इस शब्द को थोड़ा समझ लें।

कुछ लोग हैं जो केवल कुतूहली हैं, जो परमात्मा के संबंध में ऐसे ही पूछते हैं जैसे छोटे बच्चे पूछते हैं कि दुनिया को किसने बनाया। तुम कह दो, परमात्मा ने; तुम कह दो, कुछ भी, अ ब स... वे फिक्र नहीं करते; वे अपने भूल गये, बात खत्म हुई, खेल में लग गये। उन्होंने वस्तुतः जाने के लिए पूछा ही न था — एक खुजलाहट थी; एक कुतूहल उठा था, 'किसने बनाया!' न भी जवाब देते तो भी कुछ परेशान होनेवाले न थे वे। उन्हें जवाब से कुछ लेना-देना भी न था। एक क्यूरिआसिटी थी, एक कुतूहल था।

सौ में से नब्बे लोग तो जो ईश्वर की बात करते हैं, कुतूहली होते हैं। वे कुछ जीवन दांव पर लगाना नहीं चाहते — ऐसे ही अगर मुफ्त में कुछ जानकारी मिल जाए तो ठीक; कुछ बदलना न पड़े; कुछ करना न पड़े; कुछ होना न पड़े — ऐसे ही कुछ जानकारी मिलती हो तो क्या हर्ज है!

कुतूहल से कोई धार्मिक नहीं होता।

कुतूहल के बाद एक दूसरा वर्ग है जिज्ञासु का, वह जानना चाहता है, वस्तुतः जानना चाहता है — लेकिन बस जानना चाहता है।

कुतूहली तो जानने में भी बहुत उत्सुक नहीं है, ऐसे ही पूछ लिया था; सतह की बात थी; एक

खयाल आ गया था। खयाल की कोई जड़ें नहीं हैं उसके भीतर।

जिज्ञासु के भीतर खयाल की जड़ें हैं – ऐसे ही खयाल नहीं आ गया; खयाल कई बार आता है। ऐसे आया-गया नहीं है; स्थायी निवास हो गया है! पूछता है, प्रयोजन है, जानना चाहता है – लेकिन बस जानना चाहता है! उससे आगे नहीं जाना चाहता।

उसके आगे मुमुक्षु है। मुमुक्षु का अर्थ है: जानना ही नहीं चाहता, जीना चाहता है। जानने से क्या होगा? अगर ईश्वर है तो अपने को बदलना चाहता है। अगर परलोक है तो अपने जीवन में क्रांति लाना चाहता है। अपने को दांव पर लगाने को तत्पर है।

नारद कहते हैं, 'अतएव संसार के बंधनों से मुक्त होने की इच्छा रखनेवालों को भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिए' – क्योंकि भक्ति भोजन है।

संस्कृत का सूत्र जब भी अनुवादित किया जाता है तो कुछ-न-कुछ चूक होती है। हिन्दी में अनुवाद है: 'अतएव संसार के बंधनों से मुक्त होने की इच्छा रखनेवालों को...।' संस्कृत का सूत्र केवल इतना ही कहता है: 'बंधनों से मुक्त होने की इच्छा रखनेवालों को...।' संसार की कोई बात नहीं है – बंधनों से मुक्त होने की है।

इसे थोड़ा समझें।

बंधन संसार है। स्मरण रखें: बंधन-मात्र संसार है। मोक्ष का भी बंधन हो तो संसार हो गया। पुण्य का भी बंधन हो तो संसार हो गया। कोई भी आकांक्षा हो तो बंधन पैदा होगा। अगर परमात्मा को भी पाने की आकांक्षा हो तो बंधन बनायेगी। क्योंकि जहां भी आकांक्षा होगी, वहीं स्वतंत्रता क्षीण हो जाएगी। जब कोई आकांक्षा नहीं रह जाती तो बंधन समाप्त होते हैं। और ऐसी घड़ी तो तभी आती है जब परमात्मा से मिलन हो जाए। इसके पहले ऐसी कोई घड़ी नहीं आती।

तो जिन्हें सच में ही बंधनों के पार जाना है; जो ऊब गये हैं जीवन की जंजीरों से; जो इस जीवन के कारागृह से पीड़ित हो गये हैं; जिनकी समझ में आ गया है कि, ये बड़ी दीवालें जीवन की घर की दीवालें नहीं हैं, ये कारागृह हैं, और जिसको हम जिंदगी कहते हैं वह सिवाय बंधनों के और कुछ भी नहीं – उनके लिए भक्ति ही एकमात्र उपाय है।

'ऐ ताइरे-लाहूति! उस रिज्क से मौत अच्छी
जिस रिज्क से आती हो परवाज़ में कोताही।'

उस जिंदगी से मौत अच्छी है... किस जिंदगी से? – जिस जिंदगी से उड़ान में बाधा पड़ती हो, आकाश छोटा होता हो, 'जिस रिज्क से आती हो परवाज़ में कोताही' – उड़ने में रुकावट आती हो।

जहां-जहां रुकावट है, वहां-वहां गौर से देखना: तुम अपनी ही किसी वासना को खड़ा हुआ पाओगे। जहां भी तुम्हारे पंख अड़ते हैं, अटकते हैं, गौर से देखना: वहीं-वहीं तुम पाओगे, कोई आकांक्षा, कोई अपेक्षा, कोई वासना, कोई मांग पंखों पर बंधन बन गयी है।

तुम्हारी जंजीरें तुम्हारी ही वासनाओं की जंजीरें हैं, किसी और ने ढाली नहीं, किसी और ने तुम्हें पहनाई नहीं हैं। और जिस दिन तुम्हें यह दिखायी पड़ जाए, उस दिन तुम्हारी जंजीरें ऐसे ही पिघल जाती हैं जैसे तेज धूप में बर्फ पिघल जाए, सुबह के सूरज में ओस की बूंदें उड़ जाए – ऐसे ही

तुम्हारी जंजीरें उड़ जाती हैं। परमात्मा को, और बिना कुछ मांगे, बिना कुछ और चाहे अपने को समर्पित कर देना। यह मत कहना कि मैं परमात्मा को भी चाहता हूं। उतनी चाह भी तुम्हारे परवाज़ में कोताही ले आयेगी। तुम इतना ही कहना कि मैं अपने को परमात्मा में छोड़ने को तत्पर हूं। मांग कुछ भी नहीं है। मिटाना है।

क्योंकि सब मांग अहंकार की मांग है, हर मांग अहंकार की मांग है। तुम यह भी मत कहना कि मैं परमात्मा को चाहता हूं। क्योंकि उतनी चाह में भी तुम अपने को परमात्मा से ऊपर रख रहे हो, तो परमात्मा विषय-वस्तु हो गया। कभी तुम धन चाहते थे अब परमात्मा चाहते हो – लेकिन चाहनेवाला खड़ा रह जायेगा। तुम इतना ही कहना कि अब बहुत चाहत करके देख ली – अब अपने को छोड़ना है, मिटाना है। इस मिटाने में ही भक्त एक अपरिसीम आनंद से भर जाता है, क्योंकि उसके परवाज में फिर कोई कोताही नहीं रह जाती, उसका पूरा आकाश उपलब्ध हो जाता है; पंख परिपूर्ण स्वतंत्रता से उड़ने लगते हैं! और इस मिटाने में ही एक ऐसी बेहोशी उसे घेर लेती है, जिसे बेहोशी कहना भी ठीक नहीं – जिसमें बड़ा गहरा होश है और एक ऐसा होश उस पर आ जाता है, जिसे होश कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि उसकी आंखों में बड़ी गहरी बेहोशी है, जैसे वह शराब पिये हो, जैसे अभी-अभी मधुशाला से लौटा हो!

और जब तक तुम्हारे लिए मंदिर मधुशाला नहीं बन जाता और जब तक प्रार्थना तुम्हारे लिए इतना गहन आत्मविस्मरण नहीं बन जाती कि तुम उसमें डूब ही जाओ, तब तक तुम जो भी कर रहे हो, वह कुछ और होगा, भक्ति नहीं।

'मैं मयकदे की राह से हो कर निकल गया,
वर्ना सफर हयात का काफी तबील था।'

जिंदगी का रास्ता बहुत कठिन है! अगर मयकदे की राह से होकर निकल गये, तब बात और। अगर जीवन की मधुशाला से गुजर गये तो बात और! वही परमात्मा है। अगर उस मस्ती को थोड़ा चख दिया, अगर थोड़ा स्वाद पा लिया परमात्मा का, डगमगाने लगे पैर उसके आंगन में, नाच छा गया – तो ही; अन्यथा जिंदगी का रास्ता बहुत कठिन है, कांटे-ही-कांटे हैं। फूल तो तभी खिलते हैं जब तुम मिटना शुरू होते हो; अन्यथा दुर्गंध ही दुर्गंध है। सुगंध तो तभी आती है जब तुम कपूर की तरह शून्य में खो जाते हो।

'मस्जिद में बुलाते हैं हमें जाहिदे-नाफह्म
होता अगर कुछ होश तो मयखाने न जाते।'

– विरक्त हमें मंदिर में बुला रहे हैं, मस्जिद में बुला रहे हैं; अगर कुछ थोड़ा होश होता तो मयखाने ही चले जाते।

भक्त को न कोई मंदिर बचता, न कोई मस्जिद बचती। वह जहां है वहीं उसकी मधुशाला है। वह जहां है, वहीं उसका परमात्मा है।

तुम्हारे मिट जाने में, तुम्हारी लीनता में, तुम्हारी तल्लीनता में – परमात्मा का आविर्भाव है। इसलिए भक्त में तुम एक बेहोशी भी पाओगे और एक होश भी।

ज्ञानी में तुम्हें होश मिलेगा, बेहोशी न मिलेगी।

शराबी में, पापी में, तुम्हें बेहोशी मिलेगी, होश न मिलेगा।

योगी में तुम्हें होश मिलेगा, भोगी में तुम्हें बेहोशी मिलेगी – भक्त में तुम्हें दोनों मिलेंगे। भोगी भी उससे ईर्ष्या करेगा और योगी भी उससे ईर्ष्या करेगा। क्योंकि योगी देखेगा, ऐसी अपरिसीम होश की सम्भावना उसके भीतर नहीं है। और भोगी देखेगा, इतना भोगकर भी ऐसी मस्ती उसके पास नहीं आयी।

सब भोग तिक्त स्वाद छोड़ जाता है।

ठीक कहते हैं नारद कि ज्ञान, कर्म, योग, भक्ति की ऊंचाई को नहीं पहुंचते।

भक्ति में, परमात्मा उसकी समग्रता में स्वीकार है, उसका संसार भी समाहित है उस स्वीकार में। तो भक्त भागता नहीं संसार से; भोग से भी नहीं भागता – वह उसे भी परमात्मा का ही अनुग्रह मानकर स्वीकार कर लेता है।

त्याग भक्त की भाषा नहीं है; जो 'उसने' दिया है, उसे स्वीकार कर लेता है – अहोभाव से, धन्यभाग से!

तो भक्त के जीवन में एक अनूठा संवाद है: उसकी बेहाशी में होश है, उसके होश में बेहोशी है; उसके ध्यान में तल्लीनता है, उसकी तल्लीनता में ध्यान है।

भक्त आखिरी समन्वय है, आखिरी सिंथीसिस!

'मस्जिद में बुलाते हैं हमें जाहिदे-नाफह्म
होता अगर कुछ होश तो मयखाने न जाते।'

... डूबता जाता है – परमात्मा के रस में! खोता जाता है अपनी बूंद को उसके रस के सागर में! और जब बूंद सागर हो जाती है, तो उसकी मस्ती का क्या कहना! जब बूंद आकाश को छूती है तो उसकी मस्ती का क्या कहना!

भक्त में तुम रस पाओगे; योगी को सूखा पाओगे।

भोगी में रस मिलता है, लेकिन दुर्गंधयुक्त!

भक्त में तुम रस पाओगे – और सुगंधयुक्त!

भोगी संसार को परमात्मा समझ लेता है, और परमात्मा को त्याग देता है। योगी परमात्मा को संसार के विपरीत समझता है, इसलिए संसार को त्याग देता है। भक्त परमात्मा और संसार को एक ही मानता है; स्रष्टा और सृष्टि एक है – इसलिए न कुछ त्यागता, न कहीं भागता। इस परम बोध में कि स्रष्टा अपनी सृष्टि के रोएं-रोएं में समाया है, भक्त में योग और भोग का मिलन हो जाता है। वह परम संगीत है। उससे ऊपर कोई संगीत नहीं।

आज इतना ही।

अनंत के आंगन में नृत्य है भक्ति

आठवां प्रवचन

प्रश्नसार

- प्रेम भक्ति का जनक है या भक्ति प्रेम की जननी? प्रेम कली है और भक्ति फूल? अथवा प्रेम आदि है और भक्ति अंत? या दोनों भिन्न हैं?
- इस कथन में क्या सच्चाई है कि भक्ति है द्वैत और ज्ञान है अद्वैत?
- संन्यास के लिए गैरिक वस्त्र क्यों जरूरी हैं?
- सुरक्षा के लिए मुझे जो नाटक करना पड़ता है, उसे करूं या छोड़ दूं?
- अगर ज्ञान भक्ति के लिए बाधा है, फिर महातार्किक और महापंडित चैतन्य एकदम से भक्त कैसे हो गए?
- सैकड़ों बार भ्रम के टूटने पर भी भरोसा नहीं आता। क्या करूं?
- भक्त कण-कण में भगवान को देखता है। लेकिन जिसे सिर्फ आपका पता है, कण में बसनेवाले भगवान का नहीं, उसके लिए क्या साधना होगी?

प *हला प्रश्न : प्रेम भक्ति का जनक है या भक्ति प्रेम की ? प्रेम कली है और भक्ति फूल ? अथवा प्रेम आदि है और भक्ति अंत ? या दोनों भिन्न हैं ?*

● कली और फूल एक भी हैं और भिन्न भी। आदि और अंत जुड़े भी हैं और अलग भी हैं। कली कली भी रह जा सकती है; फूल बनना संभव है, अनिवार्य नहीं।

बीज बीज भी रह जा सकता है; वृक्ष हो सकता था, जरूरी नहीं है कि हो। बीज अलग भी है – उसका अपना भी अस्तित्व है – और वृक्ष की संभावना भी है। लेकिन वृक्ष तभी हो सकेगा जब बीज हो – पहली बात। और वृक्ष तभी हो सकेगा जब बीज मिटे – दूसरी बात। पहले हो, और फिर मिटे भी, तो ही वृक्ष हो सकेगा।

प्रेम न हो तो भक्ति की कोई संभावना नहीं। और अगर प्रेम ही रह जाए, आगे न जाए, तो भी भक्ति की कोई संभावना नहीं। प्रेम प्रेम पर ठहर जाए तो भक्ति कभी पैदा न होगी। और अगर प्रेम हो ही न तो भक्ति के पैदा होने का सवाल ही नहीं है।

इसलिए प्रश्न नाज़ुक है। और बड़ी भूलें मनुष्य के इतिहास में हुई हैं। किन्हीं ने सोचा कि प्रेम ही भक्ति है, तो भक्ति के नाम से प्रेम के ही गीत गाते रहे, और चूक हो गयी। और किन्हीं ने समझा कि प्रेम भक्ति नहीं है, प्रेम के पार जाना है, तो प्रेम के दुश्मन हो गये; प्रेम से पलायन किया, भागे, तो भी चूक गये।

प्रेम से भागना नहीं है; प्रेम के पार जाना है। प्रेम को सीढ़ी बनाना है। प्रेम पर चढ़ना है, प्रेम का अतिक्रमण करना है। प्रेम का उपयोग करना है। प्रेम से दुश्मनी कर ली, तब तो फिर कभी भक्ति पैदा न होगी। यह तो बीज से दुश्मनी हो गयी। और जो बीज से डर गया, बीज का शत्रु हो गया, वह आशा रखे वृक्ष की, तो नासमझी है। कल्पना कर सकता है वृक्ष की, सपने देख सकता है – लेकिन वृक्ष कभी वास्तविक न हो पाएगा।

प्रेम के बीज को सम्हालना है – मगर जरूरत से ज्यादा मत सम्हालना; ऐसा न हो कि बीज में ही बंद रह जाओ; ऐसा न हो कि बीज ही सम्पदा हो जाए। बीज तो केवल सम्भावना है – उपयोग करना! आगे जाना! सीढ़ी बनाना! तो बीज खिलेगा, कली खिलेगी, फूल बनेगा।

कामवासना से जन्म होता है प्रेम का, लेकिन कामवासना पर ही कोई रुक जाए तो प्रेम का कभी जन्म न होगा। कीचड़ से जन्म होता है कमल का। लेकिन कीचड़ कीचड़ भी रह सकती है; कोई मजबूरी नहीं है कि कमल हो।

कामवासना से जन्म होता है प्रेम का। कामवासना है कीचड़। प्रेम का कमल खिलता है; जड़ें तो होती हैं कीचड़ में, लेकिन कीचड़ के पार उठ गया होता है। कीचड़ से निकलता है और कीचड़ से कितना भिन्न होता है! कीचड़ से आता है लेकिन कीचड़ जैसा तो कमल में कुछ भी नहीं होता। अगर हमें पता ही न हो कि कमल कीचड़ से आया है, तो हम कभी कमल का संबंध कीचड़ से जोड़ ही न सकेंगे।

कहां कीचड़, कहां कमल! दो अलग लोक! दो अलग संसार! कमल को देखकर तुम्हें कीचड़ की याद भी आ सकती है? कीचड़ को देखकर कमल की याद आ सकती है? कोई संबंध नहीं जुड़ता। लेकिन कीचड़ से ही कमल आता है। कामवासना से ही प्रेम का आविर्भाव होता है।

फिर कमल से सुगंध उठती है; वैसे ही प्रेम से भक्ति की गंध उठती है। कमल तो दृश्य है, सुगंध अदृश्य है। प्रेम दृश्य है, भक्ति अदृश्य है। भक्ति तो गंधमात्र है। तुम भक्ति को मुट्ठी में बांध न पाओगे। प्रेम को भी बांधोगे तो प्रेम ही मर जाएगा, तो भक्ति की तो बात ही छोड़ दो। कमल को भी मुट्ठी में बांधोगे तो कमल मुरझा जाएगा।

कमल को भोगना। कमल से आनंदित होना। कमल का उत्सव मनाना। कमल के आसपास नाचना। कमल के मालिक मत बनना, मुट्ठी में मत बांधना; नहीं तो प्रेम भी कुम्हला जाएगा।

अधिक लोगों के प्रेम मुट्ठी में बांधकर ही तो कुम्हला जाते हैं, मर जाते हैं। ज्हां तुमने प्रेमी पर कब्जा किया, वहीं प्रेम की मृत्यु शुरू हो जाती है। जहां मालकियत आयी वहां प्रेम नहीं ठहर पाता। प्रेम कोई वस्तु नहीं है कि तुम मालिक हो सको। यह कोई सम्पदा नहीं है, जिसे तुम तिजोड़ी में रख सको। यह तो कमल का फूल है। इसे खुले आकाश में खिलने दो। डरो मत! ऐसा भय मत पालो कि कोई और इस फूल के आनंद को उपलब्ध न हो जाए, कोई और इस फूल के सौंदर्य को न देख ले, किसी और की आंखों में फूल का सौंदर्य न भर जाए। ढांको मत इस फूल को। क्योंकि ढांक लोगे तुम, दूसरों की नजरों से तो बच जाएगा, लेकिन तुम भी वंचित हो जाओगे। क्योंकि ढका हुआ फूल मर जाता है। खुला आकाश चाहिए, सूरज की किरणें चाहिए, मुक्त हवाएं चाहिए, तो ही फूल जीवित रहेगा।

प्रेम मर गया है। पृथ्वी पर प्रेम की लाशें हैं, कुम्हलाये हुए फूल हैं, मरे हुए फूल हैं। प्रेम को ही मुट्ठी में बांधना असम्भव है। जिन्होंने बांधा, उन्होंने ही प्रेम की हत्या कर दी।

कभी भी प्रेम पर मालकियत मत जताना। प्रेम को ही तुम्हारा मालिक होने दो; तुम प्रेम के मालिक मत बनना।

प्रेम नाजुक है, मालकियत को न सह पाएगा। तो फिर भक्ति की तो बात बहुत दूर। भक्ति तो सुगंध है, अदृश्य है; उस पर कोई मुट्ठी बांधी नहीं जा सकती। मुक्त उसका स्वभाव है; दूर आकाशों को छुएगी; दूर हवाओं पर यात्रा करेगी।

जब प्रेम को पंख लग जाते हैं — तब भक्ति। जब प्रेम इतना सूक्ष्म हो जाता है कि दिखायी भी नहीं पड़ता, सिर्फ एहसास होता है — तब भक्ति।

प्रेम का नशा थोड़ा स्थूल है, भक्ति का नशा बड़ा सूक्ष्म है। प्रेम को तो तुम थोड़ा सुन पाओगे, उसकी पगध्वनि सुनायी पड़ती है। भक्ति की पगध्वनि भी सुनायी नहीं पड़ती। उसे तो तुम पहचान तभी पाओगे जब तुमने भी उस अदृश्य का थोड़ा अनुभव किया हो।

कामवासना से ऊपर उठो। ध्यान रखना, मैं कहता हूं, 'ऊपर उठो'; दूर जाने की नहीं कह रहा हूं, पार जाने की कह रहा हूं। ऊपर उठने का अर्थ है : तुम्हारी बुनियाद में तो कामवासना बनी ही रहेगी, तुम ऊपर उठे, भवन उठा, बुनियाद से ऊपर चला, बुनियाद तो बनी ही रहेगी।

कामवासना से ऊपर उठो, तो प्रेम। प्रेम से भी ऊपर उठो, तो भक्ति।

कामवासना में क्षण-भर को दो शरीर करीब आते हैं — क्षण-भर को ही आ सकते हैं, क्योंकि शरीर बड़े स्थूल हैं। उनकी सीमाएं बड़ी स्पष्ट हैं। करीब ही आ सकते हैं, एक तो नहीं हो सकते।

प्रेम में दो मन करीब आते हैं, क्षण-भर को एक भी हो जाते हैं — क्योंकि मन की सीमाएं तरल हैं, ठोस नहीं। जब दो मन मिलते हैं तो दो मन नहीं रह जाते, क्षण-भर को एक ही मन रह जाता है।

भक्ति में दो आत्माएं करीब आती हैं, दो चैतन्य करीब आते हैं — व्यक्ति का और समष्टि का, बूंद का और सागर का, कण का और विराट का। और सदा के लिए एक हो जाते हैं।

कामवासना में शरीर करीब आते हैं और दूर फिंक जाते हैं। इसलिए कामवासना में सदा ही विषाद है। मिलने का सुख तो बहुत थोड़ा है, दूर हट जाने की पीड़ा बहुत गहन है। इसलिए ऐसा व्यक्ति खोजना कठिन है जो कामवासना के बाद पछताया न हो। पछतावा कामवासना का नहीं है। कामवासना पास ले आती है, लेकिन तत्क्षण दूर फेंक जाती है। जितने हम दूर पहले थे, उससे भी ज्यादा दूर हो जाते हैं। यह क्षण-भर पास आना दूरी को और प्रगाढ़ कर देता है, दूरी अनंत हो जाती है।

इसलिए हर कामवासना के पीछे पछतावा है, एक पश्चात्ताप है; जैसे कुछ खोया। चाहे तुम्हें साफ न हो कि क्या खोया, चाहे तुम्हें स्पष्ट न हो कि क्या खोया — लेकिन कुछ खोया, कुछ गंवाया, पाया नहीं।

प्रेम में खोना और पाना बराबर है। कामवासना में खोना ज्यादा है, पाना नाकुछ है। प्रेम में एक संतुलन है; खोना-पाना बराबर है; तराजू के दोनों पलड़े बराबर हैं। तो तुम प्रेमी में एक तरह की तृप्ति पाओगे जो कामी में न मिलेगी। कामी हमेशा अतृप्त मिलेगा; विषाद से भरा मिलेगा; पश्चात्ताप से भरा मिलेगा : 'कुछ खो रहा है, कुछ खो रहा है! जीवन में कहीं कोई चूक हो रही है, भूल हो रही है।'

पश्चात्ताप कथा है कामवासना की।

प्रेमी में तुम एक तृप्ति पाओगे, एक संतुलन पाओगे, एक शांति पाओगे। खोना-पाना बराबर है; लेकिन इतना काफी नहीं है। खोना-पाना बराबर हो तो तृप्ति तो हो सकती है, महातृप्ति नहीं हो सकती। लगेगा — सब ठीक है। लेकिन इससे कोई उत्सव का क्षण करीब नहीं आता। इससे तुम अनंत के आंगन में नाच न सकोगे। इससे कुछ अहोभाव पैदा नहीं होता। जितना दिया उतना लिया, सब बराबर हुआ; हानि कुछ मालूम नहीं होती; लेकिन लाभ भी कुछ मालूम नहीं होता।

तो प्रेमी को तुम उलझा हुआ पाओगे। कामी को पछताता हुआ पाओगे। प्रेमी को उलझा हुआ

पाओगे कि यह क्या हुआ, पाया-खोया सब बराबर हुआ ! हाथ तो कुछ न लगा। हिसाब तो पूरा हो गया, लेकिन जीवन यूं ही चला गया।

प्रेमी को तुम उलझा हुआ पाओगे। एक प्रश्न-चिह्न पाओगे प्रेमी की अन्तर्दशा में कि यह सब क्यों, प्रयोजन क्या ?

फिर भक्त की दुनिया है — जहां पाना ही पाना है और खोना नहीं है। कामी की दुनिया है — जहां खोना ही खोना है, पाना नहीं है। और भक्त की दुनिया है — ठीक विपरीत, दूसरा छोर, जहां पाना ही पाना है, खोना नहीं है। तब अहोभाव पैदा होता है, तब मीरा पद घुंघरू बांध नाचती है। तब नृत्य आता है। तब कोई उलझन नहीं है, तब कोई प्रश्न नहीं है। तब सब प्रश्न हल हुए। तब जीवन पहली बार अर्थवत्ता से भरा ! और तब पहली बार धन्यवाद में सिर झुकता है।

पूछा है : प्रेम भक्ति का जनक है या भक्ति प्रेम की जननी ?

प्रेम ही भक्ति का जनक है, भक्ति नहीं; क्योंकि भक्ति तो आखिरी शिखर है। भक्ति तो भगवान की जननी है, प्रेम की नहीं। जिसने भक्ति को पा लिया, उसने भगवान को जन्म दिया।

इसे भी थोड़ा समझ लेना। क्योंकि साधारणतः लोग सोचते हैं, भगवान कहीं बैठा है; खोजने की बात है। पता लगा लिया, पूछताछ कर ली, थोड़ी खोजबीन की, मिल जाएगा।

भगवान कहीं बैठा नहीं है — तुम्हें जन्म देना है। भगवान कोई वस्तु नहीं है — तुम्हारे भीतर का आविर्भाव है। और प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही भगवान पर पहुंचना है। दूसरे का भगवान तुम्हारे काम न आएगा। भगवान के जगत में गोद लेने से काम न चलेगा।

इस संसार में तुम धोखा दे लेते हो। किसी को बच्चे पैदा नहीं होते, गोद ले लेते हैं। जो बहुत होशियार हैं...।

मुल्ला नसरुद्दीन को बच्चे पैदा नहीं हुए तो उसने विज्ञापन निकाला अखबारों में, मुझे किसी को गोद लेना है, लेकिन उम्र सत्तर-अस्सी साल के करीब होनी चाहिए। पूरा गांव चकित हुआ कि पहले बहुत गोद लेनेवाले देखे... !

एक बूढ़ा आया, लकड़ी टेकता हुआ, मुश्किल से चलता हुआ। उसने कहा कि मेरी अस्सी साल की उम्र हो गयी है। मैं तैयार हूं, लेकिन मैं समझा नहीं। लोग बच्चों को गोद लेते हैं...।

नसरुद्दीन ने कहा कि बच्चों को गोद लेने से क्या फायदा। हम तो ऐसे आदमी को लेंगे जिसके नाती-पोते भी हों, ताकि तीन-चार पीढ़ियों में हमारे परिवार में किसी को फिर गोद न लेना पड़े।

तो जो बहुत होशियार हैं वे लम्बा इन्तजाम कर लेते हैं। लेकिन गोद लिया हुआ बच्चा, और तुमने जिसे जन्म दिया, उसमें जमीन-आसमान का भेद है। मां ने जिसे गर्भ में रखा, नौ महीने जिसका बोझ झेला, जिसकी प्रतीक्षा की, जिसके आसपास सपने संजोये, हजार-हजार आशाएं बांधी, अपने खून से जिसे सींचा, अपने हृदय की धड़कन दी, अपने प्राणों को बांटा जिससे — उस बच्चे में, और फिर तुमने किसी को गोद ले लिया, कानूनी बच्चे में, बड़ा फर्क है।

तो इस संसार में तो तुम उधार भी ले लेते हो तो भी चल जाता है। यहां तो तुम अपनें को धोखा दे लेते हो। बांझ भी उधार लेकर बच्चों को, जन्मदाता बन जाते हैं। लेकिन यह धोखा परमात्मा

के जगत में न चलेगा। वहां तो तुम्हें मां बनना पड़ेगा।

भक्त यानी मां। भक्ति यानी तुम गर्भस्थ हुए : तुम्हारा ही चैतन्य, तुम्हारी ही सारी जीवन-ऊर्जा को अपने में समाकर एक नयी धुन और एक नये गीत के साथ पैदा होता है; तुम्हारा ही चैतन्य एक नये आयाम में प्रवेश करता है — मृत्यु से अमृत के आयाम में, सीमा से असीम में। बूंद वहां सागर होती है।

तो भगवान कोई बैठा हुआ, कहीं कोई व्यक्ति नहीं है, जिसे तुम गये और परदा उठा लिया और खोज लिया। इन बचकानी बातों में मत पड़ना। न ही कोई भगवान वस्तु है कि कोई तुम्हें दे देगा। तुम्हें जन्म देना होगा। तुम्हें अहर्निश साधना होगा। तुम्हें जन्मों-जन्मों पुकारना होगा। तुम्हें उसके बोझ को ढोना होगा। प्रसव की पीड़ा झेलनी होगी। कभी तुम हंसोगे आंनद से, कभी रोओगे भी। आंसुओं में और मुस्कराहटों में उसे सींचना होगा, संवारना होगा। और जब वह पैदा होगा तो वह तभी पैदा होगा, उसी क्षण पैदा होगा, जहां तुम्हारी मौत घट जाएगी।

बौद्धों में एक बड़ी अनूठी कथा है। कथा ही है, लेकिन बड़ी प्रतीकात्मक है। बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि जब किसी बुद्ध का जन्म होता है तो जन्म देने के साथ ही मां मर जाती है। बुद्ध की मां भी मर गयी, जन्म देने के साथ ही। सदियों से लोग पूछते रहे, 'ऐसा क्यों? कृष्ण की मां भी तो नहीं मरी। जीसस की मां नहीं मरी। महावीर की मां नहीं मरी। यह बौद्ध शास्त्रों में एक नयी धारणा क्यों पाल रखी है कि जब बुद्ध का जन्म होता है तो उनकी मां मर जाती है?'

यह धारणा बड़ी महत्वपूर्ण है। बुद्ध की मां मरी हो, न मरी हो, लेकिन जब भी तुम्हारे भीतर बुद्धत्व का जन्म होता है, तुम मर जाते हो। इतना ही सार है उस कथा में। बीज तो मरेगा ही, तभी वृक्ष हो पाएगा। साधारण जीवन में जब मां जन्म देती है तो मां मर नहीं जाती; पीड़ा झेलती है, बच जाती है। मरने की घड़ी आ जाती है। चिल्लाती है, चीखती है बच्चे को जन्म देते वक्त। ऐसा लगता है, मरी, मरी। मरती नहीं, बच जाती है। लेकिन बीज नहीं बचता; टूट जाता है, तभी तो वृक्ष होता है।

जब तुम्हारे भीतर परमात्मा का जन्म होगा तो तुम न बचोगे, तुम तो मिट जाओगे। तुम्हारी मृत्यु ही उसका जन्म है। तुम्हारा मिट जाना ही उसका होना है।

इस मृत्यु से बचने के लिए लोगों ने परमात्मा की न मालूम कितनी धारणाएं कर ली हैं, जैसे वह कहीं बैठा है, और तुम्हें राह खोजनी है। वह कहीं बैठा नहीं है, उसे जन्म देना है। तुम्हें गर्भ खोजना है, राह नहीं।

काम से प्रेम पैदा होता है; प्रेम से भक्ति पैदा होती है; भक्ति से भगवान पैदा होता है। भक्ति भगवान की जननी है।

तो जब तक तुम्हारे भीतर भक्ति का आविर्भाव नहीं हुआ है, तुम भगवान को न देख पाओगे, न समझ पाओगे, न पहचान पाओगे। तुम्हारे पास आंख ही नहीं। तुम अंधे हो। और प्रकाश के संबंध में बातें सुन-सुनकर आंख न खुल जाएगी। आंख की चिकित्सा करनी होगी। अंधेपन को मिटा डालना होगा।

आंख खुलेगी तो तुम प्रकाश देखोगे; भक्ति खुलेगी तो तुम भगवान देखोगे। जब भक्ति की आंख खुलती है तो सब तरफ परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

दूसरा प्रश्न : इस कथन में क्या सच्चाई है कि भक्ति है द्वैत और ज्ञान है अद्वैत ?

● जरा भी सच्चाई नहीं है। और यह कथन ज्ञानियों का है। ज्ञानी ऐसा कहते रहे हैं कि भक्ति द्वैत है और ज्ञान अद्वैत। भक्तों से पूछो, भक्ति के संबंध में जानना हो तो। तो ज्ञानियों से पूछना गलत जगह पूछना है।

भक्त कहते हैं, भक्ति भी अद्वैत है, ज्ञान भी अद्वैत है। लेकिन भक्ति रसपूर्ण अद्वैत है और ज्ञान सूखा अद्वैत है।

भक्ति है जैसे हरा-भरा उपवन। और ज्ञान है जैसे रेगिस्तान। रेगिस्तान में भी परमात्मा है — कोई इनकार नहीं करता। फिर कुछ हैं जिनको रेगिस्तान भी सुन्दर लगता है; उनको भी कोई इनकार नहीं करता। अपनी-अपनी मौज !

लेकिन हरियाली की बात ही कुछ और है ! फूल खिलते हैं ! वृक्षों की छाया है ! झरनों का नाद है ! पक्षियों के गीत हैं ! हरियाली की कुछ बात ही और है !

मरुस्थल भी उसी का है ! कांटे भी उसी के हैं ! फूल भी उसी के हैं !

भक्ति रसपूर्ण अद्वैत है। दो तो मिट जाते हैं, लेकिन जो एक बचता है, वह रूखा-सूखा नहीं है। जो एक बचता है, वह प्रेम से भरपूर है, लबालब है। जो एक बचता है वह ज्ञानी की तरह, गणित की तरह रूखा-सूखा नहीं। काव्य की तरह है, मधुरता से भरा है।

ज्ञानी का परमात्मा तर्क की निष्पत्ति है। भक्त का परमात्मा प्रेम का आविर्भाव है। तर्क भी उसी का है, याद रखना। तर्क का कोई विरोध नहीं है, तर्क भी उसी का है। और किन्हीं को तर्क में ही स्वाद आता हो, तो वह मार्ग भी पहुंचा देता है।

लेकिन प्रेम की बात ही और है।

भक्तों ने अकसर इस संबंध में बहुत कुछ कहा नहीं, क्योंकि भक्त कहते कम, जीते ज्यादा हैं। ज्ञानियों ने वक्तव्य दिये हैं तो ज्ञानियों के वक्तव्य प्रचलित हो गये हैं। और भक्त सुन लेते हैं और मुस्कराते हैं। वे इतनी भी झंझट नहीं लेते — इनका खंडन करें, क्योंकि खंडन भी ज्ञानियों का ही धंधा है। खंडन-मण्डन दोनों ही उन्हीं के हैं। भक्त उस उलझाव में पड़ता नहीं है। बजाय तर्क के जाल में पड़ने के, भक्त नाच लेता है। जब ऊर्जा का आविर्भाव होता है तो गीत गा लेता है, गुनगुना लेता है। तुम उसकी आंखों में उसके परमात्मा को पाओगे, उसके शब्दों में नहीं। शब्द के संबंध में भक्त थोड़ा गूंगा है। उसकी मधुशाला उसकी आंखों में है।

ज्ञानी की आंख तुम बंद पाओगे। शंकराचार्य बैठे होंगे या बुद्ध बैठे होंगे, तो आंख बंद होगी।

भक्त की आंख तुम परमात्मा की शराब से भरी हुई पाओगे। खुली हो या बंद, भक्त की आंख तुम्हें नशे में डुबा देगी।

भक्त एक मस्ती में जीता है। उसने बेहोशी में ही होश जाना है। उसने तल्लीनता में ही अपने होने को छुआ है। उसने मिटकर ही अपने अस्तित्व की पहचान की है।

लेकिन फर्क तुम देख सकते हो। भक्त भी अद्वैत को ही उपलब्ध होता है; लेकिन उसका अद्वैत ज्ञानी के अद्वैत से बड़ा भिन्न है। अद्वैत को उपलब्ध होकर भी भक्त द्वैत की ही भाषा का उपयोग करता है।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। इसलिए ज्ञानी का वक्तव्य ठीक भी मालूम पड़ता है कि भक्ति है द्वैत और ज्ञान है अद्वैत। क्योंकि भक्त यह कहता है, भाषा तो जहां भी होगी, द्वैत की ही होगी। भाषा का अर्थ ही दो है। बोलने का अर्थ ही दूसरे को स्वीकार कर लेना है। बोले कि दूसरा आया। बोलने का मतलब ही संवाद है, दो की मौजूदगी है।

अगर तुमने यह भी कहा कि अद्वैत है, तो किससे कह रहे हो? तो कहनेवाला और सुननेवाला तो दो हो गये। अगर तुमने यह भी सिद्ध करने की कोशिश की कि उसके सिवाय कुछ भी नहीं है, तो यह सिद्ध करने की कोशिश क्यों कर रहे हो? अगर उसके सिवाय कुछ भी नहीं है तो तुम बिलकुल पागल हो। जब है ही नहीं तो कोशिश क्या, प्रयास क्या है?

जो लोग सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि संसार माया है वे कम-से-कम इतना तो संसार को मानते ही हैं कि है, और माया सिद्ध करना है। अगर संसार माया ही है तो बात खत्म हो गयी, सिद्ध क्या करना है! सुबह उठकर तुम यह तो सिद्ध नहीं करते कि जो सपने देखे रात वे झूठ थे। इतना जानते ही कि सपने थे, बात खत्म हो गयी, कौन सिद्ध करता है! कौन झंझट में पड़ता है!

अगर सुबह उठकर कोई आदमी सिद्ध करने लगे कि रात मैंने जो सपना देखा वह झूठ था, तो एक बात पक्की है कि इस आदमी को अभी भी सपने पर थोड़ा भरोसा है, अन्यथा किससे सिद्ध कर रहा है? और लोग हंसेंगे, जग-हंसाई होगी कि यह पागल देखो, कहता है सपना झूठ है! यह कहना भी व्यर्थ है। सपना इतना झूठ है कि उसे झूठ कहना भी उसे सच्चाई देना है। इसलिए तो कोई सुबह उठकर विवाद में नहीं पड़ता। कोई कहता ही नहीं किसी को कि सपना देखा, वह झूठ था।

भक्त कहता नहीं कि संसार माया है। भक्त जानता है। ज्ञानी कहता है। भक्त कहता नहीं कि परमात्मा एक है। किससे कहना है? किसको सुनाना है? एक ही है, इसलिए कहने की बात, सुनाने की बात व्यर्थ है। भक्त जीता है उस ऐक्य को।

लेकिन भक्त की भाषा द्वैत की है, क्योंकि वह कहता है, सारी भाषा द्वैत की है। फिर प्रेम की भाषा तो द्वैत की होगी ही। तो भक्त भगवान से बोलता है, बातें करता है। ज्ञानी को यही अखरता है।

मीरा खड़ी है कृष्ण के मंदिर में, बातें कर रही है, शिकायतें भी करती हैं, रूठ भी जाती है। ज्ञानी को ये बातें नहीं जंचतीं। ज्ञानी को लगता है, यह पागलपन हुआ। एक ही है। मीरा भी जानती है। लेकिन वह जो एक है, वह कोई मुर्दा इकाई नहीं है। उस एक में बड़ा जीवन्त विरोधाभास है। वह जो एक है, वह ऐसा एक नहीं है कि जिसमें दो का उपाय न हो।

यह थोड़ा समझना पड़े।

वह ऐसा एक है जिसमें दो एक हो गये हैं। वह प्रेम की एकता है, गणित की एकता नहीं है।

अगर तुमने कभी किसी को प्रेम किया तो तुम एक अनूठे अनुभव में आते हो, वह अनूठा अनुभव

तर्कातीत है।

जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो एक अनूठी प्रतीति होती शुरू होती है कि तुम दो भी हो और एक भी। स्वभावतः दो हो, नहीं तो कौन किसको प्रेम करेगा ? कौन किसके लिए आंसू बहायेगा ? कौन किसके लिए नाचेगा ? निश्चित ही दो हो। लेकिन फिर भी दो नहीं हो। कहीं द्विपन खो गया है। कहीं किनारे टूट गये हैं और धाराएं एक-दूसरे में प्रवेश कर गई हैं। कहीं किसी भीतर के जगत में एक भी हो। ऊपर-ऊपर दो हो, भीतर-भीतर एक हो। शायद हर घड़ी ऐसा न भी हो पाता हो; कभी-कभी ऐसी घड़ी आती हो, जब एक हो जाते हो, बाकी घड़ी दो रहते हो – लेकिन आती है ऐसी घड़ी जब विरोधाभास घटता है, दो के बीच एकता सधती है।

भक्त का अद्वैत जीवंत है। जीवंत का अर्थ है : एकरस नहीं है। एक तो तुम वीणा बजाओ और एक ही स्वर को गुंजाते रहो – बेरस हो जाएगा। बहुत-से स्वर उठाओ, लेकिन सारे स्वरों के बीच एक संवाद हो, एक संगीत हो – संगीत एक हो, स्वर बहुत हों; लयबद्धता एक हो, छंद एक हो – तब जीवंत, तब ऊब न आएगी।

भक्त परमात्मा को जीवंत – गणित की नहीं, संगीत की – एक लयबद्धता के रूप में देखता है। प्रेमी-प्रेयसी या प्रेयसी और प्रेमी दो भी बने रहते हैं और कहीं एक भी हो गये होते हैं। मीरा कृष्ण के सामने नाचती है, बोलती है, बात करती है। दो तो हैं और फिर भी एक हैं।

बोलने के लिए दो होना जरूरी है। और ध्यान रखो, अगर सच में ही बोलना हो तो एक होना भी जरूरी है।

इसलिए भक्त की बात बिलकुल तर्कातीत है। जो जियेगा वही जानेगा।

अद्वैतवादी की बात तो तुम शास्त्र से भी समझ सकते हो; भक्ति की बात केवल शास्त्र से समझ में न आएगी। अद्वैतवादी की बात तो तर्कनिष्ठ है; जिनके पास भी थोड़ी तर्क की क्षमता है, वे समझ लेंगे। लेकिन भक्त की बात अनुभव, अस्तित्वगत अनुभव से आती है।

तो मैं तुमसे कहता हूं, भक्त भी अद्वैत की ही बात कर रहा है, लेकिन उसका अद्वैत की बात करने का ढंग प्रेम है। उसका लहजा अलग है। उसकी शैली अलग है।

और मैं तुमसे कहता हूं, भक्त का अद्वैत ज्यादा बहुमूल्य है। उसमें प्राण धड़कते हैं, श्वास चलती है। ज्ञानी का अद्वैत बिलकुल मुर्दा है, मरी लाश की तरह। ज्ञानी का अद्वैत ऐसा है जैसे कोई नदी एक ही किनारे के सहारे बहने की चेष्टा करे। भक्त का अद्वैत ऐसा है जैसे सभी नदियां दो किनारे के सहारे बहती हैं।

लेकिन तुमने कभी गौर किया : नदी को दो किनारों के सहारे की जरूरत है, लेकिन दोनों किनारे नीचे नदी की गहराई में तो एक हो जाते हैं; ऊपर से दो दिखायी पड़ते हैं, अलग-अलग दिखायी पड़ते हैं। तुम्हें एक किनारे से दूसरे किनारे जाना हो तो नाव पर सवार होना पड़ता है। लेकिन नदी की गहराई में तो दोनों किनारे मिले हैं, एक ही हैं। एक है और फिर भी दो हैं। दो हैं और फिर भी एक है।

भक्ति के संबंध में कुछ जानना हो तो ज्ञानियों के द्वारा मत जानना। फिर भक्ति का ही स्वाद लेना पड़ेगा। यह बात उधार जानी जा सके, ऐसी नहीं। और ज्ञानी से जानना तो बिलकुल गलत जगह

से जानना है। ज्ञानी को इसका कोई स्वाद ही नहीं हैं। भक्त से ही पूछना। और भक्त से पूछने का ढंग भी अलग होगा। पूछने का एक ही ढंग हो सकता है कि तुम भी थोड़ा अपने को रंगना उसी रंग में। भक्त की बात को तुम दूर खड़े रह-रहकर न समझ पाओगे। उतरना। उसकी मस्ती में थोड़े डूबना। भक्त के साथ थोड़ा पागल होना पड़ेगा। भक्त के साथ थोड़ा भक्ति में डुबकी लगानी पड़ेगी।

भक्ति को समझना महंगा सौदा है। ज्ञान को समझने में कोई अड़चन नहीं है। शास्त्र से समझ सकते हो, किनारे खड़े रहके समझ सकते हो। भक्त की चुनौती गहरी है।

एक मित्र ने पूछा है कि संन्यास के लिए गैरिक वस्त्र क्यों जरूरी हैं।

● उतरना हो तो थोड़ा पागल होना जरूरी है। ये पागल होने के रास्ते हैं, और कुछ भी नहीं। ये तुम्हारी होशियारी को तोड़ने के रास्ते हैं, और कुछ भी नहीं। ये तुम्हारी समझदारी को पोंछने के रास्ते हैं, और कुछ भी नहीं।

गैरिक वस्त्र पहना दिये, बना दिया पागल! अब जहां जाओगे, वहीं हंसाई होगी। जहां जाओगे, लोग वहीं चैन से न खड़ा रहने देंगे। सब आंखें तुम पर होंगी। हर कोई तुमसे पूछेगा : 'क्या हो गया ?' हर आंख तुम्हें कहती मालूम पड़ेगी, 'कुछ गड़बड़ हो गया। तो तुम भी इस उपद्रव में पड़ गये ? सम्मोहित हो गये ?'

गैरिक वस्त्रों का अपने-आप में कोई मूल्य नहीं है। कोई गैरिक वस्त्रों से तुम मोक्ष को न पा जाओगे। गैरिक वस्त्रों का मूल्य इतना ही है कि तुमने एक घोषणा की कि तुम पागल होने को तैयार हो। तो फिर आगे और यात्रा हो सकती है। यहीं तुम डर गये तो आगे क्या यात्रा होगी ?

आज तुम्हें गैरिक वस्त्र पहना दिये, कल एकतारा भी पकड़ा देंगे। उंगली हाथ में आ गयी तो पहुंचा भी पकड़ लेंगे। यह तो पहचान के लिए है कि आदमी हिम्मतवर है या नहीं। हिम्मतवर है तो धीरे-धीरे और भी हिम्मत बढ़ा देंगे। आशा तो यही है कि कभी तुम सड़कों पर मीरा और चैतन्य की तरह नाच सको।

आदमी ने हिम्मत ही खो दी है। भीड़ के पीछे कब तक चलोगे ?

ये गैरिक वस्त्र तुम्हें भीड़ से अलग करने का उपाय है, तुम्हें व्यक्तित्व देने की व्यवस्था है; ताकि तुम भीड़ से भयभीत होना छोड़ दो; ताकि तुम अपना स्वर उठा सको, अपने पैर उठा सको, पगडंडी को चुन सको।

राजमार्गों से कोई कभी परमात्मा तक न पहुंचा है, न पहुंचेगा; पगडंडियों से पहुंचता है। और हम धीरे-धीरे इतने आदी हो गये हैं भीड़ के पीछे चलने के कि जरा-सा भी भीड़ से अलग होने में डर लगता है।

जिन मित्र ने पूछा है, किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं, बुद्धिमान हैं, सुशिक्षित हैं — फिर विश्वविद्यालय में गैरिक वस्त्र पहनकर जाएंगे, तो अड़चन मैं समझता हूं। वैसे ही अध्यापक मुसीबत में हैं; गैरिक वस्त्र की पूरी फजीहत हुई रखी है!

प्रश्न पूछा है तो जानता हूं कि मन में आकांक्षा भी जगी है, नहीं तो पूछते क्यों। अब सवाल है – हिम्मत से चुनेंगे कि फिर हिम्मत छोड़ देंगे, साहस खो देंगे ? कठिन तो होगा। कठिन हो, यही तो पूरी व्यवस्था है।

पूछा है कि माला वस्त्रों के ऊपर ही पहननी क्यों जरूरी है। इच्छा पहनने की साफ है, मगर कपड़ों के भीतर पहनने की इच्छा है। नहीं, भीतर पहनने से न चलेगा; वह तो न पहनने के बराबर हो गया। वह बाहर पहनाने के लिए कारण है। कारण यही है कि तुम्हें किसी तरह भी भीड़ के भय से मुक्त करवाना है – किसी भी तरह। किसी भी भांति तुम्हारे जीवन से यह चिंता चली जाए कि दूसरे क्या कहते हैं, तो ही आगे कदम उठ सकते हैं। अगर परमात्मा का होना है तो समाज से थोड़ा दूर होना ही पड़ेगा। क्योंकि समाज तो बिलकुल ही परमात्मा का नहीं है। समाज के ढांचे से थोड़ा मुक्त होना पड़ेगा।

न तो माला का कोई मूल्य है, न गैरिक वस्त्रों का काई मूल्य है; अपने-आप में कोई मूल्य नहीं है – मूल्य किसी और कारण से है। अगर यह सारा मुल्क ही गैरिक वस्त्र पहनता हो तो मैं तुम्हें गैरिक वस्त्र न पहनाऊंगा; तो मैं कुछ और चुन लूंगा : काले वस्त्र, नीले वस्त्र। अगर यह सारा मुल्क ही माला पहनता हो तो मैं तुम्हें माला न पहनाऊंगा; कुछ और उपाय चुन लेंगे।

बहुत उपाय लोगों ने चुने। बुद्ध ने सिर घोंट दिया भिक्षुओं का, उपाय है। अलग कर दिया। महावीर ने नग्न खड़ा कर दिया लोगों को, उपाय है।

थोड़ा सोचो, जिन लोगों ने हिम्मत की होगी महावीर के साथ जाने की और नग्न खड़े हुए होंगे, जरा उनके साहस की खबर करो। जरा विचारो। उस साहस में ही सत्य ने उनके द्वार पर आकर दस्तक दे दी होगी।

बुद्ध ने राजपुत्रों को, सम्पत्तिशालियों को भिखारी बना दिया द्वार-द्वार का, भिक्षापात्र हाथ में दे दिये। जिनके पास कोई कमी न थी, उन्हें भिखारी बनाने का क्या प्रयोजन रहा होगा ? अगर भिखारी होने से परमात्मा मिलता है तो भिखमंगों को कभी का मिल गया होता। नहीं, भिखारी होने का सवाल न था – उन्हें उतारकर लाना था वहां, जहां वे निपट पागल सिद्ध हो जाएं। उन्हें तर्क की दुनिया के बाहर खींच लाना था। उन्हें हिसाब-किताब की दुनिया के बाहर खींच लाना था। जो साहसी थे, उन्होंने चुनौती स्वीकार कर ली। जो कायर थे, उन्होंने अपने भीतर तर्क खोज लिये। उन्होंने कहा, 'क्या होगा सिर घुटाने से ? क्या होगा नग्न होने से ? क्या होगा गैरिक वस्त्र पहनने से ?'

यह असली सवाल नहीं है। असली सवाल यह है, 'तुम में हिम्मत है ?' पूछो यह बात्त कि क्या होगा हिम्मत से। हिम्मत से सब कुछ होता है। साहस के अतिरिक्त और कोई उपाय आदमी के पास नहीं है। दुस्साहस चाहिए !

लोग हंसेंगे। लोग मखौल उड़ाएंगे। और तुम निश्चिंत अपने मार्ग पर चलते जाना। तुम उनकी हंसी की फिक्र न करना। तुम उनकी हंसी से डांवाडोल न होना। तुम उनकी हंसी से व्यथित मत होना। और तुम पाओगे, उनकी हंसी भी सहारा हो गयी; और उनकी हंसी ने भी तुम्हारे ध्यान को व्यवस्थित किया; और उनकी हंसी ने भी तुम्हारे भीतर से क्रोध को विसर्जित किया; और उनकी हंसी ने भी तुम्हारे

जीवन में करुणा लायी।

... समाज के दायरे से मुक्त करने की व्यवस्था है। जिसको मुक्त होना हो और जिसे थोड़ी हिम्मत हो अपने भीतर, भरोसा हो थोड़ा अपने पर; अगर तुम बिलकुल ही बिक नहीं गये हो समाज के हाथों; और अगर तुमने अपनी सारी आत्मा गिरवी नहीं रख दी है; तो चुनौती स्वीकार करने जैसी है।

सत्य कमजोरों के लिए नहीं है, साहसियों के लिए है।

तीसरा प्रश्न : सुरक्षा के लिए मुझे जो नाटक करना पड़ता है, उसे करूं या छोड़ दूं? और अब तो नाटक भी साथ छोड़ रहा है। मुझे सही मार्ग बताने की कृपा करें।

● सारा जीवन ही एक नाटक है — संबंधों का, बाजार का, घर-गृहस्थी का। सारा जीवन ही अभिनय है। छोड़कर कहां जाओगे? भागकर कहां जाओगे? जहां जाओगे, वहीं फिर कोई नाटक करना पड़ेगा।

इसलिए भगोड़ेपन के मैं पक्ष में नहीं हूं।

कुशल अभिनेता बनो। भागो मत। जानकर अभिनय करो, बेहोशी में मत करो, होशपूर्वक करो। होश सधना चाहिए। हजार काम करने पड़ेंगे। और शायद उनका करना जरूरी भी है। पर होशपूर्वक करना जरूरी है। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि यह जीवन जीवन न रहा, बिलकुल नाटक हो गया, तुम अभिनेता हो गये।

अभिनेता होने का अर्थ है कि तुम जो कर रहे हो, उससे तुम्हारी एक बड़ी दूरी हो गयी। जैसे कि कोई राम का अभिनय करता है रामलीला में, तो अभिनय तो पूरा करता है, राम से बेहतर करता है; क्योंकि राम को कोई रिहर्सल का मौका न मिला होगा। पहली दफा करना पड़ा था, उसके पहले कोई किया न था कभी। तो जो कई दफे कर चुका है, और बहुत बार तैयारी कर चुका है, वह राम से बेहतर करेगा। रोएगा जब सीता चोरी जाएगी। वृक्षों से पूछेगा, 'मेरी सीता कहां है?' आंख से आंसुओं की धारें बहेंगी। और फिर भी भीतर पार रहेगा। भीतर जानता है कि कुछ लेना-देना नहीं है। मंच के पीछे उतर गये, खत्म हो गयी बात। मंच के पीछे राम और रावण साथ बैठकर चाय पीते हैं, मंच के बाहर धनुष-बाण लेकर खड़े हो जाते हैं। मंच पर दुश्मनी है; मंच के पार कैसी दुश्मनी!

मैं तुमसे कहता हूं कि असली राम की भी यही अवस्था थी। इसलिए तो हम उनके जीवन को रामलीला कहते हैं — लीला! वह नाटक ही था। कृष्णलीला! वह नाटक ही था। असली राम के लिए भी नाटक ही था।

नाटक का अर्थ होता है : जो तुम कर रहे हो, उसके साथ तादात्म्य नहीं है; उसके साथ एक नहीं हो गये हो; दूर खड़े हो; हजारों मील का फासला है तुम्हारे कृत्य में और तुम में। तुम कर्ता नहीं हो, साक्षी हो। नाटक का इतना ही अर्थ है : तुम देखनेवाले हो। वे जो मंच के सामने बैठे हुए दर्शक हैं, उनमें कहीं तुम भी छिपे बैठे हो; मंच पर काम भी कर रहे हो और दर्शकों में छिपे भी बैठे हो, वहां से देख भी रहे हो। भीतर बैठकर तुम देख रहे हो जो हो रहा है, खो नहीं गये हो, भूल नहीं

गये हो। यह भ्रांति तुम्हें नहीं हो गयी है कि मैं कर्ता हूं । तुम जानते हो : एक नाटक है, उसे तुम पूरा कर रहे हो।

तो मैं तुमसे न कहूंगा कि भागो। भागकर कहां जाओगे ? मैं तुमसे यह कहूंगा कि भागना भी नाटक है। जहां तुम जाओगे, वहां भी नाटक है। तुम संन्यासी भी हो जाओ, तो भी मैं तुमसे कहूंगा : संन्यास भी नाटक है, अभिनय है। वस्त्र ऊपर ही ओढ़ना — आत्मा पर न पड़ जाए। यह रंग ऊपर-ही-ऊपर रहे, भीतर न हो जाएं। भीतर तो तुम पार ही रहना। सफेद कपड़े पहनो कि गेरुआ पहनो कि काले पहनो, वस्त्र बाहर ही रहें, भीतर न आ जाएं। तुम्हारी आत्मा निर्वस्त्र रहे, नग्न रहे। तुम्हारे चैतन्य पर कोई आवरण न हो। वहां तो तुम मुक्त ही रहो — सब वस्त्रों से, सब आकारों से।

तुम्हारा कोई नाम-धाम है, उसे तुम छोड़कर भाग आओगे; मैं तुम्हें एक नया नाम दे दूंगा, उस नाम से भी दूरी रहे, उस नाम से भी तादात्म्य मत कर लेना। पुराना नाम भी तुम्हारा नहीं था, यह भी तुम्हारा नहीं है — तुम अनाम हो। पुराने से छुड़ाया, क्योंकि उससे तुम्हारे एक होने की आदत बन गयी थी; नया दिया, इसलिए नहीं कि अब इसे तुम आदत बना लो, अन्यथा यह भी व्यर्थ हो जाएगा।

अपने को दूर रखने की कला संन्यास है।
अभिनेता होने की कला संन्यास है।
जहां तुम कर्ता हुए, वहीं गृहस्थ हो गये।
जहां तुम द्रष्टा रहे, वहीं संन्यस्त हो गये।
तो कहीं से भागना नहीं है।
कहीं जाना नहीं है।
जहां हो वहीं जागना है।

'आता है जज़्बे दिल को वह अन्दाज़े मैकशी
रिन्दों में रिन्द भी रहें, दामन भी तर न हो।'

पीनेवालों में पीनेवाले भी बन गये, और दामन भी तर न हो। पियक्कड़ों में पियक्कड़ जैसे हो गये, लेकिन बेहोशी न पकड़े, दाग न लगे, जागरण बना रहे। तो संसार में जो चल रहा है — घर है, गृहस्थी है, बच्चे हैं, पत्नी है, पति है — ठीक है। भागकर भी क्या होगा ? कहां जाओगे ? जहां जाओगे, वहीं संसार है। फिर तुम अगर बिना बदले वहां जाओगे, तो तुम वहीं संसार खड़ा कर लोगे।

संसार से भागने का एक ही रास्ता है, वह जागना है। तो जहां हो, वहीं जाग जाओ। और इस तरह करने लगो जैसे यह सब नाटक है। अगर कोई व्यक्ति इतनी ही याद रख सके कि सब नाटक है, तो और कुछ करने को नहीं बचता। इतना ही करने जैसा है :

'आशियां में न कोई जहमत न कफस में तकलीफ
सब बराबर है तबीयत अगर आज़ाद रहे।'

फिर कोई फर्क नहीं पड़ता, घर में कि बाहर, घर में कि कैद में। तबीयत अगर आजाद रहे। और तबीयत की आजादी क्या है ?

साक्षी-भाव तबीयत की आजादी है। साक्षी पर कोई बंधन नहीं है।

साक्षी ही एकमात्र मुक्ति है। जहां तुम कर्ता बने कि तुमने जंजीरें ढालीं। जहां तुमने कहा, मैं कर्ता हूं, बस वहीं तुम कैद में पड़े। अगर तुम देखते ही रहे, अगर तुमने देखने का सातत्य रखा, अविच्छिन्न धारा रही द्रष्टा की, फिर कोई तुम पर बंधन नहीं है। चैतन्य को न कोई बांधने का उपाय है, न कोई जंजीरें हैं, न कोई दीवाल है।

'सब बराबर है, तबीयत अगर आज़ाद रहे।'

चौथा प्रश्न : आपने कहा कि ज्ञान भक्ति के लिए बाधा है, फिर महातार्किक और महापंडित चैतन्य एकदम से भक्त कैसे हो गये ?

● ...क्योंकि वे महातार्किक थे और महापंडित थे। छोटे-मोटे पंडित होते तो न हो पाते। इतने बड़े तार्किक थे कि उनको अपने तर्क की व्यर्थता भी दिखायी पड़ गयी। इतने बड़े पंडित थे कि अपना पांडित्य भी कचरा मालूम पड़ा। छोटे पंडित पांडित्य में अटके रह जाते हैं। छोटे तार्किक तर्क से ऊपर नहीं उठ पाते।

अगर तुम सच में ही विचार करने में कुशल हो तो आज नहीं कल तुम्हें विचार की व्यर्थता दिखायी पड़ जाएगी। वह विचार की आखिरी निष्पत्ति है। विचार के प्रति जाग जाना कि विचार व्यर्थ है – विचार का आखिरी निष्कर्ष है।

जैसे कांटे से हम कांटा निकाल लेते हैं, ऐसा महातर्क से तर्क निकल जाता है और महाविचार से विचार निकल जाता है।

चैतन्य महापंडित थे। छोटे-मोटे पंडित होते तो डूब जाते। वे छोटे-मोटे पंडित नहीं थे, नहीं तो अकड़ जाते, भूल ही जाते अपने पांडित्य में। सच में ही पंडित थे।

पंडित शब्द बड़ा अर्थपूर्ण है। खो गया उसका अर्थ। गलत हो गया उसका अर्थ। लेकिन शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। आता है प्रज्ञा से – प्रज्ञावान! जागा हुआ!

पांडित्य से पंडित का कोई संबंध नहीं है – प्रज्ञा से है। कितना तुम जानते हो, इससे सम्बंध नहीं है – कितने तुम जागे हुए हो ... !

तो चैतन्य ने देखा : इतना जान लिया, कुछ भी तो हाथ न आया। सब शास्त्र देख डाले, भिखारी के भिखारी रहे। तर्क बहुत कर लिया, बहुतों को तर्क में पराजित किया, लेकिन भीतर कोई संपत्ति तो हाथ न लगी, भीतर का अंधेरा तो अब भी वैसा का वैसा है। तर्कजाल से ज्योति न जली, भीतर का प्रकाश न मिला। महापंडित थे, बात समझ में आ गयी। फेंक दी पोथी, फेंक दिये तर्कजाल। बात ही छोड़ दी विचार की। एक क्षण में यह क्रांति घटी।

अगर तुम अभी भी उलझे हो पांडित्य में, अगर तुम अभी भी बुद्धिमानी में उलझे हो, तो समझना कि बुद्धिमानी तुम्हारी बहुत बड़ी नहीं है, छोटी-मोटी है। अधकचरे पंडित ही पंडित रह जाते हैं। वास्तविक पंडित तो मुक्त हो जाते हैं।

तो मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुम तर्क में अभी भी रस लेते हो, थोड़ा और रस लेना। जल्दी

नहीं है कोई, अनंत काल शेष है, कोई घबड़ाहट नहीं है। और थोड़ा रस लेना। तर्क में और थोड़ी प्रगाढ़ता पाओ। और थोड़े प्रवीण हो जाओ। और थोड़ी गहरी सूक्ष्मता में जाओ। एक दिन तुम अचानक पाओगे : तुम्हारा तर्क ही तुम्हें उस जगह ले आया, जहां दर्शन हो जाते हैं कि तर्क व्यर्थ है। शास्त्र ही वहां ले आते हैं, जहां शास्त्र व्यर्थ हो जाते हैं। और इसके पहले भागना मत। इसके पहले भागोगे, तो तुम्हारा पांडित्य अटका ही रहेगा। तुम फिर चाहे गीत गाने लगो, भक्ति करने लगो, पूजा करने लगो – तब तुम पूजा के पंडित हो जाओगे; तब तुम भक्ति के पंडित हो जाओगे – लेकिन पंडित तुम रहोगे ही; तुम निर्विकार न हो पाओगे।

उस निर्विकार को पाना हो तो विचार को उसकी आखिरी घड़ी तक खींचकर ले जाना।

सब चीजें उम्र पाकर मर जाती हैं। हर बच्चा अगर बीच में ही न मर जाए तो बूढ़ा होगा ही। हर जवानी बुढ़ापे पर पहुंच जाती है। जैसे चीजें बढ़ती हैं, ढलती हैं। सुबह हुई, सांझ होने लगी ! सुबह हुई, सांझ होने लगी। विचार किया, निर्विचार करीब आने लगा।

घबड़ाओ मत। थोड़े बढ़े चलो !

मैं तुमसे जल्दी करने को नहीं कहता। यह मेरी सतत अभिलाषा है, और सतत इस पर मेरा जोर है कि तुम जल्दी मत करना – पकना। परिपक्व हुए बिना कुछ भी नहीं होता। परिपक्वता सब कुछ है।

तो मेरी बात सुनकर तुम तर्क मत छोड़ देना। मैंने भी उसे पूरा करके ही छोड़ा। और मैं जानता हूं, जो जल्दी करके छोड़ देगा, अधूरे में छोड़ देगा, वह अधूरा रह जाएगा। चीजों को पहुंचने दो उनकी आखिरी ऊंचाई तक, वे अपने से ही ढल जाती हैं। तुम इतना ही कर सकते हो कि सहारा दो, पहुंचने दो उन्हें उनकी आखिरी ऊंचाई तक – वे अपने से ही गिर जाती हैं।

सुबह अपने-आप सांझ हो जाती है। तुम्हें भर-दुपहरी में आंख बंद करके सांझ बनाने की कोई जरूरत नहीं। भर-दुपहरी में सांझ को विश्वास कर लेने की कोई जरूरत नहीं। और ऐसी सांझ झूठ होगी। झूठ से कहीं कोई परमात्मा तक पहुंचा है ?

अधिक लोगों की आस्तिकता झूठ है। उनके भजन-कीर्तन झूठ हैं। अभी उन्होंने तर्क की कसौटी भी पूरी न की थी। अभी नास्तिक भी न हुए थे और आस्तिक हो गये। अभी इनकार भी न किया था और हां भर दी। अभी लड़े भी न थे और समर्पण कर दिया। टक्कर देनी थी ठीक, लड़ना था ठीक, जूझना था। जल्दी क्या है समर्पण की ?

कच्चा समर्पण काम न आएगा।

मैं नास्तिकता सिखाता हूं, ताकि तुम किसी दिन आस्तिक हो सको। और मैं तुमसे कहता हूं, तर्क करना। मैं उन कमजोर लोगों में नहीं हूं जो तुमसे कहते हैं, तर्क छोड़ो, मैं तुमसे कहता हूं तर्क छूट जाएगा, तुम कर तो लो। मैंने करके देखा और छूट गया। और मैं उनको भी जानता हूं, जिन्होंने बिना किये छोड़ा और अब तक नहीं छूटा, कभी न छूटेगा।

जीवन अनुभव से आता है।

तुम नास्तिक हो जाओ। घबड़ाओ मत। इतना डर क्या है ? परमात्मा है। नास्तिक होने में इतनी कोई घबड़ाने की जरूरत नहीं है। तुम्हारे नास्तिक होने से वह नाराज न हो जाएगा।

जीसस ने कहा है, एक बाप ने अपने बेटे को कहा कि तू जा, बगीचे में काम कर, फसल पक गयी है। और उस बेटे ने कहा, 'अभी जाता हूं। यह गया!' लेकिन गया नहीं। दूसरे बेटे से कहा कि तू जा। उसने कहा कि नहीं, मैं न जाऊंगा, और हजार काम हैं। लेकिन बाद में पछताया और गया।

तो जीसस ने अपने शिष्यों से पूछा, 'इन दोनों बेटों में कौन बाप का प्यारा होगा, जिसने हां कही और नहीं गया, या जिसने नहीं की और गया?' जिसने नहीं की, और गया, वही प्यारा होगा।

तुम जरा गौर करना। अगर तुमने 'नहीं' ही नहीं की, तो तुम्हारी 'हां' नंपुसक होगी। उसमें जान ही न होगी। तुमने औपचार से कह दिया। पिता कहते हैं, इसलिए कह दिया कि अच्छा जाते हैं। टालने को कह दिया।

घर के लोग मानते हैं कि ईश्वर है, तुमने मान लिया। परिवार, समाज मानता है, तुमने मान लिया। यह तुम्हारी मान्यता न हुई; यह सामाजिक शिष्टाचार हुआ। शिष्टाचार से तुम मस्जिद गये, मंदिर गये, गुरुद्वारा गये, झुके – यह तुम मंदिर-मस्जिद में न झुके; यह तुम समाज के सामने झुके; यह तुम भय से झुके कि लोग क्या कहेंगे!

लेकिन तुमने इनकार किया। तुमने कहा कि जब तक मैं न समझ लूं, कैसे मानूं, तो तुमने कम-से-कम प्रामाणिकता तो घोषित की; तुमने कम-से-कम यह तो कहा कि मैं बेईमानी यहां न करूंगा – बाजार में कर लेता हूं ठीक, चलती है; मंदिर में तो बेईमानी न करूंगा। यहां तो प्रामाणिक रहूंगा। यहां तो जब हां आएगी, तभी कहूंगा। और जब तक भीतर से न उठती हो, मेरे हृदय से न आती हो, तब तक रुकूंगा, तब तक यह गर्दन न झुकेगी।

और मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा तुमसे नाराज न होगा।

तुम्हारी 'नहीं' 'हां' की तरफ पहला कदम है। तुम चल पड़े। तुमने कम-से-कम प्रामाणिक होने का पहला कदम तो उठाया। और जिसने ठीक से 'नहीं' कही, वह एक-न-एक दिन 'हां' कहेगा, क्योंकि कौन 'नहीं' में जी सकता है, कब तक जी सकता है! नकार में जीने का कोई उपाय नहीं। 'नहीं' से किसी का भी पेट नहीं भरता और 'नहीं' से न खून बनता है, और न आत्मा में प्राण आते हैं, न श्वासें चलती हैं।

'हां' चाहिए! परम आस्था चाहिए, तभी जीवन का फूल खिलता है। 'नहीं' तुम कहो, आज नहीं कल, तुम खुद ही अपनी 'नहीं' से घबड़ा जाओगे; आज नहीं कल, तुम्हारी 'नहीं' तुम्हें ही काटने लगेगी, सालने लगेगी। तभी ठीक क्षण आया उसे गिराने का।

चैतन्य महापंडित थे, महातार्किक थे – इसीलिए एक दिन भक्त हो सके।

भक्ति कोई सस्ती बात नहीं है। वह तर्क के आगे का कदम है। वह तर्क के आगे की मंजिल है। काव्य कोई छोटी बात नहीं; वह गणित से पार की समझ है। वह आखिरी मंजिल है, फिर उसके आगे कोई मंजिल ही नहीं। और सब मंजिलें उसके पहले ही पूरी हो जाती हैं।

तो अगर तुम्हारा मन अभी भी तर्कजाल में उलझा हो, पांडित्य में उलझा हो, शास्त्र में उलझा हो, तो यही समझना कि पंडित तुम अधकचरे हो, ज्ञान बचकाना है। थोड़ा और बढ़ाओ इसे। प्रौढ़ होते ही ज्ञान वैसे ही गिर जाता है, जैसे पका हुआ फल वृक्ष से।

पांचवां प्रश्न : सैकड़ों बार भ्रम के टूटने पर भी भरोसा नहीं आता। क्या करूं ? कैसे भरोसा वापस लौटे ?

● सैकड़ों बार भ्रम टूटा है — यह प्रतीति भ्रामक मालूम होती है। सच में न टूटा होगा। तुमने बिना टूटे मान लिया होगा कि टूटा। भ्रम न टूटा होगा। तुमने जल्दी कर ली होगी। कुछ और टूटा होगा और तुमने सोचा, भ्रम टूटा।

समझो : एक स्त्री के प्रेम में तुम पड़े और दुख पाया। तुम सोचते हो भ्रम टूटा ? गलत बात है। इस स्त्री से संबंध टूटा, भ्रम नहीं टूटा; क्योंकि भ्रम का इस स्त्री से कोई संबंध नहीं है। अब तुम्हारा मन किसी दूसरी स्त्री की तलाश कर रहा है। भ्रम जारी है। दूसरी स्त्री से संबंध बन गया, फिर दुख पाया — तुम सोचते हो, भ्रम टूटा ? गलती हुई है, भ्रम नहीं टूटा। मन अब तीसरी स्त्री की तलाश कर रहा है। मन कहे जाता है कि जब तक ठीक स्त्री न मिलेगी, तब तक खोजे चले जाओ। इस बड़ी पृथ्वी पर जरूर कहीं न कहीं कोई ठीक स्त्री होगी जो तुम्हें सुख देगी। भ्रम वह है।

एक स्त्री, दो स्त्री, तीन नहीं, लाखों स्त्रियों से तुम लाखों जन्मों में संबंध बना चुके और टूट चुके; लाखों पुरुषों से संबंध बन चुके, टूट चुके — भ्रम नहीं टूटा है। इस स्त्री से टूटा — स्त्री से नहीं टूटा है। इस पुरुष से टूटा — पुरुष से नहीं टूटा है। और जब तक पुरुष से न टूटे; स्त्री से न टूटे, तब तक भ्रम कायम है, भ्रम जारी है।

तुमने दस हजार रुपये कमाने की आशा बांधी थी, कमा लिये; सोचा था, सब मिल जाएगा — कुछ भी न मिला। अब तुम सोचते हो, बीस हजार होने चाहिए।

तुम कहते हो, भ्रम टूटा ? भ्रम नहीं टूटा। भ्रम कायम है। आगे सरक गया है। दस से बीस पर पहुंच गया। एक से दूसरे पर हट गया। एक आकांक्षा से दूसरी आकांक्षा पर सरक गया। लेकिन भ्रम जिंदा है।

ऐसा भी हो जाता है कि तुम्हारा सारी संसार की इच्छाओं से मन ऊब गया, तब तुम स्वर्ग की इच्छा करने लगते हो। अब भी भ्रम नहीं टूटा। अब तुमने स्वर्ग में प्रक्षेपण किया सारी आकांक्षाओं का। जो तुम्हें यहां नहीं मिला, अब तुम वहां मांगने लगे।

भ्रम टूट जाए तो सैकड़ों बार नहीं टूटता, एक ही बार टूट जाए तो बस समाप्त हो जाता है। जो सैकड़ों बार भी टूटकर और नहीं टूटता, समझना कि भूल हो रही है।

'रेगजारों में बगूलों के सिवा कुछ भी नहीं।'

रेगिस्तानों में आंधी और बगूलों के सिवा कुछ भी नहीं है।

'रेगजारों में बगूलों के सिवा कुछ भी नहीं
साया-ए-अब्रे-गुरेजां से मुझे क्या लेना !'

और ज्यादा-से-ज्यादा जो छाया मिल सकती है रेगिस्तान में, वह आकाश में भागती हुई बदलियों की छाया है।

अगर यह समझ में आ गया कि आकाश में भागती बदलियों की छाया में कितनी देर टिकोगे,

तो फिर तुम जागोगे।

यहां सभी छायाएं आकाश में भागती बदलियों की छायाएं हैं। और जहां तुमने मरूद्यान समझे हैं, वहां भी रेगिस्तान हैं। और जहां तुमने वसंत समझे हैं वहां भी पतझड़ छिपे हैं। जहां तुमने जीवन समझा है, वह केवल मौत का एक ढंग है।

'ऐ दिल तुझे रोना है तो जी खोल कर रो ले
दुनिया से बढ़ कर न कोई वीराना मिलेगा।'

पर भ्रम अभी टूटे नहीं है।

भ्रम के भी टूटने का भ्रम होता है। वही हुआ है।

तो क्या करो ?

अब दुबारा इस भ्रम में मत आना कि भ्रम टूट गया। इतना तो करो, शेष अपने से होगा। जब तक भ्रम न टूटे, तब तक यह भ्रम मत पालना कि भ्रम टूट गया है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'क्रोध करके देख लिया है, कोई सार न पाया। फिर भी क्रोध जाता नहीं।' तो मैं उनसे कहता हूं, 'जरूर कुछ सार पाया होगा। झूठ कहते हो। नहीं तो चला जाता। यह जो तुम कहते हो कि कुछ सार न पाया, यह बुद्धिमानी बता रहे हो। लेकिन अगर कुछ सार न पाया हो तो रेत से कौन तेल निकालता रहता है ? कोई भी नहीं निकालता। दीवाल से कौन निकलने की कोशिश करता है ? कोई भी नहीं करता। एकाध बार करे भी तो सिर टकरा जाता है, रास्ते पर आ जाती है अक्ल, दरवाजे से निकलने लगता है।'

लोग कहते हैं, कामवासना से कुछ भी न पाया, लेकिन फिर भी मन छूटता नहीं। जरूर पाया होगा।

इस भ्रम को छोड़ो।

उधार बुद्धिमानी काम न आएगी। जीवन के अनुभव से जो मिले वही सच है। इस उधार बुद्धिमानी के कारण असली बुद्धिमानी पैदा नहीं हो पाती।

तुमसे मैं कहता हूं, क्रोध ठीक से करो, पूरी तरह करो, होशपूर्वक करो, देखते हुए करो कि क्या मिल रहा है, मिल रहा है कुछ या नहीं। अगर कुछ भी न पाओगे तो क्रोध समाप्त हो जाएगा, तुम्हें समाप्त करना न पड़ेगा।

कामवासना में उतरो — पूरे होशपूर्वक ! देखो — कुछ मिल रहा है ? जागकर, स्मरणपूर्वक ! शास्त्रों की मत सुनो। साधुओं की बकवास में मत पड़ो। तुम्हारा अनुभव ही तुम्हारे काम आएगा।

उधार ज्ञान बाधा बन जाता है। उससे वास्तविक ज्ञान के जन्म में असुविधा होती है। उधार ज्ञान हटा दो। कामवासना बुरी है — ऐसा भी मत सोचो। जब तक तुम्हारे लिए बुरी नहीं है, तब तक कैसे बुरी है ? व्यर्थ है — ऐसा भी मत सोचो। जब तक तुम्हारे अनुभव में व्यर्थ नहीं, तब तक कैसे व्यर्थ है ? कौन जाने, ठीक ही हो !

निष्पक्ष मन से, कोरे और खाली मन से जाओ, धारणाएं लेकर नहीं। और तब तुम अचानक हैरान होओगे, जो शास्त्रों ने कहा है, वह जीवन तुमसे कह देता है। और जब जीवन का शास्त्र तुमसे

कहता है, तभी क्रांति घटित होती है, उसके पहले नहीं।

आखिरी प्रश्न : आपने कहा था कि भक्त कण-कण में भगवान को देखता है। लेकिन जिसे सिर्फ आपका पता है, कण में बसनेवाले भगवान का नहीं, उसके लिए क्या साधना होगी ?

● 'तलाशो-जुस्तजू की सरहदें अब खत्म होती हैं
खुदा मुझको नज़र आने लगा इंसाने-कामिल में।'

अगर तुम्हें एक आदमी की पूर्णता में भी परमात्मा नजर आने लगे तो खोज समाप्त हो गयी। अगर तुम्हें मुझमें भी नजर आने लगे तो बात समाप्त हो गयी। फिर मैं खिड़की बन जाऊंगा। तुम फिर मेरे पार देखने में समर्थ हो जाओगे।

नहीं, मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हें मुझ में भी नजर न आया होगा। तुमने मान लिया होगा। तुमने स्वीकार कर लिया होगा। नजर न आया होगा। तुम्हारे भीतर अब भी कहीं संदेह खड़ा होगा। वही संदेह तुम्हारी आंख पर परदा बना रहेगा।

अगर तुम्हें एक में नजर आ गया, तो बात खत्म हो गयी, फिर सब में नजर आने लगेगा।

यह तो ऐसे ही है, जिसने सागर का एक चुल्लू पानी चख लिया, उसे पता चल गया कि सारा सागर खारा है।

तुमने अगर मुझ में परमात्मा चख लिया तो तुमने सारे परमात्मा के सागर को चख लिया। फिर असम्भव है। यह तो कसौटी है, अगर तुम्हें एक में नजर आया तो सब में नजर आने लगेगा। अगर सब में नजर न आ रहा हो तो जिस एक में तुम्हें नजर आया, वह भी तुमने मान लिया होगा, भीतर संदेह को दबा दिया होगा; लेकिन भीतर तुम्हारी बुद्धि कहे जा रही होगी – परमात्मा, भगवान, भरोसा नहीं आता!

तो फिर से गौर से देखो। मुझ में उतना देखने का सवाल नहीं है; असली परदा तुम्हारे भीतर है। तुम्हारी आंख पर संदेह का परदा है, तो वृक्षों में नहीं दिखायी पड़ता, चांद-तारों में नहीं दिखायी पड़ता। सब तरफ वही मौजूद है, पत्ती-पत्ती में! उसके बिना जीवन हो नहीं सकता। जीवन उसका ही नाम है। या जीवन का परमात्मा नाम है। तुम 'परमात्मा' शब्द छोड़ दो तो भी हर्जा नहीं, 'जीवन' शब्द याद रखो। जहां जीवन दिखायी पड़े वहीं झुको।

जीवन को जरा देखो! एक बीज से फूटती हुई कोंपलों को देखो! बहते हुए झरने को देखो! रात के सन्नाटे में, चांद-तारों को देखो! किसी बच्चे की आंख में झांको! सब तरफ वही है!

परदा तुम्हारे भीतर है। परदा तुम हो।

'तू-ही-तू हो, जिस तरफ देखें उठा कर आंख हम
तेरे जल्वे के सिवा पेशे-नज़र कुछ भी न हो।'

मगर यह परमात्मा के हाथ में नहीं है। अगर यह उसके हाथ में होता तो परदा कभी का उठा दिया गया होता। यह तुम्हारे हाथ में है। यह परदा तुम हो। और तुम जब तक न उठाओ अपना

परदा तब तक तुम्हें कहीं भी दिखायी न पड़ेगा।

और मैं तुमसे कहता हूं, एक जगह दिखायी पड़ जाए तो सब जगह दिखायी पड़ गया। जिसे मंदिर में दिखा उसको मस्जिद में भी दिख गया। देखने की आंख आ गयी, बात समाप्त हो गयी। जिसको एक दीये में रोशनी दिख गयी, क्या उसे सूरज की रोशनी न दिखेगी?

लेकिन अंधा आदमी! वह कहता है, दीये में तो दिखती है, लेकिन सूरज की नहीं दिखती। तो हम क्या कहेंगे? हम कहेंगे, तूने दीये की मान ली। तूने अपने को समझा-बुझा लिया। तू फिर से देख। इस धोखे में मत पड़।

तो मैं तुमसे कहता हूं, फिर से मेरी आंखों में देखो, फिर से मेरे शून्य में झांको! अगर संदेह के बिना देखा, अगर भरोसे से देखा, तो एक झलक काफी है। फिर उस झलक के सहारे तुम सब जगह खोज लोगे। फिर तुम्हारे हाथ में कीमिया पड़ गयी, तुम्हारे हाथ में कुंजी आ गयी।

इतना ही अर्थ है गुरु का कि उससे तुम्हें पहली झलक मिल जाए कि कुंजी हाथ आ जाए, फिर सब ताले उस कुंजी से खुल जाते हैं।

आज इतना ही।

हृदय का आंदोलन है भक्ति

नौवां प्रवचन

सूत्र

तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्यः ॥३४॥
तत्तु विषयत्यागात् संगत्यागाच्च ॥३५॥
अव्यावृतभजनात् ॥३६॥
लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात् ॥३७॥
मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा ॥३८॥
महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥३९॥
लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ॥४०॥
तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ॥४१॥
तदेव साध्यतां तदेव साध्याताम् ॥४२॥

प हला सूत्र : 'तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः।'

जितने भी हिंदी में अनुवाद हैं, वे सभी कहते हैं : 'आचार्यगण उस भक्ति के साधन बतलाते हैं। मूल सूत्र कहता है : आचार्यगण उस भक्ति के साधन गाते हैं।' और भेद थोड़ा नहीं है। बतलाना बतलाना ही है — गाना बात और! गाने में कुछ खूबी छिपी है।

भक्ति बोलती नहीं — गाती है।

भक्ति बोलती नहीं — नाचती है।

नृत्य में और गीत में ही उसकी अभिव्यक्ति है।

वेदांत बोलता है, भक्ति गाती है।

गाने का अर्थ हुआ : भक्ति का संबंध तर्क से नहीं, विचार से नहीं — हृदय और प्रेम से है। भक्ति का संबंध कुछ कहने से कम, कहने के ढंग से ज्यादा है।

भक्ति कोई गणित की व्यवस्था नहीं है — हृदय का आंदोलन है। गीत में प्रगट हो सकती है।

भाषा तो वैसे ही कमजोर है। फिर भाषा में ही चुनना हो तो भक्ति गद्य को नहीं चुनती, पद्य को चुनती है। ऐसे तो पद्य से भी कहां कहा जा सकेगा, लेकिन शब्दों के बीच में लय को समाया जा सकता है। शब्द से न कहा जा सके, लेकिन शब्दों के बीच समाहित धुन से शायद कहा जा सके।

तो भक्त के जब शब्द सुनो तो शब्दों पर बहुत ध्यान मत देना। भक्त के शब्दों में उतना अर्थ नहीं है जितना शब्दों की धुन में है, शब्दों के संगीत में है। शब्द अपने-आप में तो अर्थहीन हैं। जिस रंग में और जिस रस में लपेटकर शब्दों को भक्त ने पेश किया है, उस रंग और रस का स्वाद लेना।

लेकिन अकसर अनुवाद में मूल खो जाता है, और कभी-कभी तो इतनी सरलता से खो जाता है कि खयाल में भी नहीं आता। क्योंकि हम सोचते हैं कि इससे क्या फर्क पड़ता है कि आचार्यों ने गाया कि आचार्यों ने कहा, बात तो एक ही है।

बात जरा भी एक ही नहीं है — बात बड़ी भिन्न है। आचार्यों ने गाया, भक्ति के आचार्यों ने गाया — कहा नहीं। और जोर धुन पर है, संगीत पर है। जोर शब्द पर नहीं, शब्द के अर्थ पर नहीं, शब्द की तर्कनिष्ठा पर नहीं।

पक्षियों के गीत जैसे हैं भक्तों के शब्द। तुम उन्हें सुनकर आनंदित होते हो। कोई अर्थ पूछे तो

न बता सकोगे। लेकिन अर्थ की चिंता ही कौन करता है, जिसे आनंद मिलता हो! आनंद अर्थ है!

अंग्रेजी के महाकवि शैली से किसी ने पूछा कि तुम्हारे एक गीत को मैं पढ़ रहा हूं, समझ में नहीं आता, मुझे अर्थ समझा दो। शैली ने कंधे बिचकाये, कहा, 'मुश्किल। जब लिखा था तब दो आदमी जानते थे, अब एक ही जानता है।'

उसने पूछा, 'वे कौन दो आदमी थे? ...तो मैं दूसरे से पूछ लूं, अगर तुम भूल गये हो। लेकिन तुमने ही लिखा है तो तुम अर्थ कैसे भूल गये।'

शैली ने कहा, 'जब लिखा, तब मैं और परमात्मा जानते थे; अब सिर्फ परमात्मा ही जानता है। मैं तुम्हें न बता सकूंगा। मुझे ही याद नहीं। जैसे एक ख्वाब देखा था! भनक रह गयी है कान में। रस भी रह गया है कहीं गूंजता, लेकिन अर्थ खो गये हैं।'

फिर शैली ने कहा, 'अर्थ का करोगे भी क्या? गुनगुनाओ!'

गीत गाने के लिए है। जो गीत में अर्थ देखने लगा, वह वैसा ही नासमझ है, जो जाकर फूल से पूछे कि तेरा अर्थ क्या। फूल का रस देखो! रंग देखो! फूल की गंध देखो! अर्थ पूछते हो?

परमात्मा अर्थातीत है। इसलिए भक्तों ने कहा नहीं — गाया। क्योंकि कहने में अर्थ जरा जरूरत से ज्यादा हो जाता है। गाने में अर्थ गौण हो जाता है, रस प्रमुख हो जाता है।

भक्ति है रस। भक्ति कोई ज्ञान नहीं; कहने-सुनने की बात नहीं — डूबने, मिटने की बात है।

इसलिए मैं अनुवाद करूंगा : 'आचार्यगण उस भक्ति के साधन गाते हैं।' गाने में ही साधन को बतलाते हैं। अगर तुमने गाने को समझ लिया, अगर उनके गीत के रस को पकड़ लिया, तो उन्होंने सब बता दिया। क्योंकि फिर वे जो साधन बतलाते हैं, वे साधन भी क्या हैं? वे साधन हैं : भजन, कीर्तन, उसकी कथा में रस, श्रवण। वे सब उसी रस के विस्तार हैं।

'वह भक्ति विषय-त्याग और संग-त्याग से संपन्न होती है।'

इस सूत्र को बारीकी से समझना, क्योंकि योग भी यही कहता है। तो फिर योग और भक्ति में भेद कहां होगा? योग भी कहता है : विषय-त्याग और संग-त्याग से। विषयों को छोड़ना है। विषयों की आसक्ति छोड़नी है। त्यागी भी यही कहता है और भक्त भी यही कहता है। दोनों के अर्थ तो एक नहीं हो सकते, क्योंकि दोनों के आयाम अलग हैं। शब्द एक होंगे, अर्थ तो अलग हैं।

तो थोड़ा समझें।

त्याग दो तरह के हो सकते हैं। एक तो त्याग होता है : बिना भूमिका बदले भाग जाना। एक आदमी घर में है, गृहस्थ है। वह अपनी चेतना को तो नहीं बदलता, घर छोड़ देता है, पत्नी-बच्चे छोड़ देता है, जंगल की तरफ चला जाता है। भूमिका नहीं बदली, चेतना का तल नहीं बदला — स्थान बदल लिये। स्थिति नहीं बदली — स्थान बदल लिया। मनःस्थिति नहीं बदली — आसपास की जगह बदल ली। वह जाकर जंगल में बैठ जाए, जल्दी ही वहां फिर गृहस्थी खड़ी हो जाएगी। क्योंकि गृहस्थी का जो 'ब्लू प्रिंट' है, वह उसकी चैतन्य की दशा में है, वह उसे साथ ले आया। वहां भी गृहस्थी इसी ने बनायी थी। वह कुछ आकस्मिक आकाश से न उतर आयी थी। किसी शून्य से उसका आविर्भाव न हुआ था। इसके ही चैतन्य में, इसकी ही चेतना के भीतर छिपे बीज थे — वे प्रगट हुए थे।

पत्नी आकाश से नहीं आती – पति के भीतर छिपे राग से खिंचती है। पति आकाश से नहीं आता – पत्नी के भीतर छिपे राग से आता है। तुम उसी को अपने पास बुला लेते हो जिसकी गहन आकांक्षा तुम्हारे भीतर छिपी है। वही तुम्हें मिल जाता है जो तुम चाहते हो। चाहे तुम्हें पता हो पता न हो, चेतन हो अचेतन हो, होश में मांगा हो बेहोशी में मांगा हो – तुम्हें वही मिलता है जो तुमने मांगा है। तुम्हारे पास वही सरककर चला आता है जो तुमने चाहा है।

तुम चुंबक हो। और तुम्हारा चुंबक तुम्हारी चेतना की स्थिति में है। अब अगर एक चुंबक लोहे के कणों को खींच लेता हो, फिर लोहे के कणों से परेशान हो जाए, भाग जाए जंगल – क्या फर्क पड़ेगा? चुंबक चुंबक रहेगा। वहां भी लोह-कणों को खींचेगा। यह भी हो सकता है कि लोह-कण पास न हों, तो चुंबक कुछ भी न खींच पाये, लेकिन इससे क्या चुंबक चुंबक न हो जाएगा? चुंबक चुंबक ही रहेगा। लोह-कण होंगे तो खींच लेगा, न होंगे तो न खींचेगा; लेकिन इससे कोई चुंबक के जीवन में क्रांति न हो जाएगी।

तो एक तो त्याग है जो पलायनवादी का है, भगोड़े का है। भक्त को उस त्याग में कोई रस नहीं है। वह त्याग ही नहीं है। उसको त्याग ही कहना पहले तो गलत है। वह छोड़ना है, त्याग नहीं; भागना है, मुक्ति नहीं है।

फिर एक त्याग है चेतना के तल को बदलने से। तुम जैसे हो अभी उससे ऊपर उठते हो। जैसे ही ऊपर उठते हो, तुम्हारे आसपास का सारा संसार वैसा ही बना रहे, कोई फर्क नहीं पड़ता – तुम वैसे ही नहीं रह गये। संसार में रहो तो भी संसार अब तुम में नहीं है। तुम चुंबक न रहे। तुमने चुंबकत्व छोड़ दिया। अब लोहे के टुकड़े पास ही पड़े रहें, पुराने समय में खींचे थे जब तुम चुंबक थे; अब भी पास पड़े रहेंगे, लेकिन अब तुम चुंबक नहीं हो – अब तुम में खींच न रही, आकर्षण न रहा। इसका नाम ही संग-त्याग है। पास तो हैं, लेकिन तुम बड़े दूर हो गये। घर में ही हो, लेकिन घर में न रहे। दुकान पर बैठे हो, दुकान में न रहे।

संसार से भागना एक बात है – वह त्याग नहीं है। संसार से उठना दूसरी बात है – वह त्याग है।

ऊपर उठो। भूमिका बदलो।

इसलिए भक्तों ने भागने का आग्रह नहीं किया।

जीवन को न तोड़ना है, न मिटाना है, न बदलना है – चैतन्य के रूप को नया करना है। तुम्हारे भीतर की ज्योति को थोड़ा बड़ा करना है, तुम थोड़े ऊपर खड़े होकर देख सको; तुम्हारी दृष्टि का विस्तार थोड़ा बड़ा हो जाए।

तो चेतना के एक-एक तल से दूसरे तल पर जाना, चेतना के एक सोपान से दूसरे सोपान पर जाना, वही त्याग है।

'वह भक्ति विषय-त्याग और संग-त्याग से संपन्न होती है'...तो तुम भक्त हो!

इसे हम ऐसा समझें कि तुम जहां खड़े हो, वहां संसार है। अगर तुम स्थान को बदल लो, तो तुम संसार में ही कहीं दूसरी जगह खड़े हो जाओगे। परमात्मा से तुम्हारी दूरी उतनी ही रहेगी जितनी पहले थी। हिमालय परमात्मा से उतना ही दूर है जितना तुम्हारी दुकान और बाजार की जगह। हिमालय

परमात्मा के जरा भी पास नहीं।

लेकिन अगर तुम अपनी चेतना के तल को बदलो तो तुम संसार से दूर होने लगते हो और परमात्मा के पास होने लगते हो।

एक हिमालय तुम्हें चढ़ना है जरूर, लेकिन वह हिमालय तुम्हारे भीतर की शीतलता का है; वह तुम्हारे भीतर की शांति का है; वह तुम्हारे भीतर के मौन का है। एक गौरीशंकर की यात्रा करनी है जरूर, लेकिन वह गौरीशंकर बाहर नहीं है; वह तुम्हारी अंतरात्मा का शिखर है। भीतर ऊपर उठना है। बाहर तो जहां हो, ठीक हो। बाहर से कुछ भी भेद नहीं पड़ता।

'विषय-त्याग और संग-त्याग से भक्ति उत्पन्न होती है, भक्ति सधती है।'

भक्ति का अर्थ है : परमात्मा और तुम्हारे बीच की दूरी कम हो जाए। भक्ति तुम्हारे और परमात्मा के बीच की दूरी के कम होने का नाम है। दूरी कम होती जाए, तो भक्ति सघन होती जाती है। एक दिन दूरी पूरी मिट जाती है, अनन्यता हो जाती है, तो भक्त भगवान हो जाता है, भगवान भक्त हो जाता है। तब 'दुई' नहीं रह जाती। तब दोनों किनारे खो जाते हैं एक में ही।

इसलिए भक्त के त्याग की सूक्ष्मता को खयाल में रखना। साधारण त्यागी का त्याग सीधा-साफ है; भक्त का त्याग बड़ा सूक्ष्म है। साधारण त्यागी भागता है; भक्त रूपांतरित होता है। इसलिए भक्त को शायद तुम पहचान भी न पाओ — साधारण त्यागी को कोई भी पहचान लेगा। उसकी पहचान बड़ी ऊपरी है — घर-द्वार छोड़ दिया, काम-धंधा छोड़ा। जिसे तुम संसार कहते थे, उसे छोड़ दिया, जंगल में चला गया। इसे पहचानने में अड़चन न आएगी। भक्त जहां है वहीं है। चैतन्य बदलता है। रूपांतरण बड़ा सूक्ष्म है और भीतरी है। ऊपर से तो वैसा ही रहता है, कानों-कान किसी को खबर नहीं होती। लेकिन भीतर एक हीरे का जन्म होने लगता है। भीतर एक निखार आता है। चेतना की लौ थमती है, अकंप जलती है। इसे देखने के लिए तुम्हें भी थोड़ा-सा भीतर झांकना पड़े...।

और जब तक ऐसा न हो पाए तब तक तुम्हारी जिंदगी कहने को ही जिंदगी है, नाममात्र की जिंदगी है। जरा भी मूल्य नहीं उसका — दो कौड़ी भी मूल्य नहीं। चाहे तुम्हारी जिंदगी सिकंदर की जिंदगी ही क्यों न हो, फिर भी दो कौड़ी मूल्य नहीं। क्योंकि मूल्य तो अंतरात्मा का होता है। तुमने बाहर क्या किया, इससे कुछ मूल्य का संबंध नहीं — तुम भीतर क्या हुए...।

'भटक के रह गयीं नज़रें खला की वुसअत में
हरीमे-शाहिदे-रअना का कुछ पता न मिला
तबील राहगुज़र खत्म हो गयी, लेकिन
हनोज अपनी मुसाफत का मुन्तहा न मिला।'

जैसे शून्य की विशालता में आंखें भटक जाएं...।

'भटक के रह गयीं नज़रें खला की वुसअत में!'

शून्य ने तुम्हें घेरा है। विराट है शून्य। रिक्तता है एक। उसमें आंखें खोकर रह गयी हैं।

'हरीमे-शाहिदे-रअना का कुछ पता न मिला।'

प्रेमी के घर का, प्रेयसी के घर का कुछ भी पता नहीं चलता, कहां है। एक रेगिस्तान में रिक्तता

के खो गये हो।

'तबील राहगुज़र खत्म हो गयी... !'

कठिन थी राह जिंदगी की, वह भी खत्म हो गयी...

'लेकिन, हनोज अपनी मुसाफत का मुन्तहा न मिला।'

लेकिन आज तक यह ठीक से पता न चला कि हम यात्रा क्यों कर रहे थे। यात्रा खत्म भी हो गयी, कठिन भी बहुत थी; लेकिन अब तक यह भी साफ न हो सका कि मुद्दा क्या था, मंजिल क्या थी, जाते कहां थे। प्रेयसी के या प्रेमी के घर की कोई झलक भी न मिली।

जब तक तुम्हारे चैतन्य की भूमिका न बदले, तब तक यही कथा है सभी की : एक रिक्तता में खो जाते हैं; जैसे कोई भूली-भटकी नदी है और रेगिस्तान में समा जाए, और सागर का कोई रास्ता न मिले; तपती धूप में, जलती आग में, बूंद-बूंद करके, तड़फ-तड़फकर उड़ जाए, भाप बन जाए :

'हरीमे-शाहिदे-रअना का कुछ पता न मिला!'

सागर में मिलने का, सागर के साथ मिलन का, सागर के साथ एक हो जाने का कोई पता न मिले — ऐसी ही साधारण जिंदगी है।

जिसे तुम भोगी की जिंदगी कहते हो, उसे भोगी की जिंदगी कहना ठीक नहीं; भोग जैसा वहां कुछ भी नहीं है। भक्त भोगता है; भोगी क्या भोगेगा? जिसको तुम भोगी कहते हो, वह तो भोग के नाम पर सिर्फ धक्के खाता है। भोग की सोचता है, माना; भोगता कभी नहीं। भोग तो उसी के लिए है जिसे भगवान के हाथ का सहारा मिला। भोग सिर्फ भगवान का है। जिसने उस स्वाद को न जाना, वह केवल बिखरने और मिटने और रोज मरने को ही जिंदगी समझ रहा है।

नहीं, ऐसी जिंदगी में न तो किसी अर्थ का पता चलेगा। ऐसी जिंदगी में मंजिल की कोई खबर न मिलेगी। चले थे क्यों, जाते थे कहां, थे क्या — सब धुंधला-धुंधला, सब अंधेरा-अंधेरा रहेगा। पर जिंदगी की राह बड़ी कठिन है और परिणाम कुछ भी हाथ न आएगा।

जिसे तुम भोगी कहते हो, उसे वस्तुतः त्यागी कहना चाहिए। किसी दिन अगर भाषा का फिर से संशोधन हो तो जिसको तुम भोगी कहते हो, उसको त्यागी कहना चाहिए, और जिसको त्यागी कहते हैं, उसको भोगी कहना चाहिए। क्योंकि त्यागी ही जानता है कि भोग क्या है। और भोगी तो सिर्फ तड़फता है, सिर्फ सोचता है, सपने बनाता है, बड़े इंद्रधनुषी सपने बनाता है, बड़े रंगीन — मगर पकड़ो तो हाथ में राख भी हाथ नहीं आती; खाली हाथ खाली के खाली रह जाते हैं।

'अपने सीने से लगाये हुए उम्मीद की लाश
मुद्दतें जीस्त को नाशाद किया है मैंने।'

बस एक लाश लगाये हुए हैं उम्मीद की छाती से — वह भी लाश है आशा की कि मिलेगा कुछ, मिलेगा कुछ!

'अपने सीने से लगाये हुए उम्मीद की लाश... !'

सब आशा मुर्दा हैं; कभी कुछ मिलता नहीं — बस मिलने का खयाल है, भरोसा है, आज नहीं मिला, कल! कल भी यही होगा। और तुम्हारी आशा फिर आगे कल के लिए स्थगित हो जाएगी।

पीछे कल भी यही हुआ था। तब तुमने आज पर छोड़ दिया था; आज भी वही हो रहा है। ऐसे क्षण-क्षण करके जीवन रिक्त होता चला जाता है, और तुम उम्मीद की लाश को लिये ढोते फिरते हो।

तुमने कभी देखा, बंदरों में अकसर हो जाता है, छोटा बच्चा मर जाता है तो बंदरिया उसकी लाश को लिये सप्ताहों तक छाती से चिपटाये घूमती रहती है! तुम्हें देखकर उसे हंसी आयेगी। और जिस दिन तुम अपनी तरफ देखोगे, उस दिन तो तुम्हें भरोसा ही न आएगा कि उम्मीद की लाश तो तुम मुद्दतों से, जिंदगियों से...। वह बंदरिया का बच्चा तो कभी जिंदा भी था; उम्मीद कभी भी जिंदा न थी। वह सदा से ही लाश है। लाश होना उसका स्वभाव है।

'अपने सीने से लगाये हुए उम्मीद की लाश
मुद्दतें जीस्त को नाशाद किया है मैंने।'

और इस उम्मीद की लाश के कारण न मालूम कितने काल से जिंदगी को व्यर्थ ही खिन्न करता रहा हूं।

आशा बनाते हो, आशा फिर बिखरती है, टूटती है — दुख पाते हो। फिर आशा बनाते हो, फिर बनाते हो ताश के पत्तों का घर — फिर हवा का एक झोंका, और सब गिर जाता है। फिर बहाते हो कागज की एक नाव, फिर जरा-सी लहर, और नाव डूब जाती है। लाश को ढोते हो, उसका वजन भी, उसकी दुर्गंध भी, उसका बोझ भी — और फिर, उसके कारण जिंदगी रोज-रोज खिन्न होती है, उदास होती है।

तुम निराश क्यों होते हो बार-बार?

— आशा के कारण।

धन्यभागी हैं वे जिन्होंने आशा छोड़ दी; फिर उन्हें कोई निराश न कर सकेगा! जिन्होंने आशा ही छोड़ दी, उनके निराश होने की बात ही समाप्त हो गयी।

भोगी आशा में जीता है। आशा मुर्दा है। उससे न कभी कुछ पैदा हुआ न कभी कुछ पैदा होगा। आशा बांझ है, उसकी कोई संतान नहीं।

तो क्या तुम सोचते हो, भक्त कहते हैं कि निराशा में जियो? नहीं, भक्त कहते हैं कि आशा और निराशा तो एक ही सिक्के के पहलू हैं — तुम परमात्मा में जियो!

परमात्मा अभी और यहां है। आशा, कल और वहां, कहीं और। अगर ठीक से समझो तो आशा का नाम ही संसार है। संसार सदा वहां, कहीं और; परमात्मा अभी और यहां, इस क्षण! इस क्षण उसने तुम्हें घेरा है। इस क्षण सब तरफ से उसने तुम्हें घेरा है। हवाओं के झोंको में, सूरज की किरणों में, वृक्षों के सायों में — उसने ही तुम्हें घेरा है।

तुम्हारे चारों तरफ जो लोग बैठे हैं, वे भी परमात्मा के रूप हैं, उन्होंने तुम्हें घेरा है। वही तुम्हें पुकार रहा है। वही तुम्हारे भीतर श्वास बनकर चल रहा है।

परमात्मा अभी है, परमात्मा कभी उधार नहीं।

स्वामी राम कहते थे, परमात्मा नगद है। वह अभी और यहां है। संसार उधार है; वह कल और वहां है। कल और वहां को भोगोगे कैसे? भविष्य को कोई कैसे भोग सकता है, कहो? भविष्य

को भोगने का उपाय कहां है ? भविष्य है नहीं अभी; तुम उसे भोगोगे कैसे ? केवल वर्तमान भोगा जा सकता है।

संसार के त्याग का अर्थ है : भविष्य का त्याग। संसार के त्याग का अर्थ है : भविष्य के नाम पर जिस भोग को हम स्थगित करते जाते थे, उसका त्याग। संसार के त्याग का अर्थ है : इस क्षण में — इस जीवंत क्षण में — जागना। वहीं से भोग शुरू होता है।

भक्त भगवान को भोगता है। संसारी केवल भोगने की सोचता है। तुम सोचने के भ्रम में मत आ जाना। वस्तुतः सोचता वही है जो भोग नहीं पाता है। विचार वही करता है जो भोग नहीं पाता है। योजना वही बनाता है जो भोग नहीं पाता है। कल की कल्पना वही संजोता है जो भोग नहीं पाता है। जो अभी भोग रहा हो, वह कल की बात ही क्यों करे ?

तुमने कभी देखा, तुम जितने दुखी होते हो, उतनी भविष्य की ज्यादा विचारणा करते हो ! जितने सुखी होते हो, उतना ही भविष्य छोटा हो जाता है, वर्तमान बड़ा हो जाता है। अगर कभी-कभी एक क्षण को तुम आनंदित हो जाते हो तो भविष्य खो जाता है, वर्तमान ही रह जाता है।

संसार दुख का फैलाव है; परमात्मा, आनंद की अनुभूति।

जो व्यक्ति दुख में जी रहा है, वह कहीं से भी सुख पाने की चेष्टा करता है, टटोलता है — विषयों में, वासनाओं में, धन में, संपदा में, शरीर में। वह जगह-जगह टटोलता है। दुखी है ! कहीं से भी सुख का झरना हाथ आ जाए ! और जितनी देर लगती जाती है, उतना व्याकुल होता जाता है। जितना व्याकुल होता है, बेचैन होता है — उतना ही होश खोता चला जाता है, उतना और बेहोशी से टटोलता है। कभी यह पूछता ही नहीं अपने से कि 'जहां मैं टटोल रहा हूं, वहीं मैंने खोया है; पहले यह तो पूछ लूं कि मैंने खोया कहां; पहले यह तो ठीक से पूछ लूं कि मेरा आनंद कहां भटक गया है।'

कोई धन में खोज रहा है, बिना पूछे। धन में खोया है आनंद को ? अगर धन में खोया नहीं तो धन से पा कैसे सकोगे ? कोई पद में खोज रहा है, बिना पूछे। पद में खोया है ? अगर पद में खोया नहीं तो पा कैसे सकोगे ?

और इसके पहले कि दुनिया की बड़ी यात्रा पर जाओ, अपने भीतर तो खोज लो। इसके पहले कि तुम पड़ोसियों के घर में खोजने लगो कोई चीज जो खो गयी हो, अपने घर में तो खोज लो। बुद्धिमानी यही कहेगी, पहले अपने घर में खोज लो। यहां न मिले तो फिर पड़ोसियों के घर में खोजना; फिर चांद-सितारों पर खोजने जाना। कहीं ऐसा न हो कि तुम चांद-सितारों पर खोजते रहो और जिसे खोया था, वह घर में पड़ा रहे।

निकट से खोज शुरू करो। निकटतम से खोज शुरू करो। निकटतम तुम हो ! और जिसने भी स्वयं पर हाथ रखा, उसका हाथ परमात्मा पर पड़ गया। जिसने गौर से अपनी धड़कन सुनी, उसने परमात्मा की धड़कन सुनी। जो भीतर गया, वह मंदिर में पहुंच गया।

'वह भक्ति विषय-त्याग, संग-त्याग से संपन्न होती है।'

क्या मतलब हुआ विषय-त्याग, संग-त्याग से ? इतना ही मतलब हुआ कि विषय में मत खोजो, वासना में मत खोजो। पहले अपने में खोज लो। और जिसने भी अपने में खोजा, फिर कहीं और

खोजने न गया – मिल ही गया! इससे अपवाद कभी हुआ नहीं। यह शाश्वत नियम है। 'एस धम्मो सनंतनो', कि जिसने अपने में खोजा, पा ही लिया। हां, अगर खोजने में ही रस हो तो भूलकर अपने में मत खोजना। अगर खोजी ही बने रहने में रस हो तो भूलकर अपने में मत खोजना; क्योंकि वहां खोज समाप्त हो जाती है। वहां मिल ही जाता है। अगर खोजने में ही रस हो तो बाहर भटकते ही रहना। अगर पाना हो तो बाहर जाना व्यर्थ है। जो खोज रहा है, जो चैतन्य यात्रा पर निकला है, उसी चैतन्य में मंजिल छिपी है।

...'विषय-त्याग और संग-त्याग से संपन्न होती है' – इसलिए कि वहां जब यात्रा बंद हो जाती है तो तुम अपने पर लौटने लगते हो। जो व्यक्ति बाहर नहीं खोजता, वह कहां जाएगा? वह अपने घर आ जाएगा।

कोलम्बस अमरीका की खोज पर गया। तीन महीने का उसके पास सामान या, वह चुक गया। केवल तीन दिन का सामान बचा, और अभी तक कोई अमरीका की झलक नहीं, किनारों का कोई पता नहीं; जमीन कितनी दूर है, कुछ अनुमान भी नहीं बैठता। साथी घबड़ा गये। रोज सुबह पता लगाने के लिए वे कबूतर छोड़ते थे, क्योंकि अगर कबूतरों को कहीं भूमि मिल जाए तो वे वापस न लौटेंगे। लेकिन वे कबूतर थोड़ी-बहुत दूर चक्कर काटकर वापस जहाज पर लौट आते, कहीं भूमि न मिलती। पानी में तो ठहर नहीं सकते। उनका लौट आना इस बात की खबर होता कि उन्हें कोई जगह न मिली।

जिस दिन तीन दिन का भोजन रह गया, उस दिन कबूतर छोड़े – बड़ी उदासी में थे, डरते थे कि कहीं लौट न आएं, क्योंकि अब खात्मा है। अगर तीन दिन के भीतर जमीन नहीं मिलती तो गये। लौट भी नहीं सकते, क्योंकि तीन महीने का रास्ता पार कर आये। लौटकर भी तीन महीने लगेंगे पहुंचने में। तो पीछे जाने का तो कोई अर्थ नहीं है, आगे शून्य मालूम पड़ता है।

लेकिन उस दिन कबूतर वापस नहीं लौटे। नाच उठे आनंद से! कबूतरों को भूमि मिल गयी!

वासनाएं तुम्हारे भीतर से बाहर जाती हैं। विषय और संग-त्याग का इतना ही अर्थ है: वहां से भूमि हटा लो, ताकि उनको बाहर ठहरने की कोई जगह न मिले – तुम्हारा चैतन्य तुम्हीं पर वापस लौट आये। कहीं बाहर ठहरने की जगह मत दो। अगर बाहर ठहरने की जगह दी... तो यही तो तुम करते रहे हो अब तक, यही भटकाव हो गया है, यही संसार है।

विषय से कोई विरोध नहीं है। धन से क्या विरोध? पद से क्या विरोध? कोई निंदा नहीं है। सिर्फ इतनी ही बात है कि वहां अगर चेतना का पक्षी बैठ जाए तो फिर वह स्वयं पर नहीं लौटता। और तुम बाहर जितने उलझते जाते हो, उतना ही अपने पर आना कठिन होता जाता है।

इसलिए भक्ति की बड़ी ठीक व्याख्या की है: 'विषय-त्याग और संग-त्याग से भक्ति संपन्न होती है।' पक्षियों को बैठने की जगह नहीं रह जाती – चैतन्य के पक्षी अपने पर ही लौट आते हैं।

अगर वासना न हो तो विचार क्या करोगे?

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, 'विचारों से बड़े पीड़ित हैं। विचारों को बंद करना है।' मैं उनसे पूछता हूं, 'विचारों से पीड़ित हो, यह बात ठीक नहीं – वासना से पीड़ित होओगे।'

किस बात के विचार आते हैं? तो कोई कहता है, धन के विचार आते हैं; कोई कहता है, काम

वासना के विचार आते हैं। तो विचार थोड़े ही असली सवाल है। विचार तो वासना का अनुषंगी है, छाया की तरह है। जब तक तुम्हारी कामवासना में रस भरा हुआ है, जब तक तुम्हारी आशा की लाश छाती से लगी हुई है, जब तक तुम कहते हो कि कामवासना से सुख मिलनेवाला है — तब तक कामवासना के विचार आते रहेंगे। जिस दिन तुम कहोगे कि कामवासना में कोई सुख न रहा, उसी दिन कामवासना के विचार आने बंद हो जाएंगे।

विचारों को थोड़े ही हटाना पड़ता है। विचारों को तो हटा-हटाकर भी तुम न हटा पाओगे; क्योंकि अगर मूल मौजूद रहा, जड़ मौजूद रही, तो पत्ते तुम काटते रहो, शाखाएं काटते रहो — नयी निकल आएंगी।

वासना की जड़ कट जाए तो विचार के पत्ते अपने-आप आने बंद हो जाते हैं।

'अखंड भजन से भी भक्ति संपन्न होती है।'

विषय-त्याग, संग-त्याग से — फिर अखंड भजन से...।

अखंड भजन का अर्थ वैसा नहीं है जैसा तुमने समझ रखा है कि लोग लाउडस्पीकर लगाकर बैठ जाते हैं चौबीस घंटे; मोहल्लेभर के लोगों को परेशान कर देते हैं; अखंड भजन कर रहे हैं! अखंड उपद्रव है यह, अखंड भजन नहीं है। और पड़ोसियों ने क्या बिगाड़ा है? तुम्हें भजन करना हो करो, दूसरों को क्यों परेशान किये हो? सोना भी मुश्किल कर देते हो।

और यह तो धार्मिक देश है, इसमें अगर कोई अखंड भजन-कीर्तन करे और कोई पड़ोसी एतराज करे तो उसको लोग अधार्मिक समझते हैं। वे तो तुम पर कृपा करके माइक लगाये हुए हैं ताकि तुम्हारे कानों में भी भजन-कीर्तन का उच्चार पड़ जाए, तो शायद तुम्हारी भी मुक्ति हो जाए।

अखंड भजन का क्या अर्थ है?

अखंड भजन का अर्थ है: तुम्हारे भीतर परमात्मा की स्मृति अविच्छिन्न हो, विच्छिन्नता न आए। कोई राम-राम, राम-राम, राम-राम जपने का सवाल नहीं है। क्योंकि अगर तुम राम-राम भी जपो, कितने ही जोर से जपो, तो भी दो राम के बीच में खण्ड तो आ ही जाएगा। इसलिए वह अखंड तो नहीं होगा। वह तो कोई रास्ता न हुआ। तुम राम-राम कितनी ही तेजी से जपो, एक राम और दूसरे राम के बीच में जगह खाली छूट जाएगी, उतनी देर को परमात्मा का स्मरण न हुआ। इसलिए राम-राम जपने से अखंड भजन का कोई संबंध नहीं हो सकता।

अखंड भजन का अर्थ तो, अगर अखंड होना है भजन को, तो विचार से नहीं सध सकता यह काम, निर्विचार से सधेगा। अगर अखंड होना है तो विचार का काम न रहा, क्योंकि विचार तो खंडित है। एक विचार और दूसरे विचार के बीच में जगह है, अविच्छिन्न धारा नहीं है। अविच्छिन्न धारा तो स्मरण की हो सकती है। स्मरण का शब्द से कोई संबंध नहीं है।

जैसे मां भोजन बनाती है, बच्चा आसपास खेलता रहता है, लेकिन उसे स्मरण बना रहता है: वह कहीं बाहर तो नहीं निकल गया, आंगन के बाहर तो नहीं उतर गया, सड़क पर तो नहीं चला गया! ऐसा वह बीच-बीच में देखती रहती है। अपना काम भी करती रहती है और भीतर एक सातत्य स्मृति का बना रहता है।

कबीर ने कहा है, जैसे कि पनघट से स्त्रियां पानी भरकर घर लौटती हैं, आपस में बात करती हैं, हंसती हैं, मजाक करती हैं — घड़े उनके सिर पर सम्हले रहते हैं, उनको हाथ भी नहीं लगातीं, स्मरण बना रहता है कि उन्हें सम्हाले हैं। बात चलती है, चर्चा होती है, हंसी-मजाक होती है — लेकिन भीतर एक सतत स्मृति बनी रहती है घड़े को सम्हालने की।

जनक के दरबार में एक संन्यासी आया और उसने जनक को कहा कि मैंने सुना है कि तुम परम ज्ञान को उपलब्ध हो गये हो। लेकिन मुझे शक है, इस धन-दौलत में, इस सुख-सुविधा में, इन सुंदर स्त्रियों और नर्तकियों के बीच में, इस सब राजनीति के जाल में, तुम कैसे उसका अखंड स्मरण रखते होओगे।

जनक ने कहा, 'आज सांझ उत्तर मिल जाएगा।'

सांझ एक बड़ा जलसा था और देश की सबसे बड़ी नर्तकी नाचने आयी थी। सम्राट ने संन्यासी को बुलाया। चार नंगी तलवारें लिये हुए सिपाही उसके चारों तरफ कर दिये। वह थोड़ा घबड़ाया। उसने कहा, 'क्या मतलब ? यह क्या हो रहा है ?'

जनक ने कहा, 'घबड़ाओ मत। यह तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है।'

और हाथ में उसको तेल से लबालब भरा हुआ पात्र दे दिया कि जरा हिल जाए तो तेल नीचे गिर जाए; एक बूंद और न जा सके, इतना भरा हुआ। और उसने कहा कि नर्तकी का नृत्य चलेगा, तुम्हें सात चक्कर उस पूरे स्थान के लगाने हैं। बड़ी भीड़ होगी। हजारों लोग इकट्ठे होंगे। अगर एक बूंद भी तेल नीचे गिरा तो ये चार तलवारें नंगी तुम्हारे चारों तरफ हैं, ये फौरन तुम्हें टुकड़े-टुकड़े कर देंगी।

उस संन्यासी ने कहा, 'बाबा माफ करो! प्रश्न अपना वापस ले लेते हैं। हम तो सत्संग करने आये थे, जिज्ञासा लेकर आये थे, कोई जान नहीं गंवाने आये हैं। तुम जानो, तुम्हारा ज्ञान जाने। हो गये होओगे तुम उपलब्ध ज्ञान को, हमें कुछ संदेह भी नहीं है। पर हमें छोड़ो।'

पर जनक ने कहा, 'अब यह न हो सकेगा। प्रश्न जब पूछ ही लिया तो उत्तर जरूरी है।'

सम्राट था, संन्यासी के भागने का कोई उपाय न था। सुन्दर नर्तकी नाचती थी। हजार बार संन्यासी के मन में भी हुआ कि एक तरफ आंख उठाकर देख लूं; लेकिन एक बूंद तेल गिर जाए तो वे चारों तलवारें उसे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देंगी। उसने सात चक्कर लगा लिये, एक बूंद तेल न गिरा। आंखें उसकी तेल पर ही सधी रहीं।

पूछा जनक ने, 'उत्तर मिला ?'

उसने कहा, 'उत्तर मिल गया। और ऐसा उत्तर मिला कि मेरा पूरा जीवन बदल गया। पहली दफा कोई चीज इतनी देर तक सतत रही, अखंड रही — एक स्मृति कि बूंद तेल न गिर जाए।'

सम्राट ने कहा, 'तेरी तरफ चार तलवारें थी, मेरे पास कितनी तलवारें हैं, मेरे चारों तरफ — तुझे पता नहीं। तेरी जिंदगी तो थोड़े-से ही खतरे में थी; मेरी जिंदगी बड़े खतरे में है। और फिर इससे भी क्या फर्क पड़ता है कि तलवार है या नहीं, मौत तो सबको घेरे हुए है। जिसको मौत का स्मरण आ गया, उसे सातत्य भी समझ में आ जाएगा।'

अखंड भजन का अर्थ होता है : अविच्छिन्न धारा रहे; परमात्मा के स्मरण में एक क्षण को भी व्याघात न हो; तुम उससे विमुख न होओ; तुम्हारी आंखें उस पर ही लगी रहें; तुम्हारा हृदय उसकी ही तरफ दौड़ता रहे; तुम्हारे चैतन्य की धारा उसकी तरफ ही प्रवाहित रहे – जैसे गंगा सागर की तरफ अविच्छिन्न बह रही है – एक क्षण को भी व्याघात नहीं है, एक क्षण को भी बाधा नहीं है, अवरोध नहीं है।

'अव्यावृतभजनात्।'

कोई भी व्याघात न पड़े तो भजन! इसका अर्थ हुआ कि तुम्हारे जीवन के साधारण कृत्य ही जब तक परमात्मा के स्मरण की व्यवस्था न बन जाएं –

उठो तो उसमें उठो!

बैठो तो उसमें बैठो!

सोओ तो उसमें सोओ!

जागो तो उसमें जागो!

– जब तक ऐसा न हो जाए, तब तक तो व्याघात होता ही रहेगा।

तो ध्यान रखना : परमात्मा का स्मरण तुम्हारे और कृत्यों में एक कृत्य न हो, नहीं तो व्याघात पड़ेगा। जब तुम दूसरे कृत्यों में उलझोगे, तो परमात्मा भूल जाएगा। यह तुम्हारे जीवन का कोई एक हिस्सा न हो परमात्मा; यह तुम्हारे पूरे जीवन को घेर ले; यह तुम्हारे सारे जीवन पर छा जाए। मंदिर में जाओ तो परमात्मा की याद और दुकान पर जाओ तो परमात्मा की याद नहीं; तो फिर अखंड न हो सकेगा स्मरण। मंदिर में जाओ या दुकान पर, मित्र से मिलो कि शत्रु से, इससे उसकी याद में कोई फर्क न पड़े; उसकी याद तुम्हें घेरे रहे; उसकी याद तुम्हारे चारों तरफ एक माहौल बन जाए; तुम्हारी श्वास-श्वास में समा जाए।

'जाहिद शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर
या वोह जगह बता जहां पर खुदा न हो।'

फिर तुम शराब भी पियो तो उसी में, मस्जिद में बैठकर। फिर तुम्हारे सारे कृत्य उसी में लपेटे हुए हों। फिर तुम्हारा कोई कृत्य ऐसा न रह जाए जो उसके बाहर हो। क्योंकि जो कृत्य उसके बाहर होगा, वही व्याघात बन जाएगा।

तो परमात्मा और स्मृतियों में एक स्मृति नहीं है – परमात्मा महास्मृति है। वह और चीजों में एक चीज नहीं है – परमात्मा आकाश की तरह सभी चीजों को घेरता है। शराब की बोतल रखो तो भी आकाश ने उसे घेरा। भगवान की मूर्ति रखो तो उसे भी आकाश ने घेरा। परमात्मा तुम्हारा सब कुछ घेर ले। बुरा-भला सब तुम उसी पर छोड़ दो। बुरा भी उसका, भला भी उसका – तुम बीच से हट जाओ। क्योंकि तुम जब तक बीच में रहोगे, व्याघात पड़ेगा। तुम ही व्याघात हो। तुम्हारी मौजूदगी अखंड न होने देगी।

तो अखंड भजन का अर्थ हुआ : तुम मिट जाओ और परमात्मा रहे। तो यह कोई शोरगुल मचाने की बात नहीं है। यह तो बड़ी सूक्ष्म प्रक्रिया है। यह कोई बैंड-बाजे बजाने की बात नहीं है। यह कोई

चौबीस घंटे का अखंड कीर्तन कर दिया, इतना सस्ता नहीं है मामला। क्योंकि चौबीस घंटा तो दूर, अगर चौबीस पल भी अखंड कीर्तन हो जाए तो तुम मुक्त हो गये।

महावीर ने कहा है, अड़तालीस सैकंड अगर कोई व्यक्ति अविच्छिन्न ध्यान में रह जाए तो मुक्त हो गया! अड़तालीस सैकंड अविच्छिन्न ध्यान में रह जाए तो मुक्त हो गया! अविच्छिन्न ध्यान का अर्थ है : इस समय में, न एक विचार उठे, न एक वासना जगे, कोरा रह जाए। तुम्हें परमात्मा ऐसा घेर ले जैसा आकाश ने तुम्हें घेरा है। चुनाव न रहे। तुम्हारे सारे कृत्य उसी के समर्पण बन जाएं।

नानक सो गये थे, मक्का के पवित्र पत्थर की तरफ पैर करके, पुजारी नाराज हुए थे। कहा, 'हटाओ पैर यहां से। कहीं और पैर करो। इतनी भी समझ नहीं है साधु होकर?'

तो नानक ने कहा, 'तुम हमारे पैर वहां कर दो जहां परमात्मा न हो'।

कहानी कहती है कि पुजारियों ने उनके पैर सब दिशाओं में किये, जहां भी पैर किये, काबा का पत्थर वहीं हटकर पहुंच गया। कहानी सच हो न हो, पर कहानी में बड़ा सार है।

'जाहिद शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर
या वोह जगह बता जहां पर खुदा न हो।'

सार इतना ही है कि पुजारी ऐसी कोई जगह न बता सके जहां परमात्मा न हो।

तुम्हारा जीवन ऐसा भर जाए उससे कि ऐसी कोई जगह न बचे जहां वह न हो! इसलिए बुरे-भले का हिसाब मत रखना। अच्छा-अच्छा उसे मत दिखाना, अपना बुरा भी उसके लिए खोल देना। तुम्हारे क्रोध में भी उसकी ही याद हो। और तुम्हारे प्रेम में भी उसकी ही याद हो। और तुम तब हैरान होओगे कि तुम्हारा क्रोध क्रोध न रहा, तुम्हारे क्रोध में भी उसकी सुगंध आ गयी; और तुम्हारा प्रेम तुम्हारा प्रेम न रहा, तुम्हारे प्रेम में भी उसकी ही प्रार्थना बरसने लगी।

तुम जिस चीज से परमात्मा को जोड़ दोगे, वही रूपांतरित हो जाती है। तुम अपना सब जोड़ दो, तुम्हारा सब रूपांतरित हो जाएगा।

'अखंड भजन से संपन्न होता है।'

'उम्र-भर रेंगते रहने से कहीं बेहतर है
एक लम्हा जो तेरी रूह में वुसअत भर दे...'

— एक छोटा-सा क्षण भी जो तेरे प्राणों में विशालता को भर दे, विराट को भर दे!

'उम्र-भर रेंगते रहने से कहीं बेहतर है
एक लम्हा जो तेरी रूह में वुसअत भर दे
एक लम्हा जो तेरे गीत को शोखी दे दे
एक लम्हा जो तेरी लै में मसर्रत भर दे।'

एक क्षण भी काफी है परमात्मा के स्मरण का — 'जो तेरी रूह में वुसअत भर दे' — जो विराट को तेरे आंगन में बुला ले, तेरी बूंद में सागर को बुला ले। सीमाएं टूट जाएं, ऐसा एक क्षण पर्याप्त है जी लेने का।

'उम्र-भर रेंगते रहने से कहीं बेहतर है।'

फिर अखंड कीर्तन की तो बात ही क्या, अगर एक लम्हा, अगर एक क्षण विशालता का इतना अदभुत है, तो अखंड कीर्तन की तो बात ही क्या ! सतत भजन की तो बात ही क्या ! ओंठ भी हिलते नहीं सतत भजन में ! भीतर परमात्मा का नाम भी स्मरण नहीं किया जाता। जो किया जाता है, जो होता है, सभी में उसकी याद होती है। भोजन करो, स्नान करो, तो स्नान में भी जलधार उसी की है। जल गिरे तो परमात्मा ही गिरे तुम्हारे ऊपर !

मेरे गांव में बड़ी सुंदर नदी बहती है और गांव के लिए वही स्नान की जगह है। सर्दियों के दिन में लोग, जैसा सदा जाते हैं, सर्दियों के दिन में भी जाते हैं। मैं बचपन से ही चकित रहा कि गर्मियों में कोई भजन-कीर्तन करता नहीं दिखायी पड़ता। सर्दियों में लोग जब स्नान करते हैं नदी में तो जोर-जोर से भगवान का नाम लेते हैं, 'भोलेशंकर ! भोलेशंकर !' तो मैंने पूछा कुछ लोगों से कि गरमी में कोई भोलेशंकर का नाम नहीं लेता, भूल जाते हैं लोग क्या ? तो पता चला कि सर्दियों में इसलिए नाम लेते हैं कि वह नदी की ठंडक, और उनके बीच भोलेशंकर की आवाज परदे का काम करती है। वे 'भोलेशंकर' चिल्लाने में लग जाते हैं, उतनी देर डुबकी मार लेते हैं – ठंड भूल गयी !

लोग नदी से बचने को भगवान का नाम ले रहे हैं। और तब मुझे लगा कि ऐसा पूरी जिंदगी में हो रहा है। भगवान सब तरफ से तुम्हें घेरे हुए है, तुम उससे घिरना नहीं चाहते। तुम्हारे भगवान का नाम भी तुम्हारा बचाव है। परमात्मा का स्मरण करना हो तो नदी को बहने दो, वह उसी की है। वही उसमें बहा है, बह रहा है। तुम डुबकी ले लो। इतना बोध भर रहे कि परमात्मा ने घेरा। ऊपर उठो तो परमात्मा के सूरज ने घेरा। डुबकी लो तो पानी ने, परमात्मा के जल ने घेरा। भूखे रहो तो परमात्मा की भूख ने घेरा और भोजन लो तो परमात्मा की तृप्ति ने घेरा।

और यह कोई शब्दों की बात नहीं है कि ऐसा तुम सोचो, क्योंकि तुम सोचोगे तो वही बाधा हो जाएगी। ऐसा तुम जानो। ऐसा तुम सोचो नहीं। ऐसा तुम दोहराओ नहीं। ऐसा तुम्हारा बोध हो। ऐसा तुम्हारा सतत स्मरण हो।

'लोकसमाज में भी भगवदगुण-श्रवण और कीर्तन से भक्ति संपन्न होती है।'

'भगवदगुण-श्रवण' ...! भगवान के गुणों का श्रवण, और भगवान के गुणों का कीर्तन; उसके गुणों को सुनना और उसके गुणों को गाना।

सुनने से ... अगर तुमने ठीक-ठीक सुना, अगर तुमने हृदय के पट खोलकर सुना, अगर तुमने कान से ही न सुना, प्राणों से सुना, तो तुम्हारे भीतर भगवान के गुणों को सुनते-सुनते, उसके स्मरण का सातत्य बनने लगेगा। क्योंकि हम जो सुनते हैं, वही हमारा बोध हो जाता है। जो हम सुनते हैं, वह धीरे-धीरे हम में रमता जाता है। जो हम सुनते हैं, वह धीरे-धीरे हमारे रोएं-रोएं में व्याप्त हो जाता है। जो हम सुनते हैं सतत, वह धीरे-धीरे हमें घेर लेता है, हम उसमें डूब जाते हैं।

तो उसका श्रवण भी करो और उसके गुणों का कीर्तन भी करो। सुनने से ही कुछ न होगा। क्योंकि सुनना तो निष्क्रिय है और कीर्तन सक्रिय है। निष्क्रियता में सुनो, सक्रियता में अभिव्यक्त करो। अगर बोलो तो उसके गुणों की ही बात बोलो।

तुम कितनी व्यर्थ की बातें बोल रहे हो ! कितनी व्यर्थ की चर्चाएं कर रहे हो ! अच्छा हो उसके

सौंदर्य की बात करो। अच्छा हो उसके विराट अस्तित्व की थोड़ी चर्चा करो। उस चर्चा में तुम्हें भी याद आएगा; जिससे तुम चर्चा करोगे उसे भी याद आएगा। क्योंकि परमात्मा को हमने खोया नहीं है, केवल भूला है। इसलिए श्रवण का और कीर्तन का उपयोग है। अगर खो दिया हो तो क्या होने वाला है? जैसे कि तुम्हारे घर में खजाना हो और तुम भूल गये हो कि कहां दबाया था; तुम्हारे खीसे में हीरा रखा हो, और तुम भूल गये हो, तो अगर हीरे की कोई बात करे तो तुम्हें याद आ जाए।

तुमने कभी खयाल किया? घर से तुम चले थे, चिट्ठी डालनी थी, कोई मित्र मिल गया, तुम भूल ही गये थे दिन-भर, फिर उसने कुछ बात की और उसने कहा कि पत्नी का पत्र आया है — तत्क्षण तुम्हें याद आ गया कि तुम्हें पत्र डालना है। सुनकर भूली बात स्मरण हो आयी। जो तुम्हारे भीतर पड़ा था, वह चैतन्य में उठ आया।

'भगवदगुण-श्रवण और कीर्तन से... !'

और फिर जो तुम सुनो, उसे सुन लेना ही काफी नहीं है, क्योंकि तुम फिर-फिर भूल जाओगे। तुम्हारी नींद का कोई अंत नहीं है। उसे गाओ भी, गुनगुनाओ भी। रात जब सोने जाओ तो उसके ही गीत को गुनगुनाते सो जाओ, ताकि गुनगुनाहट तुम्हारी रातभर तुम्हारे सपनों में घेरे रहे; ताकि गुनगुनाहट रातभर तुम्हें ऊष्मा देती रहे; ताकि गुनगुनाहट रातभर तुम्हारे चारों तरफ पहरा देती रहे; ताकि तुम्हारी नींद में भी, तुम्हारी गहरी नींद में भी उसकी याद का सातत्य बना रहे।

खयाल किया तुमने, जो बात तुम रात को आखिरी सोचते हुए सोते हो, वही बात तुम्हें सुबह पहली याद आती है। न खयाल किया हो तो कोशिश करना। जो बात तुम्हारे चित्त में आखिरी होती है रात सोते वक्त, वही पहली होती है सुबह उठते वक्त; क्योंकि रातभर वह बात तुम्हारी चेतना के द्वार पर खड़ी रहती है। अगर तुम परमात्मा का स्मरण करते ही सो जाओ तो सुबह तुम पाओगे, आंख खुलते ही उसके स्मरण के साथ उठे हो।

सारी दुनिया के धर्मों ने, रात और सुबह, सोते वक्त और जागते वक्त, परमात्मा के स्मरण पर बहुत जोर दिया है, क्योंकि उस समय चेतना की भूमिका बदलती है : जागने से नींद, तो चेतना का गेयर बदलता है; फिर सुबह नींद से जागना, फिर चेतना की भूमिका बदलती है। इन संध्या के क्षणों में, इन बदलाहट के, क्रान्ति के क्षणो में, अगर परमात्मा का स्मरण तुम में व्याप्त होता जाए, तो तुम पाओगे : धीरे-धीरे तुम्हारे खून के कतरे-कतरे में परमात्मा की छाप लग गयी। तुम्हारा पूरा अस्तित्व उसे गुनगुनाने लगेगा।

'परंतु भक्ति-साधन मुख्यतया महापुरुषों की कृपा से अथवा भगवदकृपा के लेशमात्र से होता है।'

नारद कहते हैं, यह सब ठीक, यह साधन ठीक — लेकिन इतने से ही न हो जाएगा। वस्तुतः तो महापुरुष की कृपा या भगवत्कृपा से, उसके लेशमात्र से हो जाता है। ये तुम्हारे उपाय हैं जरूरी, पर इतने को ही काफी मत समझ लेना। यहीं भक्ति का अन्य साधनों से भेद है। अन्य साधन कहते हैं : अगर ठीक से किया तो परमात्मा उपलब्ध हो जाएगा; भक्ति कहती है : यह तो सिर्फ तैयारी है, इससे नहीं हो जाएगा, अंततः तो वह कृपा से ही उपलब्ध होगा — महापुरुषों की, और भगवत्कृपा से।

'परंतु महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।'

सदगुरु को खोजना बड़ा कठिन है –

संग-दुर्लभ, अगम्य और अमोघ !

दुर्लभ है, क्योंकि पहले तो जिन्होंने पा लिया सत्य को, ऐसे लोग बहुत कम, फिर जिन्होंने पा लिया, उनको तुम पहचान सको, ऐसी पहचाननेवाली आंखें बहुत कम। फिर तुम पहचान भी लो, दुर्लभता समाप्त हो जाए, तुम पहचान लो किसी को, तो अगम्य। फिर पहचान के बाद सदगुरु तुम्हें ऐसे जगत में ले चलता है जो तुम्हारा पहचाना हुआ नहीं है, अगम्य है, समझ में नहीं आता है। तुम्हारी समझ डगमगाती है, तुम्हारे पैर डगमगाते हैं, तुम घबड़ाते हो। यह अपरिचित लोक है; नाव ऐसी तरफ ले जाता है, जहां तुम कभी गये नहीं, नक्शे भी तैयार नहीं, खतरा ही खतरा है।

तो पहले तो मिलना कठिन, मिल जाए तो पहचानना कठिन, पहचान में भी आ जाए तो उसके साथ जाना कठिन – अगम्य है ! लेकिन अगर तुम साथ चले जाओ तो अमोघ है, फिर वह रामबाण है; फिर उसकी जरा-सी भी कृपा पर्याप्त है।

'यूं अचानक तेरी आवाज़ कहीं से आयी
जैसे परबत का जिगर चीर के झरना फूटे
या ज़मीनों की मुहब्बत में तड़प कर नागाह
आसमानों से कोई शोख सितारा टूटे।
शहद-सा घुल गया तल्खावा-ए-तन्हाई में
रंग-सा फैल गया दिल के सियाहखाने में
देर तक यूं तेरी मस्ताना सदाएं गूंजी
जिस तरह फूल चमकने लगें वीरानों में।
यूं अचानक तेरी आवाज़ कहीं से आयी...!

सदगुरु का मिलना अचानक है। खोजते रहो, खोजते-खोजते अचानक...। क्योंकि कोई बंधे हुए नक्शे नहीं हैं, कोई पता-ठिकाना नहीं है। इसलिए अचानक...। कहां मिलेगा, इसको बताया नहीं जा सकता।

सदगुरु कोई जड़वस्तु नहीं है – चैतन्य का प्रवाह है; ठहरा हुआ नहीं है – गत्यात्मक है, गतिमान है।

एक सूफी फकीर एक वृक्ष के नीचे बैठा था, एक युवक ने आकर पूछा कि 'मैं सदगुरु की तलाश में हूं, मुझे कुछ कसौटी बताएंगे कि मैं सदगुरु को कैसे पहचानूं ?' तो उस फकीर ने उसे कसौटी बतायी कि ऐसे-ऐसे वृक्ष के नीचे अगर बैठा हुआ मिल जाए, तो समझना...।

वह युवक गया। उसने बहुत खोजा; कहते हैं, तीस साल...। लेकिन वैसा वृक्ष कहीं न मिला, और न वृक्ष के नीचे बैठा हुआ कोई सदगुरु मिला। कसौटी पूरी न हुई। बहुत लोग मिले लेकिन कसौटी पूरी न हुई, वह वापस लौट आया। जब वह वापस आया तो वह हैरान हुआ कि यह तो बूढ़ा उसी वृक्ष के नीचे बैठा था। इसने कहा कि महानुभाव, पहले ही क्यों न बता दिया कि यही वह वृक्ष है। उसने कहा, 'मैंने तो बताया था, तुम्हारे पास आंख न थी। तुमने वृक्ष देखा ही नहीं। मैं तब व्याख्या

ही कर रहा था वृक्ष की, तब तुम सुने और भागे। यही वृक्ष है, और मैं वही आदमी हूं। और तुम्हारी झंझट तो ठीक, मेरी झंझट सोचो कि तीस साल मुझे बैठा रहना पड़ा, कि तुम एक-न-एक दिन आओगे।

'यूं अचानक तेरी आवाज़ कहीं से आयी
जैसे परबत का जिगर चीर के झरना फूटे
या ज़मीनों की मुहब्बत में तड़प कर नागाह
आसमानों से कोई शोख सितारा टूटे।'

जमीन की मुहब्बत में तड़पकर...।

शिष्य तो जमीन जैसा है; गुरु आकाश जैसा है।

'या जमीनों की मुहब्बत में तड़प कर नागाह
आसमानों से कोई शोख सितारा टूटे।
शहद-सा घुल गया तल्खावा-ए-तन्हाई में।'

वह जो पीड़ा से भरी हुई तन्हाई थी, अकेलापन था... शहद-सा घुल गया!

'शहद-सा घुल गया तल्खावा-ए-तन्हाई में
रंग-सा फैल गया दिल के सियाहखाने में।'

अंधेरी रात थी जैसे दिल में, वहां एक नया रंग उगा, एक नयी सुबह हुई।

'देर तक यूं तेरी मस्ताना सदाएं गूंजी
जिस तरह फूल चमकने लगें वीरानों में।'

जैसे अचानक मरुस्थलों में फूल खिल गये हों! इतना ही आश्चर्यजनक है सद्गुरु का मिल जाना, जैसे मरुस्थल में अचानक फूल खिल जाएं, जैसे पत्थर से टूटकर अचानक झरना फूट पड़े, जैसे आसमान से कोई तारा जमीन की मुहब्बत में नीचे उतर आये!

संग दुर्लभ है। लेकिन जो खोजते हैं, उन्हें मिलता है। खोजनेवाले चाहिए। कितना ही दुर्लभ हो, खोजनेवालों को सदा मिला है। इसलिए तुम थक मत जाना और हार मत जाना। प्यास हो तो तुम्हें जल का झरना मिल ही जाएगा। असल में परमात्मा प्यास बनाने के पहले जल का झरना बनाता है; भूख देने के पहले भोजन तैयार करता है। प्यास तो बाद में बनायी जाती है, झरने पहले बनाये जाते हैं। आदमी जमीन पर बहुत बाद में आया, झील और झरने बहुत पहले आये। आदमी बहुत बाद में आया, वृक्षों में लगे फल बहुत पहले आये।

ध्यान रखना, जिस बात की भी तुम्हारे भीतर खोज है, वह खजाना कहीं-न-कहीं तैयार ही होगा, अन्यथा खोज की आकांक्षा ही नहीं हो सकती थी। महापुरुषों का संग दुर्लभ है माना, मगर निराश मत होना। दुर्लभ इसलिए सूत्र कह रहा है ताकि खोजने में जल्दी मत करना, धीरज रखना। और कोई मतलब नहीं है दुर्लभ का। दुर्लभ का यह मतलब नहीं है कि मिलेगा ही नहीं। मिलेगा, धीरज रखना। धैर्य से खोजना।

अगम्य है। और जब सदगुरु तुम्हें अगम्य के मार्ग पर ले जाने लगे, जिसे तुम्हारी बुद्धि न समझ पाये – समझ ही न पाएगी, क्योंकि मार्ग प्रेम का है, अगम्य ही होगा, तर्कातीत होगा – तो घबड़ाना

मत। इतनी हिम्मत रखना और साहस रखना। पागल होने का साहस रखना। दीवाने होने की हिम्मत रखना। भरोसा रखना।

इसी को श्रद्धा कहा है। श्रद्धा की जरूरत इसीलिए है, क्योंकि जहां अगम्य का द्वार खुलेगा, वहां तुम क्या करोगे, अगर श्रद्धा न हुई, वहां अगर तुमने कहा, पहले हम समझेंगे तब भीतर चलेंगे, तो रुकावट हो जाएगी; क्योंकि समझ तो तभी आ सकती है जब तुम भीतर पहुंच जाओ। और तुमने अगर यह शर्त रखी कि हम पहले समझेंगे, फिर भीतर चलेंगे...।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'संन्यास तो लेना है, लेकिन पहले समझ लें कि संन्यास क्या है।' मैं उनको कहता हूं, 'स्वाद लिये बिना तुम कैसे समझोगे ? हुए बिना कैसे समझोगे। हो जाओ, समझ लेना पीछे।

वे कहते हैं, 'यह कैसी बात ? पहले समझ लें, सोच लें, विचार लें, फिर हो जाएंगें।' वे कभी भी न हो पाएंगे। यह मार्ग अगम्य का है, अनजान का है, अज्ञेय का है।

लेकिन सूत्र बड़ी अमूल्य बात कह रहा है : 'दुर्लभ है, अगम्य है, पर अमोघ है।' एक बार हाथ हाथ में आ गया तो चूक नहीं है, रामबाण है। फिर तीर लग ही जाएगा। फिर तीर छिद ही जाएगा, आर-पार।

'उस भगवान की कृपा से ही महापुरुषों का संग भी मिलता है।'

यह संग भी, नारद कहते हैं, परमात्मा की कृपा से ही मिलता है। क्योंकि भक्त की सारी धारणा ही कृपा पर खड़ी है, प्रसाद पर। तुम्हें सदगुरु भी मिलता है तो भी उसकी ही कृपा से मिलता है, तुम्हारी खोज से नहीं; जैसे सदगुरु के द्वारा वही तुम्हारे पास आता है; जैसे सदगुरु में वही तुम्हें मिलता है। तुम अभी इतने तैयार न थे कि सीधा-सीधा मिल सके, तो थोड़े परदे की ओट से मिलता है। हाथ तो उसी का है – दस्ताने में है। हाथ तो उसी का है। सदगुरु के भीतर भी आवाज उसी की है। लेकिन कोरे आकाश से अगर आवाज आये तो तुम समझ न पाओगे, घबड़ा जाओगे।

समझो कि यहां यह खाली कुर्सी हो और आवाज आये तो अभी तुम भाग खड़े हो जाते हो, फिर तो कहना ही क्या, फिर तो तुम लौटकर भी न देखोगे। आवाज अभी भी शून्य से ही आ रही है।

सदगुरु के द्वारा भी वही पुकारता है, वही बुलाता है, उसके ही हाथ तुम्हारी तरफ आते हैं – लेकिन हाथ तुम्हारे जैसे होते हैं, तुम भरोसा कर लेते हो; तुम हाथ हाथ में दे देते हो। देने पर पता चलेगा कि हाथ तुम्हारे जैसे नहीं थे; दिखाई पड़ते थे, धोखा हुआ।

सदगुरु परमात्मा ही है। इसलिए सूत्र कहता है : 'वह भी उसकी ही कृपा से मिलता है।'

'जो कुछ है वो, है अपनी ही रफ्तोर-अमल से
बुत है जो बुलाऊं, जो खुद आये तो खुदा है।'

तुम्हारे बुलाने से भी आता है, ऐसा भी नहीं – 'जो खुद आये खुदा है'। मूर्तियां हैं जिन्हें तुम बुलाते हो।

'बुत है जो बुलाऊं, जो खुद आये तो खुदा है।'

वह आता है अपने ही कारण। तुम जब भी तैयार हो जाते हो, तभी आ जाता है। ठीक से

समझो तो ऐसा कहना चाहिए कि आता तो पहले भी रहा था, तुम पहचान न पाए। तुम जब सम्हले तो तुमने पहचाना; आता तो पहले भी रहा था; बुलाता तो पहले भी रहा था; तुमने न सुना, तुम्हारे कान तैयार न थे, तुम कुछ और सुनने में लगे थे।

'क्योंकि भगवान में और उसके भक्त में भेद का अभाव है।' इसलिए सदगुरु में भी वही आता है।

'क्योंकि भगवान में और उसके भक्त में भेद का अभाव है।'

'दिल हर कतरा है साज़े अनलबह्र
हम उसके हैं, हमारा पूछना क्या !'

हर बूंद का एक साज है और साज से निरंतर एक ध्वनि निकलती है कि मैं सागर हूं। हर बूंद का एक साज है, एक गीत है। और हर बूंद निरंतर गाती रहती है कि मैं एक सागर हूं।

'दिले हर कतरा है साज़े अनलबहर
हम उसके हैं, हमारा पूछना क्या !'

अब हमारी तो बात ही क्या कहनी ! हम उसके हैं !

तुम भी अगर अपने भीतर झांकोगे तो तुम एक ही आवाज पाओगे; तुम्हारे भी परमात्मा होने की आवाज पाओगे – जैसे हर बूंद में सागर होने की आवाज है। हर बूंद का साज है कि मैं सागर हूं, और हर चैतन्य का साज है कि मैं परमात्मा हूं। जिसने पहचान लिया, वह सदगुरु। जिसने अपनी ही ध्वनि को पहचान लिया, वह सदगुरु। जिसने अभी नहीं पहचाना है, खोजना है – लेकिन फर्क कुछ भी नहीं है।

उस भगवान की कृपा से ही सत्पुरुषों का संग मिलता है, क्योंकि भगवान में और उसके भक्त में भेद का अभाव है।

'उस सत्संग की ही साधना करो।'

'तदेव साध्यतां, तदेव साध्यताम् !'

उसकी ही साधना करो !

सत्संग की ही साधना करो !'

सदगुरु की खोज करो !

किन्हीं हाथों पर भरोसा करो और हाथ हाथ में दे दो। ऐसे ही तुम परमात्मा के हाथ में अपने को सौंप पाओगे। और ऐसे ही परमात्मा तुम्हारे हाथ को अपने हाथ में ले पाएगा।

तो भक्ति की साधना क्या हुई ? सत्संग की साधना हुई। सार क्या हुआ ? ...कि ऐसे किसी व्यक्ति के साथ हो जाना है जिसने पा लिया हो। क्योंकि है तो तुम्हारे भीतर भी, लेकिन तुम्हारा साज सोया हुआ है। किसी ऐसी वीणा के पास पहुंच जाना है, जिसका साज बज उठा हो, ताकि उसकी प्रतिध्वनि में तुम्हारे तार भी कंपने लगें।

संगीतज्ञ कहते हैं कि अगर कोई कुशल संगीतज्ञ एक वीणा पर बजाए और दूसरी वीणा कमरे में चुपचाप रखी हो तो धीरे-धीरे उसके तार भी झंकृत होने लगते हैं। तरंगें जागी वीणा की, सोयी वीणा को भी जगाने लगती हैं : ध्वनि की चोट सोयी वीणा को भी खबर देती है कि मैं भी वीणा हूं।

उसके भीतर भी कोई जागने लगता है। उसके तार भी कंपने लगते हैं। रोमांच हो आता है उसे भी। दूर की खबर आती है ! अपने अस्तित्व का बोध आता है।

सत्संग भक्त की साधना है।

मीरा मिल जाए तो उसके साथ हो लो। चैतन्य मिल जाएं, उनके साथ हो लो। तुम्हें अपनी याद नहीं है, उन्हें अपनी याद आ गयी है — उनके साथ तुम्हें भी धीरे-धीरे तुम्हें अपनी याद आ जाएगी। कुछ और करना नहीं है।

सदगुरु तो दर्पण है — उसमें तुम्हें अपना चेहरा धीरे-धीरे दिखायी पड़ने लगेगा; भूली-बिसरी याद आ जाएगी।

'उजाले अपनी यादों के हमारे पास रहने दो।
न जाने किस गली में जिंदगी की शाम हो जाए।'

तो भक्त इतना ही कहता है अपने गुरु से

'उजाले अपनी यादों के हमारे पास रहने दो।
न जाने किस गली में जिंदगी की शाम हो जाए।'

न मालूम किस दिन अंधकार घेर ले ! बस तुम्हारा उजाला हमारे पास हो तो काफी। याद भी तुम्हारे उजाले की हमारे पास हो तो काफी, क्योंकि तब हम भी उजाले हो गये। फिर कितना ही घना अंधेरा हो, अमावस की रात हो, कितना ही घेर ले, फिर भी हम उजाले ही रहेंगे।

बुद्धों के पास तुम्हें अपने उजाले की याद आयी।

तो भक्त की साधना इतनी ही है कि वह सत्संग खोज ले।

भक्ति संक्रामक है।

'तदेव साध्यतां, तदेव साध्यताम् !'

आज इतना ही।

परम मुक्ति है भक्ति

दसवां प्रवचन

प्रश्नसार

- मुझे कभी लगता है कि मैंने आपसे बहुत-बहुत पाया है और कभी यह भी कि मैं आपसे बहुत चूक रहा हूं। ऐसा क्यों?
- एक भक्त भगवान होना पसंद करे और दूसरा सिर्फ भक्त रहना चाहे, तो दोनों में श्रेष्ठ कौन है?
- 'भक्त्या अनुवृत्या' ऐसा कहा है, तो भक्ति साकार ही होनी चाहिए। सूर्य सूर्यलोक में साकार ही है, वैसे ही भगवान भी साकार क्यों नहीं?
- आशीर्वाद क्या है? गुरु शिष्य के सिर पर क्या प्रेषित करता है? क्या आशीर्वाद लेने की क्षमता होती है?
- कल के प्रवचन में अचानक कुछ घटा! ...प्रणाम स्वीकार करें!
- क्या भक्ति-सूत्र के रचयिता के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

पहला प्रश्न : मुझे कभी लगता है कि मैंने आपसे बहुत-बहुत पाया और कभी यह भी कि मैं आपसे बहुत चूक रहा हूं। ऐसा क्यों है ?*

● जितना ज्यादा पाओगे उतना ही लगेगा कि चूक रहे हो। जितनी होगी तृप्ति, उतनी ही और बड़ी तृप्ति की आकांक्षा जगेगी।

प्यासे को जब पहली घूंट जल की, गले से उतरती है तो पहली दफा प्यास का पूरा-पूरा पता चलता है। प्यास का पता चलने के लिए भी जल की थोड़ी जरूरत है।

और परमात्मा की खोज तो ऐसी है कि शुरू होती है, पूरी नहीं होती। पूरी हो जाए तो परमात्मा सीमित हो गया, असीम न रहा। पूरी हो जाए तो परमात्मा का भी अंत आ गया, परिधि आ गयी, सीमांत आ गया।

इसीलिए तो परमात्मा निराकार है, तुम उसे चुका न पाओगे। तुम चुक जाओगे, परमात्मा न चुकेगा। उतरोगे सागर में जरूर, दूसरा किनारा कभी न आयेगा। दूसरा किनारा है ही नहीं। यही तो अर्थ है विराट का। अगर तुम दूसरा किनारा भी छू लो, थाह पा लो, फिर विराट कैसा विराट रहा! जो तुम्हारी मुट्ठी में आ जाए वह तो तुमसे भी छोटा हो जाएगा। जो तुम्हारे गले में तृप्ति बन जाए, उसकी सामर्थ्य तुम्हारे गले की सामर्थ्य से ज्यादा न रह जाएगी।

तो ये दोनों घटनाएं साथ-साथ घटेंगी। तृप्ति भी मालूम होगी, गहन तृप्ति मालूम होगी और अतृप्ति मिटेगी नहीं। यही तो खोजी की व्याकुलता है : सरोवर के तट पर खड़ा है, डुबकियां लेता है, जलधार बरसती है; प्यास बुझती भी लगती है, बुझती भी नहीं; प्यास बुझती भी है और बढ़ती भी है। साथ-साथ ऐसा विरोधाभास घटता है।

तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं। अगर प्यासे ही रहे और तुम्हें मुझसे कुछ भी न मिले तो भी तर्क को समझ में आ जाए, बात खत्म हो गयी। यह मंदिर तुम्हारे लिए नहीं फिर, कहीं और खोजना होगा। यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं फिर, कहीं और खोजना होगा। यह सरोवर तुम्हारे कंठ से मेल नहीं खाता, कहीं और खोजना होगा। तो बात साफ हो जाती है।

या, तृप्ति हो जाए, प्यास बिलकुल खो जाए, तो भी हल हो जाता है। हल इतना आसान नहीं

है। और हल ऐसा हो तो दुर्भाग्य है, सौभाग्य नहीं है। क्योंकि अगर तुम्हारी प्यास बिलकुल ही मिट जाए तो तुम्हारे जीवन का अर्थ भी खो गया। फिर जीवन में सार क्या होगा ? फिर जीवन में गीत के अंकुरण कैसे होंगे ? फिर नाचोगे कैसे ?

ध्यान रखना, न तो अतृप्त नाच सकता है, क्योंकि नाचने का कोई कारण नहीं। अतृप्त रो सकता है, शिकायत कर सकता है; नाचेगा कैसे ? तृप्त भी नहीं नाच सकता, क्योंकि फिर नाचने का कोई कारण न रहा। अतृप्ति और तृप्ति के बीच में एक पड़ाव है; वहां नृत्य है; वहां आनंद का आविर्भाव है।

और जब तुम समझोगे धीरे-धीरे, तो तुम जल के लिए ही परमात्मा को धन्यवाद न दोगे, प्यास के लिए भी धन्यवाद दोगे। तब तुम प्रार्थना करोगे कि जल भी बरसाते जाना और प्यास भी बढ़ाते जाना।

इन दोनों के मध्य में जीवन है। इन दोनों के मध्य में जीवन का संतुलन है, जीवन की ऊंचाइयां हैं, गहराइयां हैं।

अगर जीवन में विरोधाभास न हो तो जीवन मुर्दा हो जाता है — इस किनारे या उस किनारे। धार तो जीवन की मध्य में है — न इस किनारे न उस किनारे। तो इस किनारे से तो तुम्हारी नाव छुड़ा लूंगा। इसलिए थोड़ी तृप्ति होती मालूम पड़ेगी। अतृप्ति का किनारा दूर हटता जाएगा और तृप्ति का किनारा पास नहीं आएगा। मंझधार में पड़ जाओगे। और जिसने मंझधार में जीना सीखा, उसी ने परमात्मा में जीने की कला जानी।

किनारे का मोह भय के कारण है। तृप्ति की आकांक्षा भी मुर्दादिली का हिस्सा है। वह कोई जिंदादिलों की बात नहीं है। जिंदादिल आग चाहते हैं, वर्षा भी चाहते हैं — वर्षा ऐसी चाहते हैं कि कैसी भी आग हो तो मिट जाए; और आग ऐसी चाहते हैं कि कैसी भी वर्षा हो तो न बुझ पाये। इन दोनों के बीच में जिसने जीना सीखा, उसी ने जीना जाना।

ठीक पूछते हो। कभी लगेगा, बहुत कुछ पाया और कभी लगेगा, सब चूके जा रहे हो। और इन दोनों में विरोध मत देखना। ये दोनों बातें मैं एक साथ ही कर रहा हूं। ये दोनों बातें एक साथ ही होनी चाहिए।

तुम्हारी अड़चन भी मैं समझता हूं, क्योंकि तुम चाहते हो : निपटारा हो, इस पार कि उस पार। या तो सिद्ध हो जाए कि तृप्ति होती ही नहीं, अतृप्ति ही भाग्य है, अतृप्ति ही नियति है, तो ठीक है, उससे ही राजी हो जाएं, सांत्वना कर लें, अपने घर बैठ जाएं, फिर किसी यात्रा पर जाना नहीं, जड़ हो जाएं; और या फिर पक्का हो जाए कि तृप्ति पूरी हो जाती — तो या तो अतृप्ति पर ठहर जाएं या तृप्ति पर ठहर जाएं!

ठहर जाने का तुम्हारा मन है। और परमात्मा चाहता है : तुम चलते ही रहो, चलते ही रहो, क्योंकि चलना जीवन है!

कब तुम्हें दिखायी पड़ेगा चलने का सौंदर्य — चलते जाने का सौंदर्य ?
रोज नये-नये अभियान उठें!
रोज नये शिखरों का दर्शन हो!
हां, पैर में बल मिलता जाए!

यात्रा से थकान न मिले!

पैर में बल मिलता जाए और नये शिखर उभरते चले आएं!

जिन्होंने भी परमात्मा को जाना, वे मुर्दा नहीं हो गये हैं। उनके जीवन में पहली दफा वास्तविक जीवन की ऊर्जा का आविर्भाव हुआ है।

पर तुम इसे न समझ पाओगे, क्योंकि तुम्हारे गणित में बड़ी छोटी-छोटी बातें हैं। तुम्हारा गणित ही बड़ा छोटा है। तुम हिसाब ही कौड़ियों का कर रहे हो और यहां हीरे बरस रहे हैं। तुम हिसाब कौड़ियों का कर रहे हो और तुम्हें कौड़ियां दिखायी नहीं पड़तीं, तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हो। परमात्मा को क्या लेना-देना कौड़ियों से?

सिक्के मत मांगो – तृप्ति के या अतृप्ति के!

जीवन की क्रांति मांगो!

जीवन की चुनौती मांगो!

जीवन का अभियान मांगो!

हां, शक्ति दे और नये शिखर दे!

पैरों में बल दे और कभी ऐसी घड़ी न आये कि चलने को कोई स्थान न रह जाए!

नये तल चैतन्य के छूते चलो!

आगें ही आगे जाना है!

तुम कहोगे, हम तो यही सोचते थे कि जल्दी ही पड़ाव आ जाएगा, कहीं रुक जाएंगे।

तुम्हारी रुकने की इतनी आकांक्षा क्यों है?

तुम्हारी रुकने की आकांक्षा में ही ईश्वर का विरोध छिपा है!

ईश्वर अब तक नहीं रुका, तुम रुकना चाहते हो!

ईश्वर अभी भी बीज में अंकुर तोड़ेगा, वृक्षों में फूल लगायेगा।

अभी भी तारे बनाये चला जाता है नये!

अभी भी झरने बहाये चला जाता है!

अभी भी मेघ बनेंगे और बरसेंगे!

ईश्वर थका नहीं, चलता चला जाता है!

जो सदा चलता चला जाता है – सदा, सदैव – उसी को तो हम ईश्वर कहते हैं। जो थक जाता है, चुक जाता है, जिसकी सीमा आ जाती है – वही तो मन है; जो जल्दी ही बैठ जाना चाहता है; जो कहता है: बस, बहुत हो गया...!

इस सीमा को तोड़ो!

परमात्मा के साथ चलना हो तो अनंत की यात्रा है। और जिस दिन तुम्हें यह समझ में आएगा, उस दिन तुम पाओगे: मंजिल नहीं है; यात्रा ही मंजिल है; हर कदम मंजिल है। तब तुम आनंद से नाचोगे भी, अहोभाव से गीत भी गाओगे; लेकिन बैठकर मुर्दा चट्टान की तरह न हो जाओगे, चलते ही रहोगे।

और-और नये फूल लगने हैं तुम में अभी !

तुम्हें अपनी ही सम्भावनाओं का कुछ पता नहीं। तुम्हें अपने ही होने का कुछ पता नहीं कि तुम कितने हो सकते हो !

'एक मौज मचल जाए तो तूफां बन जाए !'

एक छोटी-सी लहर भी, अगर मचल जाए...

'एक मौज मचल जाए तो तूफां बन जाए' ... क्योंकि छोटी-सी लहर में सागर भी छिपा है।

'एक फूल अगर चाहे गुलिस्तां बन जाए !'

एक छोटा-सा फूल सारी पृथ्वी को फूलों से भर सकता है।

एक बीज सारी पृथ्वी को हरा कर सकता है, फैलता चला जाए ...एक बीज में करोड़ बीज लगते हैं; करोड़ों बीजों में और करोड़ों बीज लगेंगे !

एक बीज मिल जाए पृथ्वी को तो सारी पृथ्वी हरी हो सकती है।

'एक मौज मचल जाए तो तूफां बन जाए
एक फूल अगर चाहे तो गुलिस्तां बन जाए।
एक खून के कतरे में है तासीर इतनी
एक कौम की तारीख का उनमां बन जाए !'

एक छोटे-से खून के कतरे में इतना छिपा है कि एक पूरी जाति के जीवन का शीर्षक बन जाए, इतिहास का शीर्षक बन जाए।

तुम्हें अपने होने का पता नहीं, तुम कौन हो ! तुमने जहां अपने को पाया है, वह तुम्हारे भवन की सीढ़ियां हैं; तुम अपने भवन में अभी प्रविष्ट भी नहीं हुए। तुम जहां ठहर गये हो, वहां तो द्वार भी नहीं है, सीढ़ियां ही हैं; तुमने भवन में प्रवेश भी नहीं किया।

तुम इस किनारे पर बैठ गये हो, जिसको तुम संसार कहते हो। और अगर कभी तुम्हें कोई जगा देता है इस किनारे से – ऐसे तो तुम जगते नहीं आसानी से; ऐसे तो तुम बड़ी बाधाएं डालते हो; ऐसे तो तुम हर चेष्टा करते हो, हर उपाय करते हो कि तुम्हारी नींद न टूट जाए – जो तुम्हारी नींद तोड़ता है वह दुश्मन जैसा मालूम पड़ता है।

लेकिन बुद्ध और क्राइस्ट और कृष्ण जैसे लोग तुम्हारे पीछे पड़े ही रहें, तो तुम आंख खोलते हो। तो तत्क्षण तुम पूछते हो कि दूसरा किनारा कितनी दूर है, ताकि तुम उस किनारे सो जाओ। यहां से तुम हटाये जाओ तो जल्दी ही तुम दूसरे किनारे को यही किनारा बना लेना चाहते हो। जड़ होने की तुम्हारी आदत बड़ी गहरी है।

जड़ता का मोह मंजिल की तलाश है।

चैतन्य तो प्रवाह है, यात्रा है। चैतन्य की कोई मंजिल नहीं।

पत्थर ठहर जाता है;

फूल कैसे ठहरे !

फूल को तो जाना है, और होना है !

फूल को तो करोड़ फूल होना है, अरब फूल होना है !
एक फूल को तो सारे विश्व पर फैल जाना है !
फूल रुके कैसे !
फूल एक यात्रा है, मंजिल नहीं।
पत्थर पड़ा है !
फूल खिलते हैं, मुरझा जाते हैं;
आते हैं, जाते हैं;
रुकते हैं क्षण-भर पत्थर के पास, फिर यात्रा पर निकल जाते हैं !
पत्थर अपनी जगह पड़ा है !
यह जड़ता ही सांसारिक मन है।
तुमसे इस किनारे को छुड़ाने का सवाल नहीं है, तुमसे किनारा ही छुड़ाने का सवाल है।
इसे मुझे दोहराने दो।

इस किनारे को छुड़ाने का सवाल नहीं है। तुमसे दुकान नहीं छुड़ानी है; क्योंकि तुम मकान छोड़ दोगे तो मंदिर पकड़ लोगे। तुम खाता-बही छोड़ दोगे तो तुम वेद-कुरान-गीता पकड़ लोगे। तुमसे यह नहीं छुड़ाना है, नहीं तो तुम वह पकड़ लोगे। तुमसे पकड़ छुड़ानी है। तुमसे किनारा नहीं छुड़ाना है, तुम्हारी जड़ता छुड़ानी है यह बैठ जाने का ढंग छुड़ाना है —

ताकि तुम्हें प्रवाह होना आ जाए !
ताकि तुम गत्यात्मक हो जाओ !
ताकि बहने में ही तुम्हारी मंजिल हो !
रुकना तुम भूल जाओ !
तुम चलते ही रहो !

धीरे-धीरे अगर तुम ठीक से चलने की कला सीख जाओ तो तुम मिट जाओगे, चलना ही रह जाएगा। तुम भी इसीलिए हो, क्योंकि तुम बैठ जाते हो।

इसे कभी तुमने खयाल किया ? तुम कभी तेजी से दौड़े ? अगर तुम तेजी से दौड़ो तो तुम मिट जाते हो, दौड़ना रह जाता है।

तुम कभी परिपूर्ण रूप से नाचे ? अगर तुम समग्रता से नाच उठो तो तुम मिट जाते हो, नाच रह जाता है।

जब भी तुम गत्यात्मक होते हो, 'डायनेमिक' होते हो, तब तुम्हारा अहंकार मिट जाता है।
जहां तुम बैठे कि अहंकार आया।
जहां तुम रुके कि अहंकार आया।
जहां तुमने किनारा पकड़ा कि अहंकार आया।
जहां तुमने कहा कि बस आ गये, कि अहंकार आया।
जीवन अगर तुम्हारा पूरा गत्यात्मक हो और तुम बैठने की आदत छोड़ जाओ ... अगर तुम

कभी बैठो भी तो इसीलिए कि चलने की तैयारी करते हो।

कभी-कभी बीज भी विश्राम करता है, वसंत की प्रतीक्षा करता है, महीनों पड़ा रहता है। जब बीज विश्राम करता है तो कंकड़-पत्थर में और बीज में फर्क करना मुश्किल होगा – लेकिन फर्क तो है।

कंकड़-पत्थर विश्राम ही करते हैं, कहीं जाते नहीं। बीज कहीं जाने के लिए तैयारी कर रहा है; साज-सामान जुटा रहा है; ठीक घड़ी-मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रहा है; ठीक समय और अनुकूल अवसर की बाट जोह रहा है; जाने को तत्पर है।

जैसे कभी दौड़ की प्रतियोगिता में तुमने देखा हो, दौड़नेवाले लोग खड़े होते हैं लकीर पर, लेकिन खड़े नहीं होते, भागे-खड़े होते हैं। घण्टी बजेगी या विसिल बजेगी, और वे दौड़ पड़ेंगे। बिलकुल तत्पर होते हैं! अगर तुम उन्हें देखो तो तुम यह न कह सकोगे कि वे खड़े हैं। तुम कहोगे, वे अब गये, अब गये! वे प्रतीक्षा में हैं, रोआं-रोआं तैयार है, क्योंकि एक क्षण भी चूकना खतरनाक है।

फूल और कंकड़ जब पास रखे हों तब भी फूल का जो बीज है वह ऐसे ही खड़ा है जैसे दौड़ाक, या तैराक तैरने के लिए तत्पर हों; सिर्फ प्रतीक्षा है ठीक मुहूर्त की, और दौड़ जाएंगे। कंकड़ वहीं पड़ा रह जाएगा, बीज यात्रा पर निकल जाएगा।

तुम अगर कभी रुको भी तो सिर्फ थकान मिटा लेने को। कोई पड़ाव तुम्हारी मंजिल न बने! रातभर रुके और सुबह चल पड़े। यह जीवंत धारा ही परमात्मा का अनुभव है।

तो अगर तुम्हें मुझे ठीक-ठीक समझना हो तो तुम तृप्ति और अतृप्ति के संयम में और संयोग में और संगीत में ही समझ पाओगे। मैं तुम्हें तृप्ति भी दूंगा ... तुम्हारे पुराने दुख छिनेंगे; तुम्हें नये दुख भी दूंगा। तुम्हारी पूरी पुरानी पीड़ाएं गिर जाएंगी। तुम्हें नये दर्द भी दूंगा, ताकि तुम उन नये दर्दों को मिटाने में और नये-नये कदम उठाओ।

परमात्मा प्राप्ति नहीं अकेली, पीड़ा भी है। जिसने ऐसा जाना, उसके लिए हर कदम मंजिल हो जाता है।

और तुम अगर गौर से देखोगे तो तुम परमात्मा को हर जगह गत्यात्मक पाओगे। लेकिन तुमने झूठे परमात्मा खड़े किये हैं। मंदिरों में पत्थरों की मूर्तियां बना ली हैं, वे ठहरी हैं वहीं की वहीं। उनसे तो तुम्हीं थोड़े ज्यादा परमात्मा हो। चलते तो हो; उठते-डोलते तो हो; तुम्हारे जीवन में कुछ गति तो है – सुबह कहीं, सांझ कहीं! मंदिर का तुम्हारा भगवान तो वहीं का वहीं पड़ा है।

अच्छा हो कि तुम फूलों को पूजो! लेकिन तुम उलटे आदमी हो। तुम जिंदा फूलों को तोड़कर मुर्दा परमात्माओं के चरणों में रख आते हो। इससे तो अच्छा होता कि अपने मुर्दा परमात्मा को उठा कर फूलों के चरणों में रख देते।

गति को पूजो, अगति को नहीं!

अगति जड़ता है।

प्रवाह को पूजो, पत्थरों को नहीं!

लेकिन पत्थर से तुम्हारा रास बैठ जाता है, क्योंकि तुम जड़ हो। तुमने अकारण ही पत्थर के भगवान नहीं बना लिये हैं; वे तुम्हारी जड़ता के सूचक हैं, सबूत हैं। तुमने अपनी ही छवि में उनको

ढाल लिया है। तुमने अपनी ही प्रतिमाएं गढ़ ली हैं – तुमसे भी ज्यादा मुर्दा!

थोड़ा पहचानो! थोड़ा जागो!

गत्यात्मक को पूजो!

देखो! चांद चलता है, सूरज चलता है, तारे चलते हैं। कुछ ठहरा हुआ नहीं है!

इस जीवन को अगर तुम गौर से देखोगे तो कुछ ठहरी हुई कोई भी चीज न पाओगे। यहां सब चल रहा है!

तुम इतनी जल्दी में क्यों हो ठहर जाने की?

यह ठहर जाने की आकांक्षा आत्मघाती है, सुसाइडल है। तुम मरना चाहते हो।

जियो! हिम्मत करो जीने की! और जितनी तुम्हारी हिम्मत बढ़ेगी जीने की उतना बड़ा जीवन तुम्हें उपलब्ध होगा – उसका अर्थ है, उतनी बड़ी चुनौती आएगी; उतनी पीड़ा उतरेगी; उतने बड़े पहाड़ों को चढ़ने का अवसर मिलेगा।

और यह अवसर कभी समाप्त नहीं होता। यह समाप्त हो जाता तो दुर्भाग्य था। क्योंकि अगर ऐसी घड़ी आ जाए जहां तुम उस किनारे को पा लो तो फिर क्या करोगे?

बर्ट्रेंड रसेल ने मजाक में ही कहीं कहा है कि मैं हिन्दुओं के मोक्ष से डरता हूं: 'सब पा लिया!' फिर? फिर क्या करोगे?

रसेल गत्यात्मक व्यक्ति था; मुर्दा परमात्मा से, मुर्दा मोक्ष से डरे, स्वाभाविक है।

मोक्ष लेकिन मुर्दा नहीं है। जिन्होंने मोक्ष को मुर्दा बना लिया वे खुद मुर्दा होंगे, तो उन्होंने अपनी प्रतिछवि आरोपित कर ली है।

सागर की लहरें टकराती ही रहती हैं – अनंत काल से, अनंत काल तक। ऐसे ही चैतन्य का सागर लहराता ही रहता है।

बुद्ध ने तो कहा, 'है' शब्द झूठा है। तुम कहते हो, नदी है। बुद्ध कहते हैं, नदी हो रही है, बह रही है; है नहीं। 'है' शब्द झूठा है। तुम कहते हो, वृक्ष है। जब तुमने कहा, वृक्ष है, तभी वृक्ष में कुछ नयी कोंपलें आ गयीं; कुछ पुराने पत्ते झड़ गये। तुम्हारे कहते-कहते ही तुम्हारा वक्तव्य झूठा हो गया; वृक्ष थोड़ा ऊपर छलांग लगा गया; नयी जड़ें फूट आयीं।

'है' की अवस्था में तो कुछ भी नहीं है। ठहरा हुआ तो कुछ भी नहीं है।

तुम घड़ीभर मुझे सुनोगे, घड़ीभर बूढ़े हो गये। आये थे, तुम वैसे ही वापस न जाओगे। चाहे तुम न समझ पाओ, लेकिन गंगा बहुत बह गयी! सब बदल गया! तुम ही नहीं बदल रहे हो, सारा संसार बदल रहा है।

गति जीवन है। और परमात्मा महाजीवन है तो महागति है।

तो मैं तुम्हें भी तृप्ति दूंगा, इसीलिए ताकि तुम्हें और अतृप्ति दे सकूं। मैं तुमसे क्षुद्र की तृप्ति छीन लूंगा और विराट की अतृप्ति दूंगा। मैं तुमसे व्यर्थ की तृप्ति और व्यर्थ की अतृप्ति छीन लूंगा, और सार्थक की तृप्ति और सार्थक की अतृप्ति दूंगा। संसार के दुख तुमसे छीन लिये जाएंगे; तुम्हें परमात्मा की पीड़ा दूंगा।

पीड़ा भी ठीक और गलत होती है।

एक आदमी रो रहा है, उसका एक रुपया खो गया है, यह क्षुद्र की पीड़ा है। यह हो तो भी ठीक नहीं। इसका रुपया भी मिल जाए तो भी क्या तृप्ति मिलनेवाली है! क्षुद्र की ही पीड़ा थी, क्षुद्र की ही तृप्ति होगी। यह अभागा आदमी है। रुपया खो गया है, इसलिए रो रहा है। फिर किसी को समझ में आयी कि मैं खुद ही खो गया हूं, मेरा ही कुछ पता नहीं चलता, कहां हूं। 'कहां हूं' — अपने को खोजने लगा। बड़ी पीड़ा उठेगी। रुपये की पीड़ा बहुत बड़ी न थी, कोई भी हल कर देता; राह चलता कोई भी राहगीर एक रुपया दया करके दे देता। अब एक ऐसी पीड़ा उठी तुम्हें, जो कोई भी हल न कर पाएगा। अब एक ऐसी पीड़ा उठी जो तुम्हें ही हल करनी पड़ेगी। संसार का कोई सिक्का इसे हल न कर पाएगा। फिर किसी दिन इसकी भी झलक मिलनी शुरू हो जाती है कि मैं कौन हूं। तब एक और नयी पीड़ा उठती है कि यह विराट क्या है! अपने को जान लिया, इतने से क्या होगा — यह बड़ा सागर क्या है! बूंद की पहचान से क्या होगा! अभी बूंद को जान भी न पाये थे कि सागर की जिज्ञासा उठने लगी। अभी बूंद को पहचान भी न पाये थे कि सागर ने द्वार पर दस्तक दी कि बैठ मत जाना।

और मैं तुमसे कहता हूं: और भी बड़े सागर हैं। एक को चुकाओगे, दूसरा द्वार खुलेगा। एक द्वार निपटता नहीं कि नये द्वार खुल जाते हैं।

तो मेरे साथ तो केवल वे ही चल सकते हैं, जो तृप्ति और अतृप्ति दोनों को साथ-साथ लेने को तैयार हैं, जो मंझधार में जीने को तैयार हैं। और इसे ही मैं परमात्म-जीवन कहता हूं। ऐसे जीवन के धारक को ही मैं संन्यस्त कहता हूं। तुम उसे तृप्त भी पाओगे और अतृप्त भी। जहां तक व्यर्थ संसार का संबंध है, तुम उसे बड़ा तृप्त पाओगे; और जहां तक उस आत्यंतिक की, अंतिम की पुकार है, तुम उसे बड़ा अतृप्त पाओगे। एक दिव्य असंतोष उसमें तुम जलता हुआ पाओगे। संसार की तरफ से तुम उसमें पाओगे: बड़ी तृप्ति, सब मिला हुआ है! और परमात्मा की तरफ से पाओगे: बड़ी अतृप्ति, कुछ भी मिला हुआ नहीं है!

इसलिए तुम्हें दोनों बातें लगेंगी। कभी लगेगा, बहुत-बहुत पाया मेरे पास; और कभी लगेगा, बहुत-बहुत चूके। दोनों ही ठीक हैं। और तुम दोनों के साथ ही राजी रहना, तो ही मेरे साथ, मेरे हाथ में हाथ डालकर चल सकोगे।

दूसरा प्रश्न: आपने कहा ... तब पाओगे कि भक्त ही भगवान है। प्रश्न उठता है कि एक भक्त भगवान होना पसंद करे और दूसरा सिर्फ भक्त रहना चाहे, तो दोनों में श्रेष्ठ कौन है?

● जो भगवान होना चाहे, वह तो हो न पायेगा। और जो भक्त भक्त ही रहना चाहे वह भगवान हो जाएगा। श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ का सवाल नहीं उठता, क्योंकि एक ही हो पायेगा। जो नहीं होना चाहता वही हो पायेगा। जो होना चाहता है, वह तो वंचित रह जाएगा। वह तो चाह भी अहंकार की ही है।

लेकिन मामला थोड़ा नाजुक है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि विनम्रता भी अहंकार की ही होती है। कहीं तुम्हारी विनम्रता भी अहंकार की ही न हो। कहीं तुम इसलिए ही न कह रहे होओ कि मैं नहीं होना चाहता, क्योंकि तुम जानते हो कि जो इनकार करते हैं वही हो पाते हैं। तो तुम चालाक हो। तो तुम्हारी विनम्रता व्यभिचारी है। तो तुम्हारी विनम्रता शुद्ध नहीं, पवित्र नहीं, कुंआरी नहीं, वेश्या जैसी है।

जो भगवान होना चाहता है, जिसका यह अहंकार है कि मुझे भगवान होना है, वह तो पा नहीं सकेगा। लेकिन जो इसलिए विनम्र हो जाता है कि यही तरकीब है भगवान होने की, वह भी न पा सकेगा।

और तब एक और जाल की बात है, वह भी समझ लेनी चाहिए। यह भी हो सकता है, जैसे कि विनम्र छिपाये हुए अहंकार हो सकता है। अहंकारी के भीतर छिपी हुई विनम्रता भी हो सकती है। कोई बड़ी सहजता से भी कह सकता है कि मैं भगवान होना चाहता हूं; इसमें 'मैं' की कोई बात ही न हो। यह जरा कठिन है समझना। इसमें 'मैं' का कोई भाव ही न हो; इसमें शुद्ध पुकार हो अस्तित्व की; यह सीधी-सीधी बात हो; इसमें कहीं 'मैं' का कोई सवाल न हो; इसमें ऐसे ही हो कि मैं चाहता हूं कि मुझमें भगवान हो; यह इतना ही हो कि मैं इससे कम पर राजी नहीं हो सकता, 'सब डुबाने को तैयार हूं, सब गंवाने को तैयार हूं, लेकिन जब तक भगवान ही मेरे हृदय में वास न करे, जब तक वही मुझे भर न दे, तब तक चैन नहीं।' यह बड़ी गहरी प्यास हो सकती है; यह अहंकार हो ही न ...।

मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि अहंकार न हो तो ही भक्त भगवान हो पाता है। प्रगट-अप्रगट का सवाल नहीं है — वास्तविक विनम्रता हो।

कभी-कभी ऊपर से शब्द तो अहंकार के दिखायी पड़ते हैं, भीतर बड़ी विनम्रता होती है। और कभी-कभी ऊपर से शब्द तो बड़ी विनम्रता के होते हैं, भीतर बड़ा अहंकार होता है।

इसे तुम भलीभांति खोज ले सकते हो अपने भीतर। दूसरे का कोई प्रयोजन भी नहीं है। अपने भीतर तो तुम जान सकते हो कि तुम्हारी विनम्रता अहंकार का ही आभूषण तो नहीं है, या तुम्हारा अहंकार केवल वक्तव्य की ही बात हो!

कृष्ण ने अर्जुन से कहा, 'मामेकं शरणं व्रज! तू मेरी शरण आ।' उस क्षण में, कृष्ण में 'मैं' जैसा कुछ भी नहीं था — 'मैं' था ही नहीं। यह केवल वक्तव्य की बात थी, भाषा की बात थी। कृष्ण के भीतर से परमात्मा बोला, 'मैं' कुछ भी न था वहां।

कभी-कभी तुम कहते हो, 'मैं तो कुछ भी नहीं, आपके पैरों की धूल हूं।' लेकिन जरा गौर करना। जिससे तुम कह रहे हो, वह अगर मान ले कि बिलकुल ठीक कह रहे हैं आप, यह तो मैं पहले ही से जानता हूं कि आप कुछ भी नहीं, पैरों की धूल हैं, तब एक धक्का लगेगा छाती में कि अरे! चोट लगेगी। अहंकार पीड़ित हो उठेगा, फुफकार उठेगा। तुम इस आदमी को कभी माफ न कर पाओगे। क्योंकि यह जो कह रहा था, वह इसका प्रयोजन न था। यह तो असल में यह कह रहा था कि तुम कहो कि 'अरे आप, और पैर की धूल! आप तो सिर के ताज हैं!' यह कहलवाने के लिए कह रहा था। यह चालाक है। यह होशियार है। यह गणित समझता है।

तो तुम अपने भीतर जानना। दूसरे से कोई प्रयोजन भी नहीं है। दूसरे को ठीक-ठीक समझ भी न पाओगे, क्योंकि दूसरे के शब्द ही सुनायी पड़ेंगे। उसके भीतर क्या घट रहा है, तुम कैसे जानोगे? लेकिन तुम अपने भीतर तो जांच कर ही ले सकते हो।

अगर तुम्हारी विनम्रता वास्तविक है, तो 'मैं' की उदघोषणा भी उसे मिटा न सकेगी। और अगर तुम्हारा अहंकार प्रगाढ़ है तो 'मैं आपके पैरों की धूल हूं', इस तरह का वक्तव्य उसे नष्ट न कर सकेगा।

लेकिन भगवान वही हो पाते हैं जो 'नहीं' हो जाते हैं।

और दोनों में कौन श्रेष्ठ है, यह तो पूछना ही मत। क्योंकि दोनों कभी पहुंच ही नहीं पाते। एक ही पहुंचता है। वही पहुंचता है जिसकी विनम्रता प्रामाणिक है। और प्रामाणिक विनम्रता का भाषा से कोई संबंध नहीं। प्रामाणिक विनम्रता का हृदय से संबंध है, तुम्हारी अन्तरानुभूति से संबंध है,

'सूरते-नक्शे-रहगुज़र आजिजी इख्तियार कर
अर्श की रफअतों पै गर तुझको मुकाम चाहिए।'

अगर आकाश की ऊंचाइयों पर अपना मुकाम बनाना हो तो पदचिह्नों की भांति विनम्र हो जा। लेकिन ध्यान रखना, इसीलिए मत पदचिह्नों की भांति विनम्र हो जाना कि आकाश पर मुकाम चाहिए, नहीं तो चूक जाओगे। आकाश पर मुकाम चाहने की तो बात ही न हो। पृथ्वी पर पदचिह्नों की भांति हो जाना, आकाश पर मुकाम अपने से हो जाता है।

जो मिट जाते हैं, वे हो जाते हैं। जो अपने को छोड़ देते हैं, वे बच जाते हैं। मृत्यु यहां जीवन का सूत्र है और मिट जाना पा लेने की कला है।

तीसरा प्रश्न : 'भक्त्या अनुवृत्या' ऐसा कहा है, तो भक्ति साकार ही होनी चाहिए। सूर्य सूर्यलोक में साकार ही है, वैसे ही भगवान भी साकार क्यों नहीं?

● किसने कहा, भगवान साकार नहीं है?

सभी आकार उसी के हैं। भगवान का अपना कोई आकार नहीं है। तुम भगवान का आकार खोज रहे हो, इसलिए सवाल उठता है कि भगवान साकार क्यों नहीं।

वृक्ष में भगवान वृक्ष है, पक्षी में पक्षी है, झरने में झरना है, आदमी में आदमी है, पत्थर में पत्थर है, फूल में फूल है। तुम भगवान का आकार खोज रहे हो, तो चूकते चले जाओगे।

सभी आकार जिसके हैं, उसका अपना कोई आकार नहीं हो सकता। अब यह बड़े मजे की बात है। इसका अर्थ हुआ कि सभी आकार जिसके हैं, वह स्वयं निराकार ही हो सकता है। यह जरा उलटी लगती है बात, सभी आकार जिसके हैं वह निराकार!

सभी नाम जिसके हैं उसका अपना नाम कैसे होगा? जिसका अपना नाम है उसके सभी नाम नहीं हो सकते। सभी रूपों से जो झलका है उसका अपना रूप नहीं हो सकता। जो सब जगह है उसे एक जगह खोजने की कोशिश करोगे तो चूक जाओगे। सब जगह होने का एक ही ढंग है कि वह कहीं भी न हो। अगर कहीं होगा तो सब जगह न हो सकेगा। कहीं होने का अर्थ है : सीमा होगी।

सब जगह होने का अर्थ है : कोई सीमा न होगी।

तो परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा सभी के भीतर बहती जीवन की धार है। वृक्ष में हरे रंग की धार है जीवन की ! वृक्ष आकाश की तरफ उठ रहा है – वह उठान परमात्मा है। वृक्ष छिपे हुए बीज से प्रगट हो रहा है – वह प्रगट होना परमात्मा है।

परमात्मा अस्तित्व का नाम है।

परमात्मा ऐसा नहीं है जैसे पत्थर है। परमात्मा ऐसे नहीं है जैसे तुम हो। परमात्मा ऐसा नहीं जैसे कि चांद-तारे हैं। परमात्मा किसी जैसा नहीं, क्योंकि फिर सीमा हो जाएगी।

अगर परमात्मा तुम जैसा हो, पुरुष जैसा हो, तो फिर स्त्री में कौन होगा ? स्त्री जैसा हो तो पुरुष वंचित हो जाएगा। मनुष्य जैसा हो तो पशुओं में कौन होगा ? और पशुओं जैसा हो तो पौधों में कौन होगा ?

इसे समझने की कोशिश करो।

परमात्मा जीवन का विशाल सागर है। हम सब उसके रूप हैं, तरंगें हैं। हमारे हजार ढंग हैं। हमारे हजारों ढंगों में वह मौजूद है। और ध्यान रहे कि हमारे ढंग पर ही वह समाप्त नहीं है; वह और भी ढंग ले सकता है। वह कभी भी ढंगों पर समाप्त नहीं होगा। उसकी संभावना अनंत है। तुम ऐसी कोई स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते, जहां परमात्मा पूरा-पूरा प्रगट हो गया हो। कितना ही प्रगट होता चला जाए, अनंत रूप से प्रगट होने को शेष है।

इसलिए तो उपनिषद कहते हैं, उस पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। हम कितना ही निकालते चले जाएं, हमारे निकालने से कुछ कमी नहीं पड़ती। हमारे निकालने से वह कुछ छोटा नहीं होता जाता – पूर्ण का पूर्ण ही शेष रहता है।

पूछा है, 'भक्ति साकार ही होनी चाहिए।'

भक्ति तो साकार होगी; भगवान साकार नहीं है। थोड़ी कठिनाई होगी तुम्हें समझने में। क्योंकि शास्त्रों से बंधी हुई बुद्धि को बड़ी अड़चनें हैं।

भक्ति तो साकार है; लेकिन भगवान साकार नहीं है। क्योंकि भक्ति का संबंध भक्त से है, भगवान से नहीं है। भक्त साकार है, तो भक्ति साकार है। लेकिन भक्ति का अंतिम परिणाम भगवान है। प्रथम तो यात्रा शुरू होती है भक्त से, अंतिम उपलब्धि होती है भगवान पर। शुरू तो भक्त करता है, पूर्णता भगवान करता है। प्रयत्न तो भक्त करता है, प्रसाद भगवान देता है।

तुम शुरू करनेवाले हो, पूरे करनेवाले तुम नहीं हो – पूरा परमात्मा करेगा।

तो, भक्ति के दो अर्थ हो जाएंगे : जब भक्त शुरू करता है तो वह साकार होती है; फिर जैसे-जैसे भगवान भक्त में उतरने लगता है, निराकार होने लगती है। जब भक्त पूरा मिट जाता है, भक्ति शून्य हो जाती है, निराकार हो जाती है। फिर तुम भक्त को बैठकर मंदिर में घंटी बजाते न देखोगे। फिर अहर्निश उसके प्राणों की धक-धक ही उसकी घंटी है। फिर तुम भक्त को राम-राम चिल्लाते न देखोगे, क्योंकि अब भक्त जो भी सोचे, वही राम-राम है। अब तुम भक्त को तिलक-टीका लगाते न देखोगे; अब तो भक्त ही स्वयं तिलक-टीका हो गया; वह स्वयं लग गया। अब अपना कुछ बचा नहीं। अब

तुम भक्त को मंदिर जाते न देखोगे। हां, अगर तुम्हारे पास आंखें हों तो मंदिर को भक्त के पास आते देखोगे। अब तुम भक्त को भगवान को पुकारते न देखोगे; अगर तुम्हारे पास सुननेवाले कान हों तो तुम भगवान को देखोगे कि पुकार रहा है भक्त को।

भक्त ने शुरू की थी यात्रा, भगवान ने पूरी की। तुम एक हाथ बढ़ाओ, दूसरा हाथ उस तरफ से आता है। इस तरफ का हाथ साकार है, उस तरफ का हाथ निराकार है। इसलिए तुम जिद्द मत करना कि उस तरफ का हाथ भी साकार हो, अन्यथा झूठा हाथ तुम्हारे हाथ में पड़ जाएगा। फिर तुम्हारे ही दोनों हाथ होंगे। इधर से भी तुम्हारा, उधर से भी तुम्हारा।

उधर से आनेवाला हाथ तो निराकार है, निर्गुण है। निर्गुण का यह मतलब नहीं है कि परमात्मा में कोई गुण नहीं है। निर्गुण का इतना ही मतलब है कि सभी गुण उसके हैं। इसलिए कोई विशेष गुण उसका नहीं हो सकता।

निराकार का यह अर्थ नहीं कि उसका कोई आकार नहीं है; सभी आकार जो कभी हुए, जो हैं, और जो कभी होंगे, उसी के हैं। तरल है! सभी आकारों में ढल जाता है। किसी आकार में कोई अड़चन नहीं पाता।

भक्त की तरफ से तो भक्ति साकार होगी, लेकिन जैसे-जैसे भक्त परमात्मा के करीब पहुंचेगा वैसे-वैसे निराकार होने लगेगी। और एक पड़ाव ऐसा आता है, जहां भक्त की तरफ से सब प्रयास समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि प्रयास भी अहंकार है। मैं कुछ करूंगा तो परमात्मा मिलेगा, इसका तो अर्थ हुआ कि मेरे करने पर उसका मिलना निर्भर है। इसका तो यह अर्थ हुआ कि यह भी एक तरह की कमाई है। इसका तो यह अर्थ हुआ कि अगर मैंने सिक्के मौजूद कर दिये तो मैं उसको वैसे ही खरीद कर ले आऊंगा जैसे बाजार से किसी और सामान को खरीदकर ले आता हूं – पुण्य के सिक्के सही, भक्ति-भाव के सिक्के सही।

नहीं, ऐसा नहीं है। मैं सब भी पूरा कर दूं तो भी उसके होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। मेरे सब करने पर भी वह नहीं मिलेगा, जब तक कि मेरा 'करने वाला' मौजूद है।

तो भक्त पहले करने से शुरू करता है। बहुत करता है, बहुत रोता है, बहुत नाचता है, बहुत याद करता है, बहुत तड़फता है; फिर धीरे-धीरे उसे समझ में आता है कि मेरी तड़फन में भी मेरी अस्मिता छिपी है; मेरी पुकार में भी मेरा अहंकार है; मेरे भजन में भी मैं हूं; मेरे कीर्तन में भी मेरी छाप है; कर्तृत्व मौजूद है!

जिस दिन यह समझ आती है उस दिन भक्त मिट जाता है; उस दिन जैसे किसी ने दर्पण गिरा दिया और कांच के टुकड़े-टुकड़े हो गये; उस दिन भक्त नहीं रह जाता।

जिस दिन भक्त नहीं रह जाता, भक्ति कौन करे! कौन मंदिर जाए! कौन मंत्रोच्चार करे! कौन विधि-विधान पूरा करे! एक गहन सन्नाटा घेर लेता है! उसी सन्नाटे में दूसरा हाथ उतरता है।

तुम मिटे नहीं कि परमात्मा आया नहीं! तुमने सिंहासन खाली किया कि वह उतरा! तुम्हारी शून्यता में ही उसके आगमन की संभावना है।

भक्ति तो साकार है; भगवान निराकार है। और भक्त के संबंध में हम क्या कहें? भक्त अपने

को साकार समझता है, वह उसकी भ्रांति है; जिस दिन जानेगा, अपने को भी निराकार पायेगा। भक्त अपने को भक्त समझता है, यह भी उसकी भ्रांति है; जिस दिन जानेगा उस दिन अपने को भगवान पायेगा।

सब आकार स्वप्नवत हैं। निराकार सत्य है; आकार स्वप्न हैं। लेकिन हम जहां खड़े हैं, वहां आकारों का जगत है। हम अभी स्वप्न में ही पड़े हैं। हमें तो जागना भी होगा तो स्वप्न में ही थोड़ी यात्रा करनी पड़ेगी।

भक्ति साकार ही होनी चाहिए – होती ही है। निराकार भक्ति हो नहीं सकती, क्योंकि निराकार में करने को क्या रह जाता है, करनेवाला नहीं रह जाता!

भक्ति तो साकार ही होगी, लेकिन भगवान निराकार है। इसलिए एक-न-एक दिन भक्ति भी जानी चाहिए। भक्ति की पूर्णता पर भक्ति भी चली जाती है। प्रार्थना जब पूर्ण होती है तो प्रार्थना भी चली जाती है। ध्यान जब पूर्ण होता है तो ध्यान भी व्यर्थ हो जाता है – हो ही जाना चाहिए। जो चीज भी पूर्ण हो जाती है वह व्यर्थ हो जाती है। जब तक अधूरी है तब तक ठीक है – मंदिर जाना होगा, पूजा करनी होगी। करना, लेकिन याद रखना, कहीं यह न भूल जाए कि यह सिर्फ शुरुआत है। यह जीवन की पाठशाला की शुरुआत है, अंत नहीं है। यह बारहखड़ी है, क ख ग है।

छोटे बच्चों की किताबें देखी हैं। कुछ भी समझाना हो तो चित्र बनाने पड़ते हैं, क्योंकि छोटा बच्चा चित्र ही समझ सकता है। आम तो छोटे में लिखो, आम का बड़ा चित्र बनाओ। पूरा पन्ना आम के चित्र से भरो, कोने में आम लिखो। क्योंकि पहले वह चित्र देखेगा, तब वह शब्द को समझेगा।

ऐसा ही भक्त है। भगवान! 'भगवान' तो कोने में रखो, बड़ी मूर्ति बनाओ, खूब सजाओ। अभी भक्त बच्चा है। अभी उस खाली कोने में जो भगवान है वह उसे दिखायी न पड़ेगा।

तुमने कभी गौर किया? मंदिर गये हो? जहां मूर्ति है वहां तो भगवान है; लेकिन खाली जगह जो मूर्ति को घेरे हुए है, वहां भगवान दिखायी पड़ा? वहां भी भगवान है; तुम्हें नहीं दिखायी पड़ा, क्योंकि तुम्हें मूर्ति चाहिए। बचपना है अभी! मंदिर में भगवान दिखायी पड़ा; मंदिर के बाहर कौन है? मंदिर की दीवालों को कौन छू रहा है? सूरज की किरणों में किसने मंदिर की दीवालों पर थाप दी है? हवाओं में कौन मंदिर के आसपास लहरें ले रहा है? मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए भक्तों के भीतर कौन सीढ़ियां चढ़ रहा है? वहां तुम्हें अभी नहीं दिखायी पड़ा। अभी बचकाना है मन। अभी चित्र चाहिए, मूर्ति चाहिए।

साकार से शुरुआत करनी होती है, लेकिन साकार पर रुक मत जाना। मैं यह नहीं कहता हूं कि साकार की शुरुआत ही मत करना। नहीं तो बच्चा भाषा कभी सीखेगा ही नहीं। वह सीखने का ढंग है, बिलकुल जरूरी है। अड़चन वहां शुरू होती है जहां तुम पहले पाठ को ही अंतिम पाठ समझ कर बैठ जाते हो।

सीख लेना और मुक्त हो जाना!
जो भी सीख लो, उससे मुक्ति हो जाती है।
आगे चलो!

मूर्ति में देख लिया – अब अमूर्त में देखो !

आकार में देख लिया – अब निराकार में देखो !

शब्द में सुन लिया – अब निःशब्द में सुनो !

शास्त्र में पहचान लिया – अब मौन में, शून्य में चलो !

पर जल्दी भी मत करना। अगर मंदिर में ही न दिखा हो तो मंदिर के बाहर तो दिख ही न सकेगा। जल्दी भी मत करना।

आदमी का मन अति पर बड़ी आसानी से चला जाता है।

तो इस देश में तो बड़ी अतियां हुईं। इसमें एक तरफ लोग हैं जो कहते हैं, परमात्मा निराकार है। वे किसी तरह की मूर्ति को बरदाश्त न करेंगे, किसी तरह की पूजा को बरदाश्त न करेंगे।

मुसलमानों ने यही रुख पकड़ लिया, तो मूर्तियों को तोड़ने पर उतारू हो गये।

अब थोड़ा सोचो ! पूजा के योग्य तो मूर्ति नहीं है, लेकिन तोड़ने के योग्य है ! इतने में तो पूजा ही हो जाती। जब परमात्मा की कोई मूर्ति ही नहीं है तो तोड़ने का भी क्या प्रयोजन ? तोड़ने में भी क्यों श्रम लगाते हो ?

अति होती है : या तो पूजा करेंगे, या तोड़ेंगे।

समझ नहीं है अति के पास कोई।

तो एक तरफ हैं जो जिद्द किये जाते हैं कि परमात्मा निराकार है। ठीक कहते हैं, बिलकुल ठीक ही कहते हैं, परमात्मा निराकार है। लेकिन आदमी उस जगह नहीं है अभी, जहां से निराकार से संबंध जुड़ सके। आदमी अभी निराकार के योग्य नहीं है। होगा बुद्ध के लिए, पर आदमी बुद्ध कहां ? होगा महावीर के लिए, लेकिन किससे बातें कर रहे हो ? जिससे बातें कर रहे हो, उसकी भी तो सोचो। दया करो उस पर। तुम परम स्वस्थ लोगों की बातें अस्पताल में पड़े बीमारों से कर रहे हो ! बुद्ध को जरूरत नहीं है, लेकिन जिसको तुम समझा रहे हो, उसको ? उस पर ध्यान करो, करुणा करो थोड़ी।

निराकार की बातें करनेवाले लोग बड़े दयाहीन हैं। करुणा उनके मन में जरा भी नहीं है। इसलिए उनकी निराकार की बातें सब थोथी, पांडित्य हैं, शास्त्रीय हैं।

फिर दूसरी तरफ साकार की बात करनेवाले लोग हैं, उनके मन में आदमी के प्रति दया तो है, लेकिन सत्य की निष्ठा नहीं। ठीक कहते हैं, इस आदमी को ले जाना है। जिसका सारा चित्त मूर्तियों से भरा है, जिसके चित्त में सब आकार ही आकार हैं, उससे निराकार की अभी पहचान नहीं हो सकती, आकारों से ही संबंध जुड़ाना होगा, फिर धीरे-धीरे छुड़ा लेंगे, सीढ़ी-सीढ़ी चढ़ा लेंगे। छलांग न हो सकेगी, सीढ़ी-सीढ़ी यात्रा हो जाएगी।

ठीक कहते हैं कि परमात्मा साकार है। लेकिन फिर जिद्द पैदा होती है। फिर जिद्द यह पैदा होती है कि परमात्मा साकार है, यह कोई अंतिम सत्य है। तो फिर लोग मूर्तियों से ही बंधे रह जाते हैं। कुछ मूर्ति-भंजक हैं, मूर्तियां तोड़ने में जीवन गंवाते हैं; कुछ मूर्ति-पूजक हैं, मूर्तियों को सजाने में जीवन गंवाते हैं।

मेरी तुम पूछते हो तो मैं तुमसे कहूंगा, मुझे दोनों की बातों में सार है और दोनों की बातों में

खतरा भी दिखायी पड़ता है। सार है दोनों की बातों में और खतरा भी दोनों की बातों में। तुम सार-सार चुन लेना और खतरे से बच जाना।

मेरा कोई मजहब नहीं है, मेरा कोई सम्प्रदाय नहीं है। इसलिए मुझे कोई अड़चन भी नहीं है; किसी से भी सत्य, जहां भी सत्य हो, वहां देखने में मुझे कोई अड़चन नहीं है। मेरा कोई आग्रह नहीं है। मेरे पास कोई कसौटी नहीं है जिस पर मैं तौलूं। मैं सीधा देख पाता हूं।

जो साकार की बात कहते हैं, वे ठीक कहते हैं; आधी मंजिल तक वे तुम्हारे साथ हो सकेंगे — बस आधी मंजिल तक! उसके बाद निराकार की बात तुम्हारे लिए महत्वपूर्ण होने लगेगी। तब तुम घिरे मत रह जाना, गिरफ्त में मत रह जाना। तब तुम यह मत कहना कि हम तो साकार की पूजा करते रहे अब तक, हम आकार को भीतर न प्रवेश करने देंगे। आंख बंद मत कर लेना जब निराकार पुकारे। यह मत कहना कि यह मेरी धारणा में नहीं है, यह तो हमारा शास्त्र नहीं है, हम तो माननेवाले साकार के हैं! आंख बंद मत कर लेना। पीठ मत फेर लेना। क्योंकि तुम्हारा साकार ही वहां ले आया है; उसको तो तुम अपनी साकार की सफलता मानना कि तुम्हारी पूजा पूरी हुई, तुम्हारी प्रार्थना सुनी गयी। तो तुमने फायदा भी ले लिया, तुम खतरे से भी बच गये।

साकार से तुम चलो, निराकार पर तुम पहुंचो!

ऐसा अगर तुम्हारे जीवन में संतुलन हो तो कोई खतरा नहीं है।

तो, दूसरी तरफ लोग हैं, वे कहते हैं, 'जब निराकार ही है आखिर में तो हम पहले से ही निराकार क्यों न मानें? वे चल ही नहीं पाते। वे उन लंगड़े लोगों की तरह हैं जो बैसाखियों का सहारा लेने को राजी नहीं।

तुमने देखा! पैर पर चोट लग गयी हो, ऐक्सीडेंट हो गया हो, तो डाक्टर कहता है, बैसाखियों का सहारा ले लो। साल छह महीने बैसाखियों के सहारे चलो, फिर धीरे-धीरे शक्ति वापस लौट आएगी। फिर धीरे-धीरे बैसाखियां छोड़ देना, पैरों पर चलना।

तुम डाक्टर से यह नहीं कहते कि जब आखिर में पैरों से ही चलना है तो अभी से हम बैसाखियों से क्यों चलें? नहीं, हम बैसाखियां छुएंगे भी नहीं। तुम कहते हो, 'ठीक है, बैसाखियों का उपयोग कर लेंगे।'

सब धर्म तुम्हारे उपयोग के लिए हैं। तुम उनका उपयोग कर लेना और तुम किसी के भी गुलाम मत बनना। कोई धारणा इतनी बड़ी न हो जाए कि सत्य को ओट कर ले।

चौथा प्रश्न : आशीर्वाद क्या है? और गुरु जब शिष्य के सिर पर हाथ धरता है, तब क्या प्रेषित करता है? और क्या आशीर्वाद लेने की भी क्षमता होती है?

● आशीर्वाद गुरु तो अकारण देता है, बेशर्त देता है; लेकिन तुम ले पाओगे या न ले पाओगे, यह तुम पर निर्भर है। इतना ही काफी नहीं है कि कोई दे और तुम ले लो; तुम्हें उसमें कुछ दिखायी भी पड़ना चाहिए, तभी तुम लोगे। वर्षा हो और तुम छाते की ओट में छिपकर खड़े हो जाओ, तो तुम

न भीगोगे। आशीर्वाद बरसे, और तुम अहंकार की ओट में, अहंकार के छाते में छिप जाओ, तो तुम न भीगोगे। वर्षा हो जाएगी, मेघ आएंगे, और चले जायेंगे तुम सूखे के सूखे रह जाओगे।

तो, तुम्हारी तैयारी चाहिए। तुम्हारा स्वीकार का भाव चाहिए। ग्रहण करने की क्षमता चाहिए। चातक की भांति मुंह खोलकर आकाश की तरफ, प्रार्थना से भरा हुआ हृदय चाहिए। स्वाति की बूंद तुम्हारे बंद मुंह में न गिरेगी – मुंह खुला होना चाहिए, आकाश की तरफ उठा होना चाहिए, प्रतीक्षातुर होना चाहिए, तो ही...।

तो, जब तुम गुरु के पास झुको, तब वस्तुतः झुकना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि सिर ही झुके और हृदय बिना झुका रह जाए, तो आशीर्वाद बरस जाएगा...।

समझने की बात यह है कि गुरु यह नहीं कह रहा है कि तुम्हारी कोई पात्रता होगी तो आशीर्वाद दूंगा; लेकिन तुम्हारी पात्रता न होगी तो दिया आशीर्वाद तुम तक न पहुंच पायेगा, व्यर्थ चला जाएगा।

गुरु आशीर्वाद देता है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं; गुरु से आशीर्वाद बरसता है, ऐसा ही कहना ठीक है। जैसे दीये से रोशनी झरती है, फूल से गंध बहती है, ऐसा गुरु कुछ करता है, प्रेषित करता है, ऐसा नहीं; तुम्हें कुछ देता है विशेष रूप से, ऐसा नहीं – झर ही रहा है। वह उसके होने का ढंग है। उसने कोई ऊंचाई पायी है, जिस ऊंचाई से झरने नीचे की तरफ बहते ही रहते हैं। अगर तुम तैयार हो तो तुम नहा लोगे। तुम अगर तैयार हो तो जन्मों-जन्मों की धूल बह जायेगी उस स्नान में। तुम अगर तैयार हो तो तुम्हारे मार्ग के कांटे हट जाएंगे और फूलों से भर जाएगा मार्ग।

लेकिन आशीर्वाद लेने की कला, झुकने की कला है। वह अहंकार को हटाने की कला है। वह स्वीकार-भाव है! आस्तिकता है! श्रद्धा है! आस्था है! प्रेम है!

तो पहली तो बात यह है कि गुरु देता है, ऐसा नहीं; गुरु आशीर्वाद का दान है, देता नहीं है। गुरु के होने में ही समाया है...।

तो अगर तुम मुझसे पूछो कि गुरु की परिभाषा क्या है तो यही परिभाषा है : जिससे आशीर्वाद झरते हों। तुम मांगो न मांगो, तुम लेने आये हो न लेने आये हो, तुम झुको न झुको – इससे कोई भेद नहीं पड़ता; जिससे आशीर्वाद तुम पर झरते ही हों, प्रसादरूप बरसते हों...!

ऐसा भी मत समझना कि वह तुम्हारे लिए कुछ विशेष रूप से कर रहा है। कोई भी न हो, एकांत में भी दीया जले, तो भी रोशनी जलती रहती है, तो भी प्रकाश पड़ता रहता है। वीरान में, निर्जन में फूल खिले, कोई राह से न निकले, कोई नासापुट पास न आए, किसी को कभी कानों कान खबर भी न होगी शायद, निर्जन में खिले फूल की किसको खबर होगी; लेकिन सुगंध तो झरती ही रहेगी; सुगंध तो भरती ही रहेगी हवाओं में; हवाओं पर पंख फैलाती रहेगी; सुगंध तो दूर-दूर की यात्रा पर निकलती ही रहेगी। फूल तो अपने को लुटा देगा। इससे क्या फर्क पड़ता है कि कोई था या नहीं! किसी का होना न होना संयोग है। फूल खिल गया है तो सुगंध का बिखरना नियति है।

गुरु वही है जिससे आशीर्वाद ऐसे ही बिखरता है, जैसे खिल गये फूल से गंध बिखरती है। संयोग की बात है कि कोई ले ले, झेल ले। संयोग की बात है कि कोई अपने नासापुटों को भर ले। संयोग की बात है कि इन किरणों को कोई संभाल ले अपने हाथों में और अपने अंधेरे रास्ते पर चिराग

जला ले। यह संयोग की बात है।

आशीर्वाद दिया नहीं जाता; गुरु के होने का ढंग आशीर्वाद है; वह प्रसादरूप है।

आशीर्वाद क्या है ?

आशीर्वाद जैसे मैंने कहा, फूल जब खिलता है तो गंध बिखरती है। गंध क्या है ? बीज में छिपी थी, फूल में प्रगट हुई; बीज में बंद थी, फूल में खिली। लम्बी यात्रा करनी पड़ी, बीज अंकुर बना; कितनी कठिनाइयां थीं; कितने पत्थर-रोड़े थे राह में बीज के, जमीन को फोड़कर ऊपर आया; कितना कोमल था और कितना संघर्ष था; हजार उपद्रवों को झेलकर बचा – वृक्ष बना, फूल खिले, गंध बिखरी !

गुरु : तुम्हारे भीतर जो कल होनेवाला है, तुम्हारा जो भविष्य है, वह गुरु का वर्तमान है। तुम अगर बीज हो तो वह गंध हो गया है। तुम अगर बंद झरने हो, राह नहीं खोज पा रहे हो, तो वह सागर से मिल गया है। वह तुम्हारा भविष्य है।

गुरु में तुम अपने होने की आखिरी संभावना का दर्शन पाते हो।

आशीर्वाद का अर्थ है : गुरु के सान्निध्य में तुम्हारे वर्तमान और तुम्हारे भविष्य का मिलन होता है; तुम्हारा भविष्य तुम्हारे वर्तमान पर झरता है।

गुरु माध्यम है – तुम जो नहीं हो अभी और हो सकते हो – उसकी खबर है। अगर तुम ठीक से झुक जाओ तो उसका आशीर्वाद तुम्हारे लिए एक ऊर्ध्वयात्रा बन जाएगी। वह तुम्हारे ऊपर उतरेगा, बरसेगा। जैसे आकाश से वर्षा होती है, जमीन में छिपे बीज तक पहुंचती है, ऐसा वह तुम तक पहुंचेगा। आकाश से वर्षा होती है, जमीन में छिपे बीज तक पहुंचती है और तत्क्षण बीज का अंकुरण फूट जाता है और बीज आकाश की तरफ उठने लगता है।

आशीर्वाद में गुरु तुम तक पहुंचेगा; उतरेगा; उसका अस्तित्व तुम्हारे अस्तित्व को छुएगा; तुम्हारी भूमि में, अंधेरे में दबे हुए बीज पर उसकी वर्षा होगी और तत्क्षण तुम ऊपर की यात्रा पर निकल जाओगे।

आशीर्वाद का अर्थ है : गुरु ने तुम्हारे शून्य में, तुम्हारी रिक्तता में अपने को भरा, ताकि तुम्हारे भीतर जो दबा पड़ा है, उसे पुकार मिल जाए, उसे आह्वान मिल जाए, चुनौती मिल जाए, सुगबुगाहट पैदा हो; तुम्हारे भीतर जो बीज है वह भी अंकुरित होने लगे, उसे खबर मिल जाए कि मैं क्या हो सकता हूं !

इसलिए भक्ति-शास्त्र सत्संग की महिमा गाता है।

तुम करीब आओ, तुम झुको, तो गुरु तुम्हारे करीब आ पाता है। तुम झुको तो वह तुम में उतर पाता है...अवतरण !

हर आशीर्वाद में परमात्मा अवतरित होता है। हर आशीर्वाद अवतार है।

हमने उन्हीं व्यक्तियों को अवतार कहा है जिनके कारण बहुत-से व्यक्तियों के भीतर, अनेकों के भीतर सोयी हुई सम्भावनाएं सजग हो गयीं, वास्तविक बनीं। हमने उन्हीं व्यक्तियों को अवतार कहा है जो हमारे भीतर उस गहराई तक उतर सके जहां तक हम भी नहीं पहुंच पाए और जिन्होंने हमारी गहराइयों को छू दिया, तिलमिला दिया, जगा दिया, जिन्होंने हमारी नींद तोड़ दी।

तो आशीर्वाद अवतरण है – ऊंचाइयों का, तुम्हारी गहराइयों में; भविष्य का, तुम्हारे वर्तमान

में; संभावना का, तुम्हारी वास्तविकता में; तुम्हारे तथ्यों के जीवन में सत्य की पुकार है।

और आशीर्वाद अनूठी बात है, क्योंकि गुरु दिये जा रहा है। उसे कुछ करना नहीं पड़ रहा है। कोई श्रम नहीं है जो उसे करना पड़ रहा है। तुम न भी लोगे तो भी यह गंध हवाओं में लुटानी ही पड़ेगी। मेघ जब भर जाएंगे, तो बरसेंगे ही। बीज अंकुरित हों या न हों; मेघ जब भर जाएंगे तो बरसेंगे ही — बरसना ही पड़ेगा।

तो गुरु मेघ है, बरस रहा है।

बुद्ध ने तो उस अवस्था को मेघ-समाधि कहा है — जब समाधि बरसती है। वही गुरु की दशा है। जब समाधि बरसने लगती है — तब आशीर्वाद, तब प्रसाद !

पर तुम ले सको तो ही ले पाओगे।

झुकने की कला सीखो, मिटने की कला सीखो, तो तुम्हारे होने का सूत्रपात होता है।

पांचवां प्रश्न : कल के प्रवचन में अचानक कुछ घटा ! सुनते-सुनते ध्यान दो वाक्यों के बीच मौन पर केन्द्रित हो गया और बड़ी गहरी और शीतल शांति का अनुभव हुआ ! प्रणाम स्वीकार करें !

● शुभ हुआ ! उस तरफ ज्यादा से ज्यादा ध्यान को ले जाएं, ताकि यह घटना केवल एक स्मृति न रह जाए, ताकि यह घटना धीरे-धीरे तुम्हारे जीवन की शैली बन जाए !

जैसे दो शब्दों के बीच में ध्यान रुका, ऐसे ही जीवन के हर पहलू में जहां-जहां अभिव्यक्ति है, वहां-वहां दो अभिव्यक्तियों के बीच में ध्यान देना।

स्त्री और पुरुष हैं — ये अभिव्यक्तियां हैं । अगर तुम पुरुष ही रहोगे तो संसार में रहोगे; स्त्री ही रहोगे तो संसार में रहोगे। दोनों के बीच में कहीं मोक्ष है।

रात और दिन अभिव्यक्तियां हैं। अगर तुम दिन से बंधे रहे तो रात से डरे रहोगे। अगर रात से बंधे रहे तो दिन से परेशान रहोगे। रात और दिन के बीच में संध्या का काल है। इसलिए तो हमने इस देश में संध्या को प्रार्थना का समय चुना है — बीच में, ठीक मध्य में !

दुकान से ही मत बंधे रहना और मंदिर से भी मत बंध जाना। मंदिर और दुकान के बीच में कहीं संन्यास है। हर दो अभिव्यक्तियों और विरोधों, अतियों के बीच में मध्य को खोजते रहना, तो तुम्हारे जीवन में संयम का फूल खिलेगा।

और यह घटना स्मृति न बन जाए, क्योंकि बहुत बार ऐसी घटना घटती है। हम ऐसे अभागे हैं कि घट भी जाती है, झलक भी मिल ज़ाती है, तो भी झलक को गहराते नहीं। पकड़ में भी आ जाते हैं सूत्र तो आ-आकर खो जाते हैं। कई बार तुम्हारे हाथ में आंचल आ गया है सत्य का और छिटक गया है; तुम फिर झपकी लेने लगते हो, फिर याद भूल जाती है, फिर होश खो जाता है।

शुभ हुआ ! सौभाग्य हुआ ! प्रसाद का क्षण मिला ! उसे गहराना। उसे जितना ज्यादा जहां-जहां खोज सको, खोजना, ताकि धीरे-धीरे वह तुम्हें हर जगह दिखायी पड़ने लगे। उसी शून्य और शांति से तुम्हें परमात्मा के पहले दर्शन होंगे। उसी शून्य से निराकार का हाथ तुम तक आएगा। हाथ तैयार

ही है आने को! तुम बस जरा एक कदम चलो, परमात्मा हजार कदम तुम्हारी तरफ चलता है।

आखिरी प्रश्न : एक परम्परा कहती है कि देवर्षि नारद परम मुक्ति को उपलब्ध नहीं थे। दूसरी परम्परा उन्हें सप्तऋषि में एक मानती है, जिनका गुह्य और परोक्ष कार्य सदा चलता रहा है। क्या भक्ति-सूत्र के रचयिता के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

● जानकर ही नारद की कोई बात मैंने नहीं की। सोचकर ही छोड़ा। क्योंकि भक्त का कोई कर्तृत्व नहीं होता और न व्यक्तित्व होता है। भक्त तो एक मौन है, एक शून्य निवेदन है!

भक्त कुछ करता नहीं, इसलिए कोई कर्तृत्व नहीं होता।

भक्त तो एक आनंद है! एक गीत है! एक नृत्य है! एक अहोभाव है!

बड़ा सूक्ष्म है भक्त का अस्तित्व!

न तो कोई कर्तृत्व है, न कोई व्यक्तित्व है; क्योंकि भक्त तो एक खाली बांस की पोंगरी है, व्यक्तित्व क्या! खाली जगह है, जहां से भगवान को जगह देता है, जहां से भगवान उससे बहने लगते हैं।

नारद पर इसीलिए मैंने कुछ कहा नहीं। और इसीलिए नारद के संबंध में न मालूम कितनी कथाएं प्रचलित हैं। नारद के व्यक्तित्व को समझा ही नहीं जा सका। समझने के लिए जगह नहीं है। समझने के लिए आधार नहीं है।

एक परम्परा कहती है कि वे परम मुक्ति को उपलब्ध नहीं हुए। क्यों? ...क्योंकि नारद में बुद्ध जैसा व्यक्तित्व दिखायी नहीं पड़ता, न महावीर जैसा व्यक्तित्व दिखायी पड़ता है। नारद ऐसे सुलझे हुए मालूम नहीं होते जैसे बुद्ध सुलझे हुए मालूम होते हैं। नारद बड़े उलझे मालूम होते हैं। कथाएं कहे चली जाती हैं कि पृथ्वी और स्वर्ग के बीच में न केवल खुद उलझे हैं, दूसरों को भी उलझाते रहते हैं।

नारद का व्यक्तित्व साफ-साफ नहीं है। बुद्ध साफ-साफ उस पार हैं, समझ में आते हैं। नारद न इस पार न उस पार, कहीं बीच में डोलते हैं।

कितनी कथाएं हैं! नारद स्वर्ग जा रहे हैं, बैकुंठ जा रहे हैं, बैकुंठ से जमीन पर आ रहे हैं — दो लोकों के बीच में! मेरे लिए उतना ही इंगित है कि दो किनारों के बीच में... !

व्यक्तित्व बड़ा उलझा हुआ मालूम पड़ता है। एक ही किनारे पर इतनी उलझन है। दो संसारों के बीच में जो जिये — एक पैर यहां रखे, एक बैकुंठ में रखे — उसकी उलझन तुम समझ सकते हो। लेकिन वही मेरे लिए परम संन्यास का रूप है, जो दो अतियों के बीच अपने को संभाल ले।

एक किनारे पर बस गये, वह भी कोई सुलझाव, सुलझाव हुआ? या दूसरे किनारे पर हट गये, वह भी कोई सुलझाव, सुलझाव हुआ? सेतु बनना चाहिए, जिस पर दोनों किनारे जुड़ जाएं।

नारद सेतु हैं। इस तरफ से देखो तो बिलकुल संसारी हैं! और उस तरफ से तुम देख न सकोगे; उस तरफ से मैं देख रहा हूं। उस तरफ से देखो तो परम वीतराग हैं।

इसी तरफ से देखा गया है। इसी किनारे पर खड़े हुए लोग देखते हैं कि यह सेतु तो यहीं जुड़ा है, इसी किनारे पर जुड़ा है, दूसरा किनारा तो दिखायी नहीं पड़ता।

तो नारद संसार से जुड़े मालूम पड़ते हैं, सांसारिक मालूम पड़ते हैं। उनके आसपास रची गयी कथाएं इस किनारे के लोगों ने रची हैं। मैं तुमसे उस किनारे से कह रहा हूं कि नारद सेतु हैं।

नारद बड़े अनूठे रहस्यपूर्ण व्यक्ति हैं। उनका अनूठापन यही है, उनकी अद्वितीयता यही है कि वे एकतरफा नहीं हैं, एकांगी नहीं हैं। महान समन्वय उनमें सिद्ध हुआ है।

फिर सारी कथाएं कहती हैं कि वे कुछ उलझाव का ताना-बाना बुनते रहते हैं। लोकमानस में उनकी जो प्रतीति है वह कुछ चुगलखोर जैसी है। यह भी अकारण नहीं बन गयी होगी, क्योंकि कोई भी बात बनती है तो उसके पीछे कुछ न कुछ कारण होगा। हजारों साल तक करोड़ों लोग जब ऐसी कहानियां गढ़ते रहते हैं, तो उसके पीछे कहीं न कहीं कोई सूत्रपात होगा, कहीं न कहीं कोई आधार होगा। आधार है।

जब भक्त अपने को परमात्मा के हाथ में सौंप देता है, तो 'वह' जो करवाये वह करता है। फिर वह यह भी नहीं कहता कि यह बात जंचती नहीं, यह करना ठीक न होगा। फिर वह असंगतियां भी करवाये तो असंगति भी करता है। छोड़ने का अर्थ ही होता है पूरा छोड़ना। फिर उसमें हिसाब नहीं रखता। वह झूठ भी बुलवाये तो भी भक्त यह नहीं कह सकता, 'मैं न बोलूंगा।' क्योंकि भक्त है ही नहीं। वह कहता है, 'तेरा झूठ, तो तेरा झूठ मेरे सच से भी ज्यादा बड़ा है।'

इसे थोड़ा समझना, 'मेरा सच भी तेरे झूठ से छोटा होगा! तेरा झूठ भी मेरे सच से बड़ा होगा! फिर तू करवा रहा है तो जरूर कोई कारण होगा। फिर तू ही जान, यह हिसाब कौन रखे!'

तो नारद के व्यक्तित्व में संगति नहीं है। यहां की बात वहां कह रहे हैं, बढ़ा-चढ़ाकर कह रहे हैं, कभी घटाकर कह रहे हैं, कभी जोड़कर कह रहे हैं। इसलिए स्वभावतः लोकमानस को यह लगता है कि यह व्यक्ति और मुक्त! तो थोड़ी अड़चन मालूम होती है।

मुक्त के संबंध में हमारी धारणाएं हैं कुछ; नारद सब धारणाओं को तोड़ देते हैं, क्योंकि नारद अपने को सब भांति समर्पित कर देते हैं। परमात्मा की इस विराट लीला में, इस बड़े खेल में, इस बड़े नाटक में, वे अपना कोई व्यक्तित्व लेकर नहीं चलते, वे 'वह' जो करवाता है करते हैं। इतना ही इंगित है। 'वह' अगर झूठ भी बुलवाये तो झूठ भी बोल देते हैं। लेकिन नारद ने झूठ नहीं बोला है; परमात्मा की लीला के अंश हो गये हैं!

इस बात को लोकमानस न समझ पाये, यह भी स्वाभाविक है। लेकिन इतना बड़ा सूत्र, इतना बड़ा नाटक चलता हो तो उसमें नारद जैसे व्यक्तित्व की भी जरूरत है। वह भी कोई कमी पूरी करता है। नारद के बिना कथाएं अधूरी रह जाएंगी। नारद के बिना नाटक सूना-सूना होगा। नारद कुछ महत्वपूर्ण सूत्र का काम पूरा करते हैं।

पर नारद के व्यक्तित्व की बात इतनी ही है कि उन्होंने छोड़ दिया है, 'वह' जो करवाये!

उनका रूप जो लोकमानस में है वह यह है कि वे अपना एकतारा लिये इस लोक से उस लोक के बीच डोलते रहते हैं। उनका वाद्य उनके साथ है। उनका संगीत उनके साथ है। उनके भीतर की संगीतपूर्ण दशा उनके साथ है।

ज्यादा कुछ उनके संबंध में कहा नहीं जा सकता; कहने की कोई जरूरत भी नहीं है। उनका

एकतारा ही उनका प्रतीक है। भीतर उनके एक ही स्वर बज रहा है, वह भक्ति का है; एक ही स्वर बज रहा है, वह समर्पण का है; एक ही स्वर बज रहा है, वह श्रद्धा का है। फिर परमात्मा जो कराये, जो 'उसकी' मर्जी !

नारद की अपनी कोई मर्जी नहीं है। अपने व्यक्तित्व को बनाने में भी उनकी कोई आचरणगत धारणा नहीं है। महावीर की मर्जी है; वे पैर भी फूंक-फूंककर रखते हैं; उनके पास एक आचरण है। बुद्ध की मर्जी है, एक शील है; नारद के पास अपना उतना भी दावा नहीं है।

इसलिए अगर तुम मुझसे पूछते हो तो मैं तुमसे कहता हूं कि यही परम मुक्ति है।

आज इतना ही।

शून्य की झील में प्रेम का कमल है भक्ति

ग्यारहवां प्रवचन

सूत्र

दुःसंगः सर्वथैव त्याज्यः ॥ ४३ ॥
कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाशसर्वनाशकारणत्वात् ॥ ४४ ॥
तरंगायिता अपीमे संगात्समुद्रायन्ति ॥ ४५ ॥
कस्तरति कस्तरति मायाम? यः संगास्त्यजति यो
महानुभावं सेवते निर्ममो भवति ॥ ४६ ॥
यो विविक्तस्थानं सेवते, यो लोकबन्धमुन्मूलयति,
निस्त्रैगुण्यौ भवति, योगक्षेमं त्यजति ॥ ४७ ॥
यः कर्मफलं त्यजति, कर्माणि संन्यस्यति ततो निर्द्वन्द्वो भवति ॥ ४८ ॥
वेदानपि संन्यस्यति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते ॥ ४९ ॥
स तरति स तरति स लोकांस्तारयति ॥ ५० ॥

जो नहीं है, उसे निर्बल मत जानना। जो नहीं है, उसमें भी बड़ा बल है। अन्यथा, मरु-मरीचिकाएं मनुष्य को आकर्षित न करतीं और स्वप्नों पर भरोसा न आता, क्षितिज आमंत्रण न देता, स्वप्न सत्य मालूम न होते।

जो नहीं है, वह भी बड़ा प्रबल है, और मन के लिए 'जो है' उससे भी ज्यादा प्रबल है। मन उसे देख ही नहीं पाता, 'जो है'। मन सदा उसका ही चिंतन करता है जो नहीं है, जिसका अभाव है। जो हाथ में नहीं है, मन उसका विचार करता है। जो हाथ में है, उसे तो मन भूल ही जाता है।

मन के इस सूत्र को ठीक से समझ लेना जरूरी है, तो ही भक्ति-सूत्र समझ में आ सकेंगे। क्योंकि मन के विपरीत जो गया, वही भक्ति को उपलब्ध हुआ। मन के साथ जो चला, वह कभी भगवान तक न पहुंच सकेगा।

भगवान यानी 'जो है', भक्ति यानी 'जो है', उसे देखने की कला।

लेकिन 'जो है', वह हमें दिखायी क्यों नहीं पड़ता ? 'जो है' वह तो हमें सहज ही दिखायी पड़ना चाहिए। 'जो है' उसे खोजने की जरूरत ही क्यों हो ? 'जो है' उसे हम भूले ही क्यों, उसे हम भूले ही क्यों, उसे हम भूले ही कैसे ? 'जो है' उसे हमने खोया कैसे ? 'जो है' उसे खोया कैसे जा सकता है ?

इसलिए पहली बात समझ लेनी जरूरी है : मन का नियम। मन उसी को जानता है जो नहीं है। तुम्हारे पास अगर दस हजार रुपये हैं तो उन दस हजार रुपयों को मन भूल जाता है। मन उन दस लाख रुपयों का चिंतन करता है जो होने चाहिए, पर हैं नहीं। मन अभाव का चिंतन करता है। जो पत्नी तुम्हें उपलब्ध है मन उसे भूल जाता है। जो पत्नी उपलब्ध नहीं है, जो स्त्री उपलब्ध नहीं है, मन उसकी कल्पनाएं करता है, योजनाएं बनाता है। तुम्हें जो मिला है, मन उसे देखता ही नहीं; मन उसी पर नजर रखता है, जो मिला नहीं है। हाथ की असलियत मन को नहीं भाती, स्वप्न के आभास भाते हैं। मन स्वप्न के भोजन पर जीता है। मन जीता ही स्वप्न के सहारे है।

जब भी तुम आंख बंद करोगे, भीतर सपनों का जाल पाओगे, चलते ही रहते हैं, रुकते ही नहीं। तुम आंख खोले काम में भी लगे हो, तब भी भीतर उनका सिलसिला जारी रहता है; तब भी पर्त-दर-पर्त सपने भीतर घने होते रहते हैं। तुम देखो या न देखो, लेकिन मन सपने बुनता रहता है। मन का सपनों का ताना-बाना क्षणभर को रुकता नहीं। उसी सपने के जाल का नाम माया है। उसी सपने के जाल

में उलझे तुम परेशान और पीड़ित हो।

जो नहीं है उसने तुम्हें अटकाया है। जो नहीं है उसने तुम्हें भरमाया है। जो नहीं है उसने तुम्हारी आंखें बंद कर दी हैं ; और जो है उसे देखना मुश्किल हो गया है।

रात तुम स्वप्न देखते हो, कितनी बार देखे हैं ; हर बार सुबह जागकर पाया, झूठे थे ! लेकिन फिर जब रात आज देखोगे स्वप्न तो देखते समय सच मानोगे। झूठ को सच मानने की तुम्हारी कितनी प्रगाढ़ धारणा है ! कितनी बार जागकर भी, कितनी बार देखकर भी कि सपने सुबह झूठ सिद्ध हो जाते हैं, फिर भी जब तुम रात स्वप्न देखोगे आज, तो सच मालूम होगा, शक भी न आएगा।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'हमारे मन में श्रद्धा नहीं है। हम बड़े सन्देहशील हैं। हमारा निस्तार कैसे होगा ?' मैं उनसे कहता हूं, 'मैंने अभी तक सन्देहशील व्यक्ति देखा नहीं। तुम सपनों तक पर श्रद्धा करते हो, सत्य की तो बात ही छोड़ो। तुम सपनों तक पर भरोसा करते हो, उन पर तक तुम्हें अभी सन्देह नहीं आया, तो तुम और किस पर सन्देह करोगे ? जो नहीं है, उस पर भी सन्देह नहीं हो पाता, तो 'जो है' उस पर तुम कैसे सन्देह करोगे ?'

सन्देहशील व्यक्ति मैंने अभी देखा नहीं क्योंकि जो सन्देहशील हो वह पहले तो सपनों को तोड़ेगा। जिसने सपने तोड़े उसके भीतर श्रद्धा का जन्म हुआ। जिसने सपने तोड़े, उसने तब सत्य को जानने का मार्ग साफ कर लिया। आज फिर रात जब तुम सपना देखोगे तब फिर खो जाओगे सपने में। ऐसा कितनी बार हुआ है, कितने जन्मों-जन्मों हुआ है ! रात की छोड़ो, क्योंकि रात तुम कहोगे कि हम बेहोश हैं, चलो दिन का ही विचार करें। दिन में भी कितनी बार क्रोध किया है, और कितनी बार तय किया है और कितनी बार पछताये हो कि अब नहीं, अब नहीं, बहुत हो गया। फिर जब क्रोध पकड़ लेता है और क्रोध का धुआं जब तुम्हें घेर लेता है, तब तुम फिर भूल जाते हो ; सारे पछतावे, सारे पश्चात्ताप, सारे निर्णय, संकल्प व्यर्थ हो जाते हैं। क्रोध का जरा-सा धुआं और तुम्हारे पैर उखड़ जाते हैं, जड़ें टूट जाती हैं, तुम फिर बेहोश हो जाते हो, तुम फिर बेसुध हो जाते हो। कितनी बार नहीं देखा कि कामवासना व्यर्थ ही भरमाती है ; भटकाती है, पहुंचाती कहीं नहीं ; दूर से दिखाती है मरूद्यान, पास आने पर मरुस्थल ही पाये जाते हैं। कितनी बार नहीं जाना है इसे ! लेकिन फिर तुम भटकोगे, फिर तुम खोओगे। फिर कामवासना पकड़ेगी और तब फिर तुम सपने सजाने लगोगे — और मन कहेगा, 'हो सकता है, इतनी बार झूठ सिद्ध हुई हो, अब की बार न हो ! अपवाद हो सकते हैं। जो अब तक नहीं हुआ, शायद अब हो जाए।'

मन 'शायद' पर जीता है। मन आशा पर जीता है।

उमरखैयाम की बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियां हैं कि मैंने ज्ञानियों से पूछा कि आदमी अब तक थका नहीं, किस सहारे जीता है ? आदमी अब तक विषाद को उपलब्ध नहीं हुआ, किस सहारे जीता है ? ज्ञानी उत्तर न दे पाये। फकीरों से पूछा। फकीर भी उलझे हुए मालूम पड़े।

तब कोई राह न देखकर, उमरखैयाम कहता है कि एक रात मैंने आकाश से पूछा कि तूने तो सभी को चलते देखा, सदियों-सदियों, युगों-युगों से, कितने लोग उठे, आशाओं और सपनों से भरे कितने लोग धूल में गिरे, तूने तो सबको देखा, सब के अरमान मिट्टी में मिलते देखे, तुझे तो पता चल गया

होगा अब तक, आदमी किसके सहारे चलता है! अब तक थकता नहीं, रुकता नहीं!

तो आकाश ने कहा, 'आशा के सहारे।'

तुम्हारा असली आकाश आशा है – जो नहीं हुआ शायद, हो जाए! जो किसी को नहीं हुआ शायद तुम्हें हो जाये! जो कभी किसी को नहीं हुआ, शायद...।

भविष्य को किसने जाना है? सिकंदर हार जाते हैं, लेकिन तुम चले जाते हो, चलते चले जाते हो। दिन में भी तुम सपने देखते हो, रात में ही नहीं। राह पर चलते हो तब भी सपने देखते हो। दुकान पर बैठते हो, बाजार में उठते हो, बैठते हो तब भी सपने देखते हो। सपने तुम्हारे भीतर एक सतत क्रम हैं। और इन्ही सपनों के कारण वह नहीं दिखायी पड़ता, जो है। सपनों की धूल तुम्हारी आंख को दबाये है।

सत्य को जानने के लिए कुछ भी नहीं करना है – सिर्फ असत्य से मुक्त हो जाना है। सत्य को जानने के लिए कुछ भी नहीं करना है – सिर्फ जो नहीं है, उसे देख लेना है कि नहीं है। द्वार साफ है। परदा उठा हुआ है। परदा कभी था ही नहीं।

कल मैं एक गीत पढ़ता था।
हंस मानसर भूला
सनी पंक में चंचु
हो गये उजले पर मटमैले
कंकर चुनने लगा वही जो
मुक्ता चुगता पहले
क्षर में क्या ऐसा सम्मोहन
जो तू अक्षर भूला?
कमल नाम से बिछुड़
कांस के सूखे तिनके जोरे
अवगुंठित कलियों के धोखे
कुंठित शूल बटोरे
पर में क्या ऐसा आकर्षण
जो परमेश्वर भूला?
नीर-क्षीर की दिव्य दृष्टि में
अंध वासना जागी
गति का परम प्रतीक बन गया
जड़ता का अनुरागी
क्षण को अर्पित हुआ
साधना का मन्वंतर भूला
हंस मानसर भूला

सनी पंक में चंचु
हो गये उजले पर मटमैले
कंकर चुनने लगा वही जो
मुक्ता चुगता पहले
क्षर में क्या ऐसा सम्मोहन
जो तू अक्षर भूला ?

क्षण में ऐसा क्या आकर्षण हो सकता है जो शाश्वत भूल जाए ? असार में ऐसा क्या बल हो सकता है जो सार विस्मृत हो जाए। दूसरे में ऐसी क्या पुकार हो सकती है जो अपना स्वभाव भूल जाए। पर है।

इसलिए पहली बात तुमसे कहता हूं : व्यर्थ के, असार के, जो नहीं है उसके बल को मत भूलना ; उसके बल को स्वीकार करना। जो नहीं है उसमें भी शक्ति है। क्योंकि मन का स्वभाव यही है कि वह जी ही सकता है, जो नहीं है उसी के सहारे। जो तुम्हारे पास है अगर तुम उसी को देखो तो मन की जरूरत क्या ? जो वर्तमान में है अगर तुम उसी में जियो तो मन को फैलने का उपाय कहां, अवकाश कहां ?

अभी तुम यहां बैठे हो। अगर तुम यहीं हो सिर्फ — मै हूं, तुम हो और यह क्षण है, तो मन मिट गया, तो मन यहां उठ न सकेगा। हां, तुम सोचने लगो कि दुकान जाना है, दस बजे आफिस पहुंच जाना है — मन प्रविष्ट हुआ। मन के लिए भविष्य चाहिए। तुम अगर एक क्षण बाद की सोचने लगो तो मन जीवंत हुआ। तुम एक क्षण पहले की सोचने लगो, तो मन जीवंत हुआ। तुम अगर अभी हो, यहीं हो, तो मन नहीं हो गया।

वर्तमान मन की मृत्यु है। भविष्य और अतीत मन का जीवन है। न तो अतीत है — जा चुका ; न भविष्य है — अभी आया भी नहीं। मन जीता ही, 'नहीं' में है। मन का स्वभाव नकार है — अनस्तित्व, अभाव। मन नास्तिक है। इसलिए मन से कोई कभी आस्तिक नहीं हो पाता। मन के आस्तिक तुम्हें बहुत दिखायी पड़ेंगे — मंदिरों-मस्जिदों में बैठे हैं, पूजा-पाठ करते हैं, लेकिन पूजा-पाठ वे कर नहीं रहे हैं ; उनका मन कहीं और भी आगे गया है। कोई स्वर्ग को मांगता होगा, कोई पुण्य के फल मांगता होगा। कोई परलोक के सुख मांगता होगा, कोई इसी लोक के सुख मांगता होगा ; लेकिन मन कहीं और जा चुका है।

मन न हो, तो पूजा। मौन पूजा होगी। मन न हो, तो पूजा होगी, तो प्रार्थना होगी, तो ध्यान होगा। जहां मन नहीं वहीं मंदिर शुरू होता है — मन की मौत पर।

इसे थोड़ा खयाल से समझ लो।

तुम अगर यहीं हो जाओ, इसी क्षण में, फिर कुछ पाने को नहीं है — पाया ही हुआ है। परमात्मा मिला ही हुआ है। तुमने उसे खोया कभी नहीं। खोने की भी भ्रांति है। एक सपने में तुम लीन हो गये हो। एक सपना तुम्हें अपने से दूर ले गया है। विचारों के ऊहापोह में तुम उलझ गये हो। जो तुम्हारे पैर के नीचे है, वही मंजिल दिखायी पड़नी बंद हो गयी है। जो तुम्हारे हृदय के भीतर है, इस

क्षण भी गुनगुना रहा है, उसी का गीत सुनायी पड़ना बंद हो गया है। तुम अपने से दूर हो गये हो।

भक्ति सूत्र तुम्हें समझ में आ सकेंगे, अगर तुम मन की इस अवस्था को ठीक से समझ लो और इसके बाहर होने शुरू हो जाओ। स्वप्न से जागो। परमात्मा को पाने की कोई भी जरूरत नहीं है – उसे कभी खोया नहीं है। स्वप्न से जागते ही तुम हंसोगे। जैसे आज रात तुम यहां सो जाओ और सपने में देखो कि कलकत्ते में हो या लंदन में हो या दिल्ली में हो – और सुबह आंख खुले और तुम पाओ कि पूना में हो ; न कलकत्ता थे, न लंदन थे, न दिल्ली थे – सब सपना था। लेकिन सपने में जब तुम दिल्ली में थे तब तुम सोच भी न सकते थे कि तुम हो पूना में। ठीक ऐसा ही हुआ है। तुम हो तो परमात्मा में, लेकिन तुम्हारा सपना तुम्हें कहीं और बतलाता है।

पहला सूत्र : 'दुःसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिए।'

दुःसंगः सर्वथैव त्याज्यः।

क्या है दुःसंग ?

पहला तो मन का संग, दुःसंग है।

तुमने भक्ति-सूत्र की व्याख्याएं पढ़ी होंगी, तो उनमें दुःसंग कहा है उन लोगों को जो बुरे हैं। उनसे क्या लेना-देना ? बुरा आदमी तुम्हारा क्या बिगाड़ लेगा, अपना ही बिगाड़ रहा है। इसलिए जिन्होंने भक्ति-सूत्र की व्याख्या में लिखा है, 'बुरे लोगों का साथ छोड़ दो, वे समझे नहीं।

दुःसंग का अर्थ है : मन का साथ छोड़ दो। यही एकमात्र दुःसंग है। तुम बुरे लोगों का साथ छोड़ दो और मन साथ बनाये रखो तो कोई दुःसंग छूटनेवाला नहीं। तुम जहां रहोगे, तुम जैसे रहोगे, वहीं मन दुःसंग खड़ा कर लेगा। मन बड़ा उत्पादक है, बड़ा सृजनात्मक है। परमात्मा के बाद अगर कहीं कोई स्रष्टा है तो मन है। कितना सृजन करता है – ना-कुछ से। शून्य में आकृतियां बना लेता है। शून्य में रंग भर देता है। शून्य में इन्द्रधनुष उग आते हैं, फूल खिल जाते हैं। और अपने ही बनाये खेल में खुद अनुरक्त हो जाता है। अपने ही हाथ से बनायी छायाओं के पीछे दौड़ने लगता है।

इसलिए मेरी व्याख्या है : मन का साथ छोड़ दो।

'दुःसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिए।'

मैं तुमसे नहीं कहता, चोर का साथ छोड़ो। मैं तुमसे नहीं कहता, क्रोधी का साथ छोड़ो। मैं तुमसे कहता हूं, मन का साथ छोड़ो; क्योंकि मन ही चोर है, मन ही क्रोधी है। यह सवाल दूसरे का नहीं है, अन्यथा धार्मिक लोग बड़े कुशल हो गये हैं... जो लोगों के साथ नहीं उठता-बैठता ...।

लेकिन साधु तो वही है जिसे दूसरों में बुरा दिखायी न पड़े। साधु तो वही है जिसे सभी जगह साधु का दर्शन होने लगे। साधु तो वही है जिसकी आंखें जहां पड़ें वहीं साधुता का आविर्भाव हो। तो यह साधु की व्याख्या तो नहीं हो सकती कि चोर का साथ छोड़ दो। कहीं कुछ भूल हो गयी। हां, यह यह बात सच है कि अगर तुमने अपने मन के चोर का साथ छोड़ा तो चोरों से तुम्हारा साथ अपने-आप छूट जाएगा।

आखिर चोर से तुम्हारा साथ क्या है ? ...क्योंकि तुम भी चोर हो ! और क्या साथ हो सकता है ? दुष्ट से तुम्हारी संगति क्या है ? ...क्योंकि तुम्हारे भीतर भी दुष्टता है, उसी से सेतु बनता है। बुरे

आदमी से तुम्हारा साथ क्यों हो गया है ? ...तुमने किया है। तुमने निमंत्रण दिया है। बुरा ऐसे ही नहीं आ गया है ; तुमने बुलाया है। चाहे तुम खुद भूल भी गये होओगे कि कब बुलावा भेजा था, कब निमंत्रण पत्र लिखा था, लेकिन आया तुम्हारे ही बुलावे पर है।

इस जगत में कुछ भी आकस्मिक नहीं है। इस जगत में जो कुछ भी है, व्यवस्थाबद्ध है। यह जगत एक परिपूर्ण व्यवस्था है। अगर तुम्हारा चोर से साथ है तो किन्हीं न किन्हीं रास्तों से तुमने चोर को बुलाया होगा। बीज बोए होंगे, तभी तो फसल काटोगे। चोर से साथ होने का एक ही अर्थ है कि तुम्हारे भीतर कहीं चोर है। समान समान से मिलना चाहता है। शराबी से दोस्ती हो गयी है, क्योंकि तुम्हारे भीतर शराबी है। हत्यारे से नाता बन गया है, क्योंकि तुम्हारे भीतर हत्या करने की भावना और कामना छिपी है। हिंसा भीतर हो तो हिंसक से दोस्ती बन जाएगी। अहिंसा भीतर हो तो हिंसक से दोस्ती बन ही न पाएगी, तालमेल न बैठेगा – छोड़ना न पड़ेगा, बनना ही मुश्किल हो जाएगा।

तो मेरी व्याख्या को ठीक से समझ लेना : अगर मन का साथ छूट जाए, तो और व्याख्याकारों ने जो कहा है, वह तो अपने से घटित हो जाता है, उसकी चिंता भी नहीं करनी पड़ती। इधर भीतर मन गया – क्रोध गया, लोभ गया, मोह गया, काम गया। वे सब मन के ही फैलाव हैं, वे सब मन की ही सेनाएंहैं। मन का सम्राट उन्हीं सेनाओं के सहारे जीता है – इधर मन मरा कि सेनाएंबिखरीं। इधर सम्राट गया कि साम्राज्य गया। तब तुम अचानक पाओगे : बुरे से संबन्ध नहीं बनता, तुम बनाना भी चाहो तो भी नहीं बनता। वस्तुतः तुम अगर बुरे के पीछे भी जाओगे तो बुरा तुमसे बचेगा, बुरा तुमसे डरने लगेगा। क्योंकि शुभ इतनी बड़ी शक्ति है, प्रकाश इतनी बड़ी शक्ति है कि अंधेरा छिप जाता है। जहां प्रकाश आया, अंधेरा भागा। अंधेरा ढूंढ़ने लगता है कोई स्थान, छुप जाए, बचा ले।

साधु अगर असाधु की दोस्ती करे, तो असाधु या तो भागेगा या मिटेगा। यही स्वाभाविक भी मालूम होता है। लेकिन यह दुनिया बड़ी उलटी है। यहां साधु असाधु से डर रहा है। जरूर साधु झूठा है, असाधु मजबूत है। साधु असाधु से डर रहा है। यह दुनिया तो ऐसी हुई कि दवाएंबीमारियों से डर रही हैं। प्रकाश अंधेरे से भागा हुआ है, डरा हुआ है कि छिप जाऊं, कहीं अंधेरा आकर मुझे मिटा न दे। तब तो फिर 'सत्यमेव जयते' कभी भी न हो सकेगा, सत्य की विजय फिर कभी न होगी। सत्य तो असत्य से डरा हुआ है।

नहीं, व्याख्या की भूल है। तुम जिसे साधु कहते हो, अगर वह असाधु से डरा है तो सिर्फ इसका सबूत देता है कि साधु नहीं है ; भीतर असाधु है और डरता है कि असाधु के संग-साथ रहा तो भीतर का असाधु प्रगट होने लगेगा, बाहर आ जाएगा। यही भय है। असाधु नहीं डरता साधु के साथ होने से, कोई भय नहीं है। लेकिन जब सच्चा साधु होगा तो असाधु डरेगा, या तो बचेगा, या भागेगा।

मैंने सुना है, महावीर के समय में एक बहुत बड़ा डाकू हुआ। वह महावीर से बहुत डरता था। वह बूढ़ा हो गया था। उसने अपने बेटे को शिक्षा दी कि देख, और सब करना, इस एक आदमी के आसपास मत जाना। यह खतरनाक है, यह अपने धंधे का बिलकुल दुश्मन है। इसके पास गये कि मिटे। तो अगर कभी भूल-चूक से भी तू गुजरता हो और महावीर बोलता हो, तो अपने कानों में अंगुलियां डाल लेना। इसी तरह बामुश्किल मैंने अपने को बचाया है।

निश्चित ही इस डाकू के भीतर साधु छिपा रहा होगा, अन्यथा कौन महावीर से बचता है ! इसको डर क्या है ? यह जानता है कि महावीर ठीक हैं। लेकिन भूल-चूक हो गयी। बेटा आखिर बेटा ही था ; बाप तो बहुत कुशल पुराना डाकू था, वह बचाता रहा अपने को। बेटा एक दिन जा रहा था रास्ते से। चूंकि बाप ने मना किया था, इसलिए मन में और आकर्षण भी हो गया कि एकाध शब्द सुन लेने में क्या हर्ज है। ऐसा थोड़ी कि कुछ एकाध शब्द सुन लोगे और सब बदल जायेगा।

तो महावीर बोलते थे, द्वार पर कहीं दूर खड़े होकर एक वाक्य सुना, लेकिन फिर बाप की याद आयी, अंगुलियां कान में डाल लीं, भाग खड़ा हुआ। पर एक वाक्य कान में पड़ गया। महावीर से किसी ने पूछा था कोई प्रश्न, और वे जवाब देते थे। पूछा था प्रेत-योनि के संबंध में, कि प्रेत होते हैं तो कैसे होते हैं, देव होते हैं तो कैसे होते हैं।

फिर वर्षों बीत गये, यह डाकू पकड़ा गया। सम्राट के घर डाका डाला था। सम्राट इसके बाप से परेशान था ; बाप मर गया, उसके बेटे से परेशान था। और कभी कोई बात पकड़ी न जा सकी थी, उनके खिलाफ जुर्म हाथ में न था, रंगे हाथ वे कभी पकड़े न गये थे। सम्राट ने अपने मनोवैज्ञानिकों से सलाह ली कि इससे सारी बातें निकलवा लेनी हैं ; अब हाथ में पड़ गया है तो छोड़ नहीं देना है। कैसे निकलवाएं इससे सारी बातें ?

तो मनोवैज्ञानिकों ने एक उपाय सोचा। उन्होंने इसे खूब शराब पिलाई। शराब पिलाकर महल की जो सुन्दरतम स्त्रियां थी, उनको इसके चारों तरफ नृत्य करने को कहा। यह आदमी बीच में बैठा है नशे में सरोबोर, वे स्त्रियां नाचने लगीं। ऐसा सुन्दर महल इसने कभी देखा भी न था। वे स्त्रियां इसे अप्सराएं मालूम होने लगीं। नशा ! इसे शक होने लगा कि मैं इस लोक में हूं या परलोक में पहुंच गया हूं। इसने किसी को पूछा। तो मनोवैज्ञानिकों ने यही तो उपाय किया था। उन्होंने कहा कि तुम मर गये हो, स्वर्ग में आ गये हो। और अब तुम अपने जीवनभर में तुमने जो भी पाप किये हैं, उन सब का ब्यौरा दे दो, ताकि परमात्मा उन्हें माफ कर दे। उसकी कृपा अनंत है, भयभीत मत हो। तुम अपना एक-एक पाप बोल दो। जो पाप तुम छिपाओगे वही बच रहेगा ; जो तुम बता दोगे उससे तुम्हारा छुटकारा हो जाएगा।

तब जरा डाकू चौंका : 'सब पाप बता दे !' तब उसे याद आया, उस दिन का महावीर का वचन कि देवलोक में देवता होते हैं तो उनकी छाया नहीं पड़ती। तो उसने गौर से देखा कि अगर यह देवलोक है...। स्त्रियों की छाया पड़ रही थी, वह सम्हल गया। उसे लगा कि यह सब धोखा है, नशे में हूं। उसने एक भी पाप के संबंध में कुछ भी न कहा। अपने पुण्य की बातें बताईं जो उसने कभी भी न किये थे। उसने कहा, 'पाप तो कभी किये ही नहीं, मैं करूं भी क्या ? परमात्मा क्षमा कर सकता है, लेकिन मैंने किये नहीं। पुण्य ही पुण्य किये हैं।'

सम्राट को उसे छोड़ देना पड़ा। वह जाल काम न आया। वह जैसे ही वहां से छूटा, सीधा महावीर के पास पहुंचा, उनके पैरों में गिर गया, और कहने लगा, 'तुम्हारे एक वचन ने मेरे प्राण बचाये। अब मैं तुम्हें पूरा-पूरा ही सुन लेना चाहता हूं। इतना ही सुना था, वह भी कुछ बड़ी काम की बात न थी, लेकि काम पड़ गयी। सत्संग काम आ गया। वह भी ऐसा चोरी-चोरी द्वार पर खड़े होकर,

एक वाक्य सुना था कि देवताओं की छाया नहीं पड़ती। तब तो सोचा भी न था कि इसकी कोई सार्थकता हो सकेगी, लेकिन काम पड़ गया, मेरे प्राण बचे। तुमने मुझे बचाया। भयंकर नशे में मुझे डुबाया था और सारा इंतजाम किया था और मैं फंस ही गया था और मैं तैयार ही था बोलने को, ताकि क्षमा कर दिया जाऊं। अब तुम मुझे पूरा ही बचा लो। इस सम्राट से तुमने बचाया, अब तुम मुझे मृत्यु से भी बचा लो। इस मौत से तुमने मुझे बचाया, अब तुम मुझे सारी मौतों से बचा लो। अब मैं तुम्हारी शरण हूं।

साधु का एक वचन भी सुन लिया जाए तो असाधु के जीवन में रूपान्तरण शुरू हो जाता है — बीज पड़ गया। साधु क्या डरेगा असाधु से ? डरे तो असाधु डरे।

मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम बुरे लोगों का साथ छोड़ देना। मैं तो तुमसे यह कहूंगा कि तुम उन्हें बुरे देखोगे तो तुम बुरे रह जाओगे। तुम अगर उन्हें बुरे मानोगे तो तुम्हारी बुराई कभी मिट न सकेगी। तुम तो एक साथ छोड़ दो — भीतर के अपने मन को — और तत्क्षण तुम पाओगे : संसार में कोई बुरा न रहा। चोर में भी तब तुम्हें परमात्मा ही छिपा हुआ दिखायी पड़ेगा। हत्यारे में भी तब तुम्हें उसकी ही ज्योति झिलमिलाई दिखायी पड़ेगी। और तुमसे भयभीत होने लगेगा असाधु, क्योंकि तुम असाधुता की मौत सिद्ध होने लगोगे। तुम्हारी छाया जहां पड़ेगी, वहां से अंधकार हटेगा। निश्चित ही तुम्हारा असाधु से साथ छूट जाएगा। मैं छोड़ने को नहीं कहता हूं — छूट जाएगा। तुम्हें छोड़ना न पड़ेगा — असाधु भाग खड़ा होगा, या असाधु रूपान्तरित हो जाएगा।

यह बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है :

'दुःसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिए।' ...पर दुःसंग है — मन का संग !

'क्योंकि वह (दुःसंग) काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण है।'

इतना साफ है सूत्र, पर व्याख्याकारों से ज्यादा अंधे लोग खोजना मुश्किल है।

'क्योंकि वह काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण है।'

कौन तुम्हारा सर्वनाश कर सकेगा ? ...तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी नहीं। तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है और तुमसे बड़ा न तुम्हारा कोई मित्र है। मन से साथ बना रहे तो तुम अपना ही आत्मघात करते रहोगे। मन से साथ छूट जाए तो तुम्हारे जीवन में नवजीवन का संचार हो जाएगा, पुनर्जन्म हो जाएगा।

काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश, सर्वनाश — इन शब्दों को समझो।

काम का अर्थ है : सदा इस आशा से जगत को देखना कि उससे कुछ सुख पाना है। काम का अर्थ है : सुख पाने की आकांक्षा से ही चीजों को, व्यक्तियों को, घटनाओं को देखना; आकांक्षा से भरे होकर देखना। जब तुम आकांक्षा से भरकर किसी चीज को देखते हो, तब तुम्हें चीज का सत्स्वरूप दिखायी नहीं पड़ता, क्योंकि तुम्हारी आकांक्षा परदा डाल देती है। तुम जिस चीज को भी वासना से भरकर देखते हो, तुम्हें वही दिखायी पड़ता है जो तुम देखना चाहते हो।

मैं एक मित्र के साथ गंगा के तटं पर बैठा था। वे थोड़े बेचैन हो आए। फिर मुझसे कहने लगे, 'क्षमा करें। आपसे झूठ न कहूंगा, लेकिन मुझे थोड़े समय के लिए छुट्टी दें, मैं उस तट तक जाना चाहता

हूं।' वे गये। मैंने देखा कि वे क्यों जाना चाहते हैं। सुन्दर स्त्री दिखायी पड़ गयी है, वह स्नान कर रही है। वे गये बड़ी आतुरता से, फिर लौटे बड़े उदास। मैंने पूछा, 'क्या हुआ?' उन्होंने कहा, 'बड़ी भ्रांति हुई। वह स्त्री नहीं है, कोई साधु है। लम्बे बाल...। पीठ की तरफ से दिखायी पड़ा था। जब पास से जाकर देखा तो वह साधु है, स्त्री नहीं है।'

मैंने उनसे पूछा कि थोड़ा गौर करो, स्त्री तुम्हें दिखायी पड़ी इसमें तुम इतना ही मत सोचो कि साधु के बालों ने धोखा दे दिया। तुम स्त्री देखना चाहते थे। तुमने आरोपण किया। तुम मुझसे पूछे होते। उतनी दूर जाने की जरूरत न थी।

हम वही देख लेते हैं जो हम कामना करते हैं। तुम अपने चारों तरफ अपनी ही कामना का संसार रच लेते हो।

दो साधु एक रास्ते से गुजरते थे। एक साधु दूसरे से कुछ बोल रहा था। उस दूसरे ने कहा कि यहां सुनायी भी नहीं पड़ेगा मुझे कुछ। यह बाजार इतना शोरगुल! यह ज्ञान की बात यहां मत करो — एकांत में चलकर करेंगे।

वह साधु वहीं खड़ा हो गया। उसने अपनी जेब से एक रुपया निकाला और आहिस्ता से रास्ते पर गिरा दिया। खननखन की आवाज हुई, भीड़ इकट्ठी हो गयी। पहले साधु ने पूछा कि मैं समझा नहीं, यह तुमने क्या किया। उसने रुपया उठाया, जेब में रखा और चल पड़ा। उसने कहा, 'इतना भरा बाजार है, इतना शोरगुल मच रहा है; लेकिन रुपये की जरा-सी खननखन की आवाज — इतने लोग आ गये। ये रुपये के प्रेमी हैं। नरक में भी भयंकर उत्पात मचा हो और अगर रुपया गिर जाए तो ये सुन लेंगे।'

हम वही सुन लेते हैं जो हम सुनना चाहते हैं। उस साधु ने कहा, 'अगर तुम परमात्मा के प्रेमी हो तो यहां भी, बाजार में भी परमात्मा के संबंध में मैं कुछ कहूंगा तो तुम सुन लोगे।'

कोई दूसरा बाधा नहीं डाल रहा है। हम वही सुनते हैं जो हम सुनना चाहते हैं। हम वही देखते हैं जो हम देखना चाहते हैं। हमें उसी से मिलन हो जाता है जिससे हम मिलना चाहते हैं। इस जीवन की व्यवस्था को ठीक से जो समझ लेता है वह फिर किसी दूसरे को दोष नहीं देता।

ध्यान रखना : कामना तुम्हें कभी सत्य को न देखने देगी। सत्य को देखना हो तो कामना-शून्य चित्त चाहिए।

इस बगीचे में कोई चित्रकार आए तो कुछ और देखेगा। कोई लकड़हारा आ जाए तो कुछ और देखेगा। कोई फूलों को बेचनेवाला माली आ जाए तो कुछ और देखेगा। तीनों एक ही जगह आएंगे, लेकिन तीनों के दर्शन अलग-अलग होंगे।

कहते हैं, जब संगीत की परम ऊंचाई उपलब्ध होती है तो वीणा शांत भी रखी हो तो संगीतज्ञ को वे स्वर सुनायी पड़ने शुरू हो जाते हैं, जो उस वीणा से प्रगट हो सकते हैं, जो अभी छुपे हैं, अभी जन्मे भी नहीं। लेकिन कान की उत्कंठा उन्हें भी सुन लेती है जो अभी प्रगट नहीं हुए। अनभिव्यक्त भी अभिव्यक्त हो जाता है। आंख हो देखनेवाली तो बीज में भी फूल दिखायी पड़ने लगते हैं।

कहते हैं, चमार रास्तों पर लोगों को देखते हैं तो जूतों को ही देखकर आदमी का सब कुछ समझ

जाते हैं। जूते की हालत बहुत कुछ बताती है : तुम्हारी आर्थिक दशा ; ठीक चल रही है जिंदगी कि ऐसे ही जा रही है; सफलता पा रहे हो कि असफल हो रहे हो; घर से क्रोध में चले आये हो, झगड़कर चले आये हो कि शांति में विदा पायी है – सब तुम्हारे जूते की हालत बता देती है। जूते की शिकन-शिकन में तुम्हारी कथा लिखी है, आत्मकथा है। चमार जूतों को देखता है और सब समझ जाता है। चमार तुम्हारे चेहरे की तरफ देखता ही नहीं। जूतों को देखते-देखते पारंगत हो जाता है। वही उसकी समझ है। वहीं से जानता है।

हजारों लोग तुम रास्तों पर चलते हुए देखोगे, लेकिन सभी लोग एक ही रास्ते पर नहीं चल रहे हैं – एक ही रास्ते पर चल रहे हैं यूं तो, लेकिन सबकी नजर अलग-अलग चीजों पर लगी है। भूखा रेस्तरां, होटल को देखता हुआ चलेगा। जिसने उपवास किया है वही जानता है। फिर कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता संसार में सिवाय भोजन के। कहते हैं, उपवासे आदमी को चांद भी तैरती हुई रोटी की तरह मालूम होता है।

संसार तुम्हारा चुनाव है। तुम्हारी वासना चुनती है। जिस चीज में तुम उत्सुक नहीं हो वह दिखायी नहीं पड़ती। मेरे पास बहुत-से संन्यासियों ने आकर यह कहा है कि संन्यास लेने के पहले कपड़े की दुकानें दिखायी पड़ती थीं, अब, नहीं दिखायी पड़तीं। अब दिखायी पड़ने का सार भी नहीं। एक ही कपड़ा बचा – गेरुआ। अब कपड़े की दुकानें हैं भी कि मिट गयीं – संन्यासी को क्या लेना-देना। बात ही खत्म हो गयी!

जिस बात से हमारा संबंध टूट जाता है, वह विदा हो जाती है संसार से। जिससे हमारा संबंध बना रहता है, उसी को हम देखते चलते हैं। ध्यान रखना, तुम्हारा निर्णय तुम्हीं को नहीं बदलता, सारे संसार को बदल देता है – तुम्हारे संसार को बदल देता है। क्योंकि तुम्हारा संसार तुम्हारा निर्णय है।

काम सत्य को न जानने देगा। क्रोध सत्य को न जानने देगा। क्योंकि क्रोध में तो तुम वैसी अवस्था में पहुंच जाते हो जैसे कोई शराबी। कहीं पड़ते हैं पैर, कहीं तुम रखना चाहते थे। कुछ कह जाते हो, कुछ तुम कहना चाहते थे। पीछे पछताओगे, पहले भी पछताए थे। क्रोध तुमसे ऐसे कृत्य करवा लेता है जो तुम कर ही नहीं सकते थे; जो अपने होश में तुमने कभी न किये होते।

क्रोध यानी बेहोशी।

मोह : किसी को तुम अपना मानते हो, तो देखने के ढंग बदल जाते हैं। जिसे तुम अपना नहीं मानते, देखने के ढंग बदल जाते हैं। वही कृत्य अगर अपना करे तो तुम्हारा निर्णय कुछ और होता है; वही कृत्य कोई दूसरा करे तो निर्णय और हो जाता है। तुम्हारा न्याय तुम्हारे मोह से मर जाता है; सत्य को देखने की क्षमता धूमिल हो जाती है। दूसरा कुछ करे तो पाप; अपना कुछ करे तो ज्यादा से ज्यादा भूल। तुम अगर वही काम करो तो मजबूरी; और दूसरा करे तो अपराध!

तुमने कभी खयाल किया? ...तुम अगर रिश्वत ले लेते हो, तो मजबूरी, क्या करें, तनख्वाह से काम नहीं चलता। लेना तुम चाहते नहीं, लेकिन मजबूरी है, बाल-बच्चे हैं, घर-द्वार है, चलाना है। जानते हो, गलत है – मगर इतना भी तुम जानते हो कि अपराध तुमने नहीं किया; तुम क्या करो, समाज ने मजबूर कर दिया है। दूसरा जब रिश्वत लेता है तब अपराध है। तब तुम बड़ा शोरगुल मचाते हो।

वस्तुतः तुम्हारा शोरगुल उतना ही बड़ा होता है जितनी तुमने भी रिश्वत ली होती। अपनी भूल को छोटा करने के लिए तुम दूसरे की भूल को बड़ा-बड़ा करके दिखाते हो। तुम संसार में सबकी निंदा करते रहते हो। वही तुम भी करते हो; अन्यथा तुम भी नहीं कर रहे हो।

दूसरे का बेटा असफल हो जाता है, तुम समझते हो, बुद्धिहीन ; तुम्हारा बेटा असफल हो जाता है तो शिक्षक की शरारत !

मेरे पास मां-बाप आ जाते हैं, वे कहते हैं, हमारा बेटा फेल कर दिया, जरूर कोई साजिश है। जो भी फेल होता है, वह कहता है साजिश है; लेकिन दूसरे जो फेल हुए हैं, उनकी बुद्धि ही नहीं तो क्या करेंगे !

तुम कभी गौर करना, मोह तुम्हारी आंख से न्याय को छीन लेता है।

काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश...। स्मृतिभ्रंश बड़ा महत्वपूर्ण शब्द है। बुद्ध ने जिसे सम्यक स्मृति कहा है, यह उसकी विपरीत अवस्था है – स्मृतिभ्रंश उसकी विपरीत अवस्था है। जिसको गुरजिएफ ने सैल्फ-रिमेम्बरिंग कहा है, आत्म-स्मरण, स्मृतिभ्रंश उसकी विपरीत अवस्था है। जिसे कृष्णमूर्ति अवेयरनेस कहते हैं, स्मृतिभ्रंश उसकी विपरीत अवस्था है। जिसको नानक ने, कबीर ने सुरति कहा है, स्मृतिभ्रंश उसकी उलटी अवस्था है।

सुरति स्मृति का ही रूप है। सुरतियोग का अर्थ है : स्मृतियोग – ऐसे जीना कि होश रहे ; प्रत्येक कृत्य होशपूर्ण हो ; उठो तो जानते हुए; बैठो तो जानते हुए।

एक छोटा-सा प्रयोग करो। आज जब तुम्हें फुर्सत मिले घंटेभर की, तो अपने कमरे में बैठ जाना द्वार बंद करके और एक क्षण को सारे शरीर को झकझोरकर होश को जगाने की कोशिश करना – बस एक क्षण को – कि तुम बिलकुल परिपूर्ण होश से भरे हो बैठे हो, आसपास आवाज चल रही है; सड़क पर लोग चल रहे हैं, हृदय धड़क रहा है; सांस ली जा रही है – तुम सिर्फ होश मात्र हो – एक क्षण के लिए। सारी स्थिति के प्रति होश से भर जाना; फिर उसे भूल जाना; फिर अपने काम में लग जाना। फिर घंटेभर बाद दुबारा कमरे में जाकर, फिर द्वार बंद करके, फिर एक क्षण को अपने होश को जगाना – तब तुम्हें एक बात हैरान करेगी कि बीच का जो घंटा था, वह तुमने बेहोशी में बिताया; तब तुम्हें अपनी बेहोशी का पता चलेगा कि तुम कितने बेहोश हो। पहले एक क्षण को होश को जगाकर देखना, झकझोर देना अपने को; जैसे तूफान आए और झाड़-झकझोर जाए, ऐसे अपने को झकझोर डालना, हिला डालना। एक क्षण को अपनी सारी शक्ति को उठाकर देखना – क्या है, कौन है, कहां है! ज्यादा देर की बात नहीं कर रहा हूं, क्योंकि एक क्षण से ज्यादा तुम न कर पाओगे। इसलिए एक क्षण काफी होगा। बस एक क्षण करके बाहर चले जाना, अपने काम में लग जाना – दुकान है, बाजार है, घर है – भूल जाना। जैसे तुम साधारण जीते हो, घंटेभर जी लेना। फिर घंटेभर बाद कमरे में जाकर फिर झकझोरकर अपने को देखना। तब तुम्हें तुलनात्मक रूप से पता चलेगा कि ये दो क्षण अगर होश के थे, तो बीच का घंटा क्या था ! तब तुम तुलना कर पाओगे। मेरे कहने से तुम न समझोगे; क्योंकि होश को मैं समझा सकता हूं शब्दों में, लेकिन होश तो एक स्वाद है। मीठा, मीठा, मीठा कहने से कुछ न होगा। वह तो तुम्हें मिठाई का पता है, इसलिए मैं मीठा कहता हूं तो तुम्हें अर्थ पता हो गया। मैं

कहूं स्मृति, सुरति उससे कुछ न होगा ; उसका तुम्हें पता ही नहीं है। तो तुम यह भी न समझ सकोगे कि स्मृतिभ्रंश क्या है। होश को जगाना क्षणभर को, फिर घंटेभर बेहोश ; फिर क्षणभर को होश को जगाकर देखना – तुम्हारे सामने तुलना आ जाएगी; तुम खारे और मीठे को पहचान लोगे। वह जो घंटा बीच में बीता, स्मृतिभ्रंश है। वह तुमने बेहोशी में बिताया – जैसे तुम थे ही नहीं, जैसे तुम चले एक यंत्र की भांति; जैसे तुम नशे में थे – और तब तुम्हें अपनी पूरी जिंदगी बेहोश मालूम पड़ेगी।

मन बेहोशी है, स्मृतिभ्रंश है। और स्वभावतः इन सबका जोड़ सर्वनाश है।

'दुःसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिए, क्योकि वह दुःसंग काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश है।'

'ये काम-क्रोधादि पहले तरंग की तरह (क्षुद्र आकार में) आते हैं, फिर विशाल समुद्र का आकार ग्रहण कर लेते हैं।'

आता है सब बड़े छोटे-से आकार में, तरंग की भांति। अगर तुमने तरंग को ही न पहचाना और पकड़ा, तो चूक गये। पहले कदम में ही जागना। जब क्रोध की पहली लहर आती है, इतनी सूक्ष्म होती है कि पता भी नहीं चलता, चुपचाप प्रविष्ट हो जाती है; इतनी हवा के हलके झकोर की तरह आती है कि पत्ता भी नहीं हिलता, आवाज भी नहीं होती। पर तभी होश रखा, तो ही; नहीं तो बीज प्रविष्ट हो गया।

क्रोध की अवस्थाओं को समझो। पहला : क्रोध आ रहा है, अभी आया नहीं ; लहर उठी है, लेकिन अभी प्रवेश नहीं हुआ। फिर लहर प्रविष्ट हो गयी, बीज भीतर पड़ गया; देर-अबैर सागर बनेगा। फिर यह सागर जोर से झंझावात करता है। उठती हैं लहरें और तटों से टकराती हैं। फिर उतर गया सागर। फिर लहर भी चली गयी। किनारा फिर शांत रह गया। ये तीन अवस्थाएं हुईं – क्रोध के पहले, फिर क्रोध की, और क्रोध के बाद।

क्रोध के पहले ही जो लहर को देख लेगा, जो जाग जाएगा, वही बच सकता है। लोग अक्सर जब क्रोध जा चुका होता है तब देखते हैं ; लेकिन तब तो क्या करोगे ? मेहमान जा चुका ! जो होना था हो चुका ! अब चिड़िया चुग गयी खेत, अब पछताये होत क्या !

लेकिन हम पछताते तभी हैं जब चिड़िया खेत चुग जाती है। तुम सभी पछताये हो। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो क्रोध करके न पछताया हो। लेकिन तुम्हारा पश्चात्ताप व्यर्थ है। यह तो तब आता है जब सागर उतर चुका। फिर तो तुम करोगे भी क्या ? फिर तुम पछता सकते हो और भविष्य के लिए निर्णय ले सकते हो कि अब क्रोध नहीं करूंगा। लेकिन यह निर्णय भी काम आयेंगे ? क्योंकि तुमने एक छोटी-सी बात भी न सीखी, जिंदगीभर हो गयी क्रोध करते, कि जब क्रोध आता है तब तुम्हारा होश नहीं रह जाता, तो निर्णय काम कैसे आएगा ? जब क्रोध आता है तब होश नहीं रह जाता, तो निर्णय का भी होश नहीं रह जाता। जब क्रोध चला जाता है, तुम बड़े बुद्धिमान हो जाते हो। क्रोध चले जाने पर कौन बुद्धिमान नहीं हो जाता ! कामवासना का ज्वर उतर जाने पर कौन बुद्धिमान नहीं हो जाता! बुढ़ापे में सभी बुद्धिमान हो जाते हैं। लेकिन उस बुद्धिमता का कोई मूल्य नहीं है।

क्रोध की लहर जब आए...यह सूत्र बड़ा महत्वपूर्ण है : 'ये काम, क्रोधादि – पहले तरंग की तरह

(क्षुद्र आकार में) आकर भी समुद्र का आकार धारण कर लेते हैं।'

बीज से ही सुलझ लेना। बो दिया, फिर तो फसल काटनी ही पड़ेगी। फिर पछताना तो एक तरकीब है। वह तरकीब भी बड़ी चालाक है। अकसर लोग क्रोध करके पछताते हैं और सोचते हैं कि बड़े भले लोग हैं, कम-से-कम पछताते तो हैं। लेकिन मेरे जाने, हजारों लोगों के निर्णयों को देखकर, एक बात तुमसे कहना चाहूंगा : क्रोध करके पछताना पुनः क्रोध करने की तैयारी है। तुम्हारी एक प्रतिमा है तुम्हारे मन में कि तुम बड़े साधु-पुरुष, साधुचित्त हो। क्रोध करके तुम्हारी प्रतिमा खंडित हो जाती है, गिर जाती है, सिंहासन से नीचे पड़ जाती है। पछताकर तुम उसे वापस सिंहासन पर रखने की कोशिश करते हो कि 'भला क्रोध हो गया, भूल हो गयी, मनुष्य से भूल हो जाती है; ऐसा कोई बहुत बड़ा पाप नहीं हो गया है; किसको क्रोध नहीं होता! 'और फिर तुम समझाते हो कि 'क्रोध जरूरी भी था, न करते तो हानि होती; ऐसे अगर क्रोध न करोगे तो हर कोई छाती पर चढ़ बैठेगा। आखिर लोगों को डराना तो पड़ेगा ही। मारो मत, कम से कम फुफकारो तो। कोई मारा तो नहीं, किसी की हत्या तो की नहीं – सिर्फ फुफकारे '!

तुम इस तरह के तर्क अपने लिए खोज लोगे। या तुम कहोगे कि बच्चा था, अगर उसको न डांटते न डपटते, बिगड़ जाता। उसके भविष्य के सुधार के लिए...। तुम हजार बहाने खोज लोगे यह समझाने के लिए कि क्रोध जरूरी था। हालांकि तुम जानते हो कि कोई भी क्रोध जरूरी नहीं है। अगर तुम यह जानते न होते तो तुम यह भी निर्णय करने की चेष्टा क्यों करते कि जरूरी था? यह तर्क भी तुम इसलिए खोजते हो कि भीतर चोट खलती है, भीतर तुम जानते हो कि भूल हुई है। अब भूल को लीपा-पोती करते हो। अब भूल को सजाते हो। सिंहासन पर फिर प्रतिमा को बिठा लेते हो। फिर तुम उसी जगह आ जाते हो जहां क्रोध करने के पहले थे। इसका अर्थ हुआ : अब तुम फिर पुनः क्रोध करने के लिए उतने ही तत्पर हो जितने पहले थे।

पश्चात्ताप क्रोध की तरकीब है। पश्चात्ताप से धर्म का कोई संबंध नहीं। धार्मिक व्यक्ति पछताता नहीं। और धार्मिक व्यक्ति व्यर्थ के निर्णय नहीं लेता, व्रत, कसमें नहीं खाता। धार्मिक व्यक्ति तो जब कोई चीज को समझ लेता है तो उसकी समझ ही उसकी कसम है; उसकी समझ ही उसका पश्चात्ताप है; उसकी समझ ही उसकी क्रांति है। तब फिर वह यह नहीं कहता कि मैं क्रोध न करूंगा – वह इतना ही कहता है कि अब जब क्रोध आएगा तो मैं जागूंगा।

इस फर्क को समझ लो।

क्रोध न करूंगा, यह तो बेहोश आदमी का ही निर्णय है। यह तो तुम बहुत बार कर चुके और बहुत बार झुठला चुके। समझदार आदमी यह कहता है कि एक बात तो मैं समझ गया कि क्रोध जब आता है, मैं बेहोश हो जाता हूं, इसलिए अब होश रखने की कोशिश करूंगा। क्रोध करूंगा कि नहीं करूंगा, यह मेरे बस में कहां; बस में ही होता तो पहले ही कभी का बंद कर दिया होता। मैं अवश हूं, असहाय हूं। इसलिए यह तो नहीं कह सकता कि क्रोध न करूंगा – इतना ही कर सकता हूं कि इस बार जब क्रोध आएगा तो होश से करूंगा।

इस फर्क को बहुत गौर से ले लेना : 'क्रोध तो करूंगा, लेकिन होश से करूंगा।' और क्रोध अगर

होश से किया जाए तो होता ही नहीं। क्रोध होश से करना तो ऐसे ही है जैसे जानते हुए पत्थर को कोई रोटी समझकर भोजन करे। क्रोध होश से करना तो ऐसा ही है जैसे जानते हुए कोई दीवाल से निकलने की कोशिश करे, सिर टकराए, लहूलुहान हो जाए। जानते हुए क्रोध करना तो ऐसे ही है जैसे जानते हुए कोई आग में हाथ डाले। इसलिए जानते हुए करूंगा, होशपूर्वक करूंगा...।

'होशपूर्वक' का अर्थ है कि लहर आएगी तब जागूंगा। तूफान जब जा चुका होगा तब पछताने का कोई अर्थ नहीं है। 'पकडूंगा प्रारम्भ में, बीज में।' जिसने पहले पकड़ लिया, वह मुक्त हो जाता है। फिर बीज को, लहर को सागर बनने की सुविधा नहीं होती। आते सब छोटी-छोटी तरंगों की तरह हैं, इसलिए तो धोखा दे जाते हैं।

जब क्रोध आता है, तुम सोचते हो : 'किसको पता है ? इतना छोटा है, अपने को ही पता नहीं चल रहा।'

जरा देखना, क्रोध बड़ा नाजुक है; बड़ी हलकी-सी लहर आती है। जाते थे तुम रास्ते से, कोई हंसने लगा; उसने कुछ कहा भी नहीं है; तुम्हारे लिए ही हंसा हो, ऐसा भी जरूरी नहीं है; तुम ही अकेले नहीं हो, दुनिया बड़ी है। और क्या मतलब तुम्हारे लिए हंसे ? लेकिन एक लहर तुम्हारे भीतर सरक जाएगी; तुम तन गये। कुछ खटक गया। कुछ अटक गया। तुम्हारा प्रवाह वैसा ही न रहा जो क्षणभर पहले था। उसकी हंसी पत्थर की तरह भीतर चली गयी। तुम और हो गये। अपने चेहरे पर गौर करना, चेहरा तन गया, माथे पर सलवटें आ गयीं, ओंठ भिंच गये, दांत कस गये, हाथों में तनाव आ गया।

इस सारी छोटी-सी लहर को गौर से देखना। सूक्ष्म निरीक्षण करना, और तुम हैरान होओगे : जैसे-जैसे तुम निरीक्षण करोगे वैसे-वैसे तुम पाओगे कि और भी सूक्ष्म तरंगों का पता चलता है। आदमी हंसा भी नहीं, जिस ढंग से उसने तुम्हारी तरफ देखा और लहर आ गयी। या यह भी हो सकता है कि उसने तुम्हारी तरफ देखा नहीं, और लहर आ गयी, कि वह राह से तुम्हें बिना देखे गुजर गया कि क्रोध आ गया। तुम्हें और बिना देखे गुजर जाए! तो जानकर तुम्हें अनदेखा किया, उपेक्षा की! अपमान हो गया!

अहंकार घाव की तरह है। जरा-जरा सी चीज से ठोकरें खाता है। जरा-जरा चीजों से विक्षुब्ध हो जाता है। इस सबको जांचना, देखना। कुछ करने की उतनी बात नहीं है जितनी जागकर देखने की बात है। तुम्हारे किये कुछ भी न होगा। तुम अभी हो कहां ? तुम अभी हो ही नहीं। होश ही होगा तब तुम होओगे। बेहोशी में कोई है ?

'कौन तरता है ? माया से कौन तरता है ? ...जो सब संगों का परित्याग करता है, जो महानुभावों की सेवा करता है, और जो ममतारहित है।'

'कौन तरता है ? माया से कौन तरता है ? कौन पार निकल पाता है इस तिलिस्म से, झूठ के तिलिस्म से, इस झूठ के जादू से, मन के इस फैलाव से। कहो उसे माया।

कौन तर पाता है ? ...जो सब संगों का परित्याग करता है।

तुम जल्दी ही संग हो जाते हो किसी भी चीज के। क्रोध उठा तुम संग हुए, तुम साथ हुए, तुम

ने हाथ में हाथ डाल लिया, तुम हमजोली बने। वासना उठी, तुम साथ हुए। संग होना तुम्हारे लिए इतनी तत्परता से होता है कि इधर भाव उठा नहीं कि उधर तुमने गले में फांसी डाली नहीं। तुम साथ होने को इतने तत्पर हो हर चीज के! यह संग की प्रवृत्ति ही तुम्हें डुबा रही है। जरा दूर-दूर चलो। जरा सहयोग सोच समझकर करो। संग की इतनी जल्दी मत करो। क्रोध आए, आने दो, तुम साथ मत दो; तुम जरा दूर-दूर खड़े रहो अलगाये, अलग-थलग, पृथक-पृथक ! क्रोध को ऐसे देखो जैसे कोई और हो। क्रोध को ऐसे देखो जैसे 'पर' है, 'पर' है ही। 'स्व' तो वही है जो देखनेवाला है, जो द्रष्टा है; शेष सब तो 'पर' है।

इस सूत्र का अर्थ है: जो सब संगों का परित्याग करता है, इस सूत्र का अर्थ है : जो द्रष्टा बनता है, साक्षी बनता है। फिर व्याख्याकारों ने बड़ी भूलें की हैं। वे कहते हैं : 'कसम खाओ कि क्रोध नहीं करोगे; व्रत लो ब्रह्मचर्य का; धन का त्याग करो; घर द्वार छोड़ो, इसको वे संग-परित्याग कहते हैं, मैं नहीं कहता। क्योंकि मैंने उन लोगों को देखा है, जिन्होंने धन छोड़ दिया और फिर भी धन उनसे नहीं छूटा। और मैंने उन लोगों को देखा है, जिन्होंने घर छोड़ दिये, और कुछ भी नहीं छूटा ; क्योंकि घर भीतर है, बाहर नहीं।

गृहस्थ होना एक दृष्टिकोण है। संन्यस्त होना भी एक दृष्टिकोण है। तुम घर में रहकर संन्यस्त हो सकते हो। तुम संन्यासी होकर गृहस्थ रह सकते हो। यह बात जरा सूक्ष्म है। यह इतनी स्थूल नहीं है जितनी लोगों ने पकड़ रखी है। लोग तो बिलकुल पदार्थवादी हैं जिनको तुम संन्यासी कहते हो, वे भी। जिनको तुम मुनि कहते हो, वे भी पदार्थवादी हैं; क्योंकि उनका त्याग भी पदार्थ का त्याग है, दृष्टि का नहीं। कोई घर को छोड़ देता है, तो उसको तुम त्यागी कहते हो; कोई घर को पकड़ता है तो उसको तुम भोगी कहते हो लेकिन दोनों की नजर घर पर है। दोनों पदार्थवादी हैं, मेटीरियलिस्ट। अभी अध्यात्म का दोनों में से किसी को भी अनुभव नहीं हुआ।

अध्यात्म का अर्थ है : अब तुम पदार्थ को न पकड़ते हो, न छोड़ते हो, तुम दृष्टियों में रूपान्तरण करते हो; तुम दर्शन बदलते हो; तुम अपने देखने का ढंग बदलते हो।

तो मैं तुमसे कहूंगा, जो सब संगों का परित्याग करता है, उसका अर्थ हुआ : क्रोध उठता है तो हाथ में हाथ डालकर चल नहीं पड़ता – क्रोध्र से कहता है, 'ठीक है मर्जी, तुम उठे; हम भी सोचेगें, निर्णय करेंगे। साथ देने योग्य लगेगा, देंगे; नहीं देने योग्य लगेगा, नहीं देंगे। साथ की अनिवार्यता नहीं है। तुम उठे, इसलिए हम साथ देंगे ही – इस भूल में मत पड़ो। साथ हमारा निर्णय होगा – होशपूर्वक।' और तब तुम एक क्रांति होते देखोगे तुम्हारे भीतर।

इस होश की आग में, जो व्यर्थ है जल जाता है। कुंदन बचता है, कचरा जल जाता है।

'जो सब संगों का परित्याग करता है, जो महानुभावों की सेवा करता है, और जो ममता-रहित है।'

'महानुभाव' बड़ा प्यारा शब्द है। महानुभाव का अर्थ है: जिसके भीतर परम भाव का अवतरण हुआ है; सदगुरु; कोई ऐसा व्यक्ति जिसके भीतर परमात्मा अवतरित हुआ है। महानुभाव : जिसके भीतर आत्यंतिक भाव पैदा हुआ है; जो उस भाव दशा में है जिसको हम भगवत्ता कहें। ऐसे व्यक्ति के पास होना। कोई बुद्ध मिल जाए, कोई महावीर, कोई कबीर, कोई नानक, कोई जीसस, कोई मुहम्मद, तो

महानुभाव की सेवा करना।

सेवा का कुल इतना अर्थ है कि सत्संग करना। ऐसे व्यक्ति की छाया में बैठना। जैसे थका-हारा पथिक, धूप से बचने के लिए वृक्ष की छाया के तले बैठ जाता है और शीतल विश्राम पाता है – ऐसे ही किसी महानुभाव की छाया में बैठना। संसार से थका हुआ, हारा हुआ, विचलित व्यक्तित्व, किसी महानुभाव की छाया में औषधि को उपलब्ध हो जाता है जो स्वयं एक हो गया है, उसकी निकटता में तुम भी एक होने लगते हो। जो स्वयं एक हो गया है, उसके पास बैठकर, उसका सत्य संक्रामक होने लगता है।

ध्यान रखना, बीमारी ही नहीं लगती, स्वास्थ्य भी लगता है। ध्यान रखना, बुराई ही नहीं तैरती एक से दूसरे में, सत्य भी संक्रमित होता है। सत्य से ज्यादा संक्रामक कुछ भी नहीं है। अगर तुम सत्य के पास रहे तो तुम उसके रंग में रंग ही जाओगे। अगर तुम बगीचे से गुजरे तो तुम्हारे वस्त्र फूलों की थोड़ी न बहुत गंध ले ही लेंगे।

...'जो महानुभावों की सेवा करता है और जो ममता रहित है।'

दो तरह के संबंध हो सकते है। एक तो ममता का संबंध है : मेरा बेटा, मेरी मां, मेरी पत्नी...! यहां संबंध 'मेरे' का है। तुम गुरु के साथ 'मेरे' का संबंध मत बनाना। अगर तुमने वहां भी 'मेरे' का संबंध बनाया, तो तुम चूकोगे। तुम गुरु के हो जाना। तुम भला कहना कि मैं गुरु का; लेकिन 'मेरा गुरु' ऐसा मत कहना।

तुम धर्म के साथ ममता का संबध मत बनाना। यह मत कहना कि 'मेरा धर्म' – तुम धर्म के हो जाना। लेकिन तुमने 'मेरा धर्म' कहा तो तुमने धर्म को भी इस जमीन पर खींच लिया, बहुत नीचे उतार लिया। तुम कीचड़ में घसीट लाए कमल को।

'मेरे' का जहां भी तुमने आधार बनाया, वहीं तुम्हारा मोह, मन, सब वापस लौट आता है। गुरु के साथ तो 'मेरे' का संबध मत बनाना। गुरु के साथ तो आत्मा का संबंध बनाना, मन का नहीं; ममता का नहीं, प्रेम का। और ये बड़ी फर्क की बातें हैं।

प्रेम जानता ही नहीं 'मैं' और 'तू'। ममता 'मैं' और 'तू' के बीच चलती है। ममता बड़ी संकीर्ण है। प्रेम विस्तार है – विस्तीर्णता है। अगर तुम ममता से मुक्त हुए और सौभाग्य से तुमने किसी महानुभाव की छाया पा ली, तो तुम्हारी जिंदगी कुछ की कुछ हो जाएगी।

'आंसू तो बहुत से हैं, आंखों में 'जिगर' लेकिन
बिंध जाए सो मोती है, रह जाए सो दाना है।'

तब तुम बिंध जाओगे। प्रेम तुम्हे बींध देगा। तुम मोती हो जाओगे।

'आंसू तो बहुत से है, आंखो में 'जिगर' लेकिन
बिंध जाए सो मोती है, रह जाए सो दाना है।'

इस संसार में वे ही केवल मोती बन जाते हैं जो किसी महाप्रेम से बिंध जाएं।

...'जो निर्जन स्थान में निवास करता है, जो लौकिक बंधनों को तोड़ डालता है, जो तीनों गुणों से परे हो जाता है, और जो योगक्षेम का परित्याग कर देता है।'

...'जो निर्जन स्थान में निवास करता है।' व्याख्याएं कहती हैं कि जंगल में निवास करता है, मै नहीं कहता। क्योंकि निर्जन स्थान एक आत्यंतिक दशा का नाम है – ऐसा भीतर कि वहां कोई भी न हो, बस एकाकी तुम्हारा चैतन्य रह जाए, केवल चैतन्य रह जाए। यह कोई भौगोलिक बात नहीं है कि तुम हिमालय चले जाओ कि जंगल में चले जाओ। क्योंकि तुम जंगल भी चले जाओगे तो तुम्हारे मन की भीड़ तो तुम्हारे साथ ही होगी। तुम करोगे क्या जंगल में बैठकर ? तुम कल्पना के जाल रचोगे, सपने देखोगे। तुम जंगल में बैठकर भी बाजार में ही रहोगे। तुमने बहुत बार मंदिर जाकर देखा है, करते क्या हो मंदिर में ? बैठते हो प्रतिमा के सामने – होते वहां नहीं। बैठते हो मंदिर में, होते कहीं और हो।

धर्म के जगत मे स्थितियां स्थान की तरह समझ ली गई हैं और बड़ी भूल हो गयी है। 'निर्जन' स्थिति है, स्थान नहीं; तुम्हारे भीतर की एक अन्तर्दशा है, जहां तुम अकेले हो, शुद्ध कुंआरे, जहां तुम किसी से बंधे नहीं, जहां तुम आंख बंद करते हो तो सारा जगत समाप्त हो जाता है – बस तुम ही रह जाते हो; 'मैं' का भाव भी नहीं रह जाता, क्योंकि वह भी द्वैत होगा। बस 'होना' होता है – निराकार, निर्विकार।

...'जो निर्जन स्थिति में निवास करता है', स्वभावतः उसके लौकिक बंधन टूट जाते हैं; उसके जीवन में अलौकिक संबंधों का आविर्भाव होता है; वह संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है, मोक्ष के संबंध निर्मित होते हैं। और ध्यान रखनाः संसार के संबंध बांधते हैं, मोक्ष के संबंध मुक्त करते हैं; काम बांधता है, प्रेम मुक्त करता है। अगर तुम्हारे प्रेम ने तुम्हें बांधा हो तो समझना कि काम होगा, प्रेम नहीं। प्रेम तो वही जो तुम्हें मुक्त करे। प्रार्थना तो वही जो तुम्हें मुक्त करे।

अगर तुम हिन्दू हो गये हो तो बंध गये। यह धार्मिक होने का ढंग नहीं। यह धार्मिक होने की बात ही नहीं। चूक गये। अगर तुम मुसलमान हो गये, बंध गये। तुम धार्मिक हो जाओ, बस काफी है। धार्मिक व्यक्ति न तो हिन्दू होता, न मुसलमान होता। धार्मिक व्यक्ति तो उस परम प्रेम में बंधा होता है जो सभी बंधनों को काट जाता है।

'इश्क की बर्बादियों को रायगां समझा था मैं
बस्तियां निकलीं जिन्हें वीरानियां समझा था मैं।'

सोचा था कि प्रेम तो बर्बाद कर देता है।

'इश्क की बर्बादियों को रायगां समझा था मैं।'

और बर्बाद हो जाना तो व्यर्थ हो जाना है।

'बस्तियां निकलीं जिन्हें वीरानियां समझा था मैं।'

लेकिन बात कुछ और ही निकली। जहां मैंने समझा था वीरानियां होंगी, मरुस्थल होंगे, कुछ भी न बचेगा – वहीं मैंने पाया कि सब कुछ पा लिया।

तुम्हारे एकांत में ही 'सर्व' का साक्षात्कार होता है। तुम्हारे प्रेम की आत्यंतिक घड़ी में ही, तुम पाते हो सब पा लिया; यद्यपि पहले ऐसा ही लगता है कि सब छोड़ रहे हैं, सब त्याग रहे हैं।

मैं तुमसे कहता हूं : त्याग परम भोग का मार्ग है। उपनिषद कहते हैं : 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।

महानुभाव की सेवा करना।

सेवा का कुल इतना अर्थ है कि सत्संग करना। ऐसे व्यक्ति की छाया में बैठना। जैसे थका-हारा पथिक, धूप से बचने के लिए वृक्ष की छाया के तले बैठ जाता है और शीतल विश्राम पाता है – ऐसे ही किसी महानुभाव की छाया में बैठना। संसार से थका हुआ, हारा हुआ, विचलित व्यक्तित्व, किसी महानुभाव की छाया में औषधि को उपलब्ध हो जाता है जो स्वयं एक हो गया है, उसकी निकटता में तुम भी एक होने लगते हो। जो स्वयं एक हो गया है, उसके पास बैठकर, उसका सत्य संक्रामक होने लगता है।

ध्यान रखना, बीमारी ही नहीं लगती, स्वास्थ्य भी लगता है। ध्यान रखना, बुराई ही नहीं तैरती एक से दूसरे में, सत्य भी संक्रमित होता है। सत्य से ज्यादा संक्रामक कुछ भी नहीं है। अगर तुम सत्य के पास रहे तो तुम उसके रंग में रंग ही जाओगे। अगर तुम बगीचे से गुजरे तो तुम्हारे वस्त्र फूलों की थोड़ी न बहुत गंध ले ही लेंगे।

...'जो महानुभावों की सेवा करता है और जो ममता रहित है।'

दो तरह के संबंध हो सकते है। एक तो ममता का संबंध है : मेरा बेटा, मेरी मां, मेरी पत्नी...! यहां संबंध 'मेरे' का है। तुम गुरु के साथ 'मेरे' का संबंध मत बनाना। अगर तुमने वहां भी 'मेरे' का संबंध बनाया, तो तुम चूकोगे। तुम गुरु के हो जाना। तुम भला कहना कि मैं गुरु का; लेकिन 'मेरा गुरु' ऐसा मत कहना।

तुम धर्म के साथ ममता का संबध मत बनाना। यह मत कहना कि 'मेरा धर्म' – तुम धर्म के हो जाना। लेकिन तुमने 'मेरा धर्म' कहा तो तुमने धर्म को भी इस जमीन पर खींच लिया, बहुत नीचे उतार लिया। तुम कीचड़ में घसीट लाए कमल को।

'मेरे' का जहां भी तुमने आधार बनाया, वहीं तुम्हारा मोह, मन, सब वापस लौट आता है। गुरु के साथ तो 'मेरे' का संबध मत बनाना। गुरु के साथ तो आत्मा का संबंध बनाना, मन का नहीं; ममता का नहीं, प्रेम का। और ये बड़ी फर्क की बातें हैं।

प्रेम जानता ही नहीं 'मैं' और 'तू'। ममता 'मैं' और 'तू' के बीच चलती है। ममता बड़ी संकीर्ण है। प्रेम विस्तार है – विस्तीर्णता है। अगर तुम ममता से मुक्त हुए और सौभाग्य से तुमने किसी महानुभाव की छाया पा ली, तो तुम्हारी जिंदगी कुछ की कुछ हो जाएगी।

> 'आंसू तो बहुत से हैं, आंखों में 'जिगर' लेकिन
> बिंध जाए सो मोती है, रह जाए सो दाना है।'

तब तुम बिंध जाओगे। प्रेम तुम्हे बींध देगा। तुम मोती हो जाओगे।

> 'आंसू तो बहुत से है, आंखो में 'जिगर' लेकिन
> बिंध जाए सो मोती है, रह जाए सो दाना है।'

इस संसार में वे ही केवल मोती बन जाते हैं जो किसी महाप्रेम से बिंध जाएं।

...'जो निर्जन स्थान में निवास करता है, जो लौकिक बंधनों को तोड़ डालता है, जो तीनों गुणों से परे हो जाता है, और जो योगक्षेम का परित्याग कर देता है।'

...'जो निर्जन स्थान में निवास करता है।' व्याख्याएं कहती हैं कि जंगल में निवास करता है, मै नहीं कहता। क्योंकि निर्जन स्थान एक आत्यंतिक दशा का नाम है – ऐसा भीतर कि वहां कोई भी न हो, बस एकाकी तुम्हारा चैतन्य रह जाए, केवल चैतन्य रह जाए। यह कोई भौगोलिक बात नहीं है कि तुम हिमालय चले जाओ कि जंगल में चले जाओ। क्योंकि तुम जंगल भी चले जाओगे तो तुम्हारे मन की भीड़ तो तुम्हारे साथ ही होगी। तुम करोगे क्या जंगल में बैठकर ? तुम कल्पना के जाल रचोगे, सपने देखोगे। तुम जंगल में बैठकर भी बाजार में ही रहोगे। तुमने बहुत बार मंदिर जाकर देखा है, करते क्या हो मंदिर में ? बैठते हो प्रतिमा के सामने – होते वहां नहीं। बैठते हो मंदिर में, होते कहीं और हो।

धर्म के जगत मे स्थितियां स्थान की तरह समझ ली गई हैं और बड़ी भूल हो गयी है। 'निर्जन' स्थिति है, स्थान नहीं; तुम्हारे भीतर की एक अन्तर्दशा है, जहां तुम अकेले हो, शुद्ध कुंआरे, जहां तुम किसी से बंधे नहीं, जहां तुम आंख बंद करते हो तो सारा जगत समाप्त हो जाता है – बस तुम ही रह जाते हो; 'मैं' का भाव भी नहीं रह जाता, क्योंकि वह भी द्वैत होगा। बस 'होना' होता है – निराकार, निर्विकार।

...'जो निर्जन स्थिति में निवास करता है', स्वभावतः उसके लौकिक बंधन टूट जाते हैं; उसके जीवन में अलौकिक संबंधों का आविर्भाव होता है; वह संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है, मोक्ष के संबंध निर्मित होते हैं। और ध्यान रखना : संसार के संबंध बांधते हैं, मोक्ष के संबंध मुक्त करते हैं; काम बांधता है, प्रेम मुक्त करता है। अगर तुम्हारे प्रेम ने तुम्हें बांधा हो तो समझना कि काम होगा, प्रेम नहीं। प्रेम तो वही जो तुम्हें मुक्त करे। प्रार्थना तो वही जो तुम्हें मुक्त करे।

अगर तुम हिन्दू हो गये हो तो बंध गये। यह धार्मिक होने का ढंग नहीं। यह धार्मिक होने की बात ही नहीं। चूक गये। अगर तुम मुसलमान हो गये, बंध गये। तुम धार्मिक हो जाओ, बस काफी है। धार्मिक व्यक्ति न तो हिन्दू होता, न मुसलमान होता। धार्मिक व्यक्ति तो उस परम प्रेम में बंधा होता है जो सभी बंधनों को काट जाता है।

'इश्क की बर्बादियों को रायगां समझा था मैं
बस्तियां निकलीं जिन्हें वीरानियां समझा था मैं।'

सोचा था कि प्रेम तो बर्बाद कर देता है।

'इश्क की बर्बादियों को रायगां समझा था मैं।'

और बर्बाद हो जाना तो व्यर्थ हो जाना है।

'बस्तियां निकलीं जिन्हें वीरानियां समझा था मैं।'

लेकिन बात कुछ और ही निकली। जहां मैंने समझा था वीरानियां होंगी, मरुस्थल होंगे, कुछ भी न बचेगा – वहीं मैंने पाया कि सब कुछ पा लिया।

तुम्हारे एकांत में ही 'सर्व' का साक्षात्कार होता है। तुम्हारे प्रेम की आत्यंतिक घड़ी में ही, तुम पाते हो सब पा लिया; यद्यपि पहले ऐसा ही लगता है कि सब छोड़ रहे हैं, सब त्याग रहे हैं।

मैं तुमसे कहता हूं : त्याग परम भोग का मार्ग है। उपनिषद कहते हैं : 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।

उन्होंने ही भोगा जिन्होंने त्यागा। या उन्होंने ही त्यागा जिन्होंने भोगा।' यह वचन अदभुत है। इसके दोनों अर्थ हो सकते हैं, और दोनों सही हैं। क्योंकि भोग तुम्हारे लिए है ही नहीं; तुम सिर्फ भोग की सोचते हो, करते कहां हो! भोग सिर्फ उनके लिए है जो वर्तमान में जीते हैं। जिन्होंने मन को छोड़ा, वासना को छोड़ा, जो अपने भीतर लौटे, जिन्होंने अपने से संबंध जोड़ा उनके जीवन में परम भोग के स्वर उठते हैं।

'बस्तियां निकलीं जिन्हें वीरानियां समझा था मैं।'

...'जो कर्मफल का त्याग करता है, कर्मों का भी त्याग करता है, और तब सब कुछ त्यागकर निर्द्वंद्व हो जाता है।'

...तीनों गुणों को छोड़ता, योगक्षेम को छोड़ता, कर्मफल का त्याग करता है, कर्मों का त्याग करता, और सब कुछ त्यागकर निर्द्वंद्व हो जाता है। यह भक्त की परिभाषा हो रही है। एक एक चीज को खयाल में लें।

...तीनों गुणों से परे हो जाता है : तमस, रजस, सत्त्व। परम भक्त न तो तामसी होता — हो ही नहीं सकता, क्योंकि तामस तो तुम जितने मन से दबे होते हो उतना ही होता है। तामस तो मन का अंधकार है, विचारों की भीड़ है, वासनाओं का ऊहापोह है।

भक्ति को उपलब्ध व्यक्ति राजस भी नहीं होता। उसके भीतर करने की कोई उद्दाम वासना नहीं होती। वह किसी त्वरा, ज्वर, दौड़ में नहीं होता। उसे कुछ सिद्ध नहीं करना है। उसे कुछ अहंकार के शिखर उपलब्ध नहीं करने हैं। उसे राजधानियां जीतनी नहीं हैं। उसे सिकंदर नहीं होना है। वह तो जो 'होना' है, है ही, इसलिए जाना कहां, दौड़ना क्यों? पहुंचने को उसके लिए मंजिल नहीं है। वह अपनी मंजिल पर है।

यह तो हम समझ लेते हैं कि भक्त तामसी नहीं होता, राजसी नहीं होता; लेकिन नारद का यह अदभुत सूत्र कहता है कि भक्त सात्त्विक भी नहीं होता। क्योंकि साधुता भी, असाधुता के विपरीत है। कहना परमात्मा को कि वह साधु है, ठीक न होगा; क्योंकि वह साधु असाधु दोनों से परे होना चाहिए। यह कहना कि परमात्मा को साधु ही पा सकेंगे, गलत होगा; क्योंकि फिर असाधुओं का क्या होगा? यह कहना कि साधुओं में ही परमात्मा है, नितांत गलत है; क्योंकि असाधुओं में भी तो वही है। परमात्मा का अर्थ हुआ तब : सर्वातीत, ट्रांसेंडेंटल, जो सभी के पार है।

भक्त भगवान है, क्योंकि भक्त भगवान की ओर अग्रसर है। भक्त भगवान है, क्योंकि भक्त भगवान होने की तरफ प्रतिक्षण रूपान्तरित हो रहा है। भक्त भगवान में बदल रहा है। उसकी हर प्रार्थना उसे भगवान बना रही है। उसकी हर पूजा उसे भगवान बना रही है। भक्त और भगवान के बीच का फासला कम होता जा रहा है प्रतिपल; जल्दी ही छलांग लग जाएगी; जल्दी ही भगवान में भक्त होगा, भक्त में भगवान होंगे; द्वैत गिर जाएगा।

इसलिए सूत्र कहता है : 'तीनों गुणों से परे हो जाता है जो, योगक्षेम का परित्याग कर देता है।' न उसे अब कुछ लाभ है, न कुछ हानि है।

...'जो कर्मफल का त्याग करता है...' क्योंकि जो अब अनुभव करता है कि फल तो भविष्य में

होते हैं, और भविष्य मन के बिना नहीं हो सकता है; फल तो कल होगा, और कल बिना मन के नहीं हो सकता। और जिसने मन से ही संग साथ छोड़ दिया, वह कर्मफल की क्या चिंता करे? लाभ तो कल होगा, हानि भी कल होगी। अभी तो न लाभ है, न हानि है। अभी तो बस वही है, जो है।

जो कर्मफल का त्याग करता, स्वभावतः कर्मों का भी त्याग हो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह कर्म नहीं करता। नहीं, वह 'करनेवाला' नहीं रह जाता – परमात्मा करता है अब! अब वह बांसुरी की तरह हो जाता है। गीत गाये परमात्मा तो गीत पैदा होता है, न गाये तो बांस की पोंगरी। गाये तो बांसुरी, न गाये तो बांस की पोंगरी।

बांस की पोंगरी खुद नहीं गाती, सिर्फ माध्यम है। भक्त जानता है कि मैं सिर्फ माध्यम हूं, उपकरण हूं! उसका साधन मात्र!

'और तब सब कुछ त्यागकर निर्द्वंद्व हो जाता है।' और तब कोई द्वन्द्व नहीं रह जाता। जब कुछ पाने को न रहा, तो कुछ खोने को भी न रहा। जब कहीं जाने को न रहा, तो कुछ करने को भी न रहा। सब छोड़कर... यही समर्पण है भक्त का। वह उस परम गहराई को उपलब्ध हो जाता है जहां कोई द्वन्द्व नहीं।

एक गीत मैं पढ़ता था –

'शंख-सीप तो तट पर, लेकिन
मोती पारावार में
यहां-वहां का करती रहती
भीड़ निरर्थक शोर रे
सांस रोककर तल तक पहुंचे
कोई गोताखोर रे
कमठ केंकड़ा यहां, सुनहरी
मछली नीर अपार में
जो बंसी लटकाए बैठे
खोते संध्या भोर रे
तरी लिए जो उन तक पहुंचे
वह मछुआ तो और रे
काई कर्दम यहां, मनोहर
नील कमल मंझधार में।'

गहरे और गहरे...। किनारे पर ही बैठकर बंसी लटकाए समय को व्यर्थ मत गंवाओ।

'शंख-सीप तो तट पर, लेकिन
मोती पारावार में।'

...'जो वेदों का भी भलीभांति परित्याग कर देता है।'

चौंकोगे तुम : 'वेदों का'! कोई आर्यसमाजी मौजूद होगा तो बहुत नाराज हो जाएगा : 'वेदों

का' ! लेकिन भक्त का लक्षण यही है।

जो वेदों का भी 'भलीभांति' – ऐसा वैसा नहीं – 'भलीभांति', बिलकुल, सर्वथा, त्याग कर देता है, और जो अखंड असीम भगवदप्रेम को प्राप्त कर लेता है।

वेद भी खिलौने हैं बुद्धि के। शास्त्र भी समझा लेना है; सांत्वना है; सत्य नहीं। और भक्त तो ज्ञान की तलाश नहीं कर रहा है। भक्त तो प्रेम की तलाश कर रहा है। वेदों से मिल जाए ज्ञान, सूचनाएं; प्रेम कहां मिलेगा ? शास्त्रों में कहीं प्रेम है ? जल के संबंध में तुम कितना ही समझ लो, उससे कुछ प्यास तो न बुझेगी। सरोवर चाहिए।

भक्त जल के संबंध में शास्त्रों से तृप्त नहीं होता; वह कहता है, 'प्यासा हूं, सरोवर चाहिए।'

'इल्म के जहूल से बेहतर है कहीं जहूल का इल्म
मेरे दिल ने ये दिया दर्से-बसीरत मुझको।'

ज्ञान की मूढ़ता की बजाय, मूढ़ता का ज्ञान बेहतर है, यह परम ज्ञान मेरे दिल ने मुझे दिया।

'इल्म के जहूल से बेहतर है कहीं जहूल का इल्म'

ज्ञान की मूढ़ता की बजाय, मूढ़ता का ज्ञान बेहतर है।

'मेरे दिल ने ये दिया दर्से-बसीरत मुझको।'

यह परम ज्ञान मैंने अपने ही भीतर पाया।

वेद या कुरान या बाइबिल, कोई भी शास्त्र-वेद यानी सारे शास्त्र शब्दजाल हैं। उनसे तृप्त मत हो जाना। उनसे जो तृप्त हुआ, वह मूढ़ है। वह कितना ही ज्ञानी हो जाए, उसकी मूढ़ता नहीं मिटती ; उसकी मूढ़ता भीतर रहती है, पांडित्य का बाहर से आवरण हो जाता है।

'वेदों का जो भलीभांति त्याग कर देता है और जो अखंड असीम भगवदप्रेम प्राप्त कर लेता है।

जोर है प्रेम पर, ज्ञान पर नहीं। जानने से क्या होगा ? जानने में तो दूरी बनी रहती है। भक्त कहता है, भगवान को जानना नहीं, भगवान होना है। जानने से क्या होगा ? भगवान को पीना है। भगवान को उतारना है अपने में। भगवान में उतर जाना है। दूरी मिटानी है। शास्त्र तो बीच में दीवालें बन जाते हैं। जितना ज्यादा तुम जानने लगते हो उतना ही अहंकार प्रगाढ़ होता है। और अहंकार तो बाधा है प्रेम में ; उसे तो छोड़ना होगा। धन का अहंकार ही नहीं, ज्ञान का अहंकार भी छोड़ना होगा। जाननेवाले को मिटा ही देना है। कोई भीतर 'मैं' भाव ही न रह जाए। तुम एक शून्य हो जाओ। उसी शून्य में प्रेम के कमल खिलते हैं – शून्य की झील पर प्रेम के कमल ! और कोई झील नहीं है जहां प्रेम के कमल खिलते हों। तुम मिट जाओ कीचड़ में, तो ही कमल खिलते हैं। तुम्हारी कीचड़ से ही कमल उठते हैं।

...'जो वेदों का भलीभांति परित्याग कर देता है और जो अखंड असीम भगवदप्रेम को प्राप्त कर लेता है, वह तरता है, वह तरता है; यही नहीं, वह लोगों को भी तार लेता है।' वह एक नाव बन जाता है। खुद तो तरता ही है, लेकिन इतना ही नहीं कि खुद तरता है, औरों को भी तार देता है, तारणतरण हो जाता है ; तारता भी, तरता भी ! उसके सहारे न मालूम कितने लोग तर जाते हैं।

जिसके जीवन में प्रेम का फूल खिला, वह न मालूम कितने भौरों को आकर्षित कर लेता है।

जिसके जीवन में प्रेम का गीत उठा, न मालूम कितने कंठों में गुनगुनाहट शुरू हो जाती है।

'घटे अगर तो बस एक मुश्ते-खाक है इन्सां
बढ़े तो बुसअते कौनेन में समा न सके।'

घटे तो आदमी है क्या? एक मुट्ठी भर राख!

'घटे अगर तो बस एक मुश्ते-खाक है इन्सां
बढ़े तो बुसअते कौनेन में समा न सके।'

और अगर बढ़े तो सारे लोक भी छोटे पड़ जाते हैं, समा न सके। दोनों लोक भी छोटे पड़ जाते हैं। आदमी छोटे-से-छोटा भी हो सकता है। मन उसे संकीर्ण से संकीर्ण कर देता है। आदमी विराट से विराट भी हो सकता है – मन की दीवाल भर टूट जाए, मन का कारागृह न हो।

'घटे अगर तो बस एक मुश्ते-खाक है इन्सां
बढ़े तो बुसअते कौनेन में समा न सके।'

मन कारागृह है; ध्यान मुक्ति है। काम कारागृह है; प्रेम मुक्ति है। वेद, शास्त्र कारागृह हैं; भक्ति मुक्ति है।

आज इतना ही।

अभी और यहीं है भक्ति

बारहवां प्रवचन

प्रश्न-सार

- भगवान, भक्ति और भोग में क्या कुछ आंतरिक तारतम्य है?
- एक मित्र ने ... सुझाव दिया है! कि नारद के सूत्र में सुधार होना चाहिए!
- क्या कारण है कि कामवासना के उठने पर होश में भी उसकी प्रगाढ़ता बनी रहती है?
- जिसे आप स्वप्न कहते हैं, वह हमें सत्य मालूम देता है और आपका सत्य हमारे लिए स्वप्नवत है। किसकी गंगा उलटी बहती है?
- सत्रह-अठारह वर्ष की उम्र में मेरे पिताजी धूनीवाले बाबा के सान्निध्य में कुछ अनुभव पाकर विक्षिप्त हो गये, समाज में स्वीकृत न हो सके...! अब जीवन के अंतिम चरण में उनके लिए नये जन्म की क्या कोई संभावना है?

पहला प्रश्न : भगवान, भक्ति और भोग में क्या कुछ आंतरिक तारतम्य है?

● भोग को जानता है सिर्फ भक्त ही। भक्त के अतिरिक्त भोग को किसी ने जाना नहीं; क्योंकि भोग तो सिर्फ भगवान का ही हो सकता है। जिसे तुम संसार में भोग कहते हो वह तो भोग की छाया भी नहीं; वह तो भोग की दूर की प्रतिध्वंनि भी नहीं; उसे तो भोग का आभास कहना भी गलत होगा – भोग की भ्रांति है।

जिन्होंने परमात्मा को जाना उन्होंने ही भोगा। भोग भक्त और भगवान के बीच का संबंध है। भोग की गंगा बहती है भगवान और भक्त के किनारों के बीच – एक तरफ भगवान, दूसरी तरफ भक्त, बीच में भोग की गंगा का प्रवाह।

भोग बड़ा बहुमूल्य शब्द है – योग से ज्यादा बहुमूल्य। लेकिन मेरे अर्थ को ठीक से समझ लेना। योग तो फिर भी मनुष्य की बुद्धि का जोड़ है, हिसाब-किताब है, विधि-विधान है। भोग बुद्धि का नहीं, हृदय का परमात्मा से जोड़ है; न कोई हिसाब है, न कोई किताब है, न कोई विधि-विधान है – समग्र समर्पण है; समग्र निवेदन है।

भक्त अपने को भगवान के चरणों में रख देता है; उसी क्षण से श्वास-श्वास में भगवान का भोग शुरू हो जाता है।

भोग के अर्थ को जाना तो जा सकता है, कहा नहीं जा सकता; क्योंकि भोग स्वाद की बात है। जिसने लिया हो, वही जानेगा। और जिसने जाना हो, वह भी कह न सकेगा; क्योंकि स्वाद की बात है, गूंगे का गुड़ है। और सारे स्वाद तो इन्द्रियों के हैं। आंख से रूप का स्वाद मिलता है। कान से स्वर का स्वाद मिलता है। हाथ से स्पर्श का स्वाद मिलता है। परमात्मा तुम्हारी समग्रता का स्वाद है। आंख, कान, हाथ, पैर – तुम पूरे के पूरे एक ही लयबद्धता में, एक ही नृत्य में लीन हो जाते हो। आंखें देखती ही नहीं, सुनती भी हैं। कान सुनते ही नहीं, देखते भी हैं। हाथ छूते ही नहीं, गंध भी लेते हैं। तुम्हारी पूरी समग्रता अस्तित्व के साथ आंदोलित होती है। उस घड़ी का नाम स्वाद है।

जिन्हें तुमने संसार में स्वाद जाना है, वे तो केवल इंद्रियों के आभास हैं, धोखे हैं। जिसने परमात्मा का स्वाद जान लिया, संसार के स्वाद अपने से ही छूट जाते हैं। छोड़ना पड़े तो एक बात पक्की है

कि तुमने परमात्मा के स्वाद को नहीं जाना।

इसलिए भक्त त्याग की बात ही नहीं करता। यह कोई सौदा नहीं है कि तुम छोड़ोगे तो परमात्मा को पाओगे। तुम परमात्मा को पा लोगे तो तुम पाओगे, अचानक बहुत कुछ छूटने लगा। जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं, ऐसा ही कुछ व्यर्थ हो जाएगा और गिर जाएगा। स्वाभाविक है कि जब परम स्वाद मिले तो क्षुद्र का स्वाद गिर जाए। जब परम भोग सजा हो तो रूखे-सूखे के लिए कौन राजी होगा! जब उसका मंदिर खुले तो कौन क्षुद्र में अपना आवास बनाएगा! इसलिए भक्त के लिए भोग तो बड़ा अनूठा शब्द है।

भक्त अपने को समर्पित करता है। वह कहता है, 'तुम्हीं सम्हालो! अपने को सम्हालता हूं तो अहंकार निर्मित होता है। अहंकार ही दूरी खड़ी करता है। जितना मैं होता जाता हूं उतना दूर होता चला जाता हूं।' तो भक्त कहता है, 'तुम्हीं सम्हालो! मैं अपने को बीच में खड़ा न करूंगा। न तो करूंगा जप, न करूंगा तप, न त्याग, न तपश्चर्या — क्योंकि उस सबसे अहंकार निर्मित होता है। उस सबसे लगता है : मैं कुछ हूं!'

करने से स्वभावतः 'मैं' निर्मित होता है। इसलिए भक्ति कोई कृत्य नहीं है। भक्ति शुद्ध समर्पण है।

भक्त कहता है, 'मैं सम्हाल नहीं सकता अपने को, छोड़ता हूं तुम्हारे चरणों में! तुम्हीं जहां ले जाओ, चलूंगा; तुम्हीं जो कराओ, करूंगा; तुम्हीं श्वास लो, तो श्वास लूंगा, तुम्हीं रुक जाओ तो रुक जाऊंगा।' ऐसा समग्र न्योछावर, सर्वस्व दान — तत्क्षण भोग की घड़ी आ जाती है। इधर तुमने अपने को छोड़ा उधर परमात्मा तुम्हें मिलना शुरू हुआ।

भगवान, भक्ति और भोग, तीनों बड़े जुड़े हुए शब्द हैं। योग तो कहता है, हम टूट गये हैं, जोड़ना पड़ेगा। योग का अर्थ होता है : जोड़। योग शब्द का ही अर्थ होता है : जोड़। योग कहता है : हम टूट गये हैं परमात्मा से, जोड़ना पड़ेगा। भोग का अर्थ होता है : हम जुड़े ही हैं, भोगना शुरू करो। देर कैसी? व्यर्थ प्रतीक्षा किसकी कर रहे हो? हम जुड़े ही हैं, जोड़ना नहीं है। अगर टूट गये होते तो जोड़ने का फिर कोई उपाय न था। टूटे नहीं हैं, इसलिए जुड़ सकते हैं। जोड़ने की चर्चा ही मत उठाओ। जुड़े हैं।

तुम हो कैसे सकते हो बिना परमात्मा से जुड़े हुए? एक क्षण को भी न हो सकोगे, एक पल को भी न हो सकोगे। वही श्वास लेगा तो श्वास चलेगी। वही सूरज बनकर चमकेगा तो शरीर को उत्ताप मिलेगा। वही हवाओं में आएगा तो प्राण मिलेगा। वही वर्षा में आएगा तो प्यास बुझेगी। वही भोजन में आएगा तो शक्ति मिलेगी। वही हजार-हजार रूपों में आएगा तो ही तुम जी सकोगे। एक क्षण को भी उससे टूटे कि जीना समाप्त हुआ। उससे जुड़े होने का नाम ही तो जीवन है।

इसलिए भक्त कहता है : टूटना तो हुआ ही नहीं, जोड़ने की बात ही गलत है। भक्त कहता है : जुड़े हैं, अब बस भोगना है। भक्त कहता है : तुम जुड़े हो और भोग नहीं रहे — कैसे पागल हो! किस बात की प्रतीक्षा कर रहे हो? उत्सव की पूरी तैयारी हो चुकी है। सब पूरा-पूरा तैयार है, तुम बैठे कैसे हो उदास? तुम राह किसकी देखते हो? जिसकी तुम राह देखते थे वह आ ही चुका है।

वह तुम्हारे भीतर ही निनादित है। तुम किसे पुकार रहे हो ? जिसने पुकारा है, वही तो तुम्हारी पुकार है। तुम किसे खोजने चले हो ? जो खोजने निकला है, उसमें ही तो छिपा है।

भक्त कहता है : भोगो ! एक पल भी खोने जैसा नहीं है; तैयारी करनी होती तो समय लगता। इसलिए भक्ति की दृष्टि बड़ी अनूठी है। योग की दृष्टि में तो समय समाविष्ट है; कुछ करोगे, कल कुछ होगा, फल मिलेगा, बीज बोओगे, फसल उगेगी, काटोगे – हजार उपद्रव हैं – वर्षा होगी, न होगी; संयोग मिलेंगे, बनेंगे, न बनेंगे ! लेकिन भक्त कहता है, कल की तो बात ही नहीं। जिसे तुम भोगना चाहते हो वह इसी क्षण तुम्हारे हाथ में है।

ऐसा देखते ही, ऐसी सुध आते ही – इसको ही सुरति, इसको ही स्मृति, इसको ही बोध... ऐसी सुरति आते ही भक्त नाचने लगता है। इसलिए भक्त नाचे। योगियों ने साधा – भक्त नाचे। योगियों ने बड़े विधि-विधान बनाये – भक्तों ने भोगा। योगियों ने आसन, प्राणायाम, व्यायाम किये – भक्तों ने उठा ली वीणा।

उत्सव तैयार ही है। समारम्भ रचा ही हुआ है। यहां देर है ही नहीं। यहां क्षणभर भी खोना अपने ही कारण खोना है, उसके कारण नहीं।

भोग की दृष्टि यह है, परम भोग की, भक्त के भोग की दृष्टि यह है कि एक क्षण भी तैयारी की जरूरत नहीं है। समय अनिवार्य नहीं है। इसी क्षण आया हुआ है तुम्हारे द्वार पर परमात्मा। इसी क्षण उसने तुम्हें चारों ओर से घेरा है। उसी का स्पर्श तुम्हें हो रहा है हवाओं में। उसी की श्वास तुम्हारे हृदय को गतिमान किये है। वही है तुम्हारा सोच-विचार। वही है तुम्हारा ध्यान। इस बात की प्रतीति, प्रत्यभिज्ञा, बस काफी है।

इसलिए भक्त एक छलांग लगाता है। योगी का सिलसिला है, सीढ़ियां-दर-सीढ़ियां चढ़ता है। भक्त एक छलांग लगाता है – बोध की छलांग। एक क्षण पहले उदास था, हारा-थका था। एक क्षण पहले संतप्त था। एक क्षण पहले नरक में था; एक क्षण बाद स्वर्ग में।

भक्त चमत्कार है ! एक क्षण पहले राख ही राख था, कहीं फूल न दिखायी पड़ते थे। सुधि के आते ही एक क्षण बाद फूल ही फूल खिल गये। तुम कल्पना ही न कर पाओगे कि यह कैसे हुआ। भक्त के पास भी उत्तर नहीं है। योगी के पास उत्तर है। योगी कहेगा, 'ऐसा-ऐसा किया, इतना-इतना साधा, ऐसी-ऐसी विधियां कीं, ऐसे-ऐसे उपाय किये – यह इसका फल है।'

योगी का गणित है। भक्त का कोई गणित नहीं – भक्त का प्रेम है। इसलिए मीरा को किसी ने देखा कभी योग साधते ? हां, अचानक एक दिन नाचते देखा। अचानक एक दिन बह चली, नाच उठी। इसीलिए तो किसी की समझ में भी न आया, घटना इतनी आकस्मिक थी। कोई भरोसा न कर सका।

महावीर समझ में आते हैं – बारह वर्ष की लम्बी तपश्चर्या है। जिनके पास बुद्धि नहीं है उनको भी समझ में आ जाते हैं – इतना श्रम किया, अगर आनंद को उपलब्ध हुए, तो बात हिसाब की है। बुद्ध समझ में आते हैं – छह वर्ष का कठिन श्रम, साधना – फिर अगर आनंद को उपलब्ध हुए, ठीक।

मीरा बेबूझ है ! कल तक घूंघट में छिपी थी, किसी को पता भी न था। कभी किसी ने जाना

भी न था कि कुछ साधा है इसने। अचानक, पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे! घर के लोग भी भरोसा न कर सके — 'पागल हो गयी! मस्तिष्क खराब हो गया! कहीं ऐसे मिला है परमात्मा ? बड़ी मुश्किल से मिलता है।'

हमारे अहंकार ने बड़ी मुश्किलें खड़ी कर ली हैं। हमारा अहंकार जो सरलता से मिल जाए, उसके लिए राजी नहीं होता। अहंकार कहता है : पहाड़-पर्वत चढ़ने पड़ेंगे। ऐसा हाथ फैलाने से जो मिल जाए, घर बैठे जो मिल जाए, अहंकार उससे राजी नहीं होता, भरोसा नहीं करता। महावीर को मिला होगा, मीरा को कैसे मिला ?

मीरा का नृत्य आकस्मिक है — लेकिन भक्ति आकस्मिक है! इस बात को ठीक से समझ लेना। भक्ति की कोई साधना नहीं है; भक्ति सिद्धि है पहले ही क्षण से; सिर्फ बोध की बात है।

कभी उन मदभरी आंखों से पिया था इक जाम
आज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहीं।

एक बार झलक मिल जाए, बस काफी है। एक बार परमात्मा की प्रतीति आ जाए, एक बार ऐसे समझ उठ खड़ी हो बिजली की कौंध की तरह कि वह उपलब्ध है, मैं रुका किसलिए, प्रतीक्षा किसकी करता हूं — तो जो नृत्य शुरू होता है, उसका फिर कोई अंत नहीं।

कभी उन मदभरी आंखों से पिया था इक जाम
आज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहीं।

भक्ति का होश बेहोशी जैसा है। भक्त का ध्यान तल्लीनता जैसा है। भक्त का होना न-होने जैसा है। भक्त अपने को खोकर ही पाता है। भक्त अपने को डुबाता है, जैसे बूंद गिर जाए सागर में। भक्त जुआरी है।

बूंद जब सागर में गिरती है तो पक्का क्या है कि बचेगी! पक्का क्या है कि खो ही न जाएगी सदा को ? पक्का हो भी नहीं सकता। गारंटी होगी भी तो कैसी होगी, कौन देगा ? बूंद मिटने को तैयार होती है, मिटते ही सागर हो जाती है।

लेकिन ध्यान रखना, यह जो भोग है, यह जो परमात्मा और उसके प्रेमी के बीच घटता है, भगवान और भक्त के बीच जो धारा बहती है जीवन की — यह कुछ समझने-समझाने की बात नहीं है। जो मैं तुमसे कह रहा हूं, वे सिर्फ इशारे हैं; खयाल में आ जाएं तो कूद पड़ना। यह मैं तुम्हारी, समझ बढ़ जाएगी मेरे कहने से, इसलिए नहीं कह रहा हूं। यह तुम्हारा ज्ञान कुछ थोड़ा और बढ़ जाएगा भक्ति के संबंध में, इसलिए नहीं कह रहा हूं। क्योंकि भक्ति का ज्ञान से क्या लेना-देना ?

एक ऐसा राज भी दिल के निहांखाने में है
लुत्फ जिसका कुछ समझने में न समझाने में है।

बहुत गहरे हृदय के आत्यन्तिक तल पर छिपा है रहस्य; न समझ में आता है न समझाने में आता है। भक्ति बेबूझ है। भक्ति एक पहेली है, एक रहस्य है। इसलिए जो बहुत बुद्धिमान हैं, भक्ति उनके लिए नहीं है। वे अपनी बुद्धि के कारण ही खोते चले जाएंगे। जो अपने को समझदार समझते हैं, भक्ति उनके लिए नहीं है। यह तो नासमझों के लिए है। मगर नासमझी का लुत्फ और मज़ा और।

समझदारी बड़ी गरीब है। नासमझी की सम्पदा बड़ी है। समझदारी तो बड़ी क्षुद्र है – तुम्हारी है। नासमझी विराट है। समझदारी तो ऐसी है जैसे छोटा-सा दीया जलता हो, और टिमटिमाती रोशनी हो। नासमझी ऐसी है जैसे विराट अमावस की रात हो, गहन अंधकार हो, और न छोर, कोई सीमा नहीं !

भक्त तो अपनी नासमझी से परमात्मा के पास पहुंचता है। और समझदारी से कोई कभी पहुंचा है, ऐसा सुना नहीं। समझदारी रोक लेती है, पैर की जंजीर हो जाती है। समझदारी नाच नहीं बन पाती। नाचकर ही कोई पहुंचता है। समझदारी गंभीर हो जाती है।

एक मित्र ने पूछा है – पूछा नहीं, समझदार होंगे – सुझाव दिया है। सुझाव दिया है कि नारद के सूत्र में कहा गया कि भक्ति से भगवान मिलता है – यह बात ठीक नहीं। भक्ति से शक्ति मिलती है – शक्ति से भगवान मिलता है। सूत्र में सुधार होना चाहिए।

● ऐसी बुद्धिमानी पैर की जंजीर हो जाएगी। ऐसी बुद्धिमानी तुम्हें पहुंचाएगी न, अटका देगी – बुरी तरह अटका देगी। नारद को समझ लो। नारद को समझाने मत चलो। नारद से कुछ मिलता हो, ले लो। नारद को देने मत चलो। तुम्हारे पास अभी है क्या जो तुम दोगे ? अगर तुम्हें यह ही पता हो गया होता तो तुम यहां आते क्यों ? तुम किसकी तलाश कर रहे हो फिर ?

लेकिन बुद्धि हिसाब लगा लेती है उन सब चीजों का जिनका उसे कोई पता भी नहीं। बुद्धि उन सब चीजों के संबंध में भी सिद्धांत बना लेती है जिनका स्वप्न भी उसे नहीं आया। तुम्हें न भगवान का पता है, न तुम्हें भक्ति का पता है। हां, तुमने कुछ किताबें पढ़ ली होंगी। किताबों से कुछ तुमने सूचनाएं इकट्ठी कर ली होंगी। अब तुम कुछ तर्कजाल में पड़ गये होओगे। इस तर्कजाल से कोई कभी पहुंचा नहीं। यही अटकाता है।

नासमझी चाहिए। पांडित्य नहीं, बड़ी असहाय भाव की दशा चाहिए। तर्क नहीं, हारा हुआ तर्क चाहिए; मिटा हुआ, टूटा हुआ तर्क चाहिए। तुम्हारा तर्क जब टूट जाएगा और तुम्हारी बुद्धि जब राह न बना पाएगी, तभी तुम्हें राह मिलेगी। जब तक तुम्हें लगता है तुम अपनी राह बना लोगे, तभी तक तुम भटकोगे। तब तक तुम जो राह बनाओगे, वही तुम्हारा भटकाव होगी। जिस दिन तुम असहाय हो जाओगे और पाओगे, 'मेरे किये कुछ भी नहीं होता। बुद्धि से कुछ समझ में आता नहीं। खूब समझ कर बैठ गया हूं, कहीं पहुंच नहीं पाता।' ...जिस दिन तुम थके-मांदे, हारे-पराजित, असहाय, रोने लगोगे, आंसू बहने लगेंगे – तर्क नहीं चाहिए, आंसू चाहिए – बुद्धि में विचार न उठेंगे, भाव उठने लगेगा; जिस दिन तुम बैठकर सोच-विचार न करोगे, नाचने लगोगे, बुद्धि में तर्क का शोरगुल नहीं, पैरों में घूंघर बंधे होंगे – उस दिन, उस दिन पहली दफा वर्षा होगी, तुम्हारी भूखी-प्यासी भूमि पर; उस दिन पहली दफा भगवान से तुम्हारा संस्पर्श होगा; भोग का पता चलेगा।

भक्तों ने कुछ कहा नहीं है; जो कहा है, उससे कुछ साफ नहीं होता। भक्तों ने कोई तर्क नहीं किया है। जो बात भी की है, वह इंगित की है, व्याख्या की नहीं है; प्रमाण नहीं है कोई उसमें, सीधे-सीधे वक्तव्य हैं।

अगर भक्तों को समझना हो तो शास्त्रों में जाने का कोई सार नहीं है – किसी भक्त की आंखों में जाना।

> क्या हुस्न का अफसाना महदूद हो लफ्जों में
> आंखें ही कहें उसको आंखों ने जो देखा है।

मीरा की आंखों में या चैतन्य की आंखों में... ! वहीं है शास्त्र भक्ति का। तो भक्त को समझने का ढंग ही और है। और भक्ति के शास्त्र को समझने के आयाम ही और हैं। अगर सोच-विचार से तुम अभी थक नहीं गये हो, अभी थोड़ी और उमंग बची है तड़फड़ा लेने की, तो तुम भक्ति की बातों में अभी मत पड़ो। तो अभी बहुत है – वेदांत है, वेद हैं, उपनिषद हैं। तो अभी योग है, सांख्य है। अभी बहुत शास्त्र पड़े हैं। अभी थोड़ा वहां सिर फोड़ लो। जब तुम बिलकुल ही टूट जाओ और जब तुम्हें ऐसा लगे कि कहीं से कोई द्वार नहीं मिलता; जब तुम रोने-रोने को हो आओ; जब तुम्हारे हृदय से एक आह निकले असहाय अवस्था की – वही प्रार्थना बन जाएगी। वहीं से तुम्हारे जीवन में भक्त का अनुभव शुरू होता है। तुम्हारी हार में ही भक्त पैदा होता है – तुम्हारी जीत से नहीं, तुम्हारी पराजय में; तुम जहां बिलकुल लहूलुहान पड़ गये हो जमीन पर; जहां तुम्हारे पंख क्षत-विक्षत हो गये हैं और अपना किया अब कुछ भी नहीं चलता – उसी क्षण, उस गहन पीड़ा से प्रार्थना उठती है। और तब एक अनूठा अनुभव होता है, कि तुम नाहक ही दौड़-धूप कर रहे थे; भगवान दूर न था, तुम्हारे दौड़ने के कारण दूर मालूम पड़ता था। तुम व्यर्थ ही आयोजन कर रहे थे। तुम्हारे आयोजन ऐसे थे कि उनके कारण ही बाधा पड़ती थी, अवरोध आता था। काश, तुम कुछ न करते और सिर्फ खुली आंख से देख लेते, तो भगवान द्वार पर खड़ा था। तुम्हारी व्यवस्था ने ही तुम्हें भटकाया था।

भोग तो स्वाद है – मिलेगा तो मिलेगा। भोग के संबंध में मैं कुछ भी कहूं, उससे हो सकता है भोग का लोभ पैदा हो जाए, लेकिन भोग की कोई समझ न आएगी। इतना ही अगर तुम मेरी बात से समझ लो कि तुम्हारे जीवन में अभी भोग जैसा कुछ भी नहीं है... ! तुम्हारे धार्मिक गुरु, तुम्हारे साधु-संत तुम्हें कहते हैं, 'छोड़ो भोग, पाप है।' मैं तुमसे कहता हूं, 'तुमने भोग किया ही नहीं। छोड़ने योग्य तुम्हारे पास है क्या ?'

तुम्हारे साधु-संत तुम्हें समझाते हैं कि संसार के भोगों के कारण ही तुम परमात्मा तक नहीं पहुंच पा रहे हो। मैं तुमसे कहता हूं कि परमात्मा तक जब तक न पहुंचोगे तब तक तुम्हें पता ही न चलेगा कि जिन्हें तुम भोग कह रहे हो, वे भोग हैं ही नहीं। तुमने कांटों को फूल समझा है। सब तरह से लहूलुहान हो, फिर भी तुम कांटों को फूल समझे चले जाते हो। दुख ही पाते हो जहां तुम सुख खोजते हो, फिर भी तुम सुख माने चले जाते हो।

तुम भोगी नहीं हो, विक्षिप्त भला होओ। तुम भोगी कतई नहीं हो, भूले हुए भला होओ। तुमसे भूल भला हो रही हो, पाप नहीं हो रहा है। तुम पर दया आ सकती है, तुम्हारे ऊपर निंदा आने का कोई कारण नहीं है। इसलिए जो तुम्हें पापी कहता हो, जो तुम्हारी निंदा करता हो और जो तुमसे कहता हो, 'तुम कुछ ऐसे भोग में पड़े हो जिसके कारण तुम परमात्मा तक नहीं पहुंच पा रहे हो,' वह तुम्हें मुक्ति की तरफ ले जा न सकेगा। क्योंकि उसके निषेधों के कारण, उसके विरोधों के कारण तुम्हारा

भोग में और आकर्षण बढ़ता चला जाता है – जिसे तुम भोग कहते हो, जो भोग नहीं है। उसके निषेध तुम्हें और लोलुप करते हैं।

हजवे मैंने तेरा ऐ शेख ! भरम खोल दिया
तू तो मस्जिद में है, नियत तेरी मैखाने में है।

वह जो मंदिर-मस्जिद में शराब की बुराई कर रहा है, उसकी बुराई भी उसके भीतर के राज को खोले दे रही है। बुराई भी हम उसी की करते हैं जिसमें हमारा रस होता है।

हजवे मैंने तेरा ऐ शेख ! भरम खोल दिया – यह जो तूने निंदा की है शराब की, इससे तेरे भीतर का राज भी पता चल गया : तू तो मस्जिद में है, नियत तेरी मैखाने में है – तू यहां मस्जिद में बैठा होगा, लेकिन मन तेरा अभी भी मैखाने में है।

अगर तुम्हारा धर्मगुरु स्त्रियों की निंदा कर रहा हो तो समझना कि स्त्रियों में रस अभी कायम है। अगर धन को गाली दे रहा हो, धन की निंदा कर रहा हो, तो समझना कि रस अभी धन में है। अगर भोजन का विरोध कर रहा हो, उपवास की शिक्षा दे रहा हो, तो समझना कि रस अभी भोजन में है। और उसके विरोध से तुम्हारा रस मिटेगा नहीं, उसके विरोध से बढ़ेगा। क्योंकि जितना ही तुम्हें कोई चीज कही जाए कि बुरी है, निषेध किया जाए, इनकार किया जाए, उतना ही मन को लगता है कि जरूर कुछ होगा, तभी तो इतने सारे धर्मगुरु, इतने मंदिर-मस्जिद इसके विरोध में खड़े हैं।

जिस दरवाजे पर लिखा हो, 'भीतर झांकना मना है', वहां झांकने का मन हो जाता है। तो जिन-जिन चीजों को लोगों ने पाप कहा है, उन-उनको करने की आकांक्षा प्रबल हो गयी है।

तुम छोटे-से बच्चे को देखो ! छोटा बच्चा मन का सबूत है, क्योंकि मन सभी के छोटे बच्चों जैसे हैं। उससे तुम कहो कि फलां चीज मत खाना, उसे शायद याद भी न थी, तुमने कहकर और याद दिला दी। उससे कहो कि फलां जगह मत जाना, दुनिया बड़ी है, शायद वह जाता भी न उस जगह; लेकिन तुमने अब सारी दुनिया को इनकार कर दिया और एक ही जगह पर उसका ध्यान आकर्षित कर दिया। अब वहीं जाएगा। तुम्हारे कहने ने ही बता दिया कि जरूर कुछ राज होगा, अन्यथा कौन किसको मना करता है ? जरूर कोई बात काम की होगी, रहस्य की होगी !

ईसाइयों की कथा है कि परमात्मा ने आदमी को बनाया और उससे कहा कि यह एक वृक्ष है – ज्ञान का वृक्ष – इसके फल तू मत खाना। बगीचे में अनंत वृक्ष थे, मगर सब वृक्ष व्यर्थ हो गये, अदम की आंखें उसी वृक्ष पर लटक गईं। रात सोते-जागते उसको उसी-उसी की याद आने लगी होगी। स्वाभाविक है। भूल अदम की नहीं, भूल परमात्मा की है। इतने वृक्ष थे, अगर न कहा होता तो मैं समझता हूं शायद अभी तक भी वह खोज न पाया होता; खोजने की जरूरत ही न रही। तुमने तख्ती लटका दी।

जहां-जहां निषेध है, वहां-वहां निमंत्रण हो जाता है। जहां कोई कहे, 'मत करो', करने की प्रबल आकांक्षा जगती है। अहंकार नहीं के साथ जूझने लगता है, प्रतिरोध पैदा होता है।

जिन चीजों को लोगों ने पाप कहा है, उन्होंने तुम्हें ग्रस लिया। मैं तुमसे कहता हूं, कोई पाप नहीं है, तुम्हारी भूल हो सकती है। भूल है ! 'पाप' – तुम्हारी छोटी-छोटी भूलों के लिए बहुत बड़ा शब्द

हो गया! इतने बड़े शब्द का उपयोग ठीक नहीं।

कोई आदमी को भोजन में थोड़ा रस आ रहा है, इसको 'पाप'... ! भूल भला हो, पाप क्या है? किसी आदमी को वस्त्र पहनने में सुख मिलता है — भूल भला हो, पाप क्या है? और जिसको वस्त्र पहनने में रस मिलता है वह केवल एक बात की खबर देता है कि उसे अपने आंतरिक सौंदर्य का कोई पता नहीं; उसे आंतरिक सौंदर्य का पता हो जाए तो बाहर की सजावट वह बंद कर देगा।

जो आदमी धन के पीछे दौड़ रहा है, वह इतनी ही खबर देता है कि उसे भीतर के धन की कोई खबर नहीं। जो आदमी बाहर के पदों की तलाश कर रहा है, उसे परमपद की कोई सूचना नहीं मिली, अन्यथा छोड़ देगा। हीरे जिसे मिल जाएं, वह कंकड़-पत्थर छोड़ ही देता है। मैं तुमसे कंकड़-पत्थर छोड़ने को नहीं कहता — मैं तुमसे हीरों का स्मरण करने को कहता हूं।

भक्ति का सारा शास्त्र भगवान के स्मरण के लिए है, संसार के त्याग के लिए नहीं है। वही भेद है भक्ति और योग में। योग कहता है : संसार छोड़ो, परमात्मा मिलेगा। भक्ति कहती है : परमात्मा को खोज लो, संसार छूट जाएगा। भोग परमात्मा का उठ आए तुम्हारे जीवन में, सब भोग अपने से निस्तेज हो जाते हैं। जब सूरज उग जाता है, तारे छिप जाते हैं : जब परम भोग का सूर्य उगता है तो सब टिमटिमाते तारे, अनंत हों तो भी खो जाते हैं, असंख्य हों तो भी खो जाते हैं।

लेकिन ध्यान रखना, स्वाद तुम्हें लेना पड़ेगा। मैं स्वाद के गीत गा सकता हूं। मेरी आंखों में तुम थोड़ा झांको तो शायद तुम्हें स्वाद की थोड़ी ध्वनि भी सुनायी पड़ जाए। लेकिन स्वाद तो तुम्हें ही लेना पड़ेगा, तभी स्वाद होगा।

और मजा यह है कि कुछ भी करना नहीं है, तुम मालिक पैदा हुए हो। तुम महल की सीढ़ियों पर बैठे रो रहे हो। चाबी तुम्हारे हाथ में है, तुम भूल ही गये हो।

तुम जैसे हो, जहां हो, भक्ति का यह बुनियादी सूत्र है : तुम वहीं भोगना शुरू कर दो। तुम जैसे हो, जहां हो, वहीं तुम परमात्मा के स्मरण को उपलब्ध हो जाओ। याद करो उसकी। क्या होगा इसका अर्थ? इसका यह अर्थ होगा, मैं तुमसे यह कहूंगा, अब तुम जब भोजन करो तो भोजन की फिक्र मत करना, परमात्मा को खोजना भोजन में। इसलिए उपनिषद कहते हैं : अन्नं ब्रह्म। वह बड़े ज्ञानियों की बात है, बड़े पहुंचे हुए पुरुषों की बात है। भोजन में भगवान! तुम जब भोजन का स्वाद लो तब भी स्मरण करना : स्वाद उसी का है। रसो वै सः। सब रस उसी का है! जब तुम एक सुन्दर स्त्री को गुजरते देखो तो स्मरण करना : सब सौंदर्य उसी का है। रसो वै सः! सब रस उसी का है! जब तुम फूल को खिला देखो तो उसी को प्रणाम करना, क्योंकि सभी खिलना उसी का है। पक्षी गीत गाएं, तब तुम गौर से सुनना। क्योंकि कंठ हों अनेक, गीत तो उसी का है। धीरे-धीरे तुम चारों तरफ जीवन में उसका स्मरण इस तरह करना कि उसके अतिरिक्त तुम्हें कोई दिखायी ही न पड़े।

भक्ति सुगम है, सरल है, सहज है। लेकिन अगर तुम्हें कठिनाई में ही रस हो तो बात और; तो फिर बहुत योगशास्त्र हैं; फिर उलटे-सीधे व्यायाम करने की बहुत सुविधाएं हैं।

दूसरा प्रश्न : आपने कल कहा कि क्रोध को होशपूर्वक देखने पर क्रोध विलीन हो जाता है। लेकिन

क्या कारण है कि कामवासना के उठने पर होश में भी उसकी प्रगाढ़ता बनी रहती है। ऐसा क्यों है?

● होश संदिग्ध है। होश ही न होगा। अन्यथा, होश के होने पर काम हो कि क्रोध, लोभ हो कि मोह, सभी विसर्जित हो जाते हैं। तो फिर तुमने होश को ठीक से सम्हाला न होगा। तो कहीं चूक हो गयी होगी। बजाय यह सोचने के, यह पूछने के, कि होश रहने पर भी कामवासना क्यों नहीं जाती, तुम पुनः अपने होश पर प्रश्न उठाना। ऐसा तो होता ही नहीं।

होश का अर्थ तो केवल इतना ही है कि होश के क्षण में तुम्हें कोई भी चीज घेर नहीं सकती, बस। नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता — काम है, क्रोध है, मोह है, लोभ है — यह सवाल नहीं है। होश के क्षण में तुम सिर्फ साक्षी रह जाते हो। तो तुम किसी भी चीज से ग्रसित नहीं हो सकते! हां, होश का क्षण खो जाए, तो तुम फिर पुनः ग्रसित हो जाओगे; या होश का क्षण आये ही न, तुम अपने को धोखा दे लो और समझा लो कि होश का क्षण है।

लेकिन यह होश की परिभाषा है, कसौटी है, कि उस क्षण में तुम शुद्ध निर्विकार हो जाते हो। होश के क्षण में तुम भगवान हो जाते हो। उस क्षण में तुम्हें कोई भी चीज पकड़ नहीं सकती; अगर पकड़ लेती हो तो होश का क्षण नहीं है, तुमने किसी तरह अपने साथ आत्मवंचना कर ली है।

उन्हें सआदते-मंजिल रसी नसीब हो गया
वो पांव राहे तलब में जो डगमगा न सके।

यदि तुम्हारे पैर न डगमगाएं, तो इसी जीवन में आखिरी मंजिल उपलब्ध हो जाती है। किन पैरों की बात है? होश के पैरों की बात है। अगर होश न डगमगाए तो जिसको कृष्ण ने गीता में 'स्थितिप्रज्ञ' कहा है, कि जिसकी चेतना थिर हो जाती है, जिसकी चेतना में कोई कंपन नहीं होता, अकंप हो जाती है — उस अकंप दशा में कोई चीज प्रभावित नहीं करती, क्योंकि प्रभावित हुए कि कंपन शुरू हुआ। प्रभाव यानी कंपन, डगमगाहट।

तो, मैं यह कहूंगा कि फिर से होश को साधना। और जल्दी न करो, कामवासना बड़ी गहरी वासना है। तुम्हारी भूल मैं समझता हूं कहां हो जाती है। तुमने अभी उड़ना भी नहीं सीखा आंगन में, और तुम बड़े आकाश की यात्रा पर निकल जाते हो; गिरोगे — मुश्किल में पड़ोगे। अभी तुम जरा नदी के किनारे थोड़ा तैरना सीखो, फिर गहरे सागरों में उतरना।

होश के साथ यही कठिनाई है कि तुम सोचते हो, चलो होश का प्रयोग कर लें कामवासना पर। कामवासना सबसे गहरी वासना है। इतनी जल्दी मत करो। पहले ऐसी चीजों पर होश को साधो, जिनमें किनारे पर थोड़ा प्रशिक्षण हो जाए। जैसे राह पर चल रहे हो, होशपूर्वक चलो। सिर्फ चलने के प्रति होश रहे। भूल-भूल न जाओ। याद बनी रहे कि चल रहा हूं — यह बायां पैर उठा, यह दायां पैर उठा। अब यह एक छोटी-सी क्रिया है जिसका कोई बंधन नहीं तुम्हारे ऊपर। तुम चकित होओगे कि इसमें भी होश नहीं सधता! भूल-भूल जाओगे।

बैठे हो शांत, श्वास पर होश साधो। बुद्ध ने श्वास पर होश साधने को सब से महत्वपूर्ण प्रक्रिया माना; क्योंकि श्वास चौबीस घंटे चल रही है, तुम न भी कुछ करो तो भी चल रही है। तो इस सहज

क्रिया पर होश को साधना आसान होगा। और जब चाहो तब साध सकते हो – जरा आंख बंद करो, श्वास को देखो और होश को साधो। श्वास भीतर जाए, होशपूर्वक भीतर ले जाओ – जानते हुए जागते हुए, कि श्वास भीतर जा रही है भीतर पहुंच गयी है, वापस लौटने लगी, बाहर गयी, बाहर निकल गई फिर भीतर आने लगी – माला बना लो श्वास की – भीतर-बाहर, भीतर-बाहर ! एक-एक गुरिया श्वास का सरकाते रहो। तुम चकित होओगे कि यह भी भूल-भूल जाता है। क्षणभर को होश आएगा, फिर मन चला गया दुकान पर, कुछ खरीदने लगा, बेचने लगा, किसी से झगड़ा हो गया; फिर चौंकोगे, पाओगे : 'अरे ! घड़ी बीत गयी ! कहां चले गये थे, श्वास तो भूल ही गयी !' फिर पकड़कर ले आओ। इसको मैं किनारे का अभ्यास कहता हूं।

श्वास में कुछ झंझट नहीं है। अब तुम या तो क्रोध पर साधोगे... । क्रोध रोज तो होता नहीं, प्रतिपल होता नहीं, कभी-कभी होता है; जब होता है तब इतनी प्रगाढ़ता से होता है कि तुम गहरे में उतर रहे हो; जब होता है तब इतनी बातें दांव पर लग जाती हैं कि शायद तुम सोचोगे : 'फिर देख लेंगे होश इत्यादि ! यह अभी तो निपट लें।'

कामवासना तो बहुत गहरी है, क्योंकि प्रकृति ने उसे बहुत गहरा बनाया है, क्योंकि जीवन उस पर निर्भर है। अगर कामवासना इतनी आसान हो कि तुमने चाहा और छूट जाये, तो तुम शायद पैदा ही न होते, क्योंकि तुमसे पहले बहुत लोग छूट चुके होते; तुम्हारे होने की संभावना न के बराबर होती। माता-पिता नहीं छूट सके, इसलिए तुम हो। तुम भी इतनी आसानी से न छूट जाओगे, क्योंकि तुम्हारे बच्चों को भी होना है; वे भी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि ऐसे भाग मत जाना बीच से।

जीवन बहुत कुछ टिका है कामवासना पर। इसलिए उसका छूटना इतना आसान नहीं है। असम्भव नहीं है, आसान भी नहीं है। और तुम्हारी यह भूल होगी, अगर तुम इतनी कठिन प्रक्रिया पर पहले ही अभ्यास करो। यह मन की तरकीब है। मन हमेशा तुम्हें कठिन चीजें सुझा देता है, ताकि तुम पहले ही दांव में हार जाओ... चारों खाने चित्त ! फिर तुम सोचते हो : 'छोड़ो भी ! यह कुछ होने वाला नहीं !'

मन तुम्हें ऐसी दुविधा में उतारता है जहां तुम हार जाओ और मन जीत जाए। तुम्हारी हार में मन की जीत है। तो मन तुम्हें तरकीबें ऐसी बताता है कि तुम पहली दफा पांव उतारो नदी में कि डुबकी खा जाओ, कि सदा के लिए भयभीत हो जाओ कि यहां जान का खतरा है, जाना ही नहीं !

थोड़े बोधपूर्वक चलो। पहले ऐसी चीजों पर होश साधो जिनका कोई भी बल नहीं है : राह पर चलना, श्वास का देखना; कोई भी ऐसी चीज – पक्षी गुनगुना रहे हैं गीत, बैठकर शांति से उनका गीत सुनना। सतत होश रहे, इतनी बात है। अखंडित होश रहे, धारा टूटे न। जैसे कि कोई तेल को एक पात्र से दूसरे पात्र में डालता है तो अखंड धारा रहती है तेल की, टूटती नहीं – बस ऐसी होश की तुम्हारी धारा रहे। पक्षी गुनगुनाते रहें गीत, तुम सुनते ही रहो, सुनते ही रहो, सुनते ही रहो; एक क्षण को भी तुम कहीं और न जाओ।

तो धीरे-धीरे किनारे का अभ्यास करो। जैसे-जैसे अभ्यास घना होगा, वैसे-वैसे तुम्हारे भीतर उत्फुल्लता बढ़ेगी। जैसे-जैसे अभ्यास घना होगा, तुम्हारे भीतर अपने प्रति आश्वासन, विश्वास बढ़ेगा।

फिर तुम धीरे-धीरे प्रयोग करना। वह भी जल्दी नहीं करना।

क्रोध पर भी प्रयोग करने हों तो क्रोध भी हजार तरह के हैं। एक क्रोध है जो तुम्हें अपने बच्चे पर आ जाता है। उस पर अभ्यास करना आसान होगा क्योंकि बच्चे के क्रोध में प्रेम भी सम्मिलित है। फिर एक क्रोध है जो तुम्हें दुश्मन पर आता है, उसमें प्रेम बिलकुल सम्मिलित नहीं है; उस पर अभ्यास करना कठिन होगा। तुम क्रोध में भी गौर करना कि कहां अभ्यास शुरू करो। जो अति निकट हैं, जिन पर तुम क्रोध करना भी नहीं चाहते और हो जाता है, उन पर अभ्यास करो। फिर कुछ हैं जो बहुत दूर हैं – दूर ही नहीं, विपरीत हैं; जिन पर तुम चाहोगे भी कि क्रोध न हो, तो भी भीतर की चाह है कि हो जाए; जिन पर तुम खोजते हो, अकारण भी, कि कोई निमित्त मिल जाए और क्रोध हो जाए – उन पर जरा देर से अभ्यास करना। पहले अपनों पर, फिर पड़ोसियों पर, फिर शत्रुओं पर। इतने जल्दी तुम अगर शत्रु पर अभ्यास करने चले जाओगे, तो यह ऐसे ही हुआ कि तलवार हाथ में ली और सीधे युद्ध के मैदान में पहुंच गये, कोई प्रशिक्षण न लिया। पहले प्रशिक्षण लो। प्रशिक्षण का मतलब होता है : पहले मित्र के साथ ही तलवार चलाओ। शत्रु के साथ चलाना खतरनाक हो जाएगा। अभी मित्र के साथ खेल-खेल में तलवार चलाओ। जब हाथ सध जाएं, भरोसा आ जाए, सुरक्षा हो जाए, तब थोड़े आगे बढ़ना।

यह मेरे अनुभव में आया है हजारों लोगों पर ध्यान के प्रयोग करने के बाद कि लोग जल्दी ही ऐसा कुछ प्रयोग करते हैं कि जिसमें टूट जाएं, ताकि झंझट खत्म, ताकि फिर अपनी वापस दुनिया में चले गये कि यह होनेवाला नहीं, यह होता होगा किसी और को – कोई सौभाग्यशाली, कोई अवतारी पुरुष, कोई संत-महात्मा – यह अपने से होनेवाला नहीं है! मगर पहले ही इस तरह की कोशिश करते हो, जिसमें कि पहले ही कदम पर हार हाथ लगे। यह तुम्हारे मन का जाल है। इस मन से सावधान।

अगर तुमने क्रोध पर होश साधा तो क्या होगा ? क्या कसौटी है कि क्रोध पर होश सधा ? प्रमाण क्या होगा ? प्रमाण यह होगा कि अगर क्रोध पर होश वस्तुतः सधा तो तुम क्रोध की जगह करुणा का आविर्भाव पाओगे। अगर करुणा पैदा न हो तो होश का धोखा हुआ, सधा नहीं। क्योंकि क्रोध की जो ऊर्जा है, कहां जाएगी ? तुम होश साध लोगे, लेकिन क्रोध में जो ऊर्जा पैदा हुई थी, जो शक्ति जन्मी थी, वह कहां जाएगी। तुम्हारे होश के सधते ही वह शक्ति रूपान्तरित होती है।

होश कीमिया है। होश तो एक प्रक्रिया है, जिससे गुजरकर शक्तियां रूपान्तरित होती हैं, अधोगामी शक्तियां ऊर्ध्वगामी होती हैं; तुम ऊर्ध्वरेतस् बनते हो। नीचे की तरफ जानेवाली ऊर्जाएं ऊपर की तरफ जानेवाले पंख बन जाती हैं।

क्रोध पर अगर होश सधा, करुणा पैदा होगी ही। बुद्ध ने उसे कसौटी कहा है। अगर कामवासना पर क्रोध सधा, महान ब्रह्मचर्य का आविर्भाव होगा; तुम एक अनूठी ऊर्जा, शीतल ऊर्जा से भर जाओगे; तुम्हारे भीतर फूल ही फूल खिल जाएंगे; एक गहन संतोष, परितोष, तृप्ति तुम्हें घेर लेगी; बिना किसी कारण के तुम महासुख का अनुभव करोगे। ऐसा सुख तुमने संभोग में कभी नहीं जाना था! ऐसे सुख की शायद संभोग में बहुत दूर की प्रतिध्वनि मिली थी। अब तुम पहचान पाओगे कि अरे, संभोग में जिसे जाना था, वह इसी महासुख की बड़ी दूर की छाया थी – जैसे हजार-हजार परदों के पीछे से छिपी

हुई रोशनी को तुमने देखा हो, फिर सब परदे उठ गये और तुमने रोशनी का साक्षात दर्शन किया हो!

कामवासना में अगर होश जगेगा तो ब्रह्मचर्य का आविर्भाव होगा। जब मैं ब्रह्मचर्य कहता हूं तो तुम्हारे साधु-संन्यासियों का ब्रह्मचर्य नहीं, जो जबरदस्ती कामवासना को दबाकर बैठे हैं। उनका ब्रह्मचर्य तो तुम्हारी कामवासना से भी बदतर और रुग्ण है। जब मैं ब्रह्मचर्य कहता हूं तो मेरा मतलब है : जिस चैतन्य में कामवासना होश की प्रक्रिया से गुजर गयी और जहां अब कुछ भी दमन नहीं; जहां सब कूड़ा-कर्कट जल गया, सिर्फ सोना बचा; जहां सारी कीचड़ कमल हो गयी! तुम सुगंध से भर जाओगे। तुम्हीं नहीं भर जाओगे, दूसरे भी तुम्हारे पास उस सुगंध के झोंकों को अनुभव करने लगेंगे! तुम्हारे पैर जमीन पर होंगे और जमीन पर नहीं पड़ेंगे। तुम रहोगे यहीं, और कहीं और दूसरे लोक से जुड़ जाओगे। तुम जानोगे निश्चित रूप से; क्योंकि इतनी बड़ी घटना है, बिना जाने नहीं घटेगी।

अगर लोभ पर तुम्हारा होश जागा तो तुम्हारे जीवन में दान का जन्म होगा; तुम बांटने लगोगे। और बांटकर तुम ऐसा न अनुभव करोगे कि जिसको तुमने दिया, उस पर तुमने कोई उपकार किया। तुम उलटे यही अनुभव करोगे कि जिसने स्वीकार किया उसने उपकार किया।

जो अन्तर की आग, अधर पर
आकर वही पराग बन गयी
पांखों का चापल्य सहज ही
आंखों का आकाश बन गया
फूटा कली का भाग्य, सुमन का
सहसा पूर्ण विकास बन गया
अवचेतन में छिपी घृणा ही
चेतन का अनुराग बन गयी।

वह जो-जो अंधेरे में पड़ा है तुम्हारे भीतर, रोशनी जलते ही रूपान्तरित होता है।

अवचेतन में छिपी घृणा ही
चेतन का अनुराग बन गयी।

घृणा प्रेम बन जाती है। क्रोध करुणा बन जाता है।

द्वंद्व-लीन मानस का मधु छल
प्राणों का विश्वास बन गया
वृद्ध तिमिर का सित कुंतल दल
दृग का दिव्य प्रकाश बन गया
स्व की चरमासक्ति स्वयं से
छलकर परम विराग बन गयी।
जो अभेद है अनायास वह
भाषित हो कर भेद बन गया
सप्तम स्वर तक पहुंच भैरवी

कोमल राग विहाग बन गयी
जो अंतर की आग, अधर पर
आ कर वही पराग बन गयी।

अग्नि पराग बन जाती है। कांटे फूल बन जाते हैं।

होश की प्रक्रिया कीमिया है।

मनुष्य अपने भीतर सब लेकर आया है – सब! होश से गुजर जाए तो जिसे तुम संसार कहते हो, वही सत्य बन जाता है। होश से गुजर जाए तो जिसे तुमने पत्थर जाना है, वही परमात्मा बन जाता है।

इसलिए होश बहुमूल्य शब्द है। इसे सम्हालना संपदा की भांति। इससे बड़ी और कोई संपदा नहीं है। होश, स्मृति, सुरति, सम्यक बोध – नाम बहुत हैं, बात एक ही है।

तीसरा प्रश्न : आपने कहा कि तुम स्वप्न पर श्रद्धा करते हो और सत्य पर संदेह। पर जिसे आप स्वप्न कहते हैं, वह हमें सत्य मालूम देता है और आपका सत्य हमारे लिए स्वप्नवत है। कृपापूर्वक बताएं कि किसकी गंगा उलटी बहती है – आपकी या हमारी? और क्यों और कैसे?

● लोकतंत्र की बात पूछो तो तुम्हारी गंगा सीधी बहती है। लेकिन सत्य से लोकतंत्र का कोई संबंध नहीं। भीड़ से सत्य तय नहीं होता।

तो फिर कसौटी क्या है?

एक ही कसौटी है कि अगर गंगा सीधी बहती हो तो आनंदित होगी, सहज होगी, संगीतपूर्ण होगी; सागर की तरफ पहुंच रही है, अपना घर पास आ रहा है – प्रतिपल पुलकित होगी; नृत्य करती होगी; समारोहपूर्वक होगी। गंगा अगर उलटी बहती हो तो दीन-हीन होगी, परेशान होगी, तनाव से भरी होगी, दुखी होगी, संतप्त होगी। तो तुम्हीं सोच लो। अगर तुम प्रसन्न हो, आनंदित हो, तो धन्यभाग, तुम्हारी गंगा सीधी बह रही है। अगर तुम दुखी हो, पीड़ित हो, परेशान हो, तो ऐसा समझ कर मत बैठ जाना कि गंगा सीधी बह रही है; क्योंकि तब तो फिर तुम्हारे इस दुर्भाग्य से छूटने का उपाय भी न रहा। अपने-अपने भीतर कस लेना। अपनी-अपनी गंगा है। अगर उलटी बह रही हो तो आनंदपूर्ण नहीं हो सकती। उलटा होकर कोई कभी आनंदपूर्ण हुआ? शीर्षासन करके जरा खड़े होकर देखो, कितनी देर कर पाओगे?

जहां-जहां जीवन में प्रक्रियाएं उलटी हो जाती हैं, वहीं पीड़ा पैदा होती है। पीड़ा का अर्थ ही केवल इतना है। पीड़ा इंगित है, सूचक है कि कहीं कुछ गलत हो गया, कहीं कुछ बात स्वभाव के प्रतिकूल हो गयी, स्वाभाविक न रही।

सुख का अर्थ है : सभी कुछ स्वाभाविक है तो सुख है। दुख का अर्थ है : सभी कुछ अस्वाभाविक हो गया है। दुख दुश्मन नहीं है; दुख तो मित्र है; दुख तो खबर दे रहा है कि कहीं कुछ गलत हो गया है, ठीक कर लो। दुख तो यही कह रहा है कि जहां चले जा रहे हो वह मंजिल नहीं है; बदलो;

राह बदलो, लौटो ! जैसे ही तुम ठीक दिशा में चलने लगोगे, सुख का सरगम बजने लगेगा।

सुख है क्या ? ...जब तुम अनुकूल जा रहे हो स्वभाव के।

महावीर से किसी ने पूछा : सत्य क्या है ? तो महावीर ने कहा : बत्थु सहावो धम्म ! जो वस्तु का स्वभाव है, वही सत्य है, वही धर्म है।

मनुष्य दुखी है : स्वभाव के प्रतिकूल है, धर्म के प्रतिकूल है।

तुम अपने भीतर जांच कर लो। अगर दुखी हो, गंगा उलटी बह रही है। फिर देर न करो, क्योंकि ज्यादा देर उलटे बहते रहे तो उलटे बहने का अभ्यास हो जाता है। फिर जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी रूपान्तरण करो। दुख के साथ बैठकर मत रह जाना, नहीं तो दुख भी आदत बन जाता है। फिर तुम दुख को छोड़ना भी चाहते हो और छोड़ना भी नहीं चाहते; एक हाथ से पकड़ते हो, एक हाथ से हटाते हो, चाहते हो मुक्ति हो जाए दुख से, और बीज भी बोए चले जाते हो, क्योंकि आदत हो गयी है।

पर इसको तुम मापदण्ड, कसौटी, निकष समझो। यह कोई मान लेने की बात नहीं है, अन्यथा मैं हार जाऊंगा। उस दृष्टि से बुद्ध-महावीर सदा हारे हैं, अकेले हैं। अगर भीड़ से सत्य निर्णीत होता है तो बुद्ध गलत हैं, भीड़ सही है। लेकिन सत्य का भीड़ से क्या लेना-देना ? सत्य तो भीतरी अनुभव है। उससे दूसरे की तुलना का भी कोई संबंध नहीं है। मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम मुझसे तुलना करो। मैं तुमसे यही कहता हूं कि तुम अपने भीतर ही जांच-परख करो, अवलोकन करो। अगर दुखी हो तो गंगा उलटी बह रही है। अगर सुखी हो तो सौभाग्य, गंगा बिलकुल सीधी बह रही है। फिर तुम किसी के चक्कर में मत पड़ना। फिर तुम किसी की शिक्षा स्वीकार मत करना। अगर तुम सुख में हो तो सावधान रहना, किसी के पीछे मत चलना, नहीं तो कोई तुम्हारी गंगा उलटी चलवा देगा। अगर तुम सुख में हो तो सुख में जीना। चाहिए ही क्या और ?

अगर तुम सुख में हो तो आनंद तक पहुंच जाओगे। सुख प्रमाण है कि ठीक जगह चल रहे हैं, मंजिल आ जाएगी। अगर तुम दुख में हो तो सुख तक ही पहुंचना मुश्किल है, आनंद तक तो कैसे पहुंचोगे ?

फूल खिले हैं गुलशन गुलशन
लेकिन अपना अपना दामन !

फूल तो खिले हैं चारों तरफ, पर कुछ लोग हैं जिन्होंने कांटों को चुनने की आदत बना ली है। अपना-अपना दामन ! जो कांटे ही चुनते हैं, फिर पीड़ित होते हैं – फिर भी कांटे चुनना जारी रखते हैं !

काफी समय हुआ, बहुत देर हो गयी ! काफी जन्मों तक तुम कांटे इकट्ठे किये हो। अभी भी तुम्हारी आंख में सुख का फूल खिला हुआ मालूम नहीं होता। अभी भी तुम्हारे हृदय में वह साज नहीं बज रहा है जिसे सुख का कहें !

चेतो !

बदलो !

रूपान्तरित होओ !

किसी और से कहने की बात नहीं है – खुद को ही समझ लेने की है।

तुम जिन्हें सत्य कहते हो, अगर वे सत्य हों तो तुम्हारा दामन फूलों से भर गया होता; क्योंकि सत्य से कभी किसी ने दुख पाया नहीं। तुम्हारी हालत ऐसी है कि जितना तुम दौड़-धूप करते हो उतने हाथ खाली होते चले जाते हैं; उतना दामन भिखारी की झोली बनता जाता है; भरता तो नहीं, उलटा खाली होता है। जिंदगीभर दौड़कर आदमी भिखारी की तरह गिरकर मर जाता है – हाथ खाली ! सारी जिंदगी की चेष्टा तुम्हारी आत्मा को एक भिक्षापात्र से ज्यादा नहीं बना पाती। कहीं पहुंच नहीं पाते। शायद बचपन में कहीं थे, तो वह भी चूक गया। मंजिल के पास आना तो दूर, शायद और दूर निकल गये।

इसे थोड़ा गौर करो। इसे जांचते रहो।

एक-एक कदम महंगा है अगर गलत दिशा में उठाया जा रहा है, क्योंकि लौटना पड़ेगा। एक-एक कदम महंगा है, क्योंकि फिर पुनः यात्रा करनी पड़ेगी।

तुम्हारे जीवन में जिसे तुम सत्य कहते हो, अगर वह सत्य है तो तुम तृप्त क्यों नहीं हो ? नहीं, मैं तुमसे कहता हूं : रात तुम सोए, नींद में तुम्हें भूख लगी, तुमने एक सपना देखा कि राजमहल में निमंत्रण मिला है, तुम भोज में सम्मिलित हुए हो, तुमने खूब भरपेट भोजन किया – लेकिन सुबह, क्या तुम पाओगे, तुम्हारा पेट भरा है ? या कि सुबह तुम पाओगे, कि यह तो सिर्फ रात अपनी भूख को झुठला लेने की तरकीब थी ? यह सपना तो भूख को मिटानेवाला न था, भूख को छिपा लेनेवाला था। इससे भूख मिटी नहीं, इससे भूख दब गयी। इससे शरीर को कोई तृप्ति और कोई पोषण तो न मिलेगा।

सपने में तुमने कितने ही अच्छे भोजन किये हों, किसी काम के नहीं – रूखी-सूखी रोटी भी शायद ज्यादा पोषक हो अगर सच्ची हो, असली हो।

तुम्हारे सपने सत्य नहीं हो सकते, अन्यथा तुम तृप्त होते; तुम्हारा पेट भरा होता; तुम्हारी क्षुधा शांत होती; तुम्हारे भीतर चैन की बंसी बजती – वह तो नहीं सुनायी पड़ती। तुम्हारे भीतर तो अहर्निश एक आर्त्रनाद हो रहा है, एक दुख और पीड़ा का शोरगुल मचा है। तुम्हारी वीणा से संगीत उठता नहीं मालूम पड़ता, सिर्फ व्यर्थ का कोलाहल होता हुआ मालूम होता है।

निश्चित ही, तुम जिन्हें सत्य कहते हो, वे स्वप्न हैं।

मेरे सत्य तुम्हें स्वप्न मालूम पड़ेंगे, स्वाभाविक है। लेकिन इतना मैं तुमसे कह सकता हूं : कोलाहल खो गया है। दुख बहुत दूर निकल गया है; उसकी पगध्वनि भी सुनायी नहीं पड़ती। इतना तुमसे कह सकता हूं : आनंद बरसा है। और अगर तुम समझदार हो, अगर तुममें थोड़ी भी मात्रा समझ की है, तो तुम मेरे स्वप्नों को, जो तुम्हें स्वप्न जैसे मालूम पड़ते हैं, उनको ही चुनना पसंद करोगे अपने सत्यों की बजाय; क्योंकि तुम्हारे सत्यों ने क्या दिया है ? माना कि आज तुम्हें मेरे सत्य स्वप्न जैसे मालूम पड़ते होंगे; लेकिन फिर भी अगर तुम समझदार हो तो अपने सत्यों की बजाय मेरे स्वप्न चुनोगे।

तुमने अपने सत्य तो बहुत चुनकर देख लिये, कहां पहुंचे ? चलो, मेरे सपनों की भी परीक्षा कर

लो ! दो कदम मेरे साथ भी चलकर देख लो, अपने साथ चलकर तो तुमने बहुत देख लिया।

आखिरी प्रश्न : भगवान ! मेरे पिता जी सत्रह-अट्ठारह वर्ष की उम्र में धूनीवाले बाबा के पास अकेले गये और वहां से लौटते समय रास्ते में उन्हें कुछ अनुभव हुआ और वे विक्षिप्त हो गये। तब से आज तक वे जीवन को दो विपरीत तलों में बारी-बारी से जीते हैं — एक विक्षिप्तता का और दूसरा सामान्य समाज-स्वीकृत। जब वे विक्षिप्तता की दशा में होते हैं, तब उनका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक होता है और वे अभय से भरे होते हैं, साधु-संतों के पास जाते हैं, तीर्थयात्रा करते हैं, चिंता-मुक्त मस्ती से जीते हैं। और जब वे सामान्य दशा में होते हैं, तब रुग्ण हो जाते हैं, भयभीत, चिंतित और गंभीर रहते हैं, और पूरे समय घर में ही बने रहते हैं। आज उनकी उम्र सत्तर वर्ष है। आप कृपाकर मुझे कहें कि इस जीवन में क्या उनकी नियति यही है, या उनके लिए भी जीवन के अंतिम चरण में नये जन्म की कोई संभावना है।

● नरेन्द्र ने पूछा है। नरेन्द्र के पिता को मैं जानता हूं। उनकी स्थिति का मुझे पूरा-पूरा पता है। और ऐसी दुर्घटना बहुत लोगों के जीवन में घटी है। जो सौभाग्य हो सकता था वह दुर्भाग्य हो गया। समझना जरूरी है।

सत्य की दिशा में कभी-कभी किसी उपलब्ध व्यक्ति के करीब अचानक झलक मिल जाती है। उस झलक के मिलने के बाद स्वभावतः व्यक्ति में दो तल हो जाते हैं। जो झलक मिली, वह किसी और दिशा में खींचती है और उस व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व किसी और दिशा में खींचता है। एक द्वंद्व उत्पन्न हो जाता है।

फिर वह जो झलक मिली, वह कुछ ऐसी मस्ती से भर देती है — लगता है कि पागलपन है। न केवल व्यक्ति को लगता है, पागलपन है बल्कि परिवार के लोगों को, प्रियजनों को, मित्रों को, समाज को भी लगता है, पागलपन है। और जब वह व्यक्ति उस झलक से नीचे उतर आता है तो समाज को, परिवार को, मित्रों को लगता है, अब ठीक हुआ। हालत बिलकुल उलटी है। वह जो पागलपन की दशा है, वही ठीक दशा है।

नरेन्द्र के पिता को अगर बचपन से ही, जब उनको यह घटना घटी, तभी से अगर जबरदस्ती स्वास्थ्य दिलाने की चेष्टा न की गयी होती और उनकी विक्षिप्तता को एक भक्त की अहोभाव की दशा समझा गया होता, तो वे कभी के खिल गये होते। लेकिन परिवार ने, घर ने, समाज ने भी समझा कि यह पागलपन है, इसका इलाज होना चाहिए। बहुत इलाज किये गये उनके। जबरदस्ती दवाइयां दी गयीं उनको।

और वे भी मानते हैं कि यह पागलपन है ! पागलपन जैसा लगता ही है, क्योंकि इतना अनूठा लोक शुरू होता है, खुद भी भरोसा नहीं आता। तो वे भी साथ देते हैं इलाज में, चिकित्सा में। फिर भी जो झलक मिली थी, वह इतनी महत्वपूर्ण थी कि लाख दवाएं भी उससे नीचे नहीं उतार पायीं; फिर-फिर पकड़ लेती हैं।

कभी उन मदभरी आंखों से पिया था इक जाम
आज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहीं।

फिर-फिर लौट-लौटकर वह झलक उनको पकड़ लेती है!

और कितना साफ मामला है अगर समझ हो! जब भी वे पागल होते हैं, तभी वे स्वस्थ होते हैं, तब उनको कोई बीमारी नहीं रह जाती, तब वे बड़े प्रसन्न होते हैं, बड़े मस्त होते हैं! मैंने उनकी मस्ती देखी है। तब वे वैसे होते हैं जैसे हर मनुष्य को होना चाहिए। तब वे गीत गाते हैं। तब सुबह से उन्हें तीन बजे गांव नदी पर स्नान करते देखा जा सकता है – गुनगुनाते, नाचते! वे प्रसन्न होते हैं। उनके सब रोग खो जाते हैं। उनके चेहरे पर रौनक आ जाती है। आंखों में एक चमक आ जाती है। तब वे तीर्थयात्रा पर निकल जाते हैं! तब संतों का सत्संग करते हैं। तब सुबह तीन बजे से भजन गाते हैं। लेकिन गांवभर उनको पागल समझता जब वे मस्त होते हैं। तब उनकी मस्ती का कोई ठिकाना नहीं होता। तब उनके प्याले से उनकी मस्ती बहती है। तब पूरा गांव उनको पागल समझता है। तब उनका इलाज शुरू हो जाता है। जब गांव उनका इलाज कर लेता है, तब वे रुग्ण हो जाते हैं; तब उनकी आंखों की चमक चली जाती है; तब उनके चेहरे की मस्ती खो जाती है; तब बड़े भयभीत हो जाते हैं; तब वे घर से निकलने में डरने लगते हैं; तब वे कमजोर हो जाते हैं, रुग्ण हो जाते हैं, बिस्तर से लग जाते हैं – तब लोग कहते हैं, 'अब ठीक हो गये! अब पागल नहीं हैं।'

अब यह मामला बिलकुल सीधा-साफ है : जब वे पागल हैं, तब वे ठीक हैं। लेकिन समाज को पागलपन लगता है, घर के लोगों को भी पागलपन लगता है। क्योंकि हम यह मान ही नहीं सकते कि कोई आदमी होश में और इतना मस्त हो सकता है। हम सब इतने रुग्ण और परेशान और दीन-हीन, और हमारे बीच अचानक एक आदमी इतनी मस्ती दिखला रहा है, जरूर दिमाग खराब हो गया है! दुखी होना हमारी कसौटी है सामान्य स्वास्थ्य की; प्रसन्नचित्त हो जाने से शक होने लगता है।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। खुद भी शक होता है उनको। वे कहते हैं, 'ध्यान कर रहे हैं, बड़ा आनंद आ रहा है; लेकिन कहीं पागल तो न हो जाएंगे?'

आनंद पागल का लक्षण है!

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, 'बड़ी शांति मिल रही है; लेकिन घर लौटकर जाएंगे, कुछ लोगों को ऐसा तो न लगेगा कि कुछ गड़बड़ हो गयी है?'

समाज करीब-करीब रुग्ण दशा को स्वास्थ्य मानकर जी रहा है। इसलिए जब तुम्हारे भीतर कोई मस्त हो जाता है तो मुश्किल मालूम होती है।

महावीर मस्त हो गये, तो लोगों ने गांव से निकाल भगाया। महावीर मस्ती में नग्न घूमने लगे, तो लोगों ने गांव में न घुसने दिया। मीरा मस्त हो गई तो प्रियजनों ने जहर भिजवाया कि मर जाए; क्योंकि उसकी मस्ती सारे घर के ऊपर बोझ हो गयी; उसकी मस्ती पागलपन हो गयी। लोक-लाज छोड़ दी उसने। जो कभी घर से न निकली थी, घूंघट के बाहर न आयी थी, वह बाजारों में नाचने लगी! वह आवारा हो गयी!

मीरा दीवानी हुई; लेकिन उसकी दीवानगी परम स्वास्थ्य है!

यही झंझट नरेन्द्र के पिता के साथ हो गयी। अभी भी उपाय है – अगर उनके पागलपन को स्वास्थ्य मान लिया जाए और उनका इलाज न किया जाए, और जब वे पागल हो जाएं तो सारा घर उत्सव मनाये और उनके पागलपन में सम्मिलित हो जाए, और उनको आश्वासन दे कि तुम बिलकुल ठीक हो। उनके मन से यह भ्रांति टूट जाए कि मैं गलत हूं, तो उनके भीतर का जो द्वैत पैदा हो गया है, वह विसर्जित हो जाएगा।

वे जिनके पास गये थे – धूनीवाले बाबा – वे एक परमहंस व्यक्ति थे। उनके पास घटना घट गयी होगी। वे एक महानुभाव थे। उनकी छाया में कोई बात पकड़ गयी होगी। फिर भूले नहीं भूली वह मस्ती, फिर गयी नहीं। फिर जमाने बीत गये, पचास साल हो गये उस बात को। लेकिन अगर शुभ की एक झलक मिल जाए तो घेर-घेर लेती है, बार-बार घेर लेती है।

सौभाग्य का क्षण आया था, उसे हमने बदल दिया, रूपांतरित कर दिया, उसे दुर्भाग्य बना दिया।

हुदूदे-कूचा-ए-महबूब है वहीं से शुरू
जहां से पड़ने लगें पांव डगमगाए हुए।

परमात्मा का घर वहीं से पास है, प्रेमी का घर आने लगा करीब – 'हुदूदे कूचा-ए-महबूब है वहीं से शुरू' – उस प्यारे के घर की सीमाएं पास आने लगीं, 'जहां से पड़ने लगें पांव डगमगाए हुए' – जहां से मस्ती आने लगे, शराब का नशा छाने लगे – पास है उसका घर।

वे उस घर के बहुत पास होकर लौट आये हैं। वे भूलते भी नहीं – भूल भी नहीं सकते। उनका कोई कसूर भी नहीं है। लेकिन समाज नासमझ है, समाज के मूल्य गलत हैं। वे परमहंस हो गये होते, वे पागल होकर रह गये हैं।

उनके बस के बाहर है कि वे उसको भूल जाएं, और हम उन्हें साथ न दे सके कि वे इसको भूल जाते जिसको हम स्वास्थ्य कहते हैं। उसे तो भूल ही नहीं सकते थे। पचास साल बहुत लम्बा वक्त होता है। हर कोशिश की है उन्होंने। खुद भी कोशिश की है। लेकिन मामला कुछ ऐसा है –

वो जो एक रब्ते-मोहब्बत है मिटाना उसका
मेरी ताकत में नहीं, आपकी कुदरत में नहीं।

वह जो प्रेम का एक संबंध है, वह जो एक अहोभाव है, वह जो एक घड़ी है, वह आदमी की ताकत में नहीं कि उसको मिटा दे, अगर हो जाए, और परमात्मा के स्वभाव में नहीं कि उसको मिटा दे।

मेरी ताकत में नहीं, आपकी कुदरत में नहीं।

उनके 'पागलपन' को पागलपन कहने में भूल हो गयी है। अभी भी कुछ बात नहीं बिगड़ गयी है। अभी भी काश, उन्हें स्वीकार किया जा सके! न केवल स्वीकार, बल्कि अहोभाव से, धन्यभाव से, उनसे कहा जा सके कि हमसे भूल हो गयी। अगर परिवार उनसे कह दे कि 'हमसे भूल हो गयी और हम व्यर्थ ही तुम्हें खींचते रहे, वह हमारी गलती थी, हमारी नासमझी थी; हम समझ न पाए कि क्या तुम्हें हुआ है, तुमने कौन-सा झरोखा खोल लिया! हम अंधे हैं। और हमने तुम्हें अपनी तरफ खींचने की कोशिश की। उस खींच-तान में सब टूट गया। न तुम वहां जा पाये, न तुम यहां के हो पाये।

यहां के तुम हो नहीं सकते, वह तुम्हारी सामर्थ्य के बाहर है।'

जिसकी आंख उस पर पड़ गयी, वह लौट नहीं सकता; हां, खींच-तान में दुर्दशा हो जाएगी। वही दुर्दशा उनकी हो गयी है। उन्हें स्वीकृति चाहिए – सम्मानपूर्वक स्वीकृति चाहिए, ताकि उनके भीतर का भी भाव यह हो जाए कि ठीक हुआ है।

ध्यान रखना, आज की दुनिया में ऐसे बहुत-से पागल पागलखानों में बंद हैं जो आज से हजार साल पहले अगर होते तो परमहंस हो गये होते; और ऐसा भी हुआ है कि आज से हजार साल पहले ऐसे बहुत-से पागल परमहंस समझे गये, जो आज होते तो पागलखानों में होते। समाज के मापदण्ड पर बहुत कुछ निर्भर करता है।

परमहंस में बहुत कुछ पागल जैसा होता है। पागल में भी बहुत कुछ परमहंस जैसा होता है। भेद करना बड़ा मुश्किल है, बड़ा बारीक है। पर अगर भेद न हो सके तो भी मेरा मानना यह है कि पागल को भी परमहंस कहो, हर्जा नहीं है; लेकिन परमहंस को पागल मत कहना। मेरी बात समझ में आयी ? अगर भेद न भी हो सके, अगर मनस-शास्त्री तय भी न कर पाएं कि सीमा-रेखा कहां है, तो तुम पागल को भी परमहंस कहना, क्या हर्ज है ? तुम्हारे परमहंस कहने से वह कुछ ज्यादा पागल न हो जाएगा। लेकिन परमहंस को पागल कभी मत कहना, क्योंकि पागल कहने से, वह जो जहां जा रहा था, जा न पाएगा। और यहां तो अब हो नहीं सकता; वह आधा-आधा हो जाएगा, द्वंद्व हो जाएगा।

एक दुर्भाग्य हो गया जो सौभाग्य हो सकता था। अभी भी लेकिन दूर समय नहीं गया है। कभी भी इतनी देर नहीं होती। जब जाग जाओ तभी सुबह है!

आज इतना ही।

शून्य का संगीत है प्रेमा-भक्ति

तेरहवां प्रवचन

सूत्र

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ।।५१।।
मूकास्वादमवत् ।।५२।।
प्रकाशते क्वापि पात्रे ।।५३।।
गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानम-
विच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ।।५४।।
तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति
भाषयति तदेव चिन्तयति ।।५५।।
गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभेदाद्वा ।।५६।।
उत्तरस्मांदुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति ।।५७।।

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम !

प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है — जो कहा न जा सके — जीया जा सके, भोगा जा सके, अनुभव किया जा सके — पर कहा न जा सके।

लहर सागर में है सागर भी लहर में है। लेकिन लहर पूरी की पूरी सागर में है; पूरा का पूरा सागर लहर में नहीं है।

अनुभव सागर जैसा है; अभिव्यक्ति लहर जैसी है।... थोड़ी-सी खबर लाती है, पर बहुत, अनंतगुना पीछे छूट जाता है; जरा-सी झलक लाती है, लेकिन बहुत शेष रह जाता है।

शब्द शून्य को बांध नहीं पाते — बांध नहीं सकते। शब्द तो छोटे-छोटे आंगनों जैसे हैं। अनुभव का, शून्य का, प्रेम का, परमात्मा का आकाश असीम है। यद्यपि आंगन में भी वही आकाश झांकता है, लेकिन आंगन को आकाश मत समझ लेना, अन्यथा कारागृह में पड़ जाओगे। जिसने आंगन को आकाश समझा, उसका दुर्भाग्य, क्योंकि फिर आंगन में ही जीने लगेगा। आंगन से आकाश बहुत बड़ा है। आंगन से स्वाद ले लेना, लेकिन तृप्त मत हो जाना।

शब्द से अनुभव का आकाश बहुत बड़ा है। शब्द से प्यास जगे, शब्द से यात्रा शुरू हो, लेकिन शब्द पर यात्रा पूरी न हो जाए। कहीं शब्द को ही सब मत समझ लेना। शब्द में इंगित हैं, इशारे हैं; जैसे राह के किनारे मील के पत्थर हैं, तीर लगे हैं — आगे की तरफ सूचना है। मील के पत्थर को मंजिल मत समझ लेना। सभी शब्द चाहे वेद के हों, चाहे कुरान के, चाहे बाइबिल के — शब्द मात्र सीमित हैं, और प्रेम का अनुभव विराट है।

इसलिए पहला सूत्र है आज का, बहुत अनूठा : 'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् !'
'उस प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है !'

उसकी व्याख्या हो सके, अभिव्यक्ति न हो सके। ऐसा नहीं कि जिन्होंने जाना, नहीं कहा है; खूब कहा है, बार-बार कहा है, हजार बार कहा है; फिर भी अनुभव किया है, जो कहना चाहते थे, वह नहीं कहा जा पाया है। जो कहा है, बहुत छोटा है; जो कहना चाहते थे, बहुत बड़ा है।

रवीन्द्रनाथ मरणशैया पर थे। एक मित्र ने कहा, 'तुम धन्यभागी हो, तुम्हें जो गाना था गा लिया, कहना था कह लिया। तुमने छह हजार गीत रचे हैं। तुम महाकवि हो ! तुम तो शांति से, तृप्ति से

मृत्यु में विदा हो सकते हो !' रवीन्द्रनाथ ने आंख खोली और कहा, 'तृप्ति ! तृप्ति कैसी ? जो कहना चाहता था, अभी भी अनकहा रह गया है; जो गाना चाहता था अभी गा कहां पाया ! यही परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि यह तूने क्या किया ! कैसे असमय में उठा रहा है मुझे ! अभी तो वाद्य बिठा पाया था, साज जमा पाया था। अभी तो गीत जो गाना था, अनगाया रह गया है। अभी फूल खिले नहीं, अभी तो सिर्फ भूमि तैयार हुई थी। बाहर के लोगों ने तो यही समझ लिया कि वाद्य का बिठाना, तबले की ठोंक-पीट, सितार के तारों का जमाना, यही संगीत है।'

अगर कोई कवि कहता हो कि जो गाना था गा लिया है तो समझना कवि छोटा है; गाने को बहुत कुछ होगा ही न, इसलिए गा लिया। अगर कोई चित्रकार कहे कि जो चित्रित करना था कर लिया है, तो समझना कि चित्रित करने को कुछ बहुत ज्यादा न रहा होगा; आंगन ही बनाना था, आकाश नहीं।

सिर्फ छोटे क्षुद्र अनुभव ही प्रगट होते हैं। जितना विराट अनुभव हो, उतना ही अप्रगट रह जाता है; जितना हो विराट, उतना ही अनिर्वचनीय हो जाता है। अनिर्वचनीयता विराटता के अनुपात में होती है।

इसलिए बुद्ध ने कहा है कि 'तुम सोचते हो, मैं बोला ? बोलने की कोशिश की — बोला कहां !' बुद्ध के भक्त — जापान में कहते हैं झेन फकीर — कि बुद्ध बोले ही नहीं। और बुद्ध चालीस साल निरंतर बोले !

यही मैं तुमसे कहता हूं, 'रोज तुम मुझे सुनते हो, मैं बोला नहीं। जो बोलना है, बोला नहीं जा सकता। अनिर्वचनीय है। जो बोल रहा हूं, वह वही है जो बोला जा सकता है; वह वही नहीं है जो मैं बोलना चाहता हूं। मेरे बोलने को तुम मेरी आकांक्षा, अभीप्सा, अभिलाषा मत समझ लेना। मेरा बोलना शब्द की सीमा में है — होगा ही; कोई उपाय नहीं है।'

शून्य का संगीत बजाना हो तो वीणा के तार से कैसे उठाओगे ? तार तो ध्वनि करेगा। शून्य तो ध्वनि में खो जाएगा। शून्य का संगीत उठाना हो तो वीणा तोड़ देनी पड़ेगी। शून्य का संगीत उठाना हो तो वीणा को अनुपस्थित हो जाना पड़ेगा। वीणा की मौजूदगी भी बाधा होगी। मौन से ही कहा जा सकता है जो कहना है। लेकिन मौन तुम न समझ सकोगे।

प्रेम अनिर्वचनीय है। लेकिन प्रेम को जो समझना चाहते हैं, शब्द के अतिरिक्त उनके पास कोई और समझ नहीं; इसलिए प्रेम पर भी बोलना होता है।

शून्य नहीं होता परिभाषित
रहता मात्र नयन में
मन्वंतर संवत्सर वत्सर
कब बंधते लघु क्षण में ?
रहते सभी अनाम, न कोई
कभी पुकारा जाता
रह जाती अभिव्यक्ति अधूरी
जीवन-शिशु तुतलाता !

सब बोलना तुतलाने जैसा है। बुद्धों के वचन भी तोतले हैं, तुतलाने जैसे हैं। जैसे छोटा बच्चा कुछ कहना चाहता है, बड़े भाव से भरा है, पर शब्द नहीं हैं। शब्दों की भी कुछ खोज-बीन कर ले थोड़ी-बहुत, तो बड़े थोड़े-से शब्द हैं। कहना चाहता है बड़ी बातें, लेकिन एक ही शब्द जानता है : 'मां' ! 'मां' ! उसी से सब कहना है। भूख लगे तो मां-मां, प्यास लगे तो मां-मां; धूप लगे तो मां-मां, शीत लगे तो मां-मां। एक ही शब्द है, उसी से सब कहना है।

शब्द बड़े थोड़े हैं; कहने को बड़ा विराट है। और प्रेम विराट से भी विराटतर है। प्रेम महाशून्य है। प्रेम का अर्थ ही है, जहां तुम मिट जाओ, जहां तुम्हारी खबर न मिले; ऐसी जगह आ जाओ जहां अपने को भी खोजने से खोज न सको।

प्रेम का अर्थ है, जहां तुम मिट जाओ। प्रेम महामृत्यु है। तुम जहां शून्य हो जाते हो वहीं परमात्मा प्रगट होता है, अपने अनंत रूपों में। जहां तुम खो जाते हो, वहीं उसकी वीणा बज उठती है; अनंत स्वर-संगीत तुम्हें घेर लेते हैं। लेकिन तुम बचते नहीं, कहनेवाला नहीं बचता। पहली बात : भाषा छोटी है, संकुचित — थोड़े-से शब्द, बच्चे के तुतलाने जैसे। फिर दूसरी बात : प्रेम को जानने वाला, जानने में खो जाता है, पिघल जाता है, बह जाता है; बोलनेवाला बचता नहीं। जब बोलने योग्य कुछ होता है जीवन में तो बोलनेवाला नहीं बचता। जब तक बोलनेवाला होता है जीवन में तो कुछ बोलने योग्य नहीं होता।

तुम कितना बोलते हो ! कभी सोचा ? सुबह से सांझ बोलते ही रहते हो। कभी विचारा, बोलने को क्या है ? रात नींद में भी बड़बड़ाते हो, बोले ही चले जाते हो। कभी ठहरो ! क्षणभर को ठिठको ! कभी रुककर सोचो ! लौटकर देखो, बोलने को क्या है ? बोलने को कुछ भी नहीं। मगर बोल-बोलकर ऐसा आभास कर लेते हो कि जैसे बोलने को बहुत कुछ था। कहानी कह-कहकर आभास कर लेते हो कि कहने को कहानी थी। ऐसे झूठी संपदा का भ्रम पैदा होता है। गा-गाकर समझा लेते हो कि गीत पैदा हुआ था, गायक का जन्म हुआ था। बिना जाने, स्वर-ताल का कोई अनुभव नहीं; लेकिन ठोंकते-पीटते रहते हो वीणा को, शोरगुल होता है। निश्चित ही; उसी शोरगुल को संगीत समझ लेते हो। जब संगीत पैदा होता है तो हाथ रुकने लगते हैं, वीणा छेड़ने में भी डरते हैं।

जितनी होती है गहरी समझ, उतना ही मौन प्रगाढ़ होने लगता है। फिर अगर तुम बोलते भी हो, जानकर बोलते हो, मजबूरी है; दूसरा समझ न सकेगा मौन को, इसलिए मुखर होते हो। लेकिन एक क्षण को भी यह बात विस्मरण नहीं होती कि जो पाया है वह कहा न जा सकेगा। क्योंकि कहनेवाला भी शेष नहीं रहा उसी पाने में; उसे भी, उसी पाने में उसे दे डाला है। उसे देकर ही तो पाया है।

> 'शून्य नहीं होता परिभाषित !
> और प्रेम शून्य है, महाशून्य है।'

दो तरह के शून्य हैं। एक तो गणित का शून्य है; वह किताबों में, कागजों पर, स्लेट-पट्टियों पर होता है। आदमी न हो तो गणित का शून्य मिट जाएगा, क्योंकि आदमी न हो तो गणित न होगा। गणित का शून्य भी बड़ा बहुमूल्य है। एक के ऊपर रख दो, दस बन जाते हैं। दस के ऊपर रख दो, सौ बन जाते हैं। उस शून्य से सारा गणित निकलता है। सारा गणित शून्य का ही फैलाव है। लेकिन

वह शून्य खो जाएगा; वह मनुष्य-निर्मित शून्य है। गणित का शून्य असली शून्य नहीं है; आदमी न होगा, खो जाएगा। लेकिन एक और शून्य भी है – असली शून्य – प्रेम का; आदमी हो या न हो, रहेगा। जब दो पक्षी भी प्रेम में पड़ते हैं, तो उसी शून्य में उतर जाते हैं। जब धरती-आकाश प्रेम में डूबते हैं तो उसी शून्य में उतर जाते हैं। जब दो पौधे लहलहाते हैं प्रेम की तरंग में, तो उसी शून्य में उतर जाते हैं।

प्रेम का शून्य जीवन का शून्य है। गणित का शून्य तो नकारात्मक भाव रखता है। गणित के शून्य का अर्थ होता है, जहां कुछ भी नहीं, खाली; यद्यपि उस खाली से सारे गणित का खेल चलता है। तुम शून्य को हटा लो गणित से, आंकड़े रह जाएंगे, लेकिन गणित खो जाएगा। सारा विस्तार उसी ना-कुछ का है। लेकिन प्रेम का शून्य तो विधायक शून्य है। जैसे गणित का सारा विस्तार गणित के शून्य का है, ऐसे ही जीवन का सारा विस्तार प्रेम के शून्य का है।

तुम पैदा हुए हो – प्रेम की किसी ऊर्जा से। सारे जगत का खेल चलता है – प्रेम की किसी ऊर्जा से। अब तो वैज्ञानिकों को भी शक होने लगा है कि शायद जिसे वे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं पृथ्वी का, वह पृथ्वी का प्रेम हो ! और जिसे वे ऋण और धन विद्युत का आकर्षण कहते हैं, वह शायद विद्युतीय प्रेम हो ! शायद जिसे वे तारों के बीच का संबंध और जोड़ कहते हैं, वह भी चुंबकीय प्रेम हो ! शायद अणु-परमाणु जिससे गुंथे हैं – टूटकर छितर नहीं जाते, वह भी प्रेम की ही गांठ हो, वह भी प्रेम का ही गठबंधन हो ! होना भी चाहिए, क्योंकि आदमी कुछ अलग-थलग तो नहीं। आया है इसी विराट से, जायेगा, इसी विराट में। जहां से आदमी आता है, वहीं से पौधे आते हैं, वहीं से पत्थर आते हैं। जरूर कोई चीज तो समान होनी ही चाहिए। स्रोत समान है तो कुछ चीज तो समान होनी ही चाहिए। तभी तो तुम पत्थर के पास बैठकर भी अजनबी अनुभव नहीं करते। वृक्ष के पास बैठकर भी अपनापन अनुभव करते हो। सागर भी बुलाता है। हिमालय से भी बात हो जाती है। आकाश को देखते हो तो भी संबंध बनता है, परिवार मालूम होता है।

अस्तित्व परिवार है। और अगर परिवार को तुम समझो, तो परिवार को जोड़नेवाले सेतु और धागे का नाम ही प्रेम है।

इसलिए जीसस का वचन अनूठा है, जब जीसस ने कहा : परमात्मा प्रेम है। जीसस ने यह कहा कि परमात्मा को छोड़ दो तो भी चलेगा, प्रेम को मत छोड़ देना। परमात्मा को भूल जाओ, कुछ हर्जा न होगा; प्रेम को मत भूल जाना। प्रेम है तो परमात्मा हो ही जाएगा। और अगर प्रेम नहीं है तो परमात्मा पत्थर की तरह मंदिरों में पड़ा रह जाएगा, मुर्दा, लाश होगी उसकी, उससे जीवन खो जाएगा।

भक्ति का सारा सूत्र प्रेम है। और प्रेम से सब निकला है – पदार्थ ही नहीं, परमात्मा भी। परमात्मा प्रेम की आत्यंतिक नियति है – अंतिम खिलावट ! आखिरी ऊंचाई ! संगीत की आखिरी छलांग ! परमात्मा प्रेम का ही सघन रूप है। प्रेम को समझा तो परमात्मा को समझा। प्रेम को न समझ पाए तो परमात्मा से चूक हो जाएगी।

इसलिए भक्ति का शास्त्र बड़ा अनूठा है। भक्ति का शास्त्र संसार के विरोध में नहीं है। भक्ति का शास्त्र कहता है, संसार में प्रेम को खोजना, क्योंकि उन्हीं चरणचिह्नों के सहारे तुम परमात्मा तक

पहुंच पाओगे।

हां, एक दृष्टि का रूपांतरण चाहिए। अपने बेटे को प्रेम करना, अपने बेटे की तरह नहीं। वहीं भूल हो जाती है। अपने बेटे को भी प्रेम करना – परमात्मा के एक रूप की तरह। वहीं भूल मिट जाती है। वहीं उलझन छूट जाती है। प्रेम जिसको भी करना, उसमें परमात्मा देखना। और प्रेम से शुरुआत होती है। प्रेम के अभाव में, परमात्मा कोरी लफ्फाजी है, शाब्दिक जाल है, तर्क का ऊहापोह है, वाद-विवाद है – सार कुछ भी नहीं।

इसलिए तुम पाओगे बहुतों को, पंडितों को, परमात्मा की चर्चा करते; लेकिन अगर उनकी आंख में तुम्हें प्रेम की किरण न मिले तो समझ लेना, सब धोखा है, सब पाखंड है। प्रेम की किरण हो आंख में तो चर्चा कोई भी चलती हो, परमात्मा की ही चर्चा है। चाहे कोई यह भी कहता हो कि परमात्मा नहीं है – जैसा बुद्ध ने कहा, 'कोई परमात्मा नहीं' – लेकिन बुद्ध धोखा थोड़े दे पाएंगे। किसको धोखा देने की सोच रहे हैं? किसको धोखा दे पाए? बुद्ध कहते रहे, 'परमात्मा नहीं'; लेकिन आंख कहती रही, 'परमात्मा है'। आंख की किरण कहती रही, 'परमात्मा है'।

एच. जी. वेल्स ने बड़ी महत्वपूर्ण बात लिखी है कि बुद्ध जैसा ईश्वर-शून्य और ईश्वर-जैसा व्यक्ति पृथ्वी पर हुआ नहीं। ईश्वर-शून्य! और ईश्वर-जैसा! गाडलेस एण्ड गाडलाइक! किसको धोखा देने का सोचा है बुद्ध ने? बुद्ध पड़ जाएं धोखे में, पड़ जाएं; बाकी, कोई जाननेवाला क्या धोखे में पड़ेगा! बुद्ध की आंख कहती है जो बुद्ध के वचन इनकार करते हों। और बुद्ध शायद इसीलिए इनकार कर रहे हैं कि मुंह से कहने से क्या होगा, अगर आंख में तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता! और आंख में दिखायी पड़ता हो तो मुंह कुछ भी कहता हो, तुम देख ही लोगे।

वह शायद कसौटी थी। वह शायद, जो उनके पास आते थे, उनकी परीक्षा थी। जो परीक्षा में पार उतर गये, उन्होंने बुद्ध के द्वार से – उस गुरुद्वारे से – सब कुछ पा लिया। स्वभावतः बुद्ध कहते रहे कि भगवान नहीं है, और जिन्होंने बुद्ध को जाना, उन्होंने कहा, 'तुम भगवान हो!' धोखा किसे दे सकते हो?

शून्य नहीं होता परिभाषित
रहता मात्र नयन में
मन्वंतर संवत्सर, वत्सर
कब बंधते लघु क्षण में?
रहते सभी अनाम, न कोई
कभी पुकारा जाता
रह जाती अभिव्यक्ति अधूरी
जीवन-शिशु तुतलाता!

हमारे श्रेष्ठतम व्याख्याकार भी तुतला रहे हैं। हमारे श्रेष्ठतम दार्शनिक और मनीषि भी तुतला रहे हैं। मगर उनकी करुणा है कि उसे कहने की कोशिश करते हैं, जो नहीं कहा जा सकता। और तुम्हारी भूल होगी कि उन्होंने जो कहा है, तुम उसे वही समझ लो कि वही सत्य है। उनकी करुणा

है, इसलिए कहते हैं; तुम्हारा अज्ञान होगा अगर तुम उसे पकड़ लो।

जिन्होंने वेद की ऋचाएं गायीं, उनकी महाकरुणा है; वे न गाते तो मनुष्यता वंचित रह जाती; वे न गाते तो मनुष्य दरिद्र होता, वे न गाते तो मनुष्य की चेतना इतनी समृद्ध न होती जितनी आज है। लेकिन तुम्हारी भूल होगी कि तुम उन ऋचाओं को पकड़कर बैठ जाओ और तुम समझो कि ऋचाओं में सत्य है या कि ऋचाएं सत्य हैं।

इसलिए तो नारद ने कहा : भक्त सर्वथा वेद का त्याग कर देता है। वेद से मतलब सिर्फ चार वेदों से नहीं है। वेद से मतलब उन सभी शास्त्रों का है जिनमें महाकरुणावान पुरुषों ने अपने अनुभव को परिभाषित करने की असफल चेष्टा की है। असफल इसलिए भी हो जाती है चेष्टा कि जब तुम परमात्मा के पास पहुंचते हो, जितने पास पहुंचते हो – तुमने जो मांगा था उससे अनंतगुना मिलना शुरू होता है; तुम्हारी झोली छोटी पड़ जाती है।

एक रूप मांगा था, तुमने
यह सारा संसार दे दिया!
छोटी-सी पुतली के पट पर
किस-किस का प्रतिबिंब उतारूं
भीड़ खड़ी है सन्मुख मेरे
किसे छोड़ दूं, किसे पुकारूं
एक कली मांगी थी, तुमने
अपना हार उतार दे दिया!
एक राग मांगा था, तुमने
अपना उठा सितार दे दिया!
एक रंग मांगा था, तुमने
सुरधनु का उपहार दे दिया!

झोली छोटी पड़ जाती है। मांगनेवाले का हृदय छोटा पड़ जाता है। जैसे बूंद में सागर उतर आए, तो जो दशा बूंद की हो जाए, वही भक्त की हो जाती है।

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्!'

प्रेम का स्वरूप व्याख्या के, वर्चन के बाहर है।

'प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है।'

अनिर्वचनीयता बहुरंगी है, बहुमुखी है, बहुआयामी है। परमात्मा का जब उदघोष होता है तो तुम सुनते हो, परमात्मा बोलता नहीं। तुम भर जाते हो संगीत से, और उसकी वीणा मौन रही आती है। रहस्यपूर्ण है अनुभव।

कभी-कभी तुम्हें अनुभव होगा किसी 'महानुभाव' की छाया में : सदगुरु चुप होगा और अचानक तुम अनुभव करोगे कि तुम भरने लगे; उसने कुछ दिया नहीं प्रगट, अप्रगट में कुछ उंडल आया; उसने कुछ तुम्हारे हाथों में दिया नहीं – सीधा-साफ, रूपरेखा में आबद्ध – और तुम्हारे हाथ अचानक भर गये।

परमात्मा प्रसाद देता नहीं — तुम्हें मिलता है। दे, तो प्रगट करना आसान हो जाए। बिना दिये मिलता है। बोले, सुना हो, तो दूसरे को भी सुनाना आसान हो जाए।

शून्य से आती है — प्रतीति, अहसास, लहर! मस्ती की तरह तुम्हें घेर लेता है! शब्दों की तरह नहीं, शास्त्रों की तरह नहीं — शराब की तरह तुम्हें भर देता है। तुम तुम नहीं रह जाते, सब कुछ बदल जाता है; लेकिन कोई हाथ देते हुए मालूम नहीं पड़ते; कोई वाणी बोलती हुई मालूम नहीं पड़ती। सुना जाता है; इलहाम होता है; उदघोषणा होती है। स्रोत का पता नहीं चलता।

तुम चकित, अवाक, रहस्यपूरित रह जाते हो। उस घड़ी में, हृदय भी रुक जाता है; मन की तो बात ही न करो। विचार ठिठक जाते हैं। सोच-विचार की सारी क्षमता खो जाती है। तुम पहली दफा निर्बोध शिशु की भांति हो जाते हो! कोरे कागज!

गोशे-मुश्ताक की क्या बात है अल्लाह अल्लाह
सुन रहा हूं मैं वो नग्मा जो अभी साज में हैं।

उत्कंठित कानों की क्या बात कहें! वह गीत जो अभी गाया नहीं गया, जो फूल अभी फूला नहीं, जो बीज अभी टूटा नहीं...।

'सुन रहा हूं मैं वो नग्मा जो अभी साज में है!' अभी साज के बाहर नहीं आया, अभी रूप नहीं लिया — अरूप, मौन! देख रहा हूं उसे जिसने अभी आकार नहीं लिया! मिलन हो रहा है उससे जो अभी जन्मा नहीं। फिर कैसे अभिव्यक्ति होगी, फिर कैसे अभिव्यंजना होगी?

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्!'

'गूंगे के स्वाद की तरह!'

'मूकास्वादमवत्।'

नारद के इस सूत्र को फिर भक्त हजारों तरह से गाते रहे हैं। कबीर कहते हैं: गूंगे केरी सरकरा! 'गूंगे का गुड़' तो लोकोक्ति बन गया। मगर जन्म हुआ है इसी सूत्र से।

'मूकास्वादमवत्! गूंगे के स्वाद की तरह!'

गूंगे के स्वाद को समझें।

गूंगे को कोई अड़चन स्वाद लेने में नहीं है — स्वाद की पूछना मत। स्वाद लेने में गूंगा उतना ही समर्थ है, जितना कोई और; क्योंकि स्वाद की इंद्रिय गूंगे के पास उतनी ही है जितनी तुम्हारे पास! इंद्रिय एक ही है स्वाद की और वाणी की — जिह्वा। इसलिए यह सूत्र पैदा हुआ।

जीभ ही स्वाद लेती है, जीभ ही बोलती है। अब सवाल यह है: जब जीभ ही स्वाद लेती है तो बोलने में दिक्कत क्या? जीभ ने ही स्वाद लिया है, बोल दे! किसी और ने लिया होता और हम जीभ से पूछते तो अड़चन हो सकती थी। अब जब तुमने ही स्वाद लिया है तो बोल दो। इसलिए यह सूत्र पैदा हुआ, कि माना, जीभ स्वाद लेती है; लेकिन जीभ के पास दो क्षमताएं अलग-अलग हैं। इसलिए गूंगा बोल तो नहीं सकता, स्वाद तो ले सकता है। इसलिए बोलने की क्षमता और स्वाद की क्षमता को एक मत मानना; वे अलग-अलग हैं। गूंगा बोल नहीं सकता, स्वाद ले सकता है। तुम बोल भी सकते हो, स्वाद भी ले सकते हो; एक ही जीभ से दोनों काम होते हैं, लेकिन दोनों का कहीं मिलन

नहीं होता। नहीं तो गूंगा भी स्वाद न ले सकता। अगर बोलने के कारण गूंगे की जीभ खराब हो गयी है, बोल नहीं सकता, तो स्वाद कैसे होगा? पर स्वाद तो बड़े मजे से लेता है। संभावना इस बात की है कि गूंगा तुमसे ज्यादा बेहतर स्वाद लेता हो, क्योंकि बोलने की भी अड़चन वहां नहीं है; वहां उसकी जीभ पूरी की पूरी मुक्त है।

'गूंगे के स्वाद की भांति।'

भक्त अनुभव तो करता है, बोल नहीं पाता। तार्किक पूछते हैं, जब तुम्हें ही अनुभव हुआ है तो बोल क्यों नहीं देते हो?

पश्चिम के एक वर्तमान विचारक हैं: आर्थर कोएस्लर। सदियों से जो तर्क दोहराया गया है, वही वे आज भी दोहराते हैं। वे यही कहते हैं बार-बार कि जो अनुभव किया जा सकता है, वह बोला क्यों नहीं जा सकता? जब तुमने जान लिया तो जना दो! आखिर अड़चन क्या है?

उनका कहने का अर्थ यह है, समस्त तार्किकों के कहने का अर्थ यह है कि संतों को कुछ हुआ नहीं, व्यर्थ ही बकवास है; चूंकि हुआ नहीं है, इसलिए कह नहीं सकते। मगर कहते यह हैं कि हुआ बहुत बड़ा है और कह नहीं पा रहे हैं। हुआ ही नहीं है कुछ।

तार्किक यह कहता है: जो हुआ है, उसे कहोगे क्यों न? सिर में दर्द होता है, पता चलता है तो तुम कह देते हो, सिरदर्द हुआ। पैर में कांटा चुभता है, पता चलता है तो तुम कह देते हो कि कांटे की पीड़ा है। खुशी होती है, हृदय उत्फुल्ल होता है तो तुम कह देते हो, प्रसन्न हैं, खुश हैं, बहुत आनंदित हैं। तुम सभी बातें कह देते हो जो तुम जान पाते हो; यह परमात्मा की बात के संबंध में गूंगे क्यों हो जाते हो? कहीं ऐसा तो नहीं कि धोखा दे रहे हो? जब सभी और ज्ञान अभिव्यक्त हो जाते हैं, तो यही ज्ञान अनभिव्यक्त क्यों रह जाता है? यह ज्ञान ही न होगा; या तो तुम धोखा दे रहे हो या खुद धोखे में पड़े हो।

तार्किक का यह प्रश्न है।

नारद का उत्तर है: मूकास्वादमवत्। वे यह कहते हैं, क्या तुम यह कहोगे कि गूंगा बोल नहीं सकता, इसलिए मिठाई जब उसने खायी तो मिठास नहीं जानी? कोएस्लर को भी मुश्किल में डाल देंगे। यह तो कोएस्लर भी न कह सकेगा कि गूंगा अगर मिठाई खाये तो मिठास नहीं जानता। यह तो मानना पड़ेगा कि मिठास तो जानता है। तुम गूंगे के चेहरे को देखकर कह सकते हो जब वह मिठाई खा रहा है। फिर मिर्च खिलाकर देख लो! बिना बोले गालियां देगा। आंख में पढ़ी जा सकेंगी। बड़बड़ायेगा, बोल न सकेगा। मगर सब तरह से कह देगा कि दोस्ती खत्म!

बोल तो नहीं सकता गूंगा, यह साफ है, लेकिन समझ लेता है। मिर्च का धोखा न दे पाओगे। मिठाई दोगे तो मिठास होगी; मिर्च दोगे तो तिक्त... उत्तेजना होगी, पीड़ा होगी! पर गूंगा बोल नहीं सकता। इशारे करेगा। प्यास लगती है तो गूंगा अंजलि बढ़ा देगा दोनों हाथों की। प्यास का तो अनुभव हो रहा है, लेकिन प्यास को वह कह नहीं पाता है। हाथ बढ़ाता है, अंजलि भरता है। फिर जब तुम पानी दे दोगे तो तुम तृप्ति भी लिखी हुई उसके चेहरे पर देखोगे – धन्यवाद भी!

तो जब गूंगे के जीवन में ऐसा हो जाता है, तो जिस बात की सुविधा तुम गूंगे को देते हो,

कम-से-कम उतनी सुविधा तो संतों को दे दो – इतना ही नारद कहते हैं। इतना तो तुम गूंगे को भी क्षमा कर देते हो, भक्तों को इतनी तो क्षमा कर दो। इतना तो संदेह मत करो कि इनको हुआ ही न होगा, इसलिए कह नहीं पाते हैं।

फिर एकाध भक्त की बात होती कि धोखा दे रहा था तो भी ठीक था, अनंत काल में अनंत भक्त हुए हैं, सभी धोखा दे रहे थे ? और किसलिए धोखा दे रहे थे ? तुम्हारी गालियां खाने को ? सूली चढ़ायी जाए, जहर पिलाया जाए, पत्थर मारे जाएं – इसलिए ? तुमसे मिला क्या है ? धोखा आदमी देता है वहां जहां कुछ मिलता हो। जीसस को मिला क्या ? सूली मिली। सूली पाने को तुम्हें धोखा दे रहे थे ? सुकरात को मिला क्या ? जहर मिला। जहर पीने के लिए तुम्हें धोखा दे रहे थे ? मंसूर को मिला क्या ? फांसी मिली। फांसी पाने के लिए तुम्हें धोखा दे रहे थे ? आत्महत्या ही कर ली होती, तुम्हें इतना कष्ट देने की क्या जरूरत थी ? तुमने दिया क्या है भक्तों को जो तुम्हें धोखा दें ? धोखा तो बाजार में चलता है जहां कुछ मिलने की आशा हो

परमात्मा... उस परम का गुह्य अनुभव ! पीड़ा भला लाता हो, संसार की नजरों में यह खयाल भला लाता हो कि तुम पागल हुए, उन्मत्त हुए, तुमने होश गंवाया, समझ खोयी, लोक-लाज-खोयी – और तो क्या मिलता है ? निंदा मिलती हो, उपेक्षा मिलती हो, लोगों की हंसी मिलती हो, मसखरे मिलते हों – और क्या मिलता है ? धोखा किसलिए ? फिर एकाध कोई धोखा देता... । निरपवाद रूप से असंख्य काल में, असंख्य लोगों ने धोखा दिया है ? फिर से सोचो। फिर ऐसा करो... कोएस्लर को उसके ही अनुभव से समझाना उचित है।

किसी से प्रेम हो जाता है, तब तुम ठीक-ठीक बता पाओगे किसलिए हो गया ? क्या तुम ठीक-ठीक बता पाओगे, प्रेम क्या है ? छोड़ो परमात्मा को, प्रेम तो सभी को होता है। हर मां को प्रेम होता है अपने बच्चे से; कौन मां अब तक व्याख्या कर सकी कि प्रेम क्या है ! पूछो प्रेम की बात, गूंगी हो जाती है। इतने प्रेमी हुए – मजनूं हो कि फरिहाद हो, हीर-रांझा हो – पूछो प्रेमियों से, 'क्या है प्रेम ?' ठिठककर खड़े रह जाते हैं। किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। कोई उत्तर नहीं आता। पर शायद प्रेमी भी पागल होंगे।

फिर अपने जीवन में कुछ ऐसे अनुभव खोजो जो तुम्हें होते हैं और तुम्हीं नहीं कह पाते। रात पूर्णिमा का चांद निकला है; गद गद अहोभाव से तुमने कहा है, 'सुंदर है !' और पड़ोसी कहता है, 'कहां, क्या है सौंदर्य, बताओ ? इसमें क्या सुंदर है ?' अचानक तुम हारे, असफल हो जाते हो। अचानक लगता है, सीमा आ गयी। तर्क से समझा न सकोगे। कैसे सिद्ध करोगे कि चांद सुंदर है ? है तो है; और अगर किसी को नहीं है तो नहीं है। अचानक विवश हो गये। अचानक अभिव्यक्ति सार्थक न रही। अब तुम लाख समझाने का उपाय करो, तुम जानते हो कि समझा न सकोगे।

सौंदर्य एक प्रतीति है – गूंगे का गुड़ है। हो अनुभव तो ठीक, दूसरा राजी हो जाए तो ठीक; बिना झंझट किये; अगर उसे भी स्वाद आ जाए तो ठीक। अगर वह भी सिर हिला दे गूंगे की तरह कि ठीक ! लेकिन अगर खड़ा हो जाए तर्क करने कि क्या सौंदर्य, तो तुम सुंदरतम स्त्री में भी सिद्ध न कर सकोगे कि सुंदर है। क्या सिद्ध करोगे ? नाक की लम्बाई से सौन्दर्य का कोई लेना-देना है ? कैसे

सिद्ध करोगे, आंखें मछलियों की तरह हैं ? इससे क्या सिद्ध होता है ? होंगी मछलियों की तरह, सौन्दर्य का क्या लेना-देना है ? किसने कहा पहले कि मछलियां सुंदर हैं ? कि होंगे बाल काली घटाओं की तरह; पर काली घटाएं सुंदर हैं, यह तुमसे किसने कहा ? जिनको कड़वे अनुभव हुए हैं, वे कहेंगे : काली नागिन की भांति ! कहां की काली घटाएं ? सपनों में खोये हो। जमीन पर आओ ! अनुभव की बात करो ! ये सब कविताएं हैं।

सिद्ध न कर सकोगे। कोई उपाय नहीं है सिद्ध करने का।

मजनूं को उसके गांव के राजा ने बुला भेजा था और कहा, 'तू पागलपन बंद कर। यह लैला, जिसके पीछे तू दीवाना है; तेरी दीवानगी सुनकर हमको भी खयाल हुआ था कि देख लें; देखी हमने, काली-कलूटी साधारण-सी स्त्री। तुझ पर दया आती है – दौड़ता रहता है गांव की सड़कों पर, लैला-लैला पुकारता रहता है।'

दया सभी को आने लगी होगी। सम्राट ने अपने महल से दस-बारह सुंदर स्त्रियां लाकर खड़ी कर दीं कि इनमें से तू चुन ले कोई भी। लेकिन मजनूं ने उस तरफ देखा और कहने लगा, 'लेकिन लैला कहां है ? इनमें कोई लैला नहीं है।' सम्राट ने कहा, 'मैंने लैला देखी है। तू दीवाना है, पागल है।' मजनूं हंसने लगा। उसने कहा कि 'मजनूं की आंख के बिना तुम लैला देख कैसे सकोगे ? मजनूं की आंख चाहिए लैला देखने को।'

भक्त की आंख चाहिए भगवान को देखने को। सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। भक्त ही नहीं हार जाते, मजनूं भी हार जाता है। वह क्या कह रहा है ? वह यह कह रहा है कि मेरी आंख से देखोगे तो ही ...। वह सौंदर्य कुछ ऐसा है कि उसके लिए खास आंख चाहिए – एक दृष्टि चाहिए !

तुम अपने जीवन में ऐसे अनुभव खोज सकोगे निश्चित ही। कई बार तुम्हें प्रतीति हुई होगी कि दूसरा राजी नहीं हुआ और तुम हार गये, कुछ उपाय न रहा कहने का, अचानक तुमने बात वापस ले ली, विवाद में कोई सार न था। क्या थी अड़चन ? ...गूंगे का गुड़ ! तुम्हारा अनुभव था, दूसरे का अनुभव नहीं था; तालमेल न हो सका।

कोएस्लर को भी ऐसे अनुभव निश्चित हुए होंगे, क्योंकि इतना दीन-हीन मनुष्य खोजना मुश्किल है जिसे ऐसा एक भी अनुभव न हुआ हो, जहां शब्द सार्थक नहीं होते। कोएस्लर तो बड़ा विचारशील व्यक्ति है, बहुत अनुभव हुए होंगे – प्रेम के, सौंदर्य के, सत्य के, शुभ के, शिवम के – जहां भाषा एकदम टूट जाती है। और अगर तुम दूसरों को इतनी सुविधा देते हो तो नारद को भी इतनी सुविधा दो।

...'गूंगे के स्वाद की तरह है।'

मश्वरे होते हैं शेखो-बिरहमन में 'जिगर',
रिन्द सुन लेते हैं बैठे हुए मैखाने में।

वे जो पंडितों में चर्चाएं चल रही हैं, उनके लिए शराबियों को सुनने आने की जरूरत नहीं है। रिन्द सुन लेते हैं बैठे हुए मैखाने में ! वे जो परमात्मा के संबंध में मश्वरे हो रहे हैं, विवाद हो रहे हैं, इस सबको सुनने उनको मंदिरों और मस्जिदों में आने की जरूरत नहीं है – अपनी मस्ती में डूबे हुए वहीं सुन लेते हैं। खुद परमात्मा को ही सुन लेते हैं, पंडितों और मौलवियों के मश्वरों की

किसको फिक्र।

भक्त यानी रिंद। भक्त यानी पियक्कड़। भक्त यानी जिसे शब्दों से लेना-देना नहीं है, जो मधुशाला में बैठा है। भक्त यानी अनुभव की प्याली को जो उतार गया, अनुभव को पी गया।

लागी कैसी लगन
मीरा हो के मगन
गली-गली हरि-गीत गाने लगी
जो थी महलों पली
जोगन बनी, जोगन चली
आज रानी दीवानी कहाने लगी,

...पागल हो गयी दूसरों की नजरों में। कुछ पी बैठी ! कोई नशा छा गया ! कोई मस्ती इतनी बड़ी कि लोक-लाज की चिंता न रही। कुछ ऐसा बड़ा अनुभव कि सारा संसार स्वप्नवत मालूम हुआ।

'प्रकाशते क्वापि पात्रे।'

'किसी विरले पात्र में ऐसा प्रेम प्रगट भी होता है।'

... अनिर्वचनीय है। कहा नहीं जा सकता। गूंगे के स्वाद की भांति है। फिर भी नारद कहते हैं, किसी विरले पात्र में, प्रेमीभक्त में ऐसा प्रेम प्रगट भी होता है। अभिव्यक्त तो नहीं होता, प्रगट होता है। उसके रोएं-रोएं में पुलक होती है। उसके उठने-बैठने में प्रार्थना होती है। उसकी आंखों की पलकों के झपने में, उसके होने के ढंग में, उसके बोलने में या न बोलने में, उसके चुप रहने में – परमात्मा की भनक आती है।

'प्रकाशते क्वापि पात्रे।'

लेकिन कभी-कभी कोई ऐसा महापात्र होता है सौभाग्यशाली कि उसमें परमात्मा प्रकाशित होता है। इस भेद को समझ लेना – अभिव्यक्त नहीं, प्रकाशित। प्रगट होता है। कोई मीरा, कोई चैतन्य बह उठते हैं; उनके पात्र के ऊपर से बहने लगता परमात्मा।

वही तो हमने नाच की तरह देखा। वही हमने गीत की तरह सुना। लेकिन उसके लिए भी तुम्हारे पास हृदय का खुला हुआ द्वार चाहिए, अन्यथा मीरा पागल मालूम होगी। जहां परमात्मा पैदा होता है, अगर तुम्हारे पास देखने की सम्यक दृष्टि न हो तो पागलपन मालूम होगा।

स्वभावतः पागलपन का इतना ही अर्थ होता है कि तुम जिन्हें जीवन के नियम मानते हो, उसके विपरीत कुछ हो रहा है; तुम जिसे मर्यादा मानते हो उससे अन्यथा कुछ हो रहा है; तुमने जिसे ढांचा बना रखा था अपनी व्यवस्था का, उसके पार कोई चला गया, सीमा के बाहर जा रहा है। तुम पागल तभी कहते हो किसी को जब तुम्हारी जीवन-व्यवस्था उसकी मौजूदगी से डगमगाने लगती है – या तो वह सही है या तुम सही हो। स्वभावतः तुम्हारी भीड़ है। इसलिए तुम अपने को सही मानने के लिए सुविधा जुटा लेते हो। वह अकेला है। मीरा अकेली है। चैतन्य अकेला है। तुम उसे पागल कहोगे तो भी मीरा के पास कोई उपाय नहीं है सिद्ध करने का कि वह पागल नहीं है। लेकिन ध्यान रखना, उसे पागल कहकर तुम चूके जा रहे हो। उसका कुछ बिगड़ता नहीं, तुम चूके जा रहे हो। तुम एक अवसर

खोये दे रहे हो।

परमात्मा प्रकाशित हुआ है! आंखों से अपने पक्षपात हटाओ! आंखों से अपनी क्षुद्र विचारधारा को अलग करो! धुंधलके को हटाओ, व्यर्थ का; क्योंकि उससे कुछ मिला तो नहीं, उसे पकड़े क्यों बैठे हो? तुम्हारा तर्कजाल, तुम्हारा शब्दजाल, तुम्हारा विचारजाल – पाया क्या है तुमने उससे? हाथ तो कुछ भी नहीं आया। एक मछली भी तो फंसी नहीं। कोरे के कोरे रह गये हो। प्यासे के प्यासे रह गये हो। छोड़ो अब उसे!

आंख को पक्षपात-मुक्त करके देखो, तो तुम्हें मीरा में या चैतन्य में परमात्मा प्रकाशित दिखायी मालूम पड़ेगा।

अभिव्यक्ति तो संभव नहीं है, लेकिन फिर भी उसकी अभिव्यंजना होती है।

'किसी विरले पात्र में, प्रेमी-भक्त में, प्रेम प्रगट भी होता है।'

'यह प्रेम गुण-रहित है, कामना-रहित है, प्रतिक्षण बढ़ता है, विच्छेद-रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और अनुभवस्वरूप है।'

प्रेम की तैयारी हो, प्रेम के लिए तुम निरंतर धीरे-धीरे अपने को तैयार करते रहो, तो एक-न-एक दिन परमात्मा से मिलन हो जाएगा, क्योंकि प्रेम ही उसकी सीढ़ी है। लेकिन तुम जिस ढंग का जीवन जीते हो वह प्रेम से विपरीत है। उसमें तुम धन तो इकट्ठा करते हो, प्रेम नहीं। और अगर विकल्प हो कि धन चुनूं कि प्रेम, तो तुम प्रेम के मुकाबले धन चुन लेते हो; तुम प्रेम बेच देते हो, धन चुन लेते हो। तुम कहते हो, 'प्रेम फिर देख लेंगे, धन तो अभी ले लें।'

तुम्हारे सामने जब भी कोई विकल्प होता है, तुम प्रेम को तो हमेशा बलिदान करते रहते हो; फिर तुम पूछते हो, 'परमात्मा कहां है?' उसकी सीढ़ी को तो तुम काट-काटकर बाजार में बेचते रहते हो; फिर एक दिन सीढ़ी टूट जाती है, तुम्हारे और आकाश के बीच कोई संबंध नहीं रह जाता, तब तुम चिल्लाते हो कि परमात्मा कहां है! तब तुम्हें डर लगता है। तब उस भय में तुम यह भी कहते हो कि कोई परमात्मा नहीं है, ताकि यह भरोसा आ जाए कि न कोई परमात्मा है, न किसी सीढ़ी की जरूरत है, न मुझे कहीं जाना है, मैं जैसा हूं ठीक हूं। ऐसी सांत्वना खोजने के लिए तुम परमात्मा को इनकार भी करते हो।

फ्रेड्रिक नीत्शे ने घोषणा की है कि परमात्मा मर गया है। किसी ने पूछा, 'यह घोषणा क्यों?' तो नीत्शे ने कहा, 'अगर वह जीवित है तो चैन से बैठना संभव न होगा।'

अगर परमात्मा है तो फिर तुम चैन से कैसे बैठोगे? उसे बिना पाए चैन कहां! तो एक ही उपाय है, कह दो कि है ही नहीं। नास्तिक यही उपाय करता है; वह कहता है, परमात्मा है ही नहीं। वह यह कह रहा है कि कहीं जाने की अब हिम्मत नहीं है, पैर थक गये हैं, यात्रा करने का और अब उपाय नहीं है; अगर यह मान लूं कि मंजिल है तो बेचैनी होगी; यही उचित है, समझा लेता हूं अपने को कि मंजिल है ही नहीं।

नास्तिक का एक उपाय है परमात्मा से बचने का। और जिसको तुम आस्तिक कहते हो, उसका भी एक उपाय है परमात्मा से बचने का – वह कहता है, 'तुम हो, खोजने का सवाल कहां? मंदिर में

पूजा कर आते हैं, मस्जिद में तुम्हारी प्रार्थना कर लेते हैं, अब और क्या चाहिए? इतने से राजी हो जाओ। हर रविवार को चर्च में हो आते हैं। इतना उपकार कुछ तुम पर कम है? राजी हो जाओ। फंदा छोड़ो! हमारा गला छोड़ो!'

तो आस्तिक सस्ते उपाय खोजता है – खिलौने; धर्म के नाम पर खिलौने! वह जैसे परमात्मा कोई बच्चा हो, असली कार न लाए, खिलौने की कार ले आए; उसे कहा, 'देख, यह कार है, रेलगाड़ी है, हवाई जहाज है।' परमात्मा जैसे कोई बच्चा हो, तुम अपने मंदिरों-मस्जिदों से उसे भुलाना चाहते हो। तुम कहते हो, 'देखो, तुम्हारे लिए मंदिर बना दिया, अब और क्या चाहते हो? तुम्हारी सोने की मूर्ति बना दी, अब और ज्यादा मांग न करो। अब हमें चैन से जीने दो हम जहां हैं। अब और न पुकारो। अब और न आह्वान दो। अब और चुनौती न भेजो। हम थक गये हैं।'

मेरे देखे, आस्तिक और नास्तिक में बहुत फर्क नहीं दिखायी पड़ता। आस्तिक की एक तरकीब है उसी परमात्मा से बचने की, नास्तिक की भी उसी परमात्मा से बचने की दूसरी तरकीब है। दोनों बच रहे हैं।

धार्मिक आदमी वह है जो कहता है, 'तब तक चैन न लेंगे, जब तक तुम्हें पा न लें। अगर तुम्हें बनाने को, तुम्हारी सीढ़ी बनाने को सारा जीवन निछावर करना होगा तो करेंगे। प्रेम के ऊपर सब कुछ गंवा देंगे, लेकिन प्रेम को न गंवाएंगे।

'यह प्रेम गुण-रहित है, कामना-रहित है, प्रतिक्षण बढ़ता है।'

यह प्रेम की परिभाषा है, लक्षण है। प्रेम गुण-रहित ही होता है। प्रेम न तो राजसिक होता है, न सात्त्विक होता है, न तामसिक होता है। प्रेम गुणातीत है। प्रेम संसार के पार है। प्रेम ऐसे ही संसार के पार है जैसे कमल सागर के पार, सरोवर के पार होता है, दूर खड़ा! उठता है सरोवर से, उसी कीचड़ से, फिर भी पार होता है – सरोवर-अतीत। प्रेम ऐसे ही संसार के तीनों गुणों से अतीत है।

...कामना-रहित है। प्रेम की कोई और कामना नहीं है। प्रेम यह नहीं कहता कि मुझे कुछ दो। प्रेम कहता है, बस प्रेम काफी है; इसके पार और कोई मांग नहीं है। प्रेम बस प्रेम से ही तृप्त है। अगर प्रेम ने कुछ और मांगा तो वह प्रेम नहीं, कुछ और होगा – कामना होगी, वासना होगी, लोभ-मोह होगा। प्रेम तो बस प्रेम से तृप्त है। प्रेम के पार कोई गंतव्य नहीं है।

...प्रतिक्षण बढ़ता है। जो प्रेम घटने लगे वह काम रहा होगा। काम प्रतिक्षण घटता है। काम का स्वरूप है: जब तक तुम्हें अपना काम-पात्र न मिले, बढ़ता हुआ मालूम होता है। तुम एक स्त्री को चाहते हो, वह न मिले तो कामवासना बढ़ती जाती है, उबलने लगती है, सौ डिग्री पर ज्वर चढ़ जाता है, भाप बनने लगते हो, सारा जीवन दांव पर लगा मालूम पड़ता है; मिल जाए, उसी दिन से घटना शुरू हो जाती है।

काम का लक्षण यह है: जब तक न मिले तब तक बढ़ता है; मिल जाए, घटता है। प्रेम का लक्षण यह है: जब तक न मिले तब तक तुम्हें पता ही नहीं कि बढ़ना क्या है; जब मिलता है तब बढ़ता है। प्रेमी पात्र जैसे ही मिलता है वैसे ही बढ़ता ही जाता है। प्रेम सदा दूज का चांद है, पूर्णिमा का चांद कभी होता ही नहीं; बढ़ता ही रहता है; ऐसी कोई घड़ी नहीं आती जब घटे। इसका अर्थ यह

हुआ कि प्रेम सतत वर्द्धमान है, सतत विकासमान है, सतत गतिमान है, कहीं ठहरता नहीं, प्रवाहरूप है।

...'प्रतिक्षण बढ़ता है, विच्छेद-रहित है।' डाइवोर्स, विच्छेद कभी होता ही नहीं। मिलन हुआ — सदा को हुआ। मिलन हुआ — शाश्वत हुआ। जब तक मिलन नहीं हुआ तब तक विच्छेद है। मिलन होते से फिर कोई विच्छेद नहीं है।

...'सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है।' प्रेम से ज्यादा सूक्ष्म और कुछ भी नहीं।

वैज्ञानिक कहते हैं: परमाणु परम सूक्ष्म है।

एक बड़ी अनूठी घटना इस सदी में घटी, इतिहास में आगे कभी उसका ठीक-ठीक मूल्यांकन होगा। एक जर्मन विचारक था — विल्हेम रेक, वैज्ञानिक चिंतक, अनूठा चिंतक। जब अणु-ऊर्जा की खोज चल रही थी, तभी वह प्रेम-ऊर्जा की खोज में लगा था। उस ऊर्जा को उसने नाम दे रखा था — आर्गन, प्रेम-ऊर्जा। उसका कहना था कि अणु-ऊर्जा की खोज से भी ज्यादा महत्वपूर्ण प्रेम की ऊर्जा की खोज है; क्योंकि अणु तो पदार्थ का टुकड़ा है, प्रेम हमारी आत्मा का परम अंश है। स्वभावतः उसने खतरा मोल लिया। जगह-जगह से उसे हटाया गया, जर्मनी से भगाया गया। जिस मुल्क में गया वहीं से हटाया गया। क्योंकि प्रेम के खोजी कहीं भी स्वीकृत नहीं हैं। सारा समाज घृणापर जी रहा है, हिंसा पर जी रहा है। लोगों ने समझा, पागल है। अंततः उसे पागल करार देकर अमरीका में उसे पागलखाने में बंद भी रखा। वह पागलखाने में ही मरा। यद्यपि अल्बर्ट आइंस्टीन ने उससे मुलाकात की थी, और जब आइंस्टीन को उसने अपना एक छोटा-सा आविष्कार बताया तो आइंस्टीन चकित हो गया था। वह आविष्कार था, वह कहता था कि इस तरह के यंत्र बनाये जा सकते हैं जिनमें प्रेम-ऊर्जा संग्रहीत हो सके। और उसका कहना था कि विश्व में अणु की ऊर्जा से इतना विध्वंस होने के करीब है कि अगर हमने इसके समतुल प्रेम की ऊर्जा न बनाई तो पृथ्वी नष्ट हो जाएगी।

तो उसने इस तरह के यंत्र बनाये थे। यंत्र कुछ विशेष न थे, कुछ विशिष्ट धातुओं से बनायी हुई पेटियां थीं। उन पेटियों के भीतर मनुष्य को अंधेरे में बिठा दिया जाता है, सब तरफ से बंद। कोई पंद्रह-बीस मिनट शांत बैठने के बाद अचानक ऊर्जा का प्रवाह शुरू होता है, रोएं-रोएं में एक पुलक छा जाती है, एक लालिमा आ जाती है; बैठा हुआ साधक भीतर अनुभव करता है, कुछ घट रहा है; सारे शरीर में लहरें होने लगती हैं, जिसको योगियों ने कुंडलिनी कहा है, जिसको तांत्रिकों ने परम संभोग कहा है, वह घड़ी आ जाती है।

जो उसने यंत्र बनाया है वह बड़ा सीधा-सरल है। उसमें ऐसी धातुओं का उपयोग किया है जिनसे ऊर्जा भीतर तो आ सकती है, बाहर नहीं जा सकती। ऊर्जा-संवर्धक धातुओं का उपयोग किया है, जिनसे ऊर्जा भीतर की तरफ तो आ जाती है, लेकिन बाहर की तरफ नहीं जा सकती। तो वह पेटी चारों तरफ से ऊर्जा को भीतर खींचती है और भीतर बैठे व्यक्ति के ऊपर बरसाने लगती है।

वस्तुतः तीस-चालीस मिनट तक अंधेरे में बैठना ध्यान का एक प्रयोग है। और ध्यान की अवस्था में पेटी की भी कोई जरूरत नहीं, संसार की जीवन-ऊर्जा तुम पर बरसने लगती है। यह तो भक्तों का बहुत प्राचीन अनुभव है। कहीं कोई जरूरत नहीं है। कहीं भी तुम बैठ जाओ शांत होकर। प्रेम के लिए द्वार खुला हो, प्रतीक्षा हो — तुम अचानक पाओगे थोड़ी देर के बाद : जैसे-जैसे तुम्हारा मन शांत

होने लगता है, वैसे ही वैसे तरंगें उठने लगती हैं अलौकिक की, तुम पुलकित होने लगते हो – किसी लहर पर सवार हो गये, चले किसी दूर की यात्रा पर! यह तो ध्यान का पुराना प्रयोग है।

लेकिन विल्हेम रेक को पागल करार दे दिया। उसकी पेटियों को जालसाजी करार दे दिया। जालसाजी करार देना आसान हुआ, क्योंकि कोई प्रमाण क्या है कि इनके भीतर ऐसा होता है? यह प्रेम की ऊर्जा को तौलने का थर्मामीटर कहां है? इनके भीतर बैठे हुए व्यक्ति कहते हैं, लेकिन क्या पक्का सबूत है कि उन्होंने भ्रम नहीं कर लिया खुद ही खड़ा, तीस मिनट चुपचाप बैठे रहकर कोई भ्रम बड़ा नहीं कर लिया, आत्मसम्मोहन नहीं कर लिया? इनकी बात का भरोसा क्या है? वैज्ञानिक बुद्धि तो कहती है, प्रमाण चाहिए ठोस। व्यक्ति क्या कहते हैं, यह कोई प्रमाण थोड़े ही है। ठोस प्रमाण चाहिए यंत्र के द्वारा।

अनेक लोगों ने उसकी पेटियों में बैठकर अनुभव किया, लेकिन वह प्रमाण नहीं। उसने अनेक बीमारों को ठीक किया उन पेटियों के भीतर, क्योंकि वह कहता है, प्रेम की ऊर्जा रोग से मुक्त करवा देती है, स्वास्थ्य लाती है। पर उसकी कोई सुन न सका। वह भक्ति का और प्रेम का बड़ा अनूठा प्रयोग कर रहा था।

भक्त सदा से ही इस प्रयोग को करते रहे हैं। वे कहते हैं, तुम्हें चारों तरफ से प्रेम ने घेरा हुआ है। वही परमात्मा है। तुम जरा शांत होकर बैठो। तुम जरा मगन होकर बैठो। तुम जरा चिंता-रहित होकर बैठो। तुम जरा द्वार खोलकर, ग्राहक होकर बैठो। स्वीकार करने की तैयारी से बैठो, और वह बरसने लगेगा। इसी ग्राहकता और स्वीकृति का पुराना नाम प्रार्थना है। प्रार्थना का कुछ और अर्थ नहीं होता। उसका यह मतलब नहीं कि तुम बड़ा शोरगुल मचाओ, चिल्लाओ परमात्मा को। उस सबसे कोई अर्थ नहीं है। हृदय खुला हो, तुमने पात्र उसके सामने कर दिया है, तुम प्रतीक्षारत, धैर्य, शांति से बैठे हो – आयेगा! इस आस्था, श्रद्धा से उतरेगा। उतरता है। उतरा ही हुआ है, तुम्हारा संबंध भर जोड़ने की बात है।

...'विच्छेद-रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, अनुभवस्वरूप है।'

लेकिन जीवन को तुमने जिस ढांचे में ढाला है, वह प्रेम के विपरीत है। और तुम्हारे तथाकथित धार्मिक तुम्हें प्रेम के विपरीत ही शिक्षण देते रहते हैं।

सुनो –

जिन नयनों का प्रेम-निमंत्रण
तुमने था ठुकराया
उन नयनों में, सजल स्नेहमय
एक नयन था मेरा।

किसी दिन परमात्मा तुमसे कहेगा –

जिन नयनों का प्रेम-निमंत्रण
तुमने था ठुकराया
उन नयनों में, सजल स्नेहमय

एक नयन था मेरा।
तुम समाधि के भ्रम में खोये
मुझे नहीं पहचाना
यह असंग यदि ताना है तो
संग उसी का बाना
जिन सुमनों का विनत समर्पण
तुमको नहीं सुहाया
उन सुमनों में मदिर सुरभिमय
एक सुमन था मेरा।
दिव्य गंध को मात्र वासना
कह कर तुमने टाला
बना सहज को सूली
ऋत का पथ विकृत कर डाला
जिन सपनों का सुरधनु जीवन
तुम्हें लगा छल छाया
उन सपनों में रुचिर रंगमय
एक सपन था मेरा।
तुम अभंग के पीछे भूले
भंगुर की गुरु गरिमा
रटा-रटाया ज्ञान बन गया
चेतन की जड़ सीमा
जिन रत्नों का मंगल कंकण
फेंका कह कर माया
उन रत्नों में ज्योतित चिन्मय
एक रत्न था मेरा।

इस संसार में, परमात्मा सभी जगह समाविष्ट है। फूल से भी उसी ने पुकारा है, ठुकराकर पीठ फेरकर चले मत जाना, अन्यथा किसी दिन पछताओगे। जहां से भी तुम्हें आकर्षण मिला है, उस आकर्षण में उसका ही आकर्षण छिपा है। तुमने व्याख्या गलत कर ली होगी। तुम्हारे पंडितों ने तुम्हें कुछ और समझा दिया होगा, भरमा दिया होगा। तुमने माया, छाया, छल, भ्रम कहकर पीठ फेर ली होगी। लेकिन वही है। माया भी अगर है तो उसी की है और अगर छाया भी है तो उसी की है और अगर भ्रम है तो उसने ही दिया है, स्वीकार योग्य है।

भक्त का अर्थ है: जिसने उसे उसकी सर्वांगीणता में स्वीकार किया; जो कहता है, 'हम चुनाव न करेंगे। हम कौन? हम कैसे जानेंगे कि तू कौन है और तू कौन नहीं है? हम कहां रेखा खींचें?'

जड़ और चेतन की रेखा सब आदमी की खींची हुई है। ऐसा कोई जड़ नहीं है जिसमें चेतन न छिपा हो और ऐसा कोई चेतन नहीं है जो जड़ में आविष्ठ न हो, जड़ में जिसने घर न बनाया हो। चट्टान से चट्टान में भी वही सोया है। चैतन्य से चैतन्य में भी वही जागा है।

ऐसा अगर तुम्हारे जीवन का दृष्टिकोण हो तो तुम प्रेम के लिए तैयार बनोगे, पात्र बनोगे।

'इस प्रेम को पाकर प्रेमी प्रेमी को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है, प्रेम का ही चिंतन करता है, प्रेम ही प्रेम, प्रेममय हो जाता है।'

फिर वृक्ष नहीं दिखायी पड़ते – वही वृक्षों की हरियाली में दिखायी पड़ता है! फिर पक्षी नहीं गीत गाते – वही गाता है; पक्षियों के कंठ उधार लेता है। उसके पास बहुत गीत हैं – बहुत कण्ठों की जरूरत है! उसके पास बहुत रंग हैं – इंद्रधनुषों की जरूरत है। उसके पास बहुत रूप हैं, बहुत आकृतियां बनती हैं, तो भी चुकता नहीं है।

उपनिषद कहते हैं, पूर्ण से पूर्ण भी निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। इतना विराट अस्तित्व बनता है, बिखरता है; सृष्टि होती है, प्रलय होती है – लेकिन उसकी क्षमता में कोई कमी नहीं आती।

'इस प्रेम को पाकर प्रेमी प्रेमी को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है, प्रेम का ही चिंतन करता है।'

सबको हम भूल गये जोशो-जुनूं में लेकिन
इक तिरी याद थी ऐसी जो भुलायी न गयी।

प्रेमी पागल हो जाता है, जुनून में आ जाता है, सब भूल जाता है – 'इक तेरी याद थी ऐसी जो भुलायी न गयी!' बस एक बात नहीं भूलती। स्वयं को भी भूल जाता है। बस एक बात भुलायी नहीं भूलती – उस प्रेमी की याद भुलाये नहीं भूलती।

'भक्ति गुण-भेद से तीन प्रकार की होती है, उनमें उत्तर-उत्तर क्रम से पूर्व-पूर्व क्रम की भक्ति कल्याणकारिणी होती है।'

ऐसे तो भक्ति एक है। भक्ति यानी प्रेम; ऊर्ध्वमुखी प्रेम। भक्ति यानी दो व्यक्तियों के बीच का प्रेम नहीं, व्यक्ति और समष्टि के बीच का प्रेम। भक्ति यानी सर्व के साथ प्रेम में गिर जाना। भक्ति यानी सर्व को आलिंगन करने की चेष्टा। और भक्ति यानी सर्व को आमंत्रण, कि मुझे आलिंगन कर ले!

भक्ति तो मूलतः एक है, लेकिन व्यक्तियों के भेद से तीन प्रकार की हो जाती है, उनकी हम आगे के सूत्रों में व्याख्या करेंगे।

आज इतना ही।

असहाय हृदय की आह है प्रार्थना-भक्ति

चौदहवां प्रवचन

प्रश्न-सार

- भगवान ! सामर्थ्य तो कुछ है नहीं और प्यास उठी अनंत की। मिलन होगा ?
- क्या प्रेम और मृत्यु के बीच कोई आंतरिक संबंध है ?
- बहुतेरे आपके संन्यासी ध्यान नहीं करते; कहते हैं, समझ काफी है। क्या उनकी यह समझ काफी है ?
- भगवान ! मैं आपसे संन्यस्त नहीं हुआ; फिर भी क्या आप मृत्यु के क्षण में मुझे धक्का देने आएंगे ?
- क्यों आप प्रतिदिन प्रवचन के लिए आने पर और फिर विदा लेते हुए भी हाथ जोड़कर हमें प्रणाम करते हैं?
- कब किस घड़ी में संन्यासी शिष्य के भीतर से अपेक्षा का भाव गिर जाता है ?

पहला प्रश्न : *भगवान ! सामर्थ्य तो कुछ है नहीं और प्यास उठी अनंत की ! चल पड़ी हूं डगमगाती, क्या मिलन होगा नहीं ?*

● पूछा है वृद्ध संन्यासिनी सीता ने ।

पहली बात : सामर्थ्य से कोई कभी परमात्मा से मिला नहीं। सामर्थ्य तो अकड़ है। सामर्थ्य ही तो बाधा है। सामर्थ्य यानी अहंकार। सामर्थ्य यानी दावा। दावे से कभी कोई मिला है ? दावे ने कभी प्रेम पाया ? दावेदार तो हार ही गया; पहले ही कदम पर मंजिल चूक गयी।

अगर पता है कि सामर्थ्य नहीं है तो मिलन निश्चित है । असहाय अवस्था में होता है मिलन — जहां तुम्हें लगता है, मेरे किये कुछ भी न होगा; जहां तुम्हारी हार पूरी-पूरी है; जहां तुम्हें लगता है, मेरे किये होगा कैसे; जहां तुम्हारा अहंकार सब भांति धूल-धूसरित होकर गिर पड़ा है; जहां तुम्हें अपनी तरफ से श्वास लेने की भी सामर्थ्य न रही; यात्रा दूर की बात, जहां उठते भी नहीं बनता; जहां पैर भी उठाना चाहो तो नहीं उठता। जहां ऐसा असहाय भाव तुम्हें घेर लेता है, वहीं प्रार्थना का जन्म होता है ।

प्रार्थना असहाय हृदय की आह है ।

परम असामर्थ्य में ही प्रभु को पाने की सामर्थ्य है ।

असहाय भाव को गहरा होने दो ।

परमात्मा को कोई जीतकर थोड़े ही जीतता है — हारकर जीतता है। वहां हार ही विजय है। वहां जो अकड़कर गया, उसने अपने ही हाथ अपनी गर्दन काट ली। वहां जो गर्दन काटकर गया, पहुंच ही गया ।

पूछा है : 'सामर्थ्य तो कुछ है नहीं और प्यास उठी अनंत की ।'

यह भाव शुभ है ।

अनंत की प्यास के उठने के लिए अनंत को पाने की सामर्थ्य थोड़े ही चाहिए। जो सामर्थ्य में आ जाए वह तो अनंत होगा भी नहीं। सामर्थ्य की सीमा में जो समा जाए, वह शान्त ही होगा, अनंत नहीं; उसकी सीमा होगी, असीम नहीं ।

प्यास तुमसे बड़ी है। प्यास इतनी बड़ी है कि तुम उसे अपने भीतर समा न पाओगे, तुम उसमें समा जाओगे। तभी प्यास अनंत की प्यास है। अनंत की प्यास भी अनंत ही है। और परमात्मा को पाने के लिए प्यास काफी है। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं चाहिए। यही भक्ति का सार-सूत्र है।

योग कहता है, प्यास चाहिए, कुछ और भी चाहिए। भक्ति कहती है, प्यास बस काफी है। बस प्यास चाहिए – इतनी प्यास चाहिए कि तुम प्यास में खो जाओ; तुम प्यास हो जाओ; तुम्हारे भीतर कुछ भी न बचे प्यास के अतिरिक्त; बिलखती-रोती प्यास बचे; शून्य में टकराती, उभरती प्यास बचे; तुम्हें पता ही न चले कि तुम हो। और प्यास ही परमात्मा बन जाती है।

अनंत प्यास अनंत का ही भाग है। और अनंत प्यास को जिसने पा लिया, दूर नहीं है, पहुंच ही गया।

स्वभावतः मन को बड़ा डर लगता है : सामर्थ्य तो बड़ी कम है, न के बराबर है; इतने बड़े को पाना चाहा है, परमात्मा को पाना चाहा है! सिर्फ अहंकारी को इसमें कोई भूल नहीं दिखायी पड़ती।

मेरे पास दोनों तरह के लोग आ जाते हैं। अहंकारी कहता है, 'क्या करूं जिससे परमात्मा को पा लूं?' जोर उसका करने पर है। जैसे परमात्मा भी उसके कृत्य का फल होगा! जैसे परमात्मा भी उसकी व्यवस्था में फंसेगा! जाल फेंकना है, मछली फंसेगी – कैसे जाल फेंकूं। निश्चित ही जाल फेंकने वाला मछली से बड़ा है। निश्चित ही जाल मछली से बड़ा है। मछली असहाय, फंसेगी।

अगर तुम परमात्मा की तरफ मछुए की तरह गये हो तो भूल हो गयी – तुम परमात्मा की तरफ गये ही नहीं, परमात्मा ने तुम्हें पुकारा ही नहीं, उसकी प्यास उठी ही नहीं।

एक दूसरे तरह का खोजी है – असली खोजी! वह कहता है कि मेरे किये कुछ भी नहीं होता! मैं तो हार गया! क्या फिर भी वह मुझे मिलेगा? उसके पैर डगमगाते हैं। जाल फेंकने की बात दूर रही, उसे अपने अहंकार पर जरा भी भरोसा नहीं है कि मेरे किये कुछ होगा।

जिस क्षण अहंकार पर भरोसा नहीं होता उसी क्षण अहंकार की मौत होनी शुरू हो गयी।

तुम्हें अपने पर बहुत ज्यादा भरोसा है – वही तुम्हारा अपराध है। वही पाप है। जिस क्षण तुम्हें अपने पर भरोसा हट जाएगा और तुम देख पाओगे कि मेरे किये क्या होगा! इतनी छोटी सीमा है मेरी, मेरे जाल क्या हैं? किसको फांसने चला हूं? जाल में विराट को! अनंत को! जिस दिन तुम जाल फेंक दोगे, असहाय गिर पड़ोगे पृथ्वी पर, आंखें आंसुओं से भरी होंगी – मंजिल पूरी हो गयी! यह मंजिल कुछ ऐसी नहीं है कि चलकर जाना पड़ता है; यह मंजिल कुछ ऐसी है कि तुम गिरो कि पास आ जाती है!

'सामर्थ्य तो कुछ भी नहीं है और प्यास उठी अनंत की!
चल पड़ी हूं डगमगाती, क्या मिलन होगा नहीं?'

भक्त सदा कंपता रहता है। इसलिए नहीं कि शक है कि परमात्मा है या नहीं – नहीं वैसा तो कोई संदेह नहीं है – संदेह यह है कि मेरी कोई योग्यता है या नहीं।

इस भेद को समझना।

अहंकारी चलता है, अगर परमात्मा न फंसे उसके जाल में तो सोचता है, होगा ही नहीं। अहंकारी

यात्रा करता है, व्यवस्था करता है, आयोजन जुटाता है, अगर परमात्मा नहीं पास आता लगता है तो सोचता है, है ही नहीं, आएगा कहां से ! निरहंकारी के पास परमात्मा आता हुआ नहीं लगता, तो यह सवाल नहीं उठता कि परमात्मा नहीं है – यही सवाल उठता है कि मैं बहुत छोटा हूं, पात्र नहीं हूं; मैं बहुत सीमित हूं; मैंने जरूरत से ज्यादा की मांग कर ली है; मैंने ऐसी पुकार को सुन लिया जहां तक उठ पाना मेरे सामर्थ्य में नहीं है ।

लेकिन यहीं समझने की बात है ।

तुम्हारे गिरने में ही उसका अवतरण है । तुम्हारे मिटने में ही उसका होना है । परमात्मा मिला ही हुआ है – तुम गिरो तो ! यह मंजिल दूर नहीं है । तुम्हारे और परमात्मा के बीच फासला नहीं है । अगर कोई फासला है तो वह तुम्हारे दम्भ का है और अहंकार का है ।

बच्चन की कुछ पंक्तियां हैं... बहुत प्यारी हैं :

तुम प्रतीक्षा में हमेशा से खड़े थे
और मैंने ही न देखा
एक सुरभित सांस आती थी कहीं से
धूल से, बनफूल से, नभतारकों से
चांद-सूरज से, गगन-अन्तःकरण से
या कि मेरी ही शिराओं से, रगों से ?
इत्र की कुछ शीशियों को खोलते ही
मूंदते ही उम्र मेरी कट गयी है ।
तुम प्रतीक्षा में हमेशा से खड़े थे
और मैंने ही न देखा !
एक झिलमिल जोत आती थी कहीं से
सरवरों, नद-निर्झरों, सागरों से
बादलों से, बिजलियों की पायलों से
या कि मेरे ही दृगों के दायरों से ?
मृतिका के कुछ दियों को जलाते
ओ' बुझाते उम्र मेरी कट गयी है ।
एक हीरक से हृदय में तुम जड़े थे
और मैंने ही न देखा !
तुम प्रतीक्षा में हमेशा से खड़े थे
और मैंने ही न देखा
एक अस्फुट गूंज आती थी कहीं से
मधुकरों से, वनविहंगों के परों से
धन-पवन से, पावसी रिमझिम झरन से

या कि मेरे आंसुओं के सीकरों से ?
छंद की बहु शृंखलाओं को जोड़ते ही,
तोड़ते ही उम्र मेरी कट गयी है
किन्तु ढाई अक्षरों में मुक्ति का गुरु-
मंत्र अभिमत गुनगुनाते तुम पड़े थे
और मैंने ही न देखा !
तुम प्रतीक्षा में हमेशा से खड़े थे
और मैंने ही न देखा !

ढाई अक्षरों में — बस प्रेम के ढाई अक्षरों में सारा शास्त्र है भक्ति का !

तुम छोड़ो फिक्र परमात्मा की ! आए न आए, छोड़ो उत्तरदायित्व उसी पर ! प्यास के अतिरिक्त हमारी सामर्थ्य क्या है ? पुकार के अतिरिक्त हम क्या कर सकेंगे ? सुने न सुने, जुम्मेवारी उसकी है। तुम पुकारो भर हृदय से ! तुम आंसुओं में कंजूसी मत करना ! तुम रोने में रुकावट मत डालना ! तुम्हारी प्रार्थना इधर पूरी हुई कि तुम अचानक पाओगे : परमात्मा दूर न था, तुममें ही छिपा था। आंसू आंखों को साफ कर गये — दिखाई पड़ने लगा। प्रार्थना हृदय को झकझोर गयी, धूल को उड़ा गयी — अनुभव होने लगा।

तुम्हारा होना परमात्मा के होने का हिस्सा है; इसलिए तो प्यास है। अनजान की, अपरिचित की, अज्ञेय की तो प्यास भी कैसे होगी ? जिसने कभी तुम्हारे कंठ को छुआ ही न हो उसकी आकांक्षा भी कैसे जगेगी ? कहीं किसी गहरे तल पर उसने तुम्हारे कंठ को छू ही लिया है। जिसे हमने जाना ही न हो कभी, जाने-अनजाने, सोये-जागे जिसे हमने पहचाना ही न हो कभी, उसकी पुकार भी कैसे उठेगी ? तुम उस हीरे को खोजने कैसे निकल पड़ोगे, जिस हीरे की झलक ने तुम्हें आकर्षित न कर लिया हो ?

इजिप्त के सूफी कहते हैं, तुम खोजने तभी निकलते हो जब वह तुमसे पहले तुम्हें खोजने चल पड़ा होता है। तुम उसे पुकारते तभी हो जब उसने तुम्हें पुकार ही लिया होता है; अन्यथा तुम कैसे पुकारोगे ?

उनका वक्तव्य बिलकुल सही है। वे कहते हैं, परमात्मा तुम्हें जब चुन लेता है, तभी तुम उसे चुनते हो, उसके पहले तुम चुन ही न सकोगे।

तो मैं सीता को कहूंगा, चली चल — डगमगाते सही ! और चलने का कोई ढंग ही नहीं है, डगमगाते ही चला जा सकता है। राह बड़ी विराट है ! आकाश बहुत बड़ा है, पंख हमारे पास बहुत छोटे हैं। लेकिन दो छोटे-से पंखों से भी तो आकाश पार हुआ जाता है। कोई आकाश जैसे बड़े पंख थोड़े ही चाहिए; इतने बड़े पंख होते तो उड़ना मुश्किल हो जाता। आकाश होगा विराट, हमारे पास पंख छोटे सही, हर्ज क्या है !

लाओत्सु ने कहा है, एक-एक कदम से हजारों मील का रास्ता पार हो जाता है। कदम बड़े छोटे हैं। अगर कोई गणितज्ञ बैठ जाए, हिसाब लगाने लगे — हजारों मील का रास्ता है, एक-एक कदम

उठता है एक बार में – घबड़ा जाएगा, छाती बैठ जाएगी, हिम्मत ही टूट जाएगी ! पर हम जानते हैं, एक-एक कदम से हजारों मील का रास्ता पूरा हो जाता है, और एक-एक बूंद से सागर भर जाता है । फिर चिन्ता क्या !

भक्त को चिन्ता नहीं है । यही तो भक्ति का चमत्कार है । ज्ञानी चिंतित है । योगी चिंतित है । क्योंकि इन्तजाम बिठाना है, भार अपना है । भक्त निश्चिंत है । भक्त कहता है, 'हमने पुकार दिया, अब तुम सुन लो ! न सुनो, तुम जानो !' आखिर में, भक्त यह कह रहा है कि अगर तुम न मिले तो तुम्हीं जानो, जिम्मेवारी तुम्हारी है । मिल गये तो तुम्हारी कृपा, न मिले तो कसूर तुम्हारा है; हम कर भी क्या सकते थे ? पुकार दिया था !

छोटा बच्चा है । पड़ा है अपने झूले में । चिल्ला रहा है । रो रहा है मां के लिए ! क्या करेगा और ? आ जाए, मां की अनुकंपा है; न आए, कठोरता है । लेकिन सारा जिम्मा मां का है । आए तो भी, उसका प्रसाद ! न आए, तो भी उसकी कठोरता । उस छोटे रोते बच्चे का अपना क्या है, दावा क्या है ?

भक्ति की महिमा है कि सब छोड़ दिया परमात्मा पर । भक्त चुपचाप जिये चला जाता है, जैसे वह जिलाता है । और भक्त डगमगाते-डगमगाते भी पहुंच जाता है; और ज्ञानी बड़ी मजबूती से पैर रखते हैं और कहीं नहीं पहुंच पाते । यह रास्ता मजबूरी से पैर रखने का नहीं है । यहां डगमगाने वाले पहुंचते हैं ।

दूसरा प्रश्न : आप जब भी प्रेम का गीत गाते हैं तब मृत्यु की महिमा भी बताते हैं, मृत्यु की महिमा बताने से भी नहीं चूकते । क्या प्रेम और मृत्यु के बीच कोई आन्तरिक संबंध है ?

● संबंध ही नहीं, प्रेम और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, एक ही घटना के दो नाम हैं; एक ही चीज को देखने के दो ढंग हैं, दो दृष्टियां हैं । बहुत मुश्किल होगा तुम्हें यह समझना, क्योंकि तुमने तो अकसर उलटा माना है । तुम तो मृत्यु से बचने को प्रेम की शरण में गये हो । तुमने तो मृत्यु से बचने के लिए प्रेम की सुरक्षा मांगी है – और प्रेम मृत्यु का ही रूप है । और तुमने तो प्रेम की बहुत मांग की है, लेकिन फिर भी तुम मृत्यु की गोद में जाने से डरे हो । और मृत्यु तो प्रेम की ही गोद है । इसलिए तो तुम्हारे जीवन में प्रेम की मांग बहुत है, प्रेम की वर्षा कभी नहीं होती । चीखते हो, चिल्लाते हो, रोते हो, बुलाते हो, खोजते हो – लेकिन कहीं तुम्हारे भीतर ऐसा विरोधाभास है कि प्रेम की तुम बात तो करते हो, लेकिन घटने नहीं देते ।

गौर से देखना अपने प्रेम को तो तुम्हें मेरी बात समझ में आ जाएगी : तुम प्रेम मांगते भी हो और प्रेम से डरते भी हो । तुमने बहुत गहरे में झांका ? प्रेम का बड़ा गहरा भय है ! तुम भयभीत हो प्रेम से । ऊपर-ऊपर मांगते भी हो, भीतर-भीतर डरे भी हो, भागे हुए भी हो । ऊपर-ऊपर प्रेम की तरफ चलते हो, भीतर-भीतर किसी विपरीत दिशा में कदम रखते हो । एक कदम प्रेम की तरफ उठाते हो तो एक कदम प्रेम के विपरीत तत्क्षण उठा लेते हो ।

प्रेम में खतरा मालूम होता है, खतरा है। मैं नहीं कहता कि खतरा नहीं है। बड़ा खतरा है। प्रेम से बड़ा कोई खतरा ही नहीं है। क्योंकि प्रेम का अर्थ है: तुम्हें मिटना होगा। प्रेम का अर्थ है: तुम तुम ही न रह जाओगे; तुम वही न रह जाओगे जो प्रेम करने के पहले थे; वह तुम्हारी इकाई, वह अकड़, वह अस्मिता डूबेगी, गलेगी, जलेगी, राख होगी। तुम्हारे राख हो जाने से ही तो प्रेम का फूल खिलेगा। इसलिए तो भय है।

हम प्रेम की बातें करते हैं, प्रेम के गीत भी गाते हैं। प्रेम की कहानियां पढ़ते हैं, कहानियां कहते हैं — ये सब तरकीबें हैं प्रेम से बचने की।

प्रेम का बड़ा प्रगाढ़ भय है। मनस्विदों से पूछो। वे कहते हैं कि प्रेम का बड़ा प्रगाढ़ भय है। हम प्रेमी से दूर-दूर रहते हैं, फासला बनाकर रहते हैं। इतने करीब नहीं आते कि सीमाएं मिल जाएं और खो जाएं। इतने पास आने में बड़ा भय लगता है कि फिर लौट सकें न लौट सकें। इसलिए तो हमने बहुत तरह के इंतजाम कर लिये हैं प्रेम के विपरीत। विवाह भी प्रेम के विपरीत एक इन्तजाम है, ताकि प्रेम करना न पड़े। तो जाकर विवाह कर लाते हैं एक स्त्री को या एक पुरुष से विवाह कर लेते हैं। विवाह एक आयोजन है। मां-बाप कर लेते हैं इन्तजाम। जिनका हो रहा है विवाह, उनसे तो पूछने की जरूरत ही नहीं होती। ज्योतिषी से पूछते हैं जिसका कोई लेना-देना नहीं है। और सब बातों का इन्तजाम कर लेते हैं जिनका प्रेम से कोई संबंध नहीं है, कि कुलीन घर है, कि सम्पन्न घर है, सुसंस्कृत लोग हैं, जाति-धर्म-कुल क्या है — यह सब पता कर लेते हैं। इससे प्रेम का कोई भी लेना-देना नहीं है। न तो प्रेम जाति को जानता, न कुल को जानता, न कुलीनता को जानता, न धन को जानता। प्रेम का धन से संबंध क्या है ? न रंग को जानता। हड्डी-मांस-मज्जा से प्रेम का संबंध क्या है ? तुम हिन्दू हो कि मुसलमान कि जैन कि ईसाई, प्रेम को लेना-देना क्या है ?

लेकिन हमने विवाह का इन्तजाम किया है — सारी दुनिया में। यह इन्तजाम बड़ी कुशलता थी। यह इस बात की खबर है कि प्रेम का बड़ा भय है। इसलिए हमने बाल-विवाह किये, क्योंकि इसके पहले कि प्रेम अपना सिर उठाए, विवाह कर देना जरूरी है। अगर प्रेम एक बार सिर उठा ले तो फिर विवाह कठिन हो जाएगा। और एक बार प्रेम की धुन पकड़ जाए, दीवानगी आ जाए, तो विवाह बहुत रूखा-सूखा मालूम पड़ेगा। विवाह प्रेम से हो तो समझ में आता है; हमने उलटी व्यवस्था की: विवाह कर दो और प्रेम करो!

अब प्रेम के साथ एक नियम है कि हो तो हो, न हो तो किया नहीं जा सकता। हां, ढोंग कर सकते हो। दिखावा कर सकते हो। अपने को समझा लेते हो, दूसरे को समझा देते हो कि है, सब ठीक है। लेकिन प्रेम हो तो हो, न हो तो न हो।

प्रेम ऐसी घटना है कि परमात्मा की तरफ से है, तुम्हारे हाथ में नहीं है।

तीन घटनाएं परमात्मा के हाथ में हैं — जन्म, प्रेम और मृत्यु। और बाकी घटनाओं का कोई मूल्य नहीं है जो तुम्हारे हाथ में हैं। तुम किस तरह की दुकान करते हो, किस दफ्तर में बैठते हो, किस राजनीतिक पार्टी के सदस्य हो — इन बातों का कोई मूल्य नहीं है। यह सब बीच का भरावा है। जीवन का सब महत्वपूर्ण परमात्मा के हाथ में है। परमात्मा यानी समग्र। व्यक्ति के हाथ में नहीं है, समष्टि

के हाथ में है। होता है तो होता है।

प्रेम, इसलिए मैं कहता हूं, जन्म और मृत्यु का ही हिस्सा है। प्रेम एक मृत्यु है और एक जन्म भी – पुराना मरता है, नया आविर्भूत होता है; अहंकार गलता है, आत्मा का आविर्भाव होता है। तो हमने प्रेम के लिए इन्तजाम कर लिये हैं और धोखे कर दिये हैं। इसलिए दुनिया में इतने लोग प्रेम करते मालूम पड़ते हैं, लेकिन प्रेम की सुगंध कहां है ? जीवन तो दुर्गंध से भरा है घृणा की, युद्ध और रक्तपात, कलह और वैमनस्य। शत्रुता जीवन का आधार मालूम पड़ती है। तुम जीते ही हो लड़ने के लिए, जीते ही हो लड़ते हुए। प्रेम के गीत गाते हो – वे गीत शायद भ्रम हैं। शायद जीवन में जो नहीं मिला, गीत गाकर अपने को समझा लेते हो। गीतों में भरोसा कर लेते हो।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक अनूठी घटना घट सकती थी, वह घट नहीं पाती। लेकिन इसमें समाज का ही कसूर हो, ऐसा नहीं है – व्यक्ति डरा है, इसलिए समाज के हाथ में सूत्र दे दिया है। भय भीतर है। इसलिए मैं जब भी प्रेम की बात करता हूं, मृत्यु की भी बात करता हूं; और जब भी मृत्यु की बात करता हूं तब प्रेम की भी बात करता हूं। मेरे लिए दोनों एक ही ऊर्जा के ढंग हैं।

तुम समझने की कोशिश करो।

प्रेम में तुम्हारा होना डूबता है, वैसे ही जैसे मृत्यु में डूबता है। मृत्यु से थोड़ा ज्यादा ही डूबता है, कम नहीं। क्योंकि मृत्यु में शरीर तो मिट जाता है, मन नहीं मिटता, अहंकार नहीं मिटता; फिर नया जन्म हो जाता है, अहंकार का। नयी यात्रा शुरू हो जाती है। सिर्फ वस्त्र बदल लिये जाते हैं मृत्यु में।

प्रेम बड़ी मृत्यु है मृत्यु से – महामृत्यु है। शरीर तो वही रहता है, मन बदल जाता है, अहंकार गिर जाता है। तुम मिट जाते हो और किसी नये का जन्म होता है, जो तुमसे अपरिचित है, जिसे तुमने पहले कभी जाना ही न था। कोई और ही तुम में आविष्ठ हो जाता है। क्षणभर पहले और क्षणभर बाद में जमीन-आसमान का भेद हो जाता है। तुम्हारी आंख में किसी और ही ऊर्जा की लहर होती है। तुम्हारे पैर में किसी और ही नृत्य की गति होती है। तुम्हारे हृदय में किसी और ही गीत की गुनगुन होती है। क्षणभर पहले जहां रेगिस्तान था, क्षणभर बाद वहां अनंत-अनंत कमल खिल जाते हैं। यह क्षण में घटता है। यह क्रांति है। यह इतनी बड़ी क्रांति है कि तुम घबड़ाते हो। यह इतना बड़ा रूपान्तरण है कि तुम डरते हो। तुम भी चाहोगे, इसे अगर मात्रा-मात्रा में घटे, अगर कदम-कदम घटे, थोड़ा-थोड़ा घटे, होमियोपैथी की मात्रा में घटे। थोड़ा-थोड़ा करके घटे तो तुम भी सोचोगे कि चलो ठीक है। लेकिन यह है आकस्मिक। यह है क्रान्ति। इसका कोई क्रमिक हिसाब नहीं है, सीढ़ियां-सीढ़ियां नहीं घटता, विस्फोट है; इधर पुराना गया, इधर नये का आविर्भाव हुआ। और दोनों का कहीं मिलन नहीं होता।

जो प्रेम के लिए तैयार है वह परमात्मा के लिए तैयार है।

भक्ति का आधार प्रेम है। भक्ति का सन्देश सिर्फ इतना ही है कि अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम घटा; अगर तुमने प्रेम को घटने दिया, बाधा न डाली; अगर तुमने द्वार-दरवाजे बंद न किये भयभीत होकर; और अगर तुमने प्रेम को आने दिया, तुमने स्वागत किया – तो ज्यादा देर न लगेगी, तुम प्रेम के पीछे ही परमात्मा की पगध्वनि सुनोगे, उसे आता हुआ पाओगे। परमात्मा की तुम्हें पूजा करनी पड़ती

है, मंदिर-मस्जिद खोजने पड़ते है, क्योंकि तुम प्रेम से चूक गये हो। इसलिए तुम्हें नकली मंदिर बनाना पड़ता है, नकली मस्जिद बनानी पड़ती हैं; नहीं तो प्रेम असली मंदिर है; असली मस्जिद है । प्रेम ही गुरुद्वारा है । बाकी तो सब तरकीबें हैं । असली से चूक गये तो नकली को बना लेते हो । मन को समझाते हो, बुझाते हो, सांत्वना करते हो ।

प्रेम मिटायेगा । प्रेम तुम्हें निखारेगा । प्रेम तुम्हें जलायेगा अग्नि की तरह । प्रेम की बड़ी पीड़ा है और बड़ा आनंद भी । प्रेम ठीक मृत्यु जैसा है – लेकिन सिर्फ मृत्यु जैसा नहीं, जीवन जैसा भी है : एक छोर पर मृत्यु घटती है, दूसरे छोर पर जीवन घटता है; इधर पुराना मरा, उधर नया जन्मा; इधर रात गयी, सुबह हुई; इधर तारे ढले, उधर सूरज निकला; एक द्वार बंद हुआ, दूसरा खुला ।

तो तुम प्रेम के लिए सोचते मत रहो – द्वार-दरवाजे खोलो ! भयभीत किससे हो ? यह शरीर तो जाएगा । तुम इसे बचाकर भी रखो तो भी जाएगा । यह अहंकार धूल-धूसरित होगा । यह खोपड़ी गिरेगी मिट्टी में । यह तो मरघट बनने ही वाला है । तुम बचा किसके लिए रहे हो ? तुम संभाल किसके लिए रहे हो ? यह कृपणता कैसी ? इसके पहले कि सब छीन लिया जाए, बांट दो ! फिर तुमसे कोई छीन न सकेगा । इसके पहले कि तुम मिटो, मिट जाओ ! फिर तुम्हें कोई मिटा न सकेगा । इसके पहले कि मौत तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे, तुम प्रेम का आमंत्रण स्वीकार कर लो ! फिर तुम्हारी कोई मौत नहीं है ।

अब मैं तुमसे एक विरोधाभासी बात कहूं । मैं कहता हूं, प्रेम मृत्यु है; और मैं तुमसे यह भी कहना चाहूंगा कि प्रेम में ही पता चलता है अमृत का । प्रेम में ही पता चलता है कि कुछ है तुम्हारे भीतर जिसकी कोई मृत्यु नहीं । मरकर ही पता चलता है अमृत का । कूड़ा-कर्कट जल जाता है, सोना बच जाता है । जो मर सकता था, मर जाता है । जो नहीं मर सकता, जो अविनाशी है, उसका साक्षात्कार हो जाता है ।

मनुष्य ने अपने भय के आधार पर प्रतीक चुने हैं । इसलिए आमतौर से तुम्हें लोग प्रेम के साथ मृत्यु का संबंध जोड़ते हुए नहीं दिखायी पड़ेंगे । क्योंकि मृत्यु से तो तुम भयभीत हो और तुम सोचते हो प्रेम को तुम चाहते हो । मैं तुमसे कहता हूं : जो प्रेम को चाहता है व मृत्यु को भी चाहता है । क्योंकि जिसने प्रेम को जाना या चाहा, उसने मृत्यु का सुख भी जाना, मृत्यु का रस भी जाना । क्योंकि मृत्यु में ही अमृत का आविर्भाव है ।

तुम मौत से भयभीत हो, इसलिए तुम प्रेम से भी भयभीत हो । तुम्हारी सारी चिंतन की व्यवस्था तुम्हारे भय को प्रतिबिंबित करती है । जैसे शास्त्रों में लिखा है, परमात्मा प्रकाश है; क्योंकि आदमी अंधकार से डरा हुआ है । परमात्मा दोनों है, अन्यथा अंधकार होगा कैसे ? लेकिन सब शास्त्र कहते हैं – कुरान, उपनिषद, वेद – परमात्मा प्रकाश है । फिर अंधकार, फिर रात किसकी ? फिर रात का राजा कौन ? तब फिर शैतान को गढ़ना पड़ता है, क्योंकि रात का भी कोई राजा होना चाहिए । फिर अंधेरे का एक मालिक बनाना पड़ता है, क्योंकि अंधरे की भी तो व्यवस्था जमानी होगी । अंधेरे का साम्राज्य किसका है ? परमात्मा का ही है । तुम्हारे भय के कारण उपद्रव खड़ा कर रहे हो ।

तुम्हारे भय ने परमात्मा को भी दो में बांट दिया । भय तुम्हें ही नहीं बांट रहा है, तुम्हारे परमात्मा तक को विभाजित कर देता है । तुम कहते हो, दिन उसका । रात ? रात से तुम डरे हो ! अंधेरा तुम्हें

घबड़ाता है। इस घबड़ाहट के कारण तुम जीवन के बहुत-से राज न जान पाओगे, क्योंकि बहुत-से राज अंधेरे में छिपे हैं। तुम शांत न हो सकोगे, क्योंकि शांति का स्वभाव अंधेरे जैसा है, प्रकाश जैसा नहीं।

अब तुम्हें बड़ी कठिनाई होगी।

शांति अंधकार जैसी है, क्योंकि शांति विराम है, विश्राम है। समाधि, पतंजलि ने कहा है, निद्रा जैसी है। तो निश्चित ही शांति अंधकार जैसी होगी, रात्रि जैसी होगी। प्रकाश में उत्तेजना है, यह तो तुमने अनुभव किया ही है। इसलिए तो अगर तुम सो रहे हो और बहुत बड़े-बड़े प्रकाश के बल्ब लगा दिये जाएं तो सो न सकोगे; प्रकाश तुम्हारी आंखों को उत्तेजित रखेगा, तना हुआ रखेगा, विश्राम न लेने देगा। इसलिए तो दिन में सोना मुश्किल है। इसलिए तो सारी प्रकृति रात में सोती है।

विश्राम के लिए अंधकार चाहिए। प्रकाश में एक तनाव है। अगर तुम प्रकाश ही प्रकाश में रहो, जल्दी पागल हो जाओगे। जरा सोचो, एक महीने सो न सको – बहुत लम्बा कह रहा हूं, तीन दिन में ही विक्षिप्त होने की हालत आनी शुरू हो जाती है। तीन दिन अगर जरा भी नींद न आ सके, तो बस सब रुग्ण होना शुरू हो जाता है। अंधेरा रोज-रोज चाहिए। अंधेरा भोजन है।

यह बड़े मजे की बात है कि तीन दिन तुम सो सकते हो, कोई खास नुकसान न होगा; लेकिन तीन दिन अगर जागे तो नुकसान हो जाएगा।

मैं एक महिला को देखने गया। वह नौ महीने से बेहोश है। सो रही है! पागल नहीं हो गयी है। चिकित्सक कहते हैं, जग भी सकती है, न भी जगे। जग सकती है, क्योंकि मैंने एक घटना सुनी है कि अमरीका में एक महिला बारह साल तक सोयी रही, बारह साल के बाद जगी। बिलकुल ठीक, ताजी! जैसी सोयी थी उतनी ही ताजी! वस्तुतः बारह साल में उसके संगी-साथी बूढ़े हो गये, वह नहीं हुई, क्योंकि ताजी की ताजी रही। बारह साल जैसे आए ही नहीं उसके लिए। जैसे समय बीता ही नहीं। जैसे घड़ी में कांटे चले ही नहीं, सब ठहरा रहा। वह गहन निद्रा में रही, विश्राम में रही। उसके चेहरेपर सलवटें न आयीं। लेकिन बारह साल जागे नहीं रह सकते। खुद तो पागल हो ही जाते, और न मालूम कितनों को पागल कर दिया होता। जिसको काटते वही पागल हो जाता।

परमात्मा को प्रकाश ही प्रकाश कहा है, अंधकार नहीं! आदमी अपने भय से अपने शब्द बनाता है। तुम अंधेरे से भयभीत हो तो तुम्हें लगता है कि परमात्मा अंधकार – नहीं! प्रकाश!

तुमने कभी खयाल किया, प्रकाश तोड़ता है, चीजों को अलग-अलग कर देता है। अभी देखो, सुबह हुई है, तो हर वृक्ष अलग-अलग हो गया; रात अंधेरा होगा, सब एक हो गया। फिर भेद न रहे। कौन आम है, कौन नीम है – फर्क न रहा। नीम और आम भी एक हो गये। सब बराबर हो गया।

अंधकार जोड़ता है, प्रकाश तोड़ता है। प्रकाश भेद खड़े करता है, अंधकार अभेद है।

> सूरज का उगना निश्चित है
> एक दिशा में
> किन्तु तिमिर के लिए खुली हैं
> दसों दिशाएं।

सूरज तो सीमित ही है – एक दिशा से उगता है, पूरब से उगता है तो पूरब से उगता है। अंधकार कहां से उगता है, कभी खयाल किया ? सब तरफ से आता है, दसों दिशाओं से आता है। कभी विचार किया ? प्रकाश तो कभी होता है, फिर खो जाता है। अंधकार सदा है, सदा-सदा है। दीया जलाते हो, टिमटिमाने लगती है रोशनी; अंधेरा मिटता नहीं। दीया गया, अंधेरा वापस अपनी जगह है। कौन दीया अंधेरे को मिटा पाया है ! कितनी बार सूरज उगा है, कितनी बार डूबा है। रात पर रेखा भी खिंची ? अंधेरे को कोई जरा-सी भी परेशानी हुई ?

प्रकाश घटना है; अंधकार शाश्वतता है। कुछ करो तो प्रकाश होगा। ईंधन चाहिए। तुमने देखा, तेल चुक जाएगा, दीया बुझ जाएगा ! सूरज का दीया भी बुझेगा – उसका तेल भी, वे कहते हैं, चुक रहा है ! चार हजार साल और लगेंगे। लम्बा है समय, लेकिन समय की अनंतता में चार हजार साल क्या हैं ? बुझ जाएगा। ईंधन चाहिए।

दीया बुझता है – तेल के चुक जाने से। अंधकार बिना ईंधन के है, इसलिए बुझ न सकेगा। कभी न बुझेगा। कितने ही सूरज आएंगे और जाएंगे, कितने ही दीये जलेंगे और बुझेंगे – अंधकार रहेगा और रहेगा !

मृत्यु जीवन से बड़ी है, जैसे प्रकाश से अंधकार बड़ा है। जीवन तो थोड़ी-सी चहल-पहल है। जैसे सागर में उठी लहर, नाची, गायी, उमड़ी – खो गयी ! ऐसा ही जीवन है।

उठती है लहर, नाचे, कूदे, शोरगुल मचाया – मैं हूं, तू है, न मालूम कितनी चर्चा, वार्ता, संघर्ष, युद्ध – खो गयी लहर !

अगर गौर से देखो तो परमात्मा अंधेरे जैसा ज्यादा है, प्रकाश की बजाय। और प्रेम मृत्यु जैसा ज्यादा है, बजाय जीवन जैसे। पर हम मृत्यु से भयभीत हैं, तो हम कहते हैं, प्रेम जीवन है। हम जीवन को पकड़ना चाहते हैं। हम जीवन को ग्रस लेना चाहते हैं। हम जीवन को सब भांति छाती से चिपटा लेना चाहते हैं। तो हम कहते हैं, प्रेम जीवन है। लेकिन यह कोई सत्य की प्रतीति नहीं है। जीवन बड़ा छोटा है; मृत्यु बड़ी विराट है !

आंखों को अपने पक्षपातों से मुक्त करो। सत्यों को देखो – जैसे हैं। पुनः आज की रात अंधेरे में बैठकर देखना; शायद अंधेरे का सौंदर्य तुमने देखा ही नहीं अब तक भय के कारण। अंधेरा बड़ा मखमली है। उसका स्पर्श बड़ा गुदगुदा है। उसके स्पर्श की कोमलता प्रकाश क्या पाएगा ! प्रकाश तो उत्तप्त है। अंधेरा बड़ा शीतल है !

अंधेरे को फिर से विचार करना। विचार नहीं करना – ध्यान करना। आज की रात आंख खोलकर अंधेरे में बैठ जाना और अंधेरे को जरा अनुभव करना। अंधेरे की अनुभूति तुम्हें मृत्यु की अनुभूति को भी सुखद बना देगी।

मृत्यु और अंधेरे को तुम अगर अहोभाव से स्वीकार कर पाओ तो तुम प्रेम के राज को समझ पाओगे, क्योंकि प्रेम भी अंधेरे की तरह सुखद है, शीतल है।

मगर हमारे सब शब्द हमारे भय से आंदोलित हैं। अगर हम किसी का स्वागत करते हैं तो हम कहते हैं, गर्म स्वागत ! ठंडा स्वागत नहीं। वार्म वैलकम। अब अगर किसी का ठंडा स्वागत करो तो

बात ही खराब हो गयी। ठंडक में ऐसी खराबी है ? तो फिर तुम्हारा असली स्वागत नरक में ही होगा। वार्म वैलकम !

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बीमार थी और उसके चिकित्सक ने कहा कि इसे गरम स्थान पर भेजना पड़ेगा। गरम आब-हवा की जरूरत है। तो उसने कहा कि 'ठीक है, तो कहां भेज दें ? अफ्रीका भेज दें ?' चिकित्सक ने कहा कि नहीं, उतनी गरमी से भी काम न चलेगा। तो मुल्ला ने कहा, 'कहां भेज दें फिर ?' तब उसे तत्क्षण खयाल आया। उसने कहा कि समझ गये, मगर गोली आपको ही मारनी पड़ेगी, मैं नहीं मार सकता। फिर नरक ही जगह है जहां एकदम उबलती हुई गरमी है।

तुम्हारा भय तुम्हारी भाषा में प्रविष्ट हो गया है, तुम्हारे सोचने के ढंग में प्रविष्ट हो गया है। तुम्हारे प्रतीकों को ग्रसित कर लिया है उसने।

फिर से विचारो !

मृत्यु से डर ! किस बात का डर है ? तुम्हारे पास क्या है जिसके खो जाने से तुम डरे हो ? है क्या ? कभी ऐसा सोचो कि मेरे पास है क्या, जो मृत्यु छीन लेगी ! तुम्हारे पास कुछ भी तो नहीं है, सिर्फ एक दम्भ है। बस वही छीन लेगी, और तो क्या छीनने को होगा ? और दम्भ भी कितनी कोरी चीज है – हवा का गुब्बारा है ! इसलिए तो जरा-जरा कोई छेड़ दे तो टूट जाता, फूट जाता। जरा-सा कोई कांटा चुभा दे तो प्राण निकल जाते हैं। जरा कोई हंस दे कि पीड़ा हो जाती है, घाव पर चोट लग जाती है।

दम्भ के अतिरिक्त और क्या है तुम्हारे पास जो मौत तुमसे छीन लेगी ?

प्रेम कहता है, अगर ऐसा ही है, अगर यही डर है, तो दम्भ तो प्रेम में ही छोड़ा जा सकता है, यह अहंकार तो प्रेम में ही डुबाया जा सकता है। फिर तो मौत का कोई डर ही न रह जाएगा। फिर तो तुम्हारे पास कुछ भी न बचेगा।

जिसने प्रेम को जाना उसने मृत्यु को जाना – और उसने यह भी जाना कि मृत्यु के पार कुछ है ! यह अहंकार ही तुम्हें जानने नहीं देता, जागने नहीं देता।

पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं
तम ने धोया नभ पथ
सुवासित हिमजल से
सूने आंगन में दीप
जला दिये झिलमिल से
आ प्रात बुझा गया कौन
अपरिचित, जानी नहीं।
मैं प्रिय पहचानी नहीं।

वही है जीवन में भी, मृत्यु में भी, जलने में भी, बुझने में भी, प्रकाश में भी, अंधकार में भी !

विभाजन मत करो ! अन्यथा रोओगे । कहोगे – मैं प्रिय पहचानी नहीं । उसी के हाथ हैं – बायां भी, दायां भी ! जो तुम्हें उठाता है वही तुम्हें वापस बुला लेता है । जन्म और मृत्यु के बीच में जो थोड़ा-सा अवसर है, लहर के उठने और गिरने के बीच में जो थोड़ी-सी सुविधा है, अवकाश है, उस अवकाश को तुम प्रेम से भर जाने दो ! अन्यथा अवसर खो गया ! अन्यथा तुम्हें किसी दिन कहना पड़ेगा आंसू भरी आंखों से –

पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं ।
अपरिचित, जानी नहीं ।
आ प्रात बुझा गया कौन
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

वही जलाता रात तारों को, वही सुबह बुझाता । हाथ बस उसी के हैं । जिसने ऐसा देखा – शुभ में, अशुभ में; सुन्दर में, असुन्दर में; सत्य में, असत्य में, साधु में, असाधु में, जिसने ऐसा देखा कि हाथ उसी के हैं, उसी ने बस देखा, उसी ने बस प्रिय को पहचाना ।

तीसरा प्रश्न : भगवान, आपके कहे-कहे भी बहुतेरे आपके संन्यासी ध्यान नहीं करते; कहते हैं, समझ काफी है । क्या उनकी यह समझ काफी है ?

● अक्ल बारीक हुई जाती है
रूह तारीक हुई जाती है !

सुनते-सुनते मुझे समझ बढ़ती हो, ऐसा तो पक्का नहीं है, समझदारी बढ़ती है, समझ का खयाल बढ़ता है, सोचना पैना होता जाता है । 'अक्ल बारीक हुई जाती है !'

लेकिन ध्यान रखना, यह अक्ल महंगा सौदा हो जाएगी, अगर साथ में यह खयाल न रहा कि 'रूह तारीक हुई जाती है', कि भीतर आत्मा अंधेरे में खोती जाती है, होश मिटा जाता है, बेहोशी छायी जाती है ।

ध्यान रखना, निश्चित ही समझ काफी है । मगर समझ हो तब ! ध्यान की कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि समझ ध्यान है । उससे बड़ा कोई नहीं । लेकिन समझ हो तब । अपनी-अपनी परख अपने-अपने भीतर कर लेना । किसी दूसरे का सवाल भी नहीं कि कोई दूसरा चिंतित हो । अगर किसी की समझ जग गयी है, बात खत्म हो गयी । किसी दूसरे को फिक्र भी क्यों हो कि वह ध्यान करता है या नहीं ? यह उसके ही अपने ही भीतर सोचने-समझने की बात है । अगर उसे लगता है, समझ जग गयी, दीया जल गया – बात खत्म हो गयी । अब न उसके जीवन में कोई दुख होगा न उदासी होगी । अब उसके जीवन में न कोई बैचनी होगी, न कोई अशांति होगी । अगर बेचैनी अभी भी हो, अशांति अभी भी हो, दुर्गंध अभी भी उठती हो, नरक की लपटें अभी भी पास आती मालूम पड़ती हों, तो फिर धोखा किसको दे रहे हो ? तो फिर जान लेना कि समझ नहीं है । तो फिर ध्यान से बचने

की कोशिश मत करना। क्योंकि ध्यान की चोट से ही समझ पैदा होगी। हो गयी हो, तब कोई जरूरत नहीं है।

अगर स्वर्णकार की आग से तुम गुजर गये हो, सोना निखर गया हो, तो फिर अब कोई जरूरत नहीं है; लेकिन अगर न गुजरे होओ तो बचाव मत करना यह कहकर कि मैं गुजर चुका, नहीं तो कचरा ही बचेगा हाथ में। और कचरा भी रूकता नहीं, बढ़ता है। हर चीज बढ़ती है। जिसे बचाओगे, वह धीरे-धीरे बढ़ता जाएगा, धीरे-धीरे सोने को ढक लेगा।

अगर समझ न हो तो इस भ्रांति में मत पड़ना कि समझ है।

कसौटी क्या है ? तुम्हारे पास जांचने के लिए उपाय क्या है ? जांचने का उपाय है : आनंद, शांति, समस्वरता, संगीत, संतुलन, सम्यकत्व। भीतर तुम देख लेना। अगर भीतर सन्तुलन है, कोई चीज डंवाती नहीं, डुबाती नहीं; हवा के झोके आते हैं, निष्कंप तुम बने रहते हो – बात खत्म हो गयी। फिर लाख दुनिया कहे कि ध्यान करो, प्रार्थना करो, पूजा करो – क्यों तुम करोगे ! सिर में दर्द हो तो औषधि लेना, बीमारी हो तो औषधि लेना।

ध्यान औषधि है। किसी के कहने से लेने की जरूरत नहीं है। क्योंकि लोग कह रहे हैं, क्योंकि और लोग ले रहे हैं, इसलिए करने की कोई जरूरत नहीं है। पर यह प्रत्येक का निपटारा उसके ही भीतर होगा।

यह प्रश्न किसी दूसरे ने पूछा है, यह भी बात ठीक नहीं। दूसरे को पूछने का हक ही नहीं है। तुम्हें दूसरे की समझ पर सन्देह करने की भी क्या जरूरत है ? अगर दूसरा कहता है, समझ जग गयी है, इसलिए ध्यान की जरूरत नहीं – जग गयी होगी। यह उसकी बात है। अगर न भी जगी होगी तो भी पछतावा उसे होगा कल, तुम क्यों परेशान हो ?

लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि जो ध्यान करता है वह चाहता है बाकी भी ध्यान करें। जिसकी पूंछ कटी, वह चाहता है औरों की भी कटे। स्वभावतः वह यह मान नहीं सकता कि 'हमारी हालत भी अभी ऐसी है कि ध्यान करना पड़े, तुम्हारी ऐसी है कि ध्यान की जरूरत नहीं रही ! करवाकर रहेंगे ! जरूर तुम धोखा दे रहे हो। हम नहीं पहुंचे अभी, तुम पहुंच गये ?' यह मानने का मन नहीं होता। इसलिए जो ध्यान करता है वह दूसरों को भी करवाएगा। मगर वह बात दुष्टता की है। उसमें सज्जनता जरा भी नहीं।

यह प्रश्न ही दूसरे के पूछने का नहीं है। कोई कहता है, समझ जग गयी है, इसलिए अब ध्यान की जरूरत नहीं रही – जग गयी होगी। सौभाग्य उसका ! तुम प्रार्थना करो भगवान से कि तुम्हारी भी जगे, तुम्हें भी जरूरत न रह जाए। यह तो उसके ही सोचने की बात है कि कहीं धोखा तो नहीं दे रहा है ! धोखा किसको दे रहा है ? यह किसी और का सवाल नहीं है। लेकिन धोखा देने वाले लोग हैं।

भय होता है ध्यान करने से। लगता है, 'यह पागलपन और हम करें ! यह नाच-कूद हम करें !' हरेक अपने को समझता है कि हमारी बड़ी प्रतिष्ठा है संसार में। हम जैसा प्रतिष्ठित आदमी, और नाचे, गाये, कूदे – यह शोभा नहीं देता ! लेकिन यह भी कहने की हिम्मत नहीं होती कि हम

भयभीत हैं, डर लगता है । हम कमजोर हैं । चाहते हैं करें, लेकिन नहीं कर पाते । इतने लोगों के सामने बेपर्दा होने की हिम्मत नहीं होती । एक झूठ को सिरताज बनाये हुए हैं । उघड़ने की, तथ्य को प्रगट करने की हिम्मत नहीं होती । इस तरह कूदकर चीख-पुकारकर हम जाहिर न करना चाहेंगे कि हमारे भीतर भी चीख-पुकार है । सारे संसार में लोग जानते हैं कि हम बड़े शांत हैं । लोग हमें सज्जन मानते हैं । लोग सोच भी नहीं सकते कि हमारे भीतर भी ऐसा पागलपन छिपा पड़ा हो सकता है । भय लगता है, कहीं प्रगट न हो जाएं, उघड़ न जाएं, कहीं नग्नता पता न चल जाए । वस्त्रों के भीतर नग्न हैं, लेकिन वस्त्रों में ढांका हुआ है ।

भय, लोकलाज, प्रतिष्ठा, अहंकार की प्रतिमाएं— वे सब बाधाएं हैं । मगर उनको तो स्वीकार करना ठीक नहीं; क्योंकि उनको जो स्वीकार कर ले, उसका तो ध्यान शुरू हो ही गया । जो यह कह दे कि मैं भयभीत हूं, इसलिए नहीं कर पा रहा हूं — इसके जीवन में तो समझ की शुरुआत आ ही गयी । इसने एक तथ्य तो देख लिया कि मैं भयभीत हूं । इसने झूठा दम्भ तो न किया । इसने सत्य को स्वीकृति दी । इसके जीवन में अब प्रामाणिकता प्रारम्भ हुई । यह ज्यादा दूर नहीं है, यह जल्दी ही आ जाएगा; समझ भी आएगी, ध्यान भी आ जाएगा । लेकिन यह कहता है, हमें जरूरत ही नहीं है... !

मेरे पास लोग आते हैं । वे कहते हैं कि दूसरों को करते देखते हैं ध्यान, लगता है कुछ हो रहा है; मगर हम नहीं कर पाते, संकोच है । एकांत में नहीं कर सकते हैं ?

जो मूल बात है कि दूसरों से छिपाना है, उसको ही तो तोड़ना है । तुम एकान्त में भी न कर सकोगे, क्योंकि वहां भी डर लगा रहेगा : कर तो रहे हैं, कोई पड़ोसी न सुन ले; कहीं पत्नी बीच में न आ जाए और कहे, यह तुम क्या कर रहे हो — पति और परमेश्वर होकर ! यह तुम क्या कर रहे हो — हू-हू-हू ! दिमाग तो दुरुस्त है कि डाक्टर को बुलाऊं ?

वहां भी डर समाया रहेगा । कहीं बच्चे न आ जायें — पिताजी ! जो सभी कुछ जानते हैं, अब ऐसे अबोध हो रहे हैं ।

डर लगता है । डर के कारण न करते होओ तो कम-से-कम स्वीकार तो करो कि डर है ।

कुछ आते हैं, वे कहते हैं कि हमें तो शांत ध्यान बता दीजिए । शांत ध्यान तुमसे अभी हो न सकेगा । अशांति बहुत दबी पड़ी है, उसे निकालना है । वे कहते हैं, ये हमें जंचते नहीं ।

'तुमने किये ?'

'नहीं, किये भी नहीं हैं ।'

'तो जंचता क्यों नहीं है ?'

भीतर दावानल है । भीतर ज्वालामुखी है । तुम डरते हो कि फूट जाएगा, निकल जाएगा बाहर । किसी तरह अपने को सम्हाले रहे । किसी तरह प्रतिष्ठा बनायी है, प्रतिमा बना ली है ।

जैन मुनि मेरे पास आते हैं । कुछ तेरापंथी जैन साधु आए । प्रतिष्ठित साधु हैं । सारे देश में उनका नाम है । वे कहने लगे कि ध्यान तो करना है, लेकिन किसी को पता न चले — श्रावकों को पता न चले ! मैंने उनको कहा कि 'श्रावकों से तुम डरते हो ! श्रावक तुमसे डरें, समझ में आता है ।

तुम श्रावकों से डरते हो ?' हंसने लगे। कहने लगे, आप बात तो ठीक कहते हैं, लेकिन हम उनपर निर्भर हैं। और वैसे तो वे इस पक्ष में भी नहीं हैं कि हम आपके पास आएं। हम चोरी-छिपे आये हैं। एक श्रावक आपका भक्त है; वह ले आया है। उसके घर गये थे। यहां का तो किसी को पता नहीं है; कहीं का और बताकर बीच में आ गये हैं। लेकिन ध्यान करना है।

उनकी पीड़ा मैं समझता हूं।

मैंने उनको कहा कि कोई बात नहीं, चलो, एकांत कमरे में ध्यान कर लो। जाते वक्त कहने लगे, पर एक खयाल रखना कि कोई फोटो न ले ले। मैंने कहा, 'यह तो होगा। फोटो तो ली जाएगी। इतना तो करने दो।' उनकी फोटो ले ली है। बाद में मुझे मिलने आये थे। कहने लगे, आप किसी को बताना मत! मैंने कहा कि मैं किसी को बताऊं तो भी आप रोक न सकोगे, फोटो है।

इतना भय है — साधु-संन्यासी जिसको कहते हैं, उसको! गृहस्थ की तो बात ही छोड़ दो।

भय के कारण अगर तुम समझदारी की बातें कर रहे हो तो तुम धोखा अपने को दे रहे हो। और निश्चित ही तुम समझदारी की बातें करना चाहो तो खूब कर सकोगे। मुझे सुनते-सुनते समझ तो नहीं आए, समझदारी तो आ ही जाती है। समझदारी समझ का धोखा है। समझदारी खोटा सिक्का है।

> सुहबते-रिंदा से वाइज कुछ न हासिल कर सका
> बहका-बहका-सा मगर तर्जेकलाम आ ही गया।
> शराबियों के साथ भी रहे —
> सुहबते-रिंदा से वाइज कुछ न हासिल कर सका

वह धर्मोपदेशक शराबियों के साथ भी रहा, मस्तों के साथ भी रहा कुछ हासिल तो न कर सका। क्योंकि मस्ती हासिल करने के लिए तो पहले कुछ खोना पड़ता है; वह तो महंगा सौदा है। वह तो हिम्मतवरों का काम है। वह तो जुआरियों का मामला है, दुकानदारों का नहीं।

> सुहबते-रिंदा से वाइज कुछ न हासिल कर सका
> बहका-बहका-सा मगर तर्जेकलाम आ ही गया।

लेकिन शराबियों की बातें सुनते-सुनते कहने का बहका-बहका ढंग तो आ ही गया।

बस उतना ही हो रहा है — बहुतों को। इधर शराब की चर्चा चलती है, उधर 'तुम्हें बहका-बहका सातर्जेकलाम आ ही गया', उधर तुम ऊंची बातें करने लगते हो। बात में तुमसे कोई जीत न सकेगा, यह बात पक्की है। मगर ध्यान रखना, कहीं बात ही बात में तुम अपने को मत गंवा बैठना! तो यह बात फिर महंगी हो जाएगी।

चौथा प्रश्न : भगवान, मैं आपका एक साधक हूं, लेकिन संन्यस्त नहीं हुआ। फिर भी क्या मेरी मृत्यु के क्षण में आप धक्का देने आएंगे? यदि हां, तो मुझे उस क्षण की तैयारी के लिए क्या करना चाहिए?

● संन्यास... !

क्योंकि जो तुम जिंदगी में न पा सकोगे उसे मरकर पा सकोगे, इसकी संभावना कम है। अगर तुम जिंदगी में मेरे साथ न हो सके तो मुझसे तुम आशा रखो कि मौत में तुम्हारे साथ रहूंगा – जरा जरूरत से ज्यादा आशा कर रहे हो। नहीं कि मेरी तरफ से कोई बाधा है। मैं कोशिश करूंगा। लेकिन जब जिंदगी में तुम साथ न हो सके तो मृत्यु में तुम मेरे साथ को ले सकोगे ? जब होश में थे तब मेरे साथ को न ले सके तो जब तुम बेहोशी में खोने लगोगे, तुम तब सहयोग कर सकोगे ? कठिन होगा तुम्हारी तरफ से। मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं है। मेरी तरफ से आश्वासन है। लेकिन मैं कुछ कर न पाऊंगा। मैं चिल्लाऊंगा और तुम न सुनोगे। मैं हाथ पकडूंगा, और तुम हाथ छुड़ाओगे। मैं तुम्हें धक्का दूंगा और तुम मुझे दुश्मन जानोगे।

जब जिंदगी में तुम हिम्मत न जुटा सके, जब होश था, जब थोड़ी समझ थी, जब थोड़ा प्रकाश था – जब तुम प्रकाश में मुझे न पहचान सके तो अंधेरे में तुम मुझे पहचान लोगे ? कठिन हो जाएगा।

करेंगे मर के बका-ए-दवाम क्या हासिल
जो जिंदा रह के मुकामे हयात पा न सके।

मरकर, सोच रहे हो कि जीवन का लक्ष्य मिलेगा ! जीवन का लक्ष्य जब जीवित रहते न मिल सका... !

नहीं, ऐसी भूल मत करो। अभी समय है। देर हुई, पर बहुत देर कभी भी नहीं हुई है। अब यहां आ ही गये हो तो रीते मन लौट जाओ।

पनघट तक आ कर भी गागर
रीती लौट रही है !
इसे शीश पर धर कर लायी
पनिहारिन बेचारी
सींचूंगी तुलसी का चौरा
आंगन की फुलवारी
पर माटी की इस काया में
ओझल छेद कहीं है
पनघट तक आ कर भी गागर
रीती लौट रही है !
साधक हो, अब संन्यस्त हो कर ही लौटो !

संन्यास का अर्थ क्या है ? इतना ही अर्थ है कि तुम्हें मुझ पर भरोसा है। और क्या अर्थ है ? इतना ही अर्थ है कि तुम अपना हाथ मेरे हाथ में देने को राजी हो – बेहिचक। पागलपन भी करवाऊं तो भी तुम भरोसा रखोगे कि कुछ मतलब होगा।

भरोसे के अतिरिक्त संन्यास का कोई और अर्थ नहीं है। इस भरोसे में ही तुम्हारे खो जाने का उपाय होने लगता है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम संन्यास के लिए तैयार हैं, लेकिन दो बातें हम न कर सकेंगे – माला और गेरुआ न पहनेंगे। तो मैं उनसे पूछता हूं, 'तो फिर तैयारी और क्या है? आपकी माला बनाकर मुझे पहनाएंगे? संन्यास का फिर अब क्या मतलब है? फिर मुझे आपके हिसाब से चलना पड़ेगा – क्या करना, यह साफ-साफ कर लें, नहीं तो पीछे झंझट हो, अदालत जाना पड़े। सोचा क्या है तुमने?'

जानता हूं मैं भी कि कपड़ों से क्या होता है, माला से क्या होता है! यह मुझे भी पता है। कुछ कपड़े और माला पहनने से तुम स्वर्ग पहुंच जाओगे, ऐसा भी नहीं है। लेकिन कपड़ा और माला तो सिर्फ इंगित है तुम्हारी तरफ से कि पागल होने की तैयारी है, कि अब हम राजी हैं, कि अगर दीवाना बनाओगे तो उसके लिए भी राजी हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बैठा था अपने घर के द्वार पर। एक कार रुकी। आदमी रास्ता भूल गया था और उसने पूछा कि बम्बई की तरफ जाने का रास्ता... । तो मुल्ला ने उसे ठीक-ठीक सूचनाएं दीं, कि पहले बाएं जाओ, फिर चौरस्ते से दाएं मुड़ना, फिर... । कोई दो घंटे बाद वह आदमी फिर वापस आया। वहीं मुल्ला बैठा था। उसने पूछा, 'हद हो गयी! तुम्हारी एक-एक सूचना का ठीक-ठीक पालन किया, वहीं के वहीं आ गये।' मुल्ला ने कहा, 'अब तुमको ठीक सूचना दूंगा। यह तो केवल परीक्षा थी कि तुम्हें सूचनाएं पालन करने की अक्ल भी है या नहीं।'

यह माला और गेरुआ – यह तो तुम घूमकर यहीं आओगे। इससे कहीं तुम परमात्मा तक नहीं पहुंच जाने वाले। मगर यह तो केवल सूचना थी कि देखें पालन कर सकते हो, फिर कुछ आगे की बात करें। यह ही न संभलती हो तो फिर भैंस के सामने बीन बजाना ठीक नहीं।

संन्यास का कुल इतना अर्थ है कि तुम कह सको –

यह कौन छा गया है दिलो-दीदा पर कि आज
अपनी नजर में आप हैं नाआशना से हम!

तुम अपनी ही नजर में अपने प्रति ऐसा अनुभव करने लगो कि खुद से अजनबी हो गये हो। तुम्हें तुमसे दूर करना है। मेरे पास तुम्हें करने के उपाय का कोई और अर्थ नहीं है, तुम्हें तुमसे दूर करना है। मेरे पास तुम हो जाओ, यह तो केवल विधि है, ताकि तुम अपने से दूर हो जाओ।

यह कौन छा गया है दिलो-दीदा पर कि आज – यह कौन हृदय पर और आंखों पर छा गया है, अपनी नजर में आप हैं नाआशना से हम – कि अपनी ही नजर में अपने से दूर हुए जाते हैं। बस इतना ही अर्थ है।

पांचवां प्रश्न : एक पुरानी धारणा है कि महानुभाव और श्रेष्ठजन यदि अपने से छोटों को प्रणाम करें तो उससे छोटों को पाप लगता है। स्पष्टतः इससे उनके अहंकार को पोषण मिलेगा। फिर क्यों आप प्रतिदिन प्रवचन के लिए आने पर और फिर विदा लेते हुए भी हाथ जोड़कर हमें प्रणाम करते हैं?

● – ताकि तुम्हें याद बनी रहे कि तुम छोटे नहीं हो; ताकि तुम्हें याद बनी रहे कि तुम भूल भला

गये होओ, तुम्हारा स्वरूप भगवान का है; ताकि तुम्हें याद बनी रहे कि भगवत्ता तुम्हारी संपदा है। हां, अगर तुम अपना अहंकार बढ़ा लो तो भूल हो जाएगी। और अगर तुम अपनी भगवत्ता को जगा लो तो पुण्य हो ज़ाएगा।

पाप और पुण्य तो तुम्हारी दृष्टि पर निर्भर हैं। मेरे लिए कोई उपाय नहीं है सिवाय इसके कि तुममें भगवान को देखूं। जैसे ही जो अपने में देखा, वही सब में दिखायी पड़ना शुरू हो जाता है।

सीधी-तिरछी हर रेखाएं
तेरा रूप उभर आता है
चाहा कितनी बार कि कोई
अन्य दूसरा चित्र बनाऊं
तेरी आकृति की कारा से
अपने मन को मुक्त कराऊं
पर हर दर्पन में तेरा
प्रिय प्रतिबिम्ब उतर आता है।

तुम्हें देखता हूं जरूर, पर तुम दिखायी नहीं पड़ते वहां, जो दिखायी पड़ता है उसी को प्रणाम करता हूं। तुम भी धीरे-धीरे मेरे प्रणाम के सहारे उसकी खोज करो। इस भूल में मत पड़ना कि तुम्हें प्रणाम किया है। तो अहंकार बढ़ेगा। तो भूल हो जाएगी। तो तुमने फूलों को भी कांटा बना लिया।

तुम्हें प्रणाम किया है – तुम्हें नहीं, तुम्हारे स्वभाव को; तुम्हारी धारणा को नहीं कि तुम कौन हो – तुम्हारे सत्य को कि वस्तुतः तुम कौन हो। तुम भी उसी की याद करना। उसकी याद उठने लगे तो मेरे प्रणाम से तुम्हारी खोज को बड़ी गति आ जाएगी।

आखिरी प्रश्न : कब, किस घड़ी में संन्यासी शिष्य के भीतर से अपेक्षा का भाव पूर्णतया गिर जाता है ?

● अपेक्षा तब तक रहेगी जब तक तुम्हें अनुभव नहीं हुआ कि जीवन में कुछ भी मिलने को नहीं है। जीवन केवल आश्वासन देता है, पूरा नहीं करता। जीवन एक धोखा है। दूर से लगते हैं बड़े मरूद्यान, पास आने पर मरुस्थल सिद्ध हो जाते हैं। दूर से लगता है बड़ा सौंदर्य। दूर के ढोल बड़े सुहावने ! पास आने पर सब कुरूप हो जाता है।

जितना तुम्हारा यह अनुभव गहरा होने लगेगा कि सब सौंदर्य दूरी का है, और जीवन का सारा रस भविष्य में है, वर्तमान में कभी भी नहीं है; लगता है मिला, मिला, मिला, मिलता कभी नहीं; पास आते मालूम पड़ते हो, पहुंचते कभी नहीं। यह मंजिल कुछ ऐसी है कि दूर हटती चली जाती है। जैसे क्षितिज है, आकाश छूता है पृथ्वी को, लगता है यह दस-पांच मील के फासले पर छू रहा है; बढ़ो, बढ़ता जाता है – दूरी सदा उतनी ही रहती है। जिस दिन तुम्हें यह प्रतीति होगी जीवन की सर्वांगीण दिशाओं से कि यहां सब सिर्फ निमंत्रण है, आशा है, पूरा कुछ भी नहीं होता, उसी दिन तुम्हारी अपेक्षा गिर

जाएगी। अपेक्षा गिरते ही संसार तिरोहित हो जाता है। क्योंकि अपेक्षा में ही संसार है। आशा में ही संसार है। और जैसे ही संसार तिरोहित हो जाता है, तुम अचानक पाते हो : तुम परमात्मा से घिरे हो।

मैं तुमसे यह कह रहा हूं — यह बड़ा मुश्किल होगा समझना — मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि जिस दिन तुम्हें यह समझ में आ जाएगा कि यह पृथ्वी आकाश को क्षितिज पर छूती ही नहीं, उसी दिन तुम अचानक पाते हो कि तुम्हारे भीतर से आकाश ने पृथ्वी को छुआ है; यहीं छुआ है, कहीं जाने की जरूरत न रही।

सुधा कल्पना मात्र, गरल का
दावा सोलह आने सच है
सुधा कल्पना मात्र, गरल का
दावा सोलह आने सच है
कभी किसी ने चखा न देखा
केवल नाम चला आता है
पर विष बिकता चौराहे पर
जो खाता है, मर जाता है।
सुधा कल्पना मात्र, गरल का
दावा सोलह आने सच है।

जिस दिन तुम्हें यह दिखायी पड़ेगा कि संसार में सुधा तो केवल कल्पना मात्र है, अमृत को केवल बातचीत है, सपना है; जहर सत्य है — उसी दिन हाथ रुक जाएंगे; उसी दिन तुम गरल को पीने से रुक जाओगे। रोकना पड़ेगा, ऐसा भी नहीं — बस रुक जाएंगे हाथ। जानकर कोई गरल को पी सका है ? जहर को जानकर कोई पी सका है ? पीते हो तुम इसी आशा में कि जहर नहीं है, अमृत है। होगा जहर, मानते हो अमृत, इसलिए पीते हो।

जहां-जहां तुमने अब तक सुख चाहा था, वहां-वहां सुख मिला ? जब मिलता है तब दुख मिलता है। लेकिन अदभुत हो तुम ! फिर-फिर तुम आगे उसी-उसी में फिर सुख मांगने लगते हो। तुम पाठ लेते ही नहीं।

महाभारत में कथा है कि पांडव वन में भटक रहे हैं, अज्ञातवास के समय। प्यास लगी है। एक भाई झील पर गया है। झुका ही था पानी भरने को... स्वच्छ स्फटिक जैसी झील, उत्तप्त कंठ, भाई प्यासे मर रहे हैं, कि अचानक एक आवाज आयी। यक्ष, कोई प्रेतात्मा झील की, बोली, 'रुक ! जब तक मेरे प्रश्नों का उत्तर न देगा तब तक अगर पानी को छुआ तो मर जाएगा। मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दे, फिर पानी ले जा सकता है।

पूछा, 'क्या प्रश्न हैं ?' प्रश्न ऐसे थे कि उत्तर भाई न दे पाया और पानी ले जाने की कोशिश की, गिर पड़ा । पहला प्रश्न यह था कि मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार क्या है ! ऐसे चार भाई आए और गिर गये, फिर युधिष्ठिर का आना हुआ। वही सवाल। यक्ष ने कहा, 'ये चार मरे पड़े हैं। यही गति तुम्हारी भी होगी। मेरे प्रश्नों का पहले उत्तर दे दो, क्योंकि मैं यहां उलझन में पड़ा हूं।

मेरी उलझन यह है कि मुझे अभिशापित किया गया है कि जब तक मैं इन पांच प्रश्नों के उत्तर न लाऊंगा, तब तक मुझे इसी प्रेतात्मा में आबद्ध रहना पड़ेगा। मैं पूछ-पूछ मरा जा रहा हूं, सदियां बीत गयीं, कोई उत्तर नहीं देता। मेरे छुटकारे का क्षण दूर हटा जा रहा है। अगर तुम उत्तर दोगे तो ही इस झील से पानी पी सकोगे। यह झील तरकीब है मेरी। और इस झील के आसपास दूर-दूर तक मैंने सूखा फैला रखा है, कि जो भी आये, प्यासा हो, जल की तलाश में झील तक आये, मेरे जाल में फंसे। तुम उत्तर दे दो। मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार क्या है?

युधिष्ठिर ने कहा कि मनुष्य अनुभव से भी सीखता नहीं। और कहते हैं कि यक्ष राजी हो गया। यही उत्तर है। मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी बेबूझ घटना यही है कि रोज तुम सुख मांगते हो, रोज दुख पाते हो, फिर वही सुख मांगते हो। सोचते हो अमृत पी रहे, कंठ में जाते ही गरल हो जाता है। रोज-रोज यह होता है, फिर से रोज-रोज वही प्याली भर लेते हो, रोज-रोज उसी रस से भर लेते हो जिससे कल भी दुख पाया था, परसों भी दुख पाया था, पिछले जन्मों में भी दुख पाया था। जिस क्षण तुम्हें यह बोध हो जायेगा, उसी क्षण अपेक्षा गिर जाती है। प्याली हाथ से छूट जाती है। संन्यास इस परम प्रज्ञा का नाम है।

आज इतना ही।

हृदय-सरोवर का कमल है भक्ति

पंद्रहवां प्रवचन

सूत्र

अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ ।।५८।।
प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयंप्रमाणत्वात् ।।५९।।
शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च ।।६०।।
लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्मलोकवेदत्वात् ।।६१।।
न तदसिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फलत्यागस्तत्साधनं च कार्यमेव ।।६२।।
स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रं न श्रवणीयम् ।।६३।।
अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम् ।।६४।।
तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम् ।।६५।।

भक्ति तो एक है।

बुद्ध ने कहा है, जैसे सागर को कहीं से भी चखो, खारा है : ऐसा ही सत्य भी है – एक स्वाद है, एक रस है। फिर भी नारद ने भक्ति के तीन विभाजन किये हैं। पराभक्ति के वे विभाजन नहीं हैं, गौणी भक्ति के विभाजन हैं।

तो पहला विभाजन : पराभक्ति मुख्याभक्ति; वह तो एक स्वरूप है। फिर गौणीभक्ति : दोयम, नीची, मनुष्यों के अनुसार। चूंकि मनुष्य तीन प्रकार के हैं, इसलिए स्वभावतः उनकी भक्ति भी तीन प्रकार की हो जाती है।

प्रकाश का तो एक ही रंग है, लेकिन कांच के टुकड़े से प्रकाश निकल जाए तो सात रंग का हो जाता है – कांच उसे सात रंगों में विभाजित कर देता है। ऐसे ही तो इन्द्रधनुष बनता है। वर्षा के दिनों में, हवा में, वायुमण्डल में छोटे-छोटे पानी के कण झूलते होते हैं; उन पानी के कणों से निकलती सूरज की किरण सात हिस्सों में टूट जाती है। तो वर्षा के दिन हों, सूरज निकला हो, इन्द्रधनुष बन जाता है। किरण तो एकरंगी है, लेकिन सप्तरंगी हो जाती है।

भक्ति तो एकरंगी है, लेकिन मनुष्य तीन तरह के हैं; इसलिए गौण अर्थ में भक्ति तीन तरह की हो जाती है। उन्हें भी समझ लेना जरूरी है, क्योंकि बड़ी बहुमूल्य बात उनमें छिपी है।

सत्त्व, रज, तम – ऐसे तीन मनुष्य के विभाजन हैं। स्वभावतः आदमी जो भी करेगा, उसका कृत्य उससे प्रभावित होता है। सात्त्विक भक्ति करेगा तो सत्त्व के हस्ताक्षर होंगे। राजसी भक्ति करेगा तो भक्ति में भी राजस गुण समाविष्ट हो जाएगा। तामसी भक्ति करेगा तो तमस से बचा न सकेगा अपनी भक्ति को।

सात्त्विक भक्ति का अर्थ होता है : व्यक्ति पापों के विमोचन के लिए, अंधकार से मुक्त होने के लिए, मृत्यु से पार जाने के लिए भक्ति कर रहा है। भक्ति में आकांक्षा है सात्त्विक पुरुष की भी, इसलिए वह पराभक्ति नहीं। पराभक्ति में तो कोई भी आकांक्षा नहीं है – सत्त्व की भी नहीं है। पराभक्ति में तो परमात्मा को पाने की आकांक्षा भी नहीं है। क्योंकि जहां आकांक्षा है, वहां मनुष्य आ गया। तुम्हारी आकांक्षा तुम्हारी है। तुम्हारी आकांक्षा से जो भी गुजरेगा, तुम्हारी आकांक्षा के रूप को ले लेगा। तुम्हारी आकांक्षा उसे विकृत कर देगी। तुम्हारी आकांक्षा उसे शुद्ध न रहने देगी। उसका कुआंरापन

खो जाएगा।

आकांक्षा भ्रष्ट करती है। तो सत्त्व की आकांक्षा भी यद्यपि बड़ी ऊंची आकांक्षा है, पर कितनी ही ऊंची हो, गौरीशंकर की चोटी कितनी ही ऊंची हो, ऐसे पृथ्वी का ही हिस्सा है। आकाश में कितनी भी ऊपर उठ जाए तो भी आकाशरूप नहीं हो गयी है। तो सात्त्विक की भक्ति बड़ी ऊंची उठती है, गौरीशंकर बन जाती है, लेकिन फिर भी जुड़ी तो पृथ्वी से ही रहती है। आकांक्षा के जाल से संबंध बना रहता है। अभी भी मन में कुछ पाने का खयाल होता है – परमात्मा सही, मोक्ष सही; लेकिन पाने का खयाल होता है। और जहां तक पाने का खयाल है, वहां तक संसार है।

तुम अगर मोक्ष को भी चाहोगे तो तुम्हारा मोक्ष तुम्हारे संसार का ही फैलाव है। तुम मोक्ष की भी कल्पना क्या करोगे? तुम्हारे कांच के टुकड़े से, तुम्हारी आकांक्षा के टुकड़े से गुजरकर मोक्ष भी मोक्ष न रह जाएगा। तुम मोक्ष में भी अगर मांगोगे तो फिर-फिर संसार को ही मांग लोगे, थोड़ा सुधार कर, थोड़ा रंग-रोगन बदलकर। लेकिन तुमसे ही जुड़ा रहेगा तुम्हारा मोक्ष । इसीलिए तो तुम्हारा मोक्ष स्वर्ग के रूप में प्रगट होता है, मोक्ष के रूप में नहीं।

मनुष्य की आकांक्षा से गुजरकर मोक्ष पतित हो जाता है, स्वर्ग बन जाता है। स्वर्ग, मोक्ष का पतन है। स्वर्ग का अर्थ है कि तुमने संसार में जो चाहा था और न पा सके थे, उसे तुम अब परलोक में चाहते हो। सुन्दर स्त्रियां चाही थीं, न मिल सकीं; मिलीं, सुन्दर सिद्ध न हुईं। जिन्हें नहीं मिलीं वे भी तड़फकर मरे; जिन्हें मिलीं, वे और भी तड़फकर मरे। सुन्दर पुरुष चाहे थे, न मिल सके; जो मिला, उसी को कुरूप पाया; जो मिला, उसी को क्षुद्र में ग्रसित पाया। आकांक्षा शेष रह गयी, भरी न। मन तड़फता रह गया, प्यास बुझी न। बहुत घाटों से पानी पिया, लेकिन कोई पानी मन को न भाया, कोई पानी रास न आया। घाट तो बहुतेरे मिले, लेकिन ऐसा कोई घाट न मिला कि घर बन जाता।

तो तुम्हारे स्वर्ग में अप्सराएं पैदा हो जाएंगी। वह तुम्हारी ही वासना का विस्तार है। तो तुम स्वर्ग में रच लोगे उन स्त्रियों को जो तुम यहां न पा सके। चूंकि स्वर्ग के सारे चित्र पुरुषों ने बनाये हैं, इसलिए अप्सराएं हैं। अगर स्त्रियां बनातीं तो स्वभावतः सुन्दर पुरुषों को रचतीं। अप्सराएं ऐसी कि सोलह वर्ष पर उनकी उम्र ठहर जाती है, फिर बढ़ती नहीं। उर्वशी अभी भी सोलह ही साल की है, सदियों पहले भी सोलह साल की थी, सदियों बाद भी सोलह साल की रहेगी! मनुष्य की आकांक्षा थी कि स्त्री सोलह पर ठहर जाती। कोई स्त्री वहां ठहरती नहीं, हालांकि स्त्रियां ठहरने की कोशिश भी करती हैं। सोलह के बाद बड़ी मुश्किल से बढ़ती हैं, बड़ी बेचैनी से बढ़ती हैं, दो-दो तीन-तीन चार-चार साल में एक-एक साल बढ़ती हैं – फिर भी बढ़ना तो पड़ता ही है। समय किसी को क्षमा नहीं करता। मौत को पीछे हटाने का कोई उपाय नहीं है। युवावस्था को सदा पकड़े रखने की कोई सुविधा नहीं। यहां तो सभी हाथ से खोया चला जाता है।

तो फिर स्वर्ग तो है; वहां तो हमारे स्वप्न ही साकार हुए हैं। वहां तो कोई समय बाधा देने को नहीं है। वहां तो कोई मौत द्वार पर नहीं दस्तक देती। वहां तो बुढ़ापा आकर खड़ा नहीं हो जाता। स्वर्ग में स्त्रियों के शरीर से पसीने की बदबू नहीं आती, सुगंध आती है, सुवास आती है। चाहा हमने यहां था, हो न सका। बहुत इत्र-फुलेल छिड़के, बहुत सुगंधियां खोजीं, फिर भी पसीने की बू छिपाये

छिपती नहीं, प्रगट हो ही जाती है। शरीर की गंध, कितना ही भुलाओ, भूलती नहीं।

स्वर्ग में, पहली तो बात, पसीना निकलता ही नहीं। शीतल समीर! सुबह ही बना रहता है, दोपहर नहीं होती। और शरीर से सुगंध आती है। स्वर्ण-कायाएं हैं स्वर्ग में। और सोने में सुगंध है।

मुसलमानों के स्वर्ग में शराब के चश्मे हैं। बड़े मजे की बात है। यहां धर्मगुरु कहते हैं, शराब छोड़ो – और स्वर्ग में शराब के झरनों का भरोसा दिलाते हैं। आदमी का मन तो देखो! छोड़ता भी है तो पाने के लिए ही छोड़ता है। यह भी कोई छोड़ना हुआ? एक हाथ से छोड़ा नहीं, दूसरे हाथ से पकड़ लिया। और यहां प्यालियां छोड़ता है, शराब यहां प्यालियों में मिलती है, झरने और नदियां नहीं बहतीं – स्वर्ग में नदियां बहाता है। यहां तो शराब तुम्हें अपने में उतारनी पड़ती है, वहां तुम शराब में उतर जाओगे। डुबकियां लेना, तैरना!

उमर खय्याम ने कहा है कि धर्मगुरुओ, अगर यह बात सच है कि स्वर्ग में शराब है तो थोड़ा हमें यहां अभ्यास कर लेने दो। तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे; न तुम्हें पीना आता है, न पिलाना आता है। तुम वहां करोगे भी क्या? तुम्हारा अभ्यास विपरीत है।

उमर खय्याम ने ठीक ही मजाक की है। उमर खय्याम एक सूफी संत था, कोई शराबी नहीं। शराब तो उसका प्रतीक है परमात्मा के लिए। वह यह कह रहा है कि अगर परमात्मा उस लोक में मिलता है तो हमें उसका स्वाद यहीं लेने का अभ्यास करना होगा। अगर यहां अभ्यास न किया तो वहां पहुंच कर भी उसका स्वाद न ले सकोगे, भोग न कर सकोगे। छोड़ो वहां की फिक्र! यहां उसके स्वाद में रमो। तब जब उसके झरने बहने लगें तो तुम डुबकी भी ले सको। अगर यहां डरे शराब से, हाथ-पैर कंपे, तौबा-तौबा करते रहे, तो वहां जब झरने देखोगे बहते तो तुम्हारे तो प्राण सूख जाएंगे। तुम्हें तो जगह न मिलेगी बचने की।

लेकिन शराब छोड़ी है यहां बड़े बेमन से, इसलिए स्वर्ग में उसका इन्तजाम कर लिया है।

हिन्दुओं ने कल्पवृक्ष बना रखा है स्वर्ग में। यहां जो-जो नहीं मिलता, सब कल्पवृक्ष के नीचे मिल जाएगा। कल्पवृक्ष का अर्थ ही यह होता है कि उसके नीचे बैठते से ही वासना पूरी हो जाती है। वासना पूरी करने को कोई कृत्य नहीं करना पड़ता। यहां संसार में तो बड़ा दौड़ो, फिर भी नहीं पहुंचते – यह हमारा अनुभव है सभी का। कितना श्रम करो, फिर भी फल क्या हाथ लगता है! राख रह जाती है हाथों में! सिकंदर भी खाली हाथ मरते हैं। धूल भरी रह जाती है मुंह में। कब्र प्रतीक्षा कर रही है। कितने ही दौड़ो, कितनी ही चेष्टा करो, अन्ततः कब्र में ही गिर जाते हो। छोटे गिरते वहीं, बड़े गिरते वहीं, भिखारी और सम्राट गिरते वहीं, गरीब और अमीर गिरते वहीं, ज्ञानी और मूढ़ गिरते वहीं – सब मौत में गिर जाते हैं, सब धूल-धूसरित हो जाते हैं। कितना श्रम करो, मिलता क्या है?

यह हमारा संसार का अनुभव है, तो हमने स्वर्ग में कल्पवृक्ष बनाया। वहां श्रम नहीं करना पड़ता। इधर तुमने सोचा उधर पूरा हुआ। सोचने और पूरे होने में क्षण का भी फासला नहीं होता। इधर उठा भाव उधर फल हुआ। जीवन का अनुभव यह है कि जिंदगीभर भाव करो, दौड़ो, श्रम करो, उपाय करो, आयोजन करो – सब निष्फल, सब निष्फल! इसके विपरीत हमने स्वर्ग में कल्पवृक्ष बनाये। कुछ भी न करो, सिर्फ सपना उठे, सिर्फ लकीर उठे भाव की, इधर भाव उठ नहीं पाया, तुम जान भी न

पाओगे, तुम जाग भी न पाओगे कि भाव उठा कि बाहर फल उपस्थित हो जाएगा। यह सांसारिक मन की ही आकांक्षा है।

इसलिए सारी दुनिया के स्वर्ग अलग-अलग हैं, क्योंकि हर मुल्क के रहनेवाले के जीवन के दुख-सुख के अनुभव अलग हैं।

तिब्बत का स्वर्ग सूर्य-प्रदीप्त है, रोशनी ही रोशनी है, उत्तप्त है, क्योंकि तिब्बत बर्फ की पीड़ा से पीड़ित है। हिन्दुओं का स्वर्ग, शीतल बहार, सुबह की ठंडी हवा, वातानुकूलित है। हिन्दू परेशान हैं सूरज से। आग-वगैरह का इन्तजाम तो नरक में किया है दूसरों के लिए। स्वभावतः जो हमारा दुख है यहां, वह हमने नरक में; और जो हमने चाहा था, जो सुख था, हमारी कामना था, उसे हमने स्वर्ग में...।

स्वर्ग तुम्हारी कामना है, तुम्हारी चाह की कल्पना है, तुम्हारी चाह का काव्य है, तुम्हारा रोमांस है। नरक : तुम्हारी पीड़ा का इकट्ठा जोड़। तुमने बांट दिया। सारी पीड़ा नरक में रख दी और सारे सुख स्वर्ग में रख दिये – और बिना यह जाने कि सुख और दुख साथ-साथ होते हैं; अलग-अलग नहीं। जहां सुख वहां दुख। जहां दुख वहां सुख। क्योंकि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं : अलग-अलग होते ही नहीं।

सुन्दर स्त्री में ही कुरूप स्त्री छिपी है। सुन्दर पुरुष में ही कुरूप छिपा है। जीवन में ही मौत खड़ी है। जवानी में ही बुढ़ापा झांक रहा है। जरा गौर से देखो तो जवानी में ही तुम्हें बुढ़ापा झांकता हुआ दिखायी पड़ जाएगा। ठेठ भरी जवानी में तुम्हें झुकी कमर, हाथ में लकड़ी टेकता हुआ बूढ़ा दिखायी पड़ जाएगा। जरा गौर से देखो, सुन्दरतम देह में तुम्हें अस्थि-कंकाल दिखायी पड़ जाएंगे। जरा गौर से देखो, जहां तुम्हें यौवन की विभा दिखायी पड़ती है, वहीं तुम्हें चिता की लपटें दिखायी पड़ जाएंगी। थोड़ी गहरी आंख चाहिए। जरा देखने की गहराई चाहिए, बस।

सुख और दुख अलग नहीं किये जा सकते। संसार में सुख और दुख सम्मिलित हैं। मनुष्य के तर्क ने, विचार ने सुख को अलग करके स्वर्ग बना लिया; दुख को अलग करके नरक बना लिया। स्वभावतः नरक उनके लिए जिन्हें तुम पसंद नहीं करते, दुश्मनों के लिए, परायों के लिए – स्वर्ग अपने लिए, अपनों के लिए, जिन्हें तुम चाहते हो; जिन्हें तुम सुख देना चाहते थे, न दे सके, उनके लिए।

इसलिए जो भी मरता है, सभी 'स्वर्गीय' हो जाते हैं। खयाल किया तुमने, जो भी मरता है, मरते से ही स्वर्गीय हो जाता है। क्योंकि मरने की चर्चा, मरने का दुख प्रियजन उठाते हैं; दूसरों को तो लेना-देना क्या है! किसको पड़ी है कि नारकीय कहे कि नरक चले गये! किसको लेना-देना है! फिर मरे के संबंध में कोई बुरी बात कहता भी नहीं। दुश्मन भी मर जाए तो भी अब मरे से कुछ बुरा कहना शोभा नहीं देता, अशोभन लगता है। स्वर्ग गये, स्वर्गीय हो गये! कोई शक भी नहीं उठाता कि ये स्वर्गीय हो गये, ये स्वर्गीय होने योग्य थे! लेकिन प्रियजन हैं, वे चाहते हैं स्वर्ग जाएं।

भक्ति – पराभक्ति – कुछ भी नहीं मांगती – परमात्मा को भी नहीं – और परमात्मा को पा लेती है। परमात्मा को पाने का ढंग ही यही है – न मांगना। बिन मांगे मोती मिलें! मांगा कि तुमने परमात्मा की शक्ल अपनी वासनाओं में ढाल ली।

तुम जरा सोचो, तुम किस तरह का परमात्मा चाहोगे। कभी विचार करो। तो तुम पाओगे कि तुम्हारी कामना का ही प्रतिबिम्ब होगा। किस तरह का परमात्मा चाहोगे? तो तुम पाओगे, तुम रंग भरने लगे परमात्मा में अपने ही। किरण टूट गयी, सतरंगी हो गयी। स्वभाव खो गया। सत्य अब सत्य न रहा। तुम जब सारी वासना को, कामना को छोड़कर देखते हो तो वह दिखायी पड़ता है, जो है।

परमात्मा की चाह भी परमात्मा के मार्ग में बाधा है। इसलिए परम भक्त सिर्फ भक्ति करता है, मांगता कुछ भी नहीं। परम भक्त सिर्फ प्रार्थना करता है, प्रार्थी नहीं होता – इसे खयाल में लेना। परम भक्त सिर्फ प्रार्थना करता है, प्रार्थी नहीं होता। उसकी प्रार्थना कुछ मांगने की नहीं होती। उसकी प्रार्थना अहोभाव की होती है, वह धन्यवाद देता है। वह कहता है, 'ऐसे ही इतना दिया, कुछ पात्रता न थी, कोई योग्यता न थी। तू भी खूब है! लुटा रहा है! मुझे दिया, जिसकी कोई पात्रता न थी! न देता तो शिकायत कहां करते, किससे करते! न देता तो शिकायत किस मुंह से करते! कोई कारण न होता। इतना दिया! पारावार दिया, विस्तार दिया! जीवन दिया, अस्तित्व दिया। धड़कता हुआ हृदय, प्रेम से भरे प्राण दिये! प्रार्थना की संभावना दी! परमात्मा की संभावना दी! मोक्ष का द्वार दिया! सब दिया!'

तो परम भक्त प्रार्थना करता है धन्यवाद के लिए। उसकी प्रार्थना अहोभाव है। उसकी प्रार्थना कृतज्ञता का उच्छ्‌वास है! वह मंदिर में धन्यवाद देने जाता है कि तेरी बड़ी कृपा है, तेरी बड़ी अनुकंपा है! तेरे जैसा औघड़ दानी नहीं देखा!

लेकिन यह पराभक्ति है। और ऐसा भक्त भगवान को पा लेता है। मुझे फिर दोहराने दें : जो मांगता नहीं, उसे मिल जाता है। जो मांगता है वह मांगने के कारण ही दूर पड़ जाता है। क्यों? मांग का शास्त्र समझो।

जब तुम कुछ मांगते हो तो मांगनेवाला अपनी मांग पर ध्यान रखता है। जब तुम कुछ मांगते हो तो तुम परमात्मा से भी बड़ी उस चीज को बता रहे हो जो तुम मांगते हो। अगर तुम गये मंदिर में और तुमने कहा कि स्वर्ग मिल जाए, हे प्रभु! बहुत दुख पा लिया, अब और दुख न दे! अब तो सुख की छाया दे! तो तुम यह कह रहे हो कि अगर मेरे सामने तुझे पाने और स्वर्ग को पाने का विकल्प हो तो मैं स्वर्ग चुनता हूं। तुम यह कह रहे हो कि तेरा हम उपाय की तरह उपयोग कर लेते हैं, साधन की तरह; क्योंकि तेरे बिना मिलेगा न। अपने किये तो कर लिया बहुत, कुछ पाया नहीं – अब तेरा सहारा ले लेते हैं। ऐसे तो भीतर मजबूरी है कि चाहा तो यही था कि अपने ही हाथ से पा लेते; नहीं मिल सका, चलो ठीक, मांग लेते हैं, तेरी खुशामद कर लेते हैं; तेरी स्तुति कर लेते हैं!

यह एक तरह की रिश्वत है। यह एक तरह का फुसलावा है कि चलो, तुझे राजी कर लें, तेरे हाथ में है। लेकिन भीतर बेचैनी है। और जो तुम मांगते हो, वह बताता है।

मैंने सुना है, एक सम्राट युद्ध से घर वापस लौटता था। उसकी एक हजार रानियां थी , उसने खबर भेजी कि मैं क्या तुम्हारे लिए ले आऊं। किसी ने कहा, हीरों का हार ले आना। किसी ने कहा, उस देश में कस्तूरी-मृग की गंध मिलती है, वह ले आना। किसी ने कहा, वहां के रेशम का कोई मुकाबला नहीं, तो रेशम की साड़ी ले आना। ऐसे बहुत लोगों ने बहुत कुछ मांगा। सिर्फ एक पत्नी ने कहा,

तुम घर आ जाओ, तुम बहुत हो। उस दिन तक उसने इस रानी पर कोई खयाल ही न किया था। हजार रानियों में एक थी, कहीं थी; नम्बर थी, कोई व्यक्ति नहीं थी; लेकिन घर लौटा तो उसे पटरानी बना दिया। और रानियों ने कहा, 'यह क्या हुआ ? किस कारण ?' उसने कहा, 'इसी ने अकेले कहा कि तुम घर आ जाओ। और कुछ नहीं चाहिए; तुम आ गये, सब आ गया। इसने मेरा मूल्य स्वीकारा। तुममें से किसी ने हीरे मांगे, किसी ने साड़ियां मांगी, किसी ने इत्र मांगा, और हजार चीजें मांगी – मेरा उपयोग किया। ठीक है, तुमने जो मांगा, तुम्हारे लिए ले आया। इसने कुछ भी न मांगा। इसके लिए मैं आया हूं।'

परमात्मा उसके द्वार पर दस्तक देता है जिसने कुछ भी न मांगा; जिसने कहा, ऐसे ही बहुत दिया है, बस मेरा धन्यवाद स्वीकार कर लो।

तो पराभक्ति तो धन्यवाद है। उसकी हम बात छोड़ें। वह तो आत्यन्तिक है। लेकिन मनुष्यों में तो सात्त्विक मनुष्य है। वह कहता है, 'छुटकारा हो जाए संसार से, पाप से मुक्ति मिले। अंधकार में बहुत जी लिये, प्रकाश चाहिए प्रभु! तमसो मा ज्योतिर्गमय! मृत्योर्मा अमृतं गमय! अब मृत्यु से मुझे अमृत की तरफ ले चलो! असतो मा सद्गमय! असत्य से मुझे सत्य की तरफ ले चलो!' बड़ी सात्त्विक पुकार है। आदमी कल्पना कर सके, उसकी आखिरी ऊंचाई है। और क्या तुम कल्पना करोगे; उसके पार तो कल्पना के पंख कट जाते हैं। उसके पार तो शून्य का विराट आकाश है। उसके बाद तो परमात्मा ही है। यह सत्पुरुष की आकांक्षा है – इसको नारद ने कहा, सात्त्विकी भक्ति। मगर इसको गौणी भक्ति कहा है, याद रखना यह मुख्या नहीं है। यह परा नहीं है। यह कोई आखिरी बात नहीं है।

फिर उससे नीची भक्ति है : राजसी भक्ति। तुम मांगते हो – बड़ा राज्य मिल जाए, सत्कार मिले, सम्मान मिले, राष्ट्रपति हो जाओ कि प्रधानमंत्री हो जाओ। कि चुनाव में लड़ते हो तो मंदिर जाते हो! दिल्ली के सभी राजनेताओं के गुरु हैं। जैसे ही जीते, भूल जाते हैं, वह बात दूसरी; मगर हारे कि गुरु के पास पहुंच जाते हैं।

यश मिले, कीर्ति मिले, धन मिले, पद मिले – यह राजसी मन का लक्षण है। अहंकार की तृप्ति हो, अस्मिता बढ़े, मैं कुछ हो जाऊं! फिर किसी भी रूप में मांगते हो। तो अगर तुम मंदिर में गये और तुमने यश, धन, कीर्ति मांगी; सुयश फैले, मेरे परिवार, मेरे कुल का नाम सदा रहे – तो तुम्हारी भक्ति और भी नीचे गिर गयी, राजसी हो गयी।

उससे भी नीचे तामसी भक्ति है। तामसी व्यक्ति राज्य भी नहीं मांगता, यशकीर्ति भी नहीं मांगता – वह कहता है, फलां आदमी मर जाए; इस पर दुख का पहाड़ गिर पड़े; चाहे इसे मिटाने में मैं मिट जाऊं, मगर इसे मिटाकर रहूंगा। उसका मन क्रोध से, तमस से; उसका मन हिंसा से, ईर्ष्या से – आंदोलित होता है – विनाश से!

ये तीन गौणी भक्तियां हैं। इन तीन में उत्तर-उत्तर क्रम से पूर्व-पूर्व की भक्ति कल्याणकारिणी होती है। तामसी से राजसी ज्यादा कल्याणकारिणी है। राजसी से सात्त्विकी ज्यादा कल्याणकारिणी है। और इन तीनों से पराभक्ति ज्यादा कल्याणकारिणी है।

लेकिन एक बड़ी अनूठी बात है जो समझ लेनी चाहिए – वह यह कि भक्ति का सूत्र तीनों में

है। क्योंकि ऐसे तामसी व्यक्ति भी हैं जो सीधा छुरा मार आएंगे, जो भगवान के मंदिर न जाएंगे पूछने कि आज्ञा है, कि इस आदमी को मिटाना है; जो मिटा ही देंगे, जो भगवान को बीच में भी न लेंगे, इस बुरे काम के लिए भी बीच में न लेंगे, भले काम की तो बात दूर। यह तामसी व्यक्ति कम-से-कम मंदिर तक तो जाता है; इसके जाने का कारण गलत है, माना, मगर जाता ठीक जगह है। गलत आकांक्षा से जाता है, लेकिन जाता ठीक के पास है। इतना तो कम-से-कम ठीक है ही। आंखें इसकी धुंधली हैं, परदा है क्रोध का — कोई बात नहीं। अगर प्रार्थना करता ही रहा, रोता ही रहा प्रार्थना में, तो शायद आंख से धुंधलका हट जाएगा।

जो आदमी धन के लिए पद के लिए मांगने गया है, कब तक मांगेगा; कभी तो जागेगा, समझेगा कि यह मैं क्या मांग रहा हूं! मांगते-मांगते, प्रार्थना करते-करते होश भी तो सम्हलेगा; कम-से-कम पायेगा तो मंदिर में अपने को — कभी होश आ जाए। गलत कारण से ही सही, लेकिन ठीक जगह तो है — कभी झलक मिल जाए, तो शायद सात्त्विक हो जाएगा। किसी दिन पायेगा कि मांगा परमात्मा से धन और मिला; बड़ी भूल हो गयी, कुछ और बड़ी बात मांग लेते। धन मांगा, क्या पाया! मिल भी गया, तो भी कुछ न पाया। पर अब शिकायत भी किसकी करें, खुद ही मांगा था। पद पा लेगा, लेकिन पद पाकर पाएगा, सिवाय खींचातानी के और कुछ भी नहीं है।

कुर्सी पर कोई ठीक से बैठ थोड़े ही पाता है! कोई टांग खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है; कोई कुर्सी के नीचे बैठा है; कोई कुर्सी को उलटाने की कोशिश कर रहा है। जो कुर्सियों पर हैं, उनको जरा गौर से देखो! दो-चार दिन से ज्यादा भी राजधानी से बाहर रहने में घबड़ाहट लगती है : उधर कोई कुर्सी उलटा ही न दे! प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति परदेशों की यात्रा पर जाने में डरते हैं; जब तक गये तब तक; इधर लौटकर आने का मौका ही न आए! बहुत बार ऐसा हो जाता है : राष्ट्रपति गये बाहर, फिर लौट ही न सके, क्योंकि तब तक यहां दूसरों ने उलटा दी कुर्सी, कोई और चढ़ बैठा। रात चैन से सो नहीं सकते। राजनीतिज्ञ और चैन से सो जाए तो राजनीतिज्ञ ही नहीं। करवटें बदलता रहता है, दांव बिठाता रहता है, रातभर शतरंज की चालें चलता रहता है। बड़ा खेल है और बड़ी बेचैनी से भरा है। मिल भी गया पद तो पाओगे कि कुछ मिला नहीं, कुछ और मांग लिये होते; मौका आया और क्या मांग बैठे। अवसर मिला था, यह क्या कूड़ा-कचरा मांगकर घर आ गये! देनेवाला सामने खड़ा था, मांगा भी तो क्या मांगा! तो किसी दिन शायद सत्त्व की ऊर्जा उठे और तुम्हारे मन में भाव उठे : असतो मा सद्गमय। असत्य से सत्य की तरफ ले चल प्रभु!

अगर सत्त्व की प्रार्थना जारी रही, तो किसी-न-किसी दिन तुम्हें यह दिखायी पड़ जाएगा : 'परमात्मा से, और सत्य को मांग रहा हूं! परमात्मा को ही मांग लेता! जब मालिक ही मिलता हो तो फिर और क्या मांगना! किस प्रकाश को मांग रहा हूं? जब देनेवाला ही मिलता हो तो नासमझी है। जब देनेवाला ही आकर हृदय में विराजमान होने को राजी है, तो मालिक को ही मांग लूं। फिर और सब तो इसके साथ आ ही गया। सत्य आया, प्रकाश आया, अमृत आया — वह सब तो इसका अनुषंग है। वे तो इसकी छायाएं हैं। तो मैं छायाएं मांग रहा हूं?'

तब मांगते-मांगते मांग भी निखरती है, सुधरती है। प्रार्थना गलत भी शुरू हो तो भी शुरू तो

होती है।

अल्लाह अल्लाह ये तेरी तर्कोतलब की वुसअतें
रफ्ता-रफ्ता सामने हुस्ने तमाम आ ही गया
अव्वल-अव्वल हर कदम पर थीं हजारों मंजिलें
आखिर आखिर इक मुकामे बेमुकाम आ ही गया।

ये तेरे त्याग और भोग की विशाल उलझनें, हे परमात्मा ! लेकिन चलते रहे : रफ्ता-रफ्ता सामने हुस्ने तमाम आ ही गया !

बहुत तरह के सौंदर्यों ने घेरा है – स्त्री का सौंदर्य था, फूलों का सौंदर्य था, धन का सौंदर्य था, पद का सौंदर्य था – लेकिन रफ्ता-रफ्ता सामने हुस्ने तमाम आ ही गया, उस पुण्य का सौंदर्य आ ही गया, खोजते-खोजते, टटोलते-टटोलते।

अल्लाह अल्लाह ये तेरी तर्कोतलब की वुसअतें !

कितने भोग, कितने त्याग, कितनी उलझनें, कितनी विशालताएं ! भरा आकाश है, लेकिन फिर भी –

रफ्ता-रफ्ता सामने हुस्ने तमाम आ ही गया।
अव्वल अव्वल हर कदम पर थीं हजारों मंजिलें।

पहले-पहले एक-एक कदम पर मुसीबतें खड़ी थीं, हजारों रास्ते खुलते थे, चुनाव करना मुश्किल था। चुनते थे, भूलें हो जाती थीं। हजार रास्ते खुलते हों तो जो भी चुनोगे, पछतावा बना रहेगा कि नौ सौ निन्यानबे छोड़ दिये, पता नहीं वहां क्या था !

और जिंदगी में कुछ तो चुनना ही होगा। धन चुनो, पद छूट जाता है। पद चुनो, धन त्यागना पड़ता है। स्त्री चुनो, पद छूट जाता है। पद चुनो, ब्रह्मचर्य धारण करना पड़ता है। कुछ-न-कुछ झंझट खड़ी रहती है। एक चुनो, दूसरा छूटता है; दूसरा चुनो, एक छूटता है। और मन में यह पछतावा बना ही रहता है कि पता नहीं दूसरा विकल्प कहीं ज्यादा सुन्दर हुआ होता। इसलिए मैं ऐसा आदमी नहीं पाता जो सुखी हो, क्योंकि नौ सौ निन्यानबे विकल्प सभी ने छोड़े हैं। एक चुनोगे तो नौ सौ निन्यानबे छूट जाते हैं।

राजनीतिज्ञ आता है। वह कहता है, 'कहां की झंझट में पड़ गया ! इससे तो थोड़ा धन कमा लेते !' क्योंकि राजनीतिज्ञ को सदा जिसके पास धन है, उसके पैर दबाने पड़ते हैं, उसे पीड़ा बनी रहती है।

धनपति आता है। वह कहता है, 'इतनी मेहनत से धन कमाया, इससे तो इतनी मेहनत में तो राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री हो गये होते। इन लुच्चे-लफंगों की जाकर खुशामद करनी पड़ती है। लाइसेंस चाहिए, यह चाहिए, वह चाहिए... !

जिसको देखो, वही दुखी है। क्योंकि तुम कुछ भी पाओगे, वह पाना किसी कीमत पर होगा और वह कीमत तुम्हें चुकानी पड़ेगी। यहां मुफ्त तो कुछ मिलता नहीं। एक चुनो, नौ सौ निन्यानबे की कीमत चुकानी पड़ती है। रास्ते पर खड़े हो, हजार रास्ते खुलते हैं; तुम एक पर ही जा सकते हो।

मन में यह बात तुम भूलोगे कैसे कि कहीं नौ सौ निन्यानबे रास्तों पर कोई मंजिल पर ले जानेवाला रास्ता न रह गया हो। और जब तुम कहीं भी न पहुंचोगे, तब तो पछताओगे निश्चित ही कि यह रास्ता तो गलत चुन ही लिया। और चाहे ठीक न हों, एक बात तो पक्की हो ही जाएगी कि यह गलत है।

दूसरे भी ऐसे ही पछता रहे हैं।

अव्वल अव्वल हर कदम पर थीं हजारों मंजिलें
आखिर आखिर इक मुकामे बेमुकाम आ ही गया।

लेकिन फिर धीरे-धीरे जब टटोलता ही रहता है, टटोलता ही रहता है तो वह मंजिल आ जाती है जो आखिरी मंजिल है, बेमुकाम है; वह मुकाम, जिसके पार फिर कोई और मंजिल नहीं है; जो आखिरी है; जिससे फिर कोई रास्ता नहीं खुलता; जिसमें पहुंचे कि पहंचे; जिसमें डूबे कि डूबे; जिसमें खोए तो खोए— जैसे सागर में सरिता खो जाती है।

आखिर आखिर इक मुकामे बेमुकाम आ ही गया!

आज का पहला सूत्रः 'अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ।'

अन्य सब की अपेक्षा भक्ति सुलभ है।

अन्य सब की अपेक्षा ! योग है, तन्त्र है, ज्ञान है, तप है, त्याग है – सब की अपेक्षा भक्ति सुलभ है। क्यों ? सुलभता क्या है भक्ति की ? सुलभता यही है कि और सब तो मनुष्य को करने पड़ते हैं – भक्ति होती है। सुलभता यही है कि और सब में तो मनुष्य को अपने ही सिर पर बोझ रखकर चलना पड़ता है – भक्ति में समर्पण है; बोझ परमात्मा को दे देना है।

एक सम्राट अपने रथ से आ रहा है। राह पर उसने एक बूढ़े आदमी को अपनी गठरी ढोते देखा, दया आ गयी। रथ रोककर उसे कहा, 'आ जा, तू भी बैठ जा; कहां उतरना है, उतार देंगे।' वह रथ में तो बैठ गया। गरीब आदमी, रथ में कभी बैठा नहीं, सिकुड़ा-सिकुड़ा डरा-डरा... ठीक से बैठा नहीं कि कहीं ज्यादा गरीब आदमी का वजन न पड़ जाए। और तो और, सिर से गठरी भी न उतारी। सम्राट ने कहा कि गठरी नीचे रख दे, अब गठरी क्यों सिर पर रखी है?

उसने कहा कि नहीं मालिक, इतना ही क्या कम है कि मुझको चढ़ा लिया; अब और गठरी का वजन भी आपके रथ पर रखूं; नहीं नहीं, यह मुझसे न होगा।

और इससे क्या फर्क पड़ता है कि जब तुम ही बैठे हो, तो गठरी तुम सिर पर रखो कि नीचे रखो ?

योगी की गठरी सिर पर है, भक्ति की रथ में। वह कहता है, परमात्मा पर सब छोड़ दिया, 'अब तू ही सम्हाल !' वह एक ही कदम उठाता है भक्त। ज्ञानी को बहुत कदम उठाने पड़ते हैं; क्योंकि ज्ञानी बड़ा कुशल है, बड़ा होशियार है। योगी को एक-एक सीढ़ी चढ़नी पड़ती है। भक्ति एक छलांग है। भक्त कहता है कि अब हमारी समझ के बाहर है। हमारी समझ से चलेंगे तो पक्का है कि कभी न पहुंचेगे। तुझ पर भरोसा करते हैं।

जैसे हम कहते हैं, प्रेम अंधा है, लेकिन प्रेम के पास ऐसी आंखें हैं जो आंखवालों के पास नहीं। ऐसे ही भक्ति भी अंधी है; लेकिन भक्ति के पास ऐसी आंखें हैं कि आंखवालों के पास भी नहीं हैं। भक्त कहता है, सौंपा तेरे पास ! तूने दिया जन्म, तूने दिया जीवन, तू ही चला ! यह पतवार ले ! हम

निश्चिंत सोते हैं। तू वैसे ही चला रहा है, हम नाहक बीच-बीच में आते हैं!

योगी तैरता है नदी की धारा के विपरीत। भक्त बहता है नदी के साथ। इसलिए सुगम है। भक्त कहता है, 'हम बहेंगे। अगर तुझे गलत जगह ले जाना हो तो ले जा, हम वहीं जाने को राजी हैं।' यह भक्त की हिम्मत है। भक्ति बड़ा साहस है – दुस्साहस है। जुआरी जैसा दांव लगाता है भक्त अपना सारा, अपने पास कुछ भी नहीं रखता। वह कहता है, 'ठीक है, अब तुझे गलत ही ले जाना है तो स्वीकार है। अगर डुबाना है तो सही, डुबा।'

जरा सोचो। जरा इस बात का स्वाद लो। जरा इसको भीतर हृदय में उतरने दो: अगर तुझे डुबाना है, सही, डुबा! तो क्या किनारा मिल न जाएगा इसी डूबने में? तो क्या मंझधार में किनारा उपलब्ध न हो जाएगा? क्योंकि जो डूबने को राजी हो गया, उसे कैसे डुबाओगे?

तुमने कभी देखा, जिंदा आदमी डूब जाता है नदी में, मुर्दा तो ऊपर आ जाता है! जरूर मुर्दे को कोई तरकीब मालूम है जो जिंदा को नहीं मालूम। जिंदा आदमी डूब जाता है; चेष्टा करता था बचने की, लड़ रहा था नदी से, शोरगुल मचाता था, चिल्लाता था कि बचाओ-बचाओ, अपना सब किया था जो कर सकता था और डूब गया। मुर्दे को क्या तरकीब मालूम है? मरते ही आदमी ऊपर आ जाता है, लाश तैरने लगती है।

भक्त जीते-जी मर जाता है। वह कहता है, हम हैं ही नहीं, तू ही है। अगर भटकेगा तो तू भटकेगा, हम कहां भटकेंगे! अगर डूबेगा तू डूबेगा, हम कहां डूबेंगे। अगर तुझे डूबने में मजा है तो हम कौन हैं जो बीच में बाधा डालें। हम हैं ही कौन! हम तो एक भ्रम हैं – सत्य तो तू है!

इसलिए भक्ति सुगम है।

> लड़खड़ा के जो गिरा पांव पे साकी के गिरा
> अपनी मस्ती के तसद्दुक ये मुझे होश रहा।
> लड़खड़ा के जो गिरा पांव पे साकी के गिरा।

भक्त लड़खड़ाकर गिर जाता है। वह कोई सम्हलकर खड़े रहनेवालों में से नहीं है। लेकिन इतना उसकी बेहोशी में भी होश रहता है कि वह गिरता साकी के पैरों पर है, वह गिरता परमात्मा के पैरों पर है। इतनी बेहोशी में भी इतना होश रखता है, बस कि पैर तेरे हों फिर क्या गिरना और क्या खड़ा होना – सब बराबर है। क्या मिटना और क्या होना – सब बराबर है! रात और दिन बराबर हैं। जन्म और जीवन, मौत और जीवन बराबर हैं। तेरे पैर पर!

भक्ति सुगम है। लड़खड़ाकर गिरना भी अगर न हो सकेगा तो फिर और क्या होगा? जरा सोचो? जरा ध्यान करो! भक्ति यह कहती है कि गिर पड़ो। योगी सम्हलकर खड़ा होता है, साधता है। भक्ति कोई साधना नहीं है। हम कहते हैं, भक्ति-साधना! भाषा बड़ी कमजोर है। भक्ति साधना नहीं है। इसलिए पुराने दिनों में फासला बहुत साफ था – भक्ति थी उपासना। और बाकी साधनाएं हैं। योग साधो, ध्यान साधो – साधनाएं हैं। भक्ति है उपासना।

उपासना का अर्थ होता है: 'उसके' पास होना, बस। उप+आसान='उसके' पास बैठ जाना, गिर जाना उसके चरणों में। और 'उसके' चरण सब जगह हैं। इसलिए तुम यह मत पूछना कि कहां

गिरें ! इसीलिए तो बेहोशी में भी इतना होश रहा आता है। अगर 'उसके' चरण कहीं एक जगह होते, काबा में होते कि काशी में होते, तो तुम पूना में कितने ही होश से गिरो, क्या फर्क पड़ता है !

कबीर जिंदगीभर काशी रहे, मरते वक्त काशी छोड़ दी। लोग मरते वक्त काशी जाते हैं। मरने के लिए ही काशी जाते हैं – काशी-करवट ! तो काशी में रहते ही हैं मरे-खुरे लोग, मरने की तैयारी कर रहे हैं। तुम अगर काशी जाओ तो बूढ़े, बुढ़ियाएं, विधवाएं तैयारी में बैठी हैं, घाटों पर, कि करवट कब हो जाए। क्योंकि खयाल है कि काशी मरे तो उसके चरणों में मरे। खयाल है कि काशी मरे तो स्वर्ग निश्चित है।

कबीर हट गये। भक्तों ने कहा, 'यह क्या कर रहे हैं ? जिंदगीभर काशी रहे, अब मरते वक्त हटते हैं ? कबीर ने कहा, अगर काशी में मरने के कारण उसके पास पहुंचे तो फिर उसके चरण बड़े सीमित हो गए। तो काशी के पास एक छोटा-सा गांव है : मगहर। जैसे काशी की कहावत है कि काशी में जो मरता है, स्वर्ग जाता है, वैसी ही कहावत मगहर के संबंध में है कि मगहर में जो मरता है, गधा होता है। मगहर में कोई मरे न, इसलिए मगहर के लोगों ने फैला दिया होगा कि मरते वक्त सब लोग काशी पहुंच जाएं। यह होशियारों की तरकीब रही होगी। कबीर मरते वक्त मगहर पहुंच गये। उन्होंने कहा कि अगर यहां मरकर उसके चरणों में पहुंचे तो ही कोई बात है। मगहर में ही मरे।

पैर उसके बड़े हैं। पैर उसके सब जगह हैं। एक बार यह समझ में आ जाए कि वही है, तुम कहीं भी गिरो, साकी के पैरों में ही गिरे। यह तुम्हारे होश का इतना सवाल नहीं है जितना इस समझ का सवाल है कि उसके पैर ही सभी जगह हैं। वही है। कण-कण में वही है। क्षण-क्षण में वही है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

भक्ति सुगम है, क्योंकि भक्ति की न कोई विधि है, न विधान है।

रामकृष्ण को दक्षिणेश्वर के मंदिर में पुजारी रखा तो अड़चन हो गयी ट्रस्टियों को, निकालने की नौबत आ गयी। क्योंकि रामकृष्ण पुजारियों जैसे पुजारी तो न थे – पुजारी थे ही नहीं, भक्त थे। पुजारी और भक्त में बड़ा फर्क है। पुजारी यानी धंधे में लगा है, व्यवसायी है।

गुरजिएफ का कल रात मैं एक वचन पढ़ता था। उसके बहुत अदभुत वचनों में एक वचन है कि अगर धर्म से छुटकारा पाना हो तो धर्मगुरुओं के पास रहो; छुटकारा हो जाएगा – देखकर सारा उपद्रव, जाल, षडयंत्र। एक बात पक्की है कि पुजारियों को भगवान पर बिलकुल भरोसा नहीं है – हो ही नहीं सकता। पुजारियों के पास तो तुम्हें भी समझ में आ जाएगा कि यह सब जाल है। रोज पूजा करते हैं, पुजारी को कुछ होता नहीं, खुद को कुछ नहीं होता, खुद भीगा ही नहीं; कर आता है पूजा, घर आ जाता है; तनख्वाह ले लेता है, निपटारा हो जाता है। प्रार्थना भी बेच देता है। पूजा भी बेच देता है।

रामकृष्ण पुजारी न थे, भक्त थे। वहीं मुश्किल हो गयी। तो कभी तो आधी रात पूजा शुरू हो जाती, कभी दिन भर पूजा न होती। उन्होंने कहा कि यह नहीं चलेगा, यह किस तरह की पूजा है ? व्यवस्था होनी चाहिए, विधि-विधान होना चाहिए। रामकृष्ण ने कहा, फिर संभालो अपना मंदिर, यह हमसे न होगा। जब हृदय से ही न उठती हो तो हम कैसे करेंगे ? करके क्या धोखा देंगे भगवान को ?

और धोखा देकर उसको हम धोखा दे कैसे पाएंगे! दुनिया को धोखा हो जाएगा कि पूजा हो रही है, लेकिन उसको थोड़े ही धोखा होगा! तुम हमको फंसाओगे, नरक भिजवाओगे। वह तो देख ही लेगा कि यह आदमी धोखा दे रहा है। यह हमसे न होगा। कभी रात दो बजे उठता है भाव। यह अपने हाथ में नहीं है। उठता है तब उठता है, जब नहीं उठता है नहीं उठता है।

कभी दिन-दिन भर पूजा चलती भूखे-प्यासे; और कभी दिन बीत जाते और मंदिर खाली पड़ा रहता और कोई दीया भी न जलता। रामकृष्ण ने कहा, जब जलेगा, प्रामाणिकता से जलेगा; जब नहीं जलेगा, नहीं जलेगा। हम क्या करें, उसकी मर्जी, जलवाना होता तो भाव जगाता। जब सभी उस पर छोड़ दिया, तब यह भी क्या हिसाब अपने पास रखना। जब उसको दीये की जरूरत होगी, बुला लेगा; और जब उसको घंटनाद सुनना होगा, बुला लेगा, और जब उसे गीत सुनने का रस आएगा, कहेगा, 'रामकृष्ण गाओ!' हम गाएंगे, नाचेंगे। अब जब सुननेवाला ही वहां नहीं है, अभी उसकी मौज ही नहीं है, शायद सोता हो विश्राम करता हो, तो हम नाहक बीच में खलल डालें? तुम हमको मत फंसा देना।

खैर, बात टली कि चलो, चलने दो; बात जंची भी कि बात तो ठीक ही है। फिर और उलझनें आने लगीं। यह भी पता चला कि यह पहले खुद ही को भोग लगा लेता है — वहीं मंदिर में खड़े-खड़े — जो थाली भगवान के लिए आयी है, पहले खुद ही चख लेता। फिर जूठा! फिर जरा ज्यादा हो गयी बात। ट्रस्टियों ने कहा, 'अब जरा सीमा के बाहर हो गयी। इसका क्या हिसाब है?' रामकृष्ण ने कहा, 'हिसाब! मुझे पता है। मेरी मां जब भी कुछ बनाती थी, पहले खुद चखती थी; जब खुद ही न जंचे तो मुझे नहीं देती थी। तो मैं बिना चखे नहीं चढ़ा सकता। जूठा! वही मुझसे चख रहा है। लेकिन मैं बिना चखे नहीं चढ़ा सकता; क्योंकि पता नहीं चखाने योग्य है भी! जब अच्छी चीज बनती है तो मैं चढ़ाता हूं, जब नहीं बनती अच्छी चीज तो नहीं चढ़ाता। यह भगवान को चढ़ा रहे हैं, कोई खेल नहीं है!'

यह भक्त था, यह पुजारी नहीं था।

भक्ति सुगम है, अगर हृदय उत्फुल्लित हो। भक्ति बिलकुल सरल है। अगर तुम्हारे पास हृदय हो —

> क्या पूजन क्या अर्चन रे!
> पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जलकण रे!
> अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का कंपन रे!
> क्या पूजन क्या अर्चन रे!

तो कोई गंगाजल थोड़े ही चढ़ाना पड़ता है, आंसू ही उमड़े आते हैं।

> पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जलकण रे!

अक्षत पुलकित रोम — यह जो पुलकित रोम है, यही अक्षत है। यह जो आनंद से विभोर होती हुई भाव-दशा है, यही अक्षत है।

मधुर मेरी पीड़ा का कंपन रे! और इसी पीड़ा को चढ़ाता हूं। जो मेरे पास है वही चढ़ाता हूं।

जो मैं हूं वही चढ़ाता हूं।

क्या पूजन क्या अर्चन रे!

तो भक्त की कोई विधि नहीं है, विधान नहीं है। इसलिए सुगम है।

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन
अगरु धूम-सी सांस सुधिगंध-सुरभित
बनी स्नेह लौ आरती चिर अकंपित
हुआ नयन का नीर अभिषेक जलकण
हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन

प्रेम की बात है : धूलि को चढ़ा दो, चंदन हो जाती है। और नहीं तो चंदन जिंदगीभर घिसते रहो। घिस रहे हैं लोग जिंदगीभर से चंदन — और चंदन धूलि हो गया। धूलि को चढ़ा दो। बात, तुम क्या चढ़ाते हो, इसकी है ही नहीं — कौन चढ़ाता है, किस हृदय से चढ़ाता है!

हृदय हो तो भक्ति सुगम है। हृदय न हो तो भक्ति सबसे ज्यादा दुर्गम हो जाती है।

'अन्य सबकी अपेक्षा भक्ति सुलभ है।'

जब नारद ने ये वचन कहे थे, तब जरा भी इनको समझाने की जरूरत न रही होगी। वे लोग, वह समय और था। हृदय स्वाभाविक था। बुद्धि बड़ी दूर थी। चेष्टा करके लोग बुद्धि का उपाय करते थे, उपयोग करते थे। सहज तो हृदय का उपाय था, उपयोग था।

आज बात उलटी हो गयी है। आज सब सरल मालूम पड़ता है भक्ति को छोड़कर। आज योग साधना हो, कोई कठिन नहीं मालूम पड़ता। इसलिए तो योग का इतना प्रचार सारी दुनिया में होता चला जाता है। आसन लगाओ, व्यायाम करो, प्राणायाम करो, शीर्षासन करो — समझ में आता है, बुद्धि की पकड़ में आता है। यह बात जरा पौदगलिक है, पार्थिव है। समझ में आता है। वैज्ञानिक की भी समझ में आता है। इसलिए बहुत-से योगी अमरीका और यूरोप में जाकर वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाओं में बैठे हैं, तार वगैरह लगवाकर जांच करवा रहे हैं। वैज्ञानिक को भी समझ में आता है कि अगर एक खास ढंग से श्वास ली जाए तो रक्तचाप कम हो जाता है; एक खास ढंग से श्वास ली जाए तो मस्तिष्क की गतिविधि अल्फा तरंगों से भर जाती है — वैसे ही जैसे गहरी नींद में होता है, शांत हो जाती है। यह तो वैज्ञानिक की भी समझ में आता है कि सारी चीजें शारीरिक हैं, बुद्धि इनको पकड़ पाती है।

भक्त को तुम बिलकुल न पकड़ पाओगे। रामकृष्ण की तुम कितनी ही जांच करो, हाथ कुछ भी न आएगा। हां, किसी योगी को अगर प्रयोगशाला में ले जाओ, बहुत कुछ हाथ में आएगा; क्योंकि उसके उपकरण भी पौदगलिक हैं, पार्थिव हैं। श्वास की जांच हो सकती है। रक्तचाप की जांच हो सकती है। मस्तिष्क के भीतर चलती विद्युत-तरंगों की जांच हो सकती है। और यह बात सिद्ध हो सकती है प्रयोग से कि एक विशेष प्राणायाम करने से शरीर और मन को लाभ होता है। लेकिन आत्मा की क्या जांच होगी? हृदय को कैसे पहचानोगे? अभी तक प्रेमी को पकड़ने का, प्रेमी को जांचने का कोई उपाय नहीं मिला, तो भक्ति की तो बात ही मुश्किल है।

तो भक्ति, जब नारद ने यह सूत्र लिखा था, निश्चित ही अन्यस्यात् सौलभ्यं भक्तौ – तब भक्ति बड़ी सुलभ थी। भक्ति अब भी सुलभ है, आदमी जटिल हो गया है। आदमी बड़े कठिन हो गये। आदमी बड़े सोच-विचार में उलझ गये, खोपड़ी में जकड़ गये, हृदय तक जाने के द्वार-दरवाजे बंद हो गये। हृदय करीब-करीब भूल ही गया है।

जब मैं तुमसे हृदय की बात कर रहा हूं, तब अगर तुम्हें ज्यादा से ज्यादा याद आएगी तो फेफड़ों की याद आएगी। जहां धक-धुक चल रही, श्वास चल रही है – वह फेफड़ा है, हृदय नहीं। वह फेफड़ा तो बदला जा सकता है, प्लास्टिक का लगाया जा सकता है। हृदय भी प्लास्टिक का हो सकता है? फेफड़ा हो सकता है और शायद इस फेफड़े से बेहतर होगा, क्योंकि प्लास्टिक जल्दी खराब नहीं होता। और प्लास्टिक आसानी से बदला जा सकता है। जिस दिन प्लास्टिक के फेफड़े होंगे उस दिन लोग हृदय के दौरे से न मरेंगे। बदल देंगे। पार्ट ही बदलने की बात है। ले गये गैरेज में, बदलवा लाए, दूसरा लगवा लिया।

लेकिन हृदय कहीं और है। फेफड़े से हृदय का कोई सीधा संबंध नहीं है। फेफड़ा और हृदय पास-पास हैं, यह बात सच है। जहां फेफड़ा है, उसी के पीछे कहीं छिपा हुआ हृदय है। फेफड़ा शरीर का हिस्सा है; हृदय आत्मा का। यहां बड़ी भूल हो जाती है। इसलिए तुम जब प्रेम से भरते हो तो तुम फेफड़े पर हाथ रखते हो – वस्तुतः तुम हृदय पर हाथ रखना चाहते हो, लेकिन फेफड़ा भी वहीं पास है। इसलिए जब तुम वैज्ञानिक से कहोगे कि मेरा हृदय बड़ा प्रफुल्लित हो रहा है भगवान से, तो वह कहेगा हम जांच करके देखे लें। वह फेफड़े की जांच करेगा, क्योंकि फेफड़े की ही जांच हो सकती है।

योग का संबंध तो फेफड़े से है; भक्ति का संबंध हृदय से है। ज्ञान का संबंध तो खोपड़ी से है, सिर से है, विचार की व्यवस्था से है। भक्ति का संबंध भाव की व्यवस्था से है। वह बड़ी और बात है। वह दूसरा ही आयाम है। तो तुम जब सोच-विचार छोड़ोगे, जब तुम सोच-विचार का समर्पण करोगे, जब तुम उसके चरणों में रख आओगे – फूल वगैरह बहुत रख चुके, अब तो विचारों को रख आओ उसके चरणों में। चढ़ाना हो तो सिर चढ़ाओ, बाकी कुछ चढ़ाने जैसा नहीं है। सिर चढ़ जाए तो तुम एक नये केन्द्र-बिन्दु से जीने लगोगे – हृदय से। और तब भक्ति बड़ी सुलभ है।

हृदय सजीव हो, हृदय जीवंत हो, हृदय पुनः गतिवान हो जाए, हृदय के सरोवर में फिर तरंगें उठें, हृदय के वृक्ष पर फिर फूल-फल लगें – तो भक्ति बड़ी सुलभ है। इसलिए भक्ति का जो अनिवार्य कदम है, वह श्रद्धा है।

तर्क विचार में ले जाता है; श्रद्धा, भाव में। तर्क अगर सफल हो तो अहंकार में ले जाता है; अगर विफल हो तो विषाद में। श्रद्धा निरहंकार में ले जाती है, अगर सफल हो; अगर असफल हो तो संताप में। लेकिन श्रद्धा असफलता जानती ही नहीं। अगर श्रद्धा हो तो सफल ही होती है। तर्क की सफलता सुनिश्चित नहीं है; सफल हो तो अहंकार को प्रगाढ़ कर जाएगा; असफल हो तो अहंकार को क्षत-विक्षत कर जाएगा। श्रद्धा सफल ही होती है, अगर हो। हां, अगर न हो तो असफल होती है; लेकिन न होने को असफल होना कहना ठीक नहीं।

... 'क्योंकि भक्ति स्वयं प्रमाणरूप है और इसके लिए अन्य प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं।'

तर्क प्रमाण जुटाते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं,' ईश्वर का प्रमाण क्या है ?' वे सिर के बल ईश्वर को खोजने चले हैं। वे तर्क के सहारे ईश्वर को खोजने चले हैं। वे कहते हैं, 'प्रमाण क्या है ? पहले सिद्ध करें कि ईश्वर है।' उनको पता ही नहीं है कि ईश्वर को सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जो तर्क ईश्वर को सिद्ध करता है वही तो उस तक पहुंचने में बाधा है। इसे थोड़ा खयाल में लेना। जिसको तुमने अमृत समझा है, वही तो जहर है वहां। इसलिए तर्क से अगर कोई ईश्वर को सिद्ध भी कर दे, तो ईश्वर सिद्ध नहीं होता – तर्क ही सिद्ध होता है। मुझे फिर दोहराने दें। तर्क से अगर कोई ईश्वर को सिद्ध कर दे तो इससे ईश्वर सिद्ध नहीं होता, तर्क ही सिद्ध होता है। इससे तर्क ईश्वर से ऊपर हो जाता है, नीचे नहीं। और ईश्वर के ऊपर कोई चीज हो जाए, ईश्वर कहां रहा ! ईश्वर सर्वोपरि है।

थोड़ा भाव करो। ईश्वर सर्वोपरि है। इसलिए तर्क से सिद्ध नहीं हो सकता, नहीं तो तर्क उसके ऊपर हो जाएगा। फिर जब तर्क से सिद्ध हुआ तो वह तर्क के लिए मोहताज हो जाएगा। और जो तर्क से सिद्ध हो सकता है, वह तर्क से असिद्ध भी हो सकता है। तर्क दोधारी तलवार है। और तर्क वेश्या जैसा है। वह पक्ष में भी हो सकता है, विपक्ष में भी हो सकता है। वकील है तर्क। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम अगर गये वकील के पास तो वह तुम्हारे पक्ष में हो जाता है। तुम्हारा विरोधी चला जाए, वह उसके पक्ष में हो जाएगा। पैसे की बात है।

एक रास्ते पर एक बच्चा रो रहा था। और एक दूसरा बच्चा बड़े क्रोध में भुनभुनाया खड़ा था। और तीसरा बच्चा आइसक्रीम खा रहा था। राह चलते किसी राहगीर ने पूछा, क्या मामला है, यह बच्चा क्यों रो रहा है ? तो आइसक्रीम खाते बच्चे ने कहा, 'इसकी आइसक्रीम उस दूसरे लड़के ने छीन ली थी, इसलिए यह रो रहा है।' तो उसने कहा, 'लेकिन आइसक्रीम तो उस दूसरे लड़के के पास नहीं है; वह क्रोध में भुनभुनाया खड़ा है ! आइसक्रीम तो तुम खा रहे हो।' उसने कहा, 'मैं इस लड़के का वकील हूं।'

वकील को आइसक्रीम से मतलब है।

तर्क वकील है। उसकी कोई निष्ठा नहीं है। वह तुम्हारे साथ हो सकता है, वह तुम्हारे विपरीत हो सकता है। इसलिए जिन तर्कों से परमात्मा को सिद्ध किया गया उन्हीं तर्कों से उसे असिद्ध भी किया गया है। इसलिए तो नास्तिक और आस्तिक के बीच का द्वन्द्व समाप्त नहीं होता, वह कभी होगा ही नहीं। वह तो बदलता रहता है। कभी नास्तिक जीतता मालूम पड़ता है, कभी आस्तिक जीतता मालूम पड़ता है। लेकिन वस्तुतः दोनों नहीं जीतते – तर्क जीतता है; वकील जीतता है। जितने तर्क परमात्मा के लिए दिये गये हैं, ठीक वे ही तर्क परमात्मा के विपरीत दिये गये हैं; कोई फर्क नहीं है उनमें।

इसलिए जिसने तर्क के आधार पर अपनी श्रद्धा बनायी, उसने रेत पर अपना भवन बनाया; वह खिसक जाएगी रेत। अगर तुम तर्क के कारण आस्तिक हो तो तुम नास्तिक ही हो, छिपे हुए, प्रच्छन्न, तुममें कोई आस्तिकता नहीं।

तुम मुझसे परिभाषा पूछो नास्तिक की : जिसकी तर्क में श्रद्धा है वह नास्तिक। जिसकी श्रद्धा

में श्रद्धा है वह आस्तिक। इसलिए परम आस्तिकों ने कोई तर्क नहीं दिये हैं; उनके वक्तव्य सीधे वक्तव्य हैं। उपनिषद सिर्फ कहते हैं, ईश्वर है। तुम पूछो 'क्यों'? वे कहते हैं कि क्यों का क्या सवाल – है। जानना हो, जान लो; न जानना हो, मत जानो। चलना हो उसकी तरफ, चल पड़ो; पीठ करना हो, पीठ कर लो। लेकिन उसका होना तुम्हारे सोच-विचार पर निर्भर नहीं है। तुम्हारा सोच-विचार ही उसके होने पर निर्भर है।

विवेकानंद बहुत ज्ञानियों के पास गये। नास्तिक थे। प्रगाढ़ तार्किक थे। फिर रामकृष्ण के पास भी गये। सोचा था, वही विवाद जो दूसरी जगह कर लिया था वहां भी कर लेंगे। वहां जरा मुश्किल में पड़ गये। क्योंकि जाकर उन्होंने शुरू किया, मण्डली साथ ले गये थे दस-पन्द्रह मित्रों की, जो देखने गये थे, और जो सब सोचकर गये थे कि बड़ी फजीहत होगी इस गरीब रामकृष्ण की – गरीब ही लगता है। तार्किक को भक्त तो दीन-हीन लगता है कि बेचारे को कुछ पता नहीं; क्योंकि तर्क के सिक्के पहचानता है तार्किक और वे सिक्के इसके पास दिखायी नहीं पड़ते, इसलिए गरीब है। विवेकानंद ने अपनी पुरानी अकड़ से, पुराने ढंग से पूछा कि क्या ईश्वर है, सिद्ध कर सकते हैं? रामकृष्ण हंसने लगे। उन्होंने कहा, 'सिद्ध करने की बात ही पूछना बेकार है। तुझे जानना है? तुझे देखना है? तुझे मिलना है? अभी मिलवा दूं? तैयारी है?'

यह सोचा ही नहीं था कि कोई आदमी ऐसी बात कहेगा। इसका उत्तर तैयार भी न था। क्योंकि तार्किक तो सभी चीजों का रिहर्सल किये होता है। उसके पास कुछ सहज उत्तर नहीं हो सकते – तैयार ही होते हैं। यह तो सोचा ही नहीं था कि कोई आदमी यह कहेगा। बहुतों के पास गये थे, वे पंडित थे; उनसे कहा कि सिद्ध करो ईश्वर है! वे सिद्ध करने में लग गये। फिर उनके तर्क पकड़कर काट डाले। इस आदमी ने कहा कि बकवास छोड़ो, इतना समय किसके पास खराब करने को है! तुझे देखना है? तू हां कह या न!

वह मण्डली थोड़ी शंकित हो गयी कि यह मामला क्या है! ऐसा सोचा ही नहीं था कि ईश्वर से ऐसा कुछ...। और इसके पहले कि विवेकानंद कुछ कहें, रामकृष्ण ने अपना पैर उनकी छाती से लगा दिया। अब यह कोई ढंग है! ये कोई सज्जन शिष्टाचार के ढंग हैं। यह बेचारा तर्क लेकर आया है, सिद्ध करने की बात लेकर आया है। यह कोई बात हुई! यह कोई व्यवहार हुआ! और विवेकानंद बेहोश हो गये। और जब होश में आए तो सारी दुनिया बदल गयी थी। भागे, घबड़ा गये बहुत, यह क्या हो गया! कुछ समझ में न आए। कुछ-का-कुछ हो गया। यह आदमी कहीं और घसीटकर ले गया, किसी और अज्ञात लोक में! चांद-तारों के पार कहीं! सारी सीमाएं उखड़ गयीं। सब विचार वगैरह दूर, बहुत दूर सुनायी पड़ने लगे। अपने ही विचार बहुत दूर सुनायी पड़ने लगे। अपने से ही नाता न रहा। अस्त-व्यस्त, डिसओरियन्टेड! जड़ें उखड़ गयीं। भागने लगे। रामकृष्ण ने कहा, 'कहां भागता है? जब भी फिर देखना हो, आ जाना।'

नास्तिक गया! फिर विवेकानंद ने लिखा है कि बहुत चेष्टा की कि इस आदमी के पास न जाऊं, कितना अपने को बचाया, पर कुछ खींचने लगा। कोई अदम्य, कोई अज्ञात तार! लाख उपाय करूं, लेकिन सोते-जागते यही आदमी याद आने लगा। वह चरण छाती पर पड़ जाना! पुराना मर ही गया!

कहां फंस गये — विवेकानंद सोचे ! अच्छे-भले थे। सब चलता था। तर्क था, बुद्धिमत्ता थी, पांडित्य था, अकड़ थी, अहंकार था, प्रतिभा थी। लोग मानते थे। अगर न गये होते रामकृष्ण के पास तो भारत में एक बड़ा महापंडित और एक बड़ा दार्शनिक पैदा हुआ होता। हीगल और कांट की हैसियत का व्यक्ति भारत पैदा करता। लेकिन रामकृष्ण ने सब गड़बड़ा दिया। बहुत बचने की कोशिश की, न बच सके; रोक-रोककर भी जाना पड़ता। और हर बार इस आदमी का सान्निध्य कुछ तोड़ देता। और हर बार यह आदमी किसी और लोक में ले जाता। इसकी मौजूदगी ने द्वार खोल दिया।

आस्तिक कोई तर्क की बात नहीं है।

'क्योंकि भक्ति स्वयं प्रमाणरूप है।'

'स्वयंप्रमाणत्वात् !' इसके लिए अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

परमात्मा मौजूद है — तुम्हारी मौजूदगी चाहिए। सोच-विचार का कुछ लेना-देना नहीं है। परमात्मा ने सब तरफ से तुम्हें घेरा है।

तू अबोध, आग्रह-निग्रह का
भेद नहीं कर पाया
जो स्वरूप में स्थित है उसमें
स्वयं अरूप समाया
जिन चरणों का सहज आगमन
तुम्हें न क्षण भर भाया
उन चरणों में अरुण विभामय
एक चरण था मेरा।
रही चेतना बनी अहिल्या
जागी नहीं अभागी
जान-बूझ कर बधिर बन गया
अनहद का अनुरागी
जिन वचनों का नम्र निवेदन
तुम को लगा पराया
उन वचनों में दिव्य अर्थमय
एक वचन था मेरा।

जो तुमने सुना है, उसमें परमात्मा भी बोला है। जो तुमने देखा है उसमें परमात्मा दृश्य हुआ है। तुमने जो छुआ है, उसमें तुमने परमात्मा को भी छुआ है। क्योंकि वह सब जगह मौजूद है, सब तरफ से मौजूद है। वही मौजूद है। उसके अतिरिक्त और किसी चीज की कोई मौजूदगी नहीं है। जरा उतरो, अपने विचारों के परी-लोक से नीचे उतरो ! जरा अपने विचारों के व्यर्थ उत्ताप को नीचे लाओ। जरा अपने ज्वर को कम करो। थोड़े शांत होकर जरा देखो ! भाव से जरा भरो ! वही है ! उसके लिए किसी प्रमाण की कोई जरूरत नहीं है। वह स्वयं प्रमाणरूप है। वह स्वयंसिद्ध है।

'भक्ति शान्तिरूपा और परमानंदरूपा है।'

उसके लिए प्रमाण की कोई जरूरत नहीं है। तुम शांत हो जाओ – उसका प्रमाण मिल जाता है। तुम्हारे विचार में, तुम्हारी तर्कसरणी में नहीं, तुम्हारी शान्ति में उसका प्रमाण मिलता है।

'भक्ति शान्तिरूपा और परमानन्दरूपा है।'

जैसे ही तुम शान्त हुए, परमानंद उतरा। उसी परमानंद में परमात्मा का साक्षात्कार है। हमने आनंद को उसकी परिभाषा माना है, इसलिए उसको सच्चिदानंद कहा है। हमने किसी और चीज को उसकी परिभाषा नहीं माना। सत्, चित् और आनंद! वह है, यानी सत्। वह चैतन्यस्वरूप है, यानी चित्। वह आनंद स्वरूप है, यानी आनंद। सच्चिदानंद।

तुम क्या करो जिससे वह तुम्हारे पास झलक आए? तुम क्या करो, जिससे तुम्हारी आंख से घूंघट उठे?

भक्ति शान्तिरूपा है! तुम शान्त हो जाओ! इसलिए सारे ध्यान, सारी प्रार्थना, सारा पूजन-अर्चन, सब एक ही बात के पास हैं: तुम शान्त हो जाओ। तुम उसे देखना चाहते हो? शान्त हो जाओ। उत्तेजित न रहो। जैसे ही तुम ठहरे, शान्त हुए – वह पास आया। जैसे ही तुम ठहरे, शान्त हुए – वह सुनायी पड़ा।

'लोकहानि की चिन्ता भक्त को नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह अपने आपको और लौकिक, वैदिक कर्मों को भगवान को अर्पण कर चुका है।'

यह बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है: लोक हानि की चिन्ता! लोग क्या सोचते, अच्छा सोचते कि बुरा सोचते, तुम्हें पागल समझते कि बुद्धिमान समझते, तुम्हें दीवाना मानते हैं... लोग क्या सोचते हैं, लोक में तुम्हारी प्रतिष्ठा बनती है भक्ति से या खोती है – यह चिन्ता भक्त को नहीं करनी चाहिए। क्योंकि भक्त ने अगर यह चिन्ता की तो वह भक्त ही न हो पायेगा।

लोग सदा ही ठीक को प्रतिष्ठा नहीं देते; अकसर तो गैर-ठीक को ही प्रतिष्ठा देते हैं, क्योंकि लोग गैर-ठीक हैं। लोग अकसर ही सत्य का सम्मान नहीं करते, क्योंकि लोग झूठे हैं। लोग झूठ का ही सम्मान करते हैं। लोगों के सम्मान पर मत जाना। लोक में हानि हो कि लाभ हो, यह तुम विचार ही मत करना, अन्यथा भक्ति का कदम न उठ सकेगा। भक्त को तो इतना साहस चाहिए कि लोग अगर उसे पागल समझ लें तो वह स्वीकार कर ले कि ठीक है। परमात्मा के लिए पागल हो जाना संसार की समझदारी से बहुत बड़ी समझदारी है। परमात्मा के लिए पागल हो जाना संसार की समझदारी से ज्यादा बहुमूल्य है, चुनने-योग्य है। धन की खोज में समझदार रहना कोई बड़ी समझदारी नहीं है। पद की खोज में बुद्धिमान रहना कोई बड़ी बुद्धिमानी नहीं, धोखा है।

बना कर कोटि सीमाएं हृदय को बांधती दुनिया
विशद विस्तार कर सकना बहुत मुश्किल हुआ जग में।

हजार सीमाएं संसार बनाता है। हजार दीवालें खड़ी करता है। संसार एक बड़ा कारागृह है।

बना कर कोटि सीमाएं हृदय को बांधती दुनिया
विशद विस्तार कर सकना बहुत मुश्किल हुआ जग में।

तो जिसको भी उठना है पार, उसे इन सीमाओं और इन सीमाओं के आसपास बंधे हुए जाल की उपेक्षा करनी होगी। नहीं कि तुम जानकर संसार की सीमाएं तोड़ो; नहीं कि तुम जानकर उनकी मर्यादा के विपरीत जाओ — लेकिन अगर ऐसा हो जाए कि मर्यादा और परमात्मा में कुछ चुनना हो तो तुम मर्यादा मत चुन लेना। हां, अगर परमात्मा को चुनकर भी मर्यादा सम्हलती हो, शुभ। अगर परमात्मा को खोजते हुए संसार की व्यवस्था भी सम्हलती हो, सौभाग्य। तो जानकर मत तोड़ना।

इसलिए तत्क्षण नारद दूसरा सूत्र कहते हैं: 'जब तक भक्ति में सिद्धि न मिले, तब तक लोक-व्यवहार का त्याग नहीं करना चाहिए, किन्तु फल त्यागकर उस भक्ति का साधन करना चाहिए।' धीरे-धीरे, संसार न छूटे अभी, कोई जरूरत भी नहीं है लेकिन संसार से कुछ फल पाने की आकांक्षा छोड़ देनी चाहिए। अभी मर्यादा तोड़ने की जरूरत नहीं है, लेकिन मर्यादा से मिलता जो सम्मान है, वह छोड़ देना चाहिए। कारागृह में रहने से लोग जो पूजा देते हैं उस पूजा को कह देना चाहिए, कोई जरूरत नहीं; उस पूजा की आकांक्षा छोड़ देनी चाहिए। तो तुमने असली बुनियाद तो गिरा दी। फिर थोथी मर्यादा रह गयी। अगर परमात्मा को खोजते वह मर्यादा भी सम्हलती है, बड़ी अच्छी बात है। लेकिन ध्यान रखना, किसी भी कीमत पर परमात्मा का धागा न छूटे हाथ से। चाहे सारा संसार भी छूट जाए, सब मर्यादा टूटे, सब तरह से हानि हो जाए, संसार की दृष्टि से तुम सब तरह से विक्षिप्त और पागल समझ लिये जाओ, तो भी फिक्र मत करना। क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त और सब पागलपन है।

> अजां दी काबे में नाकूस दैर में फूंका
> कहां-कहां तेरा आशिक तुझे पुकार आया।

उसका प्रेमी सब जगह खोजता है — मंदिर में, मस्जिद में।

> अजां दी काबे में नाकूस दैर में फूंका।

मंदिरों में शंख फूंके, अजान दी काबे में।

> कहां-कहां तेरा आशिक तुझे पुकार आया।

सब जगह पुकार आता है, लेकिन न वह मंदिर में है, न वह मस्जिद में है। जिस दिन यह दिखायी पड़ जाता है, आशिक को उस दिन न मंदिर की कोई मर्यादा है, न मस्जिद की कोई मर्यादा है। नहीं कि जानकर वह कोई मंदिर-मस्जिद को तोड़ेगा — तोड़ने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन हिन्दू नहीं रह जाएगा, मुसलमान नहीं रह जाएगा। इसको कहने की भी कोई जरूरत नहीं कि इसकी उदघोषणा करे कि न मैं हिन्दू हूं, न मैं मुसलमान हूं। लेकिन नहीं रह जाएगा। नहीं रह जाएगा। भीतर कोई रेखा न रह जाएगी हिन्दू-मुसलमान की; वह मर्यादा गयी, वह सीमा गयी। भगवान का भक्त तो बस भगवान का भक्त होता है, कोई विशेषण नहीं उसका।

> न बुतकदे से काम न मतलब हरम से था
> महवे खयाले-यार रहे हम जहां रहे।

न तो कोई मस्जिद से लेना-देना है न मंदिर से कोई संबंध है। महवे खयाले-यार रहे — उसकी याद से भरे रहें — हम जहां रहें : मंदिर में बैठे तो, मस्जिद में बैठे तो; कुरान पढ़ी तो, बाइबिल पढ़ी

तो। कोई तोड़ने की सीधी जरूरत नहीं है, लेकिन भीतर से मुक्ति हो जाए, भीतर से तुम निपट मनुष्य हो जाओ। बस धार्मिक होना। प्रार्थना तुम्हारा गुण हो जाए।

'स्त्री, धन, नास्तिक और वैरी का चरित्र नहीं सुनना चाहिए।'

ऐसा ही इस सूत्र का अनुवाद किया गया है, मैं नहीं करता हूं।

'स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रं न श्रवणीयम्।'

सूत्र का सीधा-सा अर्थ होता है : स्त्री, धन, नास्तिक और वैरी का चरित्र सुनने योग्य नहीं है। दोनों में बड़ा फर्क हो जाता है। 'नहीं सुनना चाहिए' – आदेश हो जाता है। 'सुनने योग्य नहीं है' – सिर्फ तथ्य का वक्तव्य है। 'नहीं सुनना चाहिए' – इसमें तो डर मालूम होता है; जैसे घबड़ाहट है; जैसे स्त्री का चरित्र सुनकर भक्त कुछ डांवांडोल होगा; जैसे स्त्री की बात सुनकर उसका मन परमात्मा से स्त्री के पास उतर आएगा। यह तो फिर भक्ति ही न हुई, यह तो दमन हुआ। जैसे कि नास्तिक की बात सुनकर उसकी आस्तिकता कंपित होने लगेगी। तो यह कोई आस्तिकता हुई ? ऐसी नपुंसक आस्तिकता का कोई मूल्य नहीं है। इसे तो फेंक ही दो खुद ही। जो नास्तिक की बात सुनने से कंप जाती हो, तो जानना कि भीतर नास्तिक छिपा है, ऊपर-ऊपर आस्तिकता आरोपित कर ली है।

आस्तिक नास्तिक की बात सुनने से डरेगा ? नास्तिक डरे, समझ में आता है। नहीं, धन की बात सुनने से आस्तिक भयभीत होगा ? तो फिर इसे परम धन का स्वाद ही नहीं मिला।

तुमने कभी देखा ? अगर तुम्हें हीरों की परख हो तो क्या तुम कंकड़-पत्थरों से डरोगे ? क्या तुम यह कहोगे कि हीरों के पारखी को कंकड़-पत्थरों की चर्चा नहीं सुननी चाहिए। हीरों की जिसे परख है, कंकड़-पत्थरों की चलने दो चर्चा। तुम उसे थोड़े ही भुला सकोगे जिसे हीरों की परख है। हां, अगर परख झूठी हो, हो ही न, मान ली हो कि है, तो फिर कंकड़-पत्थर भी लुभा सकते हैं।

नहीं, तो मैं इस सूत्र का अनुवाद ठीक-ठीक वही करता हूं जो नारद ने कहा है : न श्रवणीयम्! सुनने योग्य नहीं है। मैं नहीं कहता कि नहीं सुनना चाहिए। तुम्हें लगेगा कि थोड़ा-सा फर्क है भाषा का, लेकिन थोड़ा नहीं है – सारा गुणधर्म बदल जाता है। एक छोटा-सा शब्द सारा गुणधर्म बदल देता है। सुनने योग्य नहीं है, यह बात समझ में आती है। व्यर्थ है। 'नहीं सुनना चाहिए', इससे तो लगता है, सार्थक है और डर है; न केवल सार्थक है, बल्कि परमात्मा से भी ज्यादा बलशाली है। 'सुनने योग्य नहीं है', इससे पता चलता है, निरर्थक है, व्यर्थ समय मत गंवाना। जिसको हीरों की परख है, वह कंकड़-पत्थर की व्यर्थ चर्चा में समय न गंवाएगा, यह बात पक्की है। लेकिन अगर कोई कंकड़-पत्थर लेकर आ जाए तो भाग भी न खड़ा होगा कि आंख बंद कर लेगा, कि चिल्लाने लगेगा : 'बचाओ, बचाओ। मारा, मारा गया! यह कंकड़-पत्थर ले आया।' ऐसी घबड़ाहट न दिखायी पड़ेगी। वह यह ही कहेगा, 'व्यर्थ, क्यों कंकड़-पत्थरों को यहां ले आए ? हीरों को पहचान चुका हूं – कहीं और ले जाओ।'

अगर आस्तिक के पास नास्तिक अपनी बात लेकर आएगा तो प्रेम से आस्तिक कहेगा, 'अब नहीं प्रभावित कर सकेगी यह बात। वह वक्त जा चुका। वह सीमा पार हो चुकी। थोड़े दिन पहले आना था। जरा देर करके आए।' नास्तिक को बिठाकर उसकी बात भी सुन लेगा, क्योंकि नास्तिक में भी बोलता तो परमात्मा ही है। खेल है समझो, खूब खेल खेल रहा है! अपना ही खंडन करता है!

ऐसा हुआ, रामकृष्ण को केशवचंद्र मिलने आए। वे बड़े प्रकाण्ड तार्किक थे; भारत में बहुत कम ऐसे तार्किक पिछली दो-तीन सदियों में हुए। उन्होंने बड़ा तर्क का विस्तार किया। वे तो रामकृष्ण से विवाद, शास्त्रार्थ करने आए थे। और रामकृष्ण उनका तर्क सुनने लगे और प्रफुल्लित हो-होकर उठ आते और उनको छाती से लगाते। जरा थोड़े चकित हुए : 'आदमी पागल है, बावला है! हम खंडन कर रहे हैं ईश्वर का!' उन्होंने कहा कि 'समझे कुछ? मैं ईश्वर का खंडन कर रहा हूं कि ईश्वर नहीं है।' रामकृष्ण ने कहा, 'उसी को तो समझकर तुम्हें छाती से लगाता हूं। उसकी बड़ी महिमा है! अपना खंडन किस मजे से कर रहा है! तुम्हें देखकर मुझे उसके चमत्कार पर और भी बड़ा प्रेम हो आया है। क्या मजा है! क्या खेल! खूब धोखा देने की तरकीब है! लेकिन मुझे धोखा न दे सकेगा। इसलिए मैं गले लगा रहा हूं। तुमको नहीं – उसको कह रहा हूं कि तू मुझे धोखा न दे पाएगा; पहचान चुका हूं तुझे। तेरा सब खेल जानता हूं!'

थके-हारे केशवचन्द्र वापस लौटे। चैन छिन गया। नींद खो गयी! इस आदमी ने हिला दिया। खंडन न किया इनका। बात सुनने से इनकार भी न किया। बेचैन भी न हुए। उलटे प्रफुल्लित होने लगे। उलटे कहने लगे, 'तुम जैसा बुद्धिमान जब दुनिया में है तो परमात्मा होना ही चाहिए, अन्यथा इतनी बुद्धि कहां से होगी! संसार पत्थर ही नहीं हो सकता, केशव! तुम जैसा बुद्धिमान यहां दुनिया में है। इसमें चैतन्य छिपा है। तुम कहते हो कि परमात्मा नहीं है; मैं तुम्हारी मानूं कि तुमको देखूं और तुम्हें पहचानूं? तुम्हें देखता हूं तो उसका सबूत, उसकी खबर मिलती है। तुम्हें सुनूं कि तुम्हें समझूं?'

नहीं आस्तिक न तो स्त्री से परेशान होता, न धन से, न नास्तिक से, न बैरी से। ये भी कोई बातें हुईं! हां, लेकिन एक बात पक्की है कि सुनने योग्य नहीं हैं। न श्रवणीयम्! फिजूल है। इनमें कोई रस नहीं लेता। कोई सुनाने आ जाए तो सुन लेगा, लेकिन भयभीत नहीं है।

'अभिमान, दम्भ आदि का त्याग करना चाहिए।'

बड़ा अनूठा सूत्र है : 'सब आचार भगवान के अर्पण कर चुकने पर यदि काम, क्रोध, अभिमान आदि हों, तो उन्हें भी उसके प्रति ही समर्पित करना चाहिए।'

क्या करोगे अगर हों फिर भी? छोड़ चुके सब, लेकिन फिर भी न छूटते हों तो क्या करोगे? भक्त क्या करेगा? भक्त कहेगा, 'अब इनको भी तू सम्हाल! तूने ही दिये, तू ही वापस ले ले।' यही तो भक्ति की सुगमता है और परम ऐश्वर्य है। भक्ति की महिमा है कि भक्ति किसी तरह का द्वन्द्व खड़ा नहीं करती। वह यह भी नहीं कहती कि अपने अहंकार से लड़ो। चढ़ा दो भगवान के चरणों में – उसी का दिया है! त्वदीयं वस्तु तुभ्यमेव समर्पये! तेरी चीज है, तू ही ले ले! गोविंद ने दी है, गोविंद को ही लौटा दो! अहंकार भी उसी ने दिया है। होगा कुछ खेल उसी का। होगा कुछ राज इसमें। उसी को लौटा दो। अगर फिर भी न छूटता हो तो भी क्या करोगे, स्वीकार कर लो कि तेरी जैसी मर्जी! अगर तू क्रोध करवाता है तो क्रोध करते रहेंगे! अगर तुझे अहंकार ही करवाना है तो अहंकार करते रहेंगे।

लेकिन जरा समझो इस बात को। अगर तुमने उस पर छोड़ दिया तो क्रोध कर सकोगे? क्रोध करने के लिए 'मैं हूं' यह अकड़ होनी ही चाहिए, नहीं तो क्रोध होगा ही कैसे। 'मैं' पर ही चोट लगती

है तभी तो क्रोध होता है। अहंकार समर्पण के बाद हो ही कैसे सकता है ? समर्पण का अर्थ ही यह होता है कि तू सम्हाल, और अगर तू कहे कि ठीक, अभी तुम ही रखो थोड़ी देर तो रखे रहेंगे!

ऐसा हुआ, गुरजिएफ के पास कैथरिन मैन्सफील्ड एक बड़ी लेखिका आई। सिगरेट पीने की उसे लत थी — शृंखलाबद्ध! एक सिगरेट से दूसरी सिगरेट जला ले। गुरजिएफ ने कहा, 'सिगरेट पीना बंद! थोड़ा अपना संकल्प जगाओ!' सालभर बीत गया, मैन्सफील्ड ने सिगरेट न पी। सालभर बाद वह बड़ी प्रसन्न हुई कि अदभुत हो गया, मैं भी अदभुत हूं कि जो छूटे न छूटती थी, वह भी छोड़ दी! सालभर बाद वह गुरजिएफ के पास आयी। उसने कहा, 'साल भर हो गया, मैं सिगरेट नहीं पीती हूं।' गुरजिएफ ने उसकी तरफ देखा और कहा, 'करोड़ों लोग हैं जो सिगरेट नहीं पीते। इसमें कुछ गौरव नहीं है। ले, सिगरेट पी।' खीसे से सिगरेट निकाली, कहा 'यह ले सिगरेट पी!' वह थोड़ी झिझकी। उसने कहा, 'झिझकना क्या! थोड़ा संकल्प जगा! पी! एक दिन कहा था, छोड़... थोड़ा संकल्प जगा।'

समझ गई कैथरिन, बात ठीक है। पहले सिगरेट पकड़ी थी; अब सिगरेट नहीं पीती, इस बात ने पकड़ लिया। तो गुरजिएफ का वचन बड़ा महत्वपूर्ण है। उसने कहा, 'करोड़ों लोग हैं जो सिगरेट नहीं पीते, इसमें बात ही क्या ? ले पी! न पीना कोई गुण है ? पहले पीने में जकड़ी थी, अब न पीने में जकड़ गयी!'

तो गुरजिएफ के पास अगर गैर-मांसाहारी आते तो वह मांस खिला देता; मांसाहारी आते तो मांस छुड़वा देता; शराबी आते तो शराब छीन लेता; गैर-शराबी आ जाते तो उनको डटकर पिलवा देता कि छोड़, यह क्या पकड़े बैठा है!

वह जो थोड़ी-सी झिझक आ गयी कैथरिन मैन्सफील्ड को, गुरजिएफ ने कहा, यह तेरी झिझक डर है।

इसको ऐसा समझो कि तुम भगवान के पास गये, अहंकार चढ़ाया और भगवान ने कहा, अभी थोड़ी देर रखो, तो क्या करोगे ? भगवान की मानोगे कि अपनी ही धुनोगे ? कि कहोगे कि नहीं, हम तो छोड़कर रहेंगे ? कि हमने तो चढ़ा दिया! तो उस 'हम' में ही तो अहंकार रह जाएगा। और अगर उसकी मान ली, कहा, 'ठीक तेरी मर्जी!' ले आए कंधे पर रखकर वापस। उसी रखने में छूट गया। क्योंकि बात ही क्या रही अब, जब उस पर ही छोड़ दिया, और उसने कहा कि रखो। तो अपनी मानें कि उसकी मानें!

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, हम तो सब आपके लिए छोड़ते हैं। एक युवती आयी। उसने कहा, 'मैं सब आपके लिए छोड़ती हूं, जो आप कहेंगे वह करूंगी।' मैंने कहा, अच्छी बात है। उसने कहा, मगर मुझे यहां से जाना नहीं है; यहीं इसी आश्रम में रहना है। मैंने कहा कि नहीं, जाना पड़ेगा। उसने कहा, कि मैं जा ही नहीं सकती; अब तो आप जो कहेंगे वही करूंगी। अब बोलो, क्या करना है। मैंने कहा, 'तू मेरी सुनती है कि अपनी ?' वह कहती है कि बिलकुल मैं सब छोड़ ही चुकी, अब तो मैं यहीं रहूंगी। अब तो मैं जो आप कहेंगे वही करूंगी।

वह यह दोहराए चली जा रही है। उसे बात दिखायी ही नहीं पड़ रही कि मैं कह रहा हूं कि

तू जा। अगर सच में वह छोड़ चुकी है तो वह कहेगी, 'ठीक, आप कहते हैं तो जाती हूं; आप कहेंगे तो आ जाऊंगी।' अगर वह इतना कह देती तो उसी वक्त मैं उसे रोक लेता, लेकिन वह न कह सकी। उसका यह कहना कि सब छोड़ती हूं, छोड़ना नहीं है। उस तरकीब से वह मुझे भी चलाना चाहती है अपने हिसाब से।

तुम जाते हो भगवान को चढ़ाने, लेकिन चढ़ाते तुम इस बात से हो कि 'ध्यान रखना, एहसान किया है, भूल न जाना! सब चढ़ा दिया है।' जैसे उसे तुम कुछ नया दे आये हो जो उसका नहीं था!

नारद का यह सूत्र समझ लेना : 'सब आचार भगवान को अर्पण कर चुकने पर यदि काम, क्रोध, अभिमान आदि हों तो उन्हें भी उसके प्रति ही समर्पित मानना चाहिए।'

परमात्मा सदा तुम्हारे पास है। एक बार तुम उसके हाथों में अपने को छोड़ो – सर्व, समग्र, पूर्ण भाव से। रत्तीभर भी पीछे मत बचाना। यह आग्रह भी मत बचाना कि मैंने सब छोड़ा। इतना भी 'मैं' पीछे मत बचाना।

इतने दिन था बंद, आज ही
वातायन खोला है
कहता रहा वसंत, गंध को
यों ही मत लौटाओ
चिंतित रहा अनंत, स्वयं को
सीमित नहीं बनाओ
अब तक था हत्‌चेत, आज ही
हृद्-चिंतन बोला है।
अपने रुग्ण विमूर्छित मन को
प्राणवायु पहुंचाओ
तिमिरग्रस्त लोचन को फिर से
परम विभा दिखलाओ
जीवन-रण के इस क्षण में फिर
नारायण बोला है
छिपा हुआ जो द्वन्द्व, उसे ही
परमानंद बनाओ
बिछुड़ गई जो बूंद, उसे ही
महा समुंद बनाओ
बन कर फिर प्रारम्भ स्वयं ही
पारायण बोला है।

परमात्मा चारों तरफ बोल रहा है, सन्देश दे रहा है, इंगित-इशारे। प्रतिपल तुम्हें ले चलना चाहता है वापस घर। तुम सुनते ही नहीं हो। तुम अपनी ही कहे चले जाते हो। सब छोड़ो उस पर। छोड़ना

भी उसी पर छोड़ो।

इतने दिन था बंद, आज ही
वातायन खोला है।

खोलो खिड़की! आने दो उसकी हवाओं को भीतर!

कहता रहा वसंत, गंध को
यों ही मत लौटाओ!

बहुत बार लौटाया है। कितनी बार कितने अनंत कालों में, कितनी अनंत बार लौटाया है!

कहता रहा वसंत, गंध को
यों ही मत लौटाओ
चिंतित रहा अनंत, स्वयं को
सीमित नहीं बनाओ
अब तक था हत्चेत, आज ही
हृद्-चिंतन बोला है।

एक तो सिर का विचार है, और एक हृदय का चिंतन है, वह बड़ी अलग बात है।

अब तक था हत्चेत!

खोपड़ी बोलती रही, हृदय सोता रहा!

अब तक था हत्चेत, आज ही
हृद्-चिंतन बोला है
अपने रुग्ण विमूर्छित मन को
प्राणवायु पहुंचाओ
तिमिरग्रस्त लोचन को फिर से
परम विभा दिखलाओ
जीवन-रण के इस क्षण में फिर
नारायण बोला है।

प्रतिपल जहां भी जीवन है, वहीं उसकी गूंज है। हर कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र है।

जीवन-रण के इस क्षण में फिर
नारायण बोला है
छिपा हुआ जो द्वंद्व, उसे ही
परमानंद बनाओ।

वही ऊर्जा, जिससे तुम दुखी हो रहे हो, वही आनंद बन जाती है; वही दुर्गंध से भरी हुई खाद फूलों में सुगंध बन जाती है; वही कीचड़-कर्कट कमल बन जाता है।

छिपा हुआ जो द्वन्द्व उसे ही
परमानंद बनाओ

बिछुड़ गयी जो बूंद, उसे ही
महा समुंद बनाओ।

फिर से डाल दो बूंद को वापस समुद्र में। कुछ बिछुड़ा थोड़े ही है। गिरते ही बूंद फिर महासागर हो जाती है। दूर-दूर मत रखो, अलग-थलग मत रहो।

बिछुड़ गयी जो बूंद, उसे ही
महा समुंद बनाओ
बन कर फिर प्रारम्भ स्वयं ही
पारायण बोला है।

आज इतना ही।

उदासी नहीं – उत्सव है भक्ति

सोलहवां प्रवचन

प्रश्नसार

- राजा हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रहलाद की पुराणकथा तथा होली उत्सव पर प्रकाश डालें।
- यारी करके देखा यार मिलता नहीं, बेवफा मिलता है लेकिन बावफा मिलता नहीं।
- भगवान इस समय हमारे और आपके बीच क्या करवाता है?
- जो अनुभव आपके सान्निध्य और प्रवचन में होता है, वह कैसे अधिक समय तक रहे?
- आपको जानने से पहले राधास्वामी संत से प्रभावित था, ...मांस और शराब छोड़ने की शर्त थी। फिर अपनी किताब ...बढ़िया अनुभव करता हूं। अब संन्यास... क्या केवल माला से ही काम नहीं चल सकता ?

पहला प्रश्न : पुराण-कथा है, प्रहलाद नास्तिक राजा हिरण्यकश्यप के यहां जन्म लेता है, और फिर हिरण्यकश्यप अपनी नास्तिकता सिद्ध करने के लिए प्रहलाद को नदी में डुबोता है, पहाड़ से गिरवाता है, और अन्त में अपनी बहन होलिका से पूर्णिमा के दिन जलवाता है। और आश्चर्य तो यही है कि वह सभी जगह बच जाता है, और प्रभु के गुणगान गाता है। और तब से इस देश में होली जलाकर होली का उत्सव मनाते हैं, रंग गुलाल डालते हैं, आनंद मनाते हैं। कृपा करके इस पुराण-कथा का मर्म हमें समझाइये।

● पुराण इतिहास नहीं है। पुराण महाकाव्य है। पुराण में जो हुआ है, वह कभी हुआ है ऐसा नहीं, वरन सदा होता रहता है। तो पुराण में किन्हीं घटनाओं का अंकन नहीं है, वरन किन्हीं सत्यों की ओर इंगित है। पुराण शाश्वत है।

ऐसा कभी हुआ था कि नास्तिक के घर आस्तिक का जन्म हुआ ? ऐसा नहीं; सदा ही नास्तिकता में ही आस्तिकता का जन्म होता है। सदा ही; और होने का उपाय ही नहीं है। आस्तिक की तरह तो कोई पैदा हो ही नहीं सकता; पैदा तो सभी नास्तिक की तरह होते हैं। फिर उसी नास्तिकता में आस्तिकता का फूल लगता है। तो नास्तिकता आस्तिकता की मां है, पिता है। नास्तिकता के गर्भ से ही आस्तिकता का आविर्भाव होता है।

हिरण्यकश्यप कभी हुआ या नहीं, मुझे प्रयोजन नहीं है। व्यर्थ की बातों में मुझे रस नहीं है। प्रहलाद कभी हुए, न हुए, प्रहलाद जानें। लेकिन इतना मुझे पता है, कि पुराण में जिस तरफ इशारा है, वह रोज होता है, प्रतिपल होता है, तुम्हारे भीतर हुआ है, तुम्हारे भीतर हो रहा है। और जब भी कभी मनुष्य होगा, कहीं भी मनुष्य होगा, पुराण का सत्य दोहराया जाएगा। पुराण सार-निचोड़ है; घटनाएं नहीं, इतिहास नहीं, मनुष्य के जीवन का अन्तर्निहित सत्य है।

समझो। पहली बात –

साधारणतः तुम समझते हो कि नास्तिक आस्तिक का विरोधी है। वह गलत है। नास्तिक बेचारा विरोधी होगा कैसे ! नास्तिकता को आस्तिकता का पता नहीं है। नास्तिकता आस्तिकता से अपरिचित है, मिलन नहीं हुआ। लेकिन आस्तिकता के विरोध में नहीं हो सकती नास्तिकता, क्योंकि आस्तिकता

तो नास्तिकता के भीतर से ही आविर्भूत होती है। नास्तिकता जैसे बीज है और आस्तिकता उसी का अंकुरण है। बीज का अभी अपने अंकुर से मिलना नहीं हुआ। हो भी कैसे सकता है? बीज अंकुर से मिलेगा भी कैसे? क्योंकि जब अंकुर होगा तो बीज न होगा। जब तक बीज है तब तक अंकुर नहीं है। अंकुर तो तभी होगा जब बीज टूटेगा और मिटेगा और भूमि में खो जाएगा। तब अंकुर होगा। जब तक बीज है तब तक अंकुर हो नहीं सकता। यह विरोधाभासी बात समझ लेनी चाहिए।

बीज से ही अंकुर पैदा होता है, लेकिन बीज के विसर्जन से, बीज के खो जाने से, बीज के तिरोहित हो जाने से। बीज अंकुर का विरोधी कैसे हो सकता है! बीज तो अंकुर की सुरक्षा है। वह जो खोल बीज की है, वह भीतर अंकुर को ही सम्हाले हुए है – ठीक समय के लिए, ठीक ऋतु के लिए, ठीक अवसर की तलाश में। लेकिन, बीज को अंकुर का कुछ पता नहीं है। अंकुर का पता हो भी नहीं सकता। और इसी अज्ञान में बीज संघर्ष भी कर सकता है अपने को बचाने का – डरेगा, टूट न जाऊं, खो न जाऊं, मिट न जाऊं! भयभीत होगा। उसे पता नहीं कि उसी की मृत्यु से महाजीवन का सूत्र उठेगा। उसे पता नहीं, उसी की राख से फूल उठनेवाले हैं। पता ही नहीं है। इसलिए बीज क्षमायोग्य है, उस पर नाराज मत होना। दयायोग्य है। बीज बचाने की कोशिश करता है। यह स्वाभाविक है अज्ञान में।

हिरण्यकश्यप पिता है। पिता से ही पुत्र आता है। पुत्र पिता में ही छिपा है। पिता बीज है। पुत्र उसी का अंकुर है। हिरण्यकश्यप को भी पता नहीं कि मेरे घर भक्त पैदा होगा। मेरे घर और भक्त! सोच भी नहीं सकता। मेरे प्राणों से आस्तिकता जन्मेगी – इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन प्रहलाद जन्मा हिरण्यकश्यप से। हिरण्यकश्यप ने अपने को बचाने की चेष्टा शुरू कर दी। घबड़ा गया होगा। डरा होगा। यह छोटा-सा अंकुर था प्रहलाद, इससे डर भी क्या था? फिर यह अपना ही था, इससे भय क्या था! लेकिन जीवनभर की मान्यताएं, जीवनभर की धारणाएं दांव पर लग गयी होंगी।

हर बाप बेटे से लड़ता है। हर बेटा बाप के खिलाफ बगावत करता है। और ऐसा बाप और बेटे का ही सवाल नहीं है – हर आज कल के खिलाफ बगावत है, बीते कल के खिलाफ बगावत है। वर्तमान अतीत से छुटकारे की चेष्टा है। अतीत पिता है, वर्तमान पुत्र है। बीते कल से तुम्हारा आज पैदा हुआ है। बीता कल जा चुका, फिर भी उसकी पकड़ गहरी है; विदा हो चुका, फिर भी तुम्हारी गर्दन पर उसकी फांस है। तुम उससे छूटना चाहते हो : अतीत भूल जाए, विस्मृत हो जाए। पर अतीत तुम्हें ग्रसता है, पकड़ता है।

वर्तमान अतीत के प्रति विद्रोह है। अतीत से ही आता है वर्तमान; लेकिन अतीत से मुक्त न हो तो दब जाएगा, मर जाएगा।

हर बेटा बाप से पार जाने की कोशिश है।

तुम प्रतिपल अपने अतीत से लड़ रहे हो – वह पिता से संघर्ष है।

ऐसा समझो –

सम्प्रदाय अतीत है, धर्म वर्तमान है। इसलिए जब भी कोई धार्मिक व्यक्ति पैदा होगा, सम्प्रदाय से संघर्ष निश्चित है। होगा ही। सम्प्रदाय यानी हिरण्यकश्यप; धर्म यानी प्रहलाद। निश्चित ही हिरण्यकश्यप शक्तिशाली है, प्रतिष्ठित है। सब ताकत उसके हाथ में है। प्रहलाद की सामर्थ्य क्या है?

नया-नया उगा अंकुर है। कोमल अंकुर है। सारी शक्ति तो अतीत की है, वर्तमान तो अभी-अभी आया है, ताजा-ताजा है। बल क्या है वर्तमान का ? पर मजा यही है कि वर्तमान जीतेगा और अतीत हारेगा; क्योंकि वर्तमान जीवन्तता है और अतीत मौत है।

हिरण्यकश्यप के पास सब था – फौज-फांटे थे, पहाड़-पर्वत थे। वह जो चाहता, करता। जो चाहा उसने करने की कोशिश भी की, फिर भी हारता गया। शक्ति नहीं जीतती, जीवन जीतता है। प्रतिष्ठा नहीं जीतती, सत्य जीतता है। सम्प्रदाय पुराने हैं।

जीसस पैदा हुए, यहूदियों का सम्प्रदाय बहुत पुराना था, सूली लगा दी जीसस को। लेकिन मार कर भी मार पाए ? इसीलिए पुराण की कथा है कि फेंका प्रहलाद को पहाड़ से, डुबाया नदी में – नहीं डुबा पाए, नहीं मार पाए। जलाया आग में – नहीं जला पाए। इससे तुम यह मत समझ लेना कि किसी को तुम आग में जलाओगे तो वह न जलेगा। नहीं, बड़ा प्रतीक है। जीसस को मारा, मर गये। लेकिन मर पाए ? मारकर भी तुम मार पाए ?

इसलिए मैं कहता हूं, पुराण तथ्य नहीं है, सत्य है। तुम अगर यह सिद्ध करने निकल जाओ कि आग जला न पायी प्रहलाद को, तो तुम गलती में पड़ जाओगे, तो तुम भूल में पड़ जाओगे, तो तुम्हारी दृष्टि भ्रान्त हो जाएगी। तुम अगर यह समझो कि पहाड़ से फेंका और चोट न खायी, तो तुम गलती में पड़ जाओगे। नहीं, बात गहरी है, इससे कहीं बहुत गहरी है। यह कोई ऊपर की चोटों की बात नहीं है। क्योंकि हम जानते हैं, जीसस को सूली लगी, जीसस मर गये। सुकरात को जहर दिया, सुकरात मर गये। मंसूर को काटा, मंसूर मर गया। लेकिन मरा सच में या प्रतीत हुआ कि मर गये ? जीसस अब भी जिंदा है – मारनेवाले मर गये। सुकरात अभी भी जिंदा है – जहर पिलानेवालों का कोई पता नहीं।

सुकरात ने कहा था – जिन्होंने उसे जहर दिया – कि ध्यान रखो कि तुम मुझे मारकर भी न मार पाओगे; और तुम्हारे नाम की अगर कोई याद रहेगी तो सिर्फ मेरे साथ, कि तुमने मुझे जहर दिया था, तुम जियोगे भी तो मेरे नाम के साथ। निश्चित ही आज सुकरात के मारनेवालों का अगर कहीं कोई नाम है तो बस इतना ही कि सुकरात को उन्होंने मारा था।

थोड़ा सोचो ! हिरण्यकश्यप का नाम होता, प्रहलाद के बिना ? प्रहलाद के कारण ही। अन्यथा कितने हिरण्यकश्यप होते हैं, होते रहते हैं ! आज हम जानते हैं, किसकी आज्ञा से जीसस को सूली लगी थी। उस वाइसराय का नाम याद है। हजारों वाइसराय होते रहे हैं दुनिया में, सब के नाम खो गये, लेकिन पायलट का नाम याद है; बस इतना ही नाम है कि उसका नाम था; जीसस को सूली दी थी, जीसस के साथ अमर हो गया।

जीसस को हम मारकर भी मार न पाए – इतना ही अर्थ है। जीवन को मिटाकर भी तुम मिटा नहीं सकते। सत्य को तुम छिपाकर भी छिपा नहीं सकते, दबाकर भी दबा नहीं सकते। उभरेगा, हजार-हजार रूपों में वह उभरेगा; हजार-हजार गुना बलशाली होकर उभरेगा। लेकिन सदा यह भ्रांति होती है कि ताकत किनके हाथ में है। ताकत तो अतीत के हाथ में होती है। समाज के हाथ में होती है, सम्प्रदाय के हाथ में होती है, राज्य के हाथ में होती है। जब कोई धार्मिक व्यक्ति पैदा होता है तो

कोंपल-सा कोमल होता है; लगता है जरा-सा धक्का दे देंगे, मिट जाएगा, लेकिन आखिर में वही जीतता है। उस कोमल-सी कोंपल की चोट से महासाम्राज्य गिर जाते हैं।

क्या बल है निर्बल का ? निर्बल के बल राम ! कुछ एक शक्ति है, जो व्यक्ति की नहीं है, परमात्मा की है। वही तो भक्त का अर्थ है। भक्त का अर्थ है : जिसने कहा, 'मैं नहीं हूं, तू है !' भक्त ने कहा, 'अब जले तो तू जलेगा; मरे तो तू मरेगा; हारे तो तू हारेगा; जीते तो तू जीतेगा। हम बीच से हटे जाते हैं।

भक्त का इतना ही अर्थ है कि भक्त बांस की पोंगरी की भांति हो गया; भगवान से कहता है, 'गाना हो गा लो, न गाना हो न गाओ — गीत तुम्हारे हैं ! मैं सिर्फ बांस की पोंगरी हूं। तुम गाओगे तो बांसुरी जैसा मालूम होऊंगा; तुम न गाओगे तो बांस की पोंगरी रह जाऊंगा। गीत तुम्हारे हैं, मेरा कुछ भी नहीं। हां, अगर गीत में कहीं कोई बाधा पड़े, सुर भंग हो, तो मेरी भूल समझ लेना — बांस की पोंगरी कहीं इरछी-तिरछी है; जो मिला था उसे ठीक-ठीक बाहर न ला पायी; जो पाया था उसे अभिव्यक्त न कर पायी। भूल अगर हो जाए तो मेरी समझ लेना। लेकिन अगर कुछ और हो, सब तुम्हारा है।'

भक्त का इतना ही अर्थ है।

नास्तिकता में ही आस्तिक पैदा होगा। तुम सभी नास्तिक हो। हिरण्यकश्यप बाहर नहीं है, न ही प्रहलाद बाहर है। हिरण्यकश्यप और प्रहलाद दो नहीं हैं — प्रत्येक व्यक्ति के भीतर घटनेवाली दो घटनाएं हैं। जब तक तुम्हारे मन में सन्देह है — हिरण्यकश्यप है — तब तक तुम्हारे भीतर उठते श्रद्धा के अंकुरों को तुम पहाड़ों से गिराओगे, पत्थरों से दबाओगे, पानी में डुबाओगे, आग में जलाओगे — लेकिन तुम जला न पाओगे। उनको जलाने की कोशिश में तुम्हारे ही हाथ जल जाएंगे।

कितनी बार नहीं तुम्हारे मन में श्रद्धा का भाव उठता है, सन्देह झपटकर पकड़ लेता है। कितनी बार नहीं तुम किनारे-किनारे आ जाते हो छलांग लगाने के, सन्देह पैर में जंजीर बनकर रोक लेता है, क्या कर रहे हो ? कुछ घर-द्वार की सोचो ! कुछ परिवार की सोचो ! कुछ धन, प्रतिष्ठा, पद की सोचो ! कुछ संसार की सोचो ! क्या कर रहे हो ? पैर रुक जाते हैं। सोचते हो, कल कर लेंगे, इतनी जल्दी क्या है !

क्रांति कितनी बार तुम्हारे भीतर नहीं उन्मेष लेती है ! कितनी बार नहीं तुम्हारे भीतर क्रांति का झंझावात आता है — और तुम बार-बार सन्देह का साथ पकड़कर रुक जाते हो ! यह तुम अपने भीतर खोजो। यह कथा कुछ पुराण में खोजने की नहीं है। यह तुम्हारे प्राण में खोजने की है। यह पुराण तुम्हारे प्राणों में लिखा हुआ है।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं कि भाव तो उठा है, लेकिन बड़े सन्देह भी हैं। मैं उनसे कहता हूं, भाव भी है, सन्देह भी है; अब तुम किसके साथ जाने की सोचते हो ? निर्णय तो तुम्हें करना पड़ेगा। क्या तुम सोचते हो, उस दिन तुम जाओगे जिस दिन कोई सन्देह न होगा ? तब तो तुम कभी जा ही न सकोगे। सन्देह भी है तुम्हारे भीतर, भाव भी है तुम्हारे भीतर, दोनों ही द्वार खुले हैं। सन्देह भी है तुम्हारे भीतर, श्रद्धा भी है तुम्हारे भीतर, दोनों ही द्वार खुले हैं। हिरण्यकश्यप, प्रहलाद दोनों ने तुम्हें पुकारा है — किसकी सुनोगे ? कारण क्या है कि तुम सन्देह की ही सुन लेते हो बार-बार ? क्योंकि सन्देह बलशाली मालूम होता है। सारा समाज, संसार साथ मालूम होता है। श्रद्धा निर्बल करती मालूम

होती है – अकेले जाना होगा।

सन्देह के राजपथ हैं; वहां भीड़ साथ है। श्रद्धा की पगडंडियां हैं; वहां तुम एकदम अकेले हो जाते हो, एकाकी। वही एकाकी हो जाना संन्यास है। अकेले होने का साहस ही श्रद्धा में ले जा सकता है।

हिरण्यकश्यप बलशाली है – वही उसकी निर्बलता सिद्ध हुई। प्रहलाद बिलकुल निर्बल है – वही उसका बल सिद्ध हुआ। लेकिन वह चलता रहा। उसका गीत न रुका, उसका भजन न रुका। बाप के विपरीत भी चलता रहा!

सन्देह श्रद्धा का पिता है, शत्रु नहीं है। सन्देह से ही श्रद्धा जन्मती है। और सन्देह हजार चेष्टा करेगा कि श्रद्धा जन्मे न, क्योंकि श्रद्धा अगर जन्मी तो सन्देह को खोना पड़ेगा, मिटना पड़ेगा। तो सन्देह लड़ेगा आखिरी दम तक। उसी लड़ाई में वह विध्वंस करता है।

अब यह भी समझ लेना जरूरी है कि सन्देह की क्षमता सिर्फ विध्वंस की है, सृजन की नहीं है। सन्देह मिटा सकता है, बना नहीं सकता। सन्देह के पास सृजनात्मक ऊर्जा नहीं है। वह कह सकता है, नहीं; लेकिन हां, हां उसके प्राणों में उठती ही नहीं। और बिना हां के जगत में कुछ निर्मित नहीं होता। सारा सृजन हां से है, सारा विध्वंस नहीं से है। तो नहीं हिंसात्मक है, हां अहिंसात्मक है। सन्देह कहे चले जाता है, नहीं; मिटाने के उपाय सुझा देता है। कहता है, 'यह छोटा-सा बालक श्रद्धा का – गिरा दो पहाड़ से! समाप्त करो यह झंझट बीच की! डुबा दो पानी में! आग में जला दो!'

मगर ध्यान रखना, जब भी सृजन और विध्वंस का संघर्ष होगा, विध्वंस हारेगा, सृजन जीतेगा। क्योंकि सृजन परमात्मा की ऊर्जा है। जब भी हां और ना में संघर्ष होगा, हां जीतेगी, ना हारेगी। ना में बल ही क्या है? कितनी ही बलशाली दिखायी पड़ती हो, लेकिन सारा बल नपुंसकता का है। बल है नहीं, झूठा दावा है।

तुमने कभी खयाल किया? तुम जब भी किसी बात पर नहीं कहते हो तो बड़ी शक्ति मालूम पड़ती है – नहीं के साथ शक्ति मालूम पड़ती है। और जब भी तुम हां कहते हो, ऐसा लगता है, कहनी पड़ी। छोटा बच्चा कहता है मां से कि जरा बाहर खेल आऊं – 'नहीं'! बाहर खेल के लिए कह रहा था, कुछ 'नहीं' कहने की बात भी न थी। पति कहता है, जरा, छुट्टी का दिन है, नदी पर मछली मार आऊं – 'नहीं'। क्या अड़चन थी? घर बैठे-बैठे मक्खी मारेगा! मछली ही मार लेता। कम-से-कम नदी के किनारे बैठने का थोड़ा सुख ले लेता। लेकिन 'नहीं' त्वरित आती है। 'नहीं' के साथ बल है।

खड़े हो तुम स्टेशन की खिड़की पर, टिकट मांगते हो। वह जो टिकटबाबू है, काम भी न हो तो रजिस्टर उलटने लगता है। वह कह रहा है, 'खड़े रहो! कोई बड़े साहब, लाटसाहब... खड़े रहो!' वह कह रहा है, नहीं! यह मौका उसको भी 'नहीं' कहने का मिला है। इधर-उधर उलटेगा। तुमने भी बहुत बार यह किया है, खयाल करो।

जब तुम्हें 'नहीं' कहने का मौका मिलता है तो तुम छोड़ते नहीं। क्योंकि 'नहीं' कहने से लगता है, 'देखो! अटका दिया! मेरे पर निर्भर हो! अभी दूं टिकट तो ठीक, न दूं तो ठीक!'

'नहीं' के साथ एक नपुंसक बल की प्रतीति होती है जो कि झूठा है; वह असली बल नहीं है। अब इसे तुम खयाल करो। अगर तुम असली बलशाली हो तो तुम 'नहीं' कहने से बल इकट्ठा करोगे?

अगर पत्नी के प्रेम का बल है पति पर, तो वह 'नहीं' कहकर अपनी ताकत आजमाएगी ? जरूरत ही न रहेगी। जहां बल है, वहां 'नहीं' की जरूरत ही नहीं है। प्रयोजन क्या है ? जहां वास्तविक शक्ति है वहां तो 'हां' से भी शक्ति ही प्रगट होती है। लेकिन तुम्हारी तकलीफ यह है कि वास्तविक शक्ति नहीं है; 'नहीं' कहते हो, तो ही थोड़ी-सी झंझट खड़ी करके तुम शक्ति का अनुभव कर पाते हो। 'हां' कहते हो, तो लगता है हां कहनी पड़ी। 'हां' तुम मजबूरी में कहते हो। तुम्हें 'हां' कहने का लुत्फ न आया। तुम्हें 'हां' कहने का सलीका न आया। तुम्हारे पास ताकत नहीं है।

हिरण्यकश्यप प्रहलाद के सामने कमजोर मालूम होने लगा होगा। आनंद के सामने दुख सदा कमजोर हो जाता है — हो ही जाएगा, है ही कमजोर। दुख नकार है। आनंद विधायक ऊर्जा का आविर्भाव है। दुख में कभी कोई फूल खिले हैं ? कांटे ही लगते हैं। प्रहलाद के फूल के सामने हिरण्यकश्यप का कांटा शर्मिंदा हो उठा होगा, लज्जा से भर गया होगा, ईर्ष्या से जल गया होगा। यह ताजगी, यह कुंआरापन, यह सुंगध, यह संगीत, ये प्रहलाद के भगवान के नाम पर गाये गये गीत — उसे बहुत बेचैन करने लगे होंगे। वह घबड़ाने लगा। उसकी सांसें घुटने लगीं। उसे एकबारगी वही सूझा जो सूझता है नकार को, नास्तिक को, निर्बल-दुर्बल को — वही सूझा उसे। मिटा दो इसे। विध्वंस सूझा।

दुनिया में दो तरह के बल हैं। या तो तुम कुछ बनाओ तो बल मालूम होता है। तुमने एक गीत लिखा...। कवियों से पूछो, जब उनका गीत पूरा हो जाता है तो वे कैसे हिमालय के शिखर पर उठ जाते हैं। कैसा आनंद तरंगायित हो उठता है! मूर्तिकार से पूछो, जब उसकी मूर्ति पूरी होती, तो वह स्रष्टा हो जाता है! किसी मां से पूछो, जब उसका गर्भ बड़ा होता है और जब उसके पेट में बच्चा बड़ा होने लगता है, तब उसकी पुलक, उसका आनंद पूछो!

एक स्त्री जब तक मां न बने, साधारण स्त्री है। गरिमा नहीं होती उसमें, गौरव नहीं होता। अभी कुछ पैदा ही नहीं किया, गरिमा कैसी ? अभी वृक्ष में फल ही न लगे, गौरव कैसा ? तब तक बांझपन घेरे रहता है। फिर एक बेटा हुआ, तब स्त्री में एक नया आविर्भाव होता है; तब वह साधारण स्त्री न रही, तब वह मां हो गयी। मां होकर वह परमात्मा की संगी-साथी हो गयी। सृजन दिया ! कुछ पैदा किया ! जीवन को जन्म दिया !

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुष का मन स्त्री से सदा ही ईर्ष्या से भरा है, क्योंकि वह जन्म नहीं दे सकता। गर्भ रखने की उसके पास सुविधा नहीं है। इसीलिए पुरुष और हजार चीजों को जन्म देता है — परिपूरक की तरह : कविता लिखता है, मूर्ति बनाता है, चित्र बनाता है, भवन बनाता है, ताजमहल खड़े करता है। लेकिन कितने ही ताजमहल खड़े करो, एक छोटे-से बच्चे का मुकाबला थोड़े ही कर सकेंगे। कितने ही सुन्दर हों, तुम्हारी मूर्तियां कितनी ही कलापूर्ण हों, और तुम्हारे गीतों में कितना ही तरन्नुम हो और कितना ही छंद हो, छोटे-से बच्चे की आंखों का छंद तो न हो सकेगा। माना कि संगमरमर बहुत सुन्दर है, मगर एक जीवंत बच्चे के सौंदर्य के सामने क्या होगा ? एक साधारण-सी स्त्री तुम्हारे शाहजहांओं को मात कर देती है। बना लो तुम ताजमहल... !

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुष निरंतर चेष्टा करता है कुछ बनाने की, ताकि वह भी अनुभव कर सके, मैं भी स्रष्टा हूं। लेकिन फिर भी तृप्ति वैसी नहीं होती जैसी स्त्री को होती है। इसलिए तो

स्त्रियां कुछ नहीं बनातीं – न ताजमहल, न चित्र, न अजन्ता, न एलोरा। न उन्होंने गीत लिखे कालिदास जैसे, न चित्र बनाये पिकासो जैसे। स्त्रियां कुछ भी नहीं करतीं। बड़े हैरान होओगे तुम। पाकशास्त्र भी पुरुष लिखते हैं। नयी शाक-सब्जी भी खोजनी हो तो पुरुष खोजते हैं, स्त्री उस झंझट में नहीं पड़ती। दुनिया के अच्छे और बड़े रसोइये स्त्रियां नहीं हैं, पुरुष हैं। रसोइये भी! हद हो गयी! घर की साज-सज्जा करनी हो, इंटीरियर डैकोरेशन करना हो, फर्नीचर जमाना हो, तो भी पुरुष विशेषज्ञ...!

स्त्री कुछ बनाती नहीं – बनाने की जरूरत अनुभव नहीं करती। मां होने में इतनी तृप्ति है: भर जाती है। सफल हो जाती है। फलवती हो जाती है, यानी सफल हो जाती है।

ध्यान रखना, दो उपाय हैं शक्ति अनुभव करने के – या तो सृजन या विध्वंस। अगर तुम सृजन के द्वारा शक्ति अनुभव न कर सके, तो फिर विध्वंस के द्वारा शक्ति अनुभव करोगे। हिटलर, मुसोलिनी, नेपोलियन और सिकंदर, ये विध्वंस के द्वारा शक्ति अनुभव करते हैं; बुद्ध, सुकरात, जीसस सृजन के द्वारा शक्ति अनुभव करते हैं।

शायद तुम्हें पता न हो: हिटलर मूलतः चित्रकार होना चाहता था। उसने आर्ट-अकेडमी में अर्जी भी दी थी, लेकिन स्वीकार न हुई। वह चोट उसे भारी पड़ी। वह कुछ बनाना चाहता था – चित्र, मूर्तियां। वह चोट उसे भारी पड़ी। सारी जीवन-ऊर्जा उसकी विध्वंस में उलझ गयी। यह भी शायद तुम्हें पता न हो कि इतने लाखों लोगों की हत्या के बाद भी रात जब उसे फुर्सत मिलती थी तो वह चित्र बनाता था। डांवांडोल था। हिटलर ने लिखा है कि आदमी को मारकर मिटाकर भी अपने बल का अनुभव होता है।

तुम जितना बड़ा विध्वंस कर सको, उतना लगता है बलशाली हो; कोई फिक्र नहीं, बना नहीं सकता, मिटा तो सकता हूं। 'सकने' का पता चलता है। बना नहीं सकता, कोई बात नहीं, मिटा सकता हूं! चलो, उतनी ऊंचाई न सही बनाने की, लेकिन मिटाने की ऊंचाई तो हो ही सकती है!

नास्तिकता विध्वंसात्मक है; आस्तिकता सृजनात्मक है। और आस्तिक और नास्तिक में जब भी संघर्ष होगा, नास्तिक की हार सुनिश्चित है। हां, आस्तिक असली होना चाहिए। कभी अगर तुम नास्तिक को जीतता हुआ देखो तो उसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि आस्तिक नकली है। नकली आस्तिकता से तो असली नास्तिकता भी जीत जाएगी, कम-से-कम असली तो है! इतना सत्य तो है वहां कि असली है। सत्य ही जीतता है।

तो अगर कभी तुम पाओ कि नास्तिकता जीत रही है तो उसका एक ही अर्थ होता है कि नास्तिकता प्रामाणिक होगी। आस्तिकता हार रही है तो उसका अर्थ है कि आस्तिकता झूठी होगी, आरोपित होगी, थोथी होगी, ऊपर से ढांपी होगी, पहन ली होगी, प्राणों से निकली न होगी; आचरण में होगी, अन्तस में न होगी, ऊपर-ऊपर रंग-रोगन होगा, हृदय का जोड़ न होगा उसमें; प्राणों में जड़ें न होंगी। ऐसे बाजार से कागज के या प्लास्टिक के फूल खरीद लाए होओगे, वृक्षों पर लटका दिये होओगे – सारी दुनिया को धोखा हो जाए, लेकिन वृक्ष को थोड़े ही धोखा होगा। असली फूल जुड़ा है; वृक्ष की रसधार से एक है; एक ही गीत में, एक ही छन्द में बद्ध है; दूर गहरी जड़ों तक जमीन से जुड़ा है; सुदूर आकाश में चांद-तारों से, सूरज से जुड़ा है। प्लास्टिक का फूल किसी से भी नहीं जुड़ा है; टूटा है; न जड़ों से,

न जमीन से, न आकाश से, न चांद-तारों से, न सूरज से – किसी से नहीं जुड़ा है।

तुम्हारी आस्तिकता अगर झूठी है तो नास्तिकता से हारेगी, तो तुम नास्तिक से डरोगे। तुम्हारी आस्तिकता अगर सच्ची है तो नास्तिक को करने दो विध्वंस, कर-करके खुद ही टूट जाएगा, कर-करके खुद ही हार जाएगा।

प्रहलाद अपने गीत गाये चला गया; अपनी गुनगुन उसने जारी रखी; अपने भजन में उसने अवरोध न आने दिया। पहाड़ से फेंका, पानी में डुबाया, आग में जलाया – लेकिन उसकी आस्तिकता पर आंच न आयी। उसके आस्तिक प्राणों में पिता के प्रति दुर्भाव पैदा न हुआ। वही मृत्यु है आस्तिक की। जिस क्षण तुम्हारे मन में दुर्भाव आ जाए, उसी क्षण आस्तिक मर गया।

जीसस को सूली लगी। अन्तिम क्षण में उन्होंने कहा, 'हे परमात्मा ! इन सभी को माफ कर देना, क्योंकि ये जानते नहीं क्या कर रहे हैं। ये नासमझ हैं। कहीं ऐसा न हो कि तू इनको दण्ड दे दे। ये दया के योग्य हैं, दण्ड के योग्य नहीं।

शरीर मर गया, जीसस को मारना मुश्किल है। इस आस्तिकता को कैसे मारोगे; किस सूली पर लटकाओगे, किस आग में जलाओगे ?

न, प्रहलाद अपना गीत गाए चला गया।

नास्तिकता विध्वंसात्मक है। यही अर्थ है कि हिरण्यकश्यप की बहन है अग्नि। हिरण्यकश्यप की बहन है अग्नि – यानी विध्वंस, नास्तिकता सहोदर हैं, एक ही साथ पैदा हुए हैं जैसे; एक ही पेट से पैदा हुए हैं जैसे; भाई-बहन जैसा नाता है। जहां-जहां नास्तिकता है वहां-वहां होलिका मौजूद होगी – वह बहन है, वह छाया की तरह साथ लगी है।

और आश्चर्य मत करो ! पूछा है, आश्चर्य तो यही है कि वह सभी जगह बच जाता है और प्रभु के गुण गाता है। आश्चर्य मत करो। जिसे प्रभु का गुणगान आ गया, जिसने एक बार उस स्वाद को चख लिया, उसे फिर कोई आग दुखी नहीं कर सकती। जिसने एक बार उस महाजीवन को जान लिया, फिर उसे कोई मृत्यु मार नहीं सकती। जिसने एक बार उसका सहारा पकड़ लिया, फिर उसे कोई बेसहारा नहीं कर सकता।

आश्चर्य मत करो। आश्चर्य होता है, यह स्वाभाविक है। पर आश्चर्य मत करो।

स्वभावतः तब से इस देश में उस परम विजय के दिन को हम उत्सव की तरह मनाते रहे हैं। होली जैसा उत्सव पृथ्वी पर खोजने से न मिलेगा। रंग गुलाल है। आनंद उत्सव है। तल्लीनता का, मदहोशी का, मस्ती का, नृत्य का, नाच का – बड़ा सतरंगी उत्सव है। हंसी के फव्वारों का, उल्लास का, एक महोत्सव है। दीवाली भी उदास है, होली के सामने। होली की बात ही और है। ऐसा नृत्य करता उत्सव पृथ्वी पर कहीं भी नहीं है। ठीक भी है। एक गहन स्मरण तुम्हारे भीतर जगता रहे कि इस जगत में सबसे बड़ी विजय नास्तिकता के ऊपर आस्तिकता की विजय है; कि सदा-सदा बार-बार तुम याद करते रहो कि आस्तिकता यानी आनंद।

आस्तिकता उदासी का नाम नहीं है। अगर आस्तिक उदास मिले तो समझना कि चूक हो गयी है; बीमार है, आस्तिक नहीं है। अगर आस्तिक नृत्य से भरा हुआ न मिले तो समझना कि कहीं राह

में भटक गया। कसौटी यही है।

धर्म उदासी नहीं है – नृत्य, उत्सव है। और होली इसका प्रतीक है। इस दिन 'ना' पर 'हां' की विजय हुई। इस दिन विध्वंस पर सृजन जीता। इस दिन अतीत पर वर्तमान विजयी हुआ। इस दिन शक्तिशाली दिखायी पड़नेवाले पर निर्बल-सा दिखायी पड़नेवाला बालक जीत गया। नये की, नवीन की, ताजे की विजय – अतीत पर, बासे पर, उधार पर। और उत्सव रंग का है। उत्सव मस्ती का है। उत्सव गीतों का है।

धर्म उत्सव है – उदासी नहीं। यह याद रहे। और तुम्हें नाचते हुए, परमात्मा के द्वार तक पहुंचना है। अगर रोओ भी तो खुशी में रोना। अगर आंसू भी बहाओ तो अहोभाव में बहाना। तुम्हारा रुदन भी उत्सव का ही अंग हो, विपरीत न हो जाए। थके-मांदे लम्बे चेहरे लिए, उदास, मुर्दों की तरह, तुम परमात्मा को न पा सकोगे, क्योंकि यह परमात्मा का ढंग ही नहीं है। जरा गौर से तो देखो, कितना रंग उसने लिया है! तुम बेरंग होकर भद्दे हो जाओगे। जरा गौर से देखो, कितने फूलों में कितना रंग! कितने इन्द्रधनुषों में उसका फैलाव है! कितनी हरियाली में, कैसा चारों तरफ उसका गीत चल रहा है! पहाड़ों में, पत्थरों में, पक्षियों में, पृथ्वी पर, आकाश में – सब तरफ उसका महोत्सव है! इसे अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम पाओगे, ऐसे ही हो जाना उससे मिलने का रास्ता है।

गीत गाते कोई पहुंचता है, नाचते कोई पहुंचता है – यही भक्ति का सार है।

दूसरा प्रश्न : याद रफीक हो तो रिफाकत ज़रूर है
कसम तुझे अल्लाह की बनाखत जरूर है
यारी करके देखा यार मिलता नहीं
बेवफा मिलता है लेकिन बावफा मिलता नहीं।

● तो फिर यारी करके नहीं देखा। हम भी देखे – मिलता है। तुम्हारी मानें कि अपनी? फिर यारी में कहीं कुछ भूल है। तुमने सोचा होगा, यारी की – कर नहीं पाए। बड़ी सरलता से आदमी अपने को समझा लेता है कि मैं तो सब कर रहा हूं, मिलता नहीं।

क्या किया है तुमने? यारी क्या की है? रोए? चीखे? तड़फे? छाती में तूफान उठा? झंझावात आयी? अपने को चढ़ाने की तैयारी दिखायी? अपने को खोने का साहस किया? यारी क्या की अभी? अभी उसके आशिक हुए? लोग कुछ थोड़ा-बहुत कर लेते हैं और थोड़ा-बहुत भी करते हैं बहुत कुछ पाने की आशा में।

कहते हो – बेवफा मिलता है लेकिन बावफा मिलता नहीं। तुम बावफा हो? तुमने वफा पूरी की है? क्योंकि मेरे देखे तो ऐसा है, जो तुम हो वही मिलता है। जैसे तुम हो वैसा ही मिलता है। परमात्मा दर्पण की भांति है, तुम्हारे ही चेहरे को झलका देता है। अगर तुम बेईमान हो, बेईमान मिलेगा। अगर तुम धोखेबाज हो, धोखेबाज मिलेगा। अगर तुम चालबाजी कर रहे थे तो तुम जीत न पाओगे; वह तुमसे ज्यादा चालबाजी कर जाएगा।

सरल होकर जाओ! कुछ मांगते हुए मत जाओ, क्योंकि मांग में ही गड़बड़ है; क्योंकि मांगने का मतलब ही हुआ कि तुमने यार को न मांगा, कुछ और मांगा। लेकिन सभी की ऐसी आदत है। अहंकार का यह ढंग और शैली है कि अहंकार मान लेता है कि मैंने तो सब कुछ किया; लेकिन दूसरी तरफ से प्रत्युत्तर नहीं आ रहा है।

बच्चन का एक गीत है – सुनो इसे ठीक से।

इतने मत उन्मत्त बनो
जीवन मधुशाला से मधु पी
बन कर तन-मन मतवाला
गीत सुनाने लगा झूम कर
चूम-चूम कर मैं प्याला
शीश हिला कर दुनिया बोली
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह
इतने मत उन्मत्त बनो!

बहुत लोग पी चुके हैं। ऐसी उधार शराब से, ऐसी बाजार में बिकनेवाली शराब से बहुत लोग सोच लिये हैं कि हो गये मतवाले! इतना सस्ता नहीं है मतवालापन। उसकी शराब खोजनी जरा कठिन बात है। अंगूर की नहीं, आत्मा की शराब जरा कठिन बात है।

इतने मत संतप्त बनो
जीवन मरघट पर अपने सब
अरमानों की कर होली
चला राह में रोदन करता
चिताराख से भर झोली
शीश हिला कर दुनिया बोली
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह
इतने मत संतप्त बनो!

ये ढोंग न चलेंगे। दुनिया बहुत देख चुकी है। यारों की यारी, मतवालों का मतवालापन – सब ऊपर-ऊपर है। राख लगा लेने से कहीं भीतर का पता चलता है? ऊपर से शोरगुल मचाने से कहीं भीतर में कोई क्रान्ति घटित होती है?

और ध्यान रखना, जब भी तुम्हें लगे कि हाथ में कुछ न आया, तब समझ लेना कि अपेक्षा की थी कुछ। अपेक्षा के बिना विषाद होता ही नहीं है। तुमने वफा मांगी होगी तो बेवफा मिली। जब तुम मांगोगे कुछ, उससे विपरीत पाओगे। मांगना ही मत। बिन मांगे मोती मिले, मांगे मिले न चून। यह परमात्मा की तरफ जाने का रास्ता भिखमंगेपन का नहीं है, यह सम्राटों जैसा है। तुम मांगना मत, तो मिलता है। तुम मांगो कि तुमने ही बाधा खड़ी कर दी। तुम्हारी मांग ही अड़चन बन जाती है।

'यारी करके देखा यार मिलता नहीं।'

नहीं, देखा ही नहीं। जिन ने यारी करके देखा उन्हें सदा मिला। पूछो मन्सूर से! पूछो बुद्ध से! पूछो नारद से! पूछो मीरा से, चैतन्य से! पूछो फरीद से, कबीर से, नानक से! करोड़ों गवाह हैं इसके, कि जिन्होंने यारी की उनको यार मिलता है। और परमात्मा और बेवफा! ऐसा होता ही नहीं। ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। तुम्हारी ही कहीं भूल होगी। तुम कहीं अधैर्य में, जल्दी में लगे हो। भीतर से तुमने पुकारा ही नहीं। ऊपर-ऊपर से आवाज दी थी, और भीतर सन्देह रहा होगा।

मैंने सुना है, विवेकानंद अमरीका के एक गांव में बोले, तो उन्होंने बाइबिल का एक उद्धरण दिया कि 'यदि तू पहाड़ से भी कह दे आस्था से भरकर कि हट जा, तो पहाड़ हट जाता है।' एक बूढ़ी औरत सुन रही थी। उसने कहा, यह हमको खयाल ही न था। उसके घर के पीछे एक पहाड़ है और उसकी वजह से हवा भी नहीं आती और गरमी में तप भी जाती है पहाड़ी। और उसने कहा, यह तो बड़ा ही सरल है। वह भागी घर। उसने कहा कि हटा दो, इसमें दिक्कत ही क्या है। उसने जाकर खिड़की खोलकर एक दफा सोचा, आखिरी बार तो और देख लें, फिर तो हट ही जाएगा। खिड़की खोलकर देखा, खिड़की बंद की, बैठकर नीचे उसने कहा, 'हे परमात्मा! श्रद्धा से भरकर कह रही हूं, हटा इस पहाड़ को। बिलकुल हटा दे।' फिर दो-तीन मिनट उसने वक्त भी दिया भगवान को। उसने खिड़की खोली – वे पहाड़ वहीं के वहीं हैं। और उसने कहा, 'जा भी, मुझे पहले ही से पता था कि कहीं कोई पहाड़ ऐसे हटते हैं!'

पहले से ही पता था कि कहीं पहाड़ ऐसे हटते हैं! जब पहले से ही पता था तो वह जो प्रार्थना थी, ऊपर-ऊपर रही होगी, भीतर तो सन्देह ही रहा होगा।

एक गांव में वर्षा न हुई, तो गांव के पुजारी ने सारे गांव के लोगों को इकट्ठा किया कि प्रार्थना करेंगे, वर्षा हो जाएगी। सारा गांव आ गया। पुजारी भी चला गांव के बाहर जहां सब इकट्ठे हो रहे थे, एक मंदिर के पास। पुजारी के पास ही एक छोटा-सा बच्चा भी चल रहा था एक बड़ा छाता लिये। उस पुजारी ने कहा, 'नालायक! छाता कहां ले जा रहा है?' उस बच्चे ने कहा, 'लेकिन मैंने सोचा कि जब प्रार्थना होगी तो वर्षा भी होगी, लौटते में दिक्कत होगी।' मगर एक छोटा बच्चा ही लाया था। खुद पुजारी भी छाता लेकर न आया था। गांव की भीड़ इकट्ठी हुई, कोई छाता न लाया था। एक छोटा बच्चा ही प्रार्थना का पात्र था। एक वही भरोसे से आया था कि जा ही रहे हैं प्रार्थना करने तो वर्षा होगी। लेकिन पुजारी ने उसकी श्रद्धा भी भ्रष्ट कर दी। उसने कहा, 'अबे नालायक! यह छाता कहां ले जा रहा है? वर्षा ही तो नहीं हो रही वर्षों से, प्राण तड़पे जा रहे हैं और तू छाता लिये घूम रहा है!' उसको भी सन्देह जगा दिया। उसकी प्रार्थना भी खराब हो गयी। मुझे लगता है, उस दिन वर्षा हो सकती थी। उस अकेले एक बच्चे की प्रार्थना से भी हो सकती थी। मगर उसकी प्रार्थना भी खराब हो गयी।

नहीं, तुमने अभी खोजा ही नहीं यार को। उस प्यारे को खोजने के लिए बड़ी हार्दिक उत्कंठा चाहिए और धैर्य चाहिए। तीन मिनट का समय देकर खिड़की खोलकर मत देख लेना।

सुकूं है मौत यहां जौके-जुस्तजू के लिए
ये तश्नगी वो नहीं जो बुझाई जाती है।

जो उसकी खोज पर निकलते हैं, वे कोई प्यास बुझाने थोड़े निकलते हैं। वे कहते हैं – ये तश्नगी वो नहीं जो बुझाई जाती है। यह कोई प्यास ऐसी थोड़े ही है जो बुझाने की जरूरत है। यह तो प्यास बड़ी प्यारी है। वे तो कहते हैं, 'जितनी याद करवाए और जितनी देर प्रतीक्षा करवाए, तेरी कृपा! तेरा मिलन ही थोड़ा सुखद है, तेरा इन्तजार भी!'

भक्त कहता है, छिपा रहे, जितना छिपना हो! अच्छा ही हुआ, और प्रार्थना कर लेंगे थोड़ी। मिल जाएगा तो फिर क्या होगा? छिपा रहे। थोड़ा और इन्तजार सही। उसका इन्तजार भी प्यारा है।

सुकूं है मौत यहां... !

उसकी राह पर जो सुकून की तलाश कर रहे हैं, चैन की तलाश कर रहे हैं, वे तो गलती में हैं।

सुकूं है मौत यहां जौके-जुस्तजू के लिए।

जो जीवन की तलाश पर निकले हैं, परमात्मा की तलाश पर निकले हैं, उनके लिए चैन की बात ही नहीं उठानी चाहिए।

ये तश्नगी वो नहीं जो बुझाई जाती है।

यह तो प्यास बढ़ाई जाती है। प्रार्थना तो प्यास में घी का काम करती है; जैसे घी आग में पड़ता है, ऐसे प्रार्थना प्यास में पड़ती है। भभकती है आग। एक ऐसी घड़ी आती है कि तुम प्यास ही प्यास रह जाते हो; तुम्हारे भीतर कोई ऐसा भी नहीं रह जाता जो कहे, मैं प्यासा हूं, वरन ऐसी ही भावना रह जाती है कि मैं प्यास हूं। उसी घड़ी यार मिल जाता है। यार तो मिला ही हुआ है।

यह न पानी से बुझेगी
यह न पत्थर से दबेगी
यह न शोलों से डरेगी
यह वियोगी की लगन है
यह पपीहे की रटन है।

तीसरा प्रश्न : भगवान इस समय और इस जगह पर आपके और हमारे दर्म्यान क्या करवाता है? आप में और हम में फर्क क्या है और वास्ता क्या है?

● बड़ा खेल करवाता है। मुझे बुलवाता है, तुम्हें सुनवाता है। मगर वही मुझसे बोलता है, वही तुमसे सुनता है। समझ लोगे तो बड़ी रसधार बहेगी; क्योंकि वही मुझसे बोला है, वही तुमसे सुनने चला आया है। उसके सिवा कोई और नहीं है। परमात्मा अपने ही साथ लुका-छिपी खेलता है। यही उसकी लीला है। यही उसके होने का ढंग है।

तुमने कभी अपने साथ लुका-छिपी खेली? कभी तुमने ताशों का खेल खेला अकेले ही? कभी-कभी ट्रेन में मैं यात्रा करता था, तो कुछ लोग मिल जाते अकेले, मेरे डिब्बे में होते। वे कहते, 'आप साथ देंगे?' 'मैं जरा और दूसरे खेल में लगा हूं, आप बाधा न दें।' तो फिर वे अकेले ही ताश बिछा लेते। अकेले ही दोनों तरफ से चालें चल रहे हैं।

परमात्मा दोनों तरफ से चालें चल रहा है। राम में भी वही है और रावण में भी वही। और अगर रामायण पढ़कर तुम को यह न दिखायी पड़ा कि रावण में भी वही है तो तुम चूक गये, रामायण समझ न पाए। अगर यही दिखायी पड़ा कि राम में ही केवल है तो बस भूल गये, भटके। रावण में भी वही है।

अंधेरा भी उसी का है, रोशनी भी उसी की है। बोलता भी वही मुझसे है, सुनता भी वही तुममें है। तुम जिसे खोज रहे हो वह तुम में ही छिपा है। खोजता भी वही है, खोजा जा रहा भी वही है। जिस दिन जानोगे, जागोगे, उस दिन हंसोगे।

झेन फकीर बोकोजू परम ज्ञान को उपलब्ध हुआ तो लोगों ने उससे पूछा कि 'परम ज्ञान को उपलब्ध होने के बाद तुमने पहली बात क्या की ?' उसने कहा, 'और क्या करते ? एक प्याली चाय की मांगी।' लोगों ने कहा, 'प्याली चाय की ! परम ज्ञान और प्याली चाय की !' उसने कहा, 'और क्या करते ? जब सारा खेल समझ में आया कि अरे, वही खोज रहा है, वही खोजा जा रहा है। तो और क्या करते ? सोचा कि चलो बहुत हो गया, बड़ी लम्बी खोज हो गयी, एक प्याली चाय की पी लें। हंसे खूब !'

जापान में एक फकीर हुआ है जो हंसता ही रहा ज्ञान के बाद। गांव-गांव चलता रहा। होतेई उसका नाम था। हंसता ही रहता। लोग उसको मंदिरों में ले जाते कि कुछ बोलो। तो वह खड़ा हो जाता और हंसता। लोग कहते कि कुछ बोलो। वह कहता, 'अब और क्या बोलें ! और हमारी फजीहत करवाओगे ! देख रहे खेल, हंस रहे ! वही खोज रहा, वही खोजा जा रहा। अब और किससे बोलना, क्या बोलना है ?'

तुम पूछते हो, 'भगवान इस समय और इस जगह पर हमारे और आपके दर्म्यान क्या करवाता है ?'

बड़ा खेल करवाता है। जिस दिन समझ लोगे, उस दिन बड़ी रसधार बहेगी।

'आप में और हम में फर्क क्या है ?'

मेरी तरफ से कुछ भी नहीं, तुम्हारी तरफ से बहुत है। और चेष्टा यही है कि तुम्हारी तरफ से भी न रह जाए। मेरी तरफ से तो तुम वहीं हो जहां मैं हूं; तुम्हारी तरफ से तुम सोचते हो वहां नहीं हो। सोचते हो। वह तुम्हारा सपना है कि वहां नहीं हो – हो तो तुम भी वहीं। हो तो तुम भी भगवान। भगवत्ता तुम्हारा स्वभाव है। बुद्धत्व तुम्हारी नियति है। तुम उससे भाग नहीं सकते, बच नहीं सकते। जैसे कमल कमल है, गुलाब गुलाब है – ऐसे तुम बुद्ध हो, बुद्धत्व को उपलब्ध हो। लेकिन तुम्हें यह खयाल नहीं है – तुम्हें और हजार खयाल चढ़ गये हैं सिर पर। कोई समझ रहा है, दुकानदार हूं; कोई समभ रहा है, डाक्टर हूं, कोई समभ रहा इंजीनियर हूं; कोई समभ रहा है स्त्री हूं, कोई समभ रहा है पुरुष हूं; कोई कहता है हिंदू हूं, कोई कहता है, मुसलमान हूं। तुम न मालूम कितनी और हजार बीमारियों से रुग्ण हो – सिर्फ एक को नहीं देखते जो तुम हो। तुम भगवान हो ! दुकान वगैरह करो – भगवान होते हुए करो। चलने दो, खेल को रोकने की भी कोई जरूरत नहीं है। समझ लो कि खेल है। कुछ छोड़कर भाग जाने की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि भागता तो वही है जो समझता

है कि खेल नहीं है। जो गंभीरता से ले लेता है वही भागता है। इसलिए तो मैं अपने संन्यासी को कहता हूं, कहीं भागना मत! भागे कि शक। भागे कि मतलब साफ हो गया कि तुमने गंभीरता से ले ली बात। चलो पत्नी है तो ठीक है, बच्चे हैं तो ठीक हैं — उनमें भी भगवान है। अगर तुम उसी को देखने लगो, हर तरफ से वही तुम्हें पुकारा है।

पगध्वनि तो सुनता था कब से
पर तुमसे साक्षात न होता
असमंजस में पड़ी सुनहली
सुबह सांवली सांझ हो गयी
मेरे हर पल की व्याकुलता
अपने आप प्रणाम हो गयी
प्रतिध्वनि तो सुनता था कब से
ध्वनि का उदगम ज्ञात न होता
पगध्वनि तो सुनता था कब से
पर तुमसे साक्षात न होता।

पगध्वनि तो तुमने भी सुनी है, अन्यथा तुम यहां न आते। प्रतिध्वनि तो तुमने भी सुनी है, अन्यथा तुम्हें कौन यहां ले आता? वही प्रतिध्वनि ले आयी है। लेकिन सीधा-सीधा साक्षात्कार नहीं हो रहा है। मैं उसकी तरफ मुंह किये खड़ा हूं; तुम उसकी तरफ पीठ किये खड़े हो — इतना ही फासला है। बड़ा फासला नहीं है। अबाउट टर्न — इतना-सा फासला है। मिलिट्री में लोग कर लेते हैं। घूम जाओ!

'आप में और हम में फर्क क्या है?'

घूम जाओ!

'और वास्ता क्या है?'

मेरी तरफ से तो कोई भी नहीं, तुम्हारी तरफ से है। तुम कुछ पाने आये हो। वही बाधा बन रही है। तुम कुछ तलाश रहे हो। वही बाधा बन रही है। मैं तुमसे कह रहा हूं कि तुम जिसे खोज रहे हो, वह मिला ही हुआ है। खोज के कारण ही तुम उलझन में पड़े हो।

मुल्ला नसरुद्दीन बाजार से जा रहा था — गधे पर बैठा, भागा। बाजार के लोगों ने पूछा, 'नसरुद्दीन! कहां?' मगर उसने कहा, 'अभी मत रोको, अभी मैं जल्दी में हूं।' दो-तीन घंटे बाद थका-मांदा वापस लौट रहा था। लोगों ने पूछा, 'कहां इतनी तेजी में जा रहे थे?' उसने कहा, 'मेरा गधा खो गया था।' लोगों ने कहा, 'तुम गधे पर सवार हो।' उसने कहा, 'यह तीन घंटे बाद समझ में आया। पहले तो एकदम घबड़ाहट में छलांग लगाकर गधे पर सवार हो गया, खोज में निकल गया। नासमझो, तुमने क्यों न कहा?' उन्होंने कहा, 'हम तो चिल्ला रहे थे, तुम बोले, बहुत जल्दी में हूं।

मैं चिल्ला रहा हूं; लेकिन तुम कहते हो, बहुत जल्दी में हैं। तुम्हें हंसी आती है नसरुद्दीन पर, लेकिन तुमने कभी खयाल किया : चश्मा लगाकर तुमने कभी चश्मा नहीं खोजा? तो फिर तुम्हें चश्मा लगाना ही नहीं आया। कान पर कलम खोंसकर तुमने कभी कलम नहीं खोजी? तो फिर तुम्हें कलम

लगाना ही नहीं आया। तुम अपनी जिंदगी में खुद ही खोज लोगे, अगर तुम गौर करोगे। कई बार विस्मरण की दशा होती है। चश्मा लगाये होते हो और उसी से खोजते होते हो कि चश्मा कहां है! जल्दी में यह हो जाता है। ट्रेन पकड़नी है और घड़ी समय बताए दे रही है और बाहर ड्रायवर हार्न बजा रहा है – घबड़ा गये, अब खोजने लगे, चश्मा कहां है। स्वभावतः चश्मा आंख के इतने करीब है कि एकदम दिखायी भी नहीं पड़ता। परमात्मा उससे भी ज्यादा करीब है। करीब कहना ठीक नहीं – आंख के भीतर है, इसलिए कैसे दिखायी पड़े?

तुम्हारी अड़चन यही है कि तुम कुछ खोज रहे हो। और तुम जब खोजोगे तो तुम्हें कोई न कोई मिल जाएगा बतानेवाला कि ऐसे खोजो। मैं तुमसे यही कहना चाहता हूं कि खोज की जरूरत नहीं है – तुम जरा शांत होकर बैठ जाओ, छूट जाने दो ट्रेन, बजाने दो ड्रायवर को हार्न, तुम जरा शांत होकर बैठ जाओ, आंख बंद कर लो – तुम अचानक पाओगे : भीतर मौजूद है; उसे कभी खोया ही नहीं। जो खो जाए वह परमात्मा नहीं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, परमात्मा खोजना है। मैं कहता हूं, 'बड़ी झंझट की बात है। तुमने खोया कहां?' वे सिर हिलाते हैं। वे कहते हैं, 'खोया! खोया तो कहीं भी नहीं।' तो फिर किसलिए खोज रहे हो?

मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर के बाहर सड़क पर कुछ खोज रहा था। एक मित्र आ गया। उसने कहा, 'क्या खोजते हो सांझ?' उसने कहा, 'मेरी चाबी गिर गयी है।' वह मित्र भी खोजने लगा। थोड़ी देर बाद उसने कहा कि 'कहां गिरी है? रास्ता बड़ा है और रात हुई जाती है।' उसने कहा, 'यह मत पूछो। गिरी तो घर के भीतर है।' उसने कहा, 'नासमझ! फिर बाहर क्यों खोज रहे हो?' उसने कहा, 'यहां रोशनी है। घर में अंधेरा है। अंधेरे में क्या खाक खोजें? खोजने से भी क्या मिलेगी, अंधेरे में?'

तुम खोज रहे हो परमात्मा को, क्योंकि भीतर अंधेरा है और सब रोशनी बाहर है। आंख बाहर खुलती है, हाथ बाहर फैलते हैं – बस टटोलने लगे। लेकिन जिसको तुम टटोल रहे हो, वह तुम्हें वहां मिलेगा नहीं, क्योंकि वह तुम्हारे टटोलने में छिपा है, तुम्हारे भीतर छिपा है।

तो मेरी तरफ से तो कोई फर्क नहीं है। मेरी तरफ से कोई वास्ता भी नहीं है। फर्क और वास्ता तुम्हारी तरफ से है। जिस दिन वहां से भी गिर जाएगा उस दिन न तो मैं मैं हूं, न तुम तुम हो – मिलन हो गया!

> अंबर की आंखों में कोई
> सूरज है न सितारा
> केवल रजकण भर हैं सारे
> यहां-वहां जो छितरे
> अंध तिमिर के लिए वही सब
> प्रखर विभा बन निखरे
> धरती की छाती पर कोई
> धारा है न किनारा

अंबर की आंखों में कोई
सूरज है न सितारा
चिर असंग के लिए न कुछ है
मेरा और तुम्हारा
जो अपने में पूर्ण, उसे कब
कोई भेद सुहाता
यह अपूर्ण के मन की छलना
जोड़ा करती नाता
परमहंस के लिए न कोई
है चंदन अंगारा
अंबर की आंखों में कोई
सूरज है न सितारा।

मेरे लिए तो कोई फर्क नहीं है। मेरे लिए तो कोई भेद नहीं है। तो नाता तो कैसे होगा? अपने से ही कहीं कोई नाता होता? लेकिन तुम्हारे लिए नाता है, क्योंकि तुम कुछ खोजने आये हो। तुम्हारी खोज बीच में अड़ंगा बन रही है। मत खोजो! छोड़ दो आकांक्षा! सिर्फ बैठे रहो मेरे पास। उसी को हमने पुराने दिनों में सत्संग कहा था। सत्संग का अर्थ है : खोज भी नहीं रहे, बस बैठे हैं पास-पास! जिसको मिल गया है या जिसने जान लिया कि कभी खोया न था, उसके पास बैठे हैं। बस बैठे हैं। न कोई विचार है, न कोई कामना है — अचानक तुम तुम नहीं रह जाते। एक परदा हट जाता है। एक घूंघट उघड़ जाता है।

गुरु और शिष्य उसी क्षण न तो अलग रह जाते — न गुरु गुरु रह जाता, न शिष्य शिष्य रह जाता। सब फासले मिट जाते हैं। बीच की सब सीमाएं खो जाती हैं। उस मिलन के क्षण में ही सत्य का हस्तांतरण है।

मुझे सुनकर तुम्हें सत्य न मिलेगा, मुझे पीकर मिलेगा। पीना बड़ी और बात है। पीना तभी हो सकता है जब तुम बिलकुल खाली बैठे हो। तब तुम एक रिक्त शून्य हो जाते हो। उस रिक्त शून्य में वर्षा हो सकती है। तुम खाली होओ तो भर दिये जाओ। तुम पहले से ही भरे हो तो भरना मुश्किल है।

चौथा प्रश्न : आपके पास बैठकर लगातार डेढ़ घंटे तक आपका प्रवचन सुनते समय मैं भक्ति के भाव व रस में इतना डूब जाती हूं कि पता नहीं मेरे दुख, चिन्ताएं और परेशानियां कहां खो जाती हैं। एक अपूर्व शान्ति का अनुभव छा जाता है। परन्तु, प्रवचन के बाद आपका सान्निध्य छूटते ही थोड़ी देर में पुनः चिन्ताओं और परेशानियों से घिरने लगती हूं। जो अनुभव आपके प्रवचन व सान्निध्य में होता है, वह कैसे अधिक समय तक रहे, यह बताने का अनुग्रह करें!

● क्षणभर को भी अगर चिन्ताएं खो जाती हैं, इच्छाएं विसर्जित हो जाती हैं, तनाव तिरोहित हो

जाता है, तो कुंजी तुम्हारे हाथ में आ गयी। कुछ और अब चाहने को है नहीं।

जो तुमने यहां किया है, वही तुम फिर-फिर करो। यहां क्या किया है? मुझे शांति से सुना। तुम्हारा ध्यान हट गया चिन्ताओं पर, इच्छाओं पर, बेचैनियों पर, उलझनों पर से – ध्यान मेरी तरफ लग गया। ध्यान जिस तरफ जाता है, उसी तरफ जीवन हो जाता है। फिर घर वापस लौटे, फिर तुम अपना ध्यान, फिर तुमने अपना प्रकाश चिन्ताओं पर कुरेदने में लगा दिया, फिर चिन्ताएं खड़ी हो गयीं।

तुम जिस तरफ ध्यान देते हो उसी तरफ तुम्हारा जीवन बहता है। और तुम जिस पर ध्यान देते हो उसी को तुम भोजन देते हो, शक्ति देते हो, अगर चिन्ताओं पर ध्यान दोगे, चिन्ताएं बलशाली हो जाएंगी। ध्यान भोजन है। इसलिए तो हम सब इतने ध्यान के लिए आतुर होते हैं। हम सब चाहते हैं, लोग हम पर ध्यान दें। कोई तुम पर ध्यान न दे तो तुम लगते हो, जैसे मर गये। घर में आते हो, पत्नी ध्यान ही नहीं देती। वह अपना बर्तन ही मलती रहती है। तुम गुजर जाते हो। तो ऐसा लगता है जैसे खत्म हुए। बच्चे खेल रहे हैं, वे खेलते रहते हैं, तुम गुजर जाते हो कोई ध्यान ही नहीं देता। रास्ते से निकलते हो, कोई नमस्कार नहीं करता। दस-पांच दिन में तुमको लगेगा, क्या हुआ, मर गये क्या! कोई ध्यान ही नहीं दे रहा!'

इसलिए तो ध्यान की इतनी आकांक्षा होती है कि जो भी मिले, सिर झुकाए, 'कहो कैसे हो?' चित्त प्रफुल्लित होता है। पत्नी दौड़ी आए, जूते निकाले, पैर दबाए, चित्त प्रफुल्लित होता है।

एक आदमी मनोवैज्ञानिक के पास गया था। वह कह रहा था, 'मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। पांच साल पहले जब मैंने शादी की थी, घर आता था तो पत्नी स्लीपर लेकर दौड़ी आती थी और मेरा छोटा-सा कुत्ता स्वागत में भौंकता था। अब सब उलटा हो गया है। कुत्ता तो स्लीपर लेकर आता है मुंह में दबाए और पत्नी भौंकती है।' उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, मेरी समझ में नहीं आता कि उलझन क्या है! सेवाएं तो तुम्हें वही की वही मिल रही हैं।

लेकिन सेवाओं का सवाल नहीं, ध्यान का सवाल है। छोटा बच्चा भी ध्यान से जीता है। ध्यान ऊर्जा है। अभी मनोवैज्ञानिक इस पर बड़ा अध्ययन करते हैं कि ध्यान से ज़रूर कुछ गहरी ऊर्जा मिलती है। अगर मां बच्चे पर ध्यान न दे, वह सिकुड़ने लगता है। इसलिए तो बिना मां का बच्चा, कितनी ही उसकी हिफाजत करो, कुछ उसमें कमी रह जाती है, कुछ खोया-खोया हो जाता है। क्योंकि बिना मां के कौन उसे ध्यान दे? नर्स दूध दे देती है, वक्त पर दवा दे देती है, कंबल ओढ़ा देती है, कपड़े बदल देती है लेकिन ध्यान नहीं देती। ध्यान क्यों दे? उसका अपना बेटा घर प्रतीक्षा कर रहा है ध्यान के लिए तो। सब इन्तजाम कर दो बच्चे के लिए, सिर्फ मां का ध्यान न मिले, वह प्रेमपूर्ण ऊष्मा न मिले, वे प्रेमपूर्ण आंखें न दिखायी पड़ें कि कोई फिक्र करता है, कोई मेरे लिए आतुर है, कोई मेरी प्रतीक्षा करता है, मेरे हंसने से किसी के जीवन में फूल खिलते हैं, मेरे उदास होने से कोई उदास हो जाता है, कहीं मेरा होना किसी दूसरे के होने पर भी बल रखता है – तो बस बच्चे को प्राण मिलने लगते हैं।

तुमने देखा, छोटा बच्चा गिर जाए तो पहले खड़े होकर देखता है कि मां आसपास है! हो तो रोता है, न हो तो नहीं रोता। बड़े आश्चर्य की बात है, गिरने से नहीं रोता; गिरने का कोई संबंध ही नहीं रोने से। मां हो तो यह मौका नहीं चूकेगा ध्यान का; चिल्लाएगा, रोएगा, मां ध्यान देगी।

मां नहीं है – क्या फायदा ! फिजूल लोग खड़े हैं, और हंसी होगी। वह अपना चुपचाप झाड़कर चल पड़ता है।

मैं एक छोटे बच्चे के साथ एक घर में मेहमान था। मां उसकी बाहर गयी थी। मैं बैठा था, वह खेल रहा था। वह गिर पड़ा। उसने चारों तरफ देखा, मुझे बैठा देखा, उसने सोचा कि... अजनबी आदमी ... ! वह बैठा रहा। आधे घंटे बाद, मैं तो भूल ही गया कि कब गिरा। जब उसकी मां लौटी, वह एकदम से रोने लगा। मैंने पूछा कि हुआ क्या तेरा, तू बिलकुल ठीक है। वह कहता है, 'आधा घंटा पहले गिरा था।'

'तू तब क्यों नहीं रोया, नासमझ ?'

उसने कहा, 'फायदा क्या है ?'

वह याद रखा उसने। अब कोई दर्द भी नहीं हो रहा है, मगर मां ध्यान देगी, पुचकारेगी, पुचकाएगी, हाथ फेरेगी – वह अवसर वह नहीं चूकना चाहता।

ध्यान भोजन है। ध्यान रखना, तुम जिसे ध्यान देते हो उसे जीवन देते हो। तो गलत को ध्यान मत दो। यहां सुनते हो मुझे, चित्त प्रफुल्लित हो जाता है, आनंदित हो जाता है, एक शीतलता छा जाती है। तुमने ध्यान मेरी तरफ दिया ! गये घर, फिर खोदने लगे अपने घाव, फिर उघाड़ने लगे अपनी मलहमें-पट्टियां, फिर अंगुलियां डालने लगे अपनी पीड़ाओं में। क्या जरूरत है ?

करो यह – यहां से जाते समय ध्यान रखो कि अब उन्हीं घावों में हाथ नहीं लगाना है। पुरानी आदत है, हाथ चले जाएंगे, वापस लौटा लो ! फिर तुम्हें अड़चन होगी कि अगर कुछ न करें तो क्या करें ! तो ध्यान देने को कुछ और बहुत घट रहा है चारों तरफ। पक्षियों के गीत हैं। उतना मधुर तो मैं तुमसे बोल भी नहीं सकता। जो वे तुमसे कह रहे हैं, वह तो मैं कहना चाहता हूं, कह नहीं पाता। तुम पक्षियों के गीत ही सुनो। चुप बैठकर सारा ध्यान उन पर लगा दो। इससे भी ज्यादा गहरा सत्संग हो जाएगा। हवाएं वृक्षों को कंपाती हैं। हवाओं की धुन वृक्षों के पत्तों में बजती है, उसे सुनो। परमात्मा वहां और भी अकलुषित भाव से प्रगट हुआ है। परमात्मा वहां और भी नैसर्गिक भाव से प्रगट हुआ है। झरने के पास बैठ जाओ, झरने की आहट सुनो, नाद सुनो।

तुम कहोगे, 'कहां झरने खोजें ? कहां से पक्षी लाएं ? कहां वृक्ष... ? बीच बाजार में रहते हैं।' कोई हर्जा नहीं है। सुनने की कला चाहिए। तो राह के शोरगुल को सुनो। सिर्फ राह के शोरगुल को सुनो। मत कहो, अच्छा है बुरा है, बस सिर्फ सुनो। कारें दौड़ती हैं, बसें निकलती हैं, शोरगुल है, बच्चे चिल्लाते हैं, कुत्ते भौंकते हैं, बाजार लगा है – चुपचाप सुनो। तुम एक दिन चकित होकर पाओगे कि अगर ध्यान से सुना तो वहीं ध्यान लग जाएगा। और उस बाजार के कलरव में एक संगीत का जन्म होने लगेगा। वह बाजार का कलरव भी है तो उसी का, परमात्मा का, जितना पक्षियों के कंठों की आवाज है। वह कोयल से ही नहीं बोलता, कौवों से भी वही बोलता है। बाजार भी उसी का बाजार है। असली बात, अपने घावों पर ध्यान मत लगाओ, कहीं भी ध्यान लगाओ। ध्यान को अपने से मुक्त करो, ताकि धीरे-धीरे तुम्हारी यह सामर्थ्य बन जाए कि यह पुरानी आदत चिंताओं को उघाड़ने की, उखेड़ने की मिट जाए। जब यह आदत मिट जाएगी तब मैं तुमसे कहूंगा, अब बाहर का भी ध्यान छोड़ो। अब

आंख बंद करो, कहीं भी ध्यान न लगाओ। अब सिर्फ आंख बंद करके खाली बैठे रहो। उस शून्य से तुम्हें परम संगीत सुनायी पड़ेगा। वही परम सत्संग है। उसी तरफ तुम्हें ले चल रहा हूं। चाबी तो तुम्हें मिल गयी है। अब जरा उस चाबी का उपयोग करो। जरा परमात्मा की याद को सब तरफ से पकड़ो। अपनी छोड़ो। उसकी गुनो!

दिन वही दिन हैं, शब वही शब है
जो तेरी याद में गुज़र जाएं।

सब तरफ से उसकी याद को उठाओ। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि बैठकर राम-राम, राम-राम जपो। बहुत जप रहे हैं लोग, उससे कुछ नहीं होता। उससे सिर्फ राम को नींद आने में बाधा पड़ती है। और कई तो माइक लगाकर, लाउड स्पीकर लगाकर राम-राम जप रहे हैं, वे राम को सोने ही नहीं देते। उस चिल्ल-पों से कुछ भी न होगा। उस शोरगुल से कुछ सार नहीं है। तुम्हारी बकवास से कुछ न होगा। तुम्हारी शान्ति से होगा।

और अन्तिम बात खयाल रखो कि सब सत्संग अन्ततः तुम्हें अपने अन्तरंग में ले जाने के लिए है। और सब ध्यान वस्तुतः उपाय है। मंजिल तो यह है कि तुम ऐसी दशा में आ जाओ जहां ध्यान की भी जरूरत न रहे – बस तुम हो, काफी हो!

न देखा कहीं वह जल्वा जो देखा खान-ए-दिल में
बहुत मस्जिद में सर मारा बहुत-सा ढूंढ़ा बुतखाना।

बहुत मंदिर, बहुत मस्जिद खोजे, मगर जो महोत्सव, जो सौंदर्य, जो जल्वा खुद के भीतर हृदय में देखा वह कहीं भी न देखा।

न देखा कहीं वह जल्वा जो देखा खान-ए-दिल में
बहुत मस्जिद में सर मारा बहुत-सा ढूंढ़ा बुतखाना।

आखिरी सवाल : भगवान! आपको जानने से पहले मैं राधास्वामी संत से प्रभावित था, लेकिन उनसे दीक्षा नहीं ली, क्योंकि वहां मांस और शराब छोड़ने की शर्त थी। फिर आपकी किताब पढ़कर कुछ प्रयोग किये और अपने में परिवर्तन पाया। आधा पागल तो लोग मुझे पहले से ही कहते थे, क्योंकि मैं ज्यादा बोलता था। लेकिन अब नजदीकी दोस्त भी कहने लगे हैं कि मैं पागलपन की तरफ तेजी से बढ़ रहा हूं। वैसे मेरा बोलना जरूर बढ़ गया है, लेकिन भीतर मैं बढ़िया अनुभव करता हूं। अब संन्यास लेने का जी हो रहा है, लेकिन उसमें गैरिक वस्त्र और माला की शर्त है। क्या केवल माला से ही काम नहीं चल सकता है?

- पहली तो बात –

अगर आधा ही पागल रहना हो तो माला से काम चल सकता है। मगर मेरी मानो तो पूरा पागल बनने का मजा और है। ऐसी भी कंजूसी क्या? और जब पागल ही होने निकल पड़े... तो आधा! यह एक पांव बाहर, एक पांव भीतर तुम्हें दुविधा में डाल देगा। यह दो नावों पर सवारी खतरनाक

होगी। लोग आधा कहते हैं, तुम पूरे ही हो जाओ।

और अगर तुम्हें भीतर बढ़िया लग रहा है तो क्या फिक्र करना किसी की ? असली सवाल तो भीतर है। तुम्हें भीतर बुरा लगे और सारी दुनिया कहे, 'बड़े समझदार और बड़े दाना', क्या फायदा उससे ? तुम्हें भीतर आनंद आ रहा है, छोड़ो फिक्र। चार दिन की दुनिया है, लोग पागल ही कह लेंगे, क्या हर्जा है ? मगर इतना मैं तुमसे कहूंगा, आधे होना ठीक नहीं। क्योंकि मजा हमेशा पूरे का है। आधा तो ऐसा है जैसा कुनकुना पानी; न पानी रहे ठीक से न भाप बने, त्रिशंकु हो गये, बीच में लटक गये। न घर के न घाट के, धोबी के गधे हो गये।

नहीं, यह न करो। यह मैं न करने दूंगा। मैं साथ न दूंगा इसमें। पूरा पागल होना हो तो आ जाओ।

मीरी में फकीरी में शाही में गुलामी में
कुछ काम नहीं बनता बेजुरअते रिंदाना।

पागलपन के बिना कहीं कुछ काम बनता ही नहीं।

मीरी में फकीरी में शाही में गुलामी में
कुछ काम नहीं बनता बेजुरअते रिंदाना।

रिंद की, शराबी की, पागल की मस्ती और पूरा जोश चाहिए, तो ही कुछ काम बनता है। जो पहुंचे हैं, वे पूरे-पूरे दौड़े हैं तो ही पहुंचे हैं। ऐसे आधे-आधे, बंधे-बंधे तुम दूर न निकल पाओगे घर से। तुम कोल्हू के बैल हो जाओगे। वहीं-वहीं चक्कर लगाते रहोगे।

पहली बात –

जब हुए बर्बाद ऐ 'आबाद' तब पाया पता
बेनिशां हो कर मिला हमको निशाने कूए दोस्त।

उस परम मित्र का पता तो जब सब अपना पता खो जाता है, तभी मिलता है।

दूसरी बात –

कहा है, 'राधास्वामी सत्संग से प्रभावित थे। वहां शर्त थी शराब-मांस छोड़ने की, इसलिए दीक्षित न हुए।' यहां छोड़ने की कोई शर्त नहीं है, कुछ लेने की शर्त है। छोड़ने में भी राजी न हुए, लेने में भी राजी न हुए, तो न राजी होने की कसम खा ली है क्या ? कुछ तो करो।

पिछले प्रश्नोत्तर में नरेन्द्र ने अपने पिता के संबंध में प्रश्न पूछा था। वे एक जैन मुनि के दर्शन को गये थे। वे बड़े प्यारे आदमी हैं। तो जैन मुनि के पास जब तुम जाओ दर्शन को, तीर्थयात्रा को – वे गिरनार गये थे, वहां जैन मुनि के दर्शन को गये – तो मुनि ने कहा अब यहां आ ही गये हो तो कुछ त्याग करो, कुछ छोड़ दो। उन्होंने कहा, 'महाराज ! अब आप कहते हैं तो कुछ करेंगे। लेकिन छोड़ना सधा, न-सधा, पीछे झंझट हो, कुछ ले लेते हैं।' मुनि ने कहा, चलो ठीक। उन्हें, क्या पता कि ये क्या ले लेंगे। इन्होंने कहा, 'अब तक धूम्रपान नहीं करते थे, अब से नियमित करेंगे। अब वे धूम्रपान करते हैं, क्योंकि अब तीर्थ में व्रत ले लिया तो उसको तो पूरा करना ही पड़ेगा। लोग उन्हें पागल समझते हैं, लेकिन वे आदमी बड़े गजब के हैं।

छोड़ना क्या ? परमात्मा कहीं छोड़ने से थोड़े ही मिलता है ! बढ़ाओ अपने को, फैलाओ अपने को ! वहां तुमसे कहा, शराब-मांस छोड़ दो; मैं तुमसे कुछ छोड़ने को कहता नहीं। मैं कहता हूं, माला, गेरुआ ले लो ! यह मैं जानता हूं कि अगर माला और गेरुआ लिया तो शराब और मांस छूट जाएगा। उसकी छोड़ने की बात मैं नहीं करता। वह कमजोरों की बात है। क्या छोड़ने की बात करनी ! हीरा ले लो, कंकड़-पत्थर छूट जाएंगे; और रखना हो तो रखे रहना, कंकड़ ही पत्थर हैं, रखे भी रहे तो क्या हर्जा है ! मगर ऐसा कभी देखा नहीं कि हीरा मिल जाए तो कंकड़-पत्थर न छूट जाएं।

और ज्यादा बोलने का पूछा है कि ज्यादा बोलता हूं, इसलिए लोग आधा पागल समझते हैं। और लिखा है कि बोलना और थोड़ा बढ़ता जा रहा है।

बोलने का अगर ज्यादा ही शौक है तो अण्ट-सण्ट बोलें, अनर्गल बोलें, सधुक्कड़ी बातें बोलें कि खुद की भी समझ में न आए, क्या कह रहे हैं। लोगों को भी आनंद आएगा, तुम्हें भी आनंद आएगा। समझदारी की न बोलें। समझदारी रोग है। चलें, यह कोशिश करके देखें। यहीं से शुरू कर दें। तुम्हें भी मजा आएगा, लोगों को भी मजा आएगा। और धीरे-धीरे तुम पाओगे कि बोलने को कुछ भी तो नहीं है, क्या बोले चले जा रहे हो ? कहने को कुछ हो, कहो भी; कहने को है क्या ?

ईसाइयों का एक सम्प्रदाय है, कीमती सम्प्रदाय है। उसमें वे देव-वाणी – इसको वे देव-वाणी कहते हैं, अनर्गल ! उनके चर्च में लोग इकट्ठे हो जाते हैं। फिर प्रत्येक व्यक्ति शांत होकर बैठ जाता है और फिर जो भी अनर्गल भीतर आता है, वह बोलने लगता है। मगर अपनी तरफ से नहीं बोलता। अपनी तरफ से कुछ नहीं बनाता। कुछ आता है तो बोल देता है, नहीं तो चुप बैठा रहता है। धीरे-धीरे पूरे चर्च के लोग अनर्गल बोलने लगते हैं। अण्ट-सण्ट आवाजें, शोरगुल, न कोई भाषा, न कोई तुक, न कोई व्याकरण, न ऐसी भाषा जिसको कोई समझ सके, कुछ भी बोल रहे हैं। लेकिन पन्द्रह-बीस मिनट भी ऐसा बोलने के बाद चित्त को बड़ी गहरी शांति मिलती है। क्योंकि कूड़ा-कर्कट जो सिर में इकट्ठा हो जाता है, वह निकल जाता है।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि अगर बोलने में ही मजा आता है तो उसका मतलब केवल इतना है कि तुम कूड़ा-कर्कट इकट्ठा कर लेते होओगे, उसको तुम दूसरों में उलीच देते हो। निश्चित ही वे तुमसे परेशान होंगे, इसलिए पागल कहते हैं। उनको परेशान मत करो। एकांत में बैठकर बोलो, हर्जा क्या है ? झाड़, पत्थर, चट्टान – कहीं भी मिल बैठे दीवाने दो, हो जाने दी चर्चा ! चट्टान से बोल लो, हर्जा नहीं है। फिर चट्टान से बोलो तो हिन्दी बोलो कि अंग्रेजी, कि मराठी कि पंजाबी, क्या फर्क पड़ता है। चट्टान सभी भाषाएं समझती है। तुम सभी मिलाकर बोलो तो भी चलेगा। झाड़ से बोल लिये, नदी से बोल आये, आकाश पड़ा है। और इनमें से कोई तुम्हें पागल न कहेगा। वे सब प्रसन्न होंगे और तुम्हें आशीर्वाद देंगे। आदमियों को न सताओ ! आदमी वैसे ही परेशान हैं। सुन लेते होंगे, क्योंकि मजबूरी है।

और तुम कहते हो कि अब तो पास के, निकट के दोस्त भी घबड़ाने लगे हैं ! आखिर सीमा होती है। निकट के हैं, सुनना पड़ता है। लोग ऊबते रहते हैं और सुनते रहते हैं। मत सताओ उनको यह हिंसा है। तुम्हें अच्छा लगता है – एकान्त में चले गये, अनर्गल बोले ! उससे ध्यान उपलब्ध होगा।

अगर एक तीस-चालीस मिनट तुमने अनर्गल बोल लिया, दिल खोलकर चिल्ला लिया, तुम एकदम हलके हो जाओगे, फूल-से हलके हो जाओगे। और तब तुम में एक क्षमता आ जाएगी कि तुम दूसरों से व्यर्थ न बोलोगे; सार्थक कुछ होगा तो ठीक है। तब तुम्हें दिखायी पड़ेगा कि दूसरे पागल की तरह बके जा रहे हैं; कोई जरूरत नहीं है बकने की, लेकिन बके जा रहे हैं। तब तुम उनको भी धीरे-धीरे यही रास्ता सुझा देना; जो मैंने तुम्हें सुझाया, उनको तुम सुझा देना कि जंगल में एकांत में चले गये, वहां दिल खोलकर बोल लिये।

आधे पागल मत रहो। खूब समय गुजार दिया आधे में, अब जरा पूरे हो जाओ। और जिस दिन तुम पूरे हो जाओगे, उस दिन तुम पाओगे –

जब जखुद रफ्तगी से आंख खुली
सामने ही खड़े थे मंजिल के।

जब पूरे तल्लीन हो जाओगे पागलपन में, और उससे डूबकर बाहर आओगे और आंख खुलेगी – शान्ति में, मौन में, शून्य में – तुम पाओगे : मंजिल के सामने ही खड़े हैं।

मंदिर के सामने ही हर एक व्यक्ति खड़ा है। कहीं और कोई जगह ही नहीं है जहां तुम खड़े हो जाओ। मंदिर की सीढ़ियों पर ही हर एक खड़ा है।

आज इतना ही।

कान्ता जैसी प्रतिबद्धता है भक्ति

सत्रहवां प्रवचन

सूत्र

त्रिरूपभंगपूर्वकं नित्यदासनित्यकांता भजनात्मकं
वा प्रेमैव कार्यम्, प्रेमैव कार्यम् ॥६६॥
भक्ता एकान्तिनो मुख्या : ॥६७॥
कण्ठावरोधरोमांचाश्रुभिः परस्परं लपमानाः
पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ॥६८॥
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति
कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि ॥६९॥
तन्मयाः ॥७०॥
मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति ॥७१॥
नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः ॥७२॥
यतस्तदीयाः ॥७३॥

आज के लिए पहला सूत्र —

'त्रिभंगपूर्वकं'... ।

'तीन — स्वामी, सेवक, सेवा — ऐसे रूपों को भंग कर नित्य दासभक्ति से या नित्य कान्ताभक्ति से प्रेम करना चाहिए — प्रेम ही करना चाहिए।'

जीवन के सारे अनुभव त्रैत के हैं — द्वैत के ही नहीं, त्रैत के हैं। सत्य है अद्वैत। लेकिन मनुष्य के अनुभव सभी त्रैत के हैं। देखते हो कुछ, तत्क्षण तीन भंग हो जाते हैं — देखने वाला, दिखायी पड़ने वाली चीज, और दोनों के बीच दर्शन का संबंध। जानते हो कुछ, तो ज्ञाता, ज्ञेय, और ज्ञान। ऐसी त्रिवेणी है सारे अनुभव की।

सत्य एक है, लेकिन साधारणतः दिखायी पड़ता है, द्वैत है — ज्ञाता, ज्ञेय क्योंकि बीच का ज्ञान दिखायी नहीं पड़ता; वह सरस्वती है, वह दृश्य नहीं है। प्रयाग के तीर्थ पर तीन नदियां मिलती हैं — गंगा, यमुना, सरस्वती। गंगा दिखायी पड़ती है, यमुना दिखायी पड़ती है, सरस्वती अदृश्य है। तीर्थ बनाया ही इसलिए है वहां क्योंकि त्रिवेणी ही सारे जीवन का तीर्थ है। यहां दो तो दिखायी पड़ते हैं, तीसरा छुपा-छुपा है। द्रष्टा, दृश्य दिखायी पड़ते हैं, दर्शन का अनुमान करना पड़ता है। दृश्य भी पकड़ में आ जाता है, द्रष्टा भी पकड़ में आ जाता है — दर्शन को तुम अपनी मुट्ठी में न बांध पाओगे; वह अदृश्य सरस्वती है। सरस्वती को ज्ञान की देवी कहा है, वह ज्ञान की प्रतिमा है। ज्ञान कहो, दर्शन कहो — वह छिपा हुआ स्रोत है।

सत्य एक है — अद्वैत, साधारण देखने पर दो मालूम पड़ता है — द्वैत; ठीक से खोजने पर पता चलता है — त्रैत।

नारद का यह पहला सूत्र कहता है, त्रिभंग से मुक्त हो जाना जरूरी है। त्रिवेणी के पार, त्रिवेणी से गहरे में उतरना है, ताकि उस एक स्रोत का पता चल जाए जहां से गंगा, यमुना, सरस्वती, सभी निकलती हैं और अंततः जाकर फिर उसी स्रोत में विलीन हो जाती हैं। सागर का पता चल जाए, जहां से नदियों का आविर्भाव है और जहां नदियों का अवसान है।

'तीन रूपों को भंग कर, नित्य दासभक्ति से या नित्य कान्ताभक्ति से प्रेम ही करना चाहिए, प्रेम ही करना चाहिए।'

यह तीन के पार जाने का जो उपाय है, उसका नाम ही प्रेम है। प्रेम एकमात्र तत्व है संसार में, जो संसार के विपरीत है। प्रेम अकेला एक स्रोत है जो संसार के भीतर भी है और बाहर ले जाने वाला भी है; संसार में होकर भी जो संसार में नहीं है; पृथ्वी पर जो किसी और लोक की किरण है; अंधकार में जो दूर सूरज की किरण है। उस किरण के सहारे को अगर पकड़ लिया तो सूरज तक पहुंच जाओगे।

इसलिए प्रेम का अनुभव परमात्मा के निकटतम है। क्यों? क्योंकि प्रेम के क्षण में न तो प्रेमी रह जाता न प्रेयसी रह जाती – प्रेम ही रह जाता है। अगर प्रेयसी भी हो, प्रेमी भी हो और बीच में दोनों के प्रेम हो, तो यह प्रेम कामवासना है, प्रेम नहीं है। क्योंकि प्रेम तो त्रिभंग के पार है। वहां तीनों मिट जाते हैं और एक ही रह जाता है। सब स्वर एक ही महासंगीत में सम्मिलित हो जाते हैं।

अगर तुमने कभी प्रेम का क्षण जाना हो तो जिससे तुमने प्रेम किया हो, या जिसके पास तुम्हारे जीवन में प्रेम का झरना फूटा हो, तो तुम्हें पता चलेगा कि कुछ ऐसा हो जाता है: तुम तुम नहीं रह जाते; कहीं दीवालें गिर जाती हैं, सीमाएं धूमिल हो जाती हैं, भेद समाप्त हो जाते हैं। प्रेमी और प्रेयसी दूसरों को दो दिखायी पड़ते हैं; पर प्रेमी प्रेयसी में प्रविष्ट हो जाता है, प्रेयसी प्रेमी में प्रविष्ट हो जाती है। वहां भेद करना मुश्किल हो जाता है। कौन-कौन है, इसका भी पता चलाना मुश्किल हो जाता है। इतना आत्मैक्य हो जाता है!

प्रेम का अर्थ है, दूसरा अपने जैसा मालूम पड़े, तभी प्रेम। अगर दूसरा दूसरे जैसा मालूम पड़ता रहे तो काम। काम तो संसार का है; प्रेम परमात्मा का है।

इसलिए नारद कहते हैं, इस तीन के भंग के पार जाना हो, इस तीन के विभाजन के पार जाना हो – और पार जाए बिना परमात्मा की कोई गंध न मिलेगी – तो प्रेम ही एकमात्र मार्ग है। प्रेम ही करना चाहिए! प्रेम ही करना चाहिए!

प्रेमैव कार्यम्, प्रेमैव कार्यम्! बस एक प्रेम ही करने जैसा है। एक प्रेम ही बस होने जैसा है। एक प्रेम में ही डुबकी लगानी है और अपने को खो देना है।

प्रेमी को पता भी नहीं चलता कि हुआ क्या है! और अपने को खो देता है, गंवा देता है।

जान तुझ पर निसार करता हूं
मैं नहीं जानता हुआ क्या है!

तुम्हें इतना भी पता चल जाए कि प्रेम हुआ है तो फासला हो गया; तुम प्रेमी बन गये; त्रिभंग खड़ा हो गया! यह भी पता नहीं चलता, हुआ क्या है! बचता ही नहीं कोई जिसको पता चले कि हुआ क्या है!

तुम जब तक बने हो तब तक तो प्रेम होगा ही नहीं। तुम ही तो अवरोध हो। इधर तुम गिरे उधर प्रेम आविर्भूत हुआ। तुम्हारे गिरने से ही प्रेम का उठना है। तुम जब तक अकड़े खड़े हो तब तक प्रेम न हो सकेगा; तब तक तुम लाख प्रेम की बातें करो, कोरी होंगी, चले हुए कारतूस जैसी होंगी, चलाते रहो, उससे कुछ हल न होगा। बातचीत होगी। उसमें प्राण न होंगे, सत्व न होगा। हवा में साबुन की झाग के बबूले बनाते रहो, गीत गाओ, कविता करो – लेकिन यह सब अपने को भुलाने का

उपाय है, क्योंकि तुम अभी हो।

प्रेम कुर्बानी मांगता है। और छोटी-मोटी कुर्बानी नहीं। कुछ और देने से न चलेगा। तुम कहो, धन दे देंगे; तुम कहो, यश दे देंगे; तुम कहो, शरीर दे देंगे – नहीं कुछ और देने से न चलेगा, तुम्हें अपने को ही देना पड़ेगा।

इसलिए प्रेम परम यज्ञ है। और दूसरे यज्ञ तो बड़े सस्ते हैं – घी डाल दो, अनाज डाल दो, धन-पैसे से हो जाते हैं। जब तक तुमने अपने को न डाला अग्नि में प्रेम की, तब तक तुमने यज्ञ किया ही नहीं, तब तक तुमने धोखा किया। असली को तो बचाते रहे, जो डालने योग्य था उसे तो बचाते रहे, जो डालने योग्य था ही नहीं उसको जलाते रहे। और गेहूं और घी डालने से क्या होगा? क्या बिगाड़ा है गेहूं और घी ने तुम्हारा? लेकिन आदमी ने हजारों उपाय खोजे हैं, ताकि अपने को बचा ले, कुछ और डालने से चल जाए।

लेकिन प्रेम तुम्हें मांगता है; तुमसे कम पर राजी न होगा। तुम कुछ और देकर प्रेम को समझा न पाओगे। प्रेम तुम्हारी कीमत से मिलता है, जब तुम अपने को दांव पर लगाते हो।

अक्ल कहती है न जा कूचा-ए-कातिल की तरफ
सरफरोशी की हवश कहती है चल क्या होगा!

तुम्हारे भीतर दोनों आवाजें उठेंगी। तुम्हारी होशियारी कहेगी; अक्ल कहेगी ...अक्ल कहती है न जा कूचा-ए-कातिल की तरफ! यह परमात्मा तो बड़ा हत्यारा है, इसकी तरफ मत जाओ! यह प्रेमी तो खतरनाक है! इसमें तो तुम डूबोगे और खो जाओगे। यह तो तुम अपने कातिल की तरफ चले।

यह ठीक है। परमात्मा कातिल है, खयाल रखना। मार ही डालेगा। तुम्हें बचने न देगा। तुम्हारी गर्दन उतरेगी। मगर तुम्हारी गर्दन जब उतरेगी तभी तुम्हारे जीवन में पहली दफा महाप्रकाश का जन्म होगा। तुम मिटोगे तभी तुम पाओगे, होने का लुत्फ क्या है, होने का मजा क्या है! अस्तित्व की पहेली तुम्हें समझ आएगी। मिटकर ही पाओगे।

जीसस ने कहा है: जो बचाएंगे वे खो देंगे अपने को। जो खोने को राजी हैं, वे बच जाएंगे।

यह प्रेम का गणित बड़ा उलटा है। संसार का गणित यह है कि जो अपने को बचाएगा वह बचेगा, जो अपने को गंवाएगा वह खो जाएगा। संसार का गणित कहता है, अगर धन बढ़ाना हो, रोको धन को, खर्च मत कर देना। रोकोगे तो ही बढ़ेगा। संसार का गणित कृपण बनाता है, कंजूस बनाता है। संसार का गणित एक तरह की आध्यात्मिक कब्जियत सिखाता है: रोक लो! सड़ा-गला कुछ भी हो, रोक लो, कहीं खो न जाए!

मनस्विद कहते हैं कि कब्जियत कंजूस की बीमारी है। कंजूस को कब्जियत होती ही है। सभी कब्जियतवाले भला कंजूस न हों, लेकिन सभी कंजूस कब्जियतवाले होते हैं। क्योंकि जब तुम चीजों को पकड़ने लगते हो तो छोड़ने की हिम्मत खो जाती है। मल-मूत्र को भी त्यागने की हिम्मत खो जाती है, और तो क्या त्यागोगे!

कंजूस की पकड़ सभी चीजों पर होती है। उसके हाथ में जो पड़ जाए, वह पकड़ लेता है, मुट्ठी बांधना जानता है, खोलना भूल गया है। तो जीवन की सहज मल-निष्कासन जैसी क्रियाएं भी रुक

जाती हैं। रोकने की उसकी आदत इतनी सघन हो गयी है कि जाने-अनजाने वह रोक ही लेता है। अचेतन हो गयी है प्रक्रिया।

संसार का गणित तुम्हें कंजूस बनाता है। वह कहता है, रोको तो ही बचेगा।

मैंने सुना है, एक भिखमंगा एक द्वार पर खड़ा भीख मांग रहा था। गृहिणी बाहर आयी। भिखमंगे का चेहरा शालीन था, कुलीन था। वस्त्र यद्यपि फटे-पुराने थे, लेकिन लगते थे कभी उन्होंने रौनक देखी होगी। चेहरे से लगता था, अभिजात्य घर में पैदा हुआ होगा। पूछा कि यह दुर्दशा तुम्हारी कैसे हुई ? उसने कहा, 'यह तो पीछे बताऊंगा; अभी मुझे भूख लगी है।' उसने उसे भीतर बुलाया, उसे ठीक से भोजन कराया, कपड़े भेंट किये और कहा, 'अब तुम कहो। यह तुम्हारी हालत कैसे हुई ?' उसने कहा, 'तुम घबड़ाओ मत ! अगर ऐसे ही भिखमंगों को देती रही तो ऐसी ही हालत तुम्हारी भी हो जाएगी। ऐसे ही हमारी हुई। दे-देकर मिटे। तुम घबड़ाओ मत, जल्दी तुम्हारी भी हमारे जैसी हालत हो जाएगी।'

संसार का गणित तो रोकने का है। प्रेम का गणित बिलकुल उलटा है। प्रेम है दान। और जो प्रेम सीख लेता है, वह और सब तो दे ही डालता है, अपने को भी दे डालता है। वस्तुतः वह अपने को देता है, उसी में सब दे दिया। जब मालिक को ही दे दिया तो फिर उसकी मालकियत कहीं पीछे बची ?

लेकिन बुद्धि तुमसे हमेशा कहती रहेगी, 'परमात्मा की तरफ मत जाओ, क्योंकि वहां गये कि मिटे। धर्म से बचो।' इसलिए तो लोग धर्म की तरफ तभी जाते हैं जब एक पैर उनका कब्र में उतर जाता है; वे कहते हैं, अब तो मरना ही है, चलो अब थोड़ा धर्म भी कर लें। बुढ़ापे में, जराजीर्ण हो कर, जीवन आया और जा भी चुका, गर्द-गुबार छूट गयी है अब, पलभर के मेहमान हैं, अब गये तब गये – तब उन्हें परमात्मा का स्मरण आता है। यह भी बुद्धि की होशियारी है, बुद्धि कहती है, 'अब क्या हर्ज है, अब तो ले लो नाम !'

अकसर तो ऐसा होता है कि आदमी ले भी नहीं पाता नाम, मर जाता है; बेहाश हो जाता है मरने के पहले। पंडित-पुजारी उसके कान में राम का नाम ले देते हैं। बेहोशी में गंगाजल उसके मुंह में डाल देते हैं। मंत्रोच्चार होता है। कथापाठ हो जाता है। वह मर रहा है, वह सुन भी नहीं सकता है अब। जब सुन सकता था, जब देख सकता था, तब उसने व्यर्थ की चीजें देखीं, व्यर्थ की चीजें सुनीं। जब हाथ फैल सकते थे तब वह कूड़ा-कर्कट सम्हाले रहा। अब मरते वक्त जब कुछ भी पकड़ने की क्षमता न रह गयी और जब सब छूटने ही लगा, जिसको पकड़-पकड़ कर जिया था और सोचा था कि सारी संपदा यही है, जब अपने हाथ से जाने लगी – तब वह कहता है, 'चलो ! अब परमात्मा को ही अपने को दे दें।' लेकिन यह देना कुछ सार्थक नहीं। इस देने से कुछ सार नहीं है। यह ऐसा ही है जैसे खोटे सिक्के को कोई दान कर दे।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन बड़ा खुश था। मुझे मिलने आया। मैंने पूछा, 'बड़े प्रसन्न हो ?' कहने लगा, 'दो आदमियों का उपकार करके आ रहा हूं।' मुझे भरोसा न आया। पूछा, 'क्या उपकार किया है ?' उसने कहा, 'दस रुपये का एक नोट था नकली, मेरे पास। एक गरीब आदमी को मैंने भेंट किया और कहा, एक रुपया तू रख ले, नौ वापस कर दे। वह भिखमंगा गया पास की दुकान पर, उसने

दस की रेजगारी ले ली। नौ मुझे वापस कर दिये, एक रख लिया उसने। दो आदमियों का भला करके आ रहा हूं!' मैंने पूछा, 'इसमें दो कौन हैं जिनका भला हुआ?' कहने लगा, 'एक तो भिखमंगे को एक रुपया मिला, और एक मुझे नौ रुपये मिले। क्योंकि नोट तो नकली ही था।'

लोग दान भी करते हैं तो खोटे सिक्कों का कर आते हैं। तुम दान ही तभी करते हो जब तुम्हारे पास कोई ऐसी चीज आ पड़ती है जिसका तुम्हें कुछ उपयोग नहीं सूझता। मैं जानता हूं, कुछ चीजें तो समाज में घूमती ही रहती हैं। तुम किसी को दे देते हो, फिर वह किसी को दे देता है, फिर वह किसी को दे देता है। व्यर्थ की चीजें होती हैं। भेंट करने का ही मजा लोग ले लेते हैं।

संसार का सारा गणित यह है : पकड़ो, छूट न जाए! और प्रेम का सारा गणित यह है कि छोड़ दो, क्योंकि जिन्होंने पकड़ा उनका छीन लिया गया है। जिन्होंने छोड़ दिया, उनका कोई छीनेगा कैसे? इधर तुम देते हो — वस्तुतः तुम जो देते हो उसी के तुम मालिक हो। इस सूत्र को हृदयस्थ कर लो। कंठस्थ तो तुम कर सकोगे, उससे कुछ सार नहीं। हृदयस्थ कर लो! जो तुम देते हो उसी के तुम मालिक हो। जो तुम पकड़ते हो उसके तुम गुलाम। जिसे तुम्हें देने की भी हिम्मत नहीं उसके तुम मालिक कैसे हो सकते हो?

प्रेम तुम्हें मालिक बनाता है।

स्वामी राम अमरीका गये। वे अपने को शहंशाह कहा करते थे। अमरीका में लोगों ने उनसे पूछा कि आपके पास कुछ भी नहीं है, आप अपने को शहंशाह कहते हैं। उन्होंने कहा, 'इसीलिए! सब दे डाला। जो-जो दे डाला उसके तो मालिक हो गये। और अपने को भी दे डाला। जिस दिन अपने को दिया, उस दिन मालकियत पूरी हो गयी। अब इस मालकियत को कोई छीन न सकेगा। हम शहंशाह हैं, क्योंकि हमारे पास कुछ भी नहीं है।'

उन्होंने किताब लिखी तो किताब को नाम दिया : 'राम बादशाह के छह हुक्मनामे।' छह आज्ञाएं बादशाह राम की! पास कुछ भी न था। मगर राम जैसा सम्राट मुश्किल से पैदा होता है। उनके जैसी खुशी, उनके जैसा आनंद, उनके जैसा नृत्य, उनके जैसी मौज — जैसे सदा ही बहार में रहे, बसंत ही बसंत रहा, पतझड़ कभी आया ही नहीं।

प्रेम में पतछड़ आता ही नहीं। प्रेम ने पतझड़ जाना ही नहीं। प्रेम में एक ही ऋतु है — बसंत।

दो — और तुम खिले! अगर वृक्ष भी कंजूस हों तो खिल न पाएंगे, क्योंकि फूल तो बंट जाते हैं। फूल तो खिला नहीं कि सुगंध उड़ी नहीं। फूल तो खिला नहीं कि दिगदिगंत में हवाएं ले जाएंगी, बांट डालेंगी। अगर पेड़ कंजूस हों तो फूल न खिलेंगे, क्योंकि खिलने में तो डर होगा; ज्यादा से ज्यादा कलियों तक पहुंचेंगे, फिर सिकुड़कर रह जाएंगे कि कहीं हवाएं ले न जाएं, छीन न लें, दान न हो जाए!

मगर ध्यान रखना, वृक्ष की शोभा, वृक्ष का साम्राज्य तभी है जब उसकी सब ऊर्जा फूल बन जाए और वह लुट जाए।

'प्रेम ही करना चाहिए, प्रेम ही करना चाहिए।'

बस करने योग्य प्रेम है, इसलिए दुबारा दोहराया है नारद ने : 'प्रेम ही करना चाहिए, प्रेम ही करना चाहिए!' कुछ और करने जैसा नहीं है, क्योंकि प्रेम देना है अपने को समग्र भाव से।

यह इश्क नहीं आसां इतना ही समझ लीजे
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है!

यहां पहुंचते वही हैं जो डूब जाते हैं। यहां जो किनारों को पकड़कर बैठ जाते हैं, वे कभी नहीं पहुंच पाते। मुझे ऐसा कहने दो कि जो किनारे पर बैठते हैं वे डूब जाते हैं; जो मंझधार में डूबते हैं उन्हें किनारा मिल जाता है।

मिटना ही कला है प्रेम की। मिटना ही प्रार्थना है। अगर प्रार्थना करते-करते तुम पिघले न, तो तुमने व्यर्थ माथापच्ची की। अगर प्रार्थना करते-करते तुम बह न गये सभी दिशाओं में, तो तुम्हारी प्रार्थना भी तुम्हारी अक्ल का ही हिसाब है। सोचते हो, चलो यह भी कर लो, कौन जाने परमात्मा हो!

एक चर्च में एक पादरी बोल रहा था। वह थोड़ा हैरान हुआ। एक बुढ़िया सामने ही बैठी थी। वह जब भी ईश्वर का नाम लेता तब वह 'आमीन' कहती थी। वह तो ठीक था। आमीन 'ओऽम्' का ही रूपान्तरण है। स्वागत का भाव है उसमें। लेकिन जब वह शैतान का नाम लेता तब भी वह कहती थी – 'आमीन'। वह थोड़ा हैरान हुआ। पूरा प्रवचन हो जाने पर वह उतरा मंच से नीचे, उस बुढ़िया के पास गया कि मेरी समझ में नहीं आया। ईश्वर का नाम लेकर तो मैंने बहुतों को आमीन करते देखा, लेकिन तू शैतान के नाम में भी करती है!

बुढ़िया ने कहा, 'मरने का वक्त है, किसी को नाराज करना ठीक नहीं। पता नहीं कहां जाना हो, किससे मिलना हो! शैतान के हाथ में पड़ें कि भगवान के हाथ में पड़ें! दोनों को ही राजी रखना ठीक है। अब यह सुविधा मेरे पास नहीं है कि ज्यादा सोच-विचार करूं। मरना करीब है। इसलिए मैं तो दोनों की प्रार्थना कर लेती हूं।'

यह बुद्धि का हिसाब है। जैसे-जैसे मौत करीब आती है, तुम परलोक का इंतजाम करने लगते हो कि अब यहां तो छूटने लगा; फैलाया था बड़ा पसारा, सिकुड़ने लगा; यहां तो अब विदा होने की घड़ी आ गयी; लोग तो अर्थी तैयार करने लगे; जल्दी ही बैंड-बाजा उठ जाएगा; चल पड़ोगे – अब थोड़ा उस परलोक की भी खबर कर लें, कहीं ऐसा न हो कि परमात्मा हो ही! फिर हर्ज क्या है! नहीं हुआ तो कुछ बिगड़ता नहीं है; अगर हुआ तो कहने को तो रहेगा कि याद किया था।

ऐसे ही बेईमानों ने कहानियां भी गढ़ रखी हैं कि एक पापी मर रहा था, उसके बेटे का नाम नारायण था, उसने जोर से मरते वक्त बुलाया – 'नारायण, नारायण! तू कहां है, नारायण।' – और मर गया! कहते हैं, ऊपर के 'नारायण' धोखे में आ गये! उसे उन्होंने स्वर्ग भेज दिया!

आदमी की बेईमानी की कोई सीमा नहीं है। पंडित-पुरोहित ये कहानियां सुनाते हैं; लोगों को कहते हैं, 'घबड़ाओ मत, मरते वक्त भी अगर नाम ले लिया एक बार, बस हो गया!' लेकिन जिसको तुमने जीवन में न पुकारा उसे तुम मरने में कैसे पुकार सकोगे? जिसका नाम तुम्हारे ओंठों पर जीवित-जीवित न आया, मृत्यु के क्षण में तुम्हारे मुरझाये ओंठों पर उसके नाम की कुछ शोभा होगी? हृदय जब भरा-पूरा था, तब तुम वेश्याओं के द्वार पर लुटाते रहे। जब प्राणों में ऊर्जा थी तब तिजोड़ी भरते रहे। जब कुछ करने के दिन थे तब तो तुमने व्यर्थ और गलत ही किया। अब जब सब तरफ

से सूख गये, हाथ सब तरफ से छीन लिये गये, सब दरवाजे बंद हो चुकेतब – तब तुम मंदिर के द्वार पर आ बैठे! अब तुम 'नारायण-नारायण' कर रहे हो! ऐसे कहीं हो सकता है? ऐसा धोखा कहीं हो सकता है?

तुम्हारे जीवनभर का आलेख होगा, तुम्हारी मृत्यु के क्षण का नहीं; क्योंकि मृत्यु का क्षण तो तुम्हारे जीवनभर का निचोड़ है। तुम लाख नारायण कहो, अगर जीवन में तुम्हारे नारायण न बसा था, तो मरते वक्त तुम्हारे ओंठ से भला निकल जाए, तुम्हारे प्राणों की गहराई से न आ सकेगा; तुम्हारी परिधि पर भला हो जाए! राम-नाम चदरिया ओढ़ लेना। इससे किसको धोखा दोगे तुम?

अस्तित्व को धोखा नहीं दिया जा सकता। इसलिए प्रतीक्षा मत करो कि कल कर लेंगे, कि अभी तो जवानी है, अभी तो हम जवान हैं, अभी तो जरा राग-रंग देख लें!

रामकृष्ण के पास एक आदमी आता था। वह काली का बड़ा भक्त था और साल में दो-चार दफे बकरे चढ़वा देता था और भोज दिलवा देता था; फिर अचानक उसने बंद कर दिया। रामकृष्ण ने कहा, 'हुआ क्या?' आया – कहा कि तू तो बड़ा भक्त था और तू तो सदा बकरे चढ़वाता था, दो-चार दफा साल में उत्सव मनवा देता था – अब क्या चित्त धार्मिक न रहा? उसने कहा, 'धार्मिक तो अब भी हूं, लेकिन दांत टूट गये!'

आदमी मंदिर में भी जो करता है वह अपने ही लिए करता है। वह उत्सव वगैरह... काली तो बहाना थी; वह तो मांसाहार को धर्म की आड़ में करने का उपाय था। पर अब दांत ही टूट गये!

ध्यान रखना, कमजोरी, हारापन है – तब अगर परमात्मा को तुमने याद किया तो उसमें सुगंध नहीं हो सकेगी। उसमें पूजा की सुगंध न होगी। उसमें अर्चना की धूप न उठेगी। उसमें तुम्हारी दुर्गंध ही होगी, उसमें जीवनभर की सड़ांध ही होगी।

करने योग्य तो एक ही बात है – और वह प्रेम है। लेकिन 'इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।'

तीन – स्वामी, सेवक, सेवा; या ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय; या द्रष्टा, दर्शन, दृश्य – सभी त्रिभंगियां छोड़ देनी हैं। त्रिवेणी के पार उठे तो असली तीर्थ शुरू होता है। त्रिवेणी में डुबकी लगायी और उस जगह पहुंच गये जहां तीनों एक हो गये हैं...।

हिन्दुओं के पास बड़ी सुन्दर मूर्ति है – त्रिमूर्ति – ब्रह्मा, विष्णु, महेश! एक ही मूर्ति में तीनों के चेहरे हैं। किसी भी चेहरे से प्रवेश करो, भीतर एक जगह आ जाएगी जहां तीनों मिलते हैं। मूर्ति तो एक ही है, चेहरे भर तीन हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश एक ही परमात्मा के तीन चेहरे हैं।

एक को पाना है। तीन के पार जाना है। और पार जाने का प्रेम के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। क्योंकि प्रेम ही जोड़ता है, बाकी सब चीजें तोड़ती हैं। घृणा तोड़ती है। जिससे घृणा हो जाए उससे हम टूट जाते हैं। जिससे घृणा हो जाए वह हमारे पास भी खड़ा हो तो करोड़ों मील का फासला हो जाता है। फिर जिससे प्रेम हो जाए उससे हम जुड़ जाते हैं। करोड़ों मील का फासला हो तो भी वह हमारे पास ही होता है, हृदय की धड़कन के बिलकुल पास होता है। प्रेम जोड़ता है।

घृणा अहंकार की अभिव्यक्ति है। जिसने प्रेम किया वह निरहंकारी हुआ।

बड़े शौक व तवज्जो से सुना दिल के धड़कने को
मैं यह समझा कि शायद आपने आवाज़ दी होगी।

प्रेमी तो अपने दिल की धड़कन में भी उसी की आवाज सुनता है। दिल भी धड़कता है तो वह आंख बंद करके रस लेता है : 'होगी उसी के पैरों की आवाज !'

'कतील' अब दिल की धड़कन बन गयी है चाप कदमों की
कोई मेरी तरफ आता हुआ मालूम होता है।

दिल की धड़कन भी उसी के पैरों की आवाज हो जाती है। आंख खोलते हो जहां, वही दिखायी पड़ता है। तू ही तू है ! पर प्रेम चाहिए। लोग परमात्मा को खोजने निकलते हैं और प्रेम है नहीं। परमात्मा को तो तुम छोड़ो; तुम प्रेम को खोज लो, परमात्मा अपने से बंधा चला आएगा। कच्चे धागे से चले आएंगे सरकार बंधे !

प्रेम का धागा बड़ा कच्चा है, पर उससे मजबूत कोई चीज ही नहीं। बड़ा कोमल है ! लेकिन तुमने कभी खयाल किया कि लोहे की जंजीरें भी तोड़ दो, प्रेम का कच्चा सा धागा भी तोड़ते नहीं बनता। कितनी ही बड़ी जंजीरें तोड़ी जा सकती हैं। जिन्हें डाला जा सकता है उन्हें तोड़ा जा सकता है। प्रेम भर नहीं टूटता। क्योंकि तुम्हारे ढाले ढलता ही नहीं। प्रेम तुमसे बड़ा है, कैसे टूटेगा ? वस्तुतः तोड़ने वाला तो प्रेम में पहले ही टूट जाता है; तोड़नेवाला ही नहीं बचता।

'तीन रूपों को भंग कर नित्य दास्यभक्ति से या नित्य कान्ताभक्ति से प्रेम करना चाहिए।'

क्या है दास्यभक्ति ? क्या है कान्ताभक्ति ? दोनों एक ही हैं। जब कोई स्त्री किसी को प्रेम करती है तो फर्क तुम समझना।

नारद को कान्ताभक्ति शब्द का उपयोग करना पड़ा। जब कोई स्त्री किसी पुरुष को प्रेम करती है तो उस प्रेम का गुणधर्म बड़ा भिन्न होता है – उससे – जब कोई पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करता है। दोनों के गुणधर्म में बड़ी गहराई का फर्क है। पुरुष के लिए हजार कामों में प्रेम एक काम है। और हजार चीजें भी हैं करने को उसे; उन्हीं के बीच-बीच में समय निकालकर वह प्रेम भी कर लेता है। यश भी कमाना है, धन भी कमाना है, पद-प्रतिष्ठा है, दुकान है – हजार काम हैं। प्रेम उन्हीं के बीच में एक विश्राम है। स्त्री की बात बड़ी अलग है। स्त्री के लिए प्रेम ही उसका एकमात्र काम है, और कुछ भी नहीं। उसे कुछ और नहीं करना है। प्रेम न हो स्त्री के जीवन में तो बिलकुल सूनी रह जाती है। पुरुष के जीवन में प्रेम न हो तो भी कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता; वह हजार और चीजों से भर लेता है – धन से, पद से; राजधानियों में पहुंच जाता है। उसके और भी प्रेम हैं – प्रेम के अलावा। हजार तरह के ! कुछ न मिले, कुछ मूढ़तापूर्ण काम करने लगता है – चलो, टिकटें ही इकट्ठी करो, पोस्टल स्टाम्प ही इकट्ठे करो, घुड़दौड़ में चले जाओ।

जरा सोचें, किसी घोड़े को कहो कि आदमियों की दौड़ हो रही है, आदम-दौड़ हो रही है, कोई घोड़ा न आएगा देखने। मगर आदमी हजारों की संख्या में खड़े हैं। यह पूरा कोरेगांव पार्क घुड़दौड़ देखनेवालों का निवास-स्थान है। बस जब घुड़दौड़ होती है पूना में, तब वे आ जाते हैं, बस्ती आबाद हो जाती है, अन्यथा खाली हो जाती है। घोड़े भी हंसते होंगे कि आदमियों-से गधे न देखे ! फिर घोड़ा

कम-से-कम घोड़ा तो है।

फुटबाल हो कि हाकी हो कि वालीबाल हो, कि दो जंगली आदमी कुश्ती लड़ रहे हों, उसी को देखने खड़े हैं, धक्कमधुक्की खा रहे हैं। हजार काम हैं आदमी को, चैन नहीं है! प्रेम तो बीच-बीच का विश्राम है; वह जीवन की मूल धारा नहीं है, राह के किनारे-किनारे है। वह भी पोस्टल स्टाम्प जैसा ही एक शौक है; कर लिया तो ठीक, न किया तो कुछ हर्ज नहीं।

स्त्री प्रेम न कर पाए तो उसके भीतर कुछ अनखिला रह जाता है। इसलिए तुम हैरान होओगे, स्त्री एक बार प्रेम कर लेती है तो जैसे सदा के लिए प्रेम कर लेती है, एक पुरुष उसके लिए सदा के लिए हो जाता है। पुरुष इतनी जल्दी एक में नहीं डूबता। पुरुष की आकांक्षा और स्त्रियों पर घूमती ही रहती है; वह लाख उपाय करे, लेकिन उसकी नजर भटकती रहती है। पुरुष की नजर आवारा है। अगर पुरुष का बस चले – और धीरे-धीरे उसने इंतजाम किये हैं सब – अगर उसका बस चले तो विवाह समाप्त हो जाएगा। पश्चिम के मुल्कों में जहां पुरुष ने काफी सम्पत्ति और सम्पन्नता पैदा कर ली है, वहां विवाह टूट रहा है।

स्त्री जब भी किसी के प्रेम में पड़ती है तो वह पहले ही विवाह का सोचने लगती है; और पुरुष जैसे ही किसी के प्रेम में पड़ता है, वह विवाह से बचने की सोचने लगता है।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे बोला कि अब आखिर आज जा ही रहा हूं। 'हुआ क्या ?' मैंने कहा, 'दांत के डाक्टर के पास जा रहे हो, कहां जा रहे हो ? कोई बीमारी हो गयी है ? कोई झंझट है, अदालत में कोई मुकदमा है ?'

उसने कहा कि नहीं, विवाह करना है। अब तक टाला!

पुरुष टालता है। स्त्री आतुर होती है, क्योंकि स्त्री का प्रेम एकोन्मुख है, एकांत है। पुरुष का प्रेम छितरा-छितरा है। पुरुष खानाबदोश है; घर बनाकर रहने में उसे बेचैनी मालूम पड़ती है। स्त्रियों ने घर बनवाये। सारी सभ्यता स्त्रियों के कारण बनी। नहीं तो पुरुष तो घूमता ही रहता डेरा-डंगा लेकर; तम्बू काफी था! मकान! इतना ठोस बनाने की जरूरत क्या है! तम्बू लगा लेते! आज यहां, कल वहां, परसों वहां!

नये पर पुरुष का रस है। भंवरे की तरह है – एक फूल, दूसरा फूल, तीसरा फूल! किसी फूल के साथ प्रतिबद्ध नहीं हो पाता, कमिट नहीं कर पाता। स्त्री करवा लेती है उससे। बेचैनी में, मजबूरी में, उलझन में फंस गया, निकल नहीं पाता। अपनी ही कही बातें अपनी ही गर्दन पर फंस जाती हैं।

मैंने सुना है, एक आदमी ने अपनी प्रेयसी को कहा, 'तू मुझसे विवाह करेगी ?' उसने कहा, 'हां, निश्चित !' फिर वह आदमी बिलकुल चुप ही बैठ गया। घड़ी भारी लगने लगी। उस स्त्री ने कहा, 'कुछ बोलो भी।' उसने कहा, 'अब और बोलने को बचा क्या! बोल चुके। अब जिंदगी में बोलने को कुछ नहीं बचा। कितना टाला, आज निकल गया!'

इसलिए नारद कहते हैं: कान्ताभक्ति! भक्त को अगर परमात्मा से भक्ति करनी है तो स्त्री से प्रेम सीखना पड़ेगा। फिर एक पर ही प्रतिबद्ध होना पड़ेगा।

तुम्हारा प्रेम बंटा हुआ है; थोड़ा इस दिशा में, थोड़ा उस दिशा में; थोड़ी राजनीति भी कर लो,

थोड़ा धन भी कमा लो; थोड़ा धर्म भी कर लो; थोड़ी प्रतिष्ठा में हर्ज क्या है; सभी कुछ बांट लो, बटोर लो ! जिंदगी छोटी है, हाथ छोटे हैं, समय बहुत संकीर्ण है ! तुम हजार दिशाओं में दौड़कर पगला जाते हो।

प्रेम अहर्निश एक दिशा में यात्रा है। इसलिए कान्ताभक्ति ! एक बार स्त्री किसी के प्रेम में पड़ जाए, फिर उसके लिए संसार में कोई दूसरा पुरुष रह नहीं जाता। यही तो अड़चन है। इसलिए स्त्री पुरुष को नहीं समझ पाती, पुरुष स्त्री को नहीं समझ पाता। पुरुष के लिए और भी स्त्रियां हैं। और पुरुष हमेशा अनुभव करता है कि नये-नये संबंध हो जाएं तो शायद ज्यादा सुख होगा। स्त्री की प्रतीति यह है कि संबंध जितना गहरा हो उतना ज्यादा सुख होगा।

पुरुष मात्रा पर जाता है; स्त्री, गुण पर। इसलिए सम्राट हैं, तो हजारों रानियों को इकट्ठा कर लेते हैं। फिर भी मन नहीं भरता। पुरुष का मन भरता नहीं – भर सकता नहीं। क्योंकि मन भरने की तो तभी सम्भावना है जब प्रेम गहरा हो, गुणात्मक हो। एक के साथ इतनी तल्लीनता आ जाए, इतना तादात्म्य हो जाए कि भेद गिर जाएं। प्रेम तो तभी तृप्त होता है जब प्रार्थना की सुगंध प्रेम से उठने लगे।

समय चाहिए !

पुरुष का प्रेम मौसमी फूलों की तरह है; अभी बोए; दो-तीन सप्ताह बाद आना शुरू हो जाये। सर्दी आएगी, बाग-बगीचे मौसमी फूलों से भर जाएंगे। स्त्री का प्रेम मौसमी फूलों जैसा नहीं है; समय लगता है। जितना बड़ा वृक्ष, जितना आकाश में ऊपर उठाना हो, उतना जमीन में गहरी जड़ों को जाना पड़ता है। जितना वृक्ष ऊपर जाता है उतनी ही जड़ें नीचे गहरी जाती हैं। मौसमी फूलों की कोई जड़ें होती हैं; जरा हिला दो, उखड़ गये ! इसलिए तो दो-चार छह सप्ताह में आ जाते हैं; पर दो-चार छह सप्ताह में विदा भी हो जाते हैं।

क्षणभंगुर है पुरुष का प्रेम। उफान आता है उसमें, ज्वार आता है उसमें लेकिन भाटे के आने में देर नहीं लगती। ज्वार के पीछे ही छिपा भाटा भी चला आता है। अगर पुरुष के प्रेम को गौर से देखो, तो तुम उसे पाओगे कि जब वह प्रेम के क्षण में होता है, तब तो यह भूल ही जाता है कि मैं पुरुष हूं, क्या कह रहा हूं। वह कहता है, 'सदा तुझे प्रेम करूंगा ! तेरे अतिरिक्त और कोई मेरे लिए प्रेम का पात्र नहीं है।' पुरुष ये बातें कहता है; जब कहता है तब वह भी आविष्ठ होता है उन बातों से – लेकिन घड़ीभर बाद उसे लगता है, 'यह मैं क्या कह गया ! इसे पूरा कर पाऊंगा ? असम्भव मालूम होता है।' स्त्री इन बातों को हृदय से कहती है। सच तो यह है, स्त्री ये बातें कहती नहीं, अनुभव करती है।

अगर तुम दो प्रेमियों को बैठे देखो, तो तुम स्त्री को चुप पाओगे, पुरुष को बोलते पाओगे। स्त्री चुप रहती है, कहना क्या है ! जो है, है। जो है, वह अपनी दीप्ति से ही चमकेगा; उसे शब्द दे कर ओछा क्यों करें ? ऐसा नहीं कि स्त्री बोलना नहीं जानती – स्त्री पुरुष से ज्यादा बोलना जानती है। लेकिन प्रेम के क्षण में स्त्री चुप होती है। बात इतनी बड़ी है कि कही नहीं जा सकती। ऐसे तो स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा बोलने में कुशल होती हैं। बच्चियां पहले बोलती हैं बच्चों की बजाय। लड़कियां

सालभर पहले बोलना शुरू कर देती हैं। लड़के थोड़ा देर लगाते हैं बोलने में। स्कूलों में भी लड़कियां ज्यादा प्रथम कोटि की आती हैं; बोल सकती हैं; लिख सकती हैं। कुशल हैं बोलने में। पुरुष का बोलना इतना कुशल नहीं है।

लेकिन जब स्त्री-पुरुष प्रेम में पड़ते हैं, स्त्री चुप होती है, पुरुष बोलता है। क्योंकि जो नहीं है, वह बोल-बोलकर उसकी आभा पैदा करता है, आभास पैदा करता है। स्त्री चुप्पी से बोलती है। एक बार प्रेम में पड़ जाए तो वह सदा के लिए पड़ गयी। इसलिए तो इस देश में हजारों स्त्रियां सती हो गईं अपने प्रेमियों के पीछे, लेकिन कोई पुरुष कभी सता नहीं हुआ। इधर पत्नी मरी नहीं कि वह दूसरी पत्नी को लाने के विचार करने लगता है – वस्तुतः तो यह है कि मरने के पहले ही करने लगता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी। आखिरी क्षण उसने कहा कि 'मुझे पता है कि तुम मेरे मर जाने के बाद विवाह करोगे, तुम अकेले न रह सकोगे। करना, लेकिन एक बात खयाल रखना।' नसरुद्दीन ने कहा, 'कभी नहीं करूंगा, तू बिलकुल चिंता मत कर। कभी भी नहीं करूंगा। असम्भव है यह बात।' और उसने कहा कि वह मैं जानती हूं, तुम मुझे व्यर्थ का भरोसा मत बंधाओ; सिर्फ एक बात का भरोसा मुझे बता दो, मेरे गहने और मेरे कपड़े उस स्त्री को मत पहनने देना।

नसरुद्दीन ने कहा, 'यह झंझट की बात हुई। फातिमा को तेरे गहने आएंगे भी नहीं और तेरी साड़ी भी नहीं आएगी।'

वे तय ही कर चुके हैं कि किससे शादी करनी है!

पुरुष थिर नहीं है, चंचल है। इसलिए नारद को कहना पड़ा : 'कान्ताभक्ति'! जैसे कोई स्त्री किसी को प्रेम करती है, ऐसा परमात्मा को प्रेम करना।

'दास्यभक्ति'!

दास शब्द निंदित हो गया बहुत। लेकिन उसमें भी कुछ राज है। अब तो दुनिया में कोई दास होते नहीं। और अगर किसी कम्यूनिस्ट को ये नारद के सूत्र मिल जाएं तो वह कहेगा, यह आदमी तो बुर्जुआ, पूंजीवादी मालूम पड़ता है, केपिटलिस्ट है, दासों की बातें कर रहा है, कह रहा है कि दास्यभक्ति होनी चाहिए, दासों जैसा होना चाहिए! दासता को तो मिटा दिया!

जिस दासता को तुमने मिटा दिया है उसकी बात नहीं हो रही है। यह एक ऐसी बात है कि कभी-कभी घटती है। यह भी प्रेम है एक कि कोई किसी को अपनी सारी मालकियत दे देता है। छीन नहीं लेता – कोई-कोई दे देता है! कोई किसी के चरणों का दास हो जाता है। इतना हो जाता है कि अगर दोनों के जीवन बचाने का मौका आए और एक ही बचता हो, तो दास अपने मालिक को बचाएगा, अपने को नहीं। अगर घर में आग लगी हो तो दास जल जाएगा, मालिक को बचा लेगा।

दास्यभक्ति का इतना ही अर्थ है कि तुमने जिसे मालिक जाना, उसको ही तुम अपनी आत्मा भी जानना। परमात्मा मालिक है, स्वामी है। या तो कान्ताभक्ति करना या दास की भक्ति करना। क्योंकि दास भी अपना तादात्म्य छोड़ देता है अपने से, और मालिक के साथ जुड़ जाता है; और कान्ता भी अपने को बिलकुल भूल जाती है, अपने पति के साथ एक हो जाती है।

तुमने देखा! विवाह कर लाते हो स्त्री को, तुम्हारा नाम स्त्री के साथ जुड़ जाता है, तुम्हारा कुल,

तुम्हारा गोत्र तुम्हारी जाति स्त्री के साथ जुड़ जाती है। इससे उलटा नहीं होता। तुम्हारी स्त्री की जाति तुम्हारे नाम से नहीं जुड़ती। स्त्री अपने को तुम में खो देती है, तुम उसमें अपने को नहीं खोते। तुम विवाह कर लाते हो तो स्त्री का नाम भी बदल देते हो। वह प्रसन्न भी होती है उसके नाम के बदल जाने से क्योंकि अतीत का मूल्य ही क्या अब! जो प्रेम के पहले था, वह था ही नहीं। असली जीवन तो अब शुरू हुआ। नया जन्म : नया जीवन! वह नया नाम चाहती है। वह नया भाव चाहती है अपने जीवन का। वह नाम भी बदल लेती है।

विवाह तुम करते हो स्त्री से, तो स्त्री के घर रहने पुरुष नहीं जाता, स्त्री पुरुष के घर रहने आती है। कभी मजबूरी में किसी कारण से पुरुष को जाना पड़ता है तो बड़ा लज्जित भाव से जाता है। घरजंवाई की जैसी फजीहत होती है, वह सभी जानते हैं। कभी एकाध पर यह मुसीबत आ जाती है कि घरजंवाई बनना पड़ता है, तो दीन-हीन हो जाता है।

तुम जरा गौर करो। आखिर पुरुष अगर विवाह करके अपनी पत्नी के घर रहने जाता है तो दीन-हीन होने की क्या जरूरत है? मगर वह समझता है, कुछ मजबूरी हो गयी, अवश हो गया, असहाय हो गया, दूसरों पर निर्भर हो गया! लेकिन तुमने कभी इससे उलटा होते देखा? खयाल तुम करो, स्त्री तुम्हारे घर में आती है, दूसरे के घर में आती है, अपने को सब भांति लुटा देती है, और कभी दीन-हीन अनुभव नहीं करती, सौभाग्यशालिनी अनुभव करती है। यही नहीं, मजे की बात यह है कि अपने को पूरी तरह सर्वस्व दान करके अचानक तुम्हारे घर की मालकिन हो जाती है, 'घरवाली' हो जाती है। घर तुम्हारा था, स्त्री 'घरवाली' हो जाती है! तुमको कोई 'घरवाला' नहीं कहता। और ऐसा अनुभव नहीं करती कि दूसरे के घर में आ गयी है। अपने को इतना खो देती है कि पराया नहीं बचता।

इसलिए नारद कहते हैं : कान्ताभक्ति या दासभक्ति... ! इतने एक हो जाना परमात्मा से कि फासला न रह जाए।

> नियाजे-इश्क की ऐसी भी एक मंजिल है
> जहां है शुक्र शिकायत किसी को क्या मालूम!

एक ऐसा भी मुकाम है प्रेम की यात्रा में; जहां तुम इतने एक हो जाते हो कि धन्यवाद देने में भी शिकायत मालूम पड़ेगी।

तुमने कभी खयाल किया! पश्चिम में चलता है, क्योंकि पश्चिम में संबंध औपचारिक हो गये, उनकी गहराई खो गयी। अगर बेटा मां के लिए कुछ करता है तो मां भी कहती है, 'थैंक्यू! धन्यवाद!' हिन्दुस्तान में कोई मां न कहेगी। धन्यवाद बेटे से! यह तो बड़ा परायापन हो जाएगा। बाप बेटे के लिए कुछ करता है तो पश्चिम में बेटा धन्यवाद देता है, न दे तो अशिष्ट है। लेकिन पूरब में! बाप बेटे के लिए कुछ करता है और अगर बेटा धन्यवाद दे तो बाप बड़ा चौंकेगा कि हुआ क्या! तू कोई पराया है?

जहां संबंध औपचारिक होता है वहां धन्यवाद ठीक है। लेकिन जहां संबंध आत्मीय है वहां तो धन्यवाद शिकायत हो गयी। धन्यवाद भी शिकायत हो जाती है, ऐसी भी प्रेम की एक मंजिल है।

> नियाजे-इश्क की ऐसी भी एक मंजिल है

जहां है शुक्र शिकायत किसी को क्या मालूम !

मैं तुमसे निरंतर कहता हूं कि प्रार्थना धन्यवाद है। लेकिन फिर एक ऐसी मंजिल भी आती है...। यह तो शुरुआत की बात है कि प्रार्थना धन्यवाद है। यह तो मैं तुमसे इसलिए कहता हूं, ताकि तुम प्रार्थना को मांग न बनाओ। मांगने मत जाओ परमात्मा से, धन्यवाद देने जाओ। लेकिन जल्दी ही अगर तुम्हारा धन्यवाद गहन होने लगा, तो एक दिन तुम पाओगे : अब तो धन्यवाद देना भी शिकायत जैसा हो गया, क्योंकि परमात्मा से यह जाकर कहना कि तूने बहुत दिया, जाहिर है कि तुम कह रहे हो, लेकिन बहुत तुमने माना नहीं। औपचारिक है। अगर परमात्मा न देता तो...।

रामकृष्ण के पास जब केशवचंद्र मिलने आये, पहली बार तो विवाद किया, फिर धीरे-धीरे उनके सत्संग में आने लगे, उनसे प्रभावित हुए, आंदोलित हुए, परमात्मा की भक्ति भी करने लगे। तो रामकृष्ण ने एक दिन पूछा कि 'तुम करते क्या हो भक्ति में ? क्या विधि-विधान है तुम्हारा ?' उन्होंने कहा, 'धन्यवाद देता हूं परमात्मा को। धन्यवाद देता हूं कि तूने जीवन दिया, आंखें दीं, कान दिये, हाथ दिये, प्राण दिये, बुद्धि दी, इतना सब कुछ दिया ! मेरे बिना कमाये दिया ! मेरे बिना मांगे दिया !'

रामकृष्ण लेकिन उदास हो गये ? केशवचंद्र ने कहा, 'आप सुनकर उदास क्यों हो गये ? उन्होंने कहा, 'धन्यवाद देता है ? अगर परमात्मा आंखें न देता, तू अंधा होता, तो फिर धन्यवाद देता कि नहीं ? फिर नहीं देता। अगर बहरा होता तो ? परमात्मा ने जो दिया है उसके कारण तू धन्यवाद देता है। अगर न दिया होता तो, फिर क्या करता तू ?'

धन्यवाद में भी शिकायत है। परमात्मा के सामने हो जाना काफी है। पहले मांग छोड़ो। धन्यवाद के कांटे से मांग का कांटा निकाल लो। फिर दोनों कांटे फेंक दो। फिर धन्यवाद भी क्या देना ! उसी का सब है, धन्यवाद देनेवाले तुम हो कौन ? तुम भी उसी के हो !

मेरे एक हाथ पर चोट लग जाए और दूसरे हाथ से मलहम-पट्टी करूं, तो मेरा बांया हाथ दायें हाथ को धन्यवाद देगा ? दोनों एक ही हैं, धन्यवाद किसको देना है ? किसको लेना, किसको देना !

प्रेम जब सघन होता है तो प्रेमी और परमात्मा एक होने लगते हैं। इतना भी फासला नहीं रह जाता, धन्यवाद रखने लायक जगह भी बीच में नहीं बचती।

'भक्ता एकान्तिनो मुख्याः।'

दूसरा सूत्र : 'एकान्त अनन्य भक्ति ही श्रेष्ठ है।'

जैनों के पास एक शब्द है – अनेकांत। उसके विपरीत में शब्द है – एकान्त। अनेकांत में जैनों का कहना है कि संसार में एक वस्तु नहीं है, अनेक वस्तुएं हैं; संसार अनंत वस्तुओं का जोड़ है। जैन अद्वैतवादी तो हैं ही नहीं, द्वैतवादी भी नहीं हैं – अनेकवादी हैं। इसलिए उनके दर्शनशास्त्र का ही नाम अनेकांत दर्शन हो गया। भक्त कहता है, एक ही है। जैन शास्त्र अत्यन्त तर्ककुशल है। जैन शास्त्र पढ़ोगे तो गणित जैसा मालूम पड़ेगा। साफ-सुथरा है बहुत – गणित साफ-सुथरा होता ही है। तर्क बहुत स्पष्ट है – तर्क स्पष्ट होते ही हैं। लेकिन गीत नहीं है, संगीत नहीं है। थोथा-थोथा है, ऊपर-ऊपर है। मरुस्थल जैसा है; फुलवाड़ी नहीं है, हरियाली नहीं है। रूखा रेगिस्तान मालूम होता है।

ठीक अनेकांत से विपरीत दृष्टि भक्त की है। इसलिए तो जैन भक्त नहीं हैं। वे भगवान को

भी नहीं मानते, क्योंकि अगर भगवान को मानेंगे तो एक को मान लेना पड़ेगा। वे कहते हैं, अनंत वस्तुएं हैं, अनंत पदार्थ हैं – लेकिन कोई एक नहीं है सबको जोड़नेवाला। वे कहते हैं, मनके तो बहुत हैं, लेकिन मनकों में पिरोया हुआ एक सूत्र नहीं है जो माला बना दे।

भक्तिशास्त्र कहता है, मनकों से कहीं माला बनी? यद्यपि भीतर पड़ा हुआ धागा दिखायी नहीं पड़ता, मनके ही दिखायी पड़ते हैं; लेकिन मनकों से कहीं माला बनी? ढेर लग सकता था। अगर अनंत वस्तुएं होतीं और उन सबको जोड़नेवाला कोई एक न होता, तो संसार में ढेर होता चीजों का, व्यवस्था नहीं हो सकती थी। तुम मनकों का ढेर लगा सकते हो, माला नहीं बना पाओगे। गले में तो पहनोगे कैसे? लेकिन जगत बंधा हुआ, गुथा हुआ मालूम पड़ता है। अलग-अलग चीजें नहीं मालूम पड़ती। तुमने कोई चीज देखी जो अलग है? सब जुड़ा है। वृक्ष जमीन से जुड़े हैं, जमीन सूरज से जुड़ी है, सूरज चांद-तारों से जुड़े हैं। सब जुड़ा है, गुंथा है, माला है। तो निश्चित ही इतनी अनंत चीजों का जोड़नेवाला कोई एक सूत्र, कोई सूत्रधार है, इन सबके भीतर पिरोया हुआ एक धागा – उस धागे का नाम ही परमात्मा है।

एकान्त भक्ति श्रेष्ठ है। और भक्त तो कैसे दो का हो सकता है? एक का ही हो सकता है। इस्लाम इसलिए कहता है, सिवाय अल्लाह के और कोई परमात्मा नहीं है; सिवाय परमात्मा के और कोई परमात्मा नहीं। इस्लाम भक्ति का ही विस्तार है। सिवाय एक परमात्मा के और कोई परमात्मा नहीं। एक! अनन्य!

जब तुम एक को पूजोगे तो तुम भी संगठित हो जाओगे। जब तुम अनंत की दृष्टि रखोगे, तुम भी अनंत टुकड़ों में टूट जाओगे। तुम्हारी दृष्टि तुम्हारा जीवन बन जाती है। एक को स्वीकार किया कि तुम भी एक होने लगे। जो तुम्हारी जीवनदृष्टि है, अन्ततः तुम्हारी जीवन-शैली भी बन जाएगी।

भक्त को एकान्त, अनन्य होना चाहिए। क्योंकि प्रेम दो को जानता ही नहीं।

मीरा नाचती-नाचती, कहते हैं, वृन्दावन पहुंच गयी। वृन्दावन में एक मंदिर था, बड़ा मंदिर था कृष्ण का। और उस मंदिर का पुजारी सारे देश में ख्यातिलब्ध था। बड़ा प्रकांड पंडित था, बड़ा-महात्मा था। मगर वह स्त्री का मुंह नहीं देखता था। कृष्ण का भक्त था। लेकिन उसके मंदिर में स्त्रियों को आने की मनाही थी। मीरा नाचती हुई मंदिर में पहुंच गयी। महापंडित तो घबड़ा गया, महात्मा तो बहुत घबड़ा गया। उसका सब महात्मापन डगमगा गया कि स्त्री भीतर आ कैसे गयी! द्वारपाल भी खड़े थे, लेकिन मीरा के नाच में कुछ खो गये, कुछ मस्ती छा गयी, न रोक पाये। कुछ ऐसी लहर की तरह मीरा आई, कुछ ऐसी धुन के साथ आई कि द्वारपाल ठगे से खड़े रह गये! सदा रोक दिया था और स्त्रिओं को, लेकिन स्त्री यह कुछ और ही थी। आग की एक लपट थी! एक झटके में वह भीतर पहुंच गयी! एक क्षण को द्वारपाल ठिठके कि वह तो अन्दर थी! मंजीरा उसका बज रहा था। वह तो नाच रही थी।

पुजारी बहुत नाराज हुआ। वह आया और कहा कि मैंने सुना है तेरा नाम, लेकिन स्त्री की यहां आने की मनाही है। यहां केवल पुरुष ही आ सकते हैं।

मीरा ने कहा, 'तुम मुझे चौंका दिये! मैं तो सोचती थी कि कृष्ण के अतिरिक्त और कोई पुरुष

नहीं ? तुम भी पुरुष हो ? मैंने तो कृष्ण के अतिरिक्त और किसी में पुरुष नहीं देखा।

एक धक्का लगा छाती में महात्मा के। बात तो ठीक थी। भक्त होकर और कृष्ण के अतिरिक्त फिर कौन पुरुष है ! फिर तो सभी स्त्रियां है; किसको रोकते हो तुम ? मीरा ने कहा, किसी को रोकने का हक किसी को नहीं है। पुरुष तो एक परमात्मा है, बाकी तो सब उसकी सखियां हैं। तुम भी सखी हो। छोड़ो यह भ्रम पुरुष होने का।

मीरा ने ठीक ही कहा, उचित ही कहा। भक्त के लिए भगवान ही एकमात्र बचता है।

एकान्त भक्ति ही श्रेष्ठ है। लेकिन तुम्हारा मन एक भीड़ है।

मैं अनेक घरों में मेहमान होता था, जब यात्रा करता रहा। कभी-कभी ऐसे घरों में पहुंच जाता जहां उनका पूजा-गृह भी घर में बनाया होता। सब तरह के देवी-देवता बैठे हैं। पचास-साठ-सत्तर छोटे-छोटे, शंकर जी... जहां से जो मिल गये वहीं से ले आए। हनुमान जी भी जमे हैं। रामचन्द्रजी भी बैठे हैं। और यह तो छोड़ो जितने कैलेंडर छपते हैं, सब, सब लगे हैं। बाजार है। उपासनागृह है ? और भक्त को इतनी फुर्सत कहां, तो घंटी लेकर सबके सिर पर ऐसा बजाता हुआ चला जाता है ! इकट्ठा होलसेल ! सभी को हाथ जोड़कर नमस्कार कर दिया... !

मैं उनसे पूछता कि 'यह मामला क्या है, इतना बाजार क्यों भरा हुआ है ?'

'भाव यह रहता है, कहीं कोई नाराज न हो जाए।'

कल-परसों एक मित्र अपने मित्र की खबर लाए कि उनको संन्यास लेना है, लेकिन वे हनुमान जी के भक्त हैं। तो वे आने में डरते हैं कि कहीं हनुमान जी नाराज न हो जाएं ! हनुमान जी से मेरा कौन-सा झगड़ा है ? वे नाराज किसलिए हो जाएंगे ?

तुम्हारा भगवान भी तुम्हारा भय है। भय से कहीं पूजा हुई, भय से कहीं प्रेम हुआ ? भय कहीं परमात्मा तक ले जाएगा ? जिससे भय हो जाता है, उसमें तो घृणा हो जाती है। जिससे भय हो जाता है वह तो दुश्मन हो जाता है। भय के कारण तुम सिर झुकाकर, हाथ-पैर जोड़कर, राजी कर लेते हो कि देखो, परेशान न करना। रोज-रोज भक्ति करते हैं, ध्यान रखना ! लेकिन यह पूजा तो न हुई, यह कोई भक्ति तो न हुई।

फिर मैं निरंतर सोचता हूं कि अगर तुम्हारी भक्ति ठीक चल रही है, तो मेरे पास भी आने की क्या जरूरत है ! ठीक नहीं चल रही है, इसलिए यहां आना चाहते हो। अगर हनुमान से ही प्रेम लग गया तो उसी बहाने पहुंच जाओगे, यहां आने की जरूरत क्या है ? मगर यहां आने का खयाल बताता है कि डर के मारे पूजा तो किये जा रहे हैं, लेकिन कुछ हो नहीं रहा है। तो और कहीं भी टटोलते होंगे, लेकिन यह नाव भी न छूटे, दूसरी नाव पर भी पैर रख लें। तो सब तरह के देवी-देवता लोग-इकट्ठे कर लेते हैं।

भक्त तो एकान्त होता है। एक काफी है; नाम उसका कुछ भी रख लो – अल्लाह कहो, राम कहो, रहीम कहो, जो तुम्हें कहना हो, तुम्हारी मर्जी। नाम तुम चुन लो। उसका कोई नाम तो है नहीं; पुकारने के काम आ जाता है – चुन लो। बहाना है नाम तो।

घर में तुम्हारे बेटा पैदा होता है, बिना नाम के पैदा होता है; नाम रख लेते हो, बुलाने में सुविधा

हो जाती है। भगवान का कोई भी नाम रख लो। जो रंग-रूप बनाना हो, वह रंग-रूप बना लो। ये तो सब बहाने हैं, ये तो खूंटियां हैं। लेकिन असली चीज पास है जिसको खूंटी पर टांगना है? प्रार्थना, प्रेम, पूजा तुम्हारे पास है? और जिसके पास प्रेम है, पूजा है, वह कहीं भी टांग देगा। खूंटी न मिलेगी तो बिना खूंटी के टांग देगा। द्वार-दरवाजे पर टांग देगा।

ध्यान रखना, एक के प्रति ही अनन्य भाव से डूब जाना है। वहीं से पहुंच जाओगे।

मेरे पास मुसलमान आते हैं, हिन्दू आते हैं, ईसाई आते। मैं उनसे कहता हूं, तुम ईसाई हो तो ईसाई बने रहो, मुसलमान हो तो मुसलमान बने रहो। कुछ इससे बाधा नहीं आती। मस्जिद में करनी है पूजा, मस्जिद में; मंदिर में करनी है, मंदिर में – कोई अड़चन नहीं, सभी घर उसके हैं। पर कहीं भी करो तो! ऐसे घाट ही मत बदलते रहना। प्यास लगी हो तो पानी भी तो पियो। यह घाट बदलने से क्या होगा? वहां प्यासे थे, यहां प्यासे रह जाओगे। क्योंकि पीने की तमीज ही नहीं है।

असली बात तो झुकने की है, अंजुलि भरने की है। नदी तो बही जा रही है, तुम तट पर ही अकड़े खड़े रहो, उतरो न, झुको न, चुल्लू में पानी न भरो, तो नदी कोई छलांग लगाकर तुम्हारे कंठ में नहीं उतर जाएगी।

'एकान्त भक्ति ही श्रेष्ठ है।'

एक बचे तुम्हारे मन में, तुम्हारे प्राण में, तुम्हारे तन में, तो उस एक के आधार पर तुम्हारे भीतर के खंड जुड़ने लगेंगें, अखंड हो जाएंगे। ऐसे तुमने सौ-पचास देवी-देवता पूजे तो वे इतना ही बता रहे हैं कि तुम भीड़ हो एक। सच तो यह है कि पूजा का गृह सूना होना चाहिए; एक भी न हो, खाली हो। उस खालीपन में पुकारो एक को। उस शून्य से उठने दो तुम्हारे हृदय की आह, तुम्हारा रुदन तुम्हारे आंसू; पत्थरों की मूर्तियों से थोड़े ही कुछ होता है। होता तो तुम्हारे हृदय की भाव-दशा से है। इतना ही हो कि तुम्हारे भीतर उसे पाने की प्रगाढ़ अभीप्सा हो।

> आशिकी सब्र तलब और तमन्ना बेताब
> दिल का क्या रंग करूं खूने जिगर होने तक
> हमने माना कि तगाफुल न करोगे, लेकिन
> खाक हो जाएंगे हम, तुमको खबर होने तक।

भक्त तो यह कहता है कि प्रेम धीरज मांगता है। माना, प्रेम धीरज मांगता है पर मेरी अभीप्सा बेचैन है। प्रेम कहता है, ठहरो, होगा – लेकिन मेरी अभीप्सा, मेरी प्यास कहती है, 'बहुत देर वैसे ही हो गयी। अब और देर न कराओ। अब मिलन को और न ठहराओ, अब और स्थगित न करो!'

आशिकी सब्र तलब – प्रेम तो धीरज है; तमन्ना बेताब – लेकिन पाने की आकांक्षा प्रज्ज़्वलित होकर जल रही है। दिल का क्या रंग करूं खूने जिगर होने तक – मुझे मालूम है कि तुम मिलोगे तो मुझे मिटा दोगे, लेकिन तब तक क्या करूं? दिल का क्या रंग करूं – क्या उपाय करूं इस दिल के लिए? खूने जिगर होने तक – तुम मिलोगे तो एक ही आंख; एक ही तुम्हारी दृष्टि – और मैं राख हो जाऊंगा, लेकिन तब तक क्या करूं, यह तो बताओ। हमने माना कि तगाफुल न करोगे, लेकिन – यह भी हमें पता है कि तुम धोखा न दोगे। यह भी पता है कि भरोसा तुम पर रखा जा सकता है। यह भी पता

है कि तुम देर भी न करोगे। खाक हो जाएंगे हम, तुमको खबर होने तक! लेकिन तुम्हें खबर होगी, तभी न! तुम्हें पता चलेगा, तभी न! धोखा भी न करोगे, देर भी न करोगे – सब माना; लेकिन हमारी आवाज तुम तक पहुंचेगी, तब तक तो हम खाक ही हो जाएंगे, तबाह हो जाएंगे।

तो भक्त रोता है, गिड़गिड़ाता है, पुकारता है, दीवाने की तरह, गीत गाता है, सब्र बंधाता है, धीरज रखता है और अभीप्सा को भी जलाता है। एक बड़ी बेबूझ दशा है भक्त की।

'ऐसे अनन्य भक्त कण्ठावरोध, रोमांच और अश्रुयुक्त नेत्रवाले होकर परस्पर सम्भाषण करते हुए अपने कुलों को और पृथ्वी को पवित्र करते हैं।'

ऐसे अनन्य भक्त, उसकी याद में आंदोलित, उसकी प्यास में दीवाने, उसको पुकार रहे हृदय के कोने-कोने से, रोआं-रोआं उसी को आवाज दे रहा – ऐसे भक्त, कण्ठावरोध, उनका गला रुंध जाता है, कहते नहीं बनता, आंसू भर आते हैं।

भक्ति कोई शास्त्र थोड़े ही है कि बैठे और पढ़ लिया। भक्ति तो अस्तित्वगत है, जीवन-रूपान्तरण है।

'ऐसे अनन्य भक्त कण्ठावरोध'... बोलना चाहते हैं, बोल नहीं पाते, कंठ रुंध जाता है। 'रोमांच'... रोएं खड़े हो जाते। 'अश्रुयुक्त'... आंखें आंसुओं से भरी होती हैं। 'परस्पर सम्भाषण करते हैं', एक-दूसरे को धीरज बंधाते हैं, एक-दूसरे को अपना अनुभव बताते हैं।

माना कि तेरी दीद के काबिल नहीं हूं मैं
तू मिरा शौक देख, मिरी इंतज़ार देख!

वे भगवान से कहते हैं कि यह तो हमने माना कि तुम हमें देखो, इस काबिल हम नहीं हैं; तुम्हारी आंख हम पर पड़े, इस काबिल हम नहीं हैं।

माना कि तेरी दीद के काबिल नहीं हूं मैं
तू मिरा शौक देख...।

लेकिन मेरी प्यास तो देख, तू मेरी अभीप्सा तो देख, तू मेरी बेचैनी तो देख।

तू मिरा शौक देख, मिरी इन्तज़ार देख!

मेरी प्रतीक्षा देख! मेरी पात्रता मत देख! पात्रता मेरे पास क्या है!

भक्त तो कहता है, 'मैं कुछ भी नहीं हूं, दावा नहीं कर सकता हूं। यह नहीं कह सकता कि तुझे मिलना ही पड़ेगा। मेरी कमाई क्या है! इतना ही कह सकता हूं कि जरा मेरी आंखों में भरे आंसू देख! मेरे हृदय में उठता रुदन देख! मेरा रोआं-रोआं कंपता है तेरे लिए! तेरी प्रतीक्षा में आतुर हूं। आंख के किवाड़ खोले बैठा हूं!'

तू मिरा शौक देख, मिरी इंतज़ार देख!

भक्त दावा तो नहीं कर सकता; योगी कर सकता है – इतने आसन करता है, इतने प्राणायाम करता है। इतनी सदियों से तपश्चर्या, व्रत-उपवास करता और अभी तक तू नहीं मिला?

तुमने कभी खयाल किया, जरा-सा तुम कुछ करते हो तो फौरन तुम्हें पात्रता का बोध उठता है कि अरे, तीन दिन से ध्यान कर रहे हैं, अभी तक कुछ हुआ नहीं! तुम कैसी मूढ़तापूर्ण बातें कर लेते हो!

मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं कि सात दिन हो गये, अभी तक कुछ हुआ नहीं! तुमने मजाक समझी है? अभी आंसुओं से तुम्हारी आंखें भी गीली न हुईं? अभी कंठावरोध भी कहां हुआ? अभी तुमने पुकारा ही कहां?

'भक्त कंठावरोध, रोमांच, अश्रुयुक्त नेत्रवाले होकर परस्पर सम्भाषण करते हुए पृथ्वी को पवित्र करते हैं।'

रोमांच...। परमात्मा की याद ही पुलक से भर देती है! कभी प्रेमी की याद की? कभी द्वार-दरवाजे पर बैठकर प्रेमी की प्रतीक्षा की? राह से पुलिसवाला निकल जाता है, दौड़कर आ जाते हो कि शायद प्रेमी आ गया! डाकिया दस्तक देता है, भागे चले आते हो कि शायद प्रेमी आ गया! पत्ते खड़खड़ाते हैं हवा में सूखे, द्वार खोल लेते हो कि शायद प्रेमी आ गया!

जिसका तुम्हें इंतजार है, तुम्हें उसी-उसी की खबरें चारों तरफ आभास होती हैं।

मैं मुल्ला नसरुद्दीन के साथ बैठा था, उसके घर। एक ऊंट निकला। मैं थोड़ा चकित हुआ। नसरुद्दीन की आंखें बड़े भाव से भर गईं और जैसे उसे किसी बड़ी मधुर वस्तु की याद आ गयी; जैसे लार मुंह में आ गयी और उसने गटक ली। मैंने पूछा, 'मामला क्या है? ऊंट को देखकर तुम्हें किस बात की याद आयी?' उसने कहा, 'ऊंट को देखकर मुझे खीर, पूरी, हलवा, इस-इस तरह की चीजें याद आईं।' मैंने कहा, 'मैंने कभी सुना नहीं कि ऊंट का कोई भोजन से संबंध है!' उसने कहा, 'इससे क्या फर्क पड़ता है, मुझे तो रेलगाड़ी देखकर भी हलवा, पूरी, खीर की खबर आती है।' मैंने कहा, 'तेरा दिमाग खराब है।' उसने कहा, 'दिमाग खराब नहीं है, रोजे के दिन हैं, उपवास कर रखा है! हर चीज को देख कर बस...। ऊंट और रेलगाड़ी और हवाई जहाज, इससे कोई संबंध नहीं है।'

तुमने कभी उपवास किया? सब तरफ भोजन दिखायी पड़ता है!

संसार परमात्मा से उपवास है। अगर तुम सच में भूखे हो तो तुम्हें हर जगह वही दिखायी पड़ेगा।

साथ हर सांस के मिरे दिल से
आ रही, अभी खबर तेरी।

कंठावरोध होगा; जैसे गले से कुछ निकलना चाहता है, निकल नहीं पाता। क्योंकि परमात्मा के लिए कहां से शब्द लाओ! कैसे कहो, उसकी याद भी कैसे कहो! जिक्रे-यार भी कैसे करो! उस प्यारे का वर्णन कैसे करो! कंठ रुक-रुक जाता है। हृदय में कुछ होता है, लहर उठती है, कंठ तक आती है, लेकिन प्रगट नहीं हो पाती। भक्त थरथराता है।

थरथराता है अब तलक खुर्शीद
सामने तेरे आ गया होगा।

भक्त कहता है, सूरज को तो देख, अभी भी थरथराता है – जरूर तेरे सामने आ गया होगा।

थरथराता है अब तलक खुर्शीद
सामने तेरे आ गया होगा।

भक्त जैसे-जैसे परमात्मा के करीब आने लगता है, वैसे ही उसके पैर डगमगाने लगते हैं, उसकी हालत शराबी की हो जाती है।

परमात्मा अनूठी शराब है। जिसने वह शराब पी ली, फिर किसी शराब की कोई जरूरत न रही। और शराब कुछ ऐसी है कि उससे होश बढ़ता है, घटता नहीं – लेकिन जीवन तरंगायित हो जाता है। जैसे दुलहन सजकर चली, अपने प्रेमी को मिलने! भक्त तो सदा ही सुहागरात में जीता है। प्रतिपल उसके प्रेमी से मिलन होने की संभावना है। किस क्षण वीणा बज उठेगी, किस क्षण पुकार आ जाएगी, किस क्षण वह स्वीकार हो जाएगा – हर क्षण प्रतीक्षा का है!

'भक्त एक-दूसरे से सम्भाषण करते हैं।'

फर्क समझ लेना। दार्शनिक, पंडित एक-दूसरे से विवाद करते हैं, संवाद नहीं। उन्हें सिद्ध करना है कुछ। अपनी सिद्ध करनी है तो दूसरे की असिद्ध करनी ही पड़ती है बात। भक्त को विवाद नहीं है। दो भक्त मिल जाते हैं, बैठ जाते हैं पास, आंसुओं से बोलते हैं, रोएं-रोएं से बोलते हैं। उनका एक सम्भाषण है।

सम्भाषण का अर्थ होता है : एक-दूसरा एक-दूसरे को सहारा दे रहा है। रास्ता अंधेरा है और लम्बा है। यह अंधेरी रात उसकी याद और उसकी चर्चा में कट जाए तो भली। सुबह तो आएगी, लेकिन सुबह बड़ी दूर है। जैसे-जैसे सुबह करीब आती है, अंधेरा और बढ़ता जाता है। तो भक्त एक-दूसरे को सांत्वना, भक्त एक-दूसरे को सहारा देते हैं। भक्त एक-दूसरे को, उनके भीतर क्या घटा है, क्या घट रहा है, उसका निवेदन करते हैं। विवाद का सवाल नहीं है। विवाद होता है दो सिरों के बीच में; सम्भाषण होता है दो हृदयों के बीच में।

ध्यान रखना, अगर तुम्हें परमात्मा को खोजना है तो ऐसे लोगों का संग खोजना जहां सम्भाषण हो सके; जिनके पास बैठकर सत्संग हो सके; जिनके पास बैठकर उस प्रेमी की याद सघन हो; जिनके आंसू तुम्हारे भीतर के आंसुओं को भी पुकार दे दें; जिनके भीतर बजती हुई वीणा तुम्हारी वीणा के तारों को भी छेड़ दे। वस्तुतः मंदिरों का यही उपयोग था कि वहां वे लोग मिल जाएं जो अलग-अलग खोज में लगे हैं, और एक-दूसरे को सहारा दे दें, और ऐसा न रहे कि हम अकेले ही हैं, कोई और भी खोजने चला है; और भी लोग मार्ग पर हैं; हम अकेले नहीं हैं, संगी-साथी हैं। और जो हमें हो रहा है, वैसा दूसरों को भी हो रहा है। ताकि भय न पकड़े। नहीं तो बहुत बार ऐसा लगेगा, 'क्या हम पागल होने लगे! ऐसा तो पहले कभी न होता था कि आंखें बात-बात में भर जाती हैं! ऐसा तो पहले कभी न होता था कि बात-बात में कंठ अवरुद्ध हो जाता हो!'

रामकृष्ण निकलते थे तो उनके शिष्यों को उन्हें बचाकर ले जाना पड़ता था कि रास्ते में कोई 'जयराम जी' न कर ले! इतना ही काफी था उनके लिए। किसी ने कह दिया 'जयराम जी', वे वहीं खड़े हो गये आंख बंद करके। गिर जाएं सड़क पर, आंसू बहने लगें। कहीं उन्हें ले जाते थे तो पहले से लोगों को चेता देते थे कि भगवान की चर्चा मत छेड़ देना।

कहीं शादी-विवाह में बुला लिया एक बार उनको। किसी भक्त के घर शादी थी, वे चले गये। वह सब गड़बड़ हो गयी शादी। क्योंकि किसी ने परमात्मा की बात छेड़ दी, रामकृष्ण नाचने लगे, वे बेहाश हो गये, तो दूल्हा-दुल्हन को तो लोग भूल गये। रामकृष्ण बेहाश पड़े हैं। छह दिन तक बेहोश रहे। शादी-विवाह का तो सारा मामला ही खराब हो गया।

क्या हो जाता था ? रामकृष्ण से लोग कहते थे, 'आपको हो क्या जाता है ?' वे कहते, 'जैसे ही कोई उसकी याद दिला देता है, एक तूफान आ जाता है। फिर मैं अपने बस में नहीं रहता। फिर नियंत्रण नहीं कर पाता।'

सत्संग का यही उपयोग है कि वहां एक ही दिशा में चलनेवाले लोग बैठ जाएं, थोड़ी बात कर लें; एक-दूसरे का मन हलका कर लें; एक-दूसरे से कह दें वह जो कहा नहीं जा सकता है। यह सम्भाषण में ही सम्भव है; विवाद हो, तब तो तुमसे और मुश्किल हो जाएगी; तुम कह नहीं पाये कि दूसरा झंझट करने को, विवाद करने को खड़ा हो गया।

विवादी से थोड़े बचना प्रारम्भ में। जैसे कि हमारे बगीचे में छोटा-सा पौधा लगता है; तो हम उसके चारों तरफ बागुड़ लगा देते हैं कांटों की; बड़ा हो जाएगा, फिर कोई जरूरत न रहेगी। लेकिन अभी अगर उसको छोड़ देंगे बिना बागुड़ के, जानवर खा जाएंगे, बच्चे तोड़ डालेंगे, कुछ-न-कुछ दुर्घटना घट जाएगी। जब तुम्हारे भीतर भक्ति का अंकुर नया-नया है, तब तुम्हें सत्संग चाहिए; फिर तो तुम्हीं बड़े वृक्ष हो जाओगे; फिर तो तुम अपने ही बल से खड़े हो जाओगे; फिर कोई जरूरत न रहेगी।

...'सम्भाषण करते हुए अपने कुलों और पृथ्वी को पवित्र करते हैं।'

परमात्मा की याद भी पवित्रता लानेवाली है। परमात्मा मिल जाए, तब तो कहना क्या ! लेकिन उसका जिक्र, उसकी याद भी पवित्र कर जाती है। थोड़ी देर को ही सही, तुम्हारी आंखें आकाश की तरफ उठती हैं। थोड़ी देर को ही सही, पदार्थ को तुम भूलते हो। थोड़ी देर को ही सही, तुम्हारे जीवन का वातायन खुलता है — उस दिशा में, जिस दिशा में तुम कभी भी नहीं गये; अज्ञात, अनजान तुम्हारे भीतर थोड़ा-सा प्रवेश पाता है; तुम नये हो आते हो !

'ऐसे भक्त तीर्थों को सुतीर्थ, कर्मों को सुकर्म और शास्त्रों को सत्शास्त्र कर देते हैं।'

यह बड़ा अनूठा सूत्र है।

तीर्थों के कारण कोई भक्ति को उपलब्ध नहीं होता — लेकिन भक्त जहां हो जाएं वहीं तीर्थ बन जाते हैं। कोई कर्म सुकर्म नहीं है, जब तक कि तुम्हारे जीवन में परमात्मा का हाथ प्रविष्ट न हो जाए। तुम्हारे किये तो सभी कर्म दुष्कर्म होंगे। परमात्मा तुम्हारे भीतर से कुछ करे तो सुकर्म होगा।

कर्मों को सुकर्म कर देता है भक्त, और शास्त्र सत्शास्त्र हो जाते हैं।

शास्त्रों को पढ़कर कोई भक्ति को उपलब्ध नहीं होता — लेकिन भक्ति को उपलब्ध हो जाए तो सारे शास्त्रों का प्रमाण हो जाता है स्वयं, सारे शास्त्रों के लिए गवाही हो जाता है, साक्षी हो जाता है। तब वह कह सकता है, 'मेरी तरफ देखो ! शास्त्र पर भरोसा न आए, छोड़ो; यहां जीवित शास्त्र हूं मैं, मेरी तरफ देखो ! मेरी आंखों में आंखें डालकर देखो ! मेरे पास आओ ! मेरी तरंगों को अनुभव करो !'

सारे शास्त्र सफल हो जाते हैं। यह बड़े मजे की बात है — क्योंकि नारद ने पहले कहा कि भक्त को शास्त्र की कोई जरूरत नहीं। वेद का भी त्याग कर देता है भक्त। लेकिन एक ऐसी घड़ी आती है, जब भक्त उपलब्ध होता है तो सारे वेद उसकी मौजूदगी के कारण सत्य हो जाते हैं। वह फिर-फिर प्रमाण ले आता है कि परमात्मा है। वह फिर-फिर ऋचाओं को पुनरुज्जीवित कर देता है।

इश्क ने हमको जियारत गाहे-आलम कर दिया

गर्दे-गम से हो गया तामीर काबा एक और।

प्रेम ने हमें संसार के लिए एक तीर्थस्थान बना दिया। प्रेम ने हमें संसार के लिए एक तीर्थस्थान बना दिया कि लोग तीर्थयात्रा कर जाएं।

गर्दे-गम से हो गया तामीर काबा एक और।

और परमात्मा के विरह में जो पीड़ा झेली गयी, उससे ही एक और नया काबा निर्मित हो गया।

जहां भक्त हैं वहीं काबा है। जहां भक्त हैं वहीं काशी है। जहां भक्त हैं वहीं गिरनार। जहां भक्त हैं वहां सभी कुछ है, क्योंकि वहां परमात्मा फिर पृथ्वी पर अवतरित हुआ है। भक्त ने जगह खाली कर दी है; भक्त के सिंहासन पर परमात्मा फिर विराजमान हुआ है। इसे भक्त कहे या न कहे; यह प्रगट होने लगता है।

किस तरह तेरी मुहब्बत को छुपाए रखिए
खामुशी भी लबे इज़हार हुई जाती है!

छिपाना असम्भव है। भक्त चुप भी हो तो चुप्पी में भी उसी का संदेश प्रगट होने लगता है।

किस तरह तेरी मुहब्बत को छुपाए रखिए
खामुशी भी लबे इज़हार हुई जाती है।

चुप रहते हैं तो भी वक्तव्य हो जाता है। चलते हैं तो वक्तव्य हो जाता है। आंख हिलती है तो वक्तव्य हो जाता है। बोलें तो बोलें, न बोलें तो भी शास्त्र के लिए प्रमाण मिल जाता है।

हज़ारों बार कोशिश कर चुका हूं
नहीं छुपतीं मुहब्बत की निगाहें।

असम्भव है! जब तुम्हारे घर में दीया जलेगा, कैसे छिपाओगे? अंधेरी रात से गुजरनेवाले लोगों को भी दूर-दूर से भी रात के अंधेरे में तुम्हारे घर की रोशनी द्वार-दरवाजों के रन्ध्रों से प्रगट होने लगेगी। घर में दीया जला है तो दूर-दूर से यात्री आने लगेंगे।

यह जो भक्त की परम दशा है, यह करीब-करीब पागल जैसी है। करीब-करीब कहता हूं, क्योंकि पागल जैसी भी है और पागल जैसी नहीं भी है।

कबूं रोना, कबूं हंसना, कबूं हैरान हो रहना
मोहब्बत क्या भले-चंगे को दीवाना बनाती है!

भक्त जरा बेबूझ हो जाता है; हंसने लगता है, कभी रोने लगता है, कभी चुप रह जाता है, कभी हैरानी से ठिठककर आकाश को देखता है। भक्त तुम्हारे बीच होता है लेकिन तुमसे बहुत दूर होता है — किसी और लोक में होता है! उसने कुछ देखा है जो उसे दीवाना बना गया।

'ऐसे भक्त तीर्थों को सुतीर्थ, कर्मों को सुकर्म, शास्त्रों को सत्शास्त्र कर देते हैं, क्योंकि वे तन्मय हैं। 'तन्मयाः!'

क्योंकि वे परमात्मा में लीन हैं; क्योंकि वे परमात्मा में डूबे हैं; क्योंकि उन्होंने परमात्मा को अवसर दिया। वे परमात्मा के वाहन बन गये हैं। उन्होंने अपने को तो पोंछ डाला! उन्होंने परमात्मा के लिए पूरी जगह खाली कर दी! वे हट गये अपने और परमात्मा के बीच से! उन्होंने शून्य का पात्र रख दिया

उसके सामने, परमात्मा उसमें बरस गया है।

'तन्मयाः' !

भक्ति का सूत्र हैः तन्मय हो जाना। जो तुम करो उसमें तन्मय हो जाओ, वहीं भक्ति पैदा हो जाती है। खाना बना रहे हो, मकान झाड़ रहे हो, लकड़ी काट रहे हो, कुछ भी कर रहे हो — तन्मय हो जाओ। लकड़ी काटते समय बस लकड़ी काटने की क्रिया रह जाए, तुम न रहो। झाड़ते समय झाड़ना रह जाए, तुम न रहो। और सतत एक भाव-दशा बनी रहे — उसी के लिए ! उसी के लिए लकड़ी काटते हैं। उसी के लिए आंगन बुहारते हैं ! उसी के लिए भोजन बनाते हैं !

जैसे-जैसे तुम्हारा कर्म तुम्हें डुबाने लगे, तुम तल्लीन होने लगो, वैसे-वैसे 'पितृगण प्रमुदित होते हैं, देवता नाचते हैं, यह पृथ्वी सनाथ हो जाती है।'

'मोदन्ते पितरो'। तुम्हारे पूर्वज तुम्हारी खिलावट को देखकर... ! एक भक्त पैदा हो जाए तो अनंत पीढ़ियां सफल हुईं। जब फूल लगता है वृक्ष पर तो गहरी से गहरी जमीन में छुपी जड़ें भी प्रमुदित होती हैं; सफल हुईं, सार्थक हुईं ! बेटा पा ले तो बाप भी सार्थक हुआ, क्योंकि एक ही सिलसिला है।

'मोदन्ते पितरो' ! जो जा चुके तुम्हारे पितर, वे भी प्रमुदित होते हैं। धन्य, तुम उनके घर में पैदा हुए ! धन्य, तुमने उनका होना भी सार्थक किया !

'नृत्यन्ति देवताः' ! स्वर्ग के देवता भी नाचते हैं : फिर घटी घटना ! फिर कोई भक्त हुआ ! फिर कोई भगवान हुआ ! फिर घटी घटना ! फिर कोई मिटा और किसी ने परमात्मा को अपने सिंहासन पर विराजमान किया ! फिर एक मंदिर बना, एक तीर्थ बना, एक काबा निर्मित हुआ ! स्वभावतः देवता न नाचेंगे तो कौन नाचेगा !

महावीर के संबंध में कहा जाता है, जब वे ज्ञान को उपलब्ध हुए, तीनों लोकों का संगीत बरसा। असमय फूल खिल गये ! आकाश से देवता फूल बरसाने लगे !

ये सब प्रतीक-कथाएं हैं। ये इतना ही कह रहे हैं कि जब भी कोई ऐसी परम दशा को उपलब्ध होता है तो सारा अस्तित्व उस व्यक्ति के माध्यम से एक आकाश की ऊंचाई को छूता है।

तुम भी उसी परम की योजनाएं हो ! तुम्हारे भीतर से भी उसने एक हाथ फैलाया है ! तुम्हारे भीतर से परमात्मा सतत सक्रिय है कि कोई श्रेष्ठतर, और श्रेष्ठतर दशा उत्पन्न हो ! तुम चैतन्य के शिखर बन जाओ ! तुम्हारी सफलता में परमात्मा की भी सफलता है। तुम्हारी विफलता में उसकी भी हार है। क्योंकि तुम उसके सृजन हो, उसके कृत्य हो !

'नृत्यन्ति देवताः'।

'और यह पृथ्वी सनाथ हो जाती है।'

'उनमें (भक्तों में) जाति, विद्या, रूप, कुल, धन और क्रियादि का भेद नहीं है।

भक्त तो सिर्फ भक्त है — न हिन्दू, न मुसलमान। भक्त तो सिर्फ भक्त है — न शूद्र, न ब्राह्मण। भक्त होना काफी है, फिर सब विशेषण व्यर्थ हुए।

आशिक तो किसी का नाम नहीं
कुछ इश्क किसी की जात नहीं

कब याद में तेरा साथ नहीं
कब हाथ में तेरा हाथ नहीं!
क्या जात है प्रेम की?
आशिक तो किसी का नाम नहीं
कुछ इश्क किसी की जात नहीं!
वहां न कोई वर्ण है, न वर्ण-भेद है।

जब तक तुम्हारे आसपास ऐसी क्षुद्र दीवारें बनी हैं तब तक तुम परमात्मा के लिए द्वार न खोल पाओगे। अगर तुम मुसलमान हो तो मुसलमान रहते ही तुम परमात्मा को न पा सकोगे। अगर तुम हिन्दू हो तो हिन्दू रहते ही तुम परमात्मा को न पा सकोगे। क्योंकि इतने छोटे घेरे तुमने बनाये हैं।

उठाइये भी दैरो हरम की ये सबीलें
बढ़ते नहीं आगे जो गुज़रते हैं इधर से।
ये मंदिर और मस्जिद की दीवालें हटाइये।
उठाइये भी दैरो हरम की ये सबीलें
बढ़ते नहीं आगे जो गुज़रते हैं इधर से!

यहीं अटक जाते हैं। कोई मंदिर में अटका है, कोई मस्जिद में अटका है। परमात्मा तक पहुंचने के साधन ही बाधक बन गये मालूम होते हैं। मंदिर से आगे जाना है। मस्जिद से बहुत आगे जाना है। ये कोई मंजिलें नहीं — रास्ते के पड़ाव हैं, बस काफी हैं; थोड़ी देर को विश्राम करने को रुक गये, ठीक है — लेकिन भूल मत जाना, इनमें खो मत जाना!

न जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, किसी क्रियादि का कोई भेद नहीं है, 'क्योंकि वे उनके ही हैं, भगवान के ही हैं।'

'यतस्तदीयाः'।

भक्त तो भगवान का है, फिर हिन्दू कैसे हो सकता है, फिर मुसलमान कैसे हो सकता है, फिर ब्राह्मण कैसे हो सकता है, शूद्र कैसे हो सकता है?

'यतस्तदीयाः'।

'क्योंकि वे उनके ही हैं, भगवान के ही हैं।' भगवान के हो गये, फिर ये छोटे-छोटे खिलौने हैं, फिर ये छोटे-छोटे मंदिर-मस्जिद के झगड़े हैं, फिर ये छोटे-छोटे रंग और हड्डी और चमड़ी के फासले हैं।

जनक ने एक महासभा बुलाई। सभी पंडितों को आमंत्रित किया; सिर्फ एक आदमी को आमंत्रित नहीं किया — वह आदमी था: अष्टावक्र! वह अनूठा ज्ञानी था। लेकिन उसका शरीर आठ जगह से इरछा-तिरछा था — अष्टावक्र। इसलिए उसका नाम अष्टावक्र पड़ गया था — आठ जगह से तिरछा। सभा में यह आदमी शोभा न देगा; सम्राट की सभा में ऐसा कूबड़ निकला हुआ, सब तरफ से झुका, इरछा-तिरछा, एक हंसी-मजाक का कारण बनेगा — उसे नहीं बुलाया था। लेकिन अष्टावक्र के पिता को बुलाया था। कोई काम पड़ गया घर, तो अष्टावक्र बुलाने पिता को सभा में आ गया। जैसे ही वह

अन्दर आया, ब्रह्मज्ञानियों की सभा थी, वे सभी हंसने लगे उसकी चाल देखकर, उसकी कुरूपता देखकर! जनक भी थोड़े बेचैन हुए। लेकिन और भी हैरानी हो गयी, अष्टावक्र ने चारों तरफ देखा और वह इतने जोर से खिलखिलाकर हंसा कि सारे पंडित एक क्षण को तो अवाक रहकर ठिठक गये, यह उनकी समझ में ही न आया कि यह आदमी किसलिए हंसा!

जनक ने पूछा, 'ये किसलिए हंसते हैं, वह तो मैं समझा; लेकिन तुम किसलिए हंसे?'

तो अष्टावक्र ने कहा, 'मैं इसलिए हंसा कि तुमने तो ब्राह्मणों को बुलाया था, ये तो सब चमार हैं। ये चमड़ी के जानकार हैं! मुझको नहीं देखते, चमड़े को देखते हैं। मैं तुमसे कहता हूं, मुझसे ज्यादा सीधा इनमें से कोई भी नहीं है, बिलकुल सीधा हूं! शरीर तिरछा है, माना। इसलिए हंसता हूं कि इन चमारों को बुलाकर तुम ब्रह्मज्ञान की चर्चा करवा रहे हो। निकाल बाहर करो इनको!'

ठीक कहा अष्टावक्र ने। चमड़े से जो भेद करे, वह चमार।

भक्त तो भगवान के हैं। अब इससे और ऊपर होना क्या रहा! अब क्या और विशेषण रहा! सब विशेषण गिर गये।

तुमसे भी मैं यही कहता हूं: भगवान के हो रहो! मंदिर-मस्जिदों को छोड़ो, भूलो! फासले छोड़ो, मिटाओ! फासले तो तुम्हें आदमियों से भी न मिलने देंगे, परमात्मा से मिलने की तो बात दूर। कम-से-कम इतना तो करो कि आदमियों से ही मिलने की क्षमता बना लो, तो उससे सम्भावना पैदा होगी कि कभी तुम परमात्मा से भी मिल सकते हो।

परमात्मा को पाना हो तो अभेद की दृष्टि चाहिए, अभेद का दर्शन चाहिए।

'यतस्तदीयाः! वे भगवान के हैं!'

आज इतना ही।

एकांत के मंदिर में है भक्ति

अठारहवां प्रवचन

प्रश्नसार

- मैं बिलकुल अकेली हूं, बुढ़ापा भी आ गया है, पैर से अपाहिज हूं, नाच भी नहीं सकती ! क्या मेरे लिए आशा की कोई किरण सम्भव है ?
- आपको सुनकर तथा ध्यान करने से मेरी अज्ञात के प्रति आस्था जगने लगी है। क्या यह नए परिवेश का सम्मोहन तो नहीं ?
- वेद कुरान को त्याग कियो
  परित्याग कियो री पुरानन को
  कंत के नैन में ध्यान धर्‌यो
  ब्रह्मानंद सुनो सखि कानन को
  गुरुअन की शरणन् में कबहूं न गई
  मंदिर न चढ़ी नाही जोग लियो
  पर जोग को भान भयो री सखी
  जब प्यारे पिया संग भोग कियो।

  क्या यह भी कोई मार्ग है ?

पहला प्रश्न : घर-परिवार में होते हुए भी मुझे लगता है कि कोई अपना नहीं है, मैं बिलकुल अकेली हूं। साथ ही पाती हूं कि बुढ़ापा भी आने लगा, और रिक्त हूं, रूखी-सूखी हूं; प्रेम की एक बूंद भी मुझमें नहीं है। पैर से थोड़ी अपाहिज हूं, इसलिए शिविर में मन भर के नाच भी नहीं सकती। घर वाले आपको विशेष पसंद भी नहीं करते हैं। अब तो आपको सुनकर आंसू बहते हैं और कुछ सूझता नहीं कि क्या करूं! क्या मेरे लिए आशा की कोई किरण सम्भव है?

● पहली बात : अकेला होना मनुष्य का स्वभाव है। अकेला होना मनुष्य की नियति है। और जब तक अकेले होने को स्वीकार न करोगे, तब तक बेचैनी रहेगी। लाख उपाय करो कि अकेलापन मिट जाए, नहीं मिटेगा, नहीं मिटेगा। क्योंकि अकेलापन तुम्हारे भीतर की आन्तरिक अवस्था है, तुम्हारा स्वभाव है। ऊपर-ऊपर होता, निकालकर अलग कर देते।

अकेलापन सांयोगिक नहीं है; अलग किया ही नहीं जा सकता। अगर तुम्हारा अकेलापन तुमसे अलग हो जाए, उसी दिन तुम्हारी आत्मा खो जाएगी। आत्मा का होने का ढंग ही अकेला होना है। और जब तक तुम अकेलेपन को मिटाने की चेष्टा करोगे, तब तक हार और पराजय ही हाथ लगेगी। क्योंकि स्वभाव का अर्थ है, जो न मिटाया जा सके। कोई उपाय नहीं है। मित्र बनाओ, परिवार बसाओ, बच्चे हों, पति-पत्नी हों, समाज हो – सब थोड़ी देर को धोखा भला दे जाएं कि तुम अकेले नहीं हो, पर अकेला होना मिटता नहीं है। जब भी थोड़ी आंख भीतर करोगे, पाओगे : अरे! परिवार कहां दूर पड़ा रह गया; मित्र-प्रियजन, कितना बड़ा फासला है! आंख बंद की कि पाया कि अकेले हो गये। आंख खोलकर तुम अपने को भुलाये रहो भरमों में, डुबाये रहो हजार काम-धंधों में, व्यस्तता को ओढ़े रहो – लेकिन बार-बार क्षणभर को, घड़ीभर को तो विश्राम करोगे! क्षणभर को तो घर आओगे, भीतर प्रवेश करोगे! फिर वही स्वाद, फिर वही एकाकीपन!

गृहस्थ का अर्थ ही यही है : वह व्यक्ति जो संबंध बनाकर अपने भीतर के अकेलेपन को मिटाने की चेष्टा में संलग्न है। गृहस्थ की यह परिभाषा है। संन्यस्त की यह परिभाषा है कि जिसने यह जान लिया कि यह मेरा स्वभाव है, मिटाने में व्यर्थ समय न खोऊं; और जिसने अपने एकाकीपन को भोगना शुरू कर दिया – रस ले-लेकर; जो अपने एकाकीपन को दुश्मन की तरह नहीं देखता, बल्कि एकाकीपन

को ही जिसने अपनी शरण बना ली; संसार की धूप से, बेचैनी से बचने के लिए सदा अपने एकाकीपन में चला गया; जब भी थका बाहर, भीतर डूब गया; जब भी बाहर उलझा, उपद्रव हुआ, तब भीतर डूब गया; जब पाया कि बाहर जीवन गंदा हुआ जाता है, भीतर स्नान कर लिया एकाकीपन में, फिर ताजा हो गया!

ध्यान अर्थात एकाकीपन में रमने की कला।

एकाकीपन परम सुन्दर है। तुमने नाहक के भय पाल रखे हैं। उन भयों के लिए कोई वास्तविक कारण नहीं है – सांयोगिक कारण हैं।

बच्चा पैदा होता है, असहाय होता है। मनुष्य का बच्चा पृथ्वी पर सबसे ज्यादा असहाय है। जानवरों के बच्चे पैदा होते हैं, उठे और चल पड़े, जिंदगी की यात्रा शुरू हो गयी। जंगली जानवरों के बच्चे परिवार में नहीं पलते, बड़े होते, जन्म होते से मां-बाप भी मुक्त हो गये, वे भी मुक्त हो गये। आदमी के बच्चे को इतना मुक्त होने में कम-से-कम पच्चीस वर्ष लग जाते हैं। बच्चा तो असहाय पैदा होता है। आदमी के बच्चे को अगर छोड़ दो, कोई सहारा न हो, कोई परिवार न हो, कोई प्रेम करने वाला, देख-रेख करनेवाला न हो, तो बच्चा मर जाएगा, बच नहीं सकता। अगर आदमी के लिए परिवार न मिले तो आदमी इस पृथ्वी से समाप्त हो जाएगा। और सब जानवर रहेंगे – पक्षी रहेंगे, पशु रहेंगे, आदमी भर नहीं रहेगा।

आदमी का बच्चा बहुत असहाय है। मां-बाप की जरूरत है – वर्षों तक! आठ-दस साल का भी हो जाएगा, तब भी स्वतंत्र नहीं हो पाता। पढ़ाना है, पढ़ना है, शिक्षा पानी है – तब भी मां-बाप पर निर्भर होगा। तो करीब पच्चीस साल लगते हैं आदमी के बच्चे को उस जगह आने में, जहां जानवरों के बच्चे पैदा होते से ही होते हैं।

इस असहाय अवस्था के कारण ही परिवार का जन्म हुआ। इसलिए पशुओं ने परिवार नहीं बनाये, सिर्फ आदमी ने बनाये। पच्चीस साल तक बच्चा निर्भर रहता है – मां पर, पिता पर, भाई पर, परिवार पर – यह निर्भर रहने की आदत बन जाती है। छोटा बच्चा बहुत डरता है; अगर मां घर के बाहर जा रही हो तो वह बहुत भयभीत हो जाता है। उसका भय स्वाभाविक है। कौन उसकी चिंता करेगा! भूख लगेगी तो कौन दूध देगा! प्यास लगेगी तो कौन पानी देगा! कपड़े गीले कर लेगा अपने, तो कौन बदलेगा! सर्दी लगेगी तो कौन कंबल डालेगा! मां घड़ीभर को बाहर जाती है तो बच्चे को मृत्यु जैसा अनुभव होता है, यह तो मैं मरा! मां अगर ऐसे ही गुस्से में कह देती है कि मैं मर जाऊंगी, अगर तुम चुप न हुए, ऊधम बन्द न किया, तो मां को पता नहीं है कि बच्चे को कितना भारी धक्का पहुंचाया है उसने; क्योंकि मां की मृत्यु का अर्थ है उसकी भी मृत्यु। वह कैसे बचेगा!

पच्चीस साल तक इस तरह पर-निर्भर रहने के कारण, सदा दूसरे के साथ जीने के कारण, अकेलेपन की सामर्थ्य खो जाती है। फिर तुम अकेले होने में समर्थ भी हो जाते हो, लेकिन पुरानी आदतें पीछा करती हैं, छाया की तरह पीछे लगी रहती हैं। सत्तर साल के भी हो जाते हो, तब भी मुक्त नहीं हो पाते कि अकेले हो सको। मरते दम तक भी आंखें दूसरों को खोजती रहती हैं।

मरते हुए बूढ़े आदमी को देखो : खोजता रहता है, 'मेरा बेटा कहां है? अभी तक आया नहीं!'

अनेक बार ऐसा होता है कि बेटा दूर गांव है, आने में देर लगती है, तो बाप जिंदा बना रहता है जब तक बेटा नहीं आ जाता; जैसे ही वह आया, समाप्त होने की सुविधा बनी; अटका रहता है, पकड़े रहता है जीवन को, जद्दोजहद करता रहता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक... जन्म में तो समझ में आता है, फिर तो आदत की बात है।

ध्यान का अर्थ है : इन संस्कारों को जो बचपन से पड़ गये हैं, यह दूसरे का सहारा खोजने की जो गलत आदत पड़ गयी है — ध्यान का अर्थ है, इस आदत के ऊपर उठ जाना, और एक नये सूत्रपात का उदघाटन करना : 'मैं अकेला हो सकता हूं! और मैं अकेला हूं!'

तुम जितनी चेष्टा करोगे कि कहीं अकेला न रह जाऊं, उतना ही ज्यादा तुम अकेलापन अनुभव करोगे। जिस दिन तुम राजी हो जाओगे, स्वीकार कर लोगे कि यह तो स्वभाव है; मैं भी कैसा मूढ़ हूं, स्वभाव से लड़ने चला! स्वभाव से लड़कर कभी कोई जीता! हारता है बस! जिस दिन तुम स्वीकार कर लोगे, और तुम कहोगे, 'यह तो मेरी नियति है, तो इससे परिचय तो बना लूं! यह कौन है मेरे भीतर जो एकाकी है, जरा इसमें गहरे जाऊं, डुबकी लगाऊं, तलहटी तक खोजूं! यह कौन है जो भीतर अकेला है!' — और जैसे ही तुम भीतर की यात्रा पर चलोगे, तुम पाओगे कि मैं भी खूब पागल था, जो मैं खोजता था भीड़ में वह मेरे हृदय में था; जो मैं खोजता था संग में, साथ में, संबंध में वह असंगता में था; जिसको मैंने दूसरों के सामने झोली फैलाकर मांगा था, वह मेरे ही भीतर खजाना छिपा था!

एकाकीपन परम सुन्दर है। इसलिए जैनों ने अपने मोक्ष का नाम रखा : कैवल्य। बड़ा प्यारा शब्द चुना। कैवल्य का अर्थ है : बस अकेले; बस अकेलापन बचा, शुद्ध अकेलापन बचा; इतना अकेलापन बचा कि दूसरे तो हैं ही नहीं वहां, तुम भी नहीं हो; दूसरे तो गये ही, साथ-साथ तुम्हें भी ले गये। क्योंकि तुम जो अपने को समझते हो तुम हो, यह दूसरों का दान है; यह तुम हो नहीं। किसी ने कहा, 'सुन्दर हो बड़े', सम्हालकर रख लिया इस बात को, सुन्दर हो गये! किसी ने कहा 'बड़े बुद्धिमान हो,' सम्हाल ली, गठरी बांध ली भीतर कि मैं बुद्धिमान हूं! यह भी सब दूसरों का दिया हुआ है।

थोड़ी देर को सोचो तो, अगर तुम उस सबको छोड़ दो जो दूसरों ने तुम्हें दिया है, तुम्हारी प्रतिमा ही बिखर जाएगी। इसमें मित्रों का भी दान है, शत्रुओं का भी दान है; अपनों का भी दान है, परायों का भी दान है। तुम गठरी बांधते चले गये हो। और इसलिए तो तुम्हारी जो आत्मप्रतिमा है, बड़ी उलझी है, विरोधाभासी है, उसमें कोई संगति नहीं है, संगीत नहीं है, लयबद्धता नहीं है। क्योंकि कितने लोगों से तुमने इकट्ठा कर लिया है!

यह ऐसे ही है जैसे कि एक कार बनाई जाए, और तुम एक-एक पुर्जा जगह-जगह से इकट्ठा कर लाओ — कोई फोर्ड का होगा, कोई फियट का होगा, कोई राल्सरायस का होगा, ऐसे तुम कबाड़खानों से इकट्ठा कर लाओ सब कल-पुर्जे — और फिर उसको जोड़कर तुम कार बना लो, दिखायी पड़ेगी कि यह बन गयी, चलेगी नहीं। और भूलकर उसमें चढ़ना मत!

मुल्ला नसरुद्दीन के बेटों ने इस तरह की एक कार बना ली थी, और उन्होंने कहा, 'पापा! हम जा रहे हैं सैर को, तुम भी आ जाओ।' रंग-रोगन देखकर गाड़ी का वह भी बैठ गया। पर गाड़ी कोई रंग-रोगन से थोड़े ही चलती है! बोनट के नीचे जो छिपा है, उससे चलती है; वह तो दिखायी पड़ता

नहीं है। रंग-रोगन से कहीं गाड़ी चली है ! बैठ गया। गाड़ी दो-चार-दस कदम चली होगी कि हड्डी-हड्डी थरथरा गयी। रास्ते के बगल में जाकर गिर गयी खेत में, कलपुर्जे बिखर गये। मुल्ला अपने सिर से हाथ लगाकर बैठ गया। उसके बेटे ने कहा, 'पिताजी। चोट लगी है, तकलीफ हुई है ? डाक्टर के पास ले चलूं ?' उसने कहा, 'डाक्टर के पास क्या होगा ले जाने से ! वैटरनरी डाक्टर के पास ले चलो ! अगर अक्ल ही होती मुझ में तो तुम्हारी कार में बैठता ? पशु-चिकित्सालय में भरती कर दो। मेरा इलाज वहीं होगा।'

यही तुम्हारी प्रतिमा है। कुछ कहीं से तुमने इकट्ठा कर लिया है। और इसलिए तो तुम्हारे जीवन में संवाद नहीं है। मित्रों ने जो बातें कही थीं, वे भी भीतर पड़ी हैं; शत्रुओं ने जो कह दी थीं वे भी भीतर पड़ी हैं। किसी ने कह दिया, बहुत सुन्दर हो; किसी ने कहा कि तुम जैसा कुरूप आदमी नहीं देखा; किसी ने कहा कि तुम बड़े दाता हो, बड़े दानी हो; किसी ने कहा, कृपण, आखिरी दर्जे के कंजूस ! यह सब पड़ा है भीतर। अब तुमको खुद भी समझ में नहीं आता कि तुम हो कौन। तुम्हारी अपनी कोई पहचान सीधी-सीधी नहीं है, सब उधार है।

परम एकांत के क्षण में दूसरे तो होते ही नहीं, दूसरों ने तुम्हें जो धारणा दी थी तुम्हारे संबंध में, वह भी नहीं होती। तभी तुम्हारा स्वभाव प्रगट होता है।

एकांत में ही मंदिर है। एकांत में ही, परम एकांत में ही आत्म-साक्षात्कार है।

तो, पहली बात तो यह खयाल रखो...।

पूछा है, 'घर-परिवार में होते हुए भी मुझे लगता है कि कोई अपना नहीं है।' बिलकुल ठीक लगता है, शुभ लगता है, सत्य लगता है। मगर चेष्टा इससे विपरीत चल रही होगी। चेष्टा यह चल रही होगी कि किसी तरह यह एकाकीपन मिट जाए; वस्तुतः कोई मेरा हो ! बहुत लोग तुम्हें भरोसा भी दिला देंगे, 'हम तुम्हारे हैं'; लेकिन वह बस भरोसा है, सांत्वना है; तुम्हें संतोष बंधाया जा रहा है। जो अपने नहीं हैं वे तुम्हारे क्या हो सकेंगे ? और कोई किसी का हो कैसे सकता है ? कितना ही बेटा कहे मां से कि मैं तुम्हारा हूं, कल मां चल बसेगी, बेटा साथ नहीं जाएगा। कितना ही पति कहे कि सदा-सर्वदा का तुम्हारा हूं, पत्नी मर जाएगी तो पति साथ नहीं मर जाएगा। कौन किसके साथ जाता है ! ये सब बातें हैं – जरूरी हैं, क्योंकि आदमी बड़ा बेचैन है। उसे संतोष की शराब चाहिए; उसे अफीम चाहिए, ताकि वह सोया रहे; उसे ऐसा खयाल भर बना रहे कि सब अपने हैं। 'कितना भरा-पूरा घर है,' लोग कहते हैं। सब भरे-पूरे घर पड़े रह जाते हैं, जब विदा का क्षण आता है।

कोई अपना नहीं है, यह इतना बड़ा सत्य है कि इससे लड़ना मत। यही तो दुर्दशा है साधारण जन की, जो नहीं हो सकता उसे करने की चेष्टा करता है; जो हो सकता है, मात्र निर्णय लेने से जो हो सकता है, उसकी चेष्टा नहीं करता।

कितनी बार तुम सबको नहीं लगा है कि कितने अकेले हो, मगर फिर-फिर तुमने अपने को भुलाने की कोशिश की है ! क्यों इतने डरे हो अपने से ? जो भी तुम भीतर हो उसे जानना ही होगा ! सुखद-दुखद, कुछ भी हो, अपने स्वरूप से परिचय बनाना ही होगा, क्योंकि उसी परिचय के आधार पर तुम्हारे जीवन के फूल खिलेंगे।

देखो ! जिनके जीवन के भी फूल खिले हैं, वे सब किसी न किसी रूप में एकांत की तलाश में चले गये थे। खिल गये फूल, तब लौट आए बाजार में। लेकिन जब फूल खिले नहीं थे – चाहे महावीर, चाहे बुद्ध, चाहे मुहम्मद, चाहे क्राइस्ट – सब चले गये थे, दूर एकांत में। बाहर का एकांत तो भीतर के एकांत की खोज का ही सहारा है। बाहर का एकांत तो भीतर के एकांत को बनाने के लिए सुविधा जुटा देता है बस। असली एकांत तो भीतर है। लेकिन अगर बाहर भी एकांत हो तो भीतर के एकांत में डूबने में सुविधा मिलती है। जरूरी नहीं है कि कोई भागकर जाए, ठेठ बाजार में भी अकेला हो सकता है।

वस्तुतः तुम्हें हर बार लगता है कि अकेले हो, मगर उस अंतर्दृष्टि को तुम पकड़ते नहीं। वह अंतर्दृष्टि तुम्हारा जीवंत सत्य नहीं बन पाती, उलटे तुम उसे झुठलाते हो। तुम कहते हो, 'कौन कहता है मैं अकेला हूं ? पत्नी है, बच्चे हैं; घर-द्वार है, सब भरा-पूरा है !' भीतर तो देखो, पात्र खाली का खाली पड़ा है। ये प्रवंचनाएं हैं। इन प्रवंचनाओं से जागो !

तो मैं तुमसे यह नहीं कहता...। मैं तुम्हें कोई तरकीब नहीं बताता कि कैसे तुम्हारा अकेलापन मिट जाए – मैं तुमसे कहता हूं, कैसे तुम अकेलेपन को उत्सव बना लो, कैसे तुम्हारा अकेलापन तुम्हारे जीवन की संपदा बन जाए, कैसे तुम्हारा अकेलापन आत्मसाक्षात्कार का द्वार बन जाए।

छोड़ो बचना ! जीवन भर बहुत दौड़े; कहां पहुंचे ? अब वही हो रहो जो अपने आप होता मालूम पड़ता है। राजी हो जाओ। और राजी भी बे-मन से नहीं, थके मन से नहीं; राजी भी विषाद और हार में नहीं – राजी, सत्य को समझकर। क्या करोगे, दीवाल से अगर निकलने की कोशिश करते हो, सिर टकराता है। बहुत करके देख ली, सिर लहूलूहान हो गया है, अब दरवाजे से निकलो ! तुम यह तो न कहोगे कि दरवाजे से जो निकलता है, वह कमजोर है, कायर है; हम तो दीवाल से ही निकलेंगे; हम कोई कायर नहीं हैं ! मगर तुम दरवाजे से निकलनेवाले आदमी को कायर नहीं कहते, बुद्धिमान कहते हो। और दीवाल से टकरानेवाले को साहसी कहने की कोई जरूरत नहीं – वह मूढ़ है, बुद्धिहीन है। दीवाल से कभी कोई निकला ? निकलने के लिए द्वार है।

अकेलेपन से लड़कर कभी कोई नहीं जीता। जीतनेवाले अकेलेपनपर सवार हो गये; उन्होंने अकेलेपन का घोड़ा बना लिया; अकेलेपन को रथ बना लिया, उस पर सवार हो गये। और तब अकेलापन कैवल्य तक पहुंचा देता है; उस परम दशा तक, जिसको भगवान कहें, परमात्मा कहें, मोक्ष कहें, निर्वाण कहें – उस परम दशा तक पहुंचा देता है। अकेले ही तुम पहुंचोगे।

तो मैं जब तुमसे कहता हूं, अकेलेपन को स्वीकार कर लो, तो ध्यान रखना, स्वीकार करने का मजा तो तभी होगा जब तुम स्वागत से स्वीकार करोगे। ऐसे बे-मन से कर लिया कि ठीक है, चलो, नहीं होता तो चलो यही कर लेते हैं, तो कुछ भी न होगा। तब तुम्हारे इस बे-मन के पीछे तुम्हारी पुरानी आकांक्षा अभी भी सक्रिय है। तुम कोई न कोई उपाय खोजकर फिर अपने अकेलेपन को भरोगे।

गृहस्थ का अर्थ है : जो अपने अकेलेपन को भरने की कोशिश में लगा है। संन्यस्त का अर्थ है : जो इस सत्य को अंगीकार किया है कि अकेलापन है, भरा नहीं जा सकता – तो जीएंगे; तो हम इसे भोगेंगे; इसका स्वाद लेंगे; अगर है भीतर तो जरूर कुछ कारण होगा ! और कारण यही है कि

अकेलेपन की सीढ़ी परमात्मा से लगी है; उसी पर चढ़-चढ़कर एक-एक सोपान तुम परमात्मा तक पहुंच जाओगे।

जब तक तुम अपने अकेलेपन से बचोगे तब तक तुम संसार में उतरते जाओगे, और परमात्मा से दूर हो जाओगे। क्योंकि जितना तुम दूसरों से जुड़ोगे, उतने ही अपने से दूर होते जाओगे। और वह जोड़ वास्तविक नहीं है; वह जोड़ सिर्फ जोड़ का धोखा है, जोड़ का आभास है।

एक महिला मुझे मिलने आयी। पति से परेशान है। मगर पुरानी धारणाओं की है, तलाक भी नहीं दे सकती। पति दुष्ट है, मारता-पीटता भी है। जब आयी तो उसने अपने हाथ, पीठ बतायी। सब निशान पड़ गये हैं। लहूलुहान कर देता है पति जब मारता है। मैंने कहा, 'तू अलग क्यों नहीं हो जाती ?' उसने कहा, 'कैसे होऊं ? गठबंधन हो गया है !' – 'गठबंधन !'; उसने कहा, 'हां सात फेरे लग गये !' तो मैंने कहा, 'यह कोई बड़ी बात है ? पति को ले आ, सात उलटे फेरे लगवा देंगे। और क्या मामला है ? सात फेरे ही लगे हैं न ! उलटे लगवा देंगे, मामला खत्म ! गांठ कहां बंधी है ? आंचल से बंधी थी ? खोल देंगे ! किसी ने बांधी थी, हम खोल देंगे, तू ले आ। गांठ, है क्या मामला इसमें इतना ?'

लेकिन झूठे गठबंधन भी बड़े वास्तविक मालूम होने लगते हैं। सात चक्कर लगा लिये, अब क्या करें ! चक्कर में पड़ गये। उलटे लगा लो !

हम सारी व्यवस्था ऐसी करते हैं कि बंधन वास्तविक मालूम पड़ने लगें। इसलिए तो शादी का इतना शोरगुल मचाया जाता है – बैंड-बाजे, घोड़ा, दूल्हा, फूल-हार, मेहमान, उत्सव, मन्त्र, पूजा, हवन-यज्ञ – ये सब उपाय हैं ताकि पुरुष और स्त्री को यह पक्का हो जाए कि यह घटना कुछ ऐसी है कि इसको उलटाया नहीं जा सकता। कोई बड़ी महान घटना घट रही है ! यह मनोविज्ञान है। अगर शादी ऐसी ही कर दी जाए तो ज्यादा टिकेगी नहीं।

मैंने सुना है, एक युवक और युवती एक चर्च में अमरीका में भागते हुए अन्दर पहुंचे। पादरी से उन्होंने कहा, 'जल्दी करो। ये जो दो आदमी खड़े हैं, ये गवाह हो जाएंगे। और यह तुम्हारी फीस लो, विवाह करवा दो।'

पादरी ने कहा, 'देखो, तुमने कभी सुना नहीं कि जल्दबाजी का काम शैतान का' !

उन्होंने कहा, 'होगा, हमें फुर्सत नहीं, तुम जल्दी करो !'

तो पादरी ने कहा, 'ठीक है...।' उसने जल्दी उनकी शादी कर दी। उनके जाते वक्त उसको उत्सुकता हुई कि मामला क्या है ? इतनी जल्दी क्या है ? उन्होंने कहा, 'बाहर हम गलत जगह कार पार्क कर आये हैं।'

अब ऐसी शादी कोई ज्यादा देर टिकेगी ! इतनी जल्दबाजी में की गयी, तो बंधन का आभास ही गहरा नहीं होता। इसलिए तो पश्चिम में तलाक बढ़ता जाता है। शादी का पूरा मनोविज्ञान टूट गया है। उसके आसपास की सारी व्यवस्था उखड़ गयी है। तो सच्चाई साफ हो गयी है कि हम दोनों का दिल साथ होने का, तो साथ हो गये; अलग होने का, तो अलग हो गये – बंधन कहां है ?

ध्यान रखना जिन-जिन बंधनों को तुमने बंधन माना है, वे मान्यता के हैं। मैं नहीं कहता कि सब बंधन तोड़कर भाग खड़े होओ। जाना कहां है भागकर ? लेकिन जानते रहो कि बंधन सब खेल

हैं। पति रहो, पत्नी रहो, जहां पाया है अपने को, जहां खड़े हो वहीं रहो – लेकिन एक बात मन में साफ हो जाए कि सब बंधन व्यस्तता का खेल है। इससे हम अपने को भरते और भुलाते हैं। लेकिन अकेला होना हमारा स्वभाव है। साथ होना संयोग है; अकेला होना, स्वभाव है। संसार संयोग है; कैवल्य स्वभाव है।

'घर-परिवार में होते हुए भी मुझे लगता है, कोई अपना नहीं। मैं बिलकुल अकेली हूं।'

इस शुभ घड़ी का उपयोग कर लो। अकेली हो या अकेले हो, आनंद-भाव से छाती से लगा लो इस बात को। सब अशान्ति मिट जाएगी, सब बेचैनी मिट जाएगी। कौन अपना है! अपेक्षा मिट जाएगी। कोई भी अपना नहीं है, फिर भी लोग इतना कुछ कर देते हैं तो अनुग्रह है।

तुमने कभी खयाल किया, जिससे अपेक्षा होती है उसके प्रति अनुग्रह का भाव पैदा नहीं होता। राह पर तुम जा रहे हो, तुम्हारा रुमाल गिर गया और एक राहगीर ने उठाकर दे दिया, तुम बड़ा अनुग्रह अनुभव करते हो; तुम कहते हो, 'धन्यवाद! शुक्रगुजार हूं! बड़ी आपने कृपा की!' लेकिन यही रुमाल तुम्हारी पत्नी उठाकर दे दे या तुम्हारा पति उठाकर दे दे, तो तुम शुक्रगुजारी करोगे? तुम कहोगे धन्यवाद? कोई कारण ही नहीं, क्योंकि यह तो तुम कहते हो अपनी है, अपना है; यह तो करना ही था; यह किया तो कौन-सी बड़ी बात की!

जिसको तुम अपना मान लेते हो, उससे अपेक्षाएं हो जाती हैं। तो उसके कारण तुम दुखी तो होते हो, सुखी कभी नहीं होते। उसके कारण दुख होता है। जहां-जहां अपेक्षा टूटती है, वहां-वहां दुख होता है। लेकिन जहां-जहां अपेक्षा पूरी होती है, सुख नहीं होता! तुम कहते हो, 'यह तो अपना है। इसमें कौन-सी बड़ी भारी बात हो गयी कि रुमाल उठाकर दे दिया?'

अकेला जो जीने लगा, वह धीरे-धीरे अनुभव करेगा सारे संसार के प्रति अनुगृहीत है। कोई यहां अपना नहीं है; फिर भी लोग बड़े प्यारे हैं, हाथ में हाथ दे देते हैं; कहते हैं, 'चलो, अंधेरे में साथ हैं!' कोई अपना यहां नहीं है, फिर भी लोग ढांढ़स बंधाते हैं, साहस बंधाते हैं! कहते हैं, 'घबड़ाओ मत, हम तो हैं!'

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी तो वह खूब छाती पीट-पीटकर रोने लगा। पास-पड़ोस के लोग आए, उन्होंने कहा, 'रोओ मत!' मगर वह चुप ही न हो। लोगों ने कहा कि 'मामला क्या है? हमें तो यह पता भी न था कि तुम्हारा इतना प्रेम था इस स्त्री से, जिस तरह तुम रो रहे हो!' वह कहने लगा, 'इसलिए थोड़े ही रो रहे हैं...। अब पूछते हो तो बताए देते हैं। जब मेरी मां मरी तो अनेक स्त्रियां आईं और कहने लगीं, हम तुम्हारी मां हैं, कोई फिक्र न करो! जब मेरे पिता मरे, अनेक बूढ़े आ गये; कहने लगे, कोई फिक्र न करो, हम तुम्हारे पिता हैं! अब कोई नहीं आता। रो रहा हूं इसलिए।'

अनुभव करोगे तुम, अगर तुम्हारी अपेक्षा गिर जाए, कि जो भी थोड़ा-बहुत किसी ने कर दिया, वह भी न करता तो क्या करते? कोई जबरदस्ती तो न थी। कोई मांग और दावा तो नहीं हो सकता था। कोई कोर्ट-कचहरी तो नहीं की जा सकती थी।

'मैं बिलकुल अकेली हूं' – इस भाव को गहन होने दो। यही तुम्हारा मंत्र हुआ। इसे दोहराओ, गदगद होकर दोहराओ कि मैं अकेली हूं। और धीरे-धीरे इसका रस आने लगेगा, स्वाद जमेगा। इससे

बड़ी स्फुरणा होगी। जिन-जिन से दुख मिलता था, उन-उन से दुख मिलना बंद हो जाएगा। और जिससे कभी भी सुख मिलने की कोई आशा न थी, उससे भी सुख मिलने लगेगा। दृष्टि की बात है। लोग चारों तरफ बड़े प्रीतिपूर्ण मालूम होने लगेंगे, एक बार तुम्हारी अपेक्षा गिर जाए। तुम देखोगे, लोग भले हैं, साधु हैं। और जैसे ही यह बात तुम्हारे भीतर गहरी बैठ जाए कि अकेलापन स्वभाव है, द्वार खुला! क्योंकि तुम विश्राम की अवस्था में हो जाओगे – लड़ाई बंद हो गयी। तुम नदी की धार में बहने लगे – तैरना बंद किया अब! और तुम पाओगे कि नदी की धार कितनी प्यारी है! कंधे पर बिठाये तुम्हें ले जा रही है सागरों तक!

यह अकेलेपन की लहर परमात्मा तक ले जाती है, यह अनंत सागर तक ले जाती है। लेकिन अभागे हैं लोग! जिससे जीवन में प्रकाश उतर आता है, उसी द्वार को बंद किये बैठे हैं! रोते-चिल्लाते हैं झूठे खिलौनों के लिए!

'साथ ही पाती हूं कि बुढ़ापा आने लगा है और मैं रिक्त हूं! रूखी-सूखी हूं! प्रेम की एक बूंद भी मुझमें नहीं है!'

प्रेम को हम कुछ गलत ही ढंग से देखते रहे हैं। प्रेम कुछ ऐसा थोड़ी है जैसे कि बालटी में पानी भरा रखा है, कि हो तो पी लो, न हो तो क्या पियोगे! प्रेम कोई वस्तु थोड़े ही है, जैसे तिजोड़ी में धन रखा है; खोल लो, धन हाथ में आ जाता है। नहीं, प्रेम वस्तु नहीं है – प्रेम भाव है। यह कोई भरा थोड़े ही रखा है कि देने की मर्जी हुई तो दे दिया और न मर्जी हुई तो न दिया, और है ही नहीं तो देंगे कैसे! नहीं, प्रेम तो करने से आता है।

तुम अभी बैठे हो, चल नहीं रहे हो। अगर मैं तुमसे पूछूं कि तुम्हारी चलने की शक्ति का क्या हुआ, तुम कहोगे, 'सम्भावना है, शक्ति थोड़े ही है! अभी चलेंगे, चल पड़ेंगे! चलने लगेंगे तो चलने की शक्ति आ जाएगी। बैठे रहेंगे तो चलने का कोई कारण नहीं उठता।' तुम बैठे-बैठे यह तो नहीं कहते कि अब हम कैसे उठें, अब चलें कैसे, चलने की शक्ति कहां है, पहले इसका पक्का हो जाए।

चलना तो प्रक्रिया है। तुम चलो, उसी में पैदा होती है।

ऐसा ही प्रेम है; तुम प्रेम करो, उसी से पैदा होता है। ऐसा तो कोई है ही नहीं, जिसमें प्रेम की संभावना न हो। लेकिन तुम प्रेम करते ही नहीं। हम प्रेम मांगते हैं, देते नहीं। हमको लगता है, भीतर तो हम खाली हैं, दूसरों से ले-लेकर भर लें अपनी मटकी। मगर दूसरे भी तुम्हारी ही दशा में हैं; वे भी तुमसे अपनी मटकी भर लेना चाहते हैं। यह होगा कैसे? मटकियां टकराएंगी, खटर-पटर शोरगुल मचेगा – जो हर घर-गृहस्थी में मचा है। मटकियां टकरा रही हैं, कहते हैं कि बहुत बर्तन एक जगह रखो तो आवाज होगी ही।

प्रेम दान है। प्रेम कोई भिक्षा नहीं है कि किसी से मांग ली। और प्रेम कोई आज्ञा भी नहीं है कि किसी को दे दी कि करो प्रेम। और प्रेम कोई ऐसी चीज थोड़ी है कि तुम भीतर झांककर देखोगे तो वहां लबालब भरा हुआ मिलेगा। दो – उस देने में ही जगता है, देने में ही पैदा होता है, करने से ही आता है।

अगर मैं तुमसे कहूं कि 'चलो, नदी पर तैरना सीख लो, तुम कहोगे, मेरे पास तैरना तो है ही

नहीं। तो मैं तुमसे कहूंगा, तुम घबड़ाओ मत ! कौन तैरना है, किसके पास तैरना है ! बड़े से बड़े तैराक से कहो कि निकालो दिखाओ तुम्हारा तैरना, तो वह भी कहेगा, चलो नदी, तैरकर ही बताया जा सकता है। ऐसा कोई रखा हाथ में नहीं है, सन्दूक में बंद नहीं किया हुआ है कि गये और तुम्हें दर्शन करवा दिये।

प्रेम तैरने जैसा है। उतरो नदी में ! और कभी भी देर नहीं हुई है। आखिरी क्षण तक, जब तक आखिरी श्वास आ रही है, तब तक भी प्रेम हो सकता है। हाथ-पैर पंगु हो गये हों, खाट पर लग गये हो, आखिरी सांस आ रही है, आंख खोलकर तुम प्रेम से देख तो सकते हो किसी की तरफ। उसी में प्रेम पैदा हो जाएगा।

प्रेम की कला सीखो ! यह कोई संपत्ति नहीं है, कला है। वृक्ष को देखो तो प्रेम से देखो, कैसा हरा है ! कैसे फूल खिले हैं ! जरा पास जाओ, वृक्ष को छुओ – और तुम पाओगे, भीतर कोई सोया था, जगने लगा ! चांद-तारों को देखो, पत्थर-पहाड़ों को देखो ! सरोवर, सागरों को देखो ! मगर प्रेम से ! प्रेम तुम्हारी शैली हो जाए !

बहुत बड़ा कवि हुआ – मिलटन। किसी ने उसके संस्मरणों में लिखा है कि वह वस्तुओं को भी छूता था तो ऐसे जैसे उनमें व्यक्तित्व हो; जूता भी उतारता तो ऐसे प्रेम से भरपूर, जूते को भी धन्यवाद देता। देना चाहिए। कितने कांटों से नहीं बचा लिया है ! जूते का बड़ा उपकार है ! तुम आते हो, जूता ऐसा फेंकते हो जैसे एक झंझट मिटी। तुम्हारी दृष्टि में, तुम्हारे होने के ढंग में भूल है। अब तुम कहोगे, प्रेम है नहीं तो हम कैसे जूते को प्रेम से उतारें। मैं कहता हूं, तुम प्रेम से उतारकर देखो, तुम प्रेम को पाओगे ! तुम कहते हो, प्रेम होगा तो हम प्रेम करेंगे ! मैं कहता हूं, प्रेम करोगे तो प्रेम होगा ! शुरू करके देखो ! किसी का भी हाथ, हाथ में लेकर देखो !

एक एयर होस्टेस, एक परिचारिका मुझे कह रही थी। एक बूढ़ी महिला हवाई जहाज पर चढ़ी, पहली दफा ! और उस परिचारिका ने देखा कि वह बहुत घबड़ा रही है, नर्वस है, कंप रही है। पहली दफा अनुभव था। बूढ़ी महिला ! तो वह परिचारिका उसके पास गयी, उसकी कुर्सी पर बैठ गयी, उसके सिर को अपने हृदय से लगा लिया। तब तक जहाज ऊपर उठ गया, सब व्यवस्थित हो गया। धक्के आने बंद हो गये। इंजन संगीतपूर्ण रूप से चलने लगे। सब थिर हो गया। तो वह परिचारिका उठी। और जब वह जाने लगी तो बूढ़ी ने कहा, 'बेटी ! जब तुझे फिर डर लगे तो आ जाना !'

जब तुम किसी को प्रेम देते हो, तब अनायास दूसरी तरफ से भी प्रेम बहने लगता है। सुलगाओ, कहीं से भी सुलगाओ चिंगारी। लपटें फिर दूसरों में फैलती चली जाती हैं ! तुमने कभी किसी मकान में आग लगी देखी ! एक मकान में आग लगती है, सारा पड़ोस घबड़ा जाता है, क्योंकि लपटों का क्या भरोसा, फैलने लगती हैं। हवा पर सवार होकर छलांग लेती है लपट और दूसरे मकान को पकड़ लेती है।

प्रेम भी आग है। तुम जरा जलाओ ! तुम जरा चिंगारी उठाओ ! और सब तरफ से तुम्हारी लपट को बढ़ाने के उपाय होने लगेंगे। तुम जो करते हो, संसार उसी में तुम्हारा साथी हो जाता है। अब अगर तुम्हीं थके-मांदे बैठे हो कि कैसे चलना होगा, कैसे प्रेम करना होगा – है ही नहीं ! कौन लेकर आया है ? जन्म के साथ कोई प्रेम की तिजोड़ी साथ लेकर आता है ? संभावना लेकर आता है।

संभावना सभी की है और आखिरी श्वास तक है।

मैंने सुना है, एक आदमी राह से गुजरता था और एक भिखमंगे ने उसके सामने हाथ फैलाए। बूढ़ा, अंधा दुर्बल! उस आदमी ने जल्दी से खीसे में हाथ डाले, लेकिन वह अपना बटुआ तो घर ही भूल आया था। तो वह बड़ा मुश्किल में पड़ गया। वह पास बैठ गया, उसने बूढ़े का हाथ अपने हाथ में ले लिया और कहा, 'बाबा! खीसे में कुछ है नहीं, बटुआ मैं घर भूल आया।' उस बूढ़े ने कहा, 'छोड़ो भी! बटुए और खीसे की बात क्या? तुमने मुझे इतना दिया हाथ हाथ में लेकर, जितना कभी किसी ने मुझे नहीं दिया। जब कभी यहां से गुजरो, क्षणभर को अपना हाथ मेरे हाथ में दे देना, बस बहुत है!'

कौन किसी भिखमंगे का हाथ हाथ में लेता है! कोई पैसे ही देने की थोड़ी बात है — भाव की बात है!

जहां तुम्हें प्रेम करने का अवसर मिले, चूकना मत; नहीं तो चूकने की आदत मजबूत हो जाती है। अगर ज्यादा चूकते रहे तो चूकना तुम्हारा ढंग हो जाता है। प्रेम का रास्ता तब असंभव है। और हम जगह-जगह चूकते हैं।

प्रत्येक घड़ी को प्रेम की घड़ी बनाओ! कोई प्रेम के लिए परमात्मा ही उतरेगा आकाश से तब तुम प्रेम करोगे! तो जिस दिन परमात्मा उतरेगा उस दिन पाओगे कि प्रेम करना तो तुम जानते ही नहीं। इसका अभ्यास करो! जो मिल जाए, घड़ीभर का साथ हो जाए रास्ते पर किसी से, फिर तो रास्ते अलग हो जाएंगे, कोई गीत आता हो, गीत गुनगुनाकर सुना दो! कुछ न आता हो, आंख तो तुम्हारे पास है, प्रेम से गीली आंख से उसे देख लो! तुम उसके सपनों के हिस्से हो जाओगे। वह तुम्हारी याद करेगा, लौट-लौटकर तुम्हारी याद करेगा। और जब-जब तुम्हारी याद करेगा, भीतर तुम्हारे प्राणों में भी अज्ञात तार कंपेंगे; क्योंकि हम सब जुड़े हैं। हम अलग-अलग नहीं हैं।

प्रेम को फैलाओ!

प्रेम के संबंध में तुम बहुत कंजूस हो। लेकिन लोग समझते हैं, शायद यह कंजूसी बड़ी कीमत की है।

मैंने सुना है, एक बहुत धनवान स्त्री एक होटल में पहुंची। पांच-सात कारें सामान लदा हुआ! सब सामान नौकर-चाकरों ने उतारा। लेकिन एक कार में उसका बेटा बैठा है, उम्र होगी कोई तेरह-चौदह साल। और तब उसने कुलियों को और बुलाया कि उतारो मेरे बेटे को। तो एक कुली ने पूछा कि 'क्या अपंग है बेटा? यह तो बिलकुल स्वस्थ मालूम पड़ता है। चल नहीं सकता?' उस बूढ़ी ने कहा, 'चल सकता है, लेकिन उसे चलने की जरूरत नहीं, हमारे पास सब सुविधा है। चल सकता है, चलने की कोई जरूरत नहीं। हम कोई गरीब नहीं हैं।'

दो कुली उस स्वस्थ लड़के को कंधे पर उठाकर ले गये।

चलना भी गरीबों का काम है! कोई अमीर कहीं चलते हैं!

ऐसी ही भ्रांतियां हैं। प्रेम — हम सोचते हैं, कभी करेंगे! लेकिन जब तक प्रेम न करोगे तब तक क्या करोगे? कुछ तो करोगे! उस करने का अभ्यास प्रगाढ़ हो जाएगा। प्रेम में न होने की आदत

मजबूत अगर हो गयी, तो मुश्किल होगी। प्रेम कोई रूखा-सूखा नहीं होता; सिर्फ गलत आदतें...।

अभी भी देर नहीं हुई।

...'पाती हूं, बुढ़ापा आने लगा और मैं रिक्त हूं।'

अभी भी देर नहीं हुई। अभी भी आंख को गीला करो। अभी भी गीत को उठने दो। हमेशा प्रेम का उपाय है। और इतने लोग प्रेम के लिए भूखे और प्यासे हैं...! दो, कोई भी अवसर मिले, एक बात ध्यान रखो कि कैसे उसे हम प्रेम देने का अवसर बनाएं।

बुढ़ापा आता है, सभी का आता है। उससे घबड़ाओ मत! बुढ़ापे को समझ का समय बनाओ। क्योंकि बच्चे अबोध हैं, उन्हें कोई अनुभव नहीं, भोले-भाले हैं, लेकिन अनुभव-रिक्त हैं। उनका भोला-भालापन तो खत्म होगा, खराब होगा। वे तो उठेंगे, जिंदगी में जाएंगे। और जिंदगी व्यभिचारी है। वे बिगड़ेंगे। बिगड़ना ही पड़ेगा। वह बिगड़ना जरूरी पाठ है।

फिर जवान हैं। जवानों का मन तो बहुत-सी उत्तेजनाओं से भरा है। बहुत कुछ कर लेने का उनके दिमाग में फितूर है। जवानी एक फितूर है। जवानी एक विक्षिप्तता है, एक जोश, एक जुनून। तो अभी तो वे आकाश में उड़ रहे हैं। जवान, अभी उनके पैर जमीन से नहीं लगते। लगेंगे उनके पैर। क्योंकि जल्दी ही पता चलेगा, जवानी तो एक बुखार थी, आयी और गयी; एक उत्तेजना थी, एक उत्ताप था; हम नाहक ही उसमें भूल बैठे; अपने को कुछ का कुछ समझ लिया।

मैंने सुना है कि एक लोमड़ी सुबह-सुबह निकली, सूरज के उगते प्रकाश में उसकी बड़ी छाया बनी -- लम्बी छाया! उसने छाया की तरफ देखा और कहा, आज तो नाश्ते के लिए कम से कम एक ऊंट की जरूरत पड़ेगी -- इतनी बड़ी हूं! दिन भर खोजती रही, दोपहर हो गयी, कुछ मिला नहीं। सूरज सिर पर आ गया। उसने फिर देखा अपनी छाया की तरफ, वह सिकुड़कर बड़ी छोटी हो गयी। उसने कहा, अब तो एक चींटी भी मिल जाए तो भी काम चलेगा!

जवानी तो एक नशा है; छाया बड़ी लम्बी मालूम होती है। हर आदमी सिकंदर होना चाहता है। हर जवान सिकंदर होने के सपने देखता है। वह सपनों का समय है।

बुढ़ापा बड़ा बहुमूल्य है; बच्चों जैसा अनुभवहीन नहीं है, सारा अनुभव हो गया; जवानों जैसी विक्षिप्तता नहीं है! वह जोश-खरोश, वह पागलपन गया! चीजें ज्यादा थिर हो गयी हैं। दृष्टि ज्यादा थिर हो गयी है। समझ गहरी हुई है। इसका उपयोग करो।

बुढ़ापा सुन्दर है -- जवानी से ज्यादा। तभी तो परमात्मा जवानी के बाद बुढ़ापा देता है; वह ऊपर की सीढ़ी है। जवानी के अनुभव के बाद बुढ़ापा देता है; उसकी श्रेणी बहुत ऊंची है। बुढ़ापे के लिए तैयार होओ। उसका उपयोग करो।

लेकिन तकलीफ क्या खड़ी होती है, कि बूढ़े तुम हो जाते हो, लेकिन खोपड़ी में जवानी के सपने भरे रहते हैं। तो अड़चन होगी। अब अगर एक बूढ़ा व्यक्ति ऐसे प्रेम की आशा करता हो जैसा एक जवान को मिलता है, तो वह अड़चन में पड़ेगा। बूढ़े आदमी को और सौम्य प्रेम के मार्ग खोजने पड़ेंगे। उत्तेजना से भरे हुए नहीं। उसे वात्सल्य को जगाना पड़ेगा। उसका प्रेम वात्सल्य होगा। उसके प्रेम में करुणा होगी, शीतलता होगी; शोरगुल नहीं होगा, शांति होगी। उसका प्रेम करुणा जैसा होगा।

बुढ़ापे से घबड़ाओ मत। वह तो इस जिंदगी का आखिरी सोपान है; उसके बाद ही तो परम घड़ी आती है मृत्यु की।

घबड़ाओ मत कि बुढ़ापा आ गया, अब क्या होगा! क्योंकि इस जीवन का नियम कुछ ऐसा है –

मत बन सांस अधीर, सहारा
कोई और मिलेगा
रो मत मृदुल समीर, दुआरा
कोई और खुलेगा
प्रभु-पूजा का दीप, देह का
यह उपमान बहुत है
गंगाजल कहलाएं आंसू
यह सम्मान बहुत है
गा प्रभात का गीत, भीत हो
अंधियारा पिघलेगा।
मत बन सांस अधीर, सहारा
कोई और मिलेगा
रो मत मृदुल समीर, दुआरा
कोई और खुलेगा।

एक दरवाजा बंद हुआ नहीं कि दूसरा खुला नहीं! जवानी गयी तो बुढ़ापा आया! बचपन गया तो जवानी आयी! एक दरवाजा बंद होता है, दूसरा खुल जाता है। यह जन्म गया, दूसरा जन्म आया! यह जीवन गया, दूसरा जीवन आया! अंत तो है ही नहीं – यात्रा अनंत है। घबड़ाओ मत! मौत भी दरवाजों को बंद नहीं करती, नये दरवाजे खोलती है। और अगर तुम बुढ़ापे से राजी हो गये, तो तुम मौत से भी राजी हो जाओगे। बुढ़ापे से तुम राजी इसीलिए नहीं होते कि बुढ़ापा मौत की पगध्वनि है। बुढ़ापा कहता है, मौत आने लगी! बुढ़ापा कहता है, संभलो; कब्र पास आने लगी! बुढ़ापा कहता है, अब मौत के सिवाय कुछ भी न बचा, बस अब मौत ही है, मौत ही है।

लेकिन मृत्यु एक द्वार है : इस तरफ बंद होता है जीवन, उस तरफ खुलता है। घबड़ाओ मत, जीवन की यात्रा अनंत है। इस अनंत यात्रा में बहुत बार तुम बच्चे हुए, बहुत बार जवान हुए, बहुत बार बूढ़े हुए, बहुत बार मरे – मर-मरकर भी कहां मर पाते हो! जीवन बचता ही चला जाता है। हजारों मौतें पार कर लेता है और बचता चला जाता है। जीवन शाश्वत है, अमृत है।

ध्यान रखो, तुम न बूढ़े होते हो, न तुम जवान होते हो, न तुम बच्चे होते हो। तुम्हारे भीतर कोई समयातीत है, कालातीत है। तुम्हारे भीतर कोई अशरीरी है। ये सारे लक्षण तो शरीर के हैं – बचपन, जवानी, बुढ़ापा! यह तो सब मन का और तन का ही जाल है, और इसके भीतर छिपे तुम हो – निष्कलुष! निराकार! निस्सीम! निर्गुण!

एकान्त को साधो! ताकि तुम्हें अपना पता चलने लगे, तुम कौन हो! अमृत!

और घबड़ाओ मत। ऐसे बहुत घर पहले छोड़े हैं।

यह एक और घर
पीछे छूट गया
एक और भ्रम
जो जब तक था मीठा था
टूट गया
कोई अपना नहीं है कि
केवल सब अपने हैं;
हैं बीच-बीच में अन्तराल
जिनमें है झीने जाल
मिलाने वाले कुछ, कुछ दूरी और दिखाने वाले
पर सच में
सब सपने हैं।
यह एक और घर
पीछे छूट गया
एक और भ्रम
जो जब तक था मीठा था
टूट गया!

पर घबड़ाओ मत! रो मत मृदुल समीर, दुआरा कोई और खुलेगा, दुआरा कोई और खुलेगा!

'मैं पैर से थोड़ी अपाहिज हूं और शिविर में नृत्य करना कठिन होता है।'

नृत्य कोई शरीर की बात ही तो नहीं है — नृत्य तो आंतरिक घटना है। आत्मा तो कभी भी अपाहिज नहीं। तुमने कोई आत्मा देखी जो अपाहिज हो? नहीं शरीर नाच सकता, फिक्र छोड़ो — आंख बंद करो, तुम तो नाचो! तुम्हारे नाचने में शरीर क्या बाधा डालेगा? तुम्हारे होने में शरीर क्या बाधा डालेगा?

नृत्य तो एक भावभंगिमा है — प्रफुल्लता की, उत्सव की! जब कोई भक्त चलता है तो उसके चलने में भी नृत्य होता है। अभक्त नाचे भी, तो भी नृत्य कहां, शरीर की ही उछल-कूद होती है। उछल-कूद थोड़े ही नृत्य है।

माना, शरीर वृद्ध हुआ, अब नाच न सकोगे, छोड़ो! लेकिन भीतर कौन रोक सकता है?

अल्बर्ट कामू ने लिखा है कि तुम मुझे कारागृह में डाल सकते हो; मेरे हाथों में जंजीरें पहना सकते हो — लेकिन तुम मुझे बंदी न बना सकोगे। जंजीरें हाथ पर ही होंगी, मुझ पर न होंगी।

तुम पर कौन जंजीर डाल सकता है? यह शरीर के साथ तादात्म्य बहुत ज्यादा है, इसलिए ऐसी अड़चन आती है। तुम सोचते हो, नाचेंगे कैसे, शरीर तो अपाहिज है!

मेरी एक संन्यासिनी लंदन के अस्पताल में पड़ी है। भयंकर कार दुर्घटना हुई। कोई पैंतीस फ्रेक्चर

सारे शरीर में हुए। चिकित्सकों का खयाल है कि ठीक भी हो जाएगी, तो भी अब सामान्य न हो पाएगी। सभी कुछ टूट-फूट गया है भीतर। सिर्फ सिर को छोड़कर – सिर भर साबित है – बाकी सारा शरीर खंड-खंड हो गया है। सारे शरीर पर पलस्तर बंधा हुआ है। उसने मुझे लिखा कि मैं क्या करूं। उसे नटराज ध्यान बड़ा प्यारा था। जब वह यहां आयी थी तो दिल खोलकर नाची थी। तो मैंने उसे लिखा कि इससे क्या फर्क पड़ता है, यह तो एक और सुगम अवसर मिला। चौबीस घंटे बिस्तर पर हो, आंख बंद कर लो – और नाचो! नाचने का भाव करो। स्वप्न देखो नाचने का।

वही चकित नहीं हुई, उसके चिकित्सक भी चकित हुए। क्योंकि जिस दिन से उसने भीतर का नृत्य शुरू किया है, उसकी बाहर की शिकायतें भूल गयी हैं। वह उस अस्पताल में सबसे ज्यादा शांत हो गयी है। और उसने खबर भेजी है कि बड़े आश्चर्य की बात है कि शरीर जल्दी भर रहा है, ठीक हो रहा है।

वह जो कल्पना का आन्तरिक नाच है, वह सहयोगी बनेगा। भीतर जो घटता है उसके परिणाम शरीर पर आते हैं। शरीर पर जो घटता है, जरूरी नहीं है कि परिणाम भीतर जाएं। तुम नाच सकते हो बाहर से, भीतर कुछ भी न हो! लेकिन अगर भीतर नाच हो तो बाहर परिणाम होते हैं; क्योंकि केन्द्र पर जो घटता है उसकी तरंगें परिधि तक पहुंच जाती हैं। केन्द्र मूल है।

नाचो! नाचने में शरीर से कोई बाधा नहीं है। गाओ! गूंगा भी गा सकता है। दूसरे न सुन पाएंगे, यह बात जरूर सच है; लेकिन इससे गाने में क्या बाधा पड़ती है? नाचो, लंगड़ा भी नाच सकता है। दूसरे न देख सकेंगे तुम्हारा नाच, लेकिन तुम तो देख ही सकोगे। असली बात वहीं है।

तुम्हारा जीवन के प्रति दृष्टिकोण उत्सव का हो जाए। तुम इस जीवन को बोझ की तरह न ढोओ। इस जीवन में तुम ऐसे न चलो जैसे जबरदस्ती किसी ने पत्थर तुम्हारे सिर पर रख दिये हैं। बस नाच का इतना ही अर्थ है।

'घरवाले आपको विशेष पसंद भी नहीं करते हैं।'

कैसे करेंगे? क्योंकि यह नाता कुछ ऐसा है, बाकी सब नातों को पोंछ डालता है। इसलिए घर वाले किसी को भी पसंद नहीं करेंगे। एक प्रतियोगी आ गया! और कुछ ऐसा प्रतियोगी कि अब उनके बस चलाए न चलेगा। मेरे प्रेम में अगर तुम पड़े तो तुम्हारा पूरा परिवार बेचैनी अनुभव करेगा। क्योंकि हम सबका दृष्टिकोण ऐसा गलत है...।

समझो! कामवासना का एक अर्थशास्त्र है – वह अर्थशास्त्र यह है कि प्रेमी-प्रियजन नहीं चाहते कि संख्या बढ़ती जाए, क्योंकि फिर प्रेम बंटेगा तो भाग कम-कम पड़ेंगे। एक ही बेटा हो तो पूरी मां उसे उपलब्ध है; फिर दस बेटे हों तो मां दस हिस्सों में बंट जाती है। एक ही बेटा हो तो पूरा प्रेम का मालिक था। दस बेटे हैं – प्रेम कट जाता है। लेकिन यह प्रेम ही नहीं है। इसको मैं कामवासना कहता हूं; यह कामवासना का अर्थशास्त्र है। क्योंकि जितने ज्यादा दावेदार होंगे उतनी ही पूंजी बंटती चली जाएगी। एक बाप के दस लड़के हैं, पन्द्रह लड़के हैं, जब मरेगा तो सम्पत्ति टुकड़ों में बंट जाएगी, खेत के पन्द्रह टुकड़े हो जाएंगे। अगर एक ही बेटा होता, सबका मालिक हो जाता।

यह काम का अर्थशास्त्र है कि बांटने से चीजें कम होती हैं। इसलिए जितने भी काम के संबंध

हैं वे हमेशा भयभीत होते हैं कि कहीं और नये संबंध न बन जाएं। पत्नी देखती रहती है कि पति किसी स्त्री से दोस्ताना तो नहीं बढ़ा रहा है, कोई दोस्ती तो नहीं बढ़ा रहा है! झांकती रहती है किनारों से, कि रास्ते पर किसी को देखकर हंसा तो नहीं!

मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी के साथ बाजार से गुजर रहा था। एक बड़ी सुन्दर युवती ने हाथ हिलाकर मुल्ला को कहा, 'हलो!' घबड़ा गया मुल्ला! वह तो देख ही नहीं रहा था उस तरफ! पत्नी के साथ पति जब चलता है, इधर-उधर नहीं देखता। तब वह ऐसे चलता है जैसा बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा था कि बस, चार कदम... जमीन चार कदम देखकर चलना, इससे ज्यादा में खतरा है!

पत्नी तो ठिठककर खड़ी हो गयी। उसने कहा, 'क्या मामला है? यह कौन है स्त्री? इससे क्या नाता है?' नसरुद्दीन ने कहा, 'कोई नाता नहीं है, व्यावसायिक संबंध है।' पत्नी ने कहा, 'किसका व्यवसाय – तुम्हारा या उसका?'

पत्नी घबड़ायी है, कहीं कोई सौत न जन्म जाए, कहीं कोई प्रतियोगी न आ जाए! पति घबड़ाया हुआ है कि कहीं पत्नी किसी और के प्रति भी प्रेम को न बहाने लगे! अन्यथा, धारा कटेगी तो मेरे पल्ले कम पड़ेगा।

यह कामवासना का अर्थशास्त्र है। प्रेम का इससे कोई संबंध नहीं है, क्योंकि प्रेम की तो खूबी यह है कि जितना बांटो उतना बढ़ता है। प्रेम का अर्थशास्त्र तो यह है कि तुम जितना ज्यादा प्रेम करोगे उतना ही तुम्हारे प्रेमियों को ज्यादा मिलेगा।

अब इसे थोड़ा समझना।

अगर कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को ही प्रेम करता है, और संसार में उसके कोई प्रेम-संबंध नहीं हैं, न मित्रों से, न किसी से, कोई नाता नहीं है, मैत्री का तो पत्नी के पास तुम कितनी देर बैठोगे? चौबीस घंटे? दुकान भी करनी है, बाजार भी करना है। पत्नी के लिए हीरे-जवाहारात भी चाहिए, वे भी लाने हैं, बड़ा मकान भी बनाना है। घड़ी आधा घड़ी तुम पत्नी के लिए निकाल पाते हो, साढ़े तेईस घंटे तो तुम कहीं और रहोगे। और उन साढ़े तेईस घंटों में तुम न तो किसी की तरफ प्रेम से देखते, न किसी का हाथ प्रेम से हाथ में लेते, तो अप्रेम की तुम्हारी आदत हो जाएगी। और आधा घंटा जब तुम पत्नी के पास रहोगे, तब भी तुम पास रहोगे नहीं। तुम्हें प्रेम करना ही भूल गया। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे कि पत्नी कहे कि जब तुम मेरे पास रहो तभी सांस लेना, साढ़े तेईस घंटे कही सांस मत लेना; यह तो हद हो गयी कि मेरे बिना और तुम सांस ले रहे थे! तो जब पति घर तक आएगा, आएगा नहीं कंधों पर लाया जाएगा, अर्थी सज जाएगी! यही हो रहा है।

फिर जब तुम किसी को भी प्रेम नहीं कर पाते, जब तुम्हारा प्रेम सहज स्वभाव नहीं होता तो पत्नी से भी प्रेम होता नहीं, सिर्फ दिखावा होता है – और एक दुष्टचक्र पैदा होता है। क्योंकि पत्नी अनुभव करती है कि प्रेम मुझसे नहीं तो जरूर कहीं और होगा। वह और भी जाल फैलाती है, और पुलिस सिपाही लगाती है। वह सब तरफ से तुम्हें बंद कर लेना चाहती है, कहीं तुम और न दे आओ। और जितना ये पुलिस, पहरे लगते हैं, उतनी ही तुम्हारी सांस घुटने लगती है, प्रेम मरने लगता है।

प्रेम का अर्थशास्त्र काम के अर्थशास्त्र से बिलकुल उलटा है। प्रेम कहता है: बांटो। तुम जितना

बांटोगे उतना ही तुम जो तुम्हारे पास है, उनको ज्यादा दे सकोगे।

मेरे पास जब तुम आते हो तो तुम्हारे लिए जो एक महाघटना है, तुम्हारे परिवार की दृष्टि में दुर्घटना होगी। होगी ही। क्योंकि यह कोई साधारण प्रेम नहीं है। यह प्रेम कुछ ऐसा है कि तुम्हारा सारा परिवार बेचैन हो जाएगा, कि यह तो व्यक्ति हाथ से गया, अपना न रहा। जितना तुम्हारे मन में मेरी धुन बजेगी उतना ही वे पाएंगे कि फासला बढ़ा जा रहा है। वे सब बाधा खड़ी करेंगे, सब तरह का उपद्रव खड़ा करेंगे। वे हजार तरह की बातें करेंगे, तर्क देंगे। मैं उन्हें दुश्मन जैसा मालूम होने लगूंगा। लेकिन यह स्वाभाविक स्थिति है। इससे चिंता मत लेना।

एक ही बात खयाल रखना कि जब से मेरे प्रेम में पड़ो, तब से अपने प्रियजनों को और भी ज्यादा प्रेम करना, बस इतना ही तुम कर सकते हो। मेरे प्रेम के कारण कमी मत पड़ने देना, नहीं अन्यथा उनका भय सच हो जाएगा। मेरे प्रेम के कारण तुम्हारा प्रेम बढ़े तो कितनी देर तक वे अपने भय को पालकर रख सकेंगे, आज नहीं कल उनकी आंख खुलेगी; आज नहीं कल वे देखेंगे कि यह मां थी, और भी ज्यादा प्यारी हो गयी, पत्नी थी और भी ज्यादा प्यारी हो गयी; इतनी तो इसने देख-भाल कभी न की थी। संबंध तुम्हारा और भी रसपूर्ण हो जाए तो वही प्रमाण होगा कि वे गलती पर थे, तुम ठीक थे। लेकिन कहीं ऐसा न हो कि तुम भी उनकी भूल को सही सिद्ध करनेवाले बन जाओ, ताकि वे पीछे कहें, हमने पहले ही कहा था!

मैं किसी को किसी से तोड़ने को यहां नहीं हूं। मेरा तो सारा पाठ ही प्रेम का है — और प्रेम यानी जोड़ना। तो तुम अगर पति हो, तो और भी प्रेमपूर्ण पति हो जाना। तुम्हारा संन्यास तुम्हारे पति होने में किसी तरह की कमी न करे। तुम अगर पत्नी हो तो तुम पति के प्रति और भी लगाव से भर जाना। अपने स्नेह को चारों तरफ बरसा देना। अपने प्रेम के फूल पति के चारों तरफ उगा देना। तो तुम पति को भी ले आओगी मेरे पास। क्योंकि तब उसे एक नया अर्थशास्त्र दिखायी पड़ेगा जो प्रेम का है, काम का नहीं।

कामवासना वही प्रेम है जो क्षुद्र है और बांटे बंट जाता है, छोटा हो जाता है। प्रेम की संपदा तो अपार है।

उपनिषद कहते हैं, उस पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें, तो भी पूर्ण ही पीछे शेष रह जाता है। यह प्रेम का ही वक्तव्य है। प्रेम घटता ही नहीं, बांटे बढ़ता है; जितना उलीचो, बढ़ता है! कबीर ने कहा है, दोनों हाथ उलीचिए! कंजूसी उलीचने में मत करना।

'और आपको सुनकर आंसू बहते हैं।'

अच्छा है। कुछ लोग हैं जिनको मुझे सुनकर विचार चलते हैं। उससे यह लाख गुना बेहतर है कि मुझे सुनकर आंसू गिरते हैं। साफ है कि मेरी बात तुम्हारे हृदय तक पहुंची, तुमने मुझे सुना। चिंता मत करो। आंसुओं के कारण हम चिंतित हो जाते हैं, क्योंकि हमें सिखाया ही यह गया है कि आंसू तो दुख में आते हैं। तो किसी को तुम रोता देखते हो, तुम्हें यही खयाल आता है कि 'बेचारा, बड़ा दुखी! अन्यथा रोएगा क्यों?'

तुम्हें पता ही नहीं है कि आनंद में भी आंसू आते हैं। आंसुओं का कोई संबंध दुख-सुख से

नहीं है; आंसुओं का संबंध तो किसी भी ऐसी भाव-दशा से है, जो इतनी ज्यादा हो जाती है कि तुम बरस पड़ते हो, तुम उसे सम्हाल नहीं पाते। जैसे मेघ भर गया जल से तो बरसेगा। फूल भर गया सुगंध से तो सुगंध फैलेगी। दीया जलेगा तो रोशनी बंटेगी।

ध्यान रखना कि आंसू तो तुम्हारे भीतर के किसी अतिरेक की खबर लाते हैं; दुख हो कि सुख, इससे कोई संबंध नहीं है। लेकिन चूंकि आदमी दुख में ही रोता है – खुशी में तो रोने की बात दूर, लोग खुशी में हंस तक नहीं पाते। खुश होना भूल ही गये हैं हम। हम प्रसन्न होने की भाषा ही भूल गये हैं।

आंसू अगर मुझे सुनकर आते हैं – मंगलदायी है! प्रभु की कृपा है, प्रसाद है! उन आंसुओं को रोकना मत! उनको बहने देना। उन आंसुओं में बहुत कुछ कूड़ा-कर्कट तुम्हारा बह जाएगा। तुम पीछे ताजा अनुभव करोगे; जैसे स्नान हो गया हो। आंखों से कंजूसी मत करना। बहने दो आंसुओं को। ये आंसू भीतर उठती किसी रसधार की खबर हैं। बस इतना ही खयाल रहे कि इन आंसुओं को अपनी मस्ती बनाना, आनंद और अहोभाव से। यही तुम्हारी प्रार्थना है। अगर कोई ठीक से रोना ही सीख ले तो कुछ और नहीं चाहिए; क्योंकि रोते-रोते ही हंसना आ जाता है।

'और कुछ सूझता नहीं, क्या करूं?'

रोओ! आंसू से बड़ी और प्रार्थना कहां है! हृदयपूर्वक रोओ! आंसू निखारेंगे तुम्हें, बुहारेंगे तुम्हें; जो व्यर्थ है वह फिंक जाएगा, जो सार्थक है वह स्फटिक मणी की भांति स्वच्छ होकर भीतर जगमगाने लगेगा।

'और भगवान! क्या मेरे लिए आशा की कोई किरण सम्भव है?'

पूरा सूरज देने की यहां तैयारी है, किरणों की बात ही नहीं है। मुझको कंजूस समझा है?

दूसरा प्रश्न : भगवान! नास्तिक व साम्यवादी विचारों से प्रभावित होने के कारण मैं ईश्वर और आत्मतत्त्व को नकारता रहा। फिर आपका साहित्य पढ़ा तो तर्क-बुद्धि काम न पड़ी और यहां आ गया। अब आपको सुनने और ध्यान करने से अज्ञात के प्रति आस्था जगने लगी है और संन्यस्त होने का जी कर रहा है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं नये परिवेश से सम्मोहित हो गया हूं।

● नास्तिकता ठीक-ठीक तैयारी है आस्तिकता की। जो नास्तिक न हुआ वह कभी आस्तिक भी न हुआ। जो ठीक से नास्तिक हुआ वह आस्तिक हुए बिना रह न सकेगा। जहां नास्तिकता पूर्ण होती है वहीं आस्तिकता शुरू होती है।

इसलिए पहली बात : ऐसा मत सोचो कि पहले तुम नास्तिक थे और अब तुम कुछ विपरीत दिशा में जा रहे हो। नहीं, तुम्हारी नास्तिकता ही तुम्हें मेरे पास ले आयी है। यह मेरा अनुभव है हजारों लोगों पर काम करने के बाद, कि जो अपने को आस्तिक समझते हैं, वे करीब-करीब थोथे लोग हैं। और उनके साथ बड़ी मुश्किल होती है। उनका विकास बड़ा कठिन होता है। क्योंकि जो वे नहीं हैं वह उन्होंने अपने को मान रखा है, एक झूठ को पकड़ रखा है। यह तो ऐसे ही है जैसे बीमार आदमी

समझता हो कि मैं स्वस्थ हूं। अब इसका इलाज कैसे करोगे ? वह हाथ ही न रखने देगा। वह नाड़ी भी न पकड़ने देगा। वह कहेगा, मैं बीमार ही नहीं हूं। बीमार अगर जान ले कि मैं बीमार हूं तो ही इलाज हो सकता है।

करोड़ों आस्तिक हैं जो सोचते हैं कि आस्तिक हैं, पर आस्तिकता का अभी उन्हें कोई पता ही नहीं चला है। उधार आस्तिकता है – और धर्म उधार नहीं है। धर्म बड़ी नगद घटना है।

तो जिनको मैं पाता हूं कि वे नास्तिक हैं, मेरे पास आते हैं तो मैं प्रसन्न होता हूं। उन्होंने आधी यात्रा तो खुद ही पूरी कर ली है। थोड़े ही धक्के की जरूरत है, वे आगे निकल जाएंगे।

आस्तिक की भूल यह है कि वह अपने को आस्तिक बिना हुए आस्तिक समझता है। और नास्तिक की अगर कोई भूल हो सकती है तो वह एक कि वह नास्तिकता में ही अटक जाए, और सोचने लगे कि बस सब जान लिया, अब कुछ जानने को नहीं है।

जिन मित्र ने पूछा है, उनका हृदय खुला है, इसलिए मेरे पास आ सके। लेकिन अब थोड़ी और हिम्मत जुटाने का सवाल है। मेरी बात में रस आना एक बात है और मेरे रस को पकड़कर छलांग लगा लेना, रूपान्तरण करना बड़ी दूसरी बात है। मुझे सुन लेना अच्छा लगेगा। उतने से काम न होगा। मैं जो कह रहा हूं जब तक तुम्हारा दर्शन न बन जाए, मैं जो बता रहा हूं जब तक तुम न देख लो, जब तक तुम्हारा अनुभव भी मेरी गवाही न देने लगे – तब तक मन सन्देह उठाएगा, मन कहेगा, 'बात अच्छी तो लगती है, पता नहीं ठीक है या नहीं ! स्वादिष्ट तो लगती है, लेकिन स्वास्थ्यप्रद है या नहीं ! फिर कौन जाने, कहीं सम्मोहन तो नहीं हो गया !'

इतने गैरिक वस्त्रों में लोग – निश्चित ही एक परिवेश बनता है। उनकी मस्ती, उनका नाचना, उनके जीवन में आयी ताज़गी, तुम्हें भी लुभायमान करने लगती है, लुभाती है। फिर ध्यान, फिर मुझे सुनना – ये सतत चोटें ! तो मन कहेगा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि सम्मोहित हो गये हो !

लेकिन जरा इस मन से पूछो, जब यह मन नास्तिक हुआ था और जब यह कम्यूनिस्ट हुआ था, तब इसने तुमसे कहा था कि कहीं ऐसा तो नहीं कि सम्मोहित हो गये हो, परिवेश से ! इसने तब न कहा था। क्योंकि तब इसको कोई खतरा न था। नास्तिकता में मन मजे से जी सकता है। नास्तिकता मन के लिए ठीक-ठीक खाद है, चूंकि 'नहीं' कहना है। 'नहीं' कहना मन के लिए बड़ा सुगम है। 'हां' कहने में अड़चन आती है। 'नहीं' में संघर्ष है। संघर्ष से अहंकार मजबूत होता है। 'हां' समर्पण है। 'हां' कहने से अहंकार गिरता है।

तो मन अब हजार-हजार सवाल उठाएगा : कहीं सम्मोहन तो नहीं है ! मन यह कह रहा है, रुको ! जल्दी मत करो ! लेकिन ध्यान रहे, अगर जल्दी न की, तो मन कभी भी न करने देगा। वह कहेगा, कल ! कल कभी आता नहीं।

और फिर मैं तुमसे यह पूछता हूं, इतने दिन नास्तिक रहे, आस्तिकता इतनी जल्दी सम्मोहित कर लेगी ? हां, साधारण आस्तिक, जिन्होंने नास्तिकता जानी ही नहीं है, हो सकता है आसानी से सम्मोहित हो जाएं। लेकिन नास्तिक... । तुम तो लड़ रहे हो पूरी तरह मुझसे, फिर भी बाजी हारते चले जा रहे हो। तो मन कहता है, उलट दो बाजी, बंद ही करो खेल ! हार तो निश्चित हुई चली जाती है !

सम्मोहन का क्या अर्थ होता है? दूसरे जो कर रहे हैं, उनकी देखा-देखी कुछ करने लगो तो सम्मोहन है। दूसरों की देखा-देखी करने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारा ध्यान तुम्हें सुख दे रहा हो, मुझे सुनकर तुम्हें प्रकाश का कोई झरोखा दिखायी पड़ रहा हो, मेरे पास बैठकर तुम्हारे हृदय का कोई वातायन खुलता हो, हवा का ताजा झोंका आता हो – तो अपने सुख की सुनो, मन की मत सुनो।

मैं तुमसे यह कहता हूं, वस्तुतः दुखी रहने की बजाय सम्मोहित होकर सुखी रहना बेहतर है।

सम्मोहन यह है नहीं, अनुभव तुम्हें बताएगा। सजगता से, होशपूर्वक उतरो। अगर तुम्हारा आनंद बढ़ता जाए, तुम्हारा जीवन अनुभव सुस्पष्ट होने लगे, धुंधली-धुंधली छायाएं हटने लगें और प्रकाश पास आने लगे – तो अपने अनुभव की ही सुनना। लेकिन मुझे एक मौका दो। फिर तुम्हें लौट जाना हो, अनुभव के बाद, मजे से लौट जाना। यह इसलिए कहता हूं कि कोई कभी लौटता ही नहीं अनुभव के बाद। अनुभव के पहले सीढ़ियों पर ही सारी बातचीत है कि कहीं संदेह, सम्मोहन, कोई धोखा, पता नहीं क्या मामला है! ये लोग नाच रहे हैं, कही ये सब बने-बनाये न हों, सिखे-पढ़ाये न हों! कहीं ये सिर्फ तुम्हारे लिए ही नाच रहे हों कि अब तुम आ रहे हो, तो अब फांसने का इंतजाम किया हो!

नहीं, इनको तुम्हारा कोई पता भी नहीं है। ये अपने भीतर नाच रहे हैं। तुम भी नाचकर देखो! स्वाद लो!

मैं नहीं कहता, मुझ पर विश्वास करो! नहीं, मैं कहता हूं, मेरे साथ प्रयोग करो – सिर्फ प्रयोग! हाइपोथेटिकल! मुझ पर भरोसा करने की अभी जरूरत ही नहीं है। तुम्हारा अनुभव ही अगर भरोसा ले आए, तब बात दूसरी। जब अपनी ही आंख से देखोगे और जब अपने ही हृदय में अनुभव करोगे, तभी तुम्हारा मन छोड़ेगा – यह भाव, तर्क, विरोध कहीं सम्मोहन तो नहीं है।

मन तुम्हें दुख में रखना चाहता है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, 'बड़ा आनंद आ रहा है। एक बात पूछने आये हैं आपसे, यह सच तो है? आनंद उन्हें आ रहा है मगर शक है! शक यह है कि मन मान ही नहीं सकता कि तुम और आनंदित! असंभव है! कहीं कोई भूल हो रही है!

मन मान ही नहीं सकता, क्योंकि तुम्हारे सारे जीवन का अनुभव तो दुख का है; अचानक तुम्हें सुख मिल रहा है, कभी न मिला था, कहीं किसी ने सम्मोहित तो नहीं किया। कहीं कोई जालसाजी, कोई पड़यंत्र तो नहीं चल रहा है।

लोग इतने भयभीत हैं; और पास कुछ भी नहीं है सिवाय दुख के!

मेरे एक संन्यासी ने किसी बड़े राजनेता को मेरी एक किताब दी। तो उन्होंने किताब हाथ में न ली। वे कहने लगे, 'रुको, पहले दो-तीन बातों का जवाब दो। मैंने सुना है कि यह आदमी खतरनाक है और सम्मोहित करता है। यही नहीं, एक सज्जन ने तो यहां तक कहा है कि किताब भी मत पढ़ना, क्योंकि पढ़ते-पढ़ते कई लोग पागल हो गये हैं। और फिर उन्होंने कहा कि यहां तक मैंने सुना है कि किताब छूने में भी खतरा है।' किताब हाथ में नहीं ली और कहा कि बाबा बख्शो! बाल-बच्चे हैं। घर-द्वार हैं। इसमें न उलझाओ!

तुम्हारा संदेह सदा सुख पर आता है, दुख पर नहीं! जब तुम्हारे सिर में दर्द होता है, तब तुम

किसी से आकर नहीं कहते कि सुनो भाई, सिर में दर्द हो रहा है, सच है या झूठ ? तब तुम बिलकुल मान लेते हो। सिरदर्द को तुम बिलकुल मान लेते हो। क्योंकि दर्द का तुम्हारा अनुभव है। यह सुख बिलकुल ही अपरिचित है। इससे कभी मुलाकात ही न हुई थी। यह ताजा हवा का झोंका बिलकुल अजनबी है।

मैंने सुना है, स्वीडन का एक राजा दिनभर सोता था। अकसर राजे यह करते रहे अतीत में। रातभर नाच-गान चलता, पीना-पिलाना चलता और दिनभर सोना चलता। एक दिन कोई पांच बजे रात, छह बजे रात, महफिल समाप्त हुई। नींद उसे आ नहीं रही थी, तो वह अपने बगीचे में बाहर निकल आया। उसे बड़ी हैरानी हुई। उसने पूछा अपने पहरेदार को कि यह किस तरह की गंध हवा में है ? उसके पहरेदार ने कहा, 'महाराज ! यह गंध नहीं है, सुबह की ताजी हवा है।' जिंदगीभर तो कभी निकले नहीं; बस शराब की ही गंध को जानते थे। महफिल — उसी बंद दुनिया को जानते थे। सुबह की ताजी हवा... !

पहली दफा जब अनुभव होगा तो तुम अड़चन में पड़ोगे, यह स्वाभाविक है। लेकिन एक ही उपाय है, और वह उपाय यह है कि थोड़ा हिम्मत करो और प्रयोग करो। नास्तिक रहकर देख लिया, अब आस्तिक रहकर भी देख लो। गृहस्थ रहकर देख लिया, संन्यस्त होकर भी देख लो। गृहस्थ होकर कुछ भी न पाया। इतना तो मौका दो कि शायद किसी और आयाम पर संपदा पड़ी हो। नास्तिक रहकर कुछ न पाया। इतना ही क्या काफी नहीं है कि तुम अब आस्तिकता की तरफ प्रयोग कर लो ? प्रयोग के लिए लेकिन साहस चाहिए। और प्रयोग से ही संदेह जाएंगे। मैं विश्वास करने को कहता ही नहीं। मैं तो कहता हूं कि सत्य इतने करीब है, टटोलकर स्पर्श करके देख लो। आंख खोलो, सूरज निकल आया है। रोशनी सामने पड़ी है।

इस अंगीठी तक गली से कुछ हवा आने तो दो
जब तलक खिलते नहीं, ये कोयले देंगे धुआं।

तब तक संदेह चलता ही रहेगा। धुंए से ही घिरे रहोगे। एक मौका दो सुबह की हवा को। खोलो खिड़की-द्वार-दरवाजे ! आने दो हवा को ! शीघ्र ही अंगारे जब भभक उठेंगे, धुआं विलीन हो जाएगा।

धुआं आग से पैदा नहीं होता, धुआं तो पैदा होता है गीले ईंधन से। तो जब तक पूरी तरह आग पकड़ न लेगी, तब तक धुआं पैदा होता रहेगा। जब आग पूरी तरह पकड़ लेगी और लकड़ियां बिलकुल सूख जाएंगी उस आग में, तब धुआं नहीं पैदा होता; तब शुद्ध आग, स्वर्ण जैसी शुद्ध, निर्धूम... ।

जब तक तुम्हारे मन की लकड़ी गीली-गीली है, सूखी नहीं, तब तक शक-संदेह का धुआं उठता ही रहेगा। और प्रयोग के अतिरिक्त कोई और उपाय नहीं है।

मुझे सुन-सुनकर तुम कहीं भी न पहुंच पाओगे। मैं जो कहता हूं, वह प्यारा लगता है। लेकिन इतने से ही कुछ भी न होगा। मैं जो कहता हूं, वह तुम्हें सुख देता लगता है। लेकिन उससे तो तुम सिर्फ इशारा लो और आगे चलो। मैं तुम्हें जहां की खबर दे रहा हूं, जब तक तुम वहीं न पहुंच जाओगे, तब तक तुम शब्दों को इकट्ठा कर लोगे, लेकिन सत्य की प्रतीति न होगी।

गर मुझे इसका यकीं हो मेरे हमदम मेरे दोस्त
गर मुझे इसका यकीं हो कि तेरे दिल की थकन
तेरी आंखों की उदासी, तेरे सीने की जलन
मेरी दिलजोई मेरे प्यार से मिट जाएगी
गर मुझे इसका यकीं हो मेरे हमदम मेरे दोस्त
रूजो-शब शामो-शहर मैं तुझे बहलाता रहूं
मैं कुछ गीत सुनाता रहूं हल्के शीरीं
आबशारों के, बहारों के, चमनजारों के गीत
यूं ही गाता रहूं, गाता रहूं तेरी खातिर
गीत बुनता रहूं, बैठा रहूं तेरी खातिर
पर मेरे गीत तेरे दुख का मुदावा ही नहीं
नग्मा जर्राह नहीं, मूनिसो गमखार सही

मेरा गीत तुम्हारे जख्म न भर सकेगा, मलहम-पट्टी भला हो जाए। मेरा गीत तुम्हारी बीमारी की औषधि नहीं है। सांत्वना भले मिल जाए, सत्य न मिलेगा उससे। मेरे गीत में तुम सो मत जाना। यह कोई लोरी नहीं है। यह तुम्हें सुलाने के लिए नहीं, तुम्हें जगाने के लिए पुकार है, आवाज है।

मेरी बातें तुम्हें अच्छी लगती हैं – अच्छा है कि अच्छी लगती हैं, मगर इसे काफी मत मान लेना। जरूरी है; काफी नहीं है। थोड़ा और चलो! मेरी बात अच्छी लगी है – मेरे जैसे होकर भी देखो! तब असली द्वार खुलेंगे।

जीवन अवसर है जानने के लिए, घबड़ाओ मत। पगडंडियां अंधेरे बीहड़ में ले जाती हैं। लेकिन जिसको भी पहुंचना हो, पगडंडियों से ही पहुंचता है, राजपथ नहीं है। राजपथ पर भीड़ चलती है। यह तो जो मैं तुम्हें समझा रहा हूं, अकेले चलने का मार्ग है। इसमें तुम धीरे-धीरे परम एकांत को उपलब्ध हो जाओगे। वहीं तुम्हें पता चलेगा, क्या सत्य है, क्या झूठ है। इसलिए जल्दी निर्णय मत लेना। बाहर द्वार पर बैठे-बैठे निर्णय मत ले लेना। मेरा निमंत्रण है – महल के भीतर आओ!

अपने को पाने का अवसर
यूं ही न कहीं खो देना!
चुन लो सुर के सुमन, समय का
राग नहीं दब जाये
वर्तमान के लिए न गूंथो
गत की सूखी माला
तिमिर खोजने के लिए न है
दीपक का उजियाला
करो न धीमे चरण, मिलन का
क्षण न कहीं टल जाये

पूनम हो या अमा, सूर्य की
जननी रात रहेगी
शूल-फूल दोनों को छू कर
मलय बयार बहेगी
ढंको न अपने अयन, हृदय की
आग नहीं बुझ जाये
अपने को पाने का अवसर
यूं ही न कहीं खो देना
चुन लो सुर के सुमन, समय का
राग नहीं दब जाये !

मैं यहां हूं। जब तक हूं तब तक डूब लो ! जब तक हूं तब तक एक द्वार खुला है। हिम्मत कर लो ! शास्त्र तो सदा रहेंगे। मैं जो कहता हूं वह तुम फिर आगे भी पढ़ लोगे। किताबें रहेंगी। सोच-विचार खूब कर लेना पीछे। लेकिन अभी स्थगित मत करो। इतना क्या भय है ? इतनी क्या घबड़ाहट है ? क्या अपने पर भरोसा बिलकुल भी नहीं है कि जब संन्यास का भाव उठे तो तुम्हें यह भी पक्का नहीं है कि यह तुम्हारा भाव है कि दूसरों का देखकर उठ आया है ? तुम्हें क्या अपनी इतनी भी पहचान नहीं है ?

श्रद्धा जगे, तो भी तुम संदिग्ध हो ?

संदेह मिट जाएगा एक क्षण में, ऐसा मैं नहीं कहता हूं। और यह भी मैं नहीं कहता कि श्रद्धा तभी होगी जब संदेह मिट जाएगा। अगर ऐसा कहता तो असंभव थी बात। मैं कहता हूं, संदेह है, माना। संदेह के बावजूद श्रद्धा का जो नया अंकुर उठ रहा है उसे मौका दो ! फिर तुम तौल लेना बाद में। अगर तुम्हें लगे कि नास्तिक की 'नहीं' ज्यादा मुक्तिदायी थी आस्तिक की 'हां' से, वापस लौट जाना। पीछे तुम्हें लगे कि श्रद्धा से तो अश्रद्धा ही बेहतर थी — लौट जाना ! लेकिन दोनों का अनुभव तो कर लो, ताकि तुलना कर सको, ताकि विचार कर सको !

एक का तो तुमने अनुभव किया है — संदेह का, नास्तिकता का; अब दूसरे का अनुभव बिना किये निर्णय मत करो।

मुल्ला नसरुद्दीन गांव का काजी हो गया था। पहला ही मुकदमा आया, तो उसने एक पक्ष का वक्तव्य सुना और कहा, 'ठीक, बिलकुल ठीक !' कोर्ट का जो क्लर्क था, वह उठा, उसने पास आकर कहा कि महानुभव ! अभी तो आपने एक का ही वक्तव्य सुना है। अभी विरोधी को भी तो कुछ मौका दें। आप तो निर्णय ही देने लगे कि बिलकुल ठीक है !

नसरुद्दीन ने कहा, 'लेकिन उसमें तो मैं जरा भ्रम में पड़ जाऊंगा। अगर दोनों की सुनी तो कन्फ्यूजन पैदा हो जाएगा।'

मगर उसने कहा, 'यह तो नियम है कोर्ट का।'

उसने कहा कि चलो, ठीक। दूसरे से भी सुन ली। दूसरे की सुनी तो बोला, 'बिलकुल ठीक,

बिलकुल सत्य कह रहे हो।' वह क्लर्क बोला, 'आप यह कर क्या रहे हैं? पहले को भी ठीक कह दिया, दूसरे को भी ठीक कह दिया!'

नसरुद्दीन ने कहा, 'बिलकुल ठीक कह रहे हो।'

मौका दो! फिर शांत निश्चिंत मन से निर्णय करना। आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ कि जिसने नास्तिकता और आस्तिकता के दोनों अनुभव किये, उसने दुबारा नास्तिकता चुनी हो। यह हुआ ही नहीं। यह अपवाद भी नहीं हुआ एक। यह हो ही नहीं सकता। एक दफा परख आ जाए हीरों की, फिर कौन कंकड़-पत्थरों को ढोता है!

आखिरी प्रश्न : भगवान श्री!

वेद-कुरान को त्याग कियो
परित्याग कियो री पुरानन को
कंत के नैन में ध्यान धर्‌यो
ब्रह्मानंद सुनो सखि कानन को
गुरुअन की शरणन् में कबहूं न गई
मंदिर न चढ़ी नाही जोग लियो
पर जोग को भान भयो री सखी
जब प्यारे पिया संग भोग कियो!

कृपया बताएं कि क्या यह भी कोई मार्ग है!

● इसी की चर्चा चल रही है। यही तो परम मार्ग है। यही तो नारद के भक्ति-सूत्रों का सार है।

कुछ भी जरूरत नहीं है — न वेद की, न कुरान की, न जोग की, न तप की। किसी की कोई जरूरत नहीं है — न मंदिर की, न मस्जिद की। जरूरत है तो बस इतनी ही कि परमात्मा के प्रति समर्पण हो जाए, उस प्रेमी से नाता जुड़ जाए।

पर जोग को भान भयो री सखी
जब प्यारे पिया संग भोग कियो!

तभी योग का अनुभव होता है जब उस परम प्यारे के साथ भोग हो जाता है।

सब कुछ मौजूद है तुम्हारे भीतर, जरा-सी चिंगारी चाहिए।

एक चिनगार कहीं से ढूंढ लाओ दोस्तो
इस दिल में तेल से भीगी हुई बाती तो है!

तैयार है सब, बस जरा प्रेम की चिनगार पड़ जाए!

कुरान, वेद, पुरान — कितने लोग उन्हें पढ़ रहे हैं, क्या पाया? उनको गौर से देखोगे तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि शास्त्रों से कुछ भी होता नहीं। होता होता तो सारा संसार कभी रूपान्तरित हो गया होता! कितने शास्त्र हैं!

गजब है सच को सच कहते नहीं वो
कुरानो-उपनिषद खोले हुए हैं!

गौर से देखो जरा, कुरान और उपनिषद की छाया में कितना पाखंड चल रहा है। शब्दों के पीछे कितना धोखा पड़ा हुआ है!

भक्ति का शास्त्र इतना ही है कि उस परमात्मा के प्रेम में पड़ जाना ही सब कुछ है। जिसने प्रेम जाना, उसने सब जाना। और बाकी सब जानने में जो अपने को उलझाये रहा, उस सबको तो जान ही न पाएगा, प्रेम को भी न जान पाएगा।

प्रेम की कठिनाई यह है कि उसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता; इसलिए प्रेम का कोई शास्त्र भी नहीं बन सकता।

नारद के सूत्र भी बड़े तुतलाते-तुतलाते हैं। कहो कैसे!

एक खंडहर के हृदय-सी, एक जंगली फूल-सी
आदमी की पीर गूंगी ही सही, गाती तो है!

बस इतना ही समझ लेना कि प्रेम गीत से प्रगट हुआ है, नृत्य से प्रगट हुआ है। और कुछ कहने का उपाय नहीं है; इसलिए नारद कहते हैं, 'रोते हैं भक्त, कंठावरोध हो जाता है; आंखों से आंसू झरते हैं; एक-दूसरे से संभाषण करते हैं; उनके कारण ही यह पृथ्वी स्वर्ग की तरह पूज्य हो गयी है।'

भक्तों का सत्संग करो। तलाश करो उनकी जो 'उसके' प्रेम में पगे हों, ताकि तुम्हें भी वह प्रेम छू ले, तुम भी उसमें पग जाओ!

वस्तुतः आना अपने पर ही है। कितना बड़ा चक्कर लगाकर आते हो, यह तुम्हारी मर्जी। शास्त्रों से गये तो बहुत बड़ा चक्कर है; जबकि परमात्मा द्वार पर खड़ा था, सीधे ही तुम जा सकते थे।

हमीं थे क्या जुस्तजू का हासिल
हमीं थे क्या आप अपनी मंजिल
वहीं पर आ कर ठहर गया दिल
चले थे जिस राहगुजर से पहले!

तुम्हीं हो मंजिल; तुम्हीं हो मार्ग; तुम्हीं हो खोजनेवाले; तुम्हीं हो खोज; तुम्हीं हो खोजा जाने वाला सत्य!

नारद कहते हैं, त्रिभंग के जो ऊपर उठ गया – ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान; सेवक, सेवा, सेव्य – जो त्रैत के ऊपर उठ गया...। कौन उठता है उसके ऊपर? जो भी प्रेम में डूब जाता है, वही ऊपर उठ जाता है। तुम प्रेम में डूबो, प्रेम में मिटो!

प्रेम का शास्त्र ही एकमात्र धर्मशास्त्र है।

आज इतना ही।

विशेष :

ओशो दो दिन प्रवचन के लिए
उपस्थित नहीं हुए... !

प्रज्ञा की थिरता है मुक्ति

उन्नीसवां प्रवचन

सूत्र

वादो नावलम्ब्य ।।७४।।

बाहुल्यावकाशादनियतत्वच्च ।।७५।।

भक्तिशास्त्राणि मननीयानि तदुद्बोधक कर्माण्यपि करणीयानि ।।७६।।

सुखदुःस्वेच्छालाभादित्यक्ते काले प्रतीक्ष्यमाण क्षणार्द्धमपि व्यर्थं न नेयम् ।।७७।।

अहिंसासत्यशौचदयास्तिक्यादिचारित्र्याणि परिपालनीयानि ।।७८।।

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः ।।७९।।

स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान् ।।८०।।

त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी ।।८१।।

गुणमाहात्म्यासक्ति रूपासक्ति पूजासक्ति स्मरणासक्ति दास्यासक्ति साख्यासक्ति कान्तासक्ति वात्सल्यासक्त्यात्मनि वेदनासक्ति तन्मयतासक्ति परमविरहासक्तिरूपा एकधाप्येकादशधा भवति ।।८२।।

इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमताः
कुमारव्यासशुकशांडिल्यगर्गविष्णुकौण्डिन्य
शेषोद्धवारुणिबलिहनुमद्विभीषणादयो भक्त्ययाचार्याः ।।८३।।

य इदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसिति श्रद्धते स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभते इति ।।८४।।

एक तीर्थयात्रा आज पूरी होगी।

भक्ति कोई शास्त्र नहीं है – यात्रा है। भक्ति कोई सिद्धांत नहीं है – जीवन-रस है। भक्ति को समझकर कोई समझ पाया नहीं। भक्ति को डूबकर, भक्ति में डूबकर ही कोई भक्ति के राज को समझ पाता है।

नाच कहीं ज्यादा करीब है विचार से। गीत कहीं ज्यादा करीब है गद्य से। हृदय करीब है मस्तिष्क से।

इन बहुत दिनों भक्ति की लहरों में हमने आंदोलन लिया; बहुत तुम्हें रुलाया भी, क्योंकि भक्ति आंसुओं के बहुत करीब है। और जो रो न सके, वह भक्त न हो सकेगा। छोटे बच्चे की तरह जो असहाय होकर रो सके, वही भक्ति-मार्ग से गुजर पाता है।

भक्ति बड़ी सुगम है – लेकिन जिनकी आंखों में आंसू हों, बस उनके लिए। भक्ति बहुत कठिन है, अगर आंखों के आंसू सूख गये हों। और बहुत हैं अभागे संसार में जिनकी आंखों के आंसू सूख गये हैं; जिनके पास आंखें हैं, लेकिन आंखों में पानी नहीं रहा; जो देखते हैं, लेकिन गहरा नहीं देख पाते, क्योंकि आंखों से भी ज्यादा गहरा आंखों के आंसू देखते हैं। और जिनकी आंखों में आंसू नहीं रहे, उनकी आंखों के स्वच्छ होने की संभावना मिट गयी। आंसू तो स्नान करा जाते हैं; आंखों को बार-बार ताजा कर जाते हैं; धूल को जमने नहीं देते; विचार को टिकने नहीं देते; कूड़ा-कर्कट को बहा ले जाते हैं; आंखें फिर ताजी हो जाती हैं स्फटिक मणि की भांति, छोटे बच्चों की भांति; फिर संसार हरा और ताजा और नया हो जाता है। उस ताजगी से ही परमात्मा की खबर मिलती है।

भक्त का अर्थ है : जो रोना जानता है। भक्त का अर्थ है : जो असहाय होना जानता है। भक्त का अर्थ है : जो अपने ना-कुछ होने को अनुभव करता है।

अहंकार से भक्ति बिलकुल विपरीत है। इसलिए जो अहंकार की खोज पर चले हैं, वे कभी भक्ति को उपलब्ध न हो सकेंगे। परमात्मा को पाना हो तो स्वयं को खोना ही पड़ेगा।

यह खोने की यात्रा थी। यह राह बड़ी मधुभरी थी, बड़े फूल खिले थे! क्योंकि भक्ति के मार्ग पर कोई मरुस्थल नहीं है। तुम पैर भर रखो, पहला कदम ही आखिरी कदम बन जाता है। तुम पैर भर बढ़ाओ कि सौंदर्य अपने अनंत रूपों को खोलने लगता है।

परमात्मा को खोजना नहीं, अपने को खोलना है, ताकि परमात्मा तुम्हें खोज सके। इस भ्रांति में तो तुम रहना ही मत कि तुम परमात्मा को खोज लोगे। भक्ति का मूल आधार यही है कि परमात्मा तुम्हें खोज रहा है, तुम छुप क्यों रहे हो, तुम बचाये क्यों फिरते हो अपने को ? तुम उसे न खोज सकोगे, क्योंकि तुम्हें न उसका पता मालूम, न ठिकाना मालूम। और हाथ कितने छोटे हैं और आकाश कितना बड़ा है ! तुम मुट्ठियों में आकाश को बांध पाओगे ?

मनुष्य की सामर्थ्य क्या है ?

जिस दिन अपनी असामर्थ्य प्रतीत हो जाती है, उस दिन भक्त कहता है, 'अब तुझसे कहें भी क्या, तुझे खोजें भी कहां ?'

लिखें जो कुछ और तो हमारी मजाल क्या
इतना ही लिख के भेज दिया है — 'तरस गये'।

भक्त रो सकता है, तरस सकता है। शिकायत भी तो करने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि शिकायत भी सामर्थ्य की ही छाया है।

ये दिन बड़े अहोभाव के थे।

ये सूत्र अगर तुम्हारे हृदय में थोड़ी-सी भनक छोड़ जाएं और तुम्हारा गीत मुखर हो उठे...। वीणा तो तुम लेकर ही आये हो, लेकिन न मालूम कितने भयों से ग्रस्त हो, और परमात्मा को तुम्हारी वीणा को छूने नहीं देते।

थोड़ी हिम्मत चाहिए। थोड़ी मतवाली हिम्मत चाहिए। यह काम पागलों का है। परमात्मा को जिन्होंने पाया वे पागल थे। और पागल होने की सामर्थ्य नहीं हो तो परमात्मा की बात छोड़ देनी चाहिए। वह बुद्धिमानों का, समझदारों का, दुकानदारों का काम नहीं — पियक्कड़ों का है। और मैं खुश हूं कि पियक्कड़ धीरे-धीरे अब मेरे पास आने लगे हैं, मतवालों को धीरे-धीरे खबर मिलने लगी है।

स्वाभाविक है — जैसे कोई कुआं खोदता है तो पहले कंकड़-पत्थर हाथ लगते हैं, फिर कूड़ा-कर्कट निकलता है, फिर मिट्टी की परतें निकलती है, फिर जलधार आती है। अब जलधार आ गयी ! अब तो दीवानों से ही मुझे बात करनी है, क्योंकि वे ही केवल ले सकेंगे।

ये अंतिम सूत्र हैं नारद के।

'भक्त को वाद-विवाद नहीं करना चाहिए।'

ऐसा हिंदी में अनुवाद किया है। मूल संस्कृत का अर्थ तो इतना ही होगा : 'भक्त को वाद-विवाद नहीं।' वही ठीक है। 'करना चाहिए' की बात ही भक्त के लिए उचित नहीं है, क्योंकि 'करना चाहिए' में कर्ता आ गया, व्यवस्था आ गयी। तुम कुछ करोगे तो तुम मिट ना सकोगे। अगर तुमने कुछ किया तो तुम अपने ही विपरीत कुछ करोगे। वाद-विवाद उठता था और तुमने नियम बना लिया कि वाद-विवाद नहीं करना चाहिए, तो वाद-विवाद मिट थोड़े ही जाएगा — मत करो, छिपा रह जाएगा; मत लाओ बाहर, भीतर रह जाएगा — और भीतर रहे, इससे तो बेहतर था कि बाहर आ जाए। यह तो ऐसा हुआ जैसे रोग को भीतर छिपा लिया — नासूर बनेंगे उससे। यह तो मवाद को भीतर रख लेना हो जाएगा।

इसलिए मैं ऐसा अनुवाद न करूंगा कि भक्त को वाद-विवाद नहीं करना चाहिए। 'करना चाहिए' की बात ही भक्त नहीं जानता। कर्तव्य की भाषा ही भक्त की भाषा नहीं है — उसकी भाषा प्रेम की है।

'भक्त को वाद-विवाद नहीं' — बस इतना काफी है। क्यों नहीं ? ...क्योंकि जिसने जाना हो, वह विवाद कैसे करे ? विवाद तो टटोलने जैसा है — अंधेरे में कोई टटोलता है; रोशनी हो, फिर कोई टटोलता है ? अंधा टटोलता है रोशनी में भी; आंखें हों तो फिर कोई टटोलता है ? जिसे पता है, जिसे अनुभव हुआ है, जिसके जीवन में थोड़ी भी सत्य की किरण उतरी है, जो उस किरण के साथ थोड़ा नाचा है, रास रचाया है — वह वाद-विवाद करेगा ? उसके पास न तो कुछ सिद्ध करने को है, न किसी को असिद्ध करने की कोई आकांक्षा है। वह तो अपना प्रमाण है।

'भक्त को वाद-विवाद नहीं' — इसका अर्थ हुआ कि भक्त अपना प्रमाण है। वाद-विवाद तो वे करें जिसके पास अपना कोई प्रमाण नहीं है। विवाद का अर्थ यह होता है कि हमें अनुभव नहीं हुआ। भक्त से लड़ो, झगड़ो — भक्त कहेगा, आंखों में झांको मेरी; मेरे आंसुओं का स्वाद लो; मेरे साथ नाचो; ये मैंने घूंघर बांधे पैरों में, तुम भी बांधो; यह मैंने धूप-थाल सजाया, तुम भी अर्चना करो। जैसा मुझे हुआ, तुम्हें भी हो जाएगा; क्योंकि मुझ जैसे अपात्र को हो गया तो तुम जैसे पात्र को न होगा ?

भक्त यह कहता है कि मुझको हो गया, मुझ जैसे पापी को हो गया, तो तुम जैसे पुण्यात्मा को न होगा ? मैं तो कुछ भी न जानता था और परमात्मा मेरे द्वार आ गया, बस मेरी पुकार से आ गया; तुम तो बहुत जानते हो, तुम्हारी पुकार से न आयेगा ?

'भक्त को वाद-विवाद नहीं।'

वाद-विवाद का अर्थ है कि तुम्हारे जीवन में प्रमाण नहीं है, तुम कहीं और खोजते हो, परिपूरक प्रमाण खोजते हो। जो तुम्हारे पास नहीं है उसे तुम शब्दों से सिद्ध करना चाहते हो। जिसकी सुगंध तुम्हारे जीवन में नहीं है, तुम विवाद से समझाना चाहते हो कि है।

'भक्त को वाद-विवाद नहीं।' इसलिए नहीं कि यह कोई नियम है, बल्कि इसलिए कि यह असम्भव हो जाता है। प्रेमी क्या विवाद करे ? तुम मजनू से पूछो, लैला के संबंध में, वह विवाद न करेगा; वह लैला के सौंदर्य को भी सिद्ध करने की कोशिश न करेगा। वह तुमसे कहेगा, 'मजनू की आंखें पा लो। मैंने जैसा देखा है वैसा तुम भी देखो।'

'मजनू' देखने का एक ढंग है। 'भक्त' भी देखने का एक ढंग है। अंधे से क्या विवाद करोगे अगर प्रकाश सिद्ध करना हो ? अंधे को तुम विवाद से समझा सकोगे ? तुम जो भी प्रकाश के संबंध में कहोगे वह गलत ही समझा जाएगा। आंख जिसके पास नहीं है, कैसे समझाओगे उसे ? अंधा कहेगा, 'मैं सुन सकता हूं, तुम अपने प्रकाश को थोड़ा बजाओ, तो मैं उसकी धुन, आवाज सुन लूं।' अंधा कहेगा, 'मैं चख सकता हूं, तुम थोड़ा मेरी जीभ पर रख दो अपने प्रकाश को, ताकि मैं उसका स्वाद ले लूं।' अंधा कहेगा, 'मैं छू सकता हूं, मेरे पास लाओ। कहां है तुम्हारा प्रकाश ?' तुम कहते हो, 'मैं प्रकाश से घिरा हूं, चारों तरफ प्रकाश है। मैं अपने हाथ फैलाता हूं, कहीं प्रकाश का पता नहीं चलता।'

क्या करोगे तुम ? तुम थक जाओगे, हार जाओगे। अंधे को प्रकाश के संबंध में तर्क देने का कोई अर्थ नहीं है। अगर कुछ तुमसे हो सके तो अंधे की आंखों को ठीक करने की व्यवस्था करो।

जैसे तुमने अपनी आंखें ठीक कर ली हैं, उसी राह से उसे ले चलो।

चैतन्य के पास एक तार्किक विवादी आया। चैतन्य खुद अपनी युवावस्था में बड़े तार्किक थे, बड़े पंडित थे। बंगाल में उनकी ख्याति फैल गयी थी। पंडित उनसे थरथराने लगे थे। पर एक दिन उन्हें दिखायी पड़ा सारे पांडित्य का थोथापन। हरा दिया बहुतों को, लेकिन अपनी जीत तो पास न आयी। न मालूम कितनों को पराजित कर दिया, लेकिन खुद के जीवन में विजय की तो कोई दुंदुभि न बजी। तर्क-जाल खूब फैला लिया, हाथ में कोई संपदा न लगी। कांटों की तरह दूसरों को चुभने लगे, लेकिन जिंदगी में अपने फूल न खिले। यह बात एक दिन उन्हें समझ में आ गयी।

और ध्यान रखना, यह बात केवल परम बुद्धिमानों को ही समझ में आ पाती है। तर्क की असारता को देख लेना बड़े निष्ठापूर्ण, बड़े प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का लक्षण है।

उन्होंने सब तर्कजाल छोड़ दिया। लेकिन किसी को पता न था, कोई पंडित उनसे विवाद करने चल पड़ा था। वह आ गया। चैतन्य ने कहा, 'तुम जरा देर करके आये। अब हराने का मजा जाता रहा, क्योंकि हम जीत गये। अब तुम्हें हराएं भी क्या – अब हम तुम्हें हराए बिना जीत गये! अब हम जीते हुए हैं। थोड़ी देर कर दी आने में। अब हम खाली अंधेरे में टटोलते नहीं हैं – रोशनी मिल गयी है; गीत पकड़ लिया है – नाचते हैं! यह लो तंबूरा; नाचो!'

पंडित बोला, 'क्या पागल हूं मैं?'

चैतन्य ने कहा, 'लोगों को मैं तर्क के निमंत्रण देता था, वे तैयार रहते थे। वह शब्दों का नाच है। वे कोरे हवा के बबूले हैं। अब तुम्हें वास्तविक नृत्य का आमंत्रण दे रहा हूं – स्वीकार करो! क्योंकि ऐसे नाचकर मैंने उसकी छवि को खोज लिया है। जब नाच में मैं खो जाता हूं, तब वह प्रकट होता है। जब मैं मिट जाता हूं, तब वह आ जाता है। जब तक मैं हूं, तब तक द्वार बंद! जैसे ही मैं न हुआ कि द्वार खुल जाते हैं।'

'भक्त को वाद-विवाद नहीं।' क्योंकि भक्त को स्वाद मिल गया; अब वाद-विवाद में समय कौन खोए?

क्योंकर भूले भटके फिरते
भेद ढूंढ़ने जग नश्वर का
अंतरदीप जला कर देखो
मानव ही प्रमाण ईश्वर का।

ब्रह्मसूत्र का एक बड़ा बहुमूल्य सूत्र है, नारद के इस सूत्र से मेल खाता है : तर्क प्रतिष्ठानात – तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। यद्यपि साधारण जीवन में तर्क की ही प्रतिष्ठा दिखायी पड़ती है। जो जितना बड़ा तार्किक, उतना ही ज्ञानी मालूम पड़ता है। लेकिन परम ज्ञानियों ने कहा कि तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है।

तर्क की अप्रतिष्ठा को समझो। तर्क कुछ भी सिद्ध नहीं करता, सिद्ध करता मालूम होता है। क्योंकि जो भी तर्क सिद्ध करता है, उसी को तर्क से ही असिद्ध किया जा सकता है। इसलिए तो तार्किक सदियों-सदियों तक तर्क-विवाद करते रहते हैं, फैलाते जाते हैं जाल को – निष्कर्ष कोई हाथ नहीं आता।

पांच हजार वर्षों के दर्शनशास्त्र का इतिहास यह है : शून्य हाथ लायी है शून्य, कुछ भी हाथ आया नहीं है। कितने बड़े विवादी हुए, कितने बड़े तर्कनिष्ठ लोग हुए! तर्क की कैसी बाल की खाल निकाली! लेकिन ऐसा कोई तर्क आज तक नहीं दिया जा सका है जिसका विपरीत तर्क न खोजा सके। और ऐसा कोई भी तर्क नहीं है जो स्वयं को ही न काट दे!

हम जीवन में रोज-रोज तर्क देते हैं। कभी तुमने खयाल किया? कभी अपने ही तर्क के विपरीत खड़े होकर देखो, तुम तत्काल पाओगे कि तुम उसके विपरीत भी वैसा ही तर्क खोज लेते हो।

'तर्क प्रतिष्ठानात'।

मैं मुल्ला नसरुद्दीन के साथ बैठा था। उसका बेटा है कोई अट्ठारह-उन्नीस साल का, वह आया और उसने कहा कि पापा! और उसने अच्छा मौका देखा कि मैं बैठा हूं, मेरे सामने उसमें हिम्मत बढ़ी। उसने कहा कि अब मैं कालेज जा रहा हूं, तो अब तो कार खरीदनी होगी। तो बाप ने कहा, 'कार! तीन मकान छोड़कर तेरा कालेज है। और भगवान ने दो पैर किसलिए दिये है?'

उस लड़के ने कहा, 'एक ऐक्सीलरेटर पर रखने को, एक ब्रेक पर।'

तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। तर्क का करोगे क्या?

मुल्ला सोच रहा था कि बड़ा तर्क दिया उसने, कि भगवान ने दो पैर किसलिए दिये!

हम अपनी वासना के हित में ही तर्क खोज लेते हैं। जो तुम मानना चाहते हो, तुम मान लेते हो। हालांकि तुम कहोगे यह कि तर्कों से सिद्ध होता है, इसलिए मैंने माना। लेकिन अपने भीतर थोड़ा विश्लेषण करो, आत्मनिरीक्षण करो : तुमने माना पहले, तर्क पीछे खोजे। इसलिए तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है।

चोर मान लेता है कि चोरी करने का कारण है। बेईमान मान लेता है बेईमान होने का कारण है। वह कहता है, इस बेईमान संसार में ईमानदार तो जी ही नहीं सकता। चोर मान लेता है, सभी चोर हैं। हिंसक मानता है कि अहिंसा से तो कैसे जियोगे।

तुम जो मान लेना चाहते हो, मानते तुम पहले हो, तर्क तुम पीछे से जुटाते हो। तुम जरा निरीक्षण करोगे तो तुम्हारी समझ में आ जाएगा कि मान्यता पहले उठती है या तर्क पहले उठता है। तर्क तो सिर्फ अपने को समझाना है कि मैं विचारशील हूं। वासना निर्बुद्धिपूर्ण मालूम होती है। तर्क वासना को बुद्धिमत्ता का आभास देता है। जिसे ईश्वर को मानना है वह ईश्वर के पक्ष में तर्क खोज लेता है। जिसे ईश्वर को नहीं मानना है, वह ईश्वर के विपक्ष में तर्क खोज लेता है। और दोनों का विवाद चलता रहे, विवाद का कभी कोई अंत नहीं आता — आ ही नहीं सकता, क्योंकि भीतर गहरे में विवाद है ही नहीं, उन्होंने पहले मान ही रखा है।

तर्क तो केवल ऊपर की सजावट है। उसके बदल देने से कुछ भी न बदलेगा। इसलिए कोई भी तुमसे कितना तर्क करे, कुछ भी सिद्ध नहीं कर पाता। तुम्हें तर्क में हरा भी दे, तो भी तुम भीतर यही भाव लेकर जाते हो कि ठहरो, थोड़ा सोचने का मौका दो, कोई रास्ता खोज लेंगे। तर्क से कभी कोई पराजित हुआ है? तर्क से कभी कोई हारा है? तर्क से कभी कोई जीता है? दूसरे का मुंह बंद कर सकते हो, अगर तुम्हारा तर्क थोड़ा ज्यादा प्रबल है; लेकिन तुमसे प्रबल तार्किक मिल जाएगा और

तुम्हारा मुंह बंद कर देगा।

ब्रह्मसूत्र का यह वचन हजारों साल के अनुभव का सार है : तर्क प्रतिष्ठानात — तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है।

कठोपनिषद में भी एक वचन है : नेषा तर्केण मतिरापनेया — तर्क से, बुद्धि से 'उसकी' उपलब्धि नहीं है। क्योंकि बुद्धि से तो तुम वही पा सकते हो जो तुमने जाना ही हुआ है। बुद्धि नये का कोई आविष्कार नहीं करती। बुद्धि तो जुगाली है; जैसे भैंस घास चर लेती है, फिर बैठकर जुगाली करती रहती है। बुद्धि पहले तो यहां-वहां से इकट्ठा कर लेती है, फिर उसी को दोहराती रहती है, पुनरुक्ति करती रहती है, साफ करती है; निखारती है, सजाती-संवारती है, रूप-रंग देती है, सुंदर बनाती है, व्यवस्था देती है — लेकिन बुद्धि नये को कभी भी नहीं जानती। बुद्धि मौलिक नहीं है। बुद्धि से कभी अज्ञात का कोई पता नहीं चलता — और परमात्मा परम अज्ञात है; वह परम रहस्य है! तुम्हारी बुद्धि के कारण ही तुम उसके पास नहीं पहुंच पाते हो।

'भक्त को वाद-विवाद नहीं।'

'क्योंकि बाहुल्य का अवकाश है वाद-विवाद में और वह अनियत है।'

बाहुल्य का अवकाश है...। कितना ही फैलाते चले जाओ, वह फैलता ही चला जाता है। ऐसी कोई सीमा ही नहीं आती जहां तुम कह सको, तर्क पूर्ण हुआ। ऐसी कोई जगह नहीं आती जहां सब प्रश्न गिर जाते हों और आत्यंतिक उत्तर हाथ में आ जाता हो। तुम सिर्फ प्रश्नों को पीछे हटाये चले जाते हो। कोई कहता है, 'जगत किसने बनाया ?' तुम कहते हो, 'ईश्वर ने बनाया।' वह पूछेगा 'ईश्वर को किसने बनाया ?' अब क्या करोगे ? कहोगे, 'और किसी महा-ईश्वर ने बनाया।' वह पूछेगा 'उसको किसने बनाया ?'

बाहुल्य का अवकाश है...।

कोई आदमी चोरी करता है, बेईमान है, दुखी है, परेशान है — तुम कहते हो, पिछले जन्मों का फल भोग रहा है। पिछले जन्मों में क्यों उसने ऐसे कर्म किये थे ? कहो, 'और पिछले जन्मों में कर्म किये थे।' मगर इससे क्या हल होगा ? कहीं तो जाकर रुकोगे ? कभी तो इसने शुरुआत की होगी ? शुरुआत कैसे हुई थी ? तो इतना बाहुल्य करने की जरूरत क्या थी ? बात तो वहीं की वहीं खड़ी रही, प्रश्न वहीं का वहीं रहा — उत्तर कोई हाथ आया नहीं।

तुम दुखी हो, कोई समझा देता है कि पिछले जन्म के पाप-कर्म के कारण दुखी हो; तुम संतोष कर लेते हो कि चलो ठीक है। लेकिन तुम पूछो, 'पिछले जन्म में क्यों पाप-कर्म किये ?' और उस आदमी के पास सिवाय इसके कोई उत्तर न होगा कि उसके पिछले जन्म में तुमने कुछ और किया था। खींचते जाओ, कहां पहुंचोगे ? कितने ही जन्मों के बाद प्रश्न वहीं का वहीं रहेगा।

तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। बुद्धि से दिये गये उत्तर उत्तर नहीं हैं, उत्तरों का आभास है। उनसे धोखा होता है कि उत्तर मिल गया। और जिसको धोखा हो गया कि उत्तर मिल गया, वह जीवन को व्यर्थ ही गंवाने लगता है, क्योंकि उत्तर की खोज बंद हो जाती है। उत्तर तो ऐसा चाहिए जिसके मिलते ही सब हल हो जाए, सारी ग्रंथियां सुलझ जाएं। इसलिए परमात्मा के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं

है। और परमात्मा का उत्तर बुद्धि का उत्तर नहीं है। अत्यंत शांत अवस्था में जहां बुद्धि की सारी तरंगें सो जाती हैं, जहां हृदय प्रेम से लबालब होता है, जहां हृदय की प्याली प्रेम को बहाती है – उन घड़ियों में, तर्क से नहीं, भाव से; विचार से नहीं, प्रार्थना से; सोचने-समझने से नहीं, मतवालेपन से...! जो प्रभु की मधुशाला में पीकर नाचने लगते हैं, केवल उनको...!

लेकिन कठिनाई है, दुनिया तुम्हें पागल कहेगी।

अमरीका का एक बहुत प्रसिद्ध कवि है : एलिन गिन्सबर्ग। कुछ दिन पहले मैं उसका जीवन-चरित्र पढ़ता था। वह कोई अट्ठाइस साल का था। भावपूर्ण व्यक्ति है, कवि है, महाकवि है। बुद्धि से कम, हृदय और भाव से ज्यादा जिया है। एक सांझ सूरज डूबता था और वह अपनी खिड़की के पास अपने बिस्तर पर लेटा विश्राम करता था। विलियम ब्लेक की कुछ पंक्तियां उसके मन में दोहर रही थीं। वह उन्हीं को सोचता-सोचता-सोचता सूरज का डूबना देखता रहा। सांझ हो गयी, पक्षियों के गीत चुप हो गये। अचानक उसे ऐसा आभास हुआ, उसे कुछ झलक मिली; जैसे परमात्मा ने उसे छुआ; जैसे कोई हाथ आया खिड़की से अंदर। उसे स्पर्श हुआ, घबड़ाया! लेकिन इतना सुखद था स्पर्श कि घबड़ाहट को एक तरफ रख दिया और पड़ा रहा। आंख बंद की तो भी स्पर्श मालूम होता रहा, आंख खोली तो भी स्पर्श मालूम होता रहा। इतना प्रगाढ़ हुआ स्पर्श कि उसे लगा कि परमात्मा का अनुभव हुआ है। और बात इतनी गहरी गयी कि उसने उठकर अपनी किताब पर लिखा कि अब चाहे सारी दुनिया कहे कि ईश्वर नहीं है, तो भी मैं कहूंगा कि ईश्वर है; मैंने उसे जाना है। और मैं इस घड़ी को कभी न भूलूंगा। लाख मेरी बुद्धि कहे, तो मैं कसम खाता हूं, तो भी मैं इस अनुभव को कभी झुठलाऊंगा न। हो सकता है, मेरी बुद्धि फिर पुराने तर्कजाल उठा ले, इसलिए आज कसम खाता हूं इस क्षण में कि मैं परम आस्तिकता को उपलब्ध हुआ, ईश्वर है।

लेकिन जैसे ही वह लिख रहा था, वैसे ही तर्क और संदेह उठने शुरू हो गये। असल में तर्क और संदेह तो पहले ही उठ आए होंगे, तभी तो यह कसम ली; तभी तो यह लिखा, नहीं तो लिखने की जरूरत क्या थी? यह भविष्य का संदेह झांक गया, मन को कंपा गया। स्पर्श छूट गया उस परम शक्ति का, लेकिन फिर भी छाया डोलती रही। लिखकर वह बाहर आया। उसके मन को हुआ, किसी को कह दूं; शायद इस क्षण कोई दूसरा भी मुझमें पहचान ले कि कुछ हुआ है। क्योंकि वह जमीन पर चलता हुआ मालूम नहीं हो रहा था – जैसे इंद्रधनुषों पर उड़ा जा रहा हो, आकाश के मार्ग पर हो, जमीन की सारी कशिश खो गयी है; जैसे गुरुत्वाकर्षण न रहा!

वह भागकर अपने पड़ोस में गया। दो लड़कियां अपने दरवाजे पर खड़ी बात कर रही थीं, उसने कहा, 'सुनो, ईश्वर है! मुझे उसका अनुभव हुआ है। खिड़की से उसने हाथ डाला है और मुझे छुआ है।' उन दोनों ने जल्दी से दरवाजा बंद कर लिया कि यह कौन पागल है। वे उसे पहचानती थीं; लेकिन अब तक इतना ही खयाल था कि कवि है, लेकिन आज बिलकुल गया! उन्होंने घबड़ाहट में दरवाजा बंद कर लिया। इसने दरवाजे पर दस्तक दी तो उन्होंने खिड़की से कहा, 'हट जाओ, नहीं तो पुलिस को खबर कर देंगे।' इसने कहा, 'परमात्मा का अनुभव और पुलिस को खबर!'

अपने एक मित्र को, जो कि मनोचिकित्सक था, इसने फोन किया, कि वह तो शायद समझ सकेगा,

मन के संबंध में इतना जानता है। उसने फोन किया कि मुझे परमात्मा का अनुभव हुआ है। अब थोड़ा डरा हुआ था, क्योंकि लड़कियों ने जो व्यवहार किया था ... । थोड़ा डरते से उसने कहा कि मुझे परमात्मा का अनुभव हुआ है; और तो शायद कोई समझ न सके, तुम समझोगे। उसने कहा, 'तुम सीधे भागे यहां चले आओ, तुम्हें इलाज की जरूरत है।'

तब संदेह और भी बढ़ गया। उसने सोचा कि कुछ गलती हो गयी। अपने कागज पर देखा, अभी घटना इतने करीब थी; कुछ ही क्षण बीते थे, अभी भी रोआं-रोआं उसका पुलकित था – जैसे नारद कहते हैं, 'रोमांच हो आता है भक्त को, आंखें गदगद हो जाती हैं, आंसू झरने लगते हैं।' अभी सब गीला था, अभी सब ताजा था। अभी-अभी तो हुई थी घटना। अभी देर भी न हुई थी। लेकिन संदेह पकड़ने लगे – सोचा कि बेहतर है कि मैं चला ही जाऊं, कौन जाने कोई वहम हुआ, किसी भ्रम में पड़ा, मन का कोई प्रक्षेपण था या कि मैं पागल हो गया, आत्मसम्मोहित हो गया! कहीं विलयम ब्लेक की कविता को दोहराने के कारण ही तो यह सब घटना नहीं हो गयी!

वह गया मित्र के घर। मित्र ने उसे लिटाया, इन्जैक्शन दिये। आठ महीने उसको अस्पताल में रखा गया – पागल की तरह! यह संसार, जिनको परमात्मा का अनुभव हो, उनके साथ पागल की तरह व्यवहार करता है। उसमें भी संसार का कोई कसूर नहीं। वह आठ महीने के बाद निकल सका पागलखाने से, सिर्फ यह भरोसा दिलाकर कि वह बात गलत थी। उसने लिखा है कि मैं तब भी जानता था कि बात एकदम गलत नहीं थी; लेकिन अब परमात्मा के लिए जिंदगीभर पागल बने रहने का तो कोई अर्थ नहीं है। जब मैंने सब तरह के प्रमाण दे दिये कि मैं ठीक अपने तर्क में, बुद्धि में वापस लौट आया हूं, सामान्य हो गया हूं, बीमार नहीं हूं अब, रुग्ण नहीं हूं – तब उन्होंने मुझे छोड़ा।

एक महान अनुभव चूक गया। यह आदमी भारत में हुआ होता, परमहंस हो जाता। उसकी कविताओं में अभी भी कभी-कभी झलक है। लेकिन समाज की अपनी स्वीकृति की सीमाएं हैं। समाज के ढांचे से इंचभर यहां-वहां तुम हुए कि अड़चन खड़ी होती है।

अगर तुम्हें कोई प्रतीति भी हो तो उसे छिपाना; जैसे कोई हीरा मिल जाए, तो कबीर ने कहा है – 'गांठ गठियायो', जल्दी से गांठ लगा लेना, किसी को बताना मत, नहीं तो लोग कहेंगे, 'दिमाग खराब हो गया!' उसकी किसी को कानों-कान खबर मत होने देना। लोग हृदय के विपरीत हैं। लोग प्रार्थना के विपरीत हैं। तुम चकित होओगे कि वे भी जो प्रार्थना करते हैं, प्रार्थना के विपरीत हैं; वे भी प्रार्थना करते हैं, जहां तक बुद्धि की सीमा के भीतर चलता है – पूजा-पाठ करते हैं, मंदिर जाते हैं, लेकिन कभी भी हिसाब-किताब की दुनिया के आगे नहीं बढ़ते। उनका मंदिर उनकी दुकान की सीमा के भीतर है। और उनका प्रेम उनकी तर्क की बागुड़ से घिरा है। और उनकी पूजा औपचारिक है। जाना चाहिए, इसलिए जाते हैं मंदिर। पूजा करनी चाहिए, इसलिए पूजा करते हैं। क्योंकि समाज इन बातों को मान्यता देता है; रिस्पैक्टेबिलिटी, एक सम्मान मिलता है समाज से कि आदमी धार्मिक है।

लेकिन समाज धार्मिक आदमी को बरदाश्त नहीं करता – औपचारिक रूप से धार्मिक आदमी को बरदाश्त करता है; हिंदू को, मुसलमान को, जैन को बरदाश्त है, धार्मिक आदमी को बरदाश्त नहीं करता।

ये सूत्र बड़े क्रांतिकारी सूत्र हैं। हिम्मत हो, तो ही इस तरफ बढ़ना; नहीं तो भूल जाना।

'वाद-विवाद में बाहुल्य का अवकाश है और वह अनियत है।'

नारद कहते हैं, व्यर्थ का फैलाव करने से सार क्या! और फिर तर्क कहीं भी पहुंचाता नहीं, उसकी कोई नियति नहीं है, उसका कोई निष्कर्ष नहीं है, वह निष्कर्षहीन व्यर्थ की विडम्बना है। करते जाओ, करते जाओ, एक तर्क से दूसरा निकलता है, दूसरे तर्क से तीसरा निकलता है; ऐसा कभी नहीं आता, ऐसा क्षण कभी नहीं आता, जहां निष्पत्ति आती हो – और जिससे निष्पत्ति न आती हो, उसमें जीवन को मत गंवाना, क्योंकि जीवन निष्पत्ति चाहता है। जीवन किसी महत्वपूर्ण नियति को पूरा करना चाहता है। जीवन खिलना चाहता है।

नहीं हृदय में राग, भला तब
वीणा क्या बोलेगी?
अगर मूल निर्गंध, फूल में
सुरभि नहीं डोलेगी।

मूल की चिंता करना, तो फूल में गंध आएगी। और हृदय में राग को जगाना, तो जीवन की वीणा तरंगित होगी। लेकिन मूल और हृदय का विचार करना।

'प्रेमाभक्ति की प्राप्ति के लिए भक्तिशास्त्र का मनन करना चाहिए और ऐसे भी कर्म करने चाहिए जिनसे भक्ति की वृद्धि हो।'

भक्तिशास्त्र का अध्ययन नहीं हो सकता।

तीन शब्द हैं हमारे पास : चिंतन, मनन, निदिध्यासन। चिंतन तो विचार है। मनन ध्यान है। निदिध्यासन समाधि है। चिंतन, अगर ठीक मार्ग से चले तो मनन पर पहुंच जाता है; अगर कोल्हू के बैल की तरह चलने लगे तो फिर मनन तक नहीं पहुंचता। तर्क में जिसका चिंतन उलझ गया, वह मनन तक नहीं पहुंच पाता। जो इतना चिंतनशील है कि तर्क की व्यर्थता को पहचान लेता है, उसका चिंतन, उसकी चिंतन-ऊर्जा मनन बनने लगती है।

मनन सोच-विचार नहीं है – मनन भावना है। जैसे तुम एक फूल को देख रहे हो, तो तुम सोचते हो : गुलाब है कि जूही है कि चम्पा है, कि लाल है कि पीला है कि सफेद है, कि सुगंधित है कि सुगंधित नहीं है, देशी है विदेशी है – अगर इस तरह की बातें तुम सोच रहे हो तो चिंतन कर रहे हो गुलाब के संबंध में; पहले जो गुलाब देखे थे, उनसे तुलना कर रहे हो, 'उनसे सुंदर है, कम सुंदर है?' तो तुम चिंतन में लगे हो। अगर तुम सिर्फ गुलाब को देख रहे हो – भावाविष्ठ, सोच नहीं रहे, न अतीत के गुलाबों से तुलना कर रहे हो न भविष्य के गुलाबों से, न कोई व्याख्या-विश्लेषण, नामकरण कर रहे हो – तुम सिर्फ देख रहे हो; तुम सिर्फ आंखों से पी रहे हो; तुम सिर्फ गुलाब को अपने हृदय में उतरने दे रहे हो; तुम गुलाब में उतर रहे हो, गुलाब तुममें उतर रहा है; तुम्हारे और गुलाब के बीच एक आंतरिक लेन-देन शुरू हुआ है; गुलाब अपना सौंदर्य तुममें उंडेलेगा, सुगंध तुम में उंडेलेगा, और तुम्हारा जीवन-स्पर्श अपने में लेगा; तुम दोनों तरंगायित हो एक ही तरंग में, एक ही वेव-लेंग्थ पर – तो मनन। अब न यहां कोई चिंतन है, न कोई विचार उठता है; तुम निपट भोग रहे हो!

विचार की एक भी परत बीच में नहीं है। तुम पूरे खुले हो। तुमने हृदय के सारे कपाट खोल दिये हैं। तुम्हारा स्वागत परिपूर्ण है। तुममें पुलक उठ आएगा। तुम्हारा रोआं-रोआं रोमांचित हो जाएगा। गुलाब से तुम्हें परमात्मा का हाथ फैला हुआ अनुभव होने लगेगा। गुलाब तुम्हारे हृदय को छू जाएगा; उसकी गुदगुदी तुमसें प्रविष्ट हो जाएगी। तुम दो न रह जाओगे। एक क्षण ऐसा आएगा मनन का जहां तुम यह न कह सकोगे कि कौन गुलाब है, कौन मैं हूं; जहां दोनों की सीमाएं एक-दूसरे पर छा जाएंगी; जहां दोनों एक हो जाएंगे, करीब आ जाएंगे – तो मनन।

नारद कहते हैं, भक्तिशास्त्र का मनन...। चिंतन नहीं हो सकता। चिंतन करोगे तो बाहुल्य हो जाएगा, विवाद हो जाएगा – मनन...।

भक्तों के वचन सुनना, सोचना मत उन पर – गुनना। जब भक्त भगवान का नाम लें, तो तुम यह मत सोचना कि यही भगवान का नाम है या नहीं। कोई कहे 'अल्लाह', कोई कहे 'राम', कोई कहे 'कृष्ण' – तुम नाम पर मत जाना। तुम तो जब कोई अल्लाह कहे, तो उसकी आंखों में देखना : झलक आती है? जब कोई अल्लाह कहे, तो उसमें उठती तरंगों को अनुभव करना। जब कोई अल्लाह कहे तो देखना, कैसे उसने अपने को उंडेल दिया! जब कोई राम कहे तब भी वही देखना – तब तुम पाओगे कि राम कहो, अल्लाह कहो, रहीम कहो, रहमान कहो – कोई अंतर नहीं पड़ता। भक्त की पुलक एक ही है; रोमांचित हो जाता है...।

इसलिए तो तुमसे बार-बार कहता हूं : आओ जिक्रे-यार करें। उस परमात्मा का थोड़ा स्मरण...। लेकिन अगर तुम नाम पर चले गये, तो तुम चिंतन में चले गये, मनन न हुआ। जिक्र सोच-विचार नहीं है, चिंतन नहीं है। जिक्र तो एक डुबकी है – डूब गये उसमें, मगन हो गये! जिक्र तो उसकी शराब का पी लेना है।

भक्तों के वचन सुनकर तुम चिंतन मत करना कि ये क्या कह रहे हैं। अगर तुम चिंतन में पड़े तो तुम चूक गये। ज्ञानियों के वचन सुनो तो चिंतन करना, क्योंकि वहां चिंतन के सिवाय और कुछ भी नहीं है। भक्तों के वचन सुनो तो उनका हृदय देखना, उनका आनंद देखना। तुम, वे क्या कहते हैं, यह फिक्र ही छोड़ देना। तुम तो सीधे-सीधे उनको देखना।

देख रहे हो जो कुछ उसमें भी सबका मत विश्वास करो,
सुनी हुई बातें तो केवल गूंज हवा की होती हैं।

जो देख रहे हो तुम, वह भी सब विश्वास-योग्य नहीं है, क्योंकि बहुत कुछ तो तुम्हारी कल्पना का जाल है जो तुम देख रहे हो। फिर 'सुनी हुई बातें तो केवल गूंज हवा की होती हैं,' तो जो सुन रहे हो उस पर तो बहुत फिक्र करना ही मत। जो अनुभव में आए, बस...।

भक्तों के पास बैठकर उनके साथ डोलना। पागलों के साथ बैठकर उनके पागलपन में सहयोगी होना, सहभोगी होना। मतवालों के साथ मतवाले हो जाना। नाचते हों भक्त तो नाचना, गाते हों तो गाना। अपना फासला मिटाना। अपनी सोच-समझ को उतारकर रख देना, बोझ की तरह, एक किनारे। थोड़ी देर को निर्बोझ हो जाना। तो तुम्हें पता चलेगा, भक्तिशास्त्र क्या है।

भक्तिशास्त्र शास्त्रों में नहीं लिखा है – भक्तों के हृदय में लिखा है। भक्तिशास्त्र शब्द नहीं,

सिद्धान्त नहीं – एक जीवंत सत्य है। जहां तुम भक्त को पा लो, वहीं उसे पढ़ लेना, और कहीं पढ़ने का उपाय नहीं।

'भक्तिशास्त्र का मनन, और ऐसे कर्म भी जिनसे भक्ति की वृद्धि हो'; क्योंकि वस्तुतः तुम जो करते हो, वही तुम होने लगते हो। इस तत्त्व को थोड़ा ठीक से समझ लो।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'नाचने से क्या होगा?' मैं कहता हूं, 'होने की बात पीछे विचार कर लेंगे – तुम नाचो तो!' वे कहते हैं, 'लेकिन पहले पक्का न हो जाए कि नाचने से क्या होगा...!' तो मैं उनसे कहता हूं, 'तुम पैदा हुए थे, सांस लेने के पहले तुमने पूछा था – सांस लेने से क्या होगा, जब तक पक्का न हो जाए? मां का दूध पीने के पहले तुमने पूछा था – दूध पीने से क्या होगा जब तक पक्का न हो जाए? बोलने के पहले तुमने पूछा था – बोलने से क्या होगा, जब तक पक्का न हो जाए? चलने के पहले पूछा था – चलने से क्या होगा, जब तक पक्का न हो जाए? फिर किसी के प्रेम में पड़ गये थे, पूछा था – प्रेम करने से क्या होगा, जब तक पक्का न हो जाए? सारे जीवन तुम करते रहे, कर-करके जानते रहे, परमात्मा के साथ ही यह ज्यादती क्यों करते हो कि पहले पूछना चाहते हो?'

करो तो ही कोई जानता है। किये बिना कौन जानता है? जानना अस्तित्वगत है। रोओगे तो जानोगे कि क्या होता है। दूसरे को रोते देखकर भी न जानोगे, क्योंकि आंख से आंसू बहना, तुम क्या पहचानोगे हृदय में क्या बहा? आंख से बहते आंसुओं को देखकर प्राणों में कौन गूंज उठी, कैसे जानोगे? आंसू ही दिखायी पड़ेंगे। आंसुओं का कोई परीक्षण नहीं किया जा सकता। तुम आंसू इकट्ठे कर लो भक्त के, किसी दुखी के, और दोनों के आंसुओं को ले जाओ प्रयोगशाला में, वैज्ञानिक कोई फर्क न बता सकेंगे कि कौन से आंसू भक्त के हैं और कौन से दुखी के हैं; क्योंकि आंसू तो बस आंसू हैं, सब एक से हैं। लेकिन भक्त अहोभाव से रोता है। भक्त के रुदन में दुख नहीं है, परम आनंद है।

किसी का प्रियजन चल बसा है, वह भी रोता है, दुख से विषाक्त हैं उसके आंसू। लेकिन इस आनंद और दुख को आंसुओं में न पकड़ सकोगे, क्योंकि आनंद और दुख तो भीतर की बात है। आंसू... आंसू कुछ भी नहीं कह सकते। तुम ही रोओगे जब आनंद से तभी तुम जानोगे। ये अनुभव वैयक्तिक हैं। ये दूसरे से पूछकर भी नहीं समझे जा सकते।

प्रेम को बिना जाने कौन जान पाया प्रेम क्या है!

'भक्तिशास्त्र का मनन करना चाहिए और ऐसे कर्म भी करने चाहिए जिनसे भक्ति की वृद्धि हो।'

किन कर्मों से भक्ति की वृद्धि होती है? भक्त होने का क्या कर्म है?

जीवन को देखने का एक ढंग है। साधारणतः तुम जीवन को बड़े अविश्वास से देखते हो। जीवन को देखने का ढंग साधारणतः संदेह से भरा है। और जहां संदेह खड़ा हो, वहां तुम जो भी करोगे वह कृत्य भक्त का न हो सकेगा। भक्त का कृत्य उठता है श्रद्धा से। वही कृत्य तुम दो तरह से कर सकते हो: संदेह से भरकर भी कर सकते हो, श्रद्धा से भरकर भी कर सकते हो। श्रद्धा से भरकर किया कि कृत्य भक्त का हो गया। संदेह से भरकर किया कि साधारण कृत्य हो गया।

तुमने किसी को दो पैसे भीख में दे दिये, ये तुम ऐसे भी दे सकते हो कि टालो; अब आदमी

सिर पर खड़ा है, दो पैसा देकर निपटा लेना अच्छा है। तब भी तुमने दो पैसे दिये – मगर व्यर्थ ! तुम कुछ भी न देते और इस आदमी पर श्रद्धा रखते, इस आदमी में आदमी देखते कम-से-कम, न देखते परमात्मा, तो कृत्य भक्त का हो जाता।

तुम क्या करते हो, उसका गुणधर्म तुम पर निर्भर है। देखो लोगों को, तुम्हारी आंख अगर श्रद्धा से भरकर देखती है, प्रेम से भरकर देखती है, सहानुभूति से भरकर देखती है, तो कृत्य भक्त का हो गया। ऐसे ही धीरे-धीरे यही आंख तैयार होती जाएगी और परमात्मा को खोज लेगी। परमात्मा छिपा नहीं है – सिर्फ तुम्हारी आंख तैयार नहीं है।

'सुख-दुख, इच्छा, लाभ आदि का पूर्ण त्याग हो जाए, ऐसे काल की बाट देखते हुए आधा क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिए।'

'सुख-दुख, इच्छा, लाभ आदि का पूर्ण त्याग हो जाए... ।'

भक्त त्याग कर नहीं सकता – हो जाए... ! क्योंकि भक्त का पूरा आधार यही है कि परमात्मा करेगा, मेरे किये क्या होगा ! वह प्रार्थना करता है। यही साधक और भक्त का फर्क है। साधक चेष्टा करता है त्याग की, इच्छा छोड़ दूं। लेकिन तुम जरा समझो, जब तुम इच्छा छोड़ने की चेष्टा करते हो, तब तुमने एक नयी इच्छा को जन्म दे दिया : इच्छा छोड़ने की इच्छा। अब तुम फंसे जाल में। जब तुम वस्तुओं को छोड़ने का आग्रह करते हो, तब तुम्हें त्याग को पकड़ना पड़ता है। छोड़ने के लिए पकड़ना पड़ता है – और पकड़ ही छोड़नी थी। संसार छोड़ना चाहते हो तो तुम्हें स्वर्ग की कल्पना करनी पड़ती है, क्योंकि बिना तुम कुछ पकड़े छोड़ नहीं सकते।

फिक्र है जाहिद को हूरो-कौसरो-तसनीम की
और हम जन्नत समझते हैं तिरे दीदार को।

वह जो त्यागी है उसे तो स्वर्ग की अप्सराओं की आकांक्षा है, सुख के भोग, स्वर्ग के कल्पवृक्षों की।

'फिक्र है जाहिद को हूरो-कौसरो-तसनीम की।'
'और हम जन्नत समझते हैं तिरे दीदार को'

और भक्त तो कहता है, 'तू दिख गया – स्वर्ग हो गया ! तेरा दर्शन काफी है।' भक्त तो कहता है, 'हमारी आंख तुझे देखने में समर्थ हो गयी – बस, सब हो गया ! तुझे पा लिया तो सब पा लिया।'

साधक चेष्टा करता है, भक्त प्रार्थना करता है। भक्त कहता है, 'तू कुछ ऐसा कर कि इच्छा छूट जाए; हम तो छोड़ेंगे भी तो नयी इच्छा का बीजारोपण कर लेंगे।' भक्त कहता है, 'कुछ ऐसा कर कि व्यर्थ से छुटकारा हो जाए; क्योंकि हम तो ऐसे हैं कि हम सार्थक को भी पकड़ेंगे तो व्यर्थ हो जाएगा। हम सोना भी छूते हैं, मिट्टी हो जाता है। और सुना है कि तू मिट्टी भी छू देता है तो सोना हो जाता है। तो तू ही कुछ कर।'

प्रार्थना का राज यही है कि भक्त कहता है, 'हमारे किये कुछ भी न होगा। कितने जन्मों-जन्मों से तो हम करते रहे हैं ! सब किया-कराया व्यर्थ चला जाता है। आखिर में हम दोहरा-दोहराकर वही कर लेते हैं जो हम नहीं करना चाहते थे। दूसरे पर क्रोध करना रोकते हैं तो अपने पर क्रोध होने लगता है, मगर क्रोध जारी रहता है। कामवासना को त्यागते हैं तो कामवासना से चित्त भर जाता है,

छुटकारा नहीं हो़ता।

एक कवि मुझे अपना संस्मरण सुना रहे थे। दिल्ली जाते थे, राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में भाग लेने। जिस कम्पार्टमेंट में थे, ग्वालियर से एक महिला और उसका बच्चा सवार हुआ। कवि बच्चे के साथ खेलते रहे, फिर सांझ ढल गयी, फिर अंधेरा होने लगा, फिर रात होने लगी। महिला सोने को तैयार हुई, लेकिन कुछ डरी और झिझकी-सी थी। कवि ने पूछा, 'क्या बात है? कुछ परेशानी है?' उसने कहा, 'नहीं कुछ परेशानी नहीं है। आप कहां जा रहे हैं?' तो कवि ने कहा, 'मैं दिल्ली जा रहा हूं राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिए।' उस महिला ने कहा, 'तब तो कोई फिक्र नहीं। कवि हैं, फिर तो कोई खतरा नहीं।' वह लेट गयी, सो गयी।

वे कवि मुझसे कहने लगे, 'मुझे बड़ा धक्का पहुंचा कि उस स्त्री ने कहा, कवि हैं तब तो फिर कोई खतरा नहीं।'

तो मैंने कहा कि तुम स्त्री की बात को कुछ गलत समझे – साधु-महात्मा होता तो खतरा था। कवि हो, तो जिंदगी को भोग ही रहे हो, स्त्री कोई त्याज्य वस्तु नहीं है। और स्त्री का अनुभव हो जाए तो मुक्ति हो जाती है। धन का अनुभव हो जाए तो धन पर पकड़ खो जाती है। स्त्री ने ठीक ही कहा; बड़ी समझदार रही होगी। तुम समझे नहीं उसकी बात को। उसने तुमसे कुछ नहीं कहा, साधु-महात्माओं के खिलाफ कुछ कह दिया।

जो दबाओगे वह भीतर घाव बन जाता है। तुम खुद ही अपने भीतर खोज ले सकते हो : जो भी तुमने दबाया है वही तुम्हारी छाया बन जाती है।

पश्चिम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने जो कुछ महत्वपूर्ण खोजें कीं, उनमें एक खोज है : दी शैडो – छाया। वे कहते हैं, हर आदमी की एक छाया है। सूरज की धूप में जो छाया बनती है वही नहीं। हर आदमी की एक छाया है – उसने व्यक्तित्व के जिन अंगों को अंगीकार नहीं किया, वे छाया की तरह उसका पीछा करते हैं। उसने जिन-जिन व्यक्तित्व की बातों को हटा दिया है अपने से दूर, दबा दिया है अपने से दूर, अचेतन में सरका दिया है, तलघर में डाल दिया है – वे उसकी छायाएं हैं, वे सदा उसका पीछा करती हैं।

अगर तुमने क्रोध को दबा दिया, तो क्रोध सदा तुम्हारे पीछे खड़ा है प्रतीक्षा की राह में, कभी भी, किसी भी क्षण प्रगट हो जाएगा मौका देखकर। अगर काम को दबा दिया तो काम तुम्हारी छाया बन जाएगा। जिसने इस तरह से अपने व्यक्तित्व को तोड़ लिया है, खंड-खंड कर लिया है, वह उस अखंड को कभी भी न जान पाएगा। अखंड को जानने के लिए अखंड होना जरूरी है। छाया को आत्मसात करना होगा। वह जो तुमने अपने से अलग कर दिया है वह तुम्हारा है, उसे फिर से अपने में लीन करना होगा। उसको जब तक तुम अलग रखोगे तब तक तुम झूठे रहोगे। हर बच्चे को करना पड़ता है अलग, मजबूरी है। मगर सदा अलग रखने की कोई मजबूरी नहीं है; जब समझ आ जाए तो उसे आत्मलीन करने की जरूरत है।

छोटा बच्चा है, मां-बाप की अपेक्षाएं हैं। वह कुछ करता है; मां-बाप चाहते हैं, कुछ और करे। वह वक्त-बेवक्त हंस देता है; मां-बाप कहते हैं, चुप रहो, मेहमान घर में हैं। तो बच्चे को अपने को

दबाना शुरू करना पड़ता है। हर बात हर जगह नहीं कही जा सकती, तो बच्चे को अपने भीतर खंड करने पड़ते हैं। बच्चे को एक बात समझ में आ जाती है : कुछ त्याज्य है जो स्वीकार-योग्य नहीं है, और कुछ स्वीकार-योग्य है जो न भी आता हो तो प्रदर्शन करना जरूरी है; जहां हंसी न भी आती हो वहां हंसना जरूरी है; जहां रोना आ रहा हो वहां रोना रोक लेना जरूरी है; जहां क्रोध आता हो वहां शांति रखनी जरूरी है। ऐसी बातें बच्चे को धीरे-धीरे अपने ही अंगों को काटने के लिए मजबूर कर देती हैं, बच्चा झूठा हो जाता है, अप्रामाणिक हो जाता है।

यह तुम्हारा जो कटा हुआ हिस्सा है, यह तुम्हारा यथार्थ है, इसको लीन करना जरूरी है। साधक इसको काटता चला जाता है, भक्त इसको लीन कर लेता है। भक्त कहता है, 'मेरे किये क्या होगा! मैं तो यह खड़ा हूं – जैसा भी हूं, पापी, बुरा-भला – तुम स्वीकार करो! तुमने ही बनाया ऐसा, तुम ही मार्ग दो। तुमने ही गिराया, तुम ही उठाओ।'

भक्त का यह भरोसा है कि जिसने जीवन दिया, क्या वह इतना-सा न कर सकेगा, कि गिरे को उठा ले; जिसने हड्डियों में प्राण फूंके, जिसने मिट्टी को जीवंत किया, क्या उससे इतना भी न हो सकेगा कि मैं जैसा हूं मुझे ऐसा ही स्वीकार कर ले। फिर मिट्टी भी उसी की है, वासना भी उसी की है, कामना, क्रोध भी उसी का है! और मुझसे यह अपेक्षा रखनी कि मैं कुछ कर पाऊंगा, असंभव है!

क्योंकि क्रोधी आदमी क्रोध पर विजय पाने के लिए भी क्रोध का ही उपयोग करेगा। हिंसक हिंसा से मुक्त होने के लिए भी हिंसा का ही उपयोग करेगा, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

अगर तुम्हें अपने ही हाथों से अपने जूते के बंध पकड़कर खुद को उठाना है तो कैसे उठ पाओगे? थोड़ा उछल-कूद भला कर लो! जिनको तुम साधु-महात्मा कहते हो, बस थोड़ी उछल-कूद है! बार-बार जमीन पर पड़ जाते हैं! अपने ही हाथों से!

भक्त कहता है, 'तेरे ही हाथों के द्वारा उठना हो सकता है!'

इसलिए कहता है : 'सुख-दुख, इच्छा, लाभ आदि का पूर्ण त्याग हो जाए, ऐसे काल की बाट देखते हुए आधा क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिए।'

आधा क्षण भी बिना प्रार्थना के न जाए। जीवन छोटा है, करने को बहुत है। और एक क्षण बाद हम होंगे या नहीं होंगे, इसका भी कुछ पता नहीं। तो आधा क्षण भी व्यर्थ न जाए, प्रार्थना-शून्य न जाए। तुम उठो, बैठो, चलो, कुछ भी करो, लेकिन प्रार्थना अहर्निश तुम्हारे भीतर डोलती रहे।

आज व्योम के मरुमानस में
इंद्रधनुष उग आया
आत्मचेतना बिना प्राण का
रस निःशेष न होता
शेष मानते जिसे, वही छित
अंतरतम में सोता
यह मन्मथ के कुसुमायुद्ध की
बिंबित सुंदर छाया

ज्योतितिमिर की संधिमात्र ही
नामरूप का कारण
'केवल' ही कर सकता अपना
बंधन सहज निवारण
भुने बीज के उर में अंकुर
कब किसने उकसाया ?
कब विराग का बांध मुखौटा
विकल राग छिप पाया !

छिपाने की चेष्टा मत करना; अन्यथा विराग का मुखौटा बंध जाएगा, राग भीतर रहेगा। केवल वही — केवल परमात्मा ही — मुक्ति ला सकता है। जहां से जीवन का जन्म है, वहीं से मुक्ति का भी। जहां से वासना का जन्म है, वहीं से ब्रह्मचर्य का भी। यह भक्त की आस्था है कि भक्त कहता है, परमात्मा ही कुछ करेगा; मैं प्रार्थना कर सकता हूं।

लेकिन अगर तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण है तो पूर्ण होती ही है। तुमने कभी पुकारा ही नहीं। तुमने कभी हृदय भरकर मांगा ही नहीं। कभी तुमने अपने-आप को पूरा उसके हाथ में सौंपा ही नहीं। तुमने कभी हृदयपूर्वक उससे कहा ही नहीं कि आओ, मुझे बदलो ! मैं बदलने को तैयार हूं, लेकिन जानता नहीं, कैसे बदलूं ! मैं बदलने को तैयार हूं, लेकिन बदलाहट मेरे बस के बाहर है ! तुम्हीं आओ ! तुम्हीं पाहुने बनो मेरे हृदय में ! तुम्हीं मुझे बदलो !

भक्त का मार्ग सुगम है — बस, यह पहला कदम बड़ा कठिन है। तुम्हारे मन में ऐसा बना ही रहता है कि हम अपने सूत्रधार बने रहें। इसलिए साधक का अहंकार मरता ही नहीं; नये-नये रूप धरता है। कल संसारी था, अब संन्यासी हो जाता है। कल तक भोगी था, अब त्यागी हो जाता है, लेकिन नये रूप रख लेता है, नये मुखौटे पहन लेता है। लेकिन मैं कुछ करके रहूंगा, यह बात मिटती ही नहीं। भक्त कहता है, 'मैं' झूठा भ्रम है। मैं हूं कहां ? तू ही है। तो तू ही कर !

'अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आस्तिकता आदि आचरणीय सदाचारों का भली-भांति पालन करना चाहिए।'

बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है इसमें : आस्तिकता। महावीर ने नहीं गिनाया, बुद्ध ने नहीं गिनाया, पतंजलि ने भी छोड़ दिया है। अहिंसा सभी ने गिनायी है; दूसरे को दुख न देना, समझ में आता है। सत्य सभी ने गिनाया है; जो है, उससे विपरीत न कहना; जो है, उससे विपरीत न करना; जो है, उसको अन्यथा न बताना। शौच : आंतरिक पवित्रता — शरीर की, बाहर की, मन की, सब तरह की — बिलकुल ठीक है। दया : दूसरे के लिए जितना सुख हमसे बन सके, उतना देने की चेष्टा।

लेकिन आस्तिकता ! इसको आचरण कहा नारद ने ! यह बड़ी अनूठी बात है। और मेरे देखे बिना आस्तिकता के बाकी कोई भी हो नहीं सकता; अहिंसा, सत्य, शौच, दया, बिना आस्तिकता के हो नहीं सकते।

आस्तिकता का क्या अर्थ है ?

आस्तिकता का अर्थ है : परमात्मा से 'हां' कहना, कि हां, मैं राजी हूं; परमात्मा को 'नहीं' न कहना। वह जो कराए सो करना, वह जो न कराये सो न करना। उससे ही पूछकर चलना। अपनी बागडोर उसी के हाथ में दे देना। लगाम उसी को सौंप देना। फिर वह गड्ढों में गिराये तो गड्ढे स्वर्ग हैं। फिर वह नरक ले जाए तो नरक भी अहोभाग्य है। सब कुछ उसके हाथ में छोड़ देने का नाम आस्तिकता है।

आस्तिकता का इतना मतलब नहीं होता कि तुम कहते हो कि हां, ईश्वर को हम मानते हैं। अगर कोई आदमी तुमसे न कहे कि ईश्वर को मानता है या नहीं मानता है, क्या तुम उसके आचरण को देखकर पता लगा पाओगे कि यह नास्तिक है या आस्तिक है? कोई पता न लगा पाओगे। नास्तिक भी वही जीवन जीते हैं, आस्तिक भी वही जीवन जीते हैं, फर्क तो कुछ दिखायी पड़ता नहीं; सिर्फ लफ्फाजी है, शब्दों का फर्क है। अगर तुम शब्दों को हटा दो और लेबिल न लगे हों कि यह आदमी नास्तिक है कि आस्तिक, तुम कोई फर्क न कर पाओगे। तुम्हें आस्तिकों में परम सुंदर व्यक्तित्वों के लोग मिल जाएंगे, नास्तिकों में मिल जाएंगे। तुम्हें भद्दे से भद्दे आस्तिक मिल जाएंगे और भद्दे से भद्दे नास्तिक मिल जाएंगे। सदाचारी नास्तिक मिल जाएंगे, सदाचारी आस्तिक मिल जाएंगे। इनसे कुछ भी तय नहीं होता।

आस्तिकता का अर्थ है : नदी में तैरना नहीं; बहना; परमात्मा के खिलाफ न लड़ना, उसके हाथ में अपना हाथ दे देना; कहना, 'जहां तू ले चले, ले चल; मुझे भरोसा है; मुझे आस्था है।'

आस्था बड़ी क्रांति है, महाक्रान्ति है। इससे बड़ी कोई छलांग नहीं। इससे बड़ा कोई रूपांतरण नहीं। क्योंकि यह कह देना कि मैं अलग नहीं हूं इस अस्तित्व से, एक हूं; इससे भिन्न मेरी न कोई नियति है, न इससे भिन्न कहीं जाने का मेरा मन है; तू जो कराये...।

तुम जरा चौबीस घंटे भी आस्तिक होकर देखो। एक बार तय करो कि चौबीस घंटे में वह जो करायेगा, करेंगे, तुम निर्भार हो जाओ – चौबीस घंटे में ही तुम पाओगे कि तुम किसी और जगत का स्वाद ले आए; फिर तुम दुबारा वही न हो सकोगे जो तुम कल तक थे। क्योंकि तुम्हारी चिंताएं, तुम्हारी बेचैनियां, तुम्हारी अशांतियां, 'मैं कुछ करके रहूंगा', इससे पैदा होती हैं। फिर नहीं कर पाते तो विषाद घेरता है, संताप घेरता है, हार पकड़ लेती है। जैसे ही तुमने कहा, 'जो तू करेगा, मेरा कोई चुनाव नहीं अब; तू मुझे अंगीकार कर ले और मुझे चला; मैं यह भी न कहूंगा कि तूने भटकाया, क्योंकि तू भटकाये तो इसका अर्थ हुआ कि भटकने में ही मेरी मंजिल होगी; मैं यह भी न कहूंगा कि अभी तक कुछ भी नहीं हुआ, क्योंकि नहीं हुआ तो शायद इसी ढंग से होने का रास्ता गुजरता होगा!'

भक्त का अर्थ है : अनन्य श्रद्धा। उसकी श्रद्धा को कहीं खंडित नहीं किया जा सकता। कोई घड़ी, कोई घटना उसकी श्रद्धा को डांवांडोल नहीं करती।

आस्तिकता परम गुण है। नास्तिकता यानी 'नहीं' कहने की आकांक्षा। तुम सभी के मन में 'नहीं' पहले उठता है। 'नहीं' कहना हमेशा आसान है, क्योंकि अहंकार को अकड़ देता है। 'नहीं' कहा नहीं कि भीतर लगता है कि हम भी कुछ हैं। 'हां' कहा कि भीतर लगता है : गये! 'हां' में आदमी बह जाता है; 'नहीं' में अकड़ जाता है। तो जितनी 'नहीं' तुम अपने आसपास घेरते जाओगे उतना अहंकार

मजबूत होता चला जाता है।

आस्तिकता यानी 'हां'; समग्र भाव से 'हां'।

'सब समय सर्वभाव से निश्चिंत होकर भगवान का ही भजन करना चाहिए ।'

महफिल में शमा, चांद फलक पर, चमन में फूल
तसवीरे रूए अनवरे जानां कहां नहीं ?

राम-राम जपने की बात नहीं है। यह नहीं कह रहे हैं नारद कि तुम बैठते-उठते राम-राम जपते रहो। ऐसे तो कई मूढ़ जप रहे हैं। उससे उन्हें कोई लाभ हुआ, इसका तो पता नहीं, सिर्फ बुद्धि उनकी जड़ हो गयी दिखायी पड़ती है।

'सब समय सर्वभाव से निश्चिंत होकर भगवान का ही भजन करना चाहिए।' इसका अर्थ यह है : जहां तुम देखो, सब तरफ घूंघट उघाडकर उसी को देखो, तो ही सर्वकाल में, सब जगह, उठते-बैठते, सोते, खाते-पीते भजन हो सकता है। अगर राम-राम, राम-राम जपोगे तो भी दो राम के बीच में जगह छूट जाएगी। कितने ही जल्दी रटो 'राम-राम, राम-राम' तो भी सर्वकाल में नहीं हो पायेगा; दो राम के बीच में जगह छूट ही जाएगी। तुम चाहे एक-दूसरे के ऊपर राम को चढ़ा दो, जैसे मालगाड़ी का ऐक्सीडेंट हो गया हो, डब्बे एक-दूसरे पर चढ़ गये हों, तो भी सर्वकाल में सर्वभाव से नहीं हो सकेगा। कभी तो थक जाओगे। और ध्यान रखना, जब तुम थक जाओगे तो तुम विपरीत करोगे।

धर्म कुछ ऐसी कला है जिसमें थकान नहीं है। अगर थक गये तो विपरीत करना पड़ेगा क्योंकि थकान मिटाने के लिए करना पड़ता है : दिन भर जागे, थक गये, तो रात सोना पड़ता है। राम-राम, राम-राम जपते रहे, फिर थक गये, परेशान हो गये, तो फिर व्यर्थ की बातों में अपने मन को उलझाना पड़ता है।

एक ही उपाय है —

महफिल में शमा, चांद फलक पर, चमन में फूल
तसवीरे रूए अनवरे जानां कहां नहीं ?

तुम जहां भी देखो, चाहे फूल हो, चाहे शमा हो, चाहे चांद हो, पशु-पक्षी हों, मनुष्य हों, पौधे हों, पत्थर हों — तुम जहां नजर डालो, जल्दी से घूंघट उठाकर उसको देख लेना, आगे बढ़ जाना। धीरे-धीरे तुम्हारी आंखें ही घूंघट उठाने की कला सीख जाएंगी; तुम्हें घूंघट उठाना भी नहीं पड़ेगा, आंख पड़ी कि तुम घूंघट के पार देख लोगे। सब जगह उसी की छवि विराजमान है! तो तुम दूसरों में भी उसी को देखोगे, अपने में भी उसी को देखोगे। किसी दिन दर्पण के सामने खड़े-खड़े अपनी छवि में भी तुम्हें उसी की छवि दिखायी पड़ जाएगी। तब फिर सतत हो गया। अब यह करना नहीं है।

ध्यान रखना, जो करना पड़े वह सतत नहीं हो सकता। क्योंकि करने से तो थकोगे, छुट्टी मांगोगे। अब यह करने जैसा नहीं है; अब तो यह हो रहा है; यह तो अब अपने-आप घट रहा है — तो भजन!

'वे भगवान कीर्तित होने पर शीघ्र ही प्रगट होते हैं और भक्तों को अनुभव करा देते हैं।'

इस सूत्र को समझने में भूल हो सकती है। बहुतों ने भूल की है। सीधा अर्थ तो यह हुआ कि भगवान खुशामद से प्रसन्न हो जाते हैं।

'वे भगवान कीर्तित होने पर शीघ्र ही प्रगट होते हैं और भक्तों को अनुभव करा देते हैं।' इसका

तो अर्थ हुआ कि बड़े स्तुतिप्रिय हैं, खुशामद की आकांक्षा रखते हैं, कि तुम उनका भजन करो तो वे जल्दी से खुश हो जाते हैं कि देखो, यह भक्त बड़ा शोरगुल मचा रहा है! नहीं, इसका यह अर्थ नहीं है।

तुम जब कीर्ति करते हो परमात्मा की, तब तुम खुल जाते हो। 'कीर्तित होने पर वे शीघ्र प्रगट होते हैं', इसका अर्थ हुआ कि कीर्तन करने से तुम्हारा हृदय खुल जाता है, वे तो प्रगट हैं ही। लेकिन जब तुम उनका स्मरण करते हो परम भाव से, तुम बंद नहीं रह जाते, तुम खुल जाते हो – उस खुलेपन में दर्शन हो जाता है।

परमात्मा तो वही है जो सदा मौजूद है; तुम किसी भांति पीठ किये खड़े हो। जब तुम कीर्ति करते हो परमात्मा की, तुम्हारा मुख उसकी तरफ घूमने लगता है। सूर्यमुखी का फूल देखा है? – सूरज की तरफ घूमता रहता है। इसलिए तो हम उसको सूर्यमुखी कहते हैं; उसका मुख सूरज की तरफ रहता है। ऐसा ही भक्त है; कीर्ति करते हुए वह परमात्मा की तरफ मुंह को रखे रहता है। और सूरज तो एक दिशा में है, परमात्मा तो सभी दिशाओं में है। तुम्हें एक दफा समझ में आ जाए सूत्र, तो जहां तुम देखते हो उसी को देखना – बस उसकी कीर्ति शुरू हो गयी।

कीर्ति का मतलब यह नहीं कि तुम कहो कि हम बहुत पापी हैं और तुम बड़े पतितपावन हो, इस सबसे कोई मतलब नहीं है। ये कहने की बातें नहीं हैं; कहकर तो खराब हो जाती हैं – ये तो भीतर अनुभव करने की बाते हैं। तुम अनुभव करना। तुम्हारे जीवन में उसका यशगान गूंजने लगे! फूल को देखो तो तुम्हारे मन में धन्यवाद उठे: अहो, परमात्मा! चांद को देखो तो धन्यवाद उठे: अहो! तुम्हारे जीवन में अहोभाव सतत निनादित होने लगे! इतना सौंदर्य चारों तरफ है और तुमने अहोभाव प्रगट नहीं किया! तुम्हारी आंखों पर कैसे परदे न पड़े होंगे! रोज सूरज उगता है, तुम नमस्कार में न झुके। रोज चांद आया है, तुमने भर-आंख उसे न देखा! सागर लहरें ले रहा है, निरंतर उसका निनाद चल रहा है, तुमने कभी अपने प्राणों में उसके निनाद को प्रवेश न दिया! चारों तरफ हजार-हजार रूपों में परमात्मा तुम्हें छूने को आतुर है – हवाओं की तरंगों में, सूरज की किरणों में – तुम बिलकुल जड़ बैठे हो, तुम्हें पक्षाघात लग गया है?

भक्ति का अर्थ इतना है केवल: थोड़े सजग बनो; थोड़ा तोड़ो यह जड़-पन; थोड़ा उठो, नाचो! वह नाच रहा है, तुम भी नाचो! वह गा रहा है, तुम भी गाओ! जब तुम्हारा गीत उसके गीत से मिलने लगेगा, जब तुम्हारा नाच उसके पैरों के साथ पड़ने लगेगा, तत्क्षण तुम पाओगे कि तुममें भी वही नाच रहा है।

यह मत सोचना कि तुम जब अहोभाव से भरते हो तो परमात्मा अहोभाव से नहीं भरता। तुम उसी के फैलाव हो, उसी का एक हाथ हो। तुम जब आनंदित होते हो, तुम्हारा हाथ जब स्वस्थ होता है, तो तुम्हारा पूरा प्राण भी आनंदित होता है।

भक्त और भगवान कोई दो बातें नहीं हैं – दो पंख हैं एक ही पक्षी के; दो पैर हैं एक ही व्यक्तित्व के।

कुछ तेरा हुस्न भी है सादा ओ मासूम बहुत
कुछ मेरा प्यार भी शामिल तेरी तस्वीर में!

भगवान परम प्यारा है, लेकिन भक्त का – 'कुछ मेरा प्यार भी शामिल तेरी तस्वीर में' ! भक्त भी उंडेलता है अपने को। यह एकतरफा सौदा नहीं है। यह एकतरफा जानेवाला रास्ता नहीं है। दोनों तरफ से लेन-देन है। यह प्रेमी और प्रेयसी का लेन-देन है, भक्त और भगवान का लेन-देन है। ऐसा नहीं है कि तुम ही प्रसन्न होते हो जब भगवान तुम्हें उपलब्ध होता है – भगवान भी प्रसन्न होता है। यह अर्थ है कीर्तित होने से। जब तुम्हारे भीतर उसका अवतरण होता है, तुम नाच उठते हो। वह भी नाचता है परम अहोभाव से : 'फिर कोई एक उपलब्ध हुआ ! फिर कोई एक भूला-भटका वापस आया ! फिर एक लहर, दूर निकल गयी थी, वापस लौट आयी !'

'यह प्रेमरूपा भक्ति एक होकर भी तीनों कायिक, वाचिक, मानसिक सत्यों में, अथवा तीनों कालों में सत्य भगवान की भक्ति ही श्रेष्ठ है, भक्ति ही श्रेष्ठ है।'

तीनों – कायिक, वाचिक, मानसिक; अथवा तीनों कालों में – भूत, भविष्य, वर्तमान – भक्ति ही श्रेष्ठ है, भक्ति ही श्रेष्ठ है ! क्योंकि शेष सब तो मनुष्य के कृत्य हैं – भक्ति भगवान का कृत्य है। शेष सब मनुष्य को करना पड़ता है – योग, तप, त्याग, तपश्चर्या। भक्ति का बिलकुल दूसरा ही आधार है; मनुष्य छोड़ता है कि तू कर; मनुष्य सिर्फ करने देता है उसे, रोकता नहीं। शेष सब साधना-विधियां विधायक हैं। भक्ति सिर्फ अवरोध को हटाती है।

भक्त यह कहता है : मैं बाधा न दूंगा; बस इतना मेरा भरोसा मुझको है कि मैं बाधा न दूंगा; तू आयेगा तो मैं द्वार बंद न रखूंगा। मगर तुझे लाऊं कैसे ? द्वार खोलकर आंख बिछाकर तेरी राह में बैठा रहूंगा, अहर्निश बैठा रहूंगा ! सांझ-सुबह, रात-दिन, चौबीस घंटे तेरी प्रतीक्षा करूंगा; लेकिन कहां से तुझे पकड़कर ले आऊं, वह मेरा बस नहीं। तेरी कृपा होगीं। तेरा गुणगान करूंगा। तेरे गीत गाऊंगा। तेरे लिए नाचूंगा। द्वार बंद न रहेंगे ! बस इतना भक्त कह सकता है। अवरोध न रहेगा मेरी तरफ से। तू आए और मुझे न पाए, ऐसा न होगा – मैं मौजूद रहूंगा।

शेष सारी साधना-पद्धतियां करने को कहती हैं; भक्ति, छोड़ने को। इसलिए नारद कहते हैं कि भक्ति श्रेष्ठ है, क्योंकि वह भगवान का कृत्य है। जैसे तुम अपने हृदय को खोल देते हो, वह जो लिखता है तुम लिखने देते हो। उसके हस्ताक्षर बन जाते हैं भक्त के ऊपर। इसलिए भगवान की प्रतिमा को भक्त जिस भांति प्रगट करता है, कोई दूसरा साधक नहीं कर पाता।

'यह प्रेमरूपा भक्ति एक होकर भी गुणमाहत्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, साख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तत्मयासक्ति और परमविरहासक्ति – इस प्रकार से ग्यारह प्रकार की होती है।'

भक्ति तो एक ही है, लेकिन भक्त ग्यारह प्रकार के होते हैं। भगवान को जिस रूप में तुम भजना चाहो ...। सूफी हैं, वे भगवान को प्रेयसी मानते हैं स्त्री के रूप में मानते हैं। ठीक; भगवान को इससे कुछ ऐतराज नहीं; क्योंकि भगवान दोनों है – स्त्री में भी है, पुरुष में भी है। सूफियों ने भगवान को प्रेयसी माना। उस तरह से उन्होंने यात्रा की।

भारत में प्रेयसी किसी ने माना नहीं। कृष्णभक्त हैं, वे उसे पुरुष मानते हैं – इस सीमा तक पुरुष मानते हैं कि बंगाल में एक संप्रदाय है कृष्णभक्तों का, जो स्त्रियों जैसे कपड़े पहनता है; रात सोता

भी है तो कृष्ण की मूर्ति को हृदय से लगाकर सोता है। वह पति है; भक्त पत्नी है, सखी है, गोपी है। वह भी ठीक है। जिस विधि से, जिसको सरल मालूम पड़े। यह भक्त के ऊपर निर्भर है, उसकी भाव-दशा पर निर्भर है।

परमात्मा तो सब है, लेकिन तुम अभी इतने विराट नहीं कि उसके सब रूपों को इकट्ठा अपने में ले सको; तुम्हें तो कहीं एक द्वार से प्रवेश करना होगा। उसके तो अनंत द्वार हैं, लेकिन सभी द्वारों से तुम प्रवेश न कर सकोगे। जिस द्वार से तुम्हें प्रवेश करना हो, तुम उस द्वार से प्रवेश कर जाओ — पहुंचोगे तुम एक पर।

ये ग्यारह द्वार नारद ने गिनाये हैं, इनमें करीब-करीब सब संभावनाएं आ जाती हैं। अपनी-अपनी संभावना चुन लेनी चाहिए। तुम्हें जैसा रुचे, परमात्मा तुम्हारी रुचि से राजी है। तुमने अगर उसे मां की तरह पुकारा, काली की तरह पुकारा, तो वह मां की तरह प्रगट होने लगेगा। इसका केवल इतना ही अर्थ हुआ कि तुम जो रूप-रंग उसे देते हो वह उसी रूप-रंग में प्रविष्ट हो जाता है। सभी रूप उसके हैं। रामकृष्ण को वह काली के रूप में प्रगट हुआ; वे मां को पुकारते रहे; वे मां का ही गीत गाते रहे। भक्त ढांचा देता है।

ऐसा समझो कि तुम एक खिड़की बनाते हो अपने मकान की, फिर तुम खिड़की पर खड़े हो कर आकाश को देखते हो, आकाश का तो कोई ढांचा नहीं है, लेकिन तुम्हारी खिड़की का ढांचा है। तुम्हारी खिड़की अगर चौकोर है तो चौकोर आकाश दिखायी पड़ता है, तुम्हारी खिड़की अगर गोल है तो गोल आकाश दिखायी पड़ता है; यद्यपि तुम्हारी खिड़की के कारण आकाश गोल नहीं हो जाता और न ही चौखटा हो जाता। और जब तुम्हें आकाश दिखाई पड़ जाएगा, तुम मदमस्त हो जाओगे, खिड़की से कूद जाओगे, खुले आकाश में आ जाओगे। वहां फिर कोई रूप नहीं है, अरूप है।

सगुण प्रारंभ है, निर्गुण अंत है। सगुण द्वार है, निर्गुण पहुंच जाना है। पर किसी भी ढंग से हो, किसी भी रंग से हो — हो।

> तू न कातिल हो तो कोई और ही हो
> तेरे कूचे की शहादत ही भली।

तेरी गली में भी मर गये, तो भी चलेगा। तू अगर अपने हाथ से भी न मारे तो कोई बात नहीं।

> तू न कातिल हो तो कोई और ही हो
> तेरे कूचे की शहादत ही भली।

बस उसकी राह में कहीं खो जाना है। उस तक कोई कब पहुंचा है; कूचे में ही लोग खो गये हैं। उस तक पहुंचना संभव भी कहां है? तुम तो तुम रहते पहुंच न पाओगे — तुम खोकर ही पहुंचोगे। तुम तो कहीं राह में ही खो जाओगे।

कोई मनुष्य कभी भगवान से मिला नहीं। जब तक मनुष्य रहता है, भगवान नहीं; जब मनुष्य मिट जाता है, तब भगवान...।

ऐसा ही समझो कि कोई बीज कभी अपने अंकुर से मिला? बीज मिट जाता है तो अंकुर। ऐसे ही मनुष्य जब मिट जाता है, तो अंकुरण होता है उस परमात्मा का। तुम्हारी मृत्यु में ही उसका

आगमन है।

तेरे कूचे की शहादत ही भली।

'सनत्कुमार, व्यास, शुकदेव, शांडिल्य, गर्ग, विष्णु, कौंडिण्य, शेष, उद्धव, आरुणि, बलि, हनुमान, विभीषण आदि भक्ति-तत्त्व के आचार्यगण लोगों की निंदा-स्तुति का कुछ भी भय न कर, सब एकमत से ऐसा कहते हैं कि भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है।'

'लोगों की निंदा-स्तुति का कुछ भय न कर...।' प्रेम के मार्ग पर सबसे ज्यादा निंदा-स्तुति है, क्योंकि संसार चलता है गणित से। संसार चलता है हिसाब-किताब से। संसार की व्यवस्था तर्क-सरणी है। और प्रेम सब सीमाएं तोड़कर बहने लगता है। इसलिए संसार प्रेम को स्वीकार नहीं करता — साधारण प्रेम को ही स्वीकार नहीं करता, एक पुरुष-स्त्री के प्रेम को स्वीकार नहीं करता; परमात्मा और व्यक्ति के प्रेम को तो बिलकुल स्वीकार नहीं करता, क्योंकि यह तो सब किनारे तोड़ कर बाढ़ बनना है। समाज घबड़ाता है। समाज मर्यादा चाहता है, और प्रेम अमर्याद है।

इसलिए जिसे समाज की निंदा-स्तुति का बहुत भय है, वह भक्त नहीं हो पाएगा। मगर करोगे क्या? समाज की स्तुति-निंदा को इकट्ठा करके करोगे क्या? मौत के क्षण में कुछ काम न आएगा। यहां भी कोई तृप्ति न मिलेगी। कितनी ही स्तुति समाज करे, पेट न भरेगा। कितनी ही तालियां लोग पीटें, प्राणों के फूल न खिलेंगे। कितना ही सम्मान हो और गले में फूलमालाएं डाली जाएं, तुम भीतर दरिद्र के दरिद्र ही रहोगे, तुम्हारा भिखमंगापन न मिटेगा।

तो जरा देख लेना कि कहीं समाज की निंदा-स्तुति में अपनी आत्मा को तो नहीं बेच रहे हो! कहीं ऐसा तो नहीं है कि उनकी स्तुति बड़ी महंगी पड़ती हो... पड़ती है। जितना-जितना तुम समाज की स्तुति की चिंता करते हो, उतना ही तुम छोटे होते चले जाते हो। जितना ही तुम डरते हो उतना तुम्हें और डराया जाता है। धीरे-धीरे तुम पंगु हो जाते हो। धीरे-धीरे तुम उड़ने की क्षमता खो देते हो। उड़ने का स्वप्न भी खो देते हो। धीरे-धीरे तुम समाज के कूड़ा-घर पर बैठे रहने को राजी हो जाते हो। इसे थोड़ा सोचना।

क्या करोगे, मिल भी गयी सारी स्तुति तो? क्या होगा? किसी ने निंदा न की तो क्या होगा? कोई तुम्हारी निंदा न करे, सभी तुम्हारी स्तुति करें, तो तुम्हें जीवन का अर्थ खुल जाएगा? क्या तुम्हारे प्राणों के कमल खिल जाएंगे? क्या तुम तृप्त हो जाओगे? होता उलटा ही है। जैसे-जैसे स्तुति मिलती है, वैसे-वैसे स्तुति की व्यर्थता पता चलती। जितना-जितना लोग तुम्हारा सम्मान करने लगते हैं, उतना-उतना तुम कारागृह में पड़ने लगते हो, उतनी-उतनी तुम्हारी मर्यादा संकीर्ण होने लगती है; उतना-उतना तुम्हें लगता है, अब तुम खिल नहीं सकते, अब हजार आंखें तुम पर हैं।

भक्त तो केवल वही हो सकता है जिसने एक बात का निर्णय कर लिया कि भीतर के आनंद के सामने और कोई भी चीज वरणीय नहीं है। भीतर का आनंद पहले है। परमात्मा के संबंध प्रथम, फिर शेष सारे संबंध हैं। अगर उससे संबंध बनकर सब संबंध बनते हों तो भक्त राजी है। अगर उससे संबंध टूटते हों, तो फिर कोई संबंध अर्थ का नहीं है।

जीसस ने कहा है: उस एक को खोकर तुम सब खो दोगे; और सब को खोकर भी अगर तुमने

उस एक को पा लिया तो सब पा लिया।

'जो इस नारदोक्त शिवानुशासन में विश्वास और श्रद्धा करते हैं, वे प्रियतम को पाते हैं, वे प्रियतम को पाते हैं।'

विश्वास और श्रद्धा पर ये सूत्र पूरे होते हैं। इन दो शब्दों को थोड़ा-सा समझ लेना जरूरी है। विश्वास का अर्थ है : संदेह अभी मिट नहीं गये – संदेह हैं; लेकिन तुम संदेहों के बावजूद विश्वास करते हो। संदेह एकदम से मिट भी नहीं जा सकते; कोई जादू तो नहीं है; कोई मंत्र तो नहीं है कि मंत्र फेर दिया, दवा ले ली, ताबीज बांध लिया और संदेह मिट गये। संदेह हैं, लेकिन संदेहों को चुनो या न चुनो, यह तुम्हारे हाथ में है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, संन्यास भी लेना है, संदेह भी है। मैं कहता हूं, दोनों तुम्हारे भीतर हैं। संन्यास लेने का भाव भी उठा है? वे कहते हैं, 'उठा है। कुछ विश्वास भी आता है, कुछ संदेह भी है।' मैं कहता हूं, अब तुम्हें दो में से चुनना पड़ेगा। संदेह चाहो, संदेह चुन लो। तब तुम अपनी आधी आत्मा को तड़फाओगे जो संन्यास लेना चाहती थी। संन्यास लेना हो संन्यास ले लो, तब तुम अपने आधे विचारों को तड़फाओगे, मन को, जो संदेह करना चाहता था। अब तुम्हें चुनना यह है कि संदेह तो तुम बहुत दिन करके देख लिये, क्या पाया? अब थोड़ा विश्वास करके भी देख लो। एक मौका विश्वास को भी दो। संदेह ने तो सिर्फ सताया। संदेह से कोई सुख तो न जन्मा, कोई वर्षा तो न हुई, अषाढ़ के मेघ तो न घिरे, प्राणों की पृथ्वी तो वैसी की वैसी तड़फती रही, प्यासी रही। संदेह करके बहुत दिन देख लिया, अब विश्वास करके भी देख लो। एक मौका विश्वास को भी दो।

वे कहते हैं, 'लेकिन संदेह अभी मिटे नहीं।'

मैं उनसे कहता हूं, 'संदेह के बावजूद चुनाव तो करना ही होगा। और ध्यान रखना, जब तुम चुनाव भी नहीं करते, तब भी चुनाव तो हो ही रहा है। तुम कहते हो, अभी सोचूंगा, अभी चुनाव नहीं करता। लेकिन इसका मतलब हुआ कि तुमने संदेह के पक्ष में चुनाव किया। बिना चुनाव किये तो एक क्षण भी तुम रह नहीं सकते। न चुनाव करो, तो यह चुनाव हुआ। मगर चुनाव तो हो ही रहा है।

तो एक मौका नये को दो, अपरिचित को दो, अनजान को दो! उस राह को भी एक मौका दो जिस पर तुम कभी नहीं गये। और जिस राह पर बहुत बार हो आये हो, कभी कुछ न पाया...।

जिस आदमी ने अब तक संदेह किये हैं, अगर वह ठीक-ठीक संदेह करना जानता हो तो अब संदेह पर संदेह आ जाना चाहिए। संदेह पर संदेह का नाम ही विश्वास है। यह श्रद्धा नहीं है, यह विश्वास है। संदेह पर जिसे संदेह आ गया; कर-कर के देखा, कुछ न पाया, आदत पुरानी है, किये चले जाते हैं; जिस राह से बहुत बार गये वहां आंख बंद करके भी चले जाते हैं तो चलना हो जाता है, कुशलता आ गयी है, आदत हो गयी है – लेकिन सोचो! अब संदेह का उपयोग करो। संदेह पर संदेह करो तो विश्वास पैदा होता है।

विश्वास संदेह के विपरीत नहीं है, संदेह के किनारे-किनारे है। संदेह के बावजूद जब विश्वास की राह पर तुम चलते हो तो धीरे-धीरे अनुभव आता है कि ठीक हुआ कि अहोभाग्य मैंने विश्वास चुना। एक-एक कदम बढ़ते हो कि जीवन में नई हरियाली, नई ताजगी, नई किरणें उतरने लगती हैं।

संदेह जिनको तुम किनारे रखकर आए थे, धीरे-धीरे भागने लगते हैं; जैसे प्रकाश में अंधेरा भागने लगता है। सूरज निकल आया और जैसे ओस-कण तिरोहित होने लगते हैं, ऐसे तुम्हारे संदेह तिरोहित होने लगेंगे। जब सारे संदेह तिरोहित हो जाएंगे तो विश्वास समाप्त हो जाता है, श्रध्दा का जन्म होता है।

विश्वास औषधि की तरह है। तुम बीमार हो, विश्वास औषधि की तरह है। फिर जब बीमारी चली गई, तब तुम बोतल को भी फेंक आते हो कचराघर में; फिर कोई जरूरत न रही।

स्वास्थ्य यानी श्रद्धा। श्रद्धा स्वास्थ्य की भांति है। श्रद्धा में संदेह होता ही नहीं। विश्वास में संदेह किनारे-किनारे चलता है, समानान्तर चलता है। इसलिए जब तक श्रद्धा न आ जाए, तब तक बड़ा सचेत रहने की जरूरत है। श्रद्धा आ गई, फिर आंख मूंदकर, चादर तानकर सो जाओ। फिर कोई प्रश्न न रहा। बीमारी गई। तुम प्रकाश से मंडित हुए।

'जो इस नारदोक्त शिवानुशासन में विश्वास और श्रद्धा रखते हैं, वे प्रियतम को पाते हैं, वे प्रियतम को पाते हैं।'

त्वरित घूमता चक्र, दृगों को
लगता ठहरा-सा है
त्वरित घूमता चक्र, दृगों को
ठहरा-सा लगता है
किन्तु क्रिया की निष्क्रियता में
परिणति ही समता है
मृत्यु असंगति नहीं, सहज वह
जीवन की संगति है
रति का मूल स्वभाव पूर्ण हो
बन जाती फिर यति है
कर्ता बनता सिद्ध कर्म ही
जब अकर्म बनता है
मुक्ति नहीं कुछ और, मात्र वह
प्रज्ञा की थिरता है

जहां-जहां विपरीत दिखाई पड़ रहा है, वहां-वहां विपरीत नहीं है – एक ही छिपा है।

तुमने कभी खयाल किया है कि अगर पंखा बिजली का तेजी से घूमे, घूमता जाए, तेज होता जाए, तो एक घड़ी आती है : स्थिर मालूम होने लगता है। ये दीवालें स्थिर लगती हैं। वैज्ञानिक कहते हैं, परमाणु बड़ी तीव्र गति से घूम रहे हैं। उनकी गति इतनी तीव्र है कि हम उनकी गति को देख नहीं पाते, सब स्थिर हो गया है।

अगर गति महान हो, आत्यन्तिक हो – स्थिर हो जाती है। अगर कामना पूर्ण हो, कामना से मुक्ति हो जाती है। अगर कर्म पूर्ण हो, अकर्म बन जाता है।

मुक्ति नहीं कुछ और, मात्र वह

प्रज्ञा की थिरता है।

और मुक्ति कहीं आकाश में नहीं है, कहीं दूर भविष्य में नहीं है। तुम्हारा बोध थिर हो जाए, ठहर जाए, निष्कंप लौ जलने लगे बोध की भीतर – बस मुक्त हो गए तुम।

परमात्मा तुमसे कहीं दूर नहीं – तुम्हारे होने का एक ढंग है। जब तुम अपनी परिपूर्णता में निखरते हो, तुम्हीं जब अपने अंधकार के ऊपर उठते हो, तो परमात्मा हो।

तो भक्त का जो आत्यंतिक अनुभव है, वह भगवान् हो जाने का है। सब दूरी खोज के दिनों की है। जैसे-जैसे समाप्त होने के करीब आती है, भक्त और भगवान एक होने लगते हैं।

इन सूत्रों को सुना। इन सूत्रों पर मनन करना। इन सूत्रों को धीरे-धीरे अपनी जीवन की शैली में, संभालने की कोशिश करना। जितना बन सके, उतना समय परमात्मा की स्मृति में, जितना बन सके उतना परमात्मा को देखने में, सब जगह उघाड़-उघाड़कर, जहां देखने की कठिनाई भी मालूम पड़ती हो, पत्थर में, चट्टान में, वहां भी गौर से देखना – दिखेगा।

इसलिए तो हमने सारी मूर्तियां पत्थर की बनाई हैं परमात्मा की, क्योंकि पत्थर में भी वह है। वहां भी मूर्ति को खोजने की बात है; छिपा है, जरा छैनी चलाने की बात है। छैनी लेकर जाने की जरूरत नहीं – तुम्हारी आंख ही छैनी हो सकती है। जरा गौर से देखना : जहां कहीं रूप-रंग भी दिखाई नहीं पड़ता, वहां भी प्रगट हो जाता है। और जल्दी थक मत जाना, अधैर्य मत करना। धीरज और अनंत प्रतीक्षा !

मत कर धीमा गीत, अभी तो मंजिल दूर बहुत है
पी कर स्वर का स्नेह पंथ का
हृदय सदय हो जाता
रागों के मेले में नभ का
सूनापन खो जाता
मत रख पूजा-थाल अभी तो
धूप कपूर बहुत है।

आज इतना ही।

अहोभाव, आनंद, उत्सव है भक्ति

बीसवां प्रवचन

प्रश्नसार

- परम विरहासक्ति पर कुछ कहें ?
- ध्यान की गहराई की अवस्था स्थायी कैसे हो ?
- क्या मुक्ति के लिए अन्ततः आराध्य की छवि का विसर्जन भी अनिवार्य है ?
- आपके समीप आकर आपकी ओर देखा ही न गया। ऐसे क्यों हो जाता है ?
- आपको रोज-रोज सुनते हैं, देखते हैं; फिर भी जी क्यों नहीं भरता ? और कहीं बाहर भी चले जाते हैं तो भी जी यहीं क्यों लगा रहता है ?
- नारद के बहुआयामी व्यक्तित्व पर कुछ प्रकाश डालें।
- भक्त ध्रुव की पुराण-कथा पर कुछ प्रकाश डालें।

पहला प्रश्न : *परम विरहासक्ति पर कुछ कहने की कृपा करें।*

● उस प्यारे की मौजूदगी प्यारी है, तो गैर-मौजूदगी भी प्यारी होगी। जिसने उसे चाहा है, अनुपस्थिति में उसकी चाह और बढ़ेगी, घटेगी नहीं। चाह की कसौटी यही है। लेकिन चाह तो तुमने जानी नहीं, कामना जानी है। कामना की खूबी यह है : मिल जाए, जिसे तुमने मांगा है, तो मांग टूट जाती है, समाप्त हो जाती है। धन मिल जाए, धन व्यर्थ हो जाता है। प्रेमी मिल जाए, प्रेमी व्यर्थ हो जाता है। कामना पा भी ले, तो भी खाली रह जाती है। प्रार्थना न भी पाए, तो भी भरी है।

विरहासक्ति का अर्थ है कि भक्त भगवान को तो प्रेम करता ही है, उसकी गैर-मौजूदगी को भी प्रेम करने लगता है। उसकी गैर-मौजूदगी भी उसकी ही गैर-मौजूदगी है। उसका न दिखायी पड़ना भी उसका ही न दिखायी पड़ना है। पूर्ण है वह, शून्य भी उसका ही है। सब भाव उसका है, अभाव भी उसका ही है। फिर जो वह दे, उसी में भक्त राजी है।

भक्त का भाव यही है कि तू जो कराये, रुलाये, दूर रखे, हंसाए कि पास रखे, तृप्त करे कि अतृप्ति की आग जलाए, वर्षा बनकर आए कि प्यास बनकर उठे – तेरी मर्जी पर मेरा होना है! तो भक्त यह नहीं कहता कि मेरी मर्जी मान और प्रगट हो। वह कहता है, तेरा अप्रगट होना भी प्यारा है, हम इसे ही प्यार कर लेंगे। हम तेरी अनुपस्थिति में भी नाचेंगे और गुनगुनाएंगे!

और जब तक तुम उसकी अनुपस्थिति को प्रेम न कर पाओगे, तब तक वह उपस्थित न हो सकेगा। यही भक्त की कसौटी है। इसलिए विरहासक्ति...।

विरह से भी आसक्ति हो जाती है। आंसुओं से भी प्रेम हो जाता है। तुमने भक्त को रोते देखा हो, वह दुख में नहीं रो रहा है। उसके आंसू खुशी के आंसू हैं। उसके आंसू फूलों जैसे हैं, चांद-तारों जैसे हैं। उसके आंसुओं में फिर से झांको। उसकी आंखों में कोई शिकायत नहीं है, अनुग्रह का भाव है : 'तूने रुलाया, यह भी क्या कुछ कम है! क्योंकि बहुत आंखें हैं, बिना रोये ही रह जाती हैं। बहुत आंखें हैं जिन्हें आंसुओं का सौभाग्य ही नहीं मिलता। तूने दूर रखा, तड़फाया, इसी तड़फ से तो भक्ति का जन्म हुआ। इसी से तो तेरे पास आने की महत आकांक्षा जगी, अभीप्सा पैदा हुई। तो दूर रखने में भी तेरा कोई राज होगा। तेरी मर्जी पूरी हो!'

जीवन को देखने के दो ढंग हैं। एक धार्मिक व्यक्ति का ढंग है; वह कांटों में भी फूल खोज लेता है। और एक अधार्मिक व्यक्ति का ढंग है; वह फूलों में भी कांटे खोज लेता है। देखने पर सब कुछ निर्भर है।

सुकूने कल्ब को हलकी सी भी उम्मीद काफी है
कि नूरे सुबह की पहली किरण बारीक होती है

हृदय में चैन हो, हृदय में शांति हो, धैर्य हो, तो छोटी-सी उम्मीद भी बहुत है। स्वभावतः सुबह की पहली किरण बहुत बारीक होती है। उतनी बारीक किरण भी सूरज की खबर है। वह दिखायी भी नहीं पड़ती, भासमान होती है — पर सूरज की खबर है।

भक्त को परमात्मा की अनुपस्थिति भी परमात्मा की ही खबर है।

सुकूने कल्ब को हलकी सी भी उम्मीद काफी है
कि नूरे सुबह की पहली किरण बारीक होती है।
जो गम हद से ज्यादा हो खुशी नज़दीक होती है
चमकते हैं सितारे रात जब तारीक होती है।

और जब रात बहुत घनी अंधेरी होती है तो तारे खूब चमककर प्रगट होते हैं। परमात्मा की अनुपस्थिति की जब भाव-दशा पकड़ लेती है तो उसकी उपस्थिति इतनी प्रगाढ़ होकर मालूम होती है जितनी कभी भी नहीं मालूम हुई। विरह में भी मिलन है। अंधेरी रात में भी उसके तारे चमकते हैं। जब सब खोया हुआ लगता है तब भी वह पाया हुआ ही मालूम होता है।

लेकिन हमारे जीवन का दृष्टिकोण, हमारे देखने का ढंग अति सांसारिक है। और वहां हमने जो पाठ सीखा है वह पाठ बड़ा खतरनाक है। ठीक इससे उलटी दशा धर्म की यात्रा की है।

संसार में जब तक कोई चीज मिलती नहीं है तब तक तो तुम बहुत उसके लिए तड़फते हो — पाने के लिए तड़फते हो, किसी तरह अभाव मिट जाए! धन नहीं है तो तुम धन के लिए तड़फते हो, क्योंकि निर्धनता को मिटाना है। निर्धनता से तुम राजी नहीं होते, निर्धनता से नाराज रहते हो। निर्धनता रोग की भांति है, उसे मिटाना है। इसलिए धन चाहिए। निर्धनता से तुम लड़ते हो, ताकि धन पैदा कर सको। पर देखा तुमने, जब धन हाथ में आ जाता है तो पता लगता है : राख लगी, कोई हीरे-जवाहरत न लगे, धूल लगी। जब नहीं था धन तब निर्धनता से लड़ते रहे। जब धन मिलता है तो धन व्यर्थ हो जाता है।

यह तुम्हारा सामान्य जीवन का अनुभव है। इससे ठीक उलटा अनुभव धार्मिक का है। धार्मिक परमात्मा की अनुपस्थिति से लड़ता नहीं; वह कहता है, यह अनुपस्थिति भी उसकी ही है, लड़ना कैसा, लड़ना किससे? यह भी वरदान उसी का है, यह भी आशीष उसी की है।

अनुपस्थिति में विरोध नहीं है — अनुपस्थिति में उसे खोजना है; छिपा होगा कहीं; किरण बहुत बारीक होगी; होगा तो ही... । ऐसा तो कोई स्थान नहीं हो सकता जहां वह न हो। अपनी आंखें कमजोर होंगी। अपने देखने में बल न होगा। अपनी आंख पर परदे होंगे। अपनी समझ धुंधली होगी। अपना बोध का दीया थिर न होगा, कंपित होती होगी भीतर की चित्त-दशा, प्रज्ञा ठहरी न होगी। लेकिन भगवान

तो अपनी अनुपस्थिति में भी मौजूद होगा, क्योंकि ऐसी तो कोई जगह नहीं है जो उससे खाली हो। वह पास से भी पास, दूर से भी दूर; मिला हुआ भी है, खोया हुआ लगता है।

तो भक्त अनुपस्थिति से लड़ता नहीं, वह उसकी अनुपस्थिति को भी नृत्य बना लेता है। विरहासक्ति ! वह विरह से भी आसक्त हो जाता है। वह अपने आंसुओं में भी नाचता है। उसके आंसू भी गुनगुनाते हुए हैं। उसके आंसुओं में दुख मत देख लेना, अन्यथा तुम उसके आंसुओं को न समझ पाओगे। उसके आंसुओं में इस बात की खबर है कि तू कितना ही छिपाए, अपने को छिपा न सकेगा; तू कितना ही परदे डाले, धोखा न दे सकेगा। हम तेरी अनुपस्थिति में भी तुझे खोज लेते हैं, तो तेरी उपस्थिति की तो बात ही क्या करनी !

अनुपस्थिति परमात्मा के विपरीत नहीं है, जैसा धन निर्धनता के विपरीत है। और इसलिए जब भक्त परमात्मा को उपलब्ध होता है तो वैसी हालत नहीं आती जैसे धन को उपलब्ध होकर आती है। धन व्यर्थ हो जाता है मिलते ही। धन का सारा मजा उसके न मिलने में हैं ; जब तक नहीं मिलता तभी तक महिमापूर्ण मालूम होता है; जैसे मिला, कचरा हो जाता है !

परमात्मा के न मिलने में भी अहोभाग्य है, मिल जाने का तो फिर कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता। भक्त कहता है, तू जिस हाल रखे, हम उस हाल में राजी हैं। भक्त कहता है, हमारी गुनगुनाहट को तू छीन न सकेगा।

होंगी इसी तरह से तै मंजिलें ओज की तमाम
हां यूं ही मुस्कुराये जा, हां यूं ही गुनगुनाये जा !

सारे पड़ाव पार कर लिये जाएंगे, सारी मंजिलें पार कर ली जाएंगी।

होंगी इसी तरह से तै मंजिलें ओज की तमाम
हां यूं ही मुस्कुराये जा, हां यूं ही गुनगुनाए जा !

भक्त का आनंद सतत है। उसमें विच्छेद नहीं है। अंधेरा हो तो, रोशनी हो तो; सुबह हो तो, सांझ हो तो; बहार आए तो, पतझड़ आए तो – भक्त के लिए भेद नहीं पड़ता, क्योंकि वह हर चेहरे में उसको पहचान लेता है – जीवन आए तो, मौत आए तो ! भक्त का अर्थ ही यही है : जिसे अब भगवान धोखा न दे सकेगा।

साधक और भक्त में यहीं भेद है। साधक अपने संकल्प से जीता है; भक्त, समर्पण से। साधक कहता है, पाकर रहेंगे। साधक की भाषा में संसार छिपा है। जैसे वह धन को पाता था, वैसे ही धर्म को भी पाकर रहेगा। जैसे वह यश, पद, प्रतिष्ठा खोजता था, ऐसे ही प्रभु को भी खोजेगा। लेकिन उसकी खोज का सूत्र पुराना है : 'मैं पाकर रहूंगा ! मेरे बिना किये क्या होगा ? मैं करूंगा तो होगा।'

भक्त तो सारा हिसाब बदल देता है। भक्त कहता है : समर्पण ! मेरे किये कुछ न हुआ। देखा बहुत कर-करके, हाथ कुछ भी न आया; जैसे रेत से तेल निचोड़ते रहे, समय व्यर्थ हुआ, शक्ति का अपव्यय हुआ, कहीं पहुंचे न। अब तुझ पर छोड़ देते हैं। अब हम नाचेंगे ! अब हमने पाने की भी फिक्र छोड़ी ! अब हम न पाएं तुझे तो भी कोई फर्क न पड़ेगा, तू हमें मिला !

साधक की भाषा है –

अपने ऊपर कर भरोसा, जज्बे दिल से काम ले
यूं न साकी आयेगा, उठ बढ़ के मीना थाम ले।

साधक की भाषा है : अपने ऊपर भरोसा कर, हिम्मत से काम ले, संकल्प को जगा; ऐसे बैठे-बैठे कुछ न होगा।

यूं न साकी आयेगा, बढ़ के मीना थाम ले।

छीना-झपटी करनी होगी। यह मधु-पात्र ऐसे अपने-आप तेरे सामने न आएगा। उठ! संकल्प कर! छीन ले! संघर्ष कर!

यह साधक की भाषा है। भक्त को इस भाषा में ही संसार मालूम होता है : 'परमात्मा से भी छीनना होगा?' यह साकी ऐसा साकी तो नहीं जिससे छीनना पड़े। भक्त कहता है, 'यह तो बात की लज्जत ही न रही। परमात्मा से छीनना पड़ा, तो मिला-न-मिला बराबर हो गया। छीन-झपट से जो मिले उसका तो सौंदर्य ही चला गया। उसका प्रसाद हो! मांगना भी न पड़े। मांग भी यही कहती है कि छीन-झपट किसी-न-किसी तल पर जारी है। कहना भी न पड़े, इशारा भी न करना पड़े। वह दे, अपने से दे, मनाकर दे!'

भक्त की भाषा है –

सामने तेरे भी इक दिन दौरे महबा आएगा
तू अभी समझा नहीं साकी का ईमां, सब्र कर।

अभी तू उसके प्रेम को, उसके नियम को समझा नहीं; थोड़ा धीरज रख!

सामने तेरे भी इक दिन दौरे महबा आएगा – वह मधु-पात्र सामने तेरे अपने-आप आ जाएगा, तू थोड़ा धीरज रख। तू जरा उसके नियम की तरफ देख।

सब्र ही भक्ति की पात्रता है, अनंत धैर्य! तुम अगर एक क्षण को भी उसके अनंत धैर्य से भर जाओ, तो उसी क्षण उपलब्धि हो जाएगी। उपलब्धि में परमात्मा बाधा नहीं है, तुम्हारा अधैर्य बाधा है। इसलिए विरह से भी आसक्ति हो जाती है। भक्त विरह के गीत गाता है। वह विरह के आसपास भी सजावट कर लेता है। वह अपने रोने को भी सम्हालकर रखता है। वह अपने रुदन को भी, अपनी आहों को भी प्रार्थना बना लेता है। वह अपने रुदन के, अपने आंसुओं के ईंटों से ही अपने मंदिर को बना लेता है। वह उससे भी राजी है। वह यह नहीं कहता कि देखो, मैं कितना रो रहा हूं। वह यह कहता है कि और रुलाओ मुझे। देखो, कितना हलका हो गया हूं रो-रोकर! कितना रूपांतरित हुआ हूं! तुम जल्दी मत करना। कोई जल्दी नहीं है। तुम मुझे पूरा बदलकर ही आना!

वह आने की बात ही परमात्मा पर छोड़ देता है; अपने हृदय को खोल देता है, प्रतीक्षा करता है।

भक्ति प्रतीक्षा है, प्रयास नहीं। भक्ति समर्पण है, संकल्प नहीं। और भक्ति से बड़ी कोई कीमिया नहीं है; क्योंकि भक्ति का मूल आधार ही, सांसारिक मन का आत्मघात हो जाता है। सांसारिक मन कहता है, करने से कुछ होगा। भक्ति कहती है, करने से कुछ भी नहीं हुआ। सांसारिक मन कहता है : अहंकार! नये-नये नाम रखता है; कभी कहता है, संकल्प की शक्ति; कभी कहता है, हिम्मत, साहस, व्यक्तित्व, आत्मा – हजार नाम रखता है, लेकिन सबके भीतर तुम अहंकार को छिपा हुआ पाओगे,

सबके भीतर 'मैं' मौजूद है, 'मैं' की कम-ज्यादा मात्रा मौजूद है। और वही बाधा है।

भक्त कहता है, 'मैं नहीं, तू। जब मैं ही नहीं हूं तो क्या विरह और क्या मिलन ?' मिलन हो गया ! जहां 'मैं' मिटा वहीं मिलन हो गया। और जिसे विरह में परमात्मा दिखायी पड़ गया, उसके मिलन की तो बात ही न पूछो ! वह बात तो बात करने की न रही। उसके संबंध में कुछ भी न कहा जा सकेगा।

मीरा के सारे गीत विरह के गीत हैं – इतने मधुर, इतने गरिमापूर्ण ! सब विरह के गीत हैं। चैतन्य का नृत्य विरह का नृत्य है। मिलन के बाद तो कोई नाच ही नहीं सका। नाच भी मुश्किल हो जाता है। विरह में नाच लो थोड़ा-बहुत। विरह में बोल लो थोड़ा-बहुत; मिलन पर तो बोल बंद हो जाते हैं; मिलन तो अबोल कर जाता है; मिलन में तो सब शून्य हो जाता है। बूंद जब सागर में खो गयी, खो गयी ! अब कहां नाचेगी, अब कहां कूदेगी ? अब कहां वीणा बजेगी ? अब कहां नृत्य होगा, कहां गीत सजेंगे ? मीरा जब खो गयी सागर में तो खो गयी ! वे जो मीरा के गीत हैं, सब विरह से उत्पन्न हुए हैं; स्वभावतः विरह से भी आसक्ति हो जाएगी। इतना प्यारा था उसका न मिलना भी।

जिसने उस प्यारे की तरफ थोड़े कदम बढ़ाए, उसे उसके न मिलने में भी आनंद हो जाता है।

दूसरा प्रश्न : आपके सान्निध्य में ध्यान की गहराई का कुछ अनुभव होता है, लेकिन वह अवस्था स्थायी नहीं रहती। उसे स्थायी करने की दिशा में कृपया हमारा मार्गदर्शन करें !

● स्थायी करना ही क्यों चाहते हो ? स्थायी की भाषा ही सांसारिक है। क्षणभर को रहती है, उतनी देर अहोभाव से नाचें, उतनी देर कृतज्ञता से नाचें। उस क्षण में यह नया उपद्रव क्यों भीतर ले आते हैं कि स्थायी करना है ? जो मिला है उसकी भी पात्रता नहीं है ! अहोभाग्य कि पात्र न था, क्षणभर को उसके दर्शन हुए। नाचें ! गुनगुनाएं! आनंदित हों ! दूसरा क्षण इसी क्षण से निकलेगा, आएगा कहां से ? कल आज से ही पैदा होगा। अगर आज गीत से भरा था, तो कल इन्हीं गीतों से जन्मेगा। अगर आज तुम्हारे पैर में थिरक थी और घूंघर बंधे थे, तो कल पर भी उनकी छाया पड़ेगी। स्वभावतः कल तुम्हारे घूंघर की आवाज और सुदृढ़ हो जाएगी; बांसुरी और भी गहरी बजेगी; मस्ती और भी गहरी उतरेगी !

कल आएगा कहां से ? इसलिए तुम कल की चिंता ही छोड़ दो। स्थायी करने की चिंता में ही खो रहे हो। स्थायी करने की चिंता का अर्थ हुआ कि अभी जब मौका मिला था वह भी गंवाया; उसके लिए तुम कल का विचार करने लगे कि आज तो हो रहा है, कल क्या होगा; अभी तो लगा है थोड़ा-सा सुर, कल क्या होगा !

मेरे पास रोज ही लोग आते हैं। सभी की यही तकलीफ है, क्योंकि संसार का यह गणित है : जो न हो उसकी चिंता करो; जो मिल जाए उसकी चिंता करो कि कहीं खो न जाए ! गरीब परेशान है कि धन मिल जाए; धनी परेशान है कि कहीं खो न जाए ! दोनों परेशान हैं। परेशानी जैसे हमारी आदत है। जैसे हम कुछ भी करें, परेशानी से हम न बचेंगे, परेशानी तो हम घूम-फिरकर पैदा कर ही लेंगे।

रोज कोई-न-कोई मेरे पास आकर कहता है कि 'ध्यान में बड़ा आनंद आ रहा है, लेकिन यह टिकेगा ?' क्यों आनंद को खराब कर रहे हो ? कल जब आएगा तब कल को देख लेंगे।' और आज अगर तुम आनंदित हो सकते हो, कल भी तुम ही तो रहोगे न ? और आज अगर तुम आनंदित हो सकते हो, तो कल की ईंटें आज के ऊपर ही रखी जाएंगी, कल का भवन आज के ऊपर ही खड़ा होगा। तुम कृपा करके कल को भूलो !

कल, मन का उपद्रव है। कल तुम्हारा आज को खराब कर देगा। यह क्षण अगर शांति का था तो तुम डूबो, डुबकी लो, तुम रस-विभोर हो जाओ, तुम भूल ही जाओ समय को। इसी से आने वाला क्षण उभरेगा – और भी गहरा, और भी ताजा, और भी मदहोश ! और एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाए तो भविष्य की चिंता ही छूट जाती है।

स्थायी करने का मोह भविष्य की चिंता है। क्षण काफी है। एक क्षण से ज्यादा किसको कब कितने क्षण मिलते हैं ? एक बार एक ही क्षण तो मिलता है तुम्हें। अगर एक क्षण में तुम्हें आनंदित होने की कला आ गयी, तो सारा जीवन आनंदित हो जाएगा। जिसको एक बूंद रंगने की कला आ गयी, वह सारे सागर को रंग लेगा। एक-एक बूंद ही तो हाथ में पड़ती है, उसको रंगते जाना। दो बूंद इकट्ठी भी तो नहीं मिलतीं कि अड़चन आए कि हम तो केवल एक बूंद को ही रंगना जानते हैं, दो बूंदें एक साथ आ गयीं तो हम क्या करेंगे !

एक क्षण आता है एक बार; जब चला जाता है हाथ से तब दूसरा क्षण उतरता है। बड़ी संकीर्ण धारा है समय की ! दो क्षण भी तो साथ नहीं आते।

एक क्षण को शांत होना आ गया – हो गयी स्थायी शांति ! हो गयी शाश्वत ! अब इसे कोई भी तुमसे छीन न सकेगा। हां, तुम ही छीन सकते हो। अगर तुम इस क्षण में आनेवाले क्षण की चिंता से भर जाओ, चिंतातुर हो जाओ, तो तुमने यहीं खराब कर ली – फिर इस खराब किये हुए क्षण से अगला क्षण पैदा होगा, वह और भी खराब होगा।

तो पहली बात : पूछो मत, स्थायी कैसे करना ! इतना ही पूछो कि इसी क्षण में कैसे डूबें ! डुबकी में ही स्थायित्व है।

और दूसरी बात : 'आपके सान्निध्य में ध्यान की गहराई का कुछ अनुभव होता है... ।' जो मेरे सान्निध्य में होता है, वह मेरे कारण नहीं होता, होता तो तुम्हारे ही कारण है। जो तुम्हारे भीतर नहीं हो सकता, वह किसी के भी सान्निध्य में नहीं हो सकता। हां, मेरे सान्निध्य में सुविधा मिल जाती होगी – स्वयं से थोड़ा छूटने की, स्वयं के बंधन थोड़े ढीले करने की। मेरे सान्निध्य में थोड़ा-सा तुम अपनी पुरानी आदतों को किनारे हटा देते होओगे, बस ! होता तो तुम्हारे ही भीतर है।

इसलिए जो मेरे सान्निध्य में होता है, अब यह एक नया उपद्रव खड़ा मत कर लेना कि घर जाकर न होगा। मन तरकीबें खोजता है। मन कहता है, 'वहां हो गया था, उनके कारण हो गया था।' पाप मुझे लगेगा ऐसे। तुम अगर नरक गये तो मैं जिम्मेदार होऊंगा।

यहां तुम्हें जो थोड़ी-सी झलक मिल जाती है, उसमें मेरा कुछ हाथ नहीं है; सिर्फ तुम मेरी थोड़ी सुन लेते हो, इतनी ही तुम घर पर भी सुनना, बात हो जाएगी। इतना तुम थोड़ा-सा मुझे द्वार-दरवाजा

देते हो, थोड़ा अपने को किनारे कर लेते हो, थोड़ा अपने को बीच से हटा लेते हो – कुछ होता है। घर पर भी इतना ही हटा लेना। यह तुम्हारे ही किए हो रहा है।

छोटे बच्चे का कोई हाथ पकड़ लेता है और चला देता है – चलता तो बच्चा ही है भीतर। दूसरे के हाथ से थोड़ा सहारा मिल जाता है, हिम्मत बढ़ जाती है, अनुभव आ जाता है। मगर ये हाथ जिंदगीभर पकड़ लेने को नहीं हैं। नहीं तो इससे घसिटना ही बेहतर था, कम-से-कम खुद तो घसिटते थे, अब यह एक और उपद्रव साथ लगा; एक दूसरे का हाथ, अब यह और मजबूरी हुई, और परतंत्रता हुई।

नहीं, ऐसे किसी पर निर्भर मत हो जाना।

मेरा तो सारा आयोजन यहां यही है कि तुम परम मुक्त हो सको; उसमें मुझसे भी मुक्त होना सम्मिलित है। अगर मुझसे बंध जाओ तो तुम तो और लंगड़े हो जाओगे; तुम वैसे ही लंगड़ा रहे हो, तुम वैसे ही पंगु हो, यह तो और पक्षाघात हो जाएगा।

यहां थोड़ी-सी झलक लो, उसे झलक ही मानना; फिर उसे अपने एकांत में गहराना, ताकि तुम्हें यह भी अनुभव आ सके कि वह झलक तुम्हारे भीतर से ही आई थी। किसी के हाथ का सहारा मिला था – धन्यवाद ! लेकिन इससे ज्यादा निर्भरता न हो। ऐसे ही है जैसे कि कोई बच्चे को तैराक पानी में डाल देता है, हाथ-पैर तड़फड़ाता है बच्चा – हाथ-पैर तड़फड़ाना ही तैरने की शुरुआत है। अकेला शायद उतर भी न पाता पानी में, डरता, घबड़ाता; पर कोई तैरनेवाला पास में खड़ा है, हिम्मत... हिम्मत साथ दे गयी। जो हुआ है वह तो भीतर हो रहा है। दो-चार बार पानी में तैराक डालेगा, बच्चे के हाथ-पैर सुघड़ हो जाएंगे, फिर कोई जरूरत न रह जाएगी, फिर उसे खुद ही हिम्मत आ जाएगी। फिर तो वह दूर सागर भी पार कर ले सकता है।

मैंने सुना है, एक गांव में एक ग्रामीण किसान बैल को जोतकर अपने हल को चला रहा था। वह कोड़ा भी फटकारता जाता बैल पर और कभी कहता, 'हीरा ! जोर से', कभी कहता, 'मोती ! जोर से', कभी कहता, 'चंदा ! जोर से', कभी कहता, 'सूरज ! जोर से'। एक आदमी खड़ा देख रहा था। उसने कहा, 'इस बैल के कितने नाम हैं ?' उस किसान ने कहा, 'नाम तो इसका एक ही है – हीरा।'

'तो बाकी इतने नाम किसलिए लेते हो ?'

तो उसने कहा, 'इसकी हिम्मत बढ़ाने को। इसकी आंखें तो बंधी हैं, यह समझता है और भी बैल लगे हैं। यह हिम्मत से चला जाता है।'

बस इतना ही मेरा काम है – 'हीरा ! जोर से; मोती ! जोर से।' लगे, तुम अकेले नहीं हो। एक बार हिम्मत आ जाए तो तुम्हारी आंख की पट्टी खोल देंगे, कहेंगे, 'तुम ही चल रहे थे।'

तीसरी बात : जल्दी मत करना। धैर्य बड़ी से बड़ी शिक्षा है धर्म के मार्ग पर। क्योंकि जिसको हम खोजने चले हैं, वह इतना विराट है कि तुमने अगर जल्दी मांग की, तो तुम्हारी मांग के कारण ही न मिल पाएगा। मौसमी फूल हम बो देते हैं, दो-चार-छह सप्ताह में फूल आ जाते हैं। लेकिन अगर चिनार के वृक्ष लगाने हों, देवदार के वृक्ष लगाने हों, तो वर्षों लगते हैं। आकाश को छूनेवाले वृक्ष लगाने हों तो उनकी जड़ें भी पाताल तक पहुंचनी चाहिए।

परमात्मा आखिरी मंजिल है; उसके पार फिर कुछ भी नहीं। इतनी विराट मंजिल को पाने चले हो, और इतने कृपण हो धैर्य के संबंध में, इतनी जल्दबाजी करते हो!

तुमने देखा भक्तों को, घर-घर में मंदिर बनाकर बैठे हैं, जल्दी से घंटी बजा लेते हैं, फूल चढ़ा देते हैं। उनके हाथ-पैर देखो, इतनी जल्दी में हैं वे कि उनके ये कृत्य देखकर ही भगवान उनसे न मिलेगा! बुलाने में भी तो थोड़ा सलीका हो। उसे पुकारो, थोड़ा सोचो भी कि किसे पुकारा है! थोड़ा सौजन्य तो सीखो! इतना बड़ा निमंत्रण भेज रहे हो; जरा सोच-समझकर पाती लिखो!

लेकिन बड़ा अधैर्य है! तुम अगर अपने अधैर्य पर विचार करोगे तो तुम्हें अपना सारा कृत्य बचकाना मालूम पड़ेगा। कोई रोज गीता पढ़ लेता है, कोई पूजा कर लेता है, कोई फूल चढ़ा देता है, कोई मंदिर में सिर झुका आता है – लेकिन क्या कर रहे हो तुम? और फिर इससे तुम आशा बांधने लगते हो कि अभी तक मिला नहीं; अभी तक स्थायी आनंद नहीं मिला; अभी तक परमात्मा का कोई दर्शन नहीं हुआ! नहीं, यह भक्त का ढंग नहीं।

हम भी तस्लीम की खू डालेंगे
बेनियाजी तेरी आदत ही सही।

देर लगाना तेरी आदत हो, कोई हर्जा नहीं; हम भी सब्र की आदत डाल लेंगे, और क्या! अगर तू देर करता है, ठीक। जितनी देर तू कर सकता है, उससे ज्यादा देर धैर्य रखने की हम आदत डाल लेंगे।

हम भी तस्लीम की खू डालेंगे
बेनियाजी तेरी आदत ही सही

जल्दी में मत पड़ना। जल्दी ही तनाव पैदा कर देती है। जल्दी के कारण ही मन में बेचैनी पैदा हो जाती है। धीरज से चलो! अनंत-अनंत काल मौजूद है। मन में बेचैनी पैदा हो जाती है। धीरज से चलो! अनंत-अनंत काल मौजूद है। कहीं कोई जल्दी नहीं है। समय की अनंत धारा मौजूद है; न कोई छोर है न कोई ओर है; न कोई प्रारंभ है न कोई अंत है। इस शाश्वत में तुम व्यर्थ ही परेशान हुए जा रहे हो। तुम दौड़-धूप किसलिए कर रहे हो? तुम्हारी दौड़-धूप से कुछ जल्दी न हो जाएगा। जल्दी की जरूरत नहीं।

जरा वृक्षों को देखो, कैसे अलसाए हुए हैं! चांद-तारों को देखो, कैसे चुपचाप गतिमान हैं! कहीं पहुंचने की कोई जल्दी तुम्हें अस्तित्व में दिखायी पड़ती है? अस्तित्व ऐसा शांत है जैसे पहुंचा ही हुआ हो; पहुंचने की जल्दी मालूम ही नहीं होती।

ऐसा ही भक्त भी है, उसने अस्तित्व की भाषा समझ ली है। वह कोई जल्दी में नहीं है। वह कोई प्रार्थना इसलिए नहीं करता कि भगवान प्रार्थना करने से मिलेगा – प्रार्थना उसका आनंद है। वह पूजा इसलिए नहीं करता कि ठीक है, पूजा करने से मिलता है तो चलो पूजा किये लेते हैं। यह कोई साधन नहीं है पूजा, यह साध्य है। वह अहोभाव से भरा है, आनंद से भरा है; कैसे अपने आनंद को प्रगट करें, किस भाषा में परमात्मा से कहें कि तेरे अनंत आशीषों की वर्षा मेरे ऊपर है! तुतलाकर – पूजा की भाषा में, भजन की, कीर्तन की भाषा में कह देता है कि तेरी अनंत अनुकंपा मेरे ऊपर है! प्रार्थना

से वह कुछ पाना नहीं चाहता।

और मजा यही है कि जिसने प्रार्थना से कुछ पाना न चाहा, उसे सब मिला। और जिसने प्रार्थना में भी पाने का जहर डाल दिया, उसकी प्रार्थना भी मर गयी, और कुछ मिलने की तो बात ही न रही।

प्रार्थना में जहां मांग आई, जहर आया। प्रार्थना में जहां कामना प्रविष्ट हुई, प्रार्थना तिरोहित हुई।

तो प्रार्थना प्रार्थना के आनंद के लिए है। फिर इसी क्षण में तुम खूब सुखी हो उठोगे। दूसरा क्षण इसी से आएगा, आता रहेगा, आता ही रहा है।

तीसरा प्रश्न : भक्त अंतिम अवस्था तक आराध्य को नहीं भुला पाता है, क्या मुक्ति के लिए अंततः आराध्य की छवि का विसर्जन भी अनिवार्य है?

● प्रश्न भक्त का नहीं है। भक्त तो चाहता ही नहीं मुक्ति को। भक्त तो कहता है, 'ऐसा मत करना कि मुक्ति हो जाए! ये बंधन बड़े प्यारे हैं!'

भक्त कहता है, 'मुक्ति को छोड़ने को तैयार हैं; भगवान, तुझे छोड़ने को तैयार नहीं। तू मुक्ति अपनी सम्हाल। किसी और को दे देना, और बहुत भिखारी हैं! हमें तो तू ही काफी है। तू हमें हजार-हजार बंधनों में बांध! तू प्रेम के न मालूम कितने डोले सजा! तू हमें प्रेम की यात्रा पर ले चल!'

'मुक्ति' भाषा ही भक्त की नहीं है। तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं, बहुत सी भाषाएं गड्डमगड हो गयी हैं। तुम पूछते हो, 'मुक्ति के लिए भगवान बाधा है?' पर भक्त मुक्ति मांगता नहीं – और भक्त मुक्त हो जाता है, मांगता नहीं। भक्त की मुक्ति निश्चित है, लेकिन भक्त के बिना मांगे घटती है।

अब इसको भी थोड़ा समझना।

भक्त के अतिरिक्त जितने मार्ग हैं वे मुक्ति मांगते हैं। भगवान का वे उपयोग करते हैं साधन की तरह, माध्यम की तरह। योग में पतंजलि भगवान को भी एक साधन मान लेते हैं : 'ईश्वर के प्रति समर्पण, यह और विधियों में एक विधि है; इस भांति व्यक्ति परम मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है।' भगवान के ऊपर है मोक्ष! और भगवान एक विधि है और विधियों में! अनिवार्य विधि भी नहीं है, क्योंकि बुद्ध बिना भगवान को माने भी मुक्ति की राह बता देते हैं; महावीर बिना भगवान को माने भी मुक्ति की राह बता देते हैं।

तो पहली तो बात : और विधियों में एक विधि है। दूसरी बात : विधि भी अनिवार्य नहीं है, छोड़ी जा सकती है।

भक्त के अतिरिक्त जो मार्ग हैं – ज्ञान के, योग के, हठ के, क्रिया के – उन सब में मुक्ति परम है। भगवान को अगर किसी ने जगह दी भी है, तो एक साधन की तरह। भक्त के लिए भगवान परम है।

मुक्ति क्या है भक्त के लिए? भक्त के अतिरिक्त जो साधक हैं, उनके लिए – ऐसी घड़ी का आ जाना जहां वे भगवान से भी मुक्त हो जाएं, मुक्ति है; जहां दूसरा न रह जाए, स्वयं का होना ही आत्यंतिक हो जाए, आखिरी हो जाए, कोई दूसरा न हो। इसलिए महावीर ने उस परम अवस्था को 'कैवल्य' कहा – एकमात्र तुम्हारी चेतना बचे! या आत्मा कहा, परमात्मा कहा। महावीर का

'परमात्मा' शब्द भगवान का पर्यायवाची नहीं है — परमात्मा का अर्थ है : आत्मा की परम स्थिति, आखिरी ऊंचाई; तुम इस ऊंचाई पर आ गये, जिससे और ऊपर कोई ऊंचाई नहीं।

भक्त के लिए मुक्ति क्या है?

भक्त कहता है, 'ऐसी घड़ी आ जाए कि तू ही तू रह जाए, मैं न रहूं।'

भक्त के अतिरिक्त लोग हैं, वे कहते हैं, 'ऐसी घड़ी आ जाए, मैं ही मैं रहूं, तू न रहे।'

भक्त कहता है, 'मैं! मैं ही तो उपद्रव हूं, मैं मिट जाऊं; बस तू ही तू रह जाए!'

भक्त कहता है, 'बांधनेवाला तेरा बंधन तो रहे, बंधनेवाला मैं न रह जाऊं! तेरा बंधन तो मुझे हजार-हजार रंग-रूपों में बांध ले, लेकिन मैं तुझ में लीन हो जाऊं।'

भक्त अपने को मिटाना चाहता है भगवान में। भक्त के अतिरिक्त जो हैं वे भगवान को मिटा लेना चाहते हैं अपने में। भक्त की भी मुक्ति फलित होती है, पर बड़ी अनूठी है उसकी मुक्ति! उसमें भक्त खो जाता है, भगवान बचता है। इसलिए भगवान को खोकर तो भक्त मुक्ति मांग ही नहीं सकता, वह तो असंभव है।

पूछा है : 'भक्त अंतिम अवस्था तक आराध्य को नहीं भुला पाता है...'

भुलाना चाहता नहीं। तुम उसे भुलाने के रास्ते बताओ, वह भाग खड़ा होगा कि यह क्या रास्ता बता रहे हो! वह कहेगा, 'दूर ही रखो अपने सिद्धांत! बामुश्किल तो किसी तरह उसका सहारा पकड़ पाये हैं और तुम भुलाने का उपाय बताते हो!' भक्त तुमसे पूछेगा, 'ऐसा कुछ बताओ कि वह ही वह रह जाए और मैं भूल जाऊं!'

भक्त भगवान से ही पूछ लेता है अंतिम क्षणों में; और किसी से पूछने की उसे जरूरत भी नहीं है। जैसे-जैसे राग बंध जाता है, जैसे-जैसे भीतर का तार उसी के तारों के साथ नाचने लगता है, जैसे-जैसे संगीत लयबद्ध होता है — वह उसी से पूछने लगता है। वह कहता है, 'अब तू ही बता दे!'

भक्त औरों को तो पागल मालूम पड़ेगा, क्योंकि उसकी भाषा प्रेम की है।

इक बात भला पूछें, तुम कैसे मनाओगे?
जैसे कोई रूठा हो और तुमको मनाना हो

वह भगवान से ही पूछ लेता है कि सुनो —

इक बात भला पूछें, तुम कैसे मनाओगे?
जैसे कोई रूठा हो और तुमको मनाना हो

वह बात करने लगता है सीधी! भक्ति संवाद है! वह किसी और से पूछता नहीं; वह भगवान से ही पूछता है। जिसके तार उससे ही जुड़ गये, अब किसी और से पूछने की जरूरत भी न रही।

तेरा गम, राज़ मेरा, खामोशी मेरी, सुखन मेरा
यही है रूह मेरी, हुस्न मेरा, पैरहन मेरा।

वह कहता है, 'तेरे मिलने की तो बात दूर, तुझे न मिलने का जो दुख है, वह भी इतना प्यारा है। यही मेरा रहस्य है, तुझे न पाने की पीड़ा, राज़ मेरा, खामोशी मेरी — तू मिलकर तो क्या करेगा, पता नहीं; तेरी अनुपस्थिति के बोध ने भी मुझे खामोश कर दिया, मौन कर दिया। सुखन मेरा! तेरे

न मिलने से भी मेरे भीतर अनाहत-वाणी का नाद शुरू हुआ है, मिलने से क्या होगा पता नहीं! यही है रूह मेरी! और अब तो तेरी गैर-मौजूदगी की पीड़ा ही मेरी आत्मा है। हुस्न मेरा! यही है सौंदर्य मेरा! पैरहन मेरा! यही मेरे वस्त्र हैं! यही मेरी आत्मा है। यही मेरी देह है! यही मेरी वाणी है, यही मेरा मौन है – तेरे न मिलने का गम...!

परमात्मा के मिलने पर भक्त उसी से पूछ लेता है कि अब तू ही बता दे, कैसे अपने को पूरा-पूरा खो दूं। धीरे-धीरे खोता ही चला जाता है। एक-एक कदम मिटता ही चला जाता है।

यह प्रश्न हमारे मन में उठता है, क्योंकि हमने बुद्धि से सोचा है। हमने बुद्धि से शास्त्र पढ़े हैं। शास्त्रों में लिखा है, जब तक दो रहेंगे, द्वैत रहेगा, तब तक तो संसार रहेगा; अद्वैत चाहिए। माना, निश्चित ही अद्वैत चाहिए। लेकिन अद्वैत दो ढंग का हो सकता है : या तो भगवान मिटे या भक्त मिटे।

तुम जरा अपने से पूछना, तुम्हारा मन कहेगा : 'भगवान ही मिटे। मैं और मिटूं! यह बात जंचती नहीं।' तुम भगवान को ही अपने लिए मिटा लेना चाहते हो, इसलिए मुक्ति का सवाल उठता है। पर यह तो बड़े अहंकार की भाव-दशा हुई। यह तो अगर तुम ठीक से समझो, तो योग, तप, तपश्चर्या के नाम पर आखिरी नास्तिकता हुई। तुमने शब्द अच्छे खोजे – 'अद्वैत' ...लेकिन छिपा ले गये नास्तिकता को। बातें तुमने बड़ी धार्मिक कीं, लेकिन आखिर में अपने को बचा लिया।

जो धर्म तुम्हें न मिटाये वह धर्म ही नहीं। धर्म तो आत्मविसर्जन है; स्वयं को पिघलाना, बहा देना है। तुम्हारी अकड़ पिघल जाए; बर्फ की तरह जमी तुम्हारी छाती पिघल जाए; तुम बह जाओ सब दिशाओं में; तुम उसके अस्तित्व के साथ एक हो जाओ!

मुक्ति की बातें ही क्या हैं? अपने से मुक्त होना है, अस्तित्व से थोड़े ही मुक्त होना है! भगवान यानी अस्तित्व। नामों पर मत जाना। भगवान कहो, सत्य कहो, निर्वाण कहो, मोक्ष कहो – जो तुम्हारी मर्जी हो। लेकिन अस्तित्व और तुम... तुम बड़े छोटे हो। एक छोटी-सी बूंद महासागर के सामने, यह आकांक्षा कर रही है कि किसी तरह महासागर मिट जाए! वह आकांक्षा ही भ्रांत है।

मुक्ति यानी अपने से मुक्ति। और भगवान में मिटने के लिए भक्ति से और ज्यादा सुगम कोई उपाय नहीं है। इसलिए नारद ने कहा, भक्ति सभी साधनों में श्रेष्ठ है। क्योंकि पहले चरण से ही तुम्हारे मिटने की यात्रा शुरू हो जाती है। सुगम है, नारद ने कहा। और मार्गों पर पीछे अड़चन आती है, क्योंकि पहले तो तुम मजबूत होते चले जाते हो; फिर एक घड़ी आती है, तब मजबूत हो गये अहंकार को छोड़ना पड़ता है। भक्ति पहले ही कदम से तुम्हें बिखेरने लगती है।

इसलिए दुनिया में बहुत कम भक्त हुए हैं, योगी बहुत हुए। तुम्हारा समझना शायद उलटा हो। तुम शायद सोचते हो भक्त तो बहुत हुए हैं। भक्त न के बराबर हुए हैं, क्योंकि भक्त होना दुस्साहस है। योगी होने में दुस्साहस नहीं है। तुम अपने मालिक हो – सिर के बल खड़े रहो कि आसन लगाओ कि सांस रोको कि जो तुम्हें करना हो करो; लेकिन तुम अपने मालिक हो। संकल्प मजबूत होता चला जाता है, अहंकार तीखा होता चला जाता है, धार पैनी होती चली जाती है। इसलिए योगियों के अहंकार की धार को देखो, तलवार की तरह चमकती है!

भक्त झुकता है। भक्त अपने को बिखेरता है। भक्त बड़ा कमनीय हो जाता है, कोमल हो जाता

है, नाजुक हो जाता है। योगी पथरीला हो जाता है, जिद्दी हो जाता है, अकड़ जाता है, कुछ करने का खयाल आ जाता है। योगी सिद्धि की तलाश में है, शक्ति मिल जाए। भक्त सिर्फ अपने को खोने चला है।

'अंततः क्या मुक्ति के लिए आराध्य की छवि का विसर्जन भी अनिवार्य है ?'

तुम ही खो जाते हो। आराधक खो जाता है। स्वभावतः जब आराधक खो जाता है, आराध्य भी खो जाता है, क्योंकि आराध्य बचेगा कहां जब आराधक न बचा ? जब भक्त न बचा तो भगवान कहां बचेगा ? मगर खोने की शुरुआत होती है भक्त से : इधर भक्त खोया, उधर भगवान गया; एक ही बचा। अब उसे तुम जो चाहे कहो – भक्त कहो, भगवान कहो, सब एक ही है।

लेकिन प्रश्न पूछा गया है साधक के दृष्टिकोण से, भक्त के दृष्टिकोण से नहीं – 'आराध्य को खोना है ! उसकी छवि खो जाती है !' देखनेवाला खो जाता है, स्वभावतः दृश्य भी खो जाता है। एक ही ऊर्जा बचती है। न दृश्य होता न द्रष्टा होता; एक ही ऊर्जा बचती है। कहो उसे दर्शन की ऊर्जा... । मगर भक्ति की भाषा में उचित होगा, कहो – प्रेम की ऊर्जा। न प्रेमी बचता है न प्यारा बचता है – प्रेम ही लहरें लेने लगता है।

लामकाने-कोकबे-तकदीरे-आदम इश्क है
पासबाने-अजमते-तामीरे-आदम इश्क है
ख्वाबे-आदम इश्क है, ताबीरे-आदम इश्क है
इश्क है, हां इश्क है मेमारे-कसरे-दो जहां।

मनुष्य के भाग्य-नक्षत्र को चमकानेवाला ईश्वर प्रेम है। मानव-निर्माण की प्रतिष्ठा का रक्षक प्रेम है। मनुष्य का स्वरूप प्रेम है। स्वप्न प्रेम है। लोक-परलोक दोनों दुनियाओं का निर्माता प्रेम है।

प्रेम ही बचता है।

ऐसा समझो कि गंगा बहती है, दो किनारों के बीच। दो किनारे – एक भक्त, एक भगवान; बीच में जो बह रही है धारा प्रेम की, भक्ति की, असली गंगा तो वही है। लेकिन साधक भगवान को खोना चाहता है, भक्त अपने को खोना चाहता है; यद्यपि दोनों दिशाओं से दोनों खो जाते हैं, अंततः बीच की धारा ही रह जाती है, गंगा ही बचती है प्रेम की।

चौथा प्रश्न : कल संध्या दर्शन के समय दो विकल्प थे। मैंने चरणस्पर्श करने का निर्णय इसलिए लिया कि बहुत समय बाद क्षणभर को अपने प्रीतम को निकट से देखूंगा; लेकिन वह क्षण आया तो ऊपर आपकी ओर देखा ही न गया। और अब रोता हूं, रोता हूं। ऐसा क्यों हो जाता है आपके निकट ?

● देखने के लिए सिर उठाना जरूरी थोड़े ही है – सिर झुकाकर भी देखा जाता है। असली देखना तो सिर झुकाकर ही देखना है। नाहक रोओ मत। और जिसने सिर झुकाकर देख लिया, फिर सिर उठाकर देखने का कोई सवाल ही नहीं। इसलिए न उठा होगा सिर।

आंखों से थोड़े ही देखना होता है, अन्यथा देखना बड़ा आसान हो जाता। आंखें तो सभी की

खुली हैं, अंधा कौन है? आंखों से ही देखना होता तो सभी कुछ हो जाता। देखना कुछ आंखों से ज्यादा गहरी बात है – हृदय की है। और हृदय तभी देख पाता है जब झुकता है। फिर उठने की खबर किसको रह जाती है!

नहीं, कुछ भूल हो गयी है। तुम अपने रोने को नहीं समझ पा रहे हो। तुमने व्यर्थ का एक बौद्धिक उलझाव और समस्या खड़ी कर ली है। तुम्हारी व्याख्या में कहीं भूल हो गयी है, अन्यथा तुम खुश होते; अन्यथा तुम्हारा रोना आनंद का रोना हो जाता। फिर से देखना।

यह घटना बहुत बार घटेगी, इसलिए समझ लेना जरूरी है। बहुत बार ऐसा होता है, जब हृदय से कुछ घटता है तो भी बुद्धि पीछे से आकर व्याख्या करती है। हृदय तो व्याख्या करता नहीं, अव्याख्य है; घटता है कुछ, भोगता है; लेकिन काट-पीटकर विश्लेषण नहीं करता। हृदय के पास विश्लेषण है ही नहीं। हृदय तो जोड़ना जानता है, तोड़ना नहीं। हृदय तो अनुभव कर लेता है, लेकिन फिर अनुभव के पीछे खड़े होकर उसका बौद्धिक विश्लेषण नहीं करना जानता। तो जैसे ही अनुभव हो गया, बुद्धि तत्क्षण झपट्टा मारती है; जैसे कहीं लाश पड़ी हो तो चीलें झपट्टा मारती हैं, गिद्ध झपट्टा मारते हैं, हृदय ने जो अनुभव किया, जैसे ही अनुभव हो गया, अतीत में चला गया, अनुभव मर चुका, वैसे ही बुद्धि झपट्टा मारती है, बुद्धि की चील झपट्टा मारती है, पकड़कर मुर्दा चीज की चीर-फाड़ करती हैं – पोस्टमार्टम! उसमें हिसाब लगाती है, क्या हुआ! और सब गड़बड़ हो जाता है। क्योंकि बुद्धि को तो अनुभव हुआ न था; जिसको अनुभव हुआ था उसने व्याख्या न की और जिसको अनुभव नहीं हुआ वह व्याख्या करता है।

पूछा है : 'कल संध्या दर्शन के समय दो विकल्प थे। मैंने चरण-स्पर्श करने का निर्णय इसलिए लिया कि बहुत समय बाद क्षणभर को अपने प्रीतम को निकट से देखूंगा; लेकिन वह क्षण आया तो ऊपर की ओर देखा ही न गया।'

जरूरत ही न थी। भीतर देखने की जरूरत है। प्रीतम बाहर नहीं है। आंख खोलने की कम, आंख बंद करने की जरूरत है। प्रीतम बाहर नहीं है। जिस दिन तुम मुझे अपने भीतर देखोगे, उसी दिन मुझे देखा; उसके पहले तो देखने की तैयारी है; उसके पहले तो देखने की बारहखड़ी है।

फिर पीछे सोचा होगा।

'और अब रोता हूं, रोता हूं।' अब बुद्धि ने कहा होगा, 'यह तुमने क्या किया?' बुद्धि पीछे से आ जाती है परेशान करने को। अगर तुम हृदय से इस बात को समझो, तो जिस क्षण झुके, उस क्षण कुछ ऐसा हुआ –

> बेखुदी कहां ले गयी हमको
> देर से इंतजार है अपना!

झुके जब तुम, खो गये एक क्षण को, एक क्षण को तुम न रहे – उस झुकने में विसर्जित हो गये। इसलिए लौटकर देखने का खयाल न आ सका। कोई था ही नहीं जो देखता। एक क्षण को सब शांत हो गया; कोई लहर न उठी। एक अनूठा क्षण आया! एक झरोखा खुला! लेकिन झरोखा तभी खुलता है जब तुम नहीं होते। फिर पीछे से तुम लौट आये। तब तक झरोखा बंद हो गया। अब तुम

पछताते हो। अब तुम रोते हो। दुबारा ऐसी भूल मत करना।

बुद्धि को हृदय का विश्लेषण करने की आज्ञा मत दो। बुद्धि के विश्लेषण अटकाते हैं, भटकाते हैं; जो जैसा है उसे वैसा ही नहीं देखने देते। बुद्धि की धारणाएं आकर बड़ा धुआं खड़ा कर देती हैं।

स्मरण रखो –

> जो राह अहले-खिरद के लिए है ला-महदूद
> जुनुने-इश्क को वह चन्दगाम होती है।

बुद्धि के लिए जो रास्ता बहुत ही लम्बा है, प्रेम के लिए दो-चार कदम का भी नहीं।

जो राह अहले-खिरद के लिए है ला-महदूद – जिसका अंत ही नहीं आता; बुद्धि के लिए जो चलता ही जाता है रास्ता... जुनूने-इश्क को वह चन्दगाम होती है – लेकिन जो प्रेम में मतवाला है, प्रेम में पागल है, उसके लिए कुछ कदम ही काफी हैं। अगर प्रेम का मतवालापन पूरा-पूरा हो, उसकी त्वरा पूरी हो, तो एक ही कदम काफी है। एक कदम से हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। लेकिन वह कदम हृदय से उठना चाहिए, बुद्धि और विचार से नहीं।

अब दुबारा जब झुको तो बुद्धि को मौका मत देना व्यर्थ बीच में आकर उपद्रव करने का। जब झुको तो हृदयपूर्वक उस क्षण को अनुभव करने की कोशिश करना : 'क्या हुआ !' हृदय से ही ! सोच-विचार की कोई जरूरत नहीं है – सिर्फ जागने की, जागरूकता की, होश की जरूरत है। थोड़ा जागकर उस क्षण में देखना, तुम अपने को न पाओगे। और जहां तुमने अपने को न पाया, वहीं द्वार खुला है; क्योंकि तुम ही दरवाजा, तुम ही दीवाल हो। तुम अगर हो तो दीवाल, तुम अगर नहीं हो तो दरवाजा।

> अब उठा ही चाहता है होश के रुख से नकाब
> भर चुकी है अक्ल का बहुरूप नादानी बहुत।

अब बहुत हो चुका। और नासमझी ने बुद्धिमानी के बहुत रूप रख लिये और बहुत दिन धोखा दिया।

भर चुकी है अक्ल का बहुरूप नादानी बहुत – जिसको तुम बुद्धिमानी कहते हो वह सिर्फ नादानी है। नादानी ने बुद्धिमानी के बहुत रूप रखे हैं, बहुत-बहुत तरह से तुम्हें बुद्धिमान बनने का धोखा दिया है। छोड़ो अब उसे।

अब उठा ही चाहता है होश के रुख से नकाब – घड़ी पास आती है, जब अगर तुम थोड़े सम्हले; झुके और उठे न; झुके और सोचा न; बाहर देखने की चिंता न की, क्योंकि प्रीतम भीतर है; झुके तो झुके रह गये, तो गये, लौटे न; बुद्धि को मौका न दिया, हृदय के ही पूरे हो रहे – तो ज्यादा दूर नहीं है। अब उठा ही चाहता है होश के रुख से नकाब – तो तुम्हारे भीतर जो होश दबा पड़ा है उसका घूंघट उठ जाएगा। और बुद्धिमानी के नाम पर नादानी बहुत धोखा दे चुकी, अब जाग जाने का समय है !

पांचवां प्रश्न : आपको रोज-रोज सुनते हैं, रोज-रोज देखते हैं; फिर भी जी क्यों नहीं भरता ? और कहीं बाहर भी चले जाते हैं तो भी जी यहीं लगा रहता है। कृपा कर समझाइये !

● जी की बातें समझायी नहीं जाती। और समझना हो तो अपने जी से ही पूछना चाहिए। बात समझने-समझाने की नहीं है।

समझ तो तुम गये हो; लेकिन जो मैंने अभी-अभी कहा कि बुद्धि लौट-लौटकर हृदय पर कब्जा करती है; बुद्धि हृदय को मुक्त भाव से जीने नहीं देती; बुद्धि हृदय को सहज भाव से प्रवाहित नहीं होने देती – वह लौट-लौटकर आ जाती है। अब अगर तुम्हारा मन लग गया है, अगर तुम्हारे हृदय के तार मेरे हृदय के तारों से कहीं जुड़ गये हैं तो बात सीधी-साफ है, समझना- समझाना क्या! जाहिर है कि प्रेम में पड़ गये हो, पागल हो गये हो! नहीं तो कोई रोज-रोज सुनने आता है?

मकतबे-इश्क का दुनिया में है निराला उसूल
उसको छुट्टी न मिली जिसको सबक याद हुआ।

साधारण दुनिया में और पाठशालाएं हैं, वहां जिसको सबक याद हो जाता है उसको छुट्टी मिल जाती है, बात खत्म हुई! लेकिन प्रेम की पाठशाला का बड़ा उलटा ढंग है।

मकतबे-इश्क का दुनिया में है निराला उसूल
उसको छुट्टी न मिली जिसको सबक याद हुआ।

तुम्हें सबक याद हो गया है। अब जी कहीं लगेगा न। और यह सबक ऐसा है कुछ कि सीख गये तो सीख गये, फिर भूलने का उपाय नहीं। इसलिए तो लोग सीखने में बड़ी आनाकानी करते हैं। सीखते ही नहीं। ठीक ही करते हैं एक हिसाब से; सीख गये तो फिर भूल नहीं सकते। तो जितनी देर करनी हो, सीखने के पहले ही कर लेना। अंगुली तुमने मेरे हाथ में दी तो पहुंचा बहुत दूर नहीं है।

अंतिम दो प्रश्न : भक्ति-सूत्र के रचनाकार नारद बहुआयामी व्यक्तित्व के मालूम पड़ते हैं। झगड़ा लगाने में उन्हें विशेष रस मिलता है। वृद्धावस्था में भी कामिनी-कांचन के प्रति उनका मोह कायम रहता है। ढाई घड़ी से अधिक एक जगह टिकते नहीं। कृपापूर्वक इस रहस्य-भरे व्यक्तित्व पर थोड़ा प्रकाश डालें।

● रहस्य कुछ भी नहीं है, सीधी-सीधी बातें हैं। लेकिन हम इतने उलटे हो गये हैं। रहस्य हम में है, नारद में नहीं। ऐसा कुछ है कि सारी दुनिया शीर्षासन कर रही है और एक आदमी सीधा खड़ा है, तो उलटा मालूम होता है।

सीधे-से सूत्र हैं। झगड़ा लगाने में उन्हें विशेष रस लगता है। झगड़ा मिटाने का एक ही उपाय है : उसे पूरा-पूरा लगा देना, अन्यथा झगड़ा मिटता ही नहीं। जो चीज पूरी हो जाती है, मिट जाती है। इतनी-सी सार की बात है नारद के सारे झगड़े में। बड़ा सूत्रात्मक है।

जिस चीज को भी तुमने दबाया उसी में उलझ जाओगे। झगड़े को पूरा हो ही लेने देना। अगर तुम्हारे भीतर बुद्धि में और हृदय में झगड़ा है तो उसे पूरा हो लेने दो; उसे पहुंच जाने दो अंतिम सीमा तक; उसे उठने दो; उसको सौ डिग्री तक बढ़ने दो। इससे बीच में अगर जल्दी की और कच्चे-कच्चे तुमने उसको रोक लिया, तो उलझे रह जाओगे, खंडित रह जाओगे। अगर तुम्हारी प्रार्थना और कामना

में झगड़ा है तो झगड़े को दबाना मत, उभारना। अगर तुम्हारे क्रोध में और प्रेम में झगड़ा है तो उसको उभारना, दबाना मत। उभारने का अर्थ है : रेचन, केथारसिस। उसे पूरा का पूरा ले आना।

बाकी कथाएं तो प्रतीक हैं। जहां कहीं झगड़ा हो, नारद संलग्न हो जाते हैं। झगड़े को पूरा उभार ले आना, उसको पूरा रूप दे देना – उसकी मृत्यु है। कुछ चीजें हैं जो पूरी होकर मर जाती हैं और बिना पूरे हुए कभी नहीं मरतीं। जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से अपने-आप गिर जाते हैं, पके फल वृक्ष से अपने-आप टपक जाते हैं; कच्चे फलों को तोड़ना पड़ता है।

नारद का झगड़ा और झगड़े में रस फलों को पकाने की प्रक्रिया है। इसके पीछे बड़ी सार्थक बातें जुड़ी हैं। लेकिन नारद की इस तरह से कभी कोई व्याख्या नहीं हुई, इसलिए कठिनाई हो गयी। और नारद जैसा अनूठा व्यक्तित्व हंसी-मजाक का कारण हो गया।

'वृद्धावस्था में भी कामिनी-कांचन के प्रति उनका मोह कायम रहता है।' इसका कुल अर्थ इतना है कि वृद्धावस्था में भी उनकी युवावस्था नहीं खोती। बुढ़ापा भी उन्हें बूढ़ा नहीं कर पाता – इतना-सा मतलब है। मौत उन्हें मार न पाएगी। जिसको बुढ़ापे ने बूढ़ा कर दिया उसको मौत मार डालेगी। ये तो प्रतीक हैं। इतनी ही खबर है इस बात में कि नारद ताजे बने रहते हैं, युवा बने रहते हैं – अंतिम क्षणों तक!

लेकिन 'कामिनी-कांचन' शब्द आते से ही घबड़ाहट हो जाती है। फिर हम भूल जाते हैं प्रतीक की भाषा को। यही कबीर ने कहा है, लेकिन उनकी बात को किसी ने उलटा नहीं समझा क्योंकि भाषा उन्होंने तुम्हारी समझ में आ सके, ऐसी उपयोग की है। कबीर ने कहा है : 'ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया! खूब जतन से ओढ़ी चदरिया, ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया।' यह भी वही बात है; प्रतीक अलग है।

नारद बूढ़े नहीं होते; चादर जवान रहती है, ताजी रहती है, ज्यों की त्यों रहती है, एक रेखा नहीं पड़ती। लेकिन 'कामिनी-कांचन' साधुओं ने दोनों शब्दों को बड़ा खराब कर दिया है; गालियां हैं। किसी को यह कह दिया कि कामिनी-कांचन में रस है, बस नरक का द्वार उसके लिए खोल दिया।

भक्त के लिए कामिनी और कांचन में भी परमात्मा ही है। भक्त की भाषा दमन की नहीं है, ऊर्ध्व-आरोहण की है। भक्त यह कहता है, जहां भी सौंदर्य है उसी का है : कहीं कामिनी में प्रगट है, कहीं फूल में प्रगट है, कहीं चांद-तारों में प्रगट है! रूप उसने कुछ भी रखे हों, रूपायित वही हुआ है। मिट्टी भी उसी की है, सोना भी उसी का है। मिट्टी की भी अपनी सुगंध है; सोने का अपना सौंदर्य है। भक्त न तो मिट्टी के पक्ष में है, न सोने के विपरीत है। भक्त विभाजन नहीं करता। भक्त ने अविभाज्य रूप से परमात्मा को अंगीकार किया है; बाहर भी विभाजन नहीं करता, अपने भीतर भी विभाजन नहीं करता; भीतर भी अपने को स्वीकार करता है – जैसा उसने बनाया है, वैसा ही स्वीकार करता है। भक्त के मन में त्याज्य कुछ भी नहीं है; भोग भी नहीं है, क्योंकि भोग भी 'उसका' ही प्रसाद है।

भक्त को समझना बड़ा कठिन है। योगी-तपस्वियों को हम समझते हैं; क्योंकि वे हम से विपरीत हैं, समझना आसान है। हम धन के पीछे दौड़ रहे हैं, वे धन छोड़कर भाग रहे हैं – दोनों भाग रहे हैं; दोनों धन से जुड़े हैं : एक धन के लिए भाग रहा है, एक धन से दूर भाग रहा है। भाषा में कठिनाई

नहीं है। हमारी पीठ एक-दूसरे की तरफ होगी, लेकिन बंधे हम एक ही चीज से हैं – धन! हम स्त्री के पीछे दीवाने हैं; वह स्त्री से बचने के पीछे दीवाना है – बाकी दोनों की नजर स्त्री पर लगी है। दोनों स्त्री से गुंथे हैं।

भक्त भाग ही नहीं रहा। नारद तो अपना एकतारा बजा रहे हैं; वे भागते-करते नहीं। उन्हें सब स्वीकार है। उन्होंने दोनों लोक को स्वीकार किया है। यही उनकी कथाओं का अर्थ है कि वे पृथ्वी से वैकुंठ दिन-रात यात्रा कर रहे हैं। उनका आवागमन अनवरुद्ध है, उन्हें कहीं कोई रोकने वाला नहीं है। इस लोक से उस लोक जाने में कोई सीमा नहीं। मतलब इतना है। इस लोक और उस लोक के बीच में कोई सेतु नहीं बनाना पड़ रहा है उन्हें; दोनों जुड़े हैं, अखंड हैं। कहना ही मुश्किल है कि कहां यह लोक समाप्त होता है और कहां वह लोक शुरू होता है। कहीं कोई चुंगी-नाका नहीं है। निर्बाध नारद यहां से वहां एक ही संगीत की लय पर, एक ही एकतारे को बजाते हुए वैकुंठ को पृथ्वी से जोड़ते रहे हैं। उनका एकतारा दो लोकों को एक कर रहा है। उनकी यात्रा अनूठी है।

नारद के व्यक्तित्व को फिर से पूरा का पूरा समझने की जरूरत है। क्योंकि नारद का व्यक्तित्व अगर ठीक से समझा जा सके तो दुनिया में एक नये धर्म का आविर्भाव हो सकता है – एक ऐसे धर्म का जो संसार और परमात्मा को शत्रु न समझे, मित्र समझे; एक ऐसे धर्म का जो जीवन-विरोधी न हो, जीवन-निषेधक न हो, जो जीवन को अहोभाव, आनंद से स्वीकार कर सके; एक ऐसे धर्म का जिसका मंदिर जीवन के विपरीत न हो, जीवन की गहनता में हो!

'ढाई घड़ी से अधिक एक जगह नहीं टिकते!'

क्या टिकता है? ढाई घड़ी बहुत बड़ा समय है। कुछ भी टिकता नहीं है। डबरे टिकते हैं, नदियां तो बही चली जाती हैं। नारद धारा की तरह हैं! बहाव है उनमें! प्रवाह है! प्रक्रिया है! गति है! गत्यात्मकता है! डबरे तो सड़ते हैं। एक ही जगह पड़े रहते हैं माना, मगर सिवाय कीचड़-कबाड़ के कुछ पैदा नहीं होता। स्वच्छता के लिए प्रवाह चाहिए।

लेकिन तुम सभी डरे हुए हो प्रवाह से। तुम सभी डरे हुए हो परिवर्तन से, क्योंकि परिवर्तन के पीछे मौत छिपी मालूम होती है। अगर परिवर्तन होगा तो मौत आएगी। तुम सब यह चाहोगे कि अगर कोई चमत्कार कर सके और तुम जैसे हो जहां हो, वहीं डबरे की तरह ठहर जाओ, मूर्तियों की भांति, पत्थर! एक चमत्कार ईश्वर करे और सब अपनी-अपनी जगह जैसे हैं, वैसे ठहर जाएं, तो तुम बड़े खुश होओगे; हालांकि मर जाओगे, मगर तुम बड़े प्रसन्न होओगे कि चलो, अब मौत नहीं आएगी। मगर मौत आ ही गयी!

जरा जीवन को देखो चारों तरफ: कितनी गति है! कहीं कुछ ठहरा हुआ है? सिवाय तुम्हारे भय की, मन की आकांक्षाओं के, ठहरने का कहीं कोई स्थान है? सब बदल रहा है। सब रूपान्तरित हो रहा है। लहरें आती हैं, जाती हैं सागर की! सृष्टि और प्रलय! दिन और रात! सब बदल रहा है!

ढाई घड़ी! तुम ज्यादा न डर जाओ, इसलिए ढाई घड़ी कहा होगा कथाओं में। ढाई पल भी कहां कोई चीज ठहरी है। त्वरित जीवन रूपान्तरित हो रहा है। जीवन का अर्थ ही रूपान्तरण है। जो ठहर जाए वह मौत। जो बढ़ता चले वही जीवन।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा : ठहरना मत। समझे नहीं वे। वे समझे कि बुद्ध यह कह रहे हैं कि एक गांव में ज्यादा देर मत ठहरना। बुद्ध ने कहा : 'चरैवेति ! चरैवेति ! चलते जाना ! चलते जाना ! उन्होंने समझा कि ठीक है, परिव्राजक बना रहे हैं बुद्ध। तो एक गांव में तीन दिन से ज्यादा नहीं ठहरते, दूसरे गांव में चले जाते हैं। बुद्ध ने कुछ और ही कहा था। बुद्ध ने कहा था : ठहरना जीवन के विपरीत है। ठहरने की आकांक्षा ही आत्महत्या है। बढ़ते ही जाना ! यहां कुछ ऐसा नहीं है कि मंजिल है कोई, जहां पहुंचकर ठहरे सो ठहरे, तो तुम जड़ हो जाओगे। यहां यात्रा ही मंजिल है। चलते जाना !

यही अर्थ है नारद का।

और अंतिम सवाल : पुराण में कथा है कि बालक ध्रुव नारद के भक्त थे; नारद नारायण के भक्त थे। बालक ध्रुव की भक्ति से मात्र छह महीने में ही नारायण प्रसन्न हो गये और उपलब्ध हो गये। और इसकी स्मृति में आकाश में एक तारा उगा — ध्रुव तारा। इससे अन्य ऋषि-मुनि ध्रुव के प्रति ईर्ष्या से और नारायण के प्रति शिकायत से भर गये, क्योंकि वे सब कठोर तपश्चर्या करके भी कुछ न पा सके थे। जब वे ऋषि-मुनि इकट्ठे होकर विचार करते थे, तब एक मछुआ आया और उसने उन सबको नदी की सैर का निमंत्रण दिया। वे सब गये और उन्होंने जगह-जगह सफेद चिह्न देखे। ऋषि-मुनियों के पूछने पर मछुए ने कहा, इन सभी स्थलों पर ध्रुव ने पिछले जन्मों में तपश्चर्या की थी।

कृपा करके इस पुराण की कथा का हमें सार कहिए !

● कथाएं इतिहास नहीं हैं। कथाएं पुराण हैं। इतिहास और पुराण का भेद समझ लेना चाहिए।

इतिहास तो वह है जो कभी घटा, हुआ। पुराण वह है जो सदा होता है। इतिहास समय में घटता है, पुराण शाश्वत है। तो पुराण को सिद्ध करने की कोशिश मत करना कि वह हुआ कि नहीं, वह तो भूल ही हो गयी फिर। फिर तो तुम कविता को समझे ही नहीं, काव्य को पहचाने ही नहीं। फिर तो तुम गलत रास्ते पर चल पड़े। ऐसा चल रहा है पूरे मुल्क में, हजारों साल से चल रहा है, अभी भी चलता है।

अभी कुछ दिन पहले लुधियाना में पुरी के शंकराचार्य ने चुनौती दी कि कोई भी अगर सिद्ध कर दे कि रामायण झूठ है तो मैं शास्त्रार्थ के लिए तैयार हूं। कुछ हैं जो सिद्ध करना चाहते हैं कि रामायण झूठ है। कुछ हैं जो सिद्ध करना चाहते हैं कि रामायण सच है। और दोनों एक ही नाव में सवार हैं।

न रामायण झूठ है, न रामायण सच है — रामायण पुराण है। रामायण का समय से कोई संबंध नहीं, इतिहास से कोई संबंध नहीं। ऐसा कभी हुआ है, ऐसा सवाल ही नहीं है। ऐसा नहीं हुआ है, यह तो सवाल उठता ही नहीं है। ऐसा होता रहा है। ऐसा आज भी हो रहा है, अभी भी घट रहा है।

पुराण का अर्थ है : जीवन का सार-निचोड़ थोड़ी-सी कहानियों में रख दिया है। कहानियों पर जिद्द मत करना, सार-निचोड़ को पकड़ना।

'बालक ध्रुव नारद के भक्त थे; नारद नारायण के भक्त थे।' इसका अर्थ हुआ कि भगवान तक सीधे पहुंचना कठिन होगा, सदगुरु चाहिए। इसका अर्थ हुआ कि भगवान से सीधा-सीधा मिलना कठिन होगा, मध्यस्थ चाहिए। इसका अर्थ हुआ कि कोई बीच में चाहिए जो तुम जैसा भी हो ओर भगवान जैसा भी हो, तो सेतु बन सकेगा। कोई ऐसा चाहिए जिसका एक हाथ तुम्हें पकड़े हो और एक हाथ जिसका परमात्मा पकड़े हो। एक हाथ तुम्हारे जैसा और एक हाथ परमात्मा जैसा! जो परमात्मा और मनुष्य के बीच में कहीं हो – संक्रमण हो, द्वार हो।

परमात्मा बहुत बड़ा है। आदमी बहुत छोटा है। दोनों में तालमेल कैसे बैठे? कोई चाहिए जो परमात्मा जैसा बड़ा हो, आदमी जैसा छोटा भी हो।

गुरु इस दुनिया में सबसे बड़ा विरोधाभास है, सबसे बड़ा पैराडाक्स। अगर तुम गुरु को एक तरफ से देखो, अपनी तरफ से, तो तुम्हारे जैसा है। अगर तुम दूसरी तरफ से देखो तो परमात्मा जैसा है। इसलिए तो कोई भी अपने गुरु के लिए तर्क नहीं कर सकता, न प्रमाण जुटा सकता है। क्योंकि तुम्हारे तर्क और प्रमाण कुछ भी सिद्ध न कर सकेंगे उसके लिए, जिसको दूसरी तरफ से देखने की क्षमता न हो। वह कहेगा, हमारे जैसा ही तुम्हारा गुरु है; जैसी हमें भूख लगती है उसे लगती है; धूप आए तो हमें पसीना आता है, उसे आता है।

इन बातों से बचने के लिए फिर कपोल-कल्पनाएं शुरू होती हैं। जैन कहते हैं, महावीर को पसीना नहीं आता। पागल हैं। बिलकुल पागलपन की बात है। जैन कहते हैं, महावीर को चोट करो तो खून नहीं निकलता, दूध निकलता है।

ये क्यों कहानियां गढ़ी गयी हैं? ये भक्त यह कह रहे हैं कि हमारा भगवान आदमियों जैसा नहीं है। मगर तुम्हें यह सिद्ध करना पड़ रहा है कि पसीना नहीं आता, उससे साफ है कि पसीना आता होगा। तो काहे के लिए चिंता करते? दूसरे सिद्ध करते हैं कि पसीना आता है; खून ही निकलता है, दूध कहीं निकला है!

भक्तों ने अपने गुरुओं को अलौकिक सिद्ध करने की बड़ी चेष्टाएं की हैं। उनकी चेष्टा को समझो सहानुभूति से तो सार्थक मालूम होती है। उनकी चेष्टा ही यह है, वे यह कह रहे हैं कि तुम हमारे गुरु को साधारण मनुष्य मत समझो। ठीक ही कह रहे हैं, लेकिन जिस भाषा में कह रहे हैं वह बिलकुल गलत है। और उनकी भाषा के कारण दूसरों के सामने महावीर का, या उनके गुरु का परमात्म-रूप तो प्रगट नहीं होता, उनका ऐतिहासिक रूप तक संदिग्ध हो जाता है।

गुरु बड़ी भारी विरोधाभासी अवस्था है; अगर बुद्धि से देखा तो आदमी जैसा, अगर हृदय से देखा तो परमात्मा जैसा। इसलिए श्रद्धा की आंख हो तो गुरु परमात्मा से जोड़ने का कारण हो जाता है।

'पुराण की कथा है, बालक ध्रुव नारद के भक्त थे, और नारद नारायण के।' सेतु बन गया। राह खुल गयी। ध्रुव की भक्ति से मात्र छह महीने में नारायण प्रसन्न हो गये। छह महीने भी लगे, यह आश्चर्य की बात है। जरूर सरकारी कामकाज, दफ्तर... ! छह महीने! ध्रुव जैसा सरल हृदय प्रार्थना करे और छह महीने लगें! पुराण ने मजाक की है! सरकारी काम-काज, रेड टेप! फाइलें सरकने में वक्त लग जाता है। तुम चकित होते हो कि छह महीने, इतने जल्दी हो गया; मैं चकित हो रहा हूं

कि छह महीने लगे, इतनी देर लगी ! बाल-हृदय से प्रार्थना उठे, तत्क्षण पूरी हो जाती है। इतने निर्दोष हृदय से उठी प्रार्थना में कमी क्या हो सकती है कि छह महीने लगें ? हां, पुराण लिखनेवालों को शायद छह महीने बाद पता चला होगा। लेकिन प्रार्थना हो, निर्दोष हो, तो क्षण का भी फासला नहीं है, प्रार्थना तत्क्षण पूरी हो जाती है। यही तो प्रार्थना का चमत्कार है। उसमें देर लग जाए, यह संभव नहीं; क्योंकि प्रार्थना समय के बाहर है, समयातीत है।

आकाश में ध्रुव तारा तो अभी भी है; ध्रुव की कथा बनी, उसके पहले भी था। लेकिन ध्रुव की घटना इतनी महत्वपूर्ण है और उसकी स्थिर भक्ति इतनी स्थिर थी, उसकी प्रज्ञा ऐसी थिर थी कि सारे अस्तित्व में ध्रुव से ज्यादा, ध्रुव तारे से ज्यादा थिरता का और कोई प्रतीक नहीं मिला। वह अकेला तारा है जो ठहरा हुआ है, अपनी जगह पर, कोई उसे हिलाता नहीं, अकंप ! इसलिए ध्रुव तारे से ध्रुव का नाम जुड़ गया।

'इससे अन्य ऋषि-मुनि ध्रुव के प्रति ईर्ष्या और नारायण के प्रति शिकायत से भर गये।' ...ऋषि-मुनि न रहे होंगे। क्योंकि जहां तक ईर्ष्या है वहां तक कैसा ऋषि, कैसा मुनि ! मगर इसी तरह के ऋषि-मुनियों से हम परिचित हैं : ईर्ष्या है, दौड़ है, महत्त्वाकांक्षा है, जलन है, शिकायत है ! और उनकी शिकायत तर्कयुक्त भी मालूम होती है; वर्षों से तपश्चर्या कर रहे थे, उनको तो न मिला और छोटे बालक को मिल गया, जिसका कुछ अर्जन नहीं !

इसे ध्यान रखो : सांसारिक मन कहता है, भगवान को भी अर्जित करना होगा; जैसे वह भी कोई संपदा है, बैंक-बैलेंस है। भगवान मिला ही हुआ है, सिर्फ स्मरण करना है, अर्जन नहीं। सरल हृदय उसका स्मरण करता है, प्रत्यभिज्ञा हो जाती है। गणितवाला हृदय, गणितवाली बुद्धि अर्जन करती है – कमाओ ! उपवास करो, व्रत करो, त्याग करो, यह करो, वह करो – कमाओ ! दावेदार बनो ! स्वभावतः जब तुम कमाते हो तो भीतर से यह भी उठता है, बड़ी देर लग रही है, इतना कमा लिया – अभी तक नहीं, अभी तक नहीं ! और अगर ऐसे कमानेवाले लोगों के बीच में किसी को अचानक मिल जाए जिसने कुछ भी न किया; छोटा बच्चा, जिसके पास समय ही न था करने को कुछ – तो स्वभावतः ईर्ष्या जगेगी कि यह तो फिर अन्याय हो गया। यह तो इनका बस चले तो ये ऋषि-मुनि परमात्मा को अदालत में ले जाएं कि 'यह अन्याय हो रहा है। कहावत तो सुनी थी कि देर है अंधेर नहीं; लेकिन अब तो अंधेर भी हो रहा है। देर तो हो ही गयी है कि जिंदगीभर तपश्चर्या की, व्रत-उपवास किये, सब फेहरिश्त तैयार रखे हैं... ।' फाइलें ऋषि-मुनियों की तैयार हैं, उन्होंने क्या-क्या किया है, उसमें खूब बढ़ा-चढ़ाकर लिखा हुआ है। और इस दो दिन के बालक को, जिसने कुछ भी न किया था; जो अभी ठीक से तुतलाता भी नहीं, यह क्या तो प्रार्थना करेगा, कहां से संस्कृत का शुद्ध उच्चार लाएगा, वेद-मंत्र कहां जानता है – इसको मिल गया ! बुद्धि का चिंतित होना स्वाभाविक है, क्योंकि बुद्धि गणित है।

यहीं समझ लेना चाहिए, प्रार्थना को न तो भाषा की जरूरत है, न शास्त्रों की जरूरत है, सिर्फ प्रेम की जरूरत है। छोटे बालक जैसा प्रेम पर्याप्त है; उससे ज्यादा की कोई जरूरत नहीं है। तुम अगर फिर से अपने छोटे बालक जैसे प्रेम को पुनः पा लो तो सब शास्त्र दो कौड़ी के हैं। तो कोई व्रत-उपवास जरूरी नहीं है। उतनी सरल हृदय से तुम्हारी प्रार्थना उठ आए, पूरी हो जाएगी।

लेकिन ऋषि-मुनि एक तरफ ईर्ष्या से भरे हैं, एक तरफ शिकायत से भी भरे हैं! अन्याय हो गया था!

ध्यान रखना, धर्म के मार्ग पर अर्जन की भाषा छोड़ो; अन्यथा तुम संसार को ही खींचे लिए जा रहे हो। छोड़ो ये बातें। परमात्मा, तुम क्या करते हो, इससे नहीं मिलता; तुम क्या हो, इससे मिलता है। तुम्हारा होना शुद्ध हो; तुम्हारा होना निष्कलुष हो; तुम्हारा होना कुंआरा हो, छोटे बच्चे जैसा हो!

जीसस ने कहा है: जो छोटे बच्चों की तरह होंगे, वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश करेंगे।

'ऋषि-मुनि इकट्ठे हो गये, विचार करने लगे। एक मछुए ने उनको अपनी नाव में बिठा लिया। वहां जगह-जगह सफेद चिह्न दिखायी पड़े। पूछने पर मछुए ने कहा, ये वे स्थान हैं, जहां ध्रुव ने पिछले जन्मों में तपश्चर्या की थी।' इससे ऋषि-मुनि राजी हो गये होंगे। यह बात फिर उनकी समझ में आ गयी होगी, फिर गणित में बैठ गयी। यह तो बहुत कठिन होता अगर मछुआ कहता कि बस ध्रुव ने मांगा और भगवान मिल गये; कोई तपश्चर्या पीछे नहीं है, कोई यात्रा पीछे नहीं है। कहानी सरल हो गयी। ऋषि-मुनियों की शिकायत कम हो गयी होगी।

मेरे देखे कर्म का सिद्धांत तुम्हारे सांसारिक गणित का फैलाव है। तुम कहते हो, फलां आदमी आनंद भोग रहा है, पिछले जन्मों में पुण्य किये होंगे; क्योंकि यह तो तुम बरदाश्त कर ही नहीं सकते कि इसी जन्म में और आनंद भोग रहा हो! दूसरा आदमी मजे कर रहा है, सफलता पा रहा है; तुम कहते हो, 'ठहरो! वक्त आएगा जब भोगोगे! अगले जन्म में देखना, सड़ोगे, नरक में पड़ोगे! यह चार दिन की चांदनी है, फिर अंधेरी रात!' ऐसे तुम अपने मन को समझा लेते हो।

कर्म का सिद्धांत साधारणतः तुम्हारे मानसिक गणित का ही फैलाव है। उससे तुम हल कर लेते हो, मामला साफ हो जाता है, झंझट खत्म हो गयी। फिर तुम्हें अड़चन नहीं होती। अगर मैं कहूं कि बस, बिना कुछ किये परमात्मा मिल गया, तुम कहोगे, 'यह बात जरा संदिग्ध है; हम इतना कर रहे हैं और न मिला!' अगर मैं कहूं, जन्मों-जन्मों में मेहनत की, तब तुम कहोगे, 'ठीक है, दया आती है, मिलना ही चाहिए।' गणित में बात बैठ गयी।

मछुए की बात सुनकर ऋषि-मुनि शांत हो गये होंगे। मछुआ बड़ा होशियार रहा होगा। मछलियां पकड़ते-पकड़ते आदमियों को पकड़ना जान गया होगा। ध्रुव से उनकी नाराजगी चली गयी होगी, परमात्मा से शिकायत भी चली गयी — बात सब गणित में आ गयी!

और मैं तुमसे कहता हूं, प्रेम गणित में नहीं आता। और मैं तुमसे कहता हूं, प्रार्थना गणित में नहीं आती। और मैं तुमसे पुनः पुनः कहता हूं: तुम क्या करते हो, इससे परमात्मा के मिलने का कोई भी संबंध नहीं — तुम क्या हो, तुम्हारा होना ही एकमात्र पाने का उपाय है।

आज इतना ही।

विश्व का एकमात्र शुभ समाचार-पत्र

ओशो टाइम्स

हर माह ओशो की क्रांति को अपने पन्नों पर संजोए
नये मनुष्य का, नई मनुष्यता का मुखपत्र...
व्यक्ति की, समाज की ज्वलंत समस्याओं पर,
अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर ओशो का नया दृष्टिकोण
मौलिक समाधान, ध्यान और प्रेम पर आधारित
एक नई जीवन-शैली का आमंत्रण...

हिंदी (मासिक पत्रिका)
एक प्रति का मूल्य 30 रुपये
वार्षिक शुल्क 330 रुपये
रजिस्टर्ड डाक से 570 रुपये

अंग्रेजी (मासिक पत्रिका)
एक प्रति का मूल्य 30 रुपये
वार्षिक शुल्क 330 रुपये
रजिस्टर्ड डाक से 570 रुपये

अधिक जानकारी हेतु संपर्क सूत्र :
ताओ पब्लिशिंग प्रा. लि.,
50 कोरेगांव पार्क, पुणे-411001
फोन : 020-4019999 फैक्स : 020-4019990
e-mail - othsubs@osho.net
Web Site - http://www.osho.com

ओशो — एक परिचय

ओशो एक नया प्रारंभ हैं, वे अतीत की किसी भी धार्मिक परंपरा या शृंखला की कड़ी नहीं हैं। ओशो ने एक नये मनुष्य का, एक नये जगत का, एक नये युग का सूत्रपात किया है, जिसकी आधारशिला अतीत के किसी धर्म में नहीं है, किसी दार्शनिक विचार-पद्धति में नहीं है।

ओशो एक नवोन्मेष हैं नये मनुष्य के, नयी मनुष्यता के। यह नया मनुष्य 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक ऐसा मनुष्य है जो ज़ोरबा की भांति भौतिक जीवन का पूरा आनंद मनाना जानता है और जो गौतम बुद्ध की भांति मौन होकर ध्यान में उतरने में भी सक्षम है—ऐसा मनुष्य जो भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों तरह से समृद्ध है। 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक समग्र व अविभाजित मनुष्य है। ओशो का यह नया मनुष्य भविष्य की एकमात्र आशा है; इसके बिना पृथ्वी का कोई भविष्य नहीं है।

अपने प्रवचनों के द्वारा ओशो ने मानव-चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, शिव, शांडिल्य, नारद, जीसस के साथ ही साथ भारतीय अध्यात्म-आकाश के अनेक नक्षत्रों—आदिशंकराचार्य, गोरख, कबीर, नानक, मलूकदास, रैदास, दरियादास, मीरा आदि पर उनके हजारों प्रवचन उपलब्ध हैं। जीवन का ऐसा कोई भी आयाम नहीं है जो उनके प्रवचनों से अस्पर्शित रहा हो। योग, तंत्र, ताओ, झेन, हसीद, सूफी जैसी विभिन्न साधना-परंपराओं के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला है। साथ ही राजनीति, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा, परिवार, समाज, गरीबी, जनसंख्या-विस्फोट, पर्यावरण तथा संभावित परमाणु युद्ध के व उससे भी बढ़कर एड्स महामारी के विश्व-संकट जैसे अनेक विषयों पर भी उनकी क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि उपलब्ध है।

शिष्यों और साधकों के बीच दिए गए उनके ये प्रवचन छह सौ पचास से भी अधिक पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं और तीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित हो चुके हैं। वे कहते हैं, "मेरा संदेश कोई सिद्धांत, कोई चिंतन नहीं है। मेरा संदेश तो रूपांतरण की एक कीमिया, एक विज्ञान है।"

एक निमंत्रण

ओशो के प्रवचनों को पढ़ना, उन्हें सुनना अपने आप में एक आनंद है। इनके द्वारा आप अपने जीवन में एक अपूर्व क्रांति की पदचाप सुन सकते हैं। लेकिन यह केवल प्रारंभ है, शुभ आरंभ है। इन प्रवचनों को पढ़ते हुए आपने महसूस किया होगा कि ओशो का मूल संदेश है: ध्यान। ध्यान की भूमि पर ही प्रेम के, आनंद के, उत्सव के फूल खिलते हैं। ध्यान आमूल क्रांति है।

निश्चित ही आप भी चाहेंगे कि आपके जीवन में ऐसी आमूल क्रांति हो; आप भी एक ऐसी आबोहवा को उपलब्ध करें जहां आप अपने आप से परिचित हो सकें, आत्म-अनुभूति की दिशा में कुछ कदम उठा सकें; कोई ऐसा स्थान जहां और भी कुछ लोग इस दिशा में गतिमान हों।

ओशो ने एक ऐसी ही ध्यानमय, उत्सवमय आबोहवा वाला ऊर्जा-क्षेत्र निर्मित किया है पूना में: ओशो कम्यून इंटरनेशनल। यहां हजारों लोगों ने ओशो ध्यान विधियों का प्रयोग कर ध्यान की गहराइयों को छुआ है। यह स्थान एक ऐसा सघन ऊर्जा-क्षेत्र बन गया है कि व्यक्ति ध्यान के द्वारा यहां त्वरित रूपांतरित हो सकता है।

विश्व के लगभग सौ देशों से लोग यहां आकर इस अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में ध्यान का रसास्वादन करते हैं। दुनिया में जितने भी प्रकार के लोग हैं, ओशो ने उन सब के लिए विशेष प्रकार की वैज्ञानिक ध्यान-विधियों को ईजाद किया है। ये विधियां आधुनिक जीवन के तनावों को दूर कर एक निश्िंचत, आनंदपूर्ण जीवन जीने की कला सिखाती हैं। आज विश्व की समस्त साधना-पद्धतियों की विधियां यहां एक ही छत के नीचे मौजूद हैं। ओशो कम्यून इंटरनेशनल विश्व भर में एकमात्र ऐसा केंद्र है जहां पर सभी राष्ट्रों और धर्मों के लोग अपने अनुकूल ध्यान प्रयोगों के द्वारा एक साथ रूपांतरित हो सकते हैं।

इसमें आपका भी स्वागत है।

अतिरिक्त जानकारी के लिए संपर्क-सूत्र :
ओशो कम्यून इंटरनेशनल
17, कोरेगांव पार्क, पुणे-411001, महाराष्ट्र
फोन: 020-4019999 फैक्स: 020-4019990
e-mail - resortinfo@osho.net
Web Site - www.osho.com

ओशो का हिंदी साहित्य

उपनिषद
सर्वसार उपनिषद
कैवल्य उपनिषद
अध्यात्म उपनिषद
कठोपनिषद
ईशावास्य उपनिषद
निर्वाण उपनिषद
आत्म-पूजा उपनिषद
केनोपनिषद
मेरा स्वर्णिम भारत (विविध उपनिषद-सूत्र)

कृष्ण
गीता-दर्शन (आठ भागों में अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति

महावीर
महावीर-वाणी (दो भागों में)
जिन-सूत्र (दो भागों में)
महावीर या महाविनाश
महावीरः मेरी दृष्टि में
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

अष्टावक्र
अष्टावक्र महागीता (छह भागों में)

बुद्ध
एस धम्मो सनंतनो (बारह भागों में)

लाओत्से
ताओ उपनिषद (छह भागों में)

कबीर
सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
न कानों सुना न आंखों देखा (कबीर व फरीद)

अन्य रहस्यदर्शी
अथातो भक्ति जिज्ञासा (शांडिल्य)
भक्ति-सूत्र (नारद)
शिव-सूत्र (शिव)
भजगोविन्दम् मूढ़मते (आदिशंकराचार्य)
एक ओंकार सतनाम (नानक)
जगत तरैया भोर की (दयाबाई)
बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)
पद घुंघरू बांध (मीरा)
नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास)
संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)
कहै वाजिद पुकार (वाजिद)
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)
सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)
बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)
दरिया कहै सब्द निरबाना
(दरियादास बिहारवाले)
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)
हंसा तो मोती चुगैं (लाल)
गुरु-परताप साध की संगति (भीखा)
मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)
झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल)
नाम सुमिर मन बावरे (जगजीवन)
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी (जगजीवन)

कानों सुनी सो झूठ सब (दरिया)
अमी झरत बिगसत कंवल (दरिया)
हरि बोलौ हरि बोल (सुंदरदास)
ज्योति से ज्योति जले (सुंदरदास)
जस पनिहार धरे सिर गागर (धरमदास)
का सोवै दिन रैन (धरमदास)
सबै सयाने एक मत (दादू)
पिव पिव लागी प्यास (दादू)
अजहूं चेत गंवार (पलटू)
सपना यह संसार (पलटू)
काहे होत अधीर (पलटू)
कन थोरे कांकर घने (मलूकदास)
रामदुवारे जो मरे (मलूकदास)
जरथुस्त्रः नाचता-गाता मसीहा (जरथुस्त्र)

प्रश्नोत्तर

नहिं राम बिन ठांव
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र
मृत्योर्मा अमृतं गमय
प्रीतम छवि नैनन बसी
रहिमन धागा प्रेम का
उड़ियो पंख पसार
सुमिरन मेरा हरि करैं
पिय को खोजन मैं चली
साहेब मिल साहेब भये
जो बोलैं तो हरिकथा
बहुरि न ऐसा दांव
ज्यूं था त्यूं ठहराया
ज्यूं मछली बिन नीर
दीपक बारा नाम का
अनहद में बिसराम
लगन महूरत झूठ सब
सहज आसिकी नाहिं
पीवत रामरस लगी खुमारी
रामनाम जान्यो नहीं
सांच सांच सो सांच
आपुई गई हिराय
बहुतेरे हैं घाट
कोंपलें फिर फूट आईं
फिर पत्तों की पांजेब बजी
फिर अमरित की बूंद पड़ी
क्या सोवै तू बावरी
चल हंसा उस देस
कहा कहूं उस देस की
पंथ प्रेम को अटपटो
माटी कहै कुम्हार सूं
मैं धार्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं

तंत्र

संभोग से समाधि की ओर
तंत्र-सूत्र (पांच भागों में)

योग

पतंजलिः योग-सूत्र (पांच भागों में)
योगः नये आयाम

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां

बिन बाती बिन तेल
सहज समाधि भली
दीया तले अंधेरा

विचार-पत्र

क्रांति-बीज
पथ के प्रदीप

पत्र-संकलन

अंतर्वीणा

प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल

बोध-कथा

मिट्टी के दीये

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याएं

देख कबीरा रोया

स्वर्ण पाखी था जो कभी और
 अब है भिखारी जगत का

शिक्षा में क्रांति

नये समाज की खोज

नये भारत की खोज

नये भारत का जन्म

नारी और क्रांति

शिक्षा और धर्म

भारत का भविष्य

ध्यान, साधना

ध्यान विज्ञान

ध्यानयोग: प्रथम और अंतिम मुक्ति

नेति-नेति

चेति सकै तो चेति

हसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम्

समाधि कमल

साक्षी की साधना

धर्म साधना के सूत्र

मैं कौन हूं

समाधि के द्वार पर

अपने माहिं टटोल

ध्यान दर्शन

तृषा गई एक बूंद से

ध्यान के कमल

जीवन संगीत

जो घर बारे आपना

प्रेम दर्शन

साधना-शिविर

साधना-पथ

मैं मृत्यु सिखाता हूं

जिन खोजा तिन पाइयां

समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की)

साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स)

ध्यान-सूत्र

जीवन ही है प्रभु

असंभव क्रांति

रोम-रोम रस पीजिए

अंतरंग वार्ताएं

संबोधि के क्षण

प्रेम नदी के तीरा

सहज मिले अविनाशी

उपासना के क्षण

विविध

मैं कहता आंखन देखी

एक एक कदम

जीवन क्रांति के सूत्र

जीवन रहस्य

करुणा और क्रांति

विज्ञान, धर्म और कला

शून्य के पार

प्रभु मंदिर के द्वार पर

तमसो मा ज्योतिर्गमय

प्रेम है द्वार प्रभु का

अंतर की खोज
अमृत की दिशा
अमृत वर्षा
अमृत द्वार
चित चकमक लागे नाहिं
एक नया द्वार
प्रेम गंगा
समुंद समाना बुंद में
सत्य की प्यास
शून्य समाधि
व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज

अज्ञात की ओर
धर्म और आनंद
जीवन-दर्शन
जीवन की खोज
क्या ईश्वर मर गया है
नानक दुखिया सब संसार
नये मनुष्य का धर्म
धर्म की यात्रा
स्वयं की सत्ता
सुख और शांति
अनंत की पुकार

ओशो के आडियो-वीडियो प्रवचन एवं साहित्य के संबंध में
समस्त जानकारी हेतु संपर्क सूत्र:

साधना फाउंडेशन, 17 कोरेगांव पार्क, पुणे-411001
फोन: 020-4019999 फैक्स: 020-4019990
e-mail - distrib@osho.net
Web Site - www.osho.com

"ओशो रूपी आश्चर्य से मैं गहनरूपेण हिल गया हूं।"

काउ सुगावारा

मुख्य पुरोहित, गोसीजी टेम्पल
मियागी, जापान

"ओशो ने मेरी प्रतिभा में
नया आयाम जोड़ा है।
उनकी मधुर संगीतमय वाणी सुन कर
मेरी महिमा की खोज
आनंद के विस्फोट में बदल गई है
और उसने मेरे लिए
जीवन के नये क्षितिज उदघाटित कर दिए हैं।"

जगजीत सिंह

विश्वविख्यात गज़ल गायक

A REBEL BOOK
ISBN 81-7261-095-5
Bhakti Sutra